❀ श्रीराधासर्वेश्वरो जयति ❀

श्रीनिम्बार्कमाधुरी

सम्पादक—

ब्रह्मचारी विहारीशरण

श्रीनिम्बार्क-जयन्ती उत्सव कार्तिक पूर्णिमा सं० १९९७

मुद्रक—
बा० प्रभुदयाल मीतल,
अग्रवाल प्रेस, वृन्दावन।

किस भाँति जीना चाहिये किस भाँति मरना चाहिये,
यह बात अपने पूर्वजोंसे याद करना चाहिये;
पद-चिह्न उनके यत्न पूर्वक खोज लेना चाहिये,
निज पूर्व-गौरव-दीपको बुझने न देना चाहिये।

—मैथिलीशरण गुप्त

प्रकाशक—
ब्रह्मचारी विहारीशरण,
वृन्दावन।

निखिल महिचक्रवालाचार्य
अनादि-वैदिक-सत्संप्रदाय-प्रवर्तक
यतिपति-दिनेश
भगवान श्रीनिम्बार्काचार्य ।
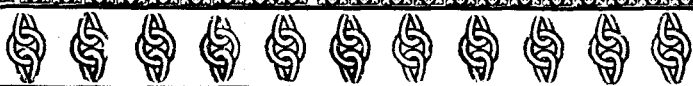
परमाराध्य आचार्यवर भगवन्,

श्रीनिम्बार्कमहामुनीन्द्र !

मेरो मोमें कछु नहीं, जो कछु है सो तोर।
तुमरो तुमकहँ सौंपते, कहा लगत है मोर॥

भगवन् श्रीसुदर्शनचक्रावतार !

आपकी विश्व-प्रदीप्त-प्रखर-प्रभापूर्ण संतोंने ही मानव-जगत्‌में अपनी भक्ति-छटा-द्वारा अधर्म-अन्धकार दूर कर विश्वमें आदर्श उपस्थित किया है। ये आपकी ही विभूतियाँ हैं, इन्हें कर्तव्य-पथ पर प्रेरितकर्ता आपही हैं। उन्हीं संत-मणि-मनकोंकी यह माला है। अपनत्वके नाते अपनी वस्तु आप स्वीकार करें। यही इस दीनकी प्रार्थना है।

चरण-किंकर—

विहारीशरण

दानवीर, धर्मनिष्ठ

सेठ श्रीरामरीखदासजी केडिया

चिड़ावावाले—वम्बई

आपका सच्चरित्र अनुकरणीय है। आप सनातन-धर्म के परम निष्ठ सज्जन हैं। आपके द्वारा श्री वृन्दावनमें भी समयानुसार गो. ब्राह्मण, साधु-सेवा होती ही रहती है। श्रीनिम्बार्कमाधुरीके लिये आपने २००) रुपये प्रदानकर प्रेससे उद्धार होनेमें सहायता की है।

श्रीनिम्बार्कमाधुरी

सम्पादक-श्रीनिम्बार्कमाधुरी
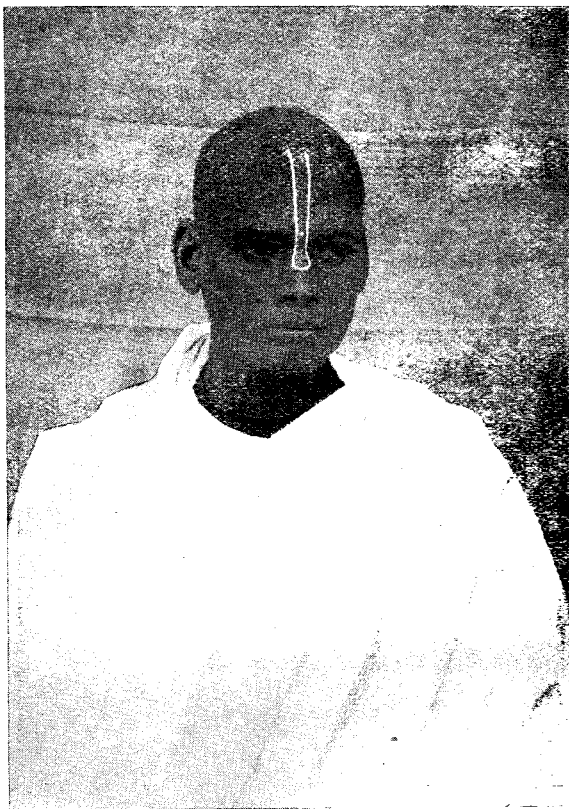
ब्रह्मचारी बिहारीशरण

श्रीवृन्दावन-धाम

वक्तव्य
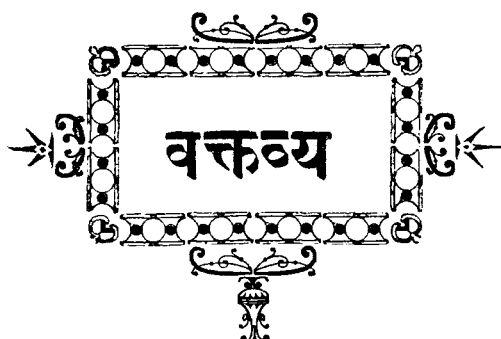
संस्कार प्रबल होता है, हिन्दू शास्त्रोंमें मानव-जीवनके शुभाशुभ कर्म में प्रवृत करानेका इसे प्रमुख स्थान प्राप्त है। सनातन-धर्म-जगतमें इसके लिये विश्वास-पूर्वक धारणा है। जो संस्कार होता है, उसका व्यवहरित होना अवश्यम्भावी है। यह नियम ईश्वर-द्वारा ही निर्मित एवं उद्घोषित है। भविष्यके गर्भमें छिपे हुए लक्षण बाल्यावस्थासे ही उद्भाषित होने लगते हैं, मुझे विद्यार्थी-जीवनमें अल्प वयसे ही गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी कृत रामायण, व्रजविलास, प्रेमसागर आदि काव्य एवं श्रीराम-कृष्णलीलाकी पवित्र-गाथायें पढ़ने एवं श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। कोर्शकी पाठ्य पुस्तकें स्मरण करने की चिन्ता न करते हुए, उक्त पूज्य ग्रन्थोंके अवलोकनमें मेरा विशेष समय व्यतीत होने लगा। हाईस्कूलमें नाइन्थ-क्लासतक कुछ हिन्दी एवं अंग्रज़ी शिक्षा पानेके पश्चात् कोई कारण निमित्त होकर हृदयमें भगवद्भक्ति-वेग उमड़ा इसलिये साधु होनेके विचार द्वारा वर्तमान जीवनका प्रारम्भिक संस्कार उदय हुआ। बाल्यावस्थामें ही हाईस्कूलकी पढ़ाई परित्याग कर, माता-भ्रातादि घरवालोंके अज्ञात अवस्थामें ही चल दिया। स्वतन्त्र-मन-काननमें भ्रमणके अतिरिक्त इस समय मेरा कर्तव्य कुछ नहीं था, तीर्थोंमें सद्गुरु खोज एवं संत-मार्ग प्राप्त करनेकी इच्छा अवश्य थी। हरिहरक्षेत्र, काशी, प्रयाग, मथुरा आदि तीर्थस्थानोंमें भ्रमण करते हुए जयपुर पहुँचे। विहार-प्रान्तका जन्म और मातृ-भाषा विहारी होनेके कारण बोल-चाल एवं रहन-सहन अनमेल होनेसे प्रथम चित्तमें उद्वेग हुआ; किन्तु डेढ़-दो वर्ष तक वहां विद्यार्थी-जीवनमें ही व्यतीत कर दिया। इसी अवसरपर जयपुर-राज्यके अन्तर्गत ही एक कस्वा 'रावजीका शाहपुरा' में श्रीनिम्बार्क—सम्प्रदायके स्थान 'रामनिवास बाग' में एक वृहद् उत्सव था, जिसमें सलेमाबाद आचार्यपीठसे श्रीश्रीजी महाराज भी पधारे थे वहां अपने काका गुरु श्रीरामकृष्णदासजी (सिद्ध बाबा)

के सेवक शिष्योंके साथ उत्सवमें गया, वहीं श्रीरामबागके महन्त श्रीरामदासजी महाराजसे इस श्रीनिम्बार्क सम्प्रदायांतर्गत वैष्णवी दीक्षा ली। स्थानमें कुछ दिवश रहनेके पश्चात् श्रीगुरू महाराजकी आज्ञासे लोहार्गलके चार सम्प्रदायके श्रीमहन्त श्रीभरतदासजीके साथ साधू-कर्मसे परिचित होनेके लिये रहना पड़ा। (उक्त महन्तजी महाराज अधिकांश समयतक सदैव सिद्धबाबाके संग ही अपनी जमात लेकर भ्रमण किया करते थे) इनके संग कई वर्ष तक रहनेके पश्चात् ब्रज-दर्शन एवं वृन्दावन-वास करनेकी प्रवल उत्कण्ठा हुई। वहांसे ब्रजके लिये प्रस्थान किया, सं० १९८४ में ब्रजमें आकर, ब्रज-परिक्रमा की। परिक्रमाके वाद मेरी इच्छानुसार ब्रज-वृन्दावन-वास नहीं हो सका, वृन्दावनमें आकर पुनः तीर्थ परिभ्रमणकी इच्छा हुई, लम्बे समयतक की यात्रामें पेशावरसे बंगाल और हिमालयसे कन्याकुमारी तकके प्रसिद्ध समस्त तीर्थोंमें भ्रमण किया। भ्रमण-काल की अवस्था अत्यन्त गरीवी की थी, आर्थिक व्यवस्थाका पूर्ण अभाव था, एक मात्र साधू वृति ही अवलम्बन थी। विरक्त साधु-स्थानोंमें ठहरना और पवित्र तथा योग्य पात्र स्थानाधिपति देखकर प्रसाद लेना, नहीं तो स्वयं बनाना पड़ता। इस भ्रमणमें कितने ही अवसरपर खाद्य-सामिग्रीका भी पूर्ण अभाव हुआ, किन्तु पवित्र ब्राह्मण-कुलका स्वाभिमान एवं साम्प्रदायिक मर्य्यादाका ध्यान रहता था, धैर्य्य नहीं छोड़ा, भूखे एवं कच्चा अन्न खाकर रह गया। इस प्रकार कई वर्ष तक श्रीव्रज वृन्दावन-धामसे बंचित रहनेके पश्चात् श्रीवृन्दावनेश्वरीजूकी कृपा हुई तबसे श्रीवृन्दावनमें निवास करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

श्रीवृन्दावनमें, रासलीला, आचार्योत्सव, मन्दिरोंमें श्रावण, फाल्गुन मासोंके सामयिक उत्सव, सन्त-समागम आदि के आनन्द, उत्साह तो प्राप्त हुए ही, किन्तु आचार्यों-द्वारा कथित नाम, रूप, लीला, धामके महत्त्वको समझनेकी भी श्रीजीने शक्ति दी, इसलिये पुनः यहांसे उच्चाटन नहीं हुआ। श्रीधाम-निवासमें आशक्ति होगई। श्रीजीकी कृपासे यह पवित्र भूमि जन्मभूमि-सी प्रतीत होने लगी। यहां रहते हुए सांप्रदायिक महानुभावोंके सत्संग-लाभसे साम्प्रदायिक-उपासना, सिद्धांतादिका कुछ-कुछ ज्ञान हुआ, इसलिये सम्प्रदायसे प्रेम होना स्वभाविक था, आचार्य, इष्ट, तथा उपासनाके प्रतिवादी द्वारा आक्षेप श्रवण करने या पढ़नेपर असह्य होजाता था। इसी अवसरपर एक अन्य सम्प्रदायके वैष्णव द्वारा परम-विरक्त-कुल-मणि श्रीजयदेव कवि गृहस्थ बताये गए, इसके प्रतिवादमें सम्वत् १९९० के लगभग एक 'सत्यार्थनिर्णय' नामक ट्रैक्ट लिखा, जिसका पुनः प्रतिवाद नहीं किया गया।

बरसानेमें भाद्रमासके शुक्लपक्षमें नवमीसे चतुर्दशी तक एक मेला होता है, इसमें श्रीघमंडदेवाचार्यजी द्वारा प्रगटित रासलीला बरसाने स्थित रासमंडलों पर हुआ करती हैं। इस लीलाको करनेका अधिकार किसे है—इसपर, वृन्दावन के निम्बार्कीय-विरक्त-वैष्णव, बरसानेके श्रीजीके गोस्वामीगण करहलाके रास-धारी, चकसौलीके जिमींदारोंमें परस्पर मुकदमे हुए। इस अवसरपर रासलीला तथा मुकुटके वास्तविक रहस्यसे परिज्ञान करानेकेलिये 'मुकुटकी-लटक' नामक ट्रैक्ट लिखी, जिसे जनताने बड़ी चाहसे ग्रहण किया। समाचार-पत्र पढ़नेकी चसक मुझे बाल्यावस्थासे ही थी। प्रत्येक जाति, सम्प्रदाय, देशकी सभा सोसाइटियें, तथा उन्नति व्यवस्थाके समाचार भी अवलोकन करता, इसलिये स्वसांप्रदायिक उन्नति एवं इसके अन्तर्गत सभा, वाचनालय, पुस्तकालय, विद्यालय आदि स्थापित होनेकी प्रबल भावनायें उठ खड़ी हुईं। इससमय तक यहां योग्य साम्प्रदायिक-सज्जनोंसे अपरिचित था, किन्तु उत्साही कर्तव्यशील व्यक्ति क्या नहीं कर सकता है, इसके लिये सदैव परिचित समाजमें चर्चा करता रहा। उन्हीं दिनों ब्रह्मचारी श्रीनन्दकुमारशरणजीको महात्मा श्रीसर्वेश्वरदासजीमहाराजके संग आते-जाते देखा, तथा कुछ दिन पश्चात् यहां स्वतन्त्र-रूपमें पाया। इनसे मेरी बातचीत हुईं, संस्कार-बस दोनोंका पारस्परिक-व्यवहार मित्र रूपमें रहने लगा। इनसे भी सम्प्रदायमें एक सभा अनिवार्य-सम्बन्धी चर्चायें कीं, इन्होंने यह साम्प्रदायिक-सेवा सहर्ष स्वीकार की। मैंने सपरिश्रम एतद् विषयक योजना लिखकर तैयार की और वृन्दावनस्थ साम्प्रदायिक वैष्णवोंके यहां कई-कई बार जाकर अनुमति ली, पश्चात् श्रीजीकी बड़ी-कुञ्जमें सभा बुलाई। उसी समय उपस्थित समस्त साम्प्रदायिक सज्जनोंने मिलकर सम्वत् १९९० में सभा स्थापित की। कुछ दिन पश्चात् सभामें वाचनालय, पुस्तकालय, भी स्थापित हुए। श्री सुदर्शन मासिकपत्र भी निकला, इन विभागोंमें संलग्नतापूर्वक कार्य करनेसे समयका अधिकांश भाग कई वर्षतक सभा कार्यालयमें देना पड़ा, तथा सभामें संग्रहीत साम्प्रदायिक एवं साहित्यिक ग्रन्थोंके अवलोकनका भी अवसर प्राप्त हुआ, श्रीसुदर्शनके द्वारा भी साम्प्रदायिक सेवा-सम्बन्धी अभिलाषा विकसित करनेका अच्छा अवसर मिला। श्रीनिम्बार्काङ्कमें श्रीनिम्बार्काचार्य-समय-विवेचन लिखा, जिससे एतद्विषयक जिज्ञासुजनोंको सन्तोषप्रद लाभ हुआ। इस पत्रमें कवि-परिचय आचार्य-चरित स्थान-परिचय आदि गद्य एवं पद्यों द्वारा कई अङ्कोंमें लिखता रहा जो सम्प्रदायके लिये लाभकारी सिद्ध हुईं। कुछ दिनों तक सभाने इस पत्रका संपादन भार भी सौंपा, जिसे पूर्ण जिम्मेवारीके साथ सम्पन्न किया।

संप्रदायमें, सांप्रदायिक रसिक एवं कवि महानुभावों द्वारा रचित वाणी एवं काव्योंकी बहुलता, रचना-गम्भीरता देखकर मुझे अति प्रसन्नता हुई। इसी अवसर पर मिश्रबन्धु-विनोद, हिन्दी साहित्यका इतिहास, आलोचनात्मक इतिहास, व्रजमाधुरीसार आदि देखा, इनमें यद्यपि सांप्रदायिक कवियोंके चरित एवं रचनापर सन्तोषजनक प्रकाश हैं; किन्तु मुझे कमी प्रतीत हुई। मिश्रबन्धु विनोदमें कई प्रसिद्ध कवियोंके सम्प्रदाय-निर्णय-विषयमें भूल प्रतीत हुईं और सम्प्रदायमें कवि-चरित-पोत संग्रहका अभाव अत्यन्त ही खटका, इसलिये श्रीनिम्बार्कमाधुरी नामसे कवि-चरित एवं, उदाहरणार्थ उनकी रचना संग्रह करना प्रारम्भ किया। कुछ दिन पश्चात् इस कार्यमें इतना व्यस्त हुआ कि सभा के मन्त्री एवं प्रधान-मन्त्री-पदसे भी मुझे स्तीफ़ा देना पड़ा।

उक्त ग्रन्थका अर्द्ध भाग हमने वृन्दावनमें लब्ध-प्रतिष्ठ-विद्वान, सर्वोपरि सम्प्रदाय-सेवी निम्न पूज्य महानुभावोंको दिखाया—पंडित श्रीकिशोरदासजी महाराज, पंडित श्रीअमोलकरामजी शास्त्री, व्रजविदेही महन्त श्रीधनञ्जयदासजी महाराज, बाबा श्रीमाधवदासजी महाराज, पण्डित महन्त श्रीकल्याणदासजी महाराज, वैद्य आचार्य श्रीउमाशंकरजी द्विवेदी; श्रीस्वामी बाबा रामचन्द्रदासजी महाराज, रसिकवर पण्डित श्रीवृजलालजी बोहरे। इन्होंने सम्मिलित रूपसे एक सम्मति-पत्र लिखकर देनेकी कृपा की, इसमें सांप्रदायिक सज्जनोंसे सहायता के लिये भी अपील की—वह इस प्रकार है—'श्रीनिम्बार्कमाधुरी ग्रन्थके सम्पादनमें विहारीशरणजीने प्रशंसनीय उद्योग एवं परिश्रम किया है। इसमें आचार्य-पाद एवं सांप्रदायिक रसिक भक्त, काव्य तथा वाणीकर्ता महानुभावोंके चमत्कार-पूर्ण चरित लिखे गये हैं। आचार्यपादोंके चरित प्रचारके संग ही वर्तमान काल के हिन्दी-प्रचारमें भी यह ग्रन्थ सहायक होगा। इससे व्रज भाषा-साहित्यकी एक महान् कमी पूर्ति होगी। अभी तक संप्रदायांतर्गत हिन्दी साहित्यमें इस प्रकारके अपूर्व संग्रहका पूर्ण अभाव था। इससे रसमाधुरी-मुग्ध समस्त रसिक और काव्यकर्ताओंके जीवनचरित उनकी सहस्रों वाणी और कविताओंके साथ आस्वादनके लिये एकत्र सुलभ होजायेंगे। यह सांप्रदायिक हिन्दी-साहित्यमें एक अमूल्य रत्न होगा। इसके प्रकाशनमें सहस्रों रुपये व्यय होंगे···। सांप्रदायिक महानुभावों! अवश्य आर्थिक सहायता देकर संप्रदाय एवं साहित्य-सेवामें अग्रसर हों।' यह अपील श्रीसुदर्शन 'वैष्णवसिद्धान्ताङ्क'में भी प्रकाशित कराई गई। इसी अवसर पर प्रकाशनार्थ आर्थिक-सहायताके लिये अपील करते हुए, अखिल भारतवर्षीय श्रीनिम्बार्क-महासभाके वर्तमान प्रधानमन्त्री

'श्रीनन्दकुमारशरणजीने भी साम्प्रदायिक वैष्णव महानुभावोंकी सेवामें एक निवेदन-पत्र लिखकर देनेकी कृपा की । --'श्रीनिम्बार्कमाधुरी-नामक ग्रन्थ, जिसमें श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायके आचार्य, रसिक महानुभाव एवं समस्त कवियोंके जीवन-चरित्र हैं, यह ग्रंथ ब्रह्मचारी श्रीविहारीशरणजीके द्वारा विशेष परिश्रमसे सम्पादन किया गया है। यह साम्प्रदायिक हिन्दी-साहित्य-प्रेमियोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है, जिसका प्रकाशित होना संप्रदाय के लिये लाभकारी सिद्ध होगा। इसलिये समस्त सांप्रदायिक महानुभावोंसे प्रार्थना है कि उचित सहायता प्रदान कर ग्रंथके प्रकाशनमें सहयोग दें।'

ग्रंथको प्रकाशित रूपमें दृष्टिगोचर होनेके लिये अति उत्कण्ठा थी, उस समय यह ग्रंथ ही जीवनका कर्त्तव्य-क्षेत्र था, प्रकाशनके लिये प्रत्येक प्रकारके कष्ट और परिस्थितिका सामना करनेके लिये प्रस्तुत था। इसके अतिरिक्त अन्य कार्य भार-से प्रतीत होने लगे। यह एक झंझटमय-जीवन से रहित तथा अनभिज्ञ व्यक्तिके लिये अनहोनी बात थी। क्योंकि बाल्या-वस्थामें विद्यार्थी-जीवनसे गृह-परित्याग करनेके पश्चात् साधुओंमें स्वतन्त्र विचरनेके अतिरिक्त इस प्रकारके झंझटमें नहीं पड़ा था। यद्यपि इसके संग्रह करनेमें सैकड़ों रुपये खर्च कर चुका था, किन्तु इसमें सहस्रोंकी आवश्यकता थी। पूर्ण रूपसे प्रकाशनके लिये कई सांप्रदायिक महंतोंसे चर्चा की, किन्तु निराश होना पड़ा, तब कई सांप्रदायिक बन्धुओंने मुझे थोड़ी-थोड़ी आर्थिक सहायता लेकर ही ग्रंथ प्रकाशित करनेके लिये सम्मति दी। इसलिये पूज्य साम्प्रदायिक महानुभावोंकी आज्ञा शिरोधार्य कर, आर्थिक-सहायता लेनेके लिये उद्यत हुआ। उक्त ग्रन्थके विषयमें दानदाताओंको समझानेके लिये श्रीनिम्बार्क-महासभासे एकसौ रुपये उधार लेकर लगभग १५० पृष्ठ तक ग्रंथ छपा लिया तथा श्रीसुदर्शनके कई अंकों द्वारा बार-बार अपील भी की। वृन्दावन कुम्भसे कुछ मास पूर्व यह कार्य प्रारम्भ किया, सर्वप्रथम टोपीवाली कुञ्जके महंत श्रीकुञ्जविहारीदासजी महाराजने ग्यारह रुपये देकर श्रीगणेश किया।

वोहरे श्रीवृजलालजीके शिष्य श्रीशिवप्रसादजी केडिया वृन्दावनमें आये हुए थे, उनसे मैंने इस ग्रन्थके प्रकाशनके सम्बन्धमें बातचीत की, उन्होंने कहा कि--'कलकत्ते आइये हमलोग सहायताके लिये कोशिश करेंगे।' यह स्मृति कई मासतक मनमें बनी रही। पुनः श्रीयुत गोपालजी (श्रीमान् सेठ जयलाल - हरगूलालजीकी वृन्दावनमें स्थित हवेली पर एक कार्यकर्ता हैं) से अनुमति ली, इन्होंने मुझे उत्साहित किया और दानदाता कई सज्जनोंके नाम लिखकर

भी देनेकी कृपा की। धर्मप्रिय, उत्साही सज्जन श्रीवासुदेवजीसे परिचय कराने की भी कृपा की। मैं छप हुए फारमोंको लेकर कलकत्ते गया, श्रीमान सेठ जयलालजीकी कोठी पर ठहरा। सेठ श्रीजयलालजी, श्रीरामजीलालजी मेरे उक्त कार्यसे अति प्रसन्न हुए, तथा सर्वप्रथम २१) रुपये प्रदान कर मेरे उत्साहको बढ़ाया। पुनः शिवप्रसादजी तथा वासुदेवजीकी सच्ची लग्न तथा परिश्रम द्वारा कलकत्तेसे तीनसौके लगभग रुपये हमें प्राप्त हुए, इस आधारसे मुझे विश्वास होगया कि ग्रंथ अवश्य छप जायगा। इसी अवसर पर मैं एक वार्षिक उत्सवके समय कलकत्तेसे वर्द्धमान गया, वहां महन्तजी महाराजने अपनी सहायता भेजनेकी वाक्य प्रदान किया, तथा कहा कि--'अपनी संप्रदाय में ऐसे ग्रंथकी आवश्यकता थी, आपने इस प्रकारके ग्रंथका सम्पादन कर कमी पूर्ति की है। इसे मैं स्वयं छपा देता, ऐसे किसी अन्य ग्रन्थके लिये अवसर आने दीजिये।' उसी अवसर पर उक्त उत्सवमें ही ओखड़ा-स्थलके महंत श्रीव्रजभूषणशरणदेवजी महाराजका भी आगमन हुआ था, आपने भी इसके विषयको समझकर बहुत ही प्रसन्नता प्रगट की। मैंने कलकत्तेसे वृन्दावन आकर ४६२ पृष्ठ तक ग्रंथ छपा लिया। पुनः आर्थिक समस्या अटकी। बृजेन्द्रप्रेस एक अर्थहीन प्रेस था, कागज़ एवं छपाईका व्यय प्रथम ही देना पड़ता था। ग्रंथ छपना बन्द होगया, पुनः पश्चिमकी यात्रा की। जयपुरमें श्रीनिम्बार्क-सत्संग मण्डलके सभापति माननीय श्रीमुकुन्ददेवजी वैद्यने छपे हुए फारमोंको देखकर ऐसी स्थितिमें उक्त कर्त्तव्य पर बहुत ही प्रसन्नता प्रगट की और कहा कि 'आपका कार्य आधुनिक समयानुसार है, सम्प्रदायमें हिन्दी जाननेवालोंके लिये श्रीकृष्ण-लीला-सम्बन्धी पद्य-ग्रंथोंकी बहुत ही कमी है। आचार्य निर्मित अनेक संस्कृत ग्रंथ छपे हुयेहैं, किन्तु उक्त ग्रंथका विषय बहुत ही रुचिकर एवं चित्ताकर्षक है। इससे अनभिज्ञ जिज्ञासुओंके लिये आचार्य-चरितके संग उनके द्वारा निर्मित पद-आस्वादनका भी अपूर्व लाभ होगा। ऐसे संग्रहको प्रकाशित कर संप्रदायके लिये एक अमूल्य रत्न देंगे।' वहांसे अजमेर गया, माननीय महन्त श्रीहरिशरणदेवजीने हर्ष प्रगट करते हुए बार-बार प्रशंसा कर मुझे बहुत ही उत्साहित किया। यहांके द्वितीय महन्त श्रीरामकृष्णदासजी महाराजने भी बहुत ही प्रसन्नता प्रगट की। इनकी सहायताके अतिरिक्त प्रसन्नता तथा प्रशंसा द्वारा मुझे बहुत ही उत्साह प्राप्त हुआ। मैं भ्रमण करते हुए नयाशहर (ब्यावर) पहुँचा, यहाँ प्रोफेसर श्रीरामप्रसादजी शास्त्री छपे हुए फारमोंको देख तथा ग्रन्थके विषयको समझकर बहुत ही प्रसन्न हुए और यथाशक्ति सहायता देनी भी स्वीकार की। पुनः मैं बम्बई प्रान्तमें भ्रमण करता हुआ; सीतानगर

(दामोह) पहुँचा। वहाँ रईस जिमींदार माननीय सेठ श्रीगिरिधारीलालजी के यहाँ चार मास तक रहता हुआ शेष ग्रन्थको लिखकर पूर्तिकी। वहाँसे छत्तर-पुर, पन्ना आदि स्थानोंमें भ्रमण तथा ग्रन्थ-सम्बन्धी-विषयों की खोज करता हुआ वृन्दावन आया। इस यात्रामें आर्थिक सहायताके लिये विशेष कोशिश नहीं की, हाँ, ग्रन्थके लिये बहुतकुछ सामिग्री प्राप्त हुईं।

वृन्दावनमें आने पर एक विकट परिस्थितिका सामना करना पड़ा। मैं ग्रंथ प्रकाशनके भारको 'भई गति साँप छछूँदर केरी' के जैसा सङ्कट समझता ही था, कि यहाँ व्यक्तिगत वैमनस्यकारी एक-दो स्वार्थी व्यक्तियोंने संप्रदायमें कलह कराकर संकटमें डाल दिया। यद्यपि महावाणी, जुगलशत, अष्टाचार्यों की वाणियोंके सैकड़ों पद मासिक-पत्र, विज्ञापन आदिमें छप चुके हैं, तथा पूर्णकेलिमाल, श्रीविट्ठलविपुलदेवकी पूर्ण वाणी; महावाणीके चालीस-पचास पद, युगलशतके तीस चालीस पद पुस्तकाकार रूपमें भी प्रकाशित होचुके हैं; किन्तु हमसे प्रतिद्वंदी व्यक्तियों-द्वारा कहा गया कि, तुमने क्यों छपाया? इसके लिये कई जनरल सभायें हुईं तथा कलहकारियोंके उद्योगसे बहुत ही अशान्ति फैली। कई वर्ष हमने प्रथम ही श्रीसुदर्शन एवं विज्ञापन द्वारा ग्रन्थकी नीति स्पष्ट कर दी थी; किन्तु किसीने एतद् विषयक आपत्ति नहीं की। जब ग्रंथ छपकर तैयार हो गया और छः-सात सौ रुपये खर्च होगये तब व्यक्तिगत वैमनस्य करने वाले स्वार्थी व्यक्तियोंने वैमनस्य फैलाया। सर्वप्रथमकी अपीलमें शब्द स्पष्ट थे-"सांप्रदायिक-काव्यकर्ता अन्य कवियोंके भी चरित जहाँ तक प्राप्त होसके हैं, समस्त समावेश हैं। कितने ही रसिकोंके सम्पूर्ण और सौ-सौ तो सभीकी चुनी हुई वाणियोंका संग्रह है।" कलहकारियोंके द्वारा इस ग्रन्थके छापने के विरुद्ध खूब आन्दोलन किये गये, सहायतायें रुकवाई गईं, वकीलों की जेवमें सैकड़ों रुपये भरे गये। इन कण्टकाकीर्ण-संकट-पथ से गामी होकर श्रीनिम्बार्कमाधुरी आपके हस्त-कमलों में है।

इन विरोधियोंके आन्दोलनसे ग्रंथ डेढ़ वर्ष तक रुका रहा। पैसा पासमें नहीं था। कुटिलों की कुटिलता के कारण सहायता देने वाले कतिपय व्यक्ति विरोधी होगये। विरोधियों द्वारा स्थान-स्थानसे पत्र-द्वारा सहायतायें रुकवाई गईं। बुन्देलखण्ड आदिसे आई हुई चिट्ठियाँ मेरे पास हैं — कि 'अमुक स्थानसे चिट्ठी आई है कि—आपके ग्रंथके लिये सहायता न दी जाय।' इन कारणोंसे इस ग्रंथके छपानेके प्रति मेरी अश्रद्धा हो गई।

समस्त छपे हुए फारमोंको श्रीयमुनाजीकी भेट करनेका अवसर देख रहा था। किन्तु अपनी कर्त्तव्य-असफलता और कई सौ रुपये चन्दा लेने पर शर्म आई, यत्र-तत्रसे सौके लगभग रुपये वसूल कर कार्य प्रारम्भ किया, किन्तु मेरे दुर्भाग्य-वस ब्रजेन्द्रप्रेस ही बिक गया। प्रेस मालिक खेमकाजीने प्रेसका नाम-निशान ही मिटा दिया, पुनः कई मासतक ग्रन्थ रुक गया। हिसाब करने पर मेरे १२०) रुपये लेनके निकले। ब्रह्मचारी श्रीनन्दकुमारशरणजी ने मुझसे कहा कि—"मुझे लिखकर दीजिये मैं रुपये वसूल करूँगा, सभासे प्रेसको रुपये देने हैं, वे आपको देंगे' मैंने विश्वास-पूर्वक वाकायदे दरख्वास्त लिखकर दे दी। मुझे कागज़ के लिए रुपयोंकी आवश्यकता थी। एक वर्ष इन रुपयोंकी प्रतीक्षामें रहा बार-बार कोशिश करने पर भी मुझे निराश होना पड़ा। तब मैं प्रथम सभासे लिये हुए १००) रुपये उधारके बदलेमें उक्त १२०) रुपयेका हिसाब छोड़ दिया। पश्चात् कई धनाढ्य साम्प्रदायिकोंसे कर्ज माँगा; किन्तु निराश होना पड़ा। इसलिये ग्रंथ छपानेसे पुनः अश्रद्धा होगई। किसीसे एक पैसा भी मांगनेकी इच्छा नहीं थी, किन्तु श्रीसर्वेश्वरकी इच्छा ही मानव-जीवन-सागरमें कर्त्तव्य-पोतकी पतवार है। मनुष्यकी इच्छा असत्य है, यही बात मुझ'किंकर्त्तव्य विमूढ़'के लिये हुई। रास-मंडलीके स्वामी श्रीचेतरामजीने १००) रुपये उधार दिये, जिससे मैं पुनः उत्साहित हुआ और अग्रवालप्रेसको उक्त रुपये देकर कार्य प्रारम्भ किया, पश्चात् कई उदार दानदाता सज्जनोंने और सहायता देने की कृपा की। यह ग्रंथ पूर्ण होकर आपके हस्त-कमलोंमें है। यह श्री जी की ही इच्छा है।

वृन्दावन।
श्रीनिम्बार्क-जयन्ती-उत्सव
कार्तिक-पूर्णिमा संवत् १९९७

—सम्पादक
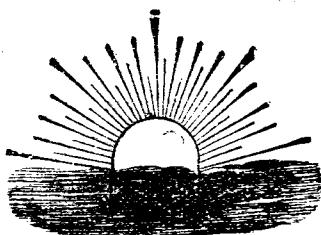
प्रस्तावना

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय अति प्राचीन है। इसकी उपासना तथा सिद्धान्तको आधुनिक लेखक एवं विद्वानोंने वैष्णवी संप्रदायोंमें सर्वापेक्षा प्राचीन माना है। यह संप्रदाय सनातन-धर्मके अन्तर्गत वेद, उपनिषद् पुराण, स्मृतिके सर्वोत्कृष्ट तत्त्व श्रीराधाकृष्ण भक्ति प्रचारमें सर्वाग्रगण्य है।

दिव्य-शृंगार-प्रवर्तक स्वउपास्यदेव इष्ट श्रीराधाकृष्णको ध्यान करते हुए भगवान श्रीनिम्बार्काचार्य लिखते हैं--

'स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम् ;
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्मपरं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्।
अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम्;
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्।

श्रीश्रीभट्ट, श्रीहरिव्यासदेव आदि रसिक आचार्योंने इसी आचार्य उपासनाका आश्रय लेकर अपनी दिव्य वाणी निर्मित की है। इनका रचनाकाल १२ वीं शताब्दीके मध्यसे प्रारम्भ होता है, पश्चात् दिव्य-रस वाणी रचनाकी स्मृति संस्थापित होकर धाराप्रवाह रचना होने लग जाती हैं। अन्य सम्प्रदाया-श्रित वैष्णव महाकवि इन्हींकी आधारावलंवन-भूत अपनी-अपनी रचना-द्वारा ब्रजभाषा-साहित्य-सागर लबालब भरदेते हैं। इनकी दिव्य वाणियोंमें वह शक्ति थी, वह ओज था, वह चमत्कार था--जिससे हिन्दी-भाषाभाषी जगत् चमत्कृत हो उठा, इनमें विद्युतवत् गति थी अपनी दिव्यतेजसे समस्त साहित्य-जगत्को प्रकाशमय कर दिया। वैष्णव भक्तोंके अतिरिक्त इनका प्रभाव अन्य कवियोंके ऊपर पड़ा, उन्होंने भी अपने रचनाका आधारभूत स्तम्भ शृंगार ही रखा। इन दिव्य शृंगारिक-रचयिता संतोंकी वाणियोंमें लौकिकताकी गंधतक नहीं है। इनकी वाणियोंमें तन्मयता है; अपनी आराध्य-आराध्या इष्ट श्रीराधाकृष्णके दिव्य लीलाओंकी प्रत्यक्षानुभूति है। इनका अन्तर्जगत् मानव-प्रकृतिसे भिन्न है। इनके विचार भिन्न हैं; स्थिति प्रवृत्ति

भिन्न हैं, इसलिये इन्होंने अपनी रचनाओंका दृश्य-जगत्‌पर क्या प्रभाव पड़ेगा ख्याल नहीं किया।

यह सम्प्रदाय एक अति प्राचीन तथा व्यापक संप्रदाय है। यह पाँच सहस्र वर्ष प्राचीनकालसे अबतक मानव-जगत्‌के उद्धार एवं धर्म-प्रचारका कारण होरही है। इसमें बड़े-बड़े विद्वान्, ऋषि, मुनि, योगी, सिद्ध संत होगये हैं। संस्कृतज्ञ प्राचीन विद्वान् आचार्योंने संप्रदायके साहित्य-सागरको वेदान्त, उपासना, भक्ति संबंधी साहित्य रचनाकर लबालब भरदिया है। श्रीनिम्बार्काचार्य, श्रीनिवासाचार्य, श्रीपुरुषोत्तमाचार्य, श्रीदेवाचार्य, श्रीकेशव-काश्मीरि भट्ट, श्रीअनंतराम, श्रीपुरुषोत्तमप्रसाद आदि इस संप्रदायके आचार्य तथा विद्वानोंसे भक्ति-प्रचार तथा साहित्य रचना होकर जगत्‌में ईश्वरीय-कार्य सिद्ध हुए हैं। द्वैताद्वैत सिद्धांत तथा श्रीराधाकृष्ण भक्ति-प्रचारके कारण मानव प्रकृतिको भगवत्‌से निकटस्थ-संबंध स्थापित करनेवालोंमें इनका सर्वोच्च स्थान रहा है। इनका प्रभावक्षेत्र अति विस्तृत था, इसी कारण साधारण जनताके अतिरिक्त अनेक राजा-महाराजा तथा भारत सम्राटतकोंने भी लाभ उठाया। कार्यक्षेत्र विस्तृत करनेके लिये और भी कई संप्रदायें इससे बहिर्गत हुईं। स्वामि श्रीहरिदास संप्रदाय, श्रीप्राणनाथ (निजानंदीय) संप्रदाय आदि। और भी एक-दो श्रीराधाकृष्ण-भक्ति प्रचारक संप्रदाय हैं जो अपने को स्वतंत्र मानती हैं— विभूती हैं इसी की।

व्रजभाषा-साहित्यमें सांप्रदायिक भाषा साहित्यका स्थान महत्वपूर्ण स्थान पर मार्तण्डवत् प्रदीप्त है। श्रीनिम्बार्क-संप्रदायके रसिक आचार्योंको ही काव्य रचना-सृति संस्थापन द्वारा आचार्यत्व प्राप्त है। श्रीश्रीभट्टजी श्रीहरिव्यासदेवजी आदि सांप्रदायिक रसिकोंने ही १३ वीं १४ वीं शताब्दीमें श्रीयुगलशत, श्रीमहावाणी रचनाकर साहित्य-सेवियोंके लिये दिव्य-रस-काव्य-मार्ग आविष्कार किया। इनमें वैष्णव उपासकोंके लिये इष्टदेवके दिव्य-रस लीला वर्णित हैं, इसलिये वैष्णवोंने इसके गम्भीर गवेषणात्मक भावोंको स्वयं ही आस्वादन किया, जनतामें इसके काव्योत्कर्ष-प्रचारपर ध्यान न देते हुए गुप्त रखा। इनके अनुयायियोंने इनके द्वारा रचित वाणियोंका ही आधार लेते हुए, बड़े-बड़े काव्य-साहित्य निर्माण किये। महाकवि श्रीविहारीलालजी ने सतसई रचकर संसारके लिये अन्यतम रत्न दिये। श्रीभगवतरसिक, महंत श्रीशीतलदास, महंत श्रीसहचरिशरण, आदि कवीन्द्रोंने अपनी अमूल्य वाणियें रचकर, रसिक-भक्तों, संसार-बंधनसे रहित होनेके इच्छुओं, गम्भीर-

काव्य-गुण-गरिमा प्रेमियों आदि जिज्ञासुओंके लिये सर्वश्रेष्ठ साहित्य दिये। कविवर श्रीदेव, श्रीरसिकगोविंद, श्रीघनानंद आदिने आचार्यत्व ग्रंथ प्रणयन द्वारा साहित्य-जगतको श्रेष्ठ-काव्य-रचना उत्कर्षका मार्ग बताया। भाषा-काव्य रचयिताओंमें इन्हें श्रेष्ठतम स्थान प्राप्त है। यदि माधुरीके श्रेष्ठ कवियों को साहित्य-जगत्में स्मरण न किया जाय तो भाषा-काव्यका स्थान विश्वमें अपना सर्वोपरि महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करनेंमें संकुचित होता है। इन कविवर तथा आचार्योंने दशांग-कवितापर अगणित ग्रन्थ रचे हैं, इनमें काव्य गुणोंका सर्वाङ्गपूर्ण वर्णन है। काव्य गुणोंके अतिरिक्त उक्त रसिकों द्वारा रचित वाणी एवं काव्योंमें शब्द-प्रयोग, छंद-लालित्य, चित्ताकर्षनके स्वाभाविक गुण आदिकों की भी विशेषता है। संतकाव्य-रचयिताओं की रचनामें दिव्य शृंगार वर्णनके अतिरिक्त नवधाभक्ति, उपासनाके पंचरस अंग, नाम, रूप, लीला, धाम, ज्ञान, वैराग्य आदि मानवीय-जगतके आत्मोत्कर्षके इन अंगोंके संमिश्रण इन काव्योंमें अति आकर्षकता है आत्म-तल्लीनताके अपूर्व मार्गकी अद्भुत अभ्युदयता है। इसीलिये इनके सच्चे गुणोंपर मुग्ध होकर आत्म न्योछावर करना पड़ता है और संसारके काव्योंमें श्रेष्ठतम स्थान स्वीकार करना पड़ता है।

इस ग्रंथमें रसिक और इनकी वाणियोंका वर्णन स्थान-स्थान पर आया है। यद्यपि शृंगार-रस वर्णनका स्थान भाषा काव्योंमें उपासना-रहस्योंमें, भगवद्सान्निध्य प्राप्तिकारी मार्गोंमें सर्वोपरि है, दिव्य-शृंगार-रहस्यसे साक्षर-जगत् अपरिचित नहीं है। तो भी ग्रन्थमें आगत विषय व्यक्तके लिये उल्लेख करना पड़ता है। वैष्णवोंमें श्रीकृष्ण उपासनाके पाँच अंग माने गये हैं—सख्य, दास्य, वात्सल्य, शान्त और शृंगार। इनमें शृंगार सर्वोपरि है। जिस प्रकार पृथ्वी-तत्त्वमें पंच तत्वोंकेसर्वगुण विद्यमान रहते हैं,वैसे ही शृंगारमें चतु: रस विद्यमान हैं। यह मार्ग भगवद्सान्निध्यके लिये सर्वोपरि अग्रगण्य है। इस रसकी उपासनाके लिये सखी-भाव (गोपी-भाव) में रहते हुए श्रीप्रिया-प्रियतमकी सेवा करनी पड़ती है। इसीलिये इस रसके उपासक रसिक नामसे अभिहित हैं। कतिपय 'त्वं स्त्री त्वं पुमानसि' जीवोंके इस प्रार्थनाके अनुसार भगवान्ने मोहिनी तथा देवी इत्यादि रूप बनाए। भगवान् शंकरने श्रीरासलीलामें प्रवेश करनेके लिये गोपी-भाव धारण किया। अनेक ऋषि-मुनियोंने श्रीकृष्ण-लीला रहस्यमें सम्मिलित होनेके लिये गोपी रूप धारणकिया इन्हें स्वयं भगवान्ने, इस अधिकारको प्राप्त करने का उपाय बताया-

'गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेया ऋषिजा गोपकन्यका:;
देव कन्याश्च राजेन्द्र न मानुष्य: कथञ्चन।'

इन साधन-सिद्धा गोपियोंमें ऋषि-रूपा भी विद्यमान । भगवान्‌के ही स्तुति-अनुसार उनके ऐकान्तिक-लीलामें प्रवेशाधिकार पानेके लिये सन्तोंने पुरुष-शरीरसे भगवत्कान्ताभाव धारण किया। क्योंकि पुरुषपनेका अभिमान ऐकान्तिक विहार-रहस्य-लीलानुसंधानमें बाधक हो सकता है। पुरुष, स्त्री और पुरुष दोनों भावोंका प्रतीक है भी। 'नाभावो विद्यते सतः' ज वस्तु है, वह किसी न किसी रूपमें कभी न कभी अवश्य प्रगट होगी। जो है ही नहीं वह कभी प्रगट नहीं हो सकता। कारणसे कार्य होना अनिवार्य है। यदि पुरुष शरीरमें स्त्री-भावकी चीजें न होती तो पुरुषसे स्त्री कभी प्रगट न होतीं। पुरुषमें स्त्री भावका सामान अवश्य रहता है यह मानना पड़ेगा। पुरुषके लिये कभी-कभी माता-पिता शब्द भी प्र-ोग होते हैं। उपासना और अभ्यासके द्वारा भी साधक उक्त भावको पूर्ण रूपसे प्राप्त कर सकता है। भगवद् वाक्योंका ही समन्वय समझकर ही श्रीप्रिया-प्रियतम-पद-पद्म-प्रेमी-मधुपोंने ऐकांतिक-विहार-रस-सेवा-स्वतंत्रताके लिये भगवत्कांता-भाव ग्रहण किया, इसीलिये ये रसिक और सखी नामसे पुकारे गये। जिन रसिक सांप्रदायिक आचार्योंने इस दिव्य-श्रृंगार रसकी उपासना की है और वाणियें निर्माण की हैं वे इनके आश्रितों-द्वारा नित्य सिद्धा अष्टसखी आदिके स्वयं अवतार माने गये हैं, इन्होंने अपनी वाणियोंमें इस स्वरूप-तत्वका वर्णन भी किया है। श्रीहितूजी, श्रीहरिप्रियाजी, श्रीललिताजी आदि का श्रीश्रीभट्टजी, श्रीहरिव्यासदेवजी, स्वामि श्रीहरिदासजी प्रभृतिके रूपमें प्रागट्य तथा स्वरूप-तत्वका वर्णन वाणियों भी पाया जाता है।

इनके उपास्यदेव अखिल-अंड-आधीश ब्रह्मांड-नायक, अनंत-ऐश्वर्य माधूर्य-मूर्ति, स्वभावतः दोष-रहित कल्याण माधुर्यादि अनंतगुण-राशि, चतुर्व्यूह एवं अन्य अवतारादि अंगी, स्वरूप, गुण, शक्ति-व्यापक ब्रह्म रुद्रादि कारणोंके कारण सर्वेश्वर-श्रीकृष्ण तथा सहस्त्र सखियों द्वारा परिसेवित, भक्तोंके अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि प्रदायिका, अनंत-गुण-राशि, माधूर्य-मूर्ति श्रीकृष्ण-प्रणयिनी-वामांगी श्रीराधिकाजी हैं। ये श्रीराधाकृष्ण, एकही वस्तु हैं रसिकोंके लिये आनंद-प्रदत्त-स्वरूप दो रूप से प्रगट हुये हैं—

'राधाकृष्णात्मिका नित्यं कृष्णोराधात्मको ध्रुवम्;
वृन्दावनेश्वरी राधा राधैवाराध्यते मया।'

'यः कृष्णः सापि राधा च या राधा कृष्ण एव सः ;
एकं ज्योतिर्द्विधा भिन्नं राधामाधव रूपकम् ।'

गर्गसंहितामें उभय तत्व एकताका निरूपण स्वयं भगवान्‌ने श्रीमुखसे किया है—

'ये राधिकायां त्वयि केशवे मयि भेदनं कुर्वन्ति हि दुग्ध शौक्ल्यवत् ;
त एव मे ब्रह्मपदं प्रयान्ति तदहैतुक स्फूर्जित भक्ति लक्षणाः ।'

इन्हीं श्रीनित्याविहारी श्रीप्रिया-प्रियतमकी सेवा तथा नित्य ऐकांतिक विहार-रस-आस्वादनके लिये संतोंने सखी-भावावेशमें दिव्य शृंगार-रस उपासना की है । रसिकोंने अपनी वाणी एवं काव्योंमें इन्हीं श्रीप्रिया-प्रियतम तथा सखियोंके परस्पर आमोद-प्रमोद, नित्यविहार और सेवा-संबंधी लीलाओं का वर्णन किया है । सांप्रदायिक वैष्णवोंने अधिकारियोंके अभावमें कई काव्य-गुण गर्भित महत्वपूर्ण उपास्य वाणियोंको गुप्त रखा । इनमें श्रीमहावाणी, श्रीयुगलशत, श्रीविहारिनदेवजी, श्रीनागरीदासजीकी वाणियें विशेष उल्लेखनीय हैं, तौभी लाखों वैष्णव इनका महत्व समझते हुए पाठ, गायन, मनन, ध्यान, पूजा आदि रूपमें उपासना करते हैं ।

जिस जाति और समाजके व्यक्ति, अपने आत्म-गौरव, देश-गौरव, जीवन-मरणकी समस्या, धर्म और पाप-पुण्य पर ध्यान रखते हुए, समाज तथा आत्म-उन्नतिके पथ पर अग्रसर होने की चेष्टा नहीं करते, वे ऊर्ध्वमुखी होकर रसातलमें गिरनेकी चेष्टा करते हैं, उनका अधःपतन होना अवश्य-म्भावी है । आधुनिक विश्वमें इतिहास भी एक ऐसी वस्तु है, जिसके द्वारा अपने पूर्व-पुरुषोंके महान् व्यक्तित्वका पाठ पढ़कर तथा उनके स्वाभाविक धर्म-पथसे परिचित होकर, उनके महत्वपूर्ण चरित्रोंके अनुसार कार्य करनेका हमें अच्छा अवसर मिलता है । हम अपने गौरवएवं स्वरूप-ज्ञानसे परिचित होकर अपने पूर्व-पथपर अग्रसर होनेकी कोशिश करतेहैं तथा वह मेरा स्वाभाविक -धर्म विदित होता है, इसलिये अपना इतिहास तथा पूर्व-पुरुष-परिचयसे परिचित होना परम कर्त्तव्य है । प्राचीन कालमें साम्प्रदायिक आचार्य एवं रसिकोंने 'आत्म चरितं न प्रकाशयेत्' के अनुसार अपना परिचय नहीं लिखा । कतिपय प्राचीन आचार्योंके परिचय किं वदन्ती,नाभाजीकृत भक्तमाल तथा अन्य लेखकोंके द्वारा निर्मित ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं । १७वीं शताब्दीमें श्रीरसिकविहारी मंदिरस्थ कविवर श्रीकिशोरदासजीने घोर परिश्रम किया । श्रीनिम्बार्क-सम्प्र-

दायमें केवल ये एकही सर्वोपरि महात्मा हुए । परमहंस बाबा श्रीहंसदासजीने श्रीनिम्बार्क-प्रभा नामक एक लघु भक्तमाल लिखकर भी एतद्विषयक बहुत ही उपकार किया है। उसमें कई कवियोंके भी चरित प्राप्त होते हैं । कवि एवं सन्त-चरित-माला संग्रह करनेवाले उत्साहित व्यक्तियोंकी सम्प्रदायमें अत्यन्त आवश्यकता है। अन्य सम्प्रदायों द्वारा सम्प्रदायके बड़े-बड़े महानुभावों के चरित एवं काव्य अपनाये जारहे हैं। साम्प्रदायिक आचार्य, लेखकों-द्वारा अन्य संप्रदायावलम्बी लिख दिये जाते हैं, किन्तु आप देखते रहते हैं, इसके प्रति अपना कर्त्तव्य कुछ नहीं समझते। यदि चार छः उद्योगी बन्धु कवि-चरित-पोत संग्रह करनेकी कोशिश करते तो आज कई निम्बार्कमाधुरी देखनेमें आतीं। इन्हीं रचयिताओंसे सांप्रदायिक-साहित्यकी इतिश्री नहीं है – न जाने कितने ही कवियोंके चरित और उनके काव्य समयके गर्भमें नष्ट होगये, विदेश और देशके पुस्तकालयोंमें छिपे हुए पड़े हैं, कमी है केवल उद्योगियों की। यदि मैं अन्य स्थानों तथा बाहिरके लेखकोंका सहारा न लेता तो साम्प्रदायिक विद्वानोंकी सहायता-विश्वास पर निराश होना पड़ता। इसलिये साम्प्रदायिक विद्वानोंसे प्रार्थना है कि अब भी उद्योग करो ! परिश्रम करो !! अपने आत्म-गौरवको विलीन मत होने दो । अमूल्य रत्नों को खड्ढे में मत पटको।

माधुरीमें आगत रचयिताओंको रचना-शैली तथा विषय-निरूपण की दृष्टिसे कई श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं। पद-रचयिता आचार्य एवं उनके अनुयायी रसिकोंमें श्रीश्रीभट्टजी, श्रीहरिव्यासदेवजी, श्रीविद्यापति, श्रीरूपरसिकदेवजी, श्रीवृन्दावनदेवजी, श्रीगोविंदशरणदेवजी, स्वामी श्रीहरिदासजी श्रीविहारिनदेवजी, श्रीनागरीदासजी उभय, श्रीपीताम्बरदेवजी, श्री रसिकदेवजी, श्रीभगवतरसिकजी, श्रीसुँदरिकुँवरिजी, श्रीसुदर्शनदासजी आदि प्रमुख हैं । इनकी रचनामें पदोंकी ही विशेषता है । इनके पदोंमें भाषा भावानुगामिनी तथा स्वाभाविक प्रवाहमय हैं, शुद्ध और समुचित रूपसे नियंत्रित हैं, सरलता है तथा अर्थ व्यक्त करनेमें चमत्कारपूर्ण हैं । भावानुभाव युक्त, एवं भाव गाँभीर्यता से भी परिपूर्ण हैं। श्लेष, अनुप्रास, अलंकार, माधुर्य-प्रासाद-गुण विभूषित भी हैं। पदोंमें पिंगलकी विशेषता नहीं, किन्तु वर्ण और मात्रा क्रम ठीक होते हैं। इनकी रचनाओंमें संगीतके अपूर्व नाद द्वारा भक्ति एवं श्रीराधाकृष्णके स्वरूपसागरमें तन्मयता-शक्तिका अद्भुत समन्वय है, स्वामी श्रीहरिदासजीके पदोंमें पिंगलका अभाव होते हुए भी इनकी विशेषता है। इन वाणियोंमें दिव्य-श्रृंगार श्रीराधाकृष्ण-विहार-वर्णनकी विशेषता है ।

श्रीरसिकगोविंद, श्रीकुलपति मिश्र, महाकवि श्रीकेशवदासजीने काव्य-रचना-शैली प्रतिपादन करते हुये, अलंकार काव्य-गुण नायक-नायिका-भेद आदिकी विशेषता रखी है। इनकी अन्य काव्यें भी साहित्यके सर्वसद्गुणालंकृत हैं। ये अपनी रचनामें विद्वता-शक्तिसे समस्त गुणोंको समावेश करनेमें पूर्ण सामर्थ हैं तथा सर्वोपरि सफलता प्राप्त कर सके हैं। श्रीघनानंद, श्रीरसखान, श्रीहठी, श्रीसीतलदास, श्रीग्वाल, श्रीदेव, श्रीसहचरिशरण आदिकी कवितामें प्रेम, विरह शृंगार, नख-शिख आदि वर्णित हैं। भाववैचित्र्य, रचनाशैली पर मुग्ध होकर नेति-नेति कहते बनता है। इनकी छन्द-योजनामें अति चमत्कार हैं। इनमें अपार कवित्व शक्ति है। श्रीपरशुरामदेवजी, श्रीतत्ववेत्ताजी श्रीरसिकदेवजी आदि ईश्वर-विभूति, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, आदि शास्त्रीय विषय कथनकी ओर विशेष अग्रसर हुए हैं। श्रीविहारीलाल, श्रीवृन्दकी रचना दोहे छंदोंमें हुई हैं किन्तु उद्देश्य भिन्न हैं। ये उभय महाकवि सर्वज्ञ हैं। महाकवि विहारीलालजी शृंगारी कवि हैं, किन्तु नखशिख, प्रकृति पर्यवेक्षण, प्रेम आदि विषयोंके प्रधान अंगोंका पूर्ण समावेश है। इस महाकविके बहुज्ञता पर आश्चर्य चकित होना पड़ता है। एक सतसई पर अपार साहित्य निर्माण होचुके हैं। महाकवि श्रीकिशोरदास श्रीस्वामिनीदास और लालकी रचनायें चौपाई दोहे में हुई हैं। श्रीकिशोरदासजीकी रचनामें विविध छंद भी हैं। इन तीनोंका उद्देश्य एक है, ऐतिहासिक-विषय अंकितका। ये संप्रदायके अन्य रचयिताओंसे भिन्न मार्ग पर हैं, इन्होंने आचार्य, देश, जाति, नृपति आदिका यश-गान करनेमें ही विशेषता समझी है। इस प्रकार माधुरीमें आगत अनेक बहुज्ञ कवियोंका गुणगान करनेके लिए बहुज्ञताकी आवश्यकता है। इनकी कथनमें अद्भुत चमत्कार है, अपूर्व शक्ति है। इनके द्वारा साहित्य एवं मानवीय जगत्में जो-जो उपकार हुये हैं, वे अकथनीय हैं।

हमने साहित्य एवं आलोचनाकी दृष्टिसे इस ग्रंथका संपादन नहीं किया है, न इसका उद्देश्य अन्य लेखकोंके साहित्य पर आक्षेप ही है। संप्रदायके आचार्य, रसिक एवं कवियोंके प्रति कवि परिचय, लेखकों द्वारा संतोषप्रद परिचय न पाकर ही उक्त ग्रन्थ संपादनके लिये प्रेरित हुआ हूं। यह श्रीनिंबार्क संप्रदाय भक्ति-प्रचारक समस्त संप्रदायोंसे पूर्व-प्रवर्तित प्राचीन संप्रदाय है। इसमें संवत् १३५२ से लेकर अबतक अनेक आचार्य, रसिक, भक्त, कवि-प्रभाकर होगये हैं। महिमंडलाचार्य महावाणीकर्ता कवि-सम्राट श्रीहरिव्यास-देवजीको साधारण श्रेणीमें लिख देना एवं उदाहरणमें अन्य कविका बनाया पद उद्धृत कर देना, श्रीविहारीलालजी, श्रीसुंदरिकुँवरिजी, श्रीरसिकदेवजी

आदि कई महाकवियोंके स्पष्ट आचार्यवंदना करते हुये भी श्रीराधावल्लभी लिख देना, श्रीभगवतरसिक, श्रीसहचरिशरणदेव, श्रीसीतलदास आदि कवि कौस्तुभोंको श्रीनिंबार्क संप्रदायांतर्गत होते हुये भी टट्टी-संप्रदाय लिखना, आचार्यवर श्रीप्राणनाथजीके इस संप्रदायान्तर्गत होते हुये भी इनके परिचयमें संप्रदायका नाम न लेना, लेखकोंके प्रति आदि भूलें देखकर ही उक्त ग्रंथ संपादन करनेके लिये प्रेरित हुआ हूं। इस प्रकारके विषयोंको सांप्रदायिक वैष्णव सुनते थे, किन्तु एतद्विषयक सुधार करनेकी किसीने चेष्टा नहीं की, मैंने आचार्य-पद-प्रेमकी दृष्टिसे उक्त कार्य स्वीकार किया। संप्रदायमें अपार भाषा साहित्य होते हुये भी सांप्रदायिक वैष्णव अपरिचित थे, उनका नाम तक भी नहीं जानते थे न ग्रंथ लेखक महानुभावोंके परिचयसे ही विज्ञ थे, इन कमियोंके कारण ही इस कार्यमें मेरा चित्त आकर्षित हुआ तथा इस प्रकारके संग्रहको आस्वादनकर्ता पाठकोंके लिये लाभप्रद भी समझा।

माधुरीमें कई ऐसे कवियोंके नाम आये हैं, जिसे देखकर कतिपय व्यक्ति सशंकित हो सकते हैं। उक्त रचियताओंके सिद्धान्त, उपासना, संबंध आश्रय आदिके विषयमें खोज तथा विचारके ही कमीका कारण है। कई अनभिज्ञ लेखकोंके भ्रमात्मक विचारको पढ़-पढ़कर ही उनके चित्तमें प्रसिद्ध बातें स्वाभाविक होरही हैं, किन्तु विचार तथा खोज-पूर्वक अध्ययन करके निर्णायक-विचार स्थिर करनेकी आवश्यकता है। श्रीवृन्दावन चतुः संप्रदायी वैष्णवोंका केन्द्र है, यद्यपि यहाँ साहित्य-गम्भीरता-अध्ययनशील विद्वान व्यक्तियोंका अभाव हो सकता है, किन्तु कवियोंकी उपासना तथा संप्रदाय-निर्णयके विषय यहाँ प्रयुक्त मात्रामें उपलब्ध होसकते हैं। श्रीजयदेव कवि इस संप्रदायान्तर्गत ही हैं किन्तु कई अनभिज्ञ अन्य संप्रदायावलंबी समझते हैं। इन्हें अनेक आधुनिक लेखक बंगला-विश्वकोषकर्ता तथा धुरन्धर विद्वानोंने श्रीनिंबार्क सम्प्रदायान्तर्गत ही लिखा है। ये संप्रदायान्तर्गत टट्टीस्थानकी परंपरायें आचार्य परंपरामें सम्मिलित हैं, तथा इनका निवासाश्रम जयदेव-केन्दुलीके विषयमें हाईकोर्टमें निर्णय होचुका है। उस विषय पर हमने छः-सात साल हुए एक ट्रैक्ट लिखी थी उसे जनताने निर्विरोध सत्य स्वीकार किया। स्वामी हरिदासजी पर कुछ विरोधियों द्वारा दलीलें की जाती हैं, इसका उत्तर इनके परिचयमें ही हैं। महाकवि श्रीकेशवदासजी अभक्त कवि होसकते हैं किन्तु इतने बड़े महाकवि अपार बुद्धिका सागर महान् भगवतत्व-विवेचकके हृदयमें भक्ति-अंकुर नहीं था, ऐसा विचार अत्युक्तिपूर्ण हैं, असम्भव है।

इनकी उपासना-संबंधी विचार जो रसिकप्रियामें नायक-नायिका भेदके लिये उल्लिखित हैं,वे सांप्रदायिक रसिकोंकी ही उपासना-आधार हैं। ये श्रीटट्टीस्थान के महात्मा महन्त श्रीनरहरिदासजीमें जितनी श्रद्धा रखते थे उतनी अन्य में नहीं। उक्त महात्मासे इनका गहरा संबंध था, इनके निवास स्थान गूढ़ों में केशवदास बराबर जाते थे और भगवच्चर्चा करते थे। श्रीनरहरिदासजी एक अच्छे पद रचयिता संत हैं। महाकविने उपासना-सम्बन्धी विचार इन्हींसे ग्रहण की, इसलिये हमने इन्हें संप्रदायाश्रित लिखा। बुन्देलखंडमें जातीयता वीरता जागृत करनेवाले संत स्वामी श्रीप्राणनाथजी स्वामी श्रीहरिदासजीके परम्परामें से हैं, इस संप्रदायके एक प्रधान आचार्य श्रीहरदेवदासजीने स्पष्ट लिखा है। निजानंदके आचार्य स्वामी श्रीगोपालदासजी महाराज द्वारा स्वीकृत है, देखिये कल्याण अंक ४ वर्ष १२ कार्तिक सं० १९९४ पृष्ठ ८९४। श्रीदेवजी यद्यपि अपनी संप्रदायके विषयमें स्वयं कुछ नहीं लिखा है; किन्तु इनकी उपासना स्पष्ट है। ये युगल प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णके उपासक थे, जो इस संप्रदायकी उपासना है। आधुनिक कई लेखकोंके विचार हैं कि ये श्रीराधावल्लभीय थे और कईने निम्बार्कीय स्वीकार किया है। मैथिल कोकिल महाकवि श्रीविद्यापतिजीके विषयमें उनके परिचयमें ही काफी विचार प्रगट कर चुका हूँ, पं० श्रीभागीरथजी झा न्याय वेदान्ताचार्य इनके वंशधरोंके पास श्रीमद्भागवतमें 'श्रीनिम्बार्कायनमः' लिखा हुआ देख आये हैं तथा इनके अधिकांश वंशधर ललाटमें सांप्रदायिक तिलक ही लगाते हैं। उस देशसे सांप्रदायिक प्रभावका अभाव तथा कई शताब्दी प्राचीन-काल तथा उपदेश जागृतिका कोई खास प्रबंध न होनेसे गृहस्थाश्रम झंझटमें संप्रदाय-संबंध भूल जाना स्वाभाविक है। ऐसे उदाहरण व्रजमें आपको विशेष मिलेंगे। लाखों व्यक्तियोंके ललाट पर तिलक देखेंगे, किन्तु संप्रदाय पूछने पर निरुत्तर हैं। श्रीरसखान भी श्रीवल्लभकुल-संप्रदायान्तर्गत प्रसिद्ध हो रहे हैं। '२५२ वैष्णवोंकी वार्ता' और '८४ वैष्णवोंकी वार्ता' श्रीगोकुलदासजी द्वारा विरचित नहीं हैं, ये पक्षपात-पूर्ण विचारावलंबी किसी वल्लभकुली वैष्णव द्वारा निर्मित हैं। इन्हें प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं मान सकते, हाँ, यदि श्रीनाभाजीकृत-भक्तमालके सदृश्य निष्पक्ष भक्त-गाथा होते तो अवश्य मान सकते थे। श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टजीने मथुरामें विश्रामघाट पर मुसलमानों द्वारा बाँधा हुआ यंत्र तोड़ा था, किन्तु वल्लभकुली वैष्णवों द्वारा लिखा गया है कि 'श्रीवल्लभाचार्यजीने तोड़ा था।' वार्ताओंके अधिकांश संतोंके विषयमें कुछ प्रमाण नहीं कि ये वल्लभकुलके ही वैष्णव थे। श्रीरसखानकी उपासनासे भी विदित

होता है, कि ये श्रृंगारी कवि थे --रसिक थे। महाकवि श्रीविहारीलालजीके संप्रदाय-निर्णय संबंधी-संशय अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ 'विहारीविहार' प्राप्त होनेसे तथा श्रीलोकनाथ सिलाकारी साहित्याचार्य, साहित्यरत्न, आदिके लेखों द्वारा निर्मूल होचुके हैं। देखिये 'विहारीदर्शन'। श्रीहठी श्रीराधाभक्त कविथे। इन्हें भी कई लेखकोंने श्रीराधा-गुणगानके कारण श्रीहितहरिवंशजीका शिष्य लिखा है, किन्तु लेखक संप्रदायोंकी उपासना-संबंधी विचारसे अलग रहे हैं। उन्हें ये विदित नहीं कि श्रीराधा-भक्त कौन-कौन-सी संप्रदाय हैं। इसी लिये उन्होंने ऐसी भूलें की हैं। श्रीहितहरिवंशजी तथा श्रीहठीजीके प्रागट्य एवं कविता-काल पर भी लेखकोंने विचार नहीं किया। उक्त प्रकारके कवियोंके विषय में पाठक स्वयं ही विचार और अध्ययनसे काम लें तो भ्रमात्मक विचारोंसे बहुत कुछ मुक्त होसकते हैं।

इस ग्रन्थके द्वारा मैंने संप्रदायानुयायी एवं सांप्रदायाश्रित कवियोंके परिचय एवं उनकी कविता-पोत एक सूत्रमें पोनेकी चेष्टा की है। इसके द्वारा न तो मुझे कवियोंके प्रति न्यूनाधिकता दिखानी है और न साहित्य-समालोचना करनी है। न इन विषयोंमें मेरी विशेष गम ही है, हाँ, संप्रदायकी भूलें, एवं कुछ कवियोंके साल-संवतोंकी वास्तविकता दिखानेकी अवश्य चेष्टा की है। मैं कोई भारी विद्वान् नहीं न मुझे ग्रंथ लिख-लिखकर प्रकाशित कराते रहने की सुविधायें ही प्राप्त हैं। आधुनिक साधु-समाजमें प्रायः इस प्रकारके झंझटों से सदैव बचते रहनेकी चेष्टा की जाती है। इस समाजमें रहते हुए ऐसे कार्यके तरफ प्रवृत्ति होनी एक असम्भव बात है विशेषता यह कि न विद्वान् न आर्थिक व्यवस्थाका प्रबन्ध होते हुए इस ग्रंथका प्रगट होना भगवदिच्छाका ही प्रतीक है तथा मेरी प्रारम्भिक जीवनके कुछ अनुभव एवं प्रथमकी पढ़ाई है। इस ग्रंथके प्रारम्भिक परिचयोंमें ऐतिहासिक, तथा साहित्यक शैलीका अनुसरण करनेकी चेष्टा मैंने नहीं की है, परिचय भक्तमाथाके तौर पर ही लिखे गये हैं। इनमें संवत्-साल ग्रंथोंके नाम आदि अवश्य प्रविष्ट हो गये हैं। उसके पश्चात् आगे चलकर लेखन-शैलीके क्रममें कुछ परिवर्तन है, उनमें साहित्य एवं जीवन-सिद्धान्त उपासनादि पर प्रकाश डालनेकी चेष्टा की है। उसके बाद कुछ प्रसिद्ध लोकान्तरित संत एवं कवि आते हैं। जिनमें कुछके प्रभाव तथा विभूतियोंके प्रत्यक्षदर्शी भी हूं, उनके जीवन पर भी कुछ विशेष नहीं लिख सका न गम्भीर साहित्योंकी बहुलता होते हुए उदाहरण ही उद्धृत कर सका, परिचयमें उदाहरणार्थ कुछ ही पद देने पड़े, क्योंकि स्थानके संकोच और संपादन

शैली परिवर्त्तनका भी कारण है। सांप्रदायिक-साहित्य-प्रचारकोंके विषयमें कुछ लिखना आवश्यक था। सांप्रदायिक साहित्य-सागरको इन्होंने अपने उद्योग तथा अपार परिश्रम द्वारा खोज और प्रकाशित कर-करके भरा है। माधुरीके कवि तथा इनसे सम्मिलित संबन्ध है, इसलिये इस ग्रंथको इनसे वंचित नहीं रख सका। वर्तमान रचयिताओंको भी इसमें सम्मिलित करना आवश्यक समझा क्योंकि ये प्राचीन आचार्योंके ही अनुयायी तथा उन्हींके आधारभूत-स्तम्भके सहारे चलनेवाले हैं तथा इतिहास ग्रंथोंमें भी वर्तमानके विषय अवश्य रहते हैं। वर्तमान-कालमें भारतके प्रत्येक भाषा-भाषी प्रान्त में अनेकानेक कवि हैं, समस्तको इसमें सम्मिलित नहीं कर सका, क्योंकि वर्तमानको सम्मिलित करनेका विचार नहीं था। जब ग्रन्थ समाप्त होने पर आया तो विचार परिवर्त्तनके कारण जहाँ तक हो सका शीघ्रतामें संग्रहीत कर लिया।

इस ग्रंथका कुछ हिस्सा लिख और छपजाने पर भी वर्षों प्रेसमें पड़ा रहा, उसके बाद पुनः छपना प्रारम्भ हुआ, पुनः किसी कारणसे वर्षों प्रेसमें फार्में विश्राम लिये फिर छपना प्रारम्भ हुआ। इतने लम्बे अर्सेमें भ्रमण तथा खोज होते रहे, इसलिये संपादन—शैलीमें परिवर्तन होना स्वाभाविक था, यही कारण है, लेखन-शैलीके कई ढङ्ग हो जानेका। संपादन प्रूफ-संशोधन चन्दा एकत्रित करने, आदिके समस्त भार मुझ एक व्यक्ति पर ही थे, इसलिये कार्य भारके कारण या आलस्य समझिये कई कवियोंके परिचय श्रीसुदर्शन कल्याण, में प्रकाशित तथा बाहिरके लेखकों द्वारा प्रेषित किसी प्रकारके बिना परिवर्तन एवं लेखन-शैली बदले वैसेही छपा दिये, ग्रंथमें कई ढंग होने का यह भी एक प्रमुख कारण है।

मुझे जिस प्रकार कवियोंकी कवितायें, परिचय आदि खोजके द्वारा प्राप्त होती गईं उसी अनुक्रमसे छपता गया। इसी कारणसे कई आचार्य एवं कवि ग्रन्थमें आगे पीछे होगये हैं। पाठक यह न समझें कि जो पीछे हैं वे न्यून हैं, और जो प्रथम हैं वे अधिक हैं। स्वामी श्रीहरिदासजी, श्रीस्वभूदेवाचार्यजी महाकवि बिहारीलालजी, आदि कई महानुभावोंके परिचय बहुत प्रथम आना चाहिये था, इसमें ये बातें नहीं हैं। कई स्थानों पर कविता शैली तथा परम्परा-प्रवाहमें भी चलना पड़ा है। यही कारण हैं, कि कई प्रमुख रचयिताओंके परिचय आगे पीछे हो गये हैं। न्यूनाधिकका विचार उनकी रचना व्यक्तित्व, साल-सम्वत् आदि विषयके अध्ययन करने पर आप स्वयं कर सकते हैं। इस बातका दिग्दर्शन करानेकी चेष्टा मैंने नहीं की। प्राचीन महानुभावोंके नामों

के पूर्व या पीछे पंडित, बाबू, साहित्याचार्य, साहित्यरत्न, न्यायाचार्य आदि उनके महान् आत्मशक्ति-युक्त तथा प्रकांड विद्वान् होते हुए भी लिखनेकी प्रथा नहीं थी। अर्वाचीन कुछ कवियोंके आगे पंडित, बाबा, महंत, गोस्वामी आदि उपाधियाँ जोड़ी हैं। मुझे ये भी अनुचित विदित हुए क्योंकि इनके नाममें उपाधियाँ होनेसे आचार्योंके नामोंमें क्या चाहिये समझ नहीं पड़ा। इसलिये आधुनिक लेखक तथा लोकान्तरित महानुभावोंके संबंधी सज्जन क्षमा करेंगे।

सांप्रदायिक साहित्य-प्रचारक ही आज संप्रदायके स्तम्भ हैं, इस जीर्ण-शीर्ण प्राचीन संप्रदायमें नवजीवन धारणकर, सुषुप्तिसे जागृत होने की शक्ति इन्होंने ही दी है। इन्होंने अपने अपार परिश्रम-द्वारा संप्रदायमें कतिपय विद्वान् उत्पन्नकर साहित्य, शास्त्र समझनेकी शक्ति प्रदान की है। इनके हृदयमें संप्रदायके प्रति प्रेमकी अविरल-धारा प्रवाहित है, अटूट श्रद्धा है, संप्रदायको उन्नति-पथपर अवलोकन करनेके लिये उत्सुक हैं। यदि उक्त ईश्वर-प्रेरित शक्ति अवनिपर उत्पन्न न होतीं तो आज संप्रदायकी अवस्था अतीव चिन्ताजनक होती। साहित्य द्वारा सांप्रदायिक-सेवा करनी आचार्योंकी आज्ञा है, आचार्योंके सत्कर्तव्य तथा सत्पथका अनुसरण हैं। यह भगवान् श्रीनारद तथा श्रीनिम्बार्काचार्यसे ही प्रचलित प्रथा है। आप सांप्रदायिक साहित्योंसे ही अपने जीवन-पथसे परिचित होते हुए, मानवीय वपुके वास्तविक ध्येयसे विज्ञ होते हैं। इसीलिये मैंने संप्रदायके जीवन-प्राण साहित्य सेवियोंसे इस ग्रंथको वंचित नहीं रख सका।

वर्तमान-रचयिता एक प्रकारसे प्रकारान्तरमें साहित्य-सेवी ही है। इनमें एक-से-एक बढ़कर उद्योगी उत्साही, सांप्रदायिक उन्नति अवलोकनके लिये उत्सुक हैं। इन्होंने स्वरचित तथा आचार्य-ग्रन्थ निर्माण और प्रकाशित कराकर संप्रदायकी सेवा संतोषजनक की है। इनके साहित्योंमें भी हम वही विषय पाते हैं जो आचार्यों-द्वारा निर्मित प्राचीन साहित्योंमें, इतिहासोंमें प्राचीनसे अर्वाचीन पर्यन्त प्रसंग आते हैं, इसीलिये मैंने माधुरीमें उक्त महानुभावोंको स्थान दिया।

प्राचीन महानुभावोंके जाति, वर्ण, गोत्र, आश्रय आदि जहाँतक उपलब्ध हो सके हैं, परिचयोंमें हमने स्थान दिये हैं। यद्यपि आचार्योंके जाति, वर्ण, गोत्रादि विवेचन हमारा धर्म नहीं, क्योंकि अपने वैष्णव-शास्त्रोंमें आचार्योंको ईश्वर माना है। वैसेही अर्वाचीन महानुभावोंके विषयमें विवेचन

करना हमारा धर्म नहीं। हमें तो उनके कर्तव्य तथा व्यक्तित्व पर ध्यान देना है, इसीमें हमारा श्रेय है, इसीमें कल्याण है। जिस वस्तुसे हमें लाभ नहीं उसके विषयमें विवेचन करना, समयका व्यर्थ अवहेलना करना है। यही हमें कुछ वर्तमान महानुभावोंके विषयमें व्यवहरित करनी पड़ी। जो संप्रदायमें सर्वोपरि कार्य किये हैं,गुरु,भगवान तद्वत् पूज्य हैं,उनके स्वरूपज्ञान पर ध्यान न देते हुए उनकी जाति, वर्णादि–विवेचन व्यर्थ समझा। यह शास्त्रकारोंकी आज्ञा भी नहीं। जो परिचय जहाँतक विदित थे वे लिख लिये।

कवि–परिचयोंके ऊपर एक-एक छप्पय दिये गये हैं। इस प्रकार छप्पय रखनेकी अभिलाषा मुझे व्रजमाधुरीसार देखकर उत्पन्न हुई। इनमें कई छप्पय तो श्रीनाभाजीकृत भक्तमालके हैं। कुछ छप्पय नव–भक्तमाल, उत्तरार्द्ध भक्तमाल से लिये हैं कई अन्य सुकवि महानुभावों–द्वारा निर्मित हैं। जहाँतक मुझे प्राप्त हो सके हैं, मैंने अन्य कवियों द्वारा निर्मित छप्पय ही परिचयके आदिमें रखनेकी चेष्टा की है। अन्य कवियों द्वारा निर्मित उपलब्धके अभावमें जिसके नीचे 'बिहारीशरण' या कुछ नहीं है, स्वनिर्मित रख दिये हैं। रत्नोंमें कौड़ियों को सम्मिलित करना, यह मेरी अनाधिकार चेष्टा है; किन्तु अभावमें शैली-रक्षाके लिये ऐसा करना अनिवार्य था; इसलिये पाठक क्षमा करेंगे।

ग्रन्थकी अशुद्धियोंको देखकर मुझे शोकातुर होना पड़ता है। ग्रंथ प्रस्तुत सफलताके प्रसन्नता पर आवरण आच्छादित हो जाता है यह मेरी अयोग्यता समझिये या लापरवाही। मैं प्रथम ही लिख आया हूं कि प्रूफ–संशोधन, चंदा एकत्रीकरन, लिखना आदि भार अकेले मुझपर ही थे, तिसपर बाहिर भ्रमण, झगड़े झंझट, प्रेसवालोंपर अदवावके कारण उनकी दलीलें, सन्मुख थीं। प्रेसोंने कितने ही अवसर पर एकवार प्रूफ संशोधन करने पर ही कार्यके अभावमें मेटर छाप दिये। कईवार प्रेस मैनेजरोंने ही प्रूफ देखकर छपवा दी। मेरे यहाँ नहीं रहने पर एक-दो अन्य वैष्णवोंने प्रूफ पढ़ा, उसमें भी अशुद्धियाँ रह गईं, आदि असुविधाओंके कारण ग्रंथमें अशुद्धिओं की भरमार है। कई स्थानोंमें 'स' के जगह 'श' और 'श' के जगह 'स' होगये हैं। 'का' के स्थानमें 'की' और 'की' के स्थानमें का है। कई जगह स्त्रीलिंग पुल्लिंगकी विभक्तियों तथा विशेष्य विशेषणोंमें भी अशुद्धियां हैं। भूल होना मनुष्यका स्वाभाविक–धर्म है, तिसपर भी मैं अविद्वान व्यक्ति। इन अशुद्धियों को विज्ञ पाठक सुधारकर पढ़ें, तथा मेरी लापरवाही तथा अयोग्यता पर क्षमा प्रदान करने की कृपा करें। यह मेरा प्रथम-प्रयास है, इसके दूसरे संस्करण

तथा आगामी अन्य ग्रंथों द्वारा सांप्रदायिक-सेवामें बहुत कुछ भूल सुधार होने की आशा है।

इस ग्रन्थका आकार असुविधायें तथा मुझ जैसे अयोग्य व्यक्ति द्वारा संपादन होते हुए भी बड़ा होगया है; किन्तु कवियोंके अपार गंभीर काव्यों, आत्मशक्ति पूर्ण चमत्कारिक-जीवन, अद्भुत व्यक्तित्व, मानवीय सृष्टिमें ईश्वरीय कार्य-साधन, महानता आदि विशेषतायें देखकर इस ग्रंथके क्षुद्रता पर ध्यान देते हुए दुखी होना पड़ता है। यदि सांप्रदायिक विद्वज्जनों द्वारा कुछ लंबे समयसे एतद्विषयक खोज तथा अविष्कार होते तो एतद्विषयक प्रत्येक प्रकारके महान उन्नतिके अवस्थाको देखकर आश्चर्य चकित होना पड़ता। यदि काव्य-प्रेमी समस्त विद्वज्जन इन कवियोंके जीवन तथा साहित्योंपर मनन पूर्वक अध्ययन करके कुछ लिखनेकी चेष्टा करें तो आशातीत उन्नति होकर इस आकारके कई वृहद् ग्रंथ तैयार होजानेकी आशा है। यह मेरा प्रयास एक मेढकके द्वारा समुद्र-लंघन चेष्टाकी अपेक्षा कुछ अधिक महत्वपूर्ण नहीं। इसके लिये यथेष्ठ समयकी भी आवश्यकता है। एक व्यक्ति द्वारा इस कार्यके लिये जितना समय मिल सका वह संतोषप्रद नहीं। क्योंकि संप्रदायमें एतद्-विषयक मसालाकी कमी है। यदि विशेष लम्बे समयसे सामिग्री प्राप्त होती रहतीं तो यह कार्य विशेष सरल होजाता। यह कार्य एक व्यक्ति द्वारा ही कपड़ा बनानेके लिये खेत जोतने, बोने, सींचने, रखवाली करने, रुई निकालने, ओटने, कातने, अच्छा सूत बनाने और कपड़ा बनाने के सदृश्य है, फिर अच्छा कपड़ा बननेकी आशा कहाँतक की जा सकती है। सांप्रदायिक हिन्दी-साहित्यके दुर्भाग्यसे यह कार्य मुझे ही करना पड़ा। इसलिये यह ग्रंथ विद्वज्जनोंके विचारसे अयोग्य बना है। इसकी कई कठिनाइयाँ भी प्रधान कारण हैं। इसकी सामिग्री एकत्र करनेके लिये अपार परिश्रम करना पड़ा, क्योंकि यहाँ न तो कोई पुस्तकालय, न संग्रह-सुविधाके लिये प्रधान व्यक्तियों पर प्रभाव, आर्थिक-अभाव आदि कई कठिनायें सन्मुख थीं। कई सज्जन तो अपने यहां रखी हुई वाणियाँ दिखानेमें भी कंजूसी करते हैं। इस ग्रंथसे संप्रदायमें कुछ लाभ हुआ तो मैं अपनेको धन्य समझूँगा। क्योंकि यह एक अयोग्य व्यक्तिका प्रयास है। भारी विद्वानोंके ग्रन्थोंमें भी त्रुटियोंका रह जाना स्वाभाविक है, इसलिये इसमें जो कुछ त्रुटियाँ रह गई हों, उसे पाठकवृन्द क्षमा करेंगे।

वृन्दावन
श्रीनिम्बार्क-जयन्ती-उत्सव
कार्तिक पूर्णिमा १९९१

निवेदक—

सम्पादक—

विषय-सूची

श्रीनिम्बार्क-साहित्य--प्रचारक —

नाम		पृष्ठ
८६-पं० श्रीदुलारेप्रसाद शास्त्री...	....	७५५-७५७
८७-महन्त पं० श्रीकल्याणदासजी	...	७५७-७६२
८८-श्रीगोपालदासजी ...	....	७६३-७६४
८९-महंत श्रीभगवानदासजी	...	७६५-७६६
९०-महंत श्रीमधुसूदनशरणदेवजी	...	७६७-७६८
९१-पंडित श्रीविहारीदासजी त्यागी	...	७६८-७७०
९२-बाबा श्रीरामचंद्रदासजी ...	...	७७१-७७३
९३-ब्रह्मचारी श्रीरामचरणदासजी	....	७७४-७७४
९४-ब्रह्मचारी श्रीराधेश्यामजी ...	...	७७४-७७५
९५-बाबा श्रीनंदलालदासजी ...	...	७७६-७७६

वर्तमान-रचयिता —

९६-बाबा श्रीमाधवदासजी ...	...	७७७-७७९
९७-मुखिया श्रीगोपालदासजी....	...	७८०-७८१
९८-श्रीदानविहारीलालजी शर्मा	...	७८२-७८२
९९-महंत श्रीकुञ्जबिहारीदासजी	...	७८३-७८४
१००-वैद्य श्रीउमाशंकरजी द्विवेदी ...	....	७८५-७८६
१०१-पंडित श्रीगिरिराजजी ...	...	७८६-७८७
१०२-गो० श्रीमन्नूलालजी ...	...	७८७-७८८
१०३-पंडित श्रीव्रजवल्लभशरणजी	...	७८८-७८९
१०४-पंडित श्रीजगदीशचंद्रजी वैद्य शास्त्री	...	७८९-७९०
१०५-मुखिया श्रीकुञ्जविहारीदासजी	...	७९०-७९१
१०६-श्रीगिरिधारीलालजी ..	....	७९६-७९४
१०७-श्रीमदनमोहनशरणजी ...	...	७९४-७९५
१०८-महंत श्रीव्रजभूषणशरणदेवजी	...	७९५-७९७
१०९-ब्रह्मचारी श्रीयमुनाशरणजी	...	७९७-७९८
११०-श्रीमधुरासखी ...	....	७९८-८००
१११-श्रीचौथमलजी गिरदावर...	....	८००-८०१
११२-पंडित श्रीगोविंददास शर्मा	...	८०१-८०२

* श्रीराधासर्वेश्वरो जयति *

श्रीनिम्बार्क-माधुरी

श्रीजयदेव कवि

* छप्पय *

जयदेव कवि-नृप-चक्कवै खंडमंडलेश्वर आन कवि।
प्रचुर भयो तिहुंलोक गीतगोबिन्द उजागर;
कोककाव्य नवरस सरस श्रृंगार को आगर।
अष्टपदी अभ्यास करै तिहि बुद्धि बढ़ावै;
राधारमण प्रसन्न सुनत तहां निश्चय आवै।
संत-सरोरुह-खंड को पदमावति सुखजनक रवि। भ०

संस्कृत-भाषा के कवि-चक्रवर्ती भक्तराज श्रीजयदेवजी का जन्म बंगाल में स्थित किन्दुविल्व नामक ग्राम में हुआ था। यह स्थान अद्यावधि पर्य्यन्त श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के विरक्त-महन्त के आधीन है। इनके गुरु का नाम श्रीयशोदानन्दनदेव था। ये उस समय श्रीनिम्बार्क सम्प्रदायन्तर्गत एक प्रसिद्ध महात्मा थे और ब्रज में निवास करते थे। श्रीहरि आज्ञा से इन्होंने किन्दुविल्व में ही जाकर श्रीजयदेवजी को शिष्य किया था। माता पिता के परम-धाम-प्रवास के पश्चात् श्रीजयदेवजी समस्त घर-बार परित्याग कर, श्रीजगन्नाथधाम में निवास करने लग गये थे। इन्होंने हिन्दुस्तान के समस्त तीर्थों में पर्य्यटन किया था, तथा ब्रज-जात्रा भी की थी। ये परमविरक्त महात्मा थे। इन्हें कईएक विद्वानों ने श्रीनिम्बार्काचार्य का शिष्य लिखा है, किन्तु साम्प्रदायिक-परम्परा-ग्रंथ और समय मिलान से यह निराधार ठहरता है। श्रीनिम्बार्काचार्य, विक्रम संवत् से

बहुत पहिले हुए हैं और ये ग्यारहवीं शताब्दी में। इनकी कविता महाकवि चन्दवरदाई और अन्तिम हिन्दू-भारतसम्राट् पृथ्वीराज के समय में ही भारतवर्ष में प्रसिद्ध हो चुकी थी। चन्दवरदाई ने पृथ्वीराजरायसा में कवि बन्दना में लिखा है—

"जयदेव अठं कवि कव्विरायं जिनैं केवल कीर्ति गोबिन्द गायं।"

नाभाजी ने स्वरचित भक्तमाल में इनका परिचय एक छप्पै में दिया है; उसके टीका में प्रियादासजी ने कुछ विस्तृत रूप में लिखा है।

इनका परिचय आलोचनात्मक ढंग से ऐतिहासिक विषय को दिखाते हुये हिन्दीसाहित्यका-आलोचनात्मकइतिहासकार श्रीरामकुमारवर्मा बी०ए० लिखते हैं—"जयदेव का जीवन-वृत अधितर नाभादास के भक्तमाल और प्रियादास द्वारा उसकी टीका से ज्ञात होता है *। नाभादास के भक्तमाल में जयदेव का परिचयमात्र है, प्रियादास के टीका में जयदेव के जीवन पर कुछ अधिक प्रकाश डाला गया है। इनके जीवन की अधिकांश घटनाएं आलौकिक हैं और वे अधिकतर जनश्रुति के अधार पर ही हैं। इनके जीवन के विषय में प्रामाणिक रूप से यही कहा जा सकता है कि इनका जन्म, किन्दुविल्व वीरभूमि बङ्गाल में हुआ था। इनके पिता का भोजदेव और माता का नाम राधादेवी, रामादेवी था। बङ्गाल के राजा लक्ष्मणसेन के दरबार मे इन्होंने बड़ी प्रसिद्धी पाई। राजा लक्ष्मणसेन का समय सन् ११७० से १२२७ है, अतः जयदेव का समय भी यही समझना चाहिए। श्रीभक्तमाल सटीक के बार्तिक प्रकाशकार श्रीसीतारामशरन (भगवानप्रसाद) ने जयदेव का समय सन् १०२५ से १२५० ई० अर्थात् संवत् १०८२ से ११०७ के मध्य माना है। मानियर विलियम्सने जयदेव का समय ईसा की बारहवीं शताब्दी माना है। इतिहास के सत्य से मेकालिफ़ के द्वारा दिया गया समय ठीक ज्ञात होता है। लक्ष्मणसेन के राज्यारोहण का समय सन् १११६ दिया गया है। मुहम्मद बिनबख्तियार ने बिहार पर सन् ११९७ में चढ़ाई की थी। उसके पूर्व लक्ष्मणसेन की मृत्यु होगई थी। अतः लक्ष्मणसेन का राजत्वकाल सन् ११९७ के पूर्व मानना चाहिए। ऐसी परिस्थिति में सन् ११७० सम्वत् १२२७ में जयदेव का लक्ष्मणसेन के संरक्षण में रहना

---

*इनकी विस्तृत जीवनी श्रीकिशोरदास कृत निजमतसिद्धान्त में है।

सम्भव है, अतः जयदेव का समय विक्रम की तेरहवीं ही शताब्दी का प्रारम्भ मानना चाहिए। प्रियादास ने जयदेव के वैराग्य, पद्मावती से विवाह, गृहस्थाश्रम, गीतगोविन्द की रचना-ढङ्ग मिलन, पद्मावती की मृत्यु और पुनर्जीवन आदि प्रसंगों पर विस्तार में लिखा है जिनमें अनेक अलौकिक घटनाओं का मिश्रण है। पर इतना निश्चित है कि जयदेव ने गीतगोविंद की रचना संस्कृत में लक्ष्मणसेन के राजत्वकाल ही में की थी।

गीतगोविंद से जयदेव ने श्रीराधा और श्रीकृष्ण का मिलन, श्रीकृष्ण की मधुर लीलाएँ और प्रेम की मादक अनुभूति सरस और मधुर शब्दावली में लिखी है। गीतगोविंद के द्वारा श्रीराधाजी का व्यक्तित्व पहलीवार मधुर और प्रेमपूर्ण बनाकर साहित्य में प्रस्तुत किया गया है। गीतगोविंद की पदावली मधुर हैं। उनमें कामदेव के वाणों की मीठी पीड़ा है। कीथ, गीतगोविन्द की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि उसकी शब्दावली इतनी मधुर और भावों के अनुकूल है कि- उसका अनुवाद अन्य किसी भाषा में ठीक तरह से होही नहीं सकता। जयदेव ने संस्कृत में गीतगोविंद की रचना कर, अपने भाषाधिकार और भाव-प्रदर्शन की कुशलता का परिचय अवश्य दिया पर हिंन्दी में उन्होंने अपनी यह कुशलता नहीं दिखलाई। अपने अनुपम वाग्विलाश से उन्होंने विद्यापति और सूरदास जैसे महान् कवियों को प्रभावित अवश्य किया पर वे स्वयं हिंदी में उत्कृष्ट कोटि की रचना नहीं कर सके। संस्कृत की कोमलकांत पदावली में उन्होंने जिस सङ्गीत की सृष्टि अपने काव्य गीतगोविंद में की वह हिंदी में नहीं हो सकी। संस्कृत के गीति-काव्य गीतगोविंद अमर है। उसमें यमक अनुप्रास से जिस प्रकार भावव्यंजना की गई है। वह अन्यत्र दुर्लभ है...। गीतगोविंद में अध्यात्मिकता की विशेष छाप नहीं है लौकिक श्रृङ्गार से चाहे अध्यात्मिकता का संकेत भले ही मान लिया जाय। कामसूत्र के संकेतों के आधार पर श्रीराधाकृष्ण का परिरंभन है क्रीड़ा है। इस क्रीड़ा में ही रहस्यवाद का संकेत आलोचकों द्वारा माना गया है। जयदेव हिंदी में उत्कृष्ट कोटि की रचना नहीं कर सके। उनके एक दो पद गुरुग्रंथसाहब में अवश्य पाए जाते हैं। जो भाव और भाषा की दृष्टि से अत्यन्त साधारण हैं। जयदेव

के ऐसे पद, श्रीगुरुग्रंथसाहबजी की राग गुर्जरी और राग मारू में ही मिलते हैं। उनकी हिन्दी-रचना बहुत कम देखने में आती हैं। परिचय के लिए इनका रागमारू में एक पद इस प्रकार है—

चन्द सत भेदिया नाद सत पूरिया सूर सत खोज सादतु कीया।
अवलथलु तोड़िया अचल चल थापिया अघड़ घड़िया तहाँ अपीउँ पीया॥
मन आदि गुण आदि वखानिया तेरी दुविधा दृष्टि समानियां।
अरधिकौ अरधिया सरधिकौ सरधिया सलिलकौ सलिल समानि आइया॥
वदति जवदेव जयदेवको रंमिया ब्रह्म निर्वाण लवलीन पाइया।

इस पद में न तो जयदेव का भाषा-माधुर्य है और न भाव सौंदर्य। जयदेव ने गीतगोविन्द में श्रीकृष्ण और श्रीराधा के प्रेम का कोमल और विलासपूर्ण वर्णन किया है, उसकी छाया भी इस पद में नहीं है। यह पद तो निर्गुण-ब्रह्म की शक्ति संपन्नता के विषय में है। अतः जयदेव ने यद्यपि हिन्दी में संस्कृत की मधुर पदावली के समान कोई रचना नहीं की, तथापि उन्होंने हिंदी के कवियों को श्रीराधाकृष्ण संबन्धी रचना करने के लिए प्रोत्साहित अवश्य किया। इस क्षेत्र में वे हिंदी के कवियों के लिए आधार स्वरूप हैं। उनका सबसे अधिक प्रभाव विद्यापति पर ही ज्ञात होता है···। गीतगोविंद में से कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं—

[मालवरागेणरूपकताले]

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम् ; विहितवहित्रचरित्रमखेदम्।
केशव धृतमीनशरीर जय जगदीश हरे॥
क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे ; धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे।
केशव धृतकच्छपरूप जय जगदीश हरे॥
वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना ; शशिनि कलंककलेव निमग्ना।
केशव धृतसूकररूप जय जगदीश हरे॥
तव करकमलवरे नखमद्भुतशृंगम् ; दलितहिरण्यकशिपुतनुभृंगम्।
केशव धृतनरहरिरूप जय जगदीश हरे॥
छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन ; पदनखनीरजनितजनपावन।
केशव धृतवामनरूप जय जगदीश हरे॥

क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापम् ; स्नपयसि पयसि शमितभवतापम् ।
केशव धृतभृगुपतिरूप जय जगदीश हरे ॥
वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयम् ; दशमुखमौलिबलिं रमणीयम् ।
केशव धृतरघुपतिरूप जय जगदीश हरे ॥
वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभम् ; हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम् ।
केशव धृतहलधररूप जय जगदीश हरे ॥
निंदसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम् ; सदयहृदय दर्शितपशुघातम् ।
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे ॥
म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालम् ; धूमकेतुमिव किमपि करालम् ।
केशव धृतकल्किशरीर जय जगदीश हरे ॥
श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारम् ; शृणु सुखदं शुभदं भवसारम् ।
केशव धृतदशविधरूप जय जगदीश हरे ॥

[गुर्जरीरागेण प्रतिमंठताले]

श्रितकमलाकुचमंडल धृतकुंडल ए; कलितललितवनमाल जयजय देव हरे ।
दिनमणिमंडलमंडन भवखंडन ए ; मुनिजनमानसहंस जयजय देव हरे ।
कालियविषधरगंजन जनरंजन ए ; यदुकुलनलिनदिनेश जय जय० ।
मधुमुरनरकविनाशन गरुडासन ए ; सुरकुलकेलिनिदान जय जय० ।
अमलकमलदललोचन भवमोचन ए ; त्रिभुवन भवननिधान जय० ।
जनकसुताकृतभूषण जितदूषण ए ; समरशमितदशकंठ जय जय० ।
अभिनवजलधरसुन्दर धृतमंदर ए ; श्रीमुखचन्द्रचकोर जय जय० ।
तव चरणे प्रणता वयमिति भावय ए ; कुरु कुशलं प्रणतेषु जय० ।
श्रीजयदेवकवेरिदं कुरुते मुदम् ; मंगलमुज्ज्वलगीतं जय जय देव हरे ।

[वसंतरागेणरूपकताले]

ललितलवंगलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे ;
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे ।
विहरति हरिरिह सरसवसंते ;
नृत्यति युवति जनेन समंसखि विरहिजनस्य दुरंते । ध्रु व०
उन्मदमदनमनोरथपथिकवधूजनजनितविलापे ;

अलिकुलसंकुलसुमनसमूहनिराकुलबकुलकलापे ।
मृगमदसौरभरभसवशंवदनवदलमालतमाले ;
युवजनहृदयविदारणमनसिजनखरुचिकिंशुकजाले ।
मदनमहीपतिकनकदंडरुचिकेसरकुसुमविकाशे ;
मिलितशिलीमुखपाटलिपटलकृतस्मरतूणविलाशे ।
विगलितलज्जितजगदवलोकनतरुणकरुणकृतहासे ;
विरहिनिकृन्तनकुन्तमुखाकृतिकेतकिदन्तुरितासे ।
माधविकापरिमलललिते नवमालतिजातिसुगन्धौ ;
मुनिमनसामपिमोहनकारिणितरुणाकारणबन्धौ ।
स्फुरदतिमुक्तलतापरिरम्भणमुकुलितपुलकितचूते ,
वृन्दावनविपिने परिसरपरिगतयमुनाजलपूते ।
श्रीजयदेवभणितमिदमुदयतु हरिचरणस्मृतिसारम् ;
सरसवसन्तसमयवनवर्णनमनुगतमदनविकारम् ।

[गुणकरीरागेणरूपकताले]

पश्यति दिशिदिशि रहसि भवंतम् ; त्वदधरमधुरमधूनि पिबंतम् ।
नाथ हरे जय नाथ हरे सीदति राधा वासगृहे ॥ ध्रु० ॥
त्वदभिसरणरभसेन वलंती ; पतति पदानि कियंती चलंती ।
विहितविशदबिसकिसलयवलया ; जीवति परमिहतव रतिकलया ।
मुहुरवलोकितमंडनलीला ; मधुरिपुरहमिति भावनशीला ।
त्वरितमुपैति न कथमभिसारम् ; हरिरिति वदति सखीमनुवारम् ।
श्लिष्यति चुंबति जलधरकल्पम् ; हरिरुपगत इति तिमिरमनल्पम् ।
भवति विलंबिनि विगलितलज्जा ; विलपति रोदति वासकसज्जा ।
श्रीजयदेवकवेरिदमुदितम् ; रसिकजनं तनुतामतिमुदितम् ।

श्रीनिवासाचार्यजीसे श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी पर्यन्त
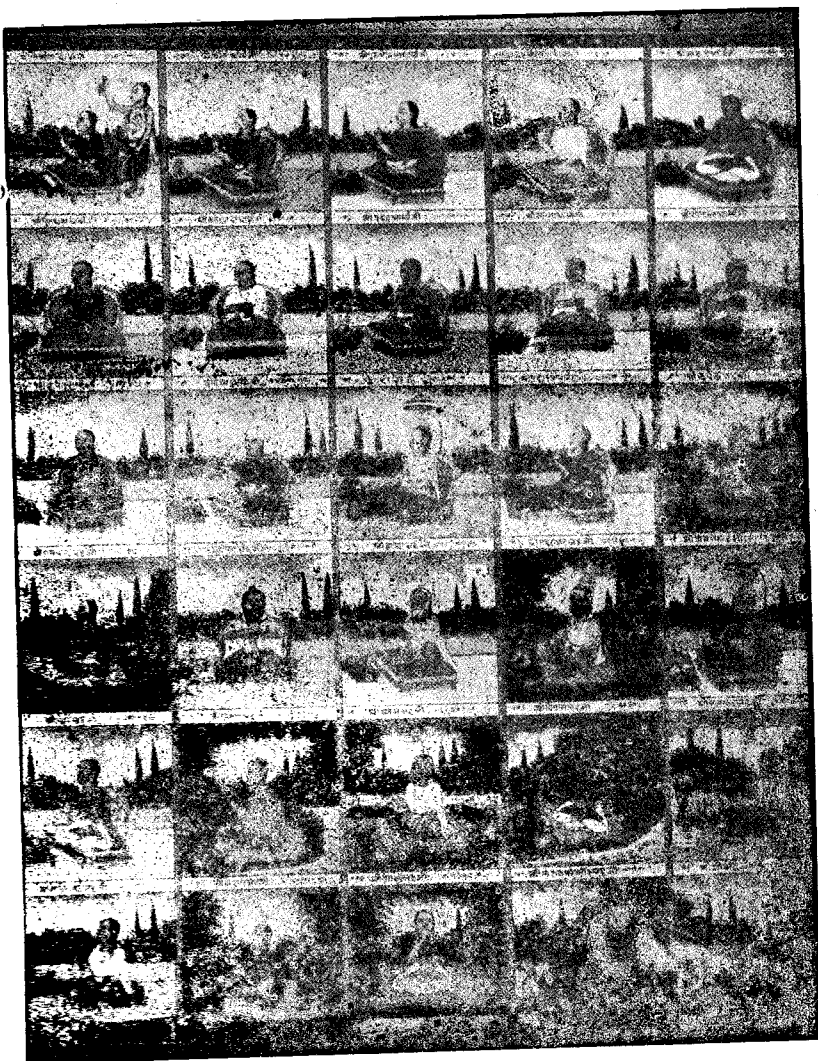
तीस प्रमुख आचार्य

द्वादश आचार्य एवं अष्टादश भट्ट

श्रीयुगलसत रचयिता—आचार्य श्रीश्रीभट्टजी महाराज।
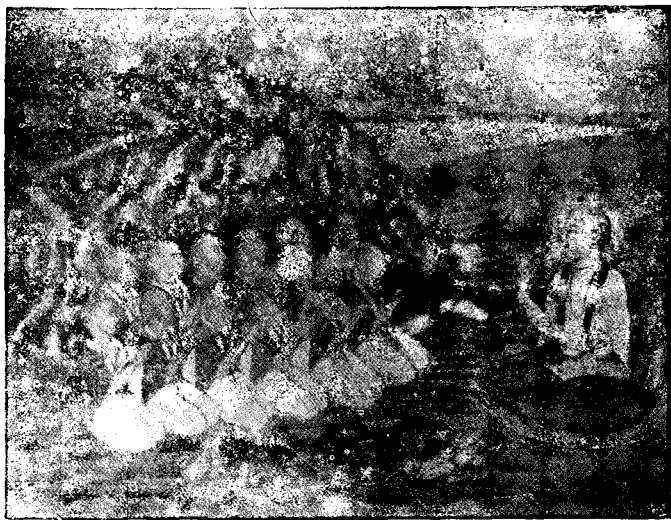
श्रीमहावाणी-रचयिता—

महिमण्डलाचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराज

श्रीश्रीभट्टजी

छप्पय

श्रीभट्ट सुभट प्रगटे अघट रस रसिकन मन मोद घन ।
मधुर भाव सम्मिलित ललित लीला सुवलित छवि ;
हरषत निरखत प्रेम हृदय आनंद कलित कवि ।
भव निस्तारन हेत देत हरिभक्ति सुदृढ़ नित ;
जासु सुजससासि उदय हरत तम भ्रम श्रम चित ।
आनंदकंद श्रीनंदसुत श्रीवृषभानुसुता भजन । भ०

श्रीजयदेवजी ने हिंदी-भाषा में पद रचना की किंतु भाषा के अल्पावस्था होने के कारण पूर्ण सफल नहीं हो सके, क्योंकि उन्हें दिव्य-शृङ्गार के चरमावस्था को अपने हृदय-हृद से निकाल कर अंकित करना था। इसके लिए सौष्ठव, परिमार्जित, निर्दोष एवं गम्भीर भाषा की आवश्यकता थी। इसलिए आचार्य एवं साम्प्रदायिक रसिकों में श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टजी तक भाषा-पद-रचना की शिथिलता रही, विशेषरूप में सर्वप्रथम भाषा-पद-रचना श्रीश्रीभट्टजी ने ही की। इस समय भाषा अपनी माध्यमिक अवस्थामें पूर्ण प्रौढ़ता प्राप्त कर चुकी थी। इनका कविता-काल तेरहवीं शताब्दी के मध्य से लेकर चौदहवीं के मध्य तक है, क्योंकि इनके दीक्षागुरु जगद्विजयी आचार्य श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टजी हैं जो अल्लाउद्दीनखिलजी के समय में वर्तमान थे। ये आचार्य तो हिन्दू-धर्म-रक्षा करते हुए कइएक सौ वर्ष पर्यन्त पृथ्वी पर प्रगट रहे। इनके अन्तिम समय में श्रीभट्टजी शरणागत हुए; इन्हीं आचार्य श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टजी का बनवाया हुआ मथुरा में श्रीकेशवदेवजी का जगतप्रसिद्ध मंदिर था; जिसे औरँगजेब ने समूल तोड़वाकर मसजिद बनवा दिया है। इनके संबंध में नाभाजी भक्तमाल के छप्पै में लिखते हैं—

श्रीकेशवभट्टनरमुकुटमणि जिनकी प्रभुता विस्तरी ।
काश्मीर की छाप पाय तापन जग खंडन ;

दृढ़ हरिभक्ति कुठार आन धर्म विटप विहंडन।
मथुरा मध्य मलेच्छ बद्ल करि बरवट जीते;
काजी अजित अनेक देखि परचे भयभीते।
विदित बात संसार सब संत साखि नाहिन दुरी।

आप काश्मीर सुनी बसत विश्राम तीर तुरकसमूह द्वार जंत्र इक धारिए;
सहज सुभाय कौउ निकसत आइ वाहि पकरत धाइ ताको सुन्नत निहारिए।
संगलै हजारशिष्य भरे भक्तिरंग महा अरे वाहीठौर बोले नीचपट टारिए;
क्रोधभरिभारे आय सूबापै पुकारे वेतो देखि सबै हारेमारे जलबोरि डारिए।

इन्हीं आत्म-शक्ति-सिद्ध ईश्वर-बल-बीर दिग्विजयी आचार्य श्रीकेशव-काश्मीरिभट्टजीके शिष्य श्रीभट्टजी थे। पूर्वसंस्कार हृदय-पटल पर से अमिट होजाता है सो श्रीभट्टजी में विद्यमान था; बाल्यावस्था में ही ये भगवद्भजन-प्रेमी एवं वैराग्य-हृदय थे। जब आचार्यपाद ने मुसलमानों को पूर्णतः हरएक प्रकार से पराजित कर, मथुरा को मुक्त की, उसी समय मथुरा में विश्रामघाट पर श्रीभट्टजी ने आचार्यपाद से मंत्र-दीक्षा ग्रहण की। इनका प्रादुर्भाव मथुरा में ही आदिगौड़ ब्राह्मण-कुल में हुआ था। इनके पितृवंश के ब्राह्मण अभीतक मथुरा में "श्रीभट्टजी के गोस्वामी" नाम से प्रसिद्ध हैं। ये दीक्षित होकर, आचार्य-चरण-सेवा में रहते हुए ही, विद्याध्ययन करने लगे। आचार्यकृपा से अल्प दिवश में ही सर्वशास्त्र-पारंगत हो गए। आचार्य श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टजी वेदान्त-सूत्रके भाष्यकार हैं, ये भी वेदान्त अध्ययन कर पूर्ण विद्वान् हो गए; किन्तु इनका मन एक अनिर्वचनीय रस-उदधि में निमग्न रहने लगा। जिस प्रकार स्वामी श्रीहरिदासजी को उनके अनुयायी श्रीराधाकृष्ण के मुख्य सखियों में से श्रीललिताजी के अवतार मानते हैं, उसी प्रकार इन्हें भी श्रीहितूजी के। इस भाव एवं स्वरूप-तत्त्व का विसद वर्णन इनके शिष्य श्रीमहावाणी रचियता आचार्य श्रीहरिव्यासदेवजी ने किए हैं। आचार्य श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टजी ने इनकी लग्न, वेदान्त से विशेष शृङ्गार-रस में देख कर, वैसीही कृपा की। माधुर्योपासना में शिक्षित कर, वरदान दे, उपास्यदेव श्रीनित्यविहारी के साक्षात् दर्शन कराए। ये बड़े ही शरणागत-रक्षक दिव्यदर्शी, पतित-पावन और दैविशक्ति-संयुक्त रसिक महानुभाव थे। इनके

विषय में श्रीरूपरसिक-कृत यह छप्पै प्रसिद्ध है—"कलपविटप श्रीभट्ट प्रगट कलिकल्मष दुखदूरि कर। जे नर आवै शरन तापत्रय तिनकी हरहीं; तत्त्वदर्शी ते होय हस्त जा मस्तक धरहीं। गुननिधि रसिक प्रवीन भक्तिदसधा को आगर, राधाकृष्ण स्वरूप ललित लीला रससागर। कृपादृष्टि संतन सुखद भक्तभूप द्विजवंशवर।"

ये आचार्यपाद संस्कृतके पूर्ण विद्वान थे, इनके द्वारा विरचित श्रीकृष्ण-शरणापत्तिस्तोत्र एवं अन्य कइएक स्तोत्रों से विदित होता है, किंतु ब्रजभाषा में सर्वप्रथम पद–रचना के प्रवर्तक होकर वैष्णव –भक्तों एवं काव्य रचिय-ताओं में एक स्मृति संस्थापित कर दी, उसके पश्चात् श्रीराधाकृष्ण के नाम, रूप, लीला और धाम पर धारा--प्रवाह पद एवं काव्य-रचना होने लगे। इनकी सर्व- प्रथम की रचना आदिवाणी 'श्रीजुगलसत' है; जिसके अनेक प्राचीन प्रतियों में यह दोहा भी लिखा हुआ है—

"नैन, बान, पुनि राम, ससि गिनो अंक गति वाम;
श्रीभट प्रगटजु जुगलसत यह संवत अभिराम।"

इस दोहे से इनके जुगलसत निर्माणका १३५२ संवत् सिद्ध होता है ब्रजमाधुरीसार एवं हिंदी-साहित्य का इतिहास में इनका कविताकाल १५९५ लिखा है; किंतु इससे उपरोक्त संवत् ही ठीक जँचता है, क्योंकि श्रीकेशव-काश्मीरिभट्टजी अल्लाउद्दीनखिलजी के शासन–काल में हुए हैं, प्रसिद्ध है एवं श्रीरामानंदाब्द ६२१ प्रचलित है, श्रीकेशवकाश्मीरिभट्ट एवं श्रीरामानंदजी से काशी में संवाद हुआ है, इन्हीं श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टजी के शिष्य श्रीभट्टजी थे। और भी भक्तमाल में उल्लिखित श्रीचतुरदासजी नागा जो सोलहवीं सताब्दी के प्रसिद्ध भक्त हैं, श्रीभट्टजी के परंपरा में इनसे पाँच पीढ़ी पीछे हुए हैं। इन प्रमाणों से १३५२ संवत् ही विशेष पुष्ट होता है। कहते हैं कि इन्होंने दस हजार पद निर्माण किया था, किंतु इनके गुरुदेव श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टजी ने शृंगार-रस विशेष अधिकारियों की कमी और अनाधिकारियों के लिए विपरीत–फलप्रद देखकर, श्रीजमुनाजी को अर्पण कर दिए, इसलिए कि जिन पदों के लिए आज्ञा दें वेही प्रचार होयँ, उस समय श्रीजमुनाजी ने स्वयं एक श्रीजुगलसत प्रचारार्थ देने की कृपा की थी, जो वर्तमानकाल में प्रचलित है।

ये अधिकांश मथुरा एवं वृन्दावन में रहते थे और समय समय पर ब्रजमंडल में श्रीकृष्णलीलाभूमि-दर्शन के लिये भ्रमण भी किया करते थे। जुगलसत के निम्न पदों से वृन्दावन के प्रति प्रगाढ़-प्रेम सूचित हो रहा है—

जाको मन वृंदाविपिन हर्‍यो।
निरखि निकुंज पुंज-छवि राधेकृष्ण नाम उर धर्‍यो।
स्यामास्याम-स्वरूप-सरोवर परि स्वारथ बिसर्‍यो;
श्रीभट राधेरासिकराय ताहि सर्वस दै निवर्‍यो।
जय जय वृंदाबन आनंदमूल।
नाम लेत पावत जु प्रनयरति जुगलकिशोर देत निजकूल।
शरन आए पाए राधाधव मिटी अनेक जन्म की भूल;
ऐसोहि जानि वृंदावन श्रीभट रज पर वारि कोटि मखतूल।

समय-समय पर गोवर्द्धन में भी जाकर परिक्रमा एवं निवास किया करते थे। क्योंकि वहीं श्रीनिम्बार्काचार्य और श्रीनिवाशाचार्य दोनों प्रचारक एवं भाष्यकार आचार्यों का भी अधिक समय तक निवास था। जो कोई भी इनसे मंत्र-दीक्षा लेना चाहता था। वह पूर्ण-परिक्षित एवं शुद्ध होकर ही शिष्य हो सकता था। जब श्रीहरिव्यासदेवजी शिष्य होने के लिए गए तो इन्हें बारह वर्ष तक श्रीगोवर्द्धन की परिक्रमा-पर्य्यटन की आज्ञा हुई। वे नियम--पूर्ति के पश्चात् इनके निकट आए। ये सखीभावावेश के चरम लक्ष्य के अंतिम अवस्था को साक्षात्कार कर, अथवा सेवाग्रगन्य सखी श्रीहितू स्वरूपानुकूल श्रीप्रियाप्रियतम को अंक में लेकर लाड़ प्यार कर रहे थे। श्रीररिव्यासदेवजी से इन्होंने यही पूछा—"हमारे अंक में कौन हैं?" इन्हें कुछ भी नहीं दिखा वैसाही उत्तर दिए। तब आचार्य श्रीभट्टजी ने देखा कि मानव-बपु-धारण के कारण अभी दिव्यदृष्टि संयुक्त इस परंपरा के स्वरूपानुकूल शिष्य होने जोग्य नहीं हुए। पुनः परिक्रमा भ्रमण की आज्ञा हुई, शेष, पर प्रथम--प्रश्न के अनुसार उत्तर देकर शिष्य हुए। पश्चात् यही आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित हुए। ये भी श्रीनित्यबिहारी के अग्रगण्या सखीयों में से श्रीहरिप्रियाजी के अवतार हैं। आचार्य श्रीश्रीभट्टजी चौदहवीं सताब्दी के मध्य तक विद्यमान रहकर श्रीनित्यबिहारी धाम श्रीनित्यवृन्दावन प्राप्त हो गए। जुगलसत से पद उद्धृत किए जाते हैं।

[रागकेदारो-इकताल-दोहा]

चरनकमल की दीजिए सेवा सहज रसाल ;
घरजायो मोहि जानि के चेरो मदनगोपाल ।

मदनगोपाल ! शरन तेरी आयो ।

पद-चरनकमल की सेवा दीजे चेरो करि राखो घरजायो ।
धनि-धनि मात,पिता, सुत बन्धु धनि जननी जिन गोद खिलायो ;
धनि धनि चरन चलत तीरथ को धनि गुरु जिन हरिनाम सुनायो ।
जे नर विमुख भये गोविंद सों जनम अनेक महा दुख पायो ;
'श्रीभट' के प्रभु दियो अभय-पद जम डरप्यो जब दास कहायो ।

[दोहा]

मोहनि ब्रजवन भूमि सब मोहन सहज समाज ;
मोहन यमुना कुञ्ज जहँ विहरत हैं जुवराज ।

पद-ब्रजभूमि मोहनी मैं जानी ।
मोहनि कुंज मोहन श्रीवृन्दावन मोहन जमुना पानी ।
मोहनि नारि सकल गोकुल की बोलत मोहनि बानी ;
'श्रीभट' के प्रभु मोहन नागर मोहनि राधारानी ।

[दोहा]

सेव्य हमारे हैं सदा वृन्दाविपिनविलास ;
नन्दनँदन वृषभानुजा चरन अनन्य उपास ।

पद-सेव्य हमारे हैं पियप्यारे वृन्दाविपिनविलासी ;
नँदनन्दन वृषभानुनन्दिनी चरन-अनन्य-उपासी ।
मत्त प्रणय वस सदा एकरस विविध निकुंज निवासी ;
'श्रीभट'जुगल रूप वंशीवट सेवत मूरति सबसुखरासी ।

[दोहा]

आन कहे आने न उर हरि गुरु सो रति होय ;
सुखनिधि स्यामास्याम के पद पावै भल सोय ।

पद-स्यामास्याम पद पावै सोई ।
मन,वच,क्रम करि सदा निरन्तर श्रीहरिपदपंकज रति होई ।
नन्दसुवन वृषभानुसुता-पद भजे तजे मन आने जोई ;
'श्रीभट' अटकि रहे स्वामीपन आन कहे मानै सब छोई ।

[दोहा]

जनम-जनम जिनके सदा हम चाकर निशि भोर ;

त्रिभुवनपोषण सुधाकर ठाकुर जुगलकिशोर।

पद-जुगलकिशोर हमारे ठाकुर।

सदा सर्वदा हम जिनके हैं जनम-जनम घरजाए चाकर।

चूक परै परिहरैं न कबहूँ सबही भाँति दया के आकर ;

जय 'श्रीभट' प्रगट त्रिभुवन में प्रनतनि पोषण परम सुधाकर।

[दोहा]

मन सुढाल में ढरो अरु जिय जु परौ जशजाल ;

आलस उपजौ आन सो लालस पद जुगलाल।

पद-निसिदिन लागि रहौ यह लालस।

स्यामास्याम-चरन की सेवा विना आन सौं उपजौ आलस।

कहत सुनाय सु मन वच क्रम करि उरझि रहौ जिय जुग जस जालस ;

जय 'श्रीभट' अघट घटना में ढरहु सदा मन मोर सुढालस।

[दोहा]

अनायास सहजहि जु तिहि पाई सुकृत सुमाल ;

लग लगाय जग जिहि जपे मन, वच राधालाल।

पद-मन वच राधालाल जपे जिन।

अनायास सहजहिं या जग में सकल सुकृत फल लाभ लह्यो तिन।

जप, तप, तीरथ, नेम, पुण्य, व्रत सुभ साधन आराधन ही विन ;

जय 'श्रीभट' अति उत्कट जाकी महिमा अपरम्पार अगम गिन।

[दोह]

जहाँ जुगल मङ्गलमई करत निरन्तर वास ;

सेऊं सो सुखरूप सदा वृन्दाविपिनविलास।

पद-सेऊं सो वृन्दाविपिनविलास।

जहाँ जुगल मिलि मंगलमूरति करत निरन्तर वास।

प्रेम प्रवाह रसिकजन प्यारे कबहुँ न छाड़त पास ;

कहा कहौं भाग की 'श्रीभट' राधाकृष्ण रस चास।

पद—वंसी त्रिभंगी लाल की मन-मीन की बनसी।
कहा अन्तर घर दुरि रहै छई मूरति घनसी॥
हरि देखे बिन क्यों रहौं धीरज नहिं तनसी।
'श्रीभट' हरि रस बस भई सुनि धुनि नेक भनसी॥ ११॥

[राग-सारंग। दोहा]

घृतपक, ब्यंजन, मोदक, मेवा मधुर रसाल।
हाथ जिमाऊँ पाऊँ जो कुंजनि में दोउ लाल॥

पद—बैठे लाल कुंजन में जो पाऊं।
स्यामा-स्याम भामती जोरी अपने हाथ जिमाऊं॥
घृतपक ब्यंजन मोदक, मेवा रुचिसौं भोग लगाऊं।
सखिन सहित जेवें पिय प्यारी हरषि-हरषि गुन गाऊं॥
चन्दन चरचि पुष्प की माला निरखि-निरखि पहिराऊं।
'श्रीभट' देत पान की बीरी जुगल चरन चित लाऊं॥१२॥

[दोहा]

सूँघत सौरभ कमल-कर अति रति प्यारी पीय।
बैठे बनि ठनि कुंज बिबि मैं बलिहारी जु लीय॥

पद—बैठे कुंज में बलिहारी।
नंदकुँवर अलबेलो नागर श्रीबृषभान-दुलारी॥
सूँघत सौरभ लिये कमल-कर अतिरति प्रियतम प्यारी।
जय 'श्रीभट' गौर साँवर सुख लखि सखियाँ सब वारी॥१३॥

[राग-विहागरो। दोहा]

चरन-चरन पर लकुट कर धरे कच्छ तर रंग।
मुकुट चटक छबि लटक लखि बने जु ललित त्रिभंग॥

पद—बने बन ललित त्रिभंग बिहारी।
वंसी-धुनि मानो बनसी लागी आई गोप कुमारी॥
अरप्यो चारु-चरन पद ऊपर लकुट कच्छ तर धारी।
'श्रीभट' मुकुट चटक लटकनि में अटकि रहे पिय प्यारी॥१४॥

[दोहा]

बहुत रूप धरि हरिप्रिया मनरंजन रस हेत।
मन्मथ मन मोहन मिथुन मंडल मधि छबि देत॥

पद—मंडल मधि बिमल जुगल भल सोहै।

करत बिहार बिहारी प्यारी मार कोटि मन मोहै॥

बहुत रूप धृत सब मन रंजन इक प्रति अंग ना दोहै।

मँडलाकार अपार बढ़्यो सुख हरि सन्मुख सबको है॥

सबनि मानि मन मुदित हियेमें पिय रस-रास रच्यो है।

दम्पति अन्तर सजि ग्रीवा भुज भौंह भृकुटि थिर को है॥

नैन-नैन मिलि लैन बिच्चेपन मैन की सैन मिलो है।

'श्रीभट'अटकि रहे जितके तित निज-निज लगन लगो है॥१५॥

[दोहा]

सब मिलि निरखत जुगल-छबि गोपी मँडलाकार।

बीच जुगल सरसावहीं अति रुचि सरद बिहार॥

पद—अति रुचि पावत सरद बिहार।

बीच जुगल सोहैं मन मोहैं गोपी मँडलाकार॥

षड्ज जमावें सरस बतावें सबमिलि जुगल बिहार।

'श्रीभट' नवल नागरी नागर तताथेई करत उचार॥१६॥

[दोहा]

हिय के हित साधे सबै बाँधे लट आधे जु।

नयन धरे फल आजही पाए हरि राधे जु॥

पद—नयन धरे फल आजही पाए हरि राधे।

तिरछी चितवन कान्ह की परी रूप अगाधे॥

निरखि-निरखि बीची झकोर हिय के हित साधे।

जय 'श्रीभट' लखि छबि लाड़िली बाँधे लट आधे॥१७॥

[दोहा]

निरखि हिताई दुहुन की हाव भाव हिय थार।

सजि आरति बारति सबै प्रात मुदित सहचारि॥

पद—प्रात मुदित मिलि मंगल गावैं, लाड़ लड़ैती को सखी लड़ावैं॥

रहसि जु केलि कही पिय भाई, राधा-माधव अधिक हिताई॥

प्रेम सम्भ्रम के बचन सुनावैं, सुन्दरि हरि मुख दर्शन पावैं॥

बाल बिसाल कमलदल-नैनी, स्यामा स्याम परम सुख दैनी॥

जय जय कहि स्वर ताल बजावैं, गीत बाद्यसौं चाल मिलावैं॥

हिय में हाव,भाव लिये थारा,रति घृत जोतिऽरु बाति बिहारा ॥
तन, मन मुक्ता चौक पुरावैं, आरति 'श्रीभट' अमित प्रचावैं ॥१८॥

[दोहा]

कनक आरती मनिमई अधिकइ बनिक बिधान ।
बारि निहारों नैन भरि मुख धरि मेवा, पान ॥

पद—मंगल कनक-आरती मनिमय गौर-स्याम छबि ऊपर वारौं ।
दोऊ बने नागरी नागर कौन कौन के ओर निहारौं ॥
खंजन मीन चपल साँरग से मोहन नैन देखि हौं चारौं ।
मेवा पान खवाय जय 'श्रीभट' करि दंडवत चँवर लै ढारौं ॥१९॥

[दोहा]

छपन छतीसौं रस छहो चतुर्विधा बहु पुंज ।
नन्दनँदन बृषभानुजा भोजन करत निकुंज ॥

पद—भोजन करत निकुंजबिहारी ।
नन्दनँदन बृषभानु-नन्दिनी जग-बन्दन सुखकारी ॥१॥
पायँ धुवाय बिछौने लोने पिय प्यारी बैठारी ।
आय धरे सुथरे जुग आगर चारु थार भरि भारी ॥२॥
लगी जु सहचरि सामा परसन चौरसन-रस बिस्तारी ।
भक्ष्य, भोज्य, लेह्य अरु चोष्य, चतुर्बिध सनिधि सुधारी ॥३॥
भात वहुत भाँतिन ब्यंजन गन आनि धरे परसारी ।
ओदन महा मोद-मन परसी सरसी फुलका लचकारी ॥४॥
घी गायो तायो ततकाली बेली धरयो निसारी ।
दै घृत डोरा बूरा परसो हरषी परसन-हारी ॥५॥
तरकन, मरकन, जीरा, पीरा, परम बासना-कारी ।
अद्रक अनेक प्रकार दारि में आँबी नीबू चुसारी ॥६॥
कढ़ी-पकौड़ी मूँग-मुँगौरी किए नमूना न्यारी ।
भाजी, साजी, केथी, मेथी, चना लुना चौरारी ॥७॥
मिरची चरची कुलथी बथुवा अथवा सब साक सँवारी ।
सहिजन-फली कली कचनारी सेंगरि-स्वाद खटारी ॥८॥
अरई, तुरई, केला, करैला, कटहर, बड़हर, ग्वारी ।
प्रतिकाली कुंभलऽरु कचालू नवला रस चँवलारी ॥९॥

बागन-बन के सबै बनाये जितेक व्यंजनकारी।
रंग-रंगे जेवें जबहीं तब रीझि रहे पिय-प्यारी ॥१०॥
रामचकर, सिखरन, करपूरन, छनिवट, मठा धुँगारी।
थुलिया मिलन मिले जा संगा अंगा खोभ खुभारी ॥११॥
बड़ुरि दुपरती गरती घी की नीकी पाक निसारी।
मैदा पूप अनूप गुलगुला नवला अन्न प्रचारी ॥१२॥
पुरी, कचौरी, खीर, सुसीरा, थर मिश्री ककरारी।
मोहनभोग मनोहर गुटका अटका दूध दुधारी ॥१३॥
चक्काफेनी रुचनी माखन सक्करपार सुहारी।
लडुवा, मठरी, अँदरसा, खाजा गूँजा, मगद-कसारी ॥१४॥
सेव, परेठा, पेठा, पापर, बरचटनी रुचिकारी।
गुना पचन सब बचन कटाछन बेसन चारु बढ़ारी ॥१५॥
तर तूँबाते किते रायते पते बहुत परकारी।
काँजी साँजी सुंदरि फिर-फिर पावें भावें भारी ॥१६॥
पेरा, सेव, जलेबी, खुरमा, मोतीचूर-गुझारी।
खोवा, फुलौरे, कन्दगिदौरे, नुक्ती, रवा, रुचारी ॥१७॥
रामचने अाँचार अाँबिया, कैर, नीबू लहसारी।
घिरमि मुरब्बा अँवरा पचनी, रसदमनी अमलारी ॥१८॥
सरवत छना, पना अनवानी मिरच बनी सुपखारी।
भोजन छपन छतीसौं ब्यंजन सबे सजे ज्योनारी ॥१९॥
हठि हरि प्यारी हारि रहे तब बनि आई ज्योनारी।
'श्रीभट' चटपट खरिका दीने अचवन पान सुपारी ॥२०॥

[दोहा]

हँसत जात जल लेत मुख रसवत बितरत ख्याल।
गहि झारी कर आचमन करत लाड़िलि लाल ॥

पद—अचवन करत लाड़िलीलाल।
कंचन-झारी गहत परस्पर श्रीराधा--गोपाल ॥
जलमुख लेतहि हँसत हँसावत देखत सखिन के जाल।
राधा माधव केल करत भए 'श्रीभट' परत बिचाल ॥२१॥

[दोहा]

गौर-स्याम अति सोहनी जोरी परम उदार।
अलि जन आरति करति हैं छबिहिं निहारि-निहारि ॥

पद—आरति करत आलि छबि निरखें। नवलकिसोर जोर सुखबरसे ॥
प्यारी मुख लखि ससि खंडित सुख। कान्हर शिर शिखंड मंडित मुख
कुंडल जुगल कपोलन राजे। मुख शुषमा अति इछन आजे ॥
सिपज सिरज उज्ज्वल कलकेलें। नील पीत-पट घन रुचि पेलें ॥
गौर-स्याम मूरति मन रंजे। बाहु बिसाल ब्याल उर गंजे ॥
नन्द-सुवन बृषभानु की तनया। 'श्रीभट' जोटि अघट सुठि बनया ॥

[राग-केदारो। दोहा]

न्यारी धेनु दुहाय के ल्याई तट औटाय।
नटौ न बलि पीवौ दोऊ दुग्धहि मधुरे भाय ॥

पद—पीवौ दोऊ दुग्ध मधुरे भाय।
अधिक औट्यो तट नटौना मेवा, मिश्री मिलाय ॥
कनक जटित सु मनि कटोरे न्यारी धेनु दुहाय।
बेगि पीवौ बलि कान्हकिसोरी बहुरि जैहैं सेराय ॥
थार थर धरि ब्यारु समये रसमय रुचि उपजाय।
वेला लै लै पीवें पिपावें हँसें हँसावें बुलाय ॥
पय ही पीवत हितू कुतूहल बाढ़यो बिलँब लगाय।
लेहु बीरी कमल-लोचन जय 'श्रीभट' बलि जाय ॥२३॥

[दोहा]

ढारौं निजकर चँवर लै धारौं नैननि नेह।
सोवत जुगलकिसोर जहां सेऊं चरन सुदेह ॥

पद—सोवत जुगल! चँवर हौं ढारौं।
कबहुँक सेऊं चरन नैननि में नवतम नेह सुधारस ढारौं ॥
कबहुँक पद-पल्लव राधे के अपने नैन कनीनन सारौं।
कबहुँक 'श्रीभट' नन्दलाल के कोमल-चरन-कमल पुचकारौं ॥२४॥

[राग-रामकली। दोहा]

अंग-अंग द्युति माधुरी बिबिमुख चन्द्रचकोर।
जय श्रीभट्ट सुदृष्टि न अटके नटवर नवलकिसोर ॥

पद—बसो मेरे नैनन में दोउचन्द।
गौरबरन बृषभानु–नन्दनी स्याम बरन नँदनन्द॥
गोलक रहे लुभाय रूप में निरखत आनँदकन्द।
जय 'श्रीभट्ट' प्रेमरस बन्धन क्यों छूटै दृढ़ फन्द॥२५॥

[दोहा]

जोरी गोरी स्याम की थोरी रची न बनाय।
प्रतिबिंबित तन परस्पर 'श्रीभट' उलट लखाय॥

पद—राधा–माधव राजे धाम।
अरस परस ऐसे प्रतिबिंबित स्याम स्यामा मानो स्यामा स्याम॥
चकित चत्तु निज छबि अवलोकत गौर–स्याम मिलि भई अरुनाई।
जैसे मुख आये दर्पन तट तुरतहि तिहि छिन रँग पलटाई॥
अंगन अंग अनंग रही छबिछाय समीप भयो जो जाकी।
जय 'श्रीभट' निकट देखत द्युति नन्दनँदन बृषभानु–सुता की॥२६॥

[दोहा]

सुमन सहित आवत अमल जल जा मधि प्रतिबिंब।
देखि दिखावत जमुन तट अति उत्कट अविलम्ब॥

पद—मंजुकुंज द्वारे प्रिया–प्रीतम, मिलि बैठे जमुना के तीर।
गह्वर कुसुम तरंग सो सीतल, मन्द, सुगन्ध समीर॥
सुमन सहित चक्राकृत आवृत अद्भुत देखि दिखावत नीर।
'श्रीभट' अति उत्कट तटराजें स्यामा-स्याम छबि जलधि गँभीर॥२७॥

[दोहा]

सुकर मुकर निरखत दोउ मुख-ससि नैन-चकोर।
गौर स्याम अभिराम अति छबि न फबी कछु थोर॥

पद—गौर–स्याम ! अभिराम विराजें।
अति उमंग अँग अंग भरे रँग सुकर मुकर निरखत नहिं त्याजे॥
गंड सो गंड बाहु ग्रीवा मिलि प्रतिबिंबित तन उपमा लाजें।
नयन-चकोर बिलोकि बदन-ससि आनँदसिन्धु मगन भये आजें॥
नील निचोल पीत–पट के तट मोहन मुकुट मनोहर राजें।
घटा छटा आखंडल को दँड दोउ तन एक देस छबि छाजें॥
गावत सहित मिलत गति प्यारी मोहन मुख मुरली स्वर–बाजें।

'श्रीभट' अटकि परे दंपति दृग मूरति मनहुँ एकही साजे ॥२८॥

[दोहा]

भुवन चतुर्दस की सबै सुंरदता सिर-मौर।
सुंदरवर जोरी बनी बृंदाबन निज ठौर ॥

पद—बृंदाबन इक सुन्दर जोरी।
खेलत जहाँ तहाँ बंसीबट नन्द-नँदन बृषभान-किसोरी ॥
भुवन चतुर्दस की सुंदरता सुदर स्याम राधिका गोरी।
जय'श्रीभट्ट' कहां लों बरनों रसना एक नाहिं लख कोरी ॥२९॥

[दोहा]

नखसिख सुषमा के दोऊ रतनाकर रसिकेस।
अद्भुत राधामाधवो जोरी सहज सुबेस ॥

पद—राधामाधव अद्भुत जोरी।
सदा सनातन इक रस बिहरत अबिचल नवल किसोरकिसोरी।
नखसिख सब सुषमा रतनकर भरत रसिकवर हृदय सरोरी ॥
जय'श्रीभट्ट' कटक कर कुंडल गंड बलय मिलि लसत हिलोरी ॥३०॥

[दोहा]

दर्पन में प्रतिबिंब ज्यों नैनजु नैननि माहिं।
यों प्यारी पिय पलकहुँ न्यारे नहिं दरसाहिं ॥

पद—प्यारी तन स्याम स्यामा तन प्यारो।
प्रतिबिंबित तन अरस परस दोउ एक पलक दिखियत नहिं न्यरो
ज्यों दर्पन में नयन नयन में नयन सहित दर्पन दिखवारो।
'श्रीभट' जोटि की अतिछबि ऊपर तन मन धन न्योछावरि डारौं ॥

[राग—काफी। दोहा]

चंचल चिकने लगोहें अरुन वरन रस ऐन।
अनियारे अति नागरी नागर के ए नैन ॥

पद—नागरी नागर के नैन अनियारे।
अति अनूप निज रूप निहारे परम प्रान प्रिय-प्रियतम प्यारे ॥
भृकुटि मरोरनि गूढ़ भावसो डोरा कोर प्रेम फँदवारे।
अरुन बरन पैने रसभीने चिकने लगोहें प्रीति पन पारे ॥
पलक-पलक मानो अलिन नलिन पै प्रात मुदित हित पंख पसारे।

अंजन-अमिल रेख इषद लखि बसि नागिनि मानो खंजन गारे॥
चंचल कमल ललित प्रफुल्लित मनु, भूतल गति निरखत रसभारे।
जय 'श्रीभट'सुरत समर में कोबिद सुभट कोटि कंदर्प यहां हारे॥

[राग—केदारो । दोहा]

साँवर ससि सँग लसि प्रिया रस भरी सरस रस छन्द।
डोलति हैं श्रीराधिका अति ही आज आनन्द॥

पद—श्री राधिका आज आनन्द में डोलैं।
साँवरे चन्द गोबिंद के रसभरी दूसरी कोकिला मधुर स्वर बोलैं।
पहिरि पट नीलवर कनक हीरावली हाथ लिये आरसी रूप तोलैं॥
जय 'श्रीभट्ट'आज नागरि नीकी बनी कृष्ण के सीलकी ग्रन्थि खोलैं॥

[दोहा]

उझकति सहचरि निरखि सुख हिय में भरी हुलास।
नव निकुंज रस पुंज छवि स्यामा स्याम निवास॥

पद—निकुंज में पुंज सखिन के तिन में स्यामा स्याम बिराजें।
सीतल, मन्द सुगन्ध त्रिबिध मारुत सेवत ऋतुराजें॥
झलकत जित तित लता सुखिर सखि हिये हुलासी साजे।
अंतर रह्यो न दंपति 'श्रीभट' देखि भए सबकाजे॥३४॥

[दोहा]

बहु भतियां फूल्योबिपिन रतियाँ सरद सुहात।
बतियाँ भाँवति करत उर छतियाँ अंक लिखात॥

पद—दोउ मिलि करत भाँवती बतियाँ।
मदनगोपाल कुँवरि राधे के नख-मनि अंक लिखत उर छतियाँ॥
तैसिय छिटकि रही उजियारी पूरनचन्द सरद की रतियाँ।
केलिरूपिनी जमुना 'श्रीभट' बृन्दावन फूल्यो बहु भँतियाँ॥३५॥

[राग—वसन्त । दोहा]

मंगल बिमली सबहि मिलि खेलौ हिय हुलसन्त।
मान बिरह दुख मेटनो आयो रितुराज बसंत॥

पद—आयो रितुराज बसंत सजनी हेत भयो सब हिय को।
अब मिलि मंगल बिमली खेलौ मान बिरह गयो जिय को॥
चित में चाह उछाह बढ़ावौ सहज संग भयो पिय कौ।

'श्रीभट' कूट कोप करि नागरि दीप जरायो घिय कौ ॥३६॥

[राग–बसन्त । दोहा]

नवकिसोर नवनागरी नव सब सौंज रु साज।
नव–बृन्दाबन नव–कुसुम नव–बसंत रितुराज ॥

पद—नवल बसंत नवल बृन्दाबन नवलहिं फूले फूल।
नवलहिं कान्ह नवल सब गोपी नृत्यत एकै तूल ॥
नवलहि साषि जवादि कुमकुमा नवलहिं बसन अमूल।
नवलहिं छींट बनी केसरि की मेटत मन्मथ सूल ॥
नवल–गुलाल उड़े रँग बूका नवल पवन के झूल।
नवलहिं बाजे–बाजे 'श्रीभट' कालिंदी के कूल ॥३७॥

[दोहा]

हरष्यो सुत ब्रजराज को लखि बसंत ऋतुराज।
श्रीभट हठक कछू नहिं करिहैं मन के काज ॥

पद—आज मन कारज करिएरी।
हरष्यो सुत ब्रजपति को अति ही लखि चख ढरिएरी ॥
ऋतु को राज बसंत निरखि के सोई सुख उर धरिएरी।
'श्रीभट' हठक नहीं अब तनकहुँ महा मुदित मन भरिए री ॥३८॥

[राग–बसन्त । दोहा]

बिबिध भाँति सब सौंज सजि सुखद सरोबर रूप।
हो हो होरी खेलहीं स्यामा स्याम अनूप ॥

पद—हो हो होरी खेलैं स्यामा स्याम। सखि रूप सरोवर गुन के ग्राम ॥
जहाँ आई कुँवरि चलि अलि लै पुंज। तहाँ आय मिले मोहन निकुंज।
राधे जू आय सारि गुलाल मेलि। बनी घन सहेत मानो तड़ित केलि ॥
रँग होरी कमोरी झमकि झिम्ब। नीलांबरचल मानो चपला बिम्ब ॥
भरि चरच्यो रँग गोकुल सुचन्द। करभनि सुकेलि मनु मद गयंद ॥
रँग रंजित छवि प्रिय चारु अंग। लखि नन्द–नँदन मन भयो पंग ॥
वृषभान कुँवरि डारयो अबीर। मर्कतमनि मानौ सींच्यो सीर ॥
नवरँग बूका उड़यो गुलाल। बैसंधिजलद मानो चन्दमाल ॥
गारी गावैं गोपी पीयूष बैन। सोई सुनत स्याम जू के हिय में चैन ॥
पिचकारी भरी रँग राधे ओर। छबि पर वारों परजन्य कोर ॥

सौरभ सुगन्ध केसरि के नीर। आनन्दकन्द मलयज समीर॥
बनमाली बल्लविन गहे आय। मनुकोटि तड़ित घन लपटि जाय॥
सखि लेहुरी याको भले नचाय। फिर नहिन पायहैं ऐसो दाय॥
ढोरी कमोरी स्यामा दई सिखाय। मुख लेपन करि दिए छुटाय॥
सब हँसी लसी कर देय ताल। कहि ऊँचे स्वर हारे गोपाल॥
हरि बीच नच्यो मच्यो कीचरंग। सरसै ज्यों मेघ पै सोम संग॥
प्यारी चंद्र-मुखनि तोषे हरिचकोर। दिबि कनक मोरिन मधिमनहुँ मोर॥
रँग डारि गारि दै भगे भाल। सुसमान समर जैसे परत चाल॥
फिर लई गोपाल पिचकारि हाथ। घनते व निकसि ज्यों तड़ित जात॥
बर भ्रमत भ्रमर ब्रजराजलाल। फूली कुमुदनि मानो गोपबाल॥
बहु बूका उड़यो रंग अन्ध ऊथ। तहाँ अटक्यो आय गोपिन को जूथ॥
फिरि करि गोपाल गुलालमेलि। करि लयो बराबर बहुरि खेल॥
ब्रजराज कुँवर सो खेले फाग। फूलो कुमुदिनि ज्यों झरि पराग॥
नित अभँग केलि हित हिय में राग। कह कमला सी ए धनि सुहाग॥
फाग खेलि चली गावत जु बाद। देखत 'श्रीभट' केशव प्रसाद॥३९॥

[राग-सारंग। दोहा]

तरन हथारनि प्रिया को सिखवत पिय सुखसार।
रचि लीला रुचिकारिनी खेलहिं बारि बिहार॥

पद—खेलैं बारि बिहार बिहारनी।
रचि रंजन मंजन मिस लीला रसिकलाल रुचिकारनी॥
जमुन तरंग रहसि रस पूरन अंग न अंशुक हारनी।
'श्रीभट' नटनागर प्यारी को सिखवत तरन हथारनी॥४०॥

[दोहा]

मेलत कलिका कमल की झेलत झुकि रस झेल।
राजत अति जलयान पै करत जुगल जलकेलि॥

पद—जलकेलि करत रसकन्दनी।
राजमान जलयान ऊपर दोउ कान्ह भानु की नन्दनी।
कलिका नवल कमल की मेलत झेलत सरस सुगन्धनी॥
'श्रीभट' जाने कौन रसिक दोऊ डारत नेहरस फन्दनी॥४१॥

[राग—मलार । दोहा]

ठाढ़े गाढ़े कुंजतर बाढ़े मैन मरोर ।
भींजत कब इन दृगनते देखौं जुगलकिसोर ॥

पद—भींजत कबं देखौं इन नैना ।
स्यामाजू की सुरँग चूनरी मोहन को उपरैना ॥
जुगलकिसोर कुंजतर ठाढ़े जतन कियो कछु मैं ना ।
उमगी घटा चहूँदिसि 'श्रीभट' जुरि आई जल-सैना ॥४२॥

[दोहा]

बसन भींजि हैं भामिनी छिनक निवारो मेह ।
मोहि सहित लायक तुमहिं छता हमारो एह ।

पद—श्रीराधेजू सुंदर छता हमारौ ।
मोहिं सहित श्रीस्यामा लायक बनयो बनिक बिचारो ॥
भींजेंगे जु बसन तन भामिनि छिन यक मेह निवारो ।
'श्रीभट' हठ न कियो हित जान्यो आनि गह्यो हिय प्यारो ॥४३॥

[दोहा]

जमुना जल में निरखहीं झुकि चंचल निज झाहिं ।
दोऊ जन ठाढ़े लपटि उर एकहिं खोहिया माहिं ॥

पद—ठाढ़े दोऊ एकहि खोहिया माहीं ।
बंसीबट तट जमुना जल में निरखत चंचल झाहीं ॥
कारी कमरिया अंतर दंपति स्यामा-स्याम सुहाहीं ।
'श्रीभट' कृष्ण कूट में कंचन जल वर्षत झलकाहीं ॥ ४४ ॥

[दोहा]

ज्यों ज्यों चूनरि सगबगे त्यों त्यों लावत हीय ।
भींजत कुंजनि ते दोऊ आवत प्यारी पीय ॥

पद—भींजत कुंजन ते दोऊ आवत ।
ज्यों ज्यों बून्द परत चूनरि पर त्यों त्यों हरि उर लावत ॥
अति गंभीर झीने मेघनि की द्रुम तर छिन बिरमावत ।
जय 'श्रीभट्ट' रसिक रस लंपट हिलिमिलि हिय सचुपावत ॥४५॥

[राग-मलार । दोहा]

त्रटि जुटि दुहुँ ओरे दोऊ तनघन दामिनि भोर ।

फूल फबे उर झूलहीं लाड़िली लाल हिंडोर ॥

पद—झूलत लाड़िलिलाल हिंडोरे।

फूल फबे अँगअंगनि अटि दटि बटि जुटि दोउ दुहूँ ओरे॥
खंभ अधारक डोल अमोलक नवल-पाट की डोरे।
जामें नवल किसोर किसोरी अपनी-अपनी-छोरै॥
कारी घटा छटनि के डोरा मोरा बोलत जोरै।
कोकिला सुर-कल जल-कन बर्षत थिर गंभीर घनघोरै॥
सबै ओर सुंदर ते सुंदर बनी सखिन की कोरै।
देखि दंपति झूल झूलैं दामिनी घन भोरैं॥
सन्मुख बैठे उभय कुँवर गावैं सखी सुर थोरै।
स्यामा-स्याम सखी सुखकारी झूलें सहज झकझोरै॥
जित-जित झुलत डुलत तितही तित सखी दृगनि को मोरै।
तन मन दै तन्मय भई दयता मोद रचित चित चोरै॥
रज भुज गहैं लहैं चित इच्छित रति असीत तन गोरै।
'श्रीभट' बंसीबट तट निरखत उठी उर •हरष हिलोरै॥४६॥

[दोहा]

जमुना बंसीबट निकट हरन हिंडोरो हीय।
रँगदेब्यादि झुलावहीं झूलत प्यारी पीय॥

पद—हिंडोरे झूलत हैं पिय-प्यारी।

श्रीरँगदेबि, सुदेवि, बिसाखा झोटा देत ललितारी॥
श्रीजमुना बंसीबट के तट सुभग भूमि हरियारी।
तैसेइ दादुर मोर करत धुनि सुनि मन हरत महारी॥
घन गरजन दामिनि ते डरि पिय हिय लपटी सुकुँवारी।
जय 'श्रीभट' निरखि दंपति छबि देत अपन पौ बारी॥४७॥

[राग-केदारो। तालयात्रा। दोहा]

मोहन ब्रजजन माल पै मधुकर करत गुंजार।
श्रीभट लटक सुवासना अटके नंदकुमार॥

पद—राजई समाज आज मधुप ज्यों मुकुन्दचंद।
उन्नत उरोज ब्रज सुंदरी सरोज बृन्द॥

जटित फटिक मनिधरा सर बिबिध बिद्रुम बिचिकावरा;

बलित रागबल्लवी कुच-चक्रवाक बिहंग द्वंद ॥
गोपी मंडल कमल-माल धमिल खलित तेसि बाल ;
ताल जान बय समान तन सुपात स्वेद बिंद ॥
नवल-बालुका अनूप लावनि गुनगन स्वरूप ;
दल बिकास बिमलतास सुद्ध प्रेमता सुगंद ।
गंभीर धीर गान गुंज भ्रमत नृत्य करत मंजु :
तान मान लेत देत सरस मुख-सुधा सुछंद ॥
चीर उड़नि कृष्ण स्याम अगते बैजंति दाम ;
जुगल मिलन षटक चलन, अरुनता प्रियास्कंद ।
स्वेद प्राग पतित पंक उन्नत हरिबदन टंक ;
जात जल• सुजीव गहन फूलमाल बेलिबंद ॥
कर्निका जुगल करनतूल बहुल कंठ सीसफूल ;
जलज हमेल बीच रेल रज सिंदूर झलकसंद ।
मधुरद मकरंद अधर केसरि आनंदकंद ;
"श्रीभट" लपटानि रुचिर नीलांबर पीत फंद ॥४८॥

[दोहा]

करवर अंबुज कंठ भुज मर्कत कनक स्थूल ।
'श्रीभट' रसमय तट रमत राधामन अनुकूल ॥

पद—फूली कुमुदिनि सरद सुहाई ।
जमुनातीर धीर दोउ बिहरत कमल नील पीत कर माई ॥
नील-बरन स्यामा रुचि कीनी अरुन बरनता हरि मनभाई ॥
'श्रीभट' लपटि रहे अंसनि कर मानो मर्कत कनक जराई ॥४९॥

* श्रीकृष्णशरणापत्ति-स्तोत्र *

श्रीदःश्रीशःश्रीनिवासःश्रीनिधिःश्रीविभावनः, श्रीकरः श्रीधरःश्रीमान् श्रीकृष्णः शरणं मम।

श्रीवृन्दावनचन्द्रः श्रीव्रजेन्द्रकुलचन्द्रमा, श्रीराधाकौमुदीचन्द्रः श्रीकृष्णः०

नवगोपकिशोरेन्द्रः कोटिकन्दर्पसुन्दरः, सदा राधाकेलितुष्टः श्रीकृष्णः०

कोटीन्दुजगदानन्दो कालिन्दीपुलिनोत्सवः, स्फुरदिन्दीवरश्यामः श्रीकृष्णः०

त्रिभंगीललितस्तिर्यक्ग्रीवस्त्रैलोक्यमोहनः पिच्छमौलिः पीतवासाः श्रीकृष्णः०

मुरलीवादनकलामुग्ध स्स्थावरजङ्गमः, प्रत्यङ्गापारसौन्दर्यः श्रीकृष्णः०

कौस्तुभोदारवक्षः श्रीस्फुरन्मकरकुण्डलः, कंकणाङ्गदरोचिष्णुः श्रीकृष्णः०

विस्फुरत् किंकिणीजालमणिनूपुरमंडितः, विद्योतपिच्छमुकुटः श्रीकृष्णः०

चन्दनागरलिप्ताङ्गः कस्तूरीतिलकोज्ज्वलः, आजानु तुलसीदामा श्रीकृष्णः०

कदम्बतरुमूलस्थः कदम्बकृतकाणकः, कदम्बमालयावीतः श्रीकृष्णः०

बंशीनादसमाकृष्ठा व्रजसीमंतिनीव्रतः, राधिकाप्रेमविवशः श्रीकृष्णः०

पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः समालिंगन्मुहुर्मुहुः, रूपलीलानिधिं राधां श्रीकृष्णः०

महाकामाग्निसन्तप्त गोपीगीतसुधाहृदः, राधासङ्गैकजीवातुः श्रीकृष्णः०

वेणुरंध्रचलांगुल्याभातिरत्नोर्मिका छविः, सिञ्जन्मञ्जीररसनः श्रीकृष्णः०

सान्द्रानन्दैकचिद्धने सदा वृन्दावने बने, बिहरन् राधया नित्यं श्रीकृष्णः०

अत्याश्चर्यानन्तशक्तिरत्याश्चर्य गुणाकरः, अत्याश्चर्यानन्दरसः श्रीकृष्णः०

महाचमत्कारिसर्वनिजशक्तिप्रवर्त्तकः, कृपाकुदौयदार्यनिधिः श्रीकृष्णः शरणं मम।

अविशेषेण सर्वस्य सर्वकामप्रपूरकः, सकृत्सत्याभासतोऽपि श्रीकृष्णः शरणं मम

स्मर्तॄणां वशयन्विश्वं वर्षन्सर्वार्थसंपदः, सर्वापद्भ्यस्सदा रक्षन् श्रीकृष्णः०

सकृत्तवाहमित्येवं वादिनेऽपि निजात्मदः, अत्यन्तापार कारुण्यः श्रीकृष्णः०

अनन्तपारे संमग्न कामकेलिरसाम्बुधौ, श्रीराधाप्राणहृदयः श्रीकृष्णः शरणं०

स्वतंत्रमेव सकलं कुर्वन्नुद्दामशक्तिमान् महारसो विश्वमूर्तिः श्रीकृष्णः शरणं०

स्वपदाम्भोरुहद्वन्द्वपरमप्रेमभक्तिदः, महानन्दमयो देव श्रीकृष्णः शरणं मम।

सर्वमन्यद्विनाप्येक मत्याभासेन सर्वदा, महास्वान्तद यः स्वामी श्रीकृष्णः०

श्रीकृष्णशरणापत्तिस्तोत्रमेतन्निरन्तरम् , यः पठेत्तस्य सर्वार्थाः सिध्यन्ति साधनैर्विना ॥२०॥

श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी

छप्पै

खेचर नर को शिष्य निपट यह अचरज आवै,
विदित बात संसार संत मुख कीरति गावै।
वैरागिन के वृंद रहत संग स्यामसनेही,
ज्यों योगेश्वर मध्य मनो सोभित वैदेही।
हरिव्यास तेज हरिभजन-बल देवीको दीक्षा दई,
श्रीभट्ट—चरण-रज परसिके सकल सृष्टि जाकीनई॥

—भक्तमाल श्रीनाभाजी

महिमंडलाचार्य श्रीहरिव्यासदेवजी महाराज का प्रादुर्भाव सम्वत् १३२० के लगभग हुआ था। ये आदिगौड़ ब्राह्मण-कुल में प्रगट हुये थे, तथा मथुरा इनकी जन्मभूमि थी। आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित होने पर भी विशेषतः निवासस्थान मथुरा में ही था, तीर्थ-भ्रमण के पश्चात् यहीं वापिस आ जाया करते थे, और ध्रुवटीला अथवा नारदटीला पर रहा करते थे। ये स्थानें अद्यावधि भी श्री-निम्बार्क-सम्प्रदाय के आधीन में सुरक्षित हैं। ये आचार्य श्रीश्रीभट्टजी महाराज के शिष्य थे, जो ब्रजभाषा के आदि-कवि हैं—जिन्होंने सर्व-प्रथम सम्वत् १३५२ में पद्यमय-काव्य 'जुगलसत' निर्माण की थी।

ये श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय में आचार्यगद्दी की इकतीसवीं पीढ़ी में एक प्रभावशाली एवं काव्यांगपूर्ण अनेक संस्कृत ग्रन्थ, तथा वाणी-रचयिता आचार्य हुए। ऐसे आचार्यपादों को कविश्रेणी में सम्मिलित करना इनके स्वरूप-तत्त्व के लिये उपहासास्पद है। यद्यपि 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः', 'कविम्पुराण मनुशासितारम्', आदि श्रुतियों, शास्त्रों के अनुसार कवि की उपाधि से ईश्वर भी उद्घोषित हैं, किन्तु इनका भी प्राकृतिक प्रपंच कर्मवाद ही अभीष्ट है। काव्य द्वारा कवि मानव-जीवन, मानव-अनुभूतियों और मानव-अंतर्वृत्तियों का भी वर्णन करता है; किन्तु ऐसे रसिकाचार्यों की वाणियें इन झंझटों से रहित हैं, और इनके द्वारा निर्मित अन्य काव्यें भी, यही इनमें विशेषता है। ये आचार्य स्वयं श्रीहरि अवतार, पार्षदावतार अथवा धर्म संस्थापनार्थ, श्रीहरिप्रेषित ही, अपार आत्मशक्ति-सिद्धि एक पारलौकिक शक्ति होते हैं। इनका कार्य-साधन भी केवल ईश्वराज्ञानुसार ही होता है। अपने ईश्वरीय-कार्य-पथ पर सफलता पूर्वक अग्रसर होकर, उसे पूर्ण करते हैं; इसलिये इनके भजन-साधन भी श्रीसर्वेश्वर-कृपा-जनित सफलता

के चरमावस्था पर पहुँचे हुये होते हैं। उनके इस कार्य में कुछ भी कमी नहीं रह जाती। इसी प्रकार इनकी वाणियें भी, पूर्ण काव्य-गुण-सम्पन्न होती हुई भी हैं, अन्तर्जगत में प्राप्त प्रत्यक्षानुभव की अनुभूति, अथवा उपास्यदेव के तन्मयता-अवस्था की सेवा में प्राप्त तदाकारता के अंकित वाक्य है। इसी प्रत्यक्षानुभूति को आचार्यों ने अपनी वाणियों में विसद् रूप से वर्णन की है। ये अपने द्वारा निर्मित ग्रंथों में यथास्थान पर पंचरसों को पुष्टकर निज-उपासना में दृढ़ हैं। इनकी अन्तर्जगत की उपासना और वहिर्जगतके दार्शनिक-सिद्धान्त भिन्न भिन्न हैं। इन्होंने अपनी उपासना को शिष्य-परशिष्यों द्वारा एवं दार्शनिक-सिद्धान्त को प्रत्येक-मानव-समाज में प्रचार कर विश्व में धर्म की उत्थान की है।

श्रीहरिव्यासदेवजी श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायाचार्य हैं—इसलिये इनका दार्शनिक-सिद्धान्त द्वैताद्वैतवाद हैं। इनके मत से ब्रह्म सर्वशक्तिमान, निर्विकार निर्गुण और सगुण भी हैं। अनन्तकोटि ब्रह्मांडों का सृजन, पालन और संहार ब्रह्म से ही होता है। इस ब्रह्मांड का निमित्तोपादान कारण ब्रह्म ही है, और चार अवस्थाओं में विभाजित है। प्रधान अवस्था अव्यक्त, निर्विकार, देशकालादि से अनवछिन्न, अचिंत्य और अनंत है। द्वितीय अवस्था में ईश्वरत्व के साथ सम्पूर्ण विश्व का भान है। तीसरे में रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श का यथाक्रम व्यष्टिगत अनुभूति है। जीव दो प्रकार के होते हैं—एक जो इन व्यष्टिगत रूपादि को ब्रह्म से अपृथक् अनुभव करते हैं, और जो अविद्या से रहित हैं। द्वितीय जो इन व्यष्टिगत रूपादि का अनुभव करते हैं। परन्तु इनके आश्रय-स्वरूप विभु आत्मा को नहीं जानते—इस कारण जो बद्ध हैं। चतुर्थ अवस्था वह है, जिसमें ब्रह्म विश्व के रूप में व्यक्त है। ब्रह्म के सिवाय विश्व की कोई अस्तित्व नहीं है। ब्रह्म दृश्य-अदृश्य, अणु-विभु, सगुण-निर्गुण सर्व-सामर्थ्य तथा सभी कुछ है, परन्तु ब्रह्म-सत्ता सदैव सर्वत्र एक रस है। जीव ब्रह्म से अंशा-अंशी सम्बन्ध है, ब्रह्म ही जीवरूपमें परिणत हुये हैं, तोभी निर्विकार हैं। जीव अणु और अल्पज्ञ है, मुक्त अवस्थामें भी अणु ही है। मुक्त और बद्ध में यही भेद है, कि मुक्त जीव जगत और अपने को ब्रह्म से अभिन्न मानता है और बद्ध नहीं। भगवान् श्रीकृष्ण ही ब्रह्म हैं, उनकी कृपा और सेवा प्राप्त कर परमानन्द को प्राप्त करना ही मुक्ति है। भक्ति प्रधान साधन है। भगवान के नाम, रूप, लीला, धाम का चिंतन और सेवा, उपासना करना ही भक्ति का लक्षण है।

वाणी रचना के समय दार्शनिक-तत्त्वों की विवेचना करना आचार्यपाद एवं रसिकों के उद्देश्य नहीं हुए, वे तो अत्यन्त मधुर शब्दों में अपने हृदगत भावों की अभिव्यक्ति करने में अग्रसर हुए हैं, किन्तु उनकी रचना में दार्शनिक विचारों की अभिव्यंजना होही जाती है—यह इनके ब्रह्म एवं धाम तत्त्व-वर्णन में स्पष्ट झलक है।

जो स्वभावतः दोषरहित, कल्याण, माधुर्यादि अनन्त-गुण-राशि चतुर्व्यूह एवं अन्य अवतारादि अंगी, स्वरूप, गुण, शक्ति-व्यापक, ब्रह्म रुद्रादि कारणों के कारण श्रीकृष्ण, और सहस्र सखियों द्वारा परिसेवित, भक्तों के अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि प्रदायिका, अनन्तगुण-राशि, माधुर्य-मूर्ति, श्रीकृष्णवामांगी श्रीराधिकाजी उपास्यदेव हैं।

इनके परमधाम पधारने के पश्चात् इनके शिष्य श्रीरूपरसिकजी ने हरिव्यासयशामृत-ग्रन्थ निर्मित की, किन्तु उसमें आचार्य-स्तुति एवं प्रशंसा के सिवाय इनकी परिचय सम्बन्धी ऐतिहासिक विषयों का सर्वथा अभाव है। यद्यपि आचार्य श्रीहरिपार्षदावतार या स्वयं श्रीहरिअंशावतार होने के कारण, उनके लिए कठिनसे कठिन ईश्वरीय-कार्य-साधन सम्भव होते हैं, ऐसे ही इनके भी अनेक चमत्कारपूर्ण ईश्वरीय-शक्ति-समर्थक-चरित्र प्रसिद्ध हैं, किन्तु श्रीनाभाजी-कृत प्रमाणिक भक्तमाल के आधार पर दो चरित्र उद्धृत करते हैं। संस्कृत आचार्य-चरित्र में भी यही वर्णित हैं। नाभाजी-कृत छप्पै परिचय के प्रारम्भ में ही है। उसके टीका में श्रीप्रियादासजी लिखते हैं—

'चढ़थावर गाँव बाग देखि अनुराग भयो,
लयो नितनेम करि चाहै पाक कीजिये,
देवी को स्थान काहू वकरालै मारो आनि,
देखत गिलानि इहां पानी नहिं पीजिये।
भूखे निसि गई भक्ति तेज मिटि गई,
नई देह धरि लई आई लखि मति भीजिये;
करो जू रसोई कौन करै कछु औरै भोई,
सोई मोको दीजै दान शिष्य करि लीजिये॥
करी देवी शिष्य सुनि नगर को सटकी यों,
पटकी लै खाट जाको बड़ो सिरदार है;
बढ़ी मुख बोलै हौं तो भई हरिव्यास-दासी,
जौ न दास होहु तौपै अभी डारों मार है।
आये सब भृत्य भये मानो तननये लये,
गये दुख पाप ताप किये भव पार है;

कोउ दिन रहे नाना भोग सुख लहे एक,
श्रद्धा कै श्वपच आयो पायो भक्तिसार है ॥

किंवदंती विविध चरित्रों के सिवाय विशेषत: इन छप्पै और कवित्तों से पता चलता है कि--इनके संग में सहस्रों वैष्णव साधु संतों की भीड़ रहती थी। जब ये तीर्थ परिभ्रमण अथवा धर्म-प्रचारार्थ मथुरा से भारत के अन्य भागों में जाया करते थे, तो वैरागीवृन्द इनके सङ्ग ही रहते थे। ये आचार्यस्वरूपानुकूल शास्त्रार्थ उपदेश एवं आत्मशक्त्यादि-प्रयोग द्वारा भक्ति और वैष्णव-धर्म का प्रचार करते थे। एक बार इसी प्रकारके भ्रमण में पंजाब के चढ़थावर नामक ग्राम में पहुँचे। ग्राम के निकट सुन्दर बगीचा और जलाशयादि देखकर उस दिवस का मुक़ाम वहीं पड़ा।

नित्य नियमादि से निवृत्त होकर श्रीठाकुरजी के लिये अमनियाँ करने की तैयारी हुई। इतने में सन्तों ने क्या देखा कि निकट ही स्थित देवी के मन्दिर में किसी ग्रामवासी व्यक्ति ने, एक बकरा लाकर बलि दी। यह काण्ड देखते ही इनके चित्त में ग्लानि हुई और उस स्थान का जल ग्रहण करना भी अनुचित प्रतीत हुआ। रात्रि भर भूखे रहे, इनकी भक्ति एवं तेज के प्रभाव से देवी की हिंसा वृत्ति मिट गई, और अहिंसा-व्रत धारण की। स्वयं इनके निकट पधारकर प्रार्थना की कि—'आप रसोई करें' तब आचार्यपाद ने आज्ञा की कि—'तुम एवं यहाँ के समस्त ग्रामवासी वैष्णव नहीं हो जायँगे, तबतक यहाँ का जल भी त्याज्य है।' उसी समय देवी इनसे श्रीगोपाल-मन्त्र ग्रहण कर शिष्या होगई। पश्चात् ग्राम के सरदार की सोते में खाट पलट दी और भय दिखाकर आज्ञा की, कि—'मैं श्रीहरिव्यासदेवजी की दासी होकर वैष्णव होगई, तुम भी समस्त ग्रामवासी सहित उनके शरण होओ।' देवी की आज्ञा मानकर समस्त ग्रामवासी शिष्य होगये। वहाँ कुछ दिन रहकर ये वैष्णव-धर्म का उपदेश करते रहे। वहाँ का एक श्वपच उस अवसर पर कहीं चला गया था। जब वह आया तो इस लाभ से वञ्चित रहजाने के कारण अत्यन्त व्याकुल हुआ, पश्चात् इनकी कृपा से उसने भी भक्ति-तत्त्व प्राप्त की। यह वैष्णवी देवी अद्यावधि भी जम्मू के निकट एक प्रसिद्ध तीर्थ है।

इनके सहस्रों शिष्यों में से द्वादश शिष्य प्रमुख हुए, जिन्होंने अपनी आत्म-शक्ति एवं विद्या-शक्ति से समस्त भारत में भक्ति एवं वैष्णव-धर्म प्रचार की, और विधर्मियों को नीचा दिखाकर धर्म की रक्षा की। उन द्वादशों शिष्यों के नाम ये हैं—'श्रीस्वभूदेव, श्रीवोहितदेव, श्रीहृषीकेशदेव, श्रीमाधवदेव, श्रीकेशवदेव, श्रीऊपरगोपालदेव, श्रीपर-

शुराम देच, श्रीवाहुवलदेव, श्रीगोपालदेव, श्रीमदनगोपालदेव, श्रीघमंडदेव और श्रीमुकुंददेव। इन्होंने अपने-अपने नाम से द्वादश द्वारा गद्दी स्थापित की। उक्त गद्दियों में से आठ के स्थान तो उपलब्ध हैं और शेष अज्ञात हैं।

इसके द्वारा निर्मित छै ग्रन्थ हैं। सिद्धान्तरत्नाञ्जलि, अष्टयाम-संस्कृत, श्रीनिम्बार्क-अष्टोतरशतनाम की टीका, तत्त्वार्थ-पंचक, पंच-संस्कार-निरूपण और श्रीमहावाणी। श्रीमहावाणी ही इनकी एकमात्र हिंदी रचना है। यह ग्रंथ श्रीश्रीभट्टजी द्वारा निर्मित श्रीजुगलसत का भाष्य कहा जाता है, किन्तु कई एक विषयों में जुगलसत से सर्वथा भिन्न और स्वतन्त्र है। जुगलसत की रचना में व्रज एवं नित्य-रस का समिश्रण रूपसे वर्णन है, पर महावाणी में शुद्ध नित्यविहार-रस वर्णित है। व्रज वृन्दावन-धाम पृथ्वी पर अवस्थित रहते हुये भी इसके उत्पत्ति, प्रलयादि कारणों से अभिन्न है। पुराणों के अनुसार ही यह भूमि सृष्टि और प्रलय के व्यवस्था से बाहिर है, और कृष्ण-स्वरूप-तत्त्व से अभिन्न सम्बन्ध-युक्त है, एवं परात्पर श्रीगोलोक-धाम से भी। वैसे ही महावाणी में वर्णित दिव्य चिन्मय श्रीवृन्दावन-धाम, गोलोक-धाम से अभिन्न सम्बन्ध रहते हुये भी भिन्न तत्त्व है। इस श्रीवृन्दावन-धाम और धामी का श्रीमहावाणी में इस प्रकार उल्लेख है—

'वेदतंत्र को मंत्र मनोहर श्रीवृन्दावन नित्यविहार;
सूत्तम कलरव जन्य ब्रह्म पर परमधाम को परमाधार।
निरवधि नित्य अखंडल जोरी गोरी स्यामल सहज उदार;
आदि अनादि एकरस अद्भुत मुक्ति परे पर सुखदातार।
अनंत, अनीह, अनावृत्त, अव्यय अखिल अंड आधीश अपार;
अंध्रि अब्ज आभूषण रव करि केतन केत लेत अवतार।
अचल अचिंत्य, अगम गुन आलय, अत्तर ते अत्तर अधिकार;
श्रीहरिप्रिया विराजत हैं जहाँ कृपासाध्य प्रापति सुखसार।

* * * *

अखिल अंड वैराट के थाट सब महावैराट के रोम के कूप;
सावकाशें उड़त रहत नित सहज ही परमैश्वर्य आश्चर्यमय रूप।
सो प्रथम एकही शून्य मधि सनि रह्यो जैसे त्रिसरेनुको रेणु सतअंश
याते दस-दसगुनी सहस्र-सत शून्य पुनि तिनते लख सहस्र महाशून्य अवतंश
तिन महाशून्य के शिखर पर तेज कौ कोटि गुन ते गुनो अतिअमित विस्तार
वहाँ निजधाम वृन्दाविपिन जगमगै दिव्य वैभवन को दिव्य आगार।
सूर के नीचे न शेष के ऊपर गोपुरहूते अगोचर ठौर;
श्रीहरिप्रिया विराजत हैं जहां युगलकिसोर सकल सिरमौर।

इसी श्रीवृन्दावन-धाम में सच्चिदानन्द अखिल ब्रह्मांडेश्वर, अव्ययपुरुष, अचिंत्येश्वर परमापर-धामाधिपति, सूक्ष्मकलरव ब्रह्म के भी ब्रह्म, श्रीसर्वेश्वर अपनी आल्हादिनी-शक्ति श्रीराधिकाजी के संग अहर्निश सुशोभित हैं। यही श्रीराधा अंतर्भूता हैं स्वयं श्रीकृष्ण इनकी आराधना करते हैं. इसलिये ये राधा कहलाती हैं। इन श्रीराधिकाजी के शरीर से ही गोपियां, श्रीकृष्ण की महिषियां, लक्ष्मीजी आदि उत्पन्न हुई हैं। ये श्रीराधा और श्रीकृष्ण रससागर रूप एक ही शरीर से क्रीड़ा के लिये दो हो गये हैं। ये श्रीराधिकाजी श्रीकृष्ण की सर्वेश्वरी सम्पूर्ण सनातनी-विद्या और प्राणों की अधिष्ठात्री-देवी हैं। दिव्य चिन्मय श्रीनित्यवृन्दावन-धाम में इन्हीं अपनी आल्हादिनी-शक्ति श्रीराधिकाजी के संग श्रीकृष्ण के अहर्निश विहार का नाम नित्यविहार रस है—इसलिये श्रीसर्वेश्वर श्रीकृष्ण भी नित्यविहारी हैं। यही दिव्य-शृङ्गार-रस श्रीमहावाणी में वर्णित है।

साम्प्रदायिक रसिकों के मतसे श्रीमहावाणी मूल-मन्त्रार्थ भी है। महावाणी से ही महत्वाणी का आभास होता है। इसका सूक्ष्म रूप भगवान श्रीहंस सनकादिकों के वाक्य द्वारा निःसृत है। श्रीरूप-रसिक ने कहा है—' आदिगिरा को नाम सही हरिबड़ेन की कहि जानों ता हरि के किये व्यास बाण सुख व्यास परमानो।' आदि गिरा अर्थात् अकार एवं इसी का अर्थ हरि है। यह श्रीसनकादिक, श्रीनिम्बार्कादि बड़े आचार्यों द्वारा कही हुई है। श्रीनिम्बार्कभगवान् ने रहस्यषोड़शी में कहा है—'अकारार्थो हरिप्रोक्तो……।' अकारार्थ हरि, उस हरि का ही व्यास अर्थात् विस्तार पूर्वक इन्होंने पांच सुख निर्माण की। अथवा इन्हीं के वाक्य हैं—'वायुर्यथा को भुवनं प्रविष्टो जन्ये-जन्ये पंचरूपो वभूव।' अर्थात् अकारार्थ हरि उसका रूप जो मन्त्र है—उस मन्त्र से प्रतिपादित जो हरिरूप मन्त्र है, उसके पंच पद से पाँच सुख निर्माण हुए। स्वयं श्रीमहावाणीकार ने कहा है—'निगमा-गमको सार तन्त्र को मन्त्र जो भारी।' अर्थात् निमागम (वेद-शास्त्र) के सार और तन्त्र शास्त्र के मन्त्र (कामबीज) जो यह महावाणी है—इसका अत्यन्त गम्भीर भावार्थ है।

महावाणी की भाषा शुद्ध व्रजभाषा है, एवं भावानुगामिनी है। इसमें, भावानुभाव, संचारी भावों से परिपुष्ट होकर भाव स्पष्टमूर्तिमान खड़ा है। ये पदावली लिखी हुई भी हैं दिव्य मानसिक, भावावेश में ही, अतएव तद्-अनुरूप इनमें कुछ भी कमी नहीं। भाषा यथास्थान में योग्यतापूर्वक व्यवहरित है, एवं भावानुरूप गम्भीर है। भाषा सद्गुणानुसार निराला प्रवाहमय है एवं शुद्ध तथा समुचितरूप से

नियंत्रित है। शब्दावली स्थानानुरूप अति सुन्दर अर्थ व्यक्त करने वाली, तथा गूढ़ हैं। इसके दिव्य-शृङ्गार-रस वर्णन के संग प्रसाद, माधुर्य अलंकारादि काव्य के सर्वसद्गुणादिकों से युक्त होने के कारण साहित्य-मर्मज्ञों के लिये ग्रन्थ अति श्रेष्ठ है। पदों में पदविन्यास, अर्थगाँभीर्थ पर मुग्ध होकर नेति-नेति कहते ही बनता है। महावाणी के भाव एवं काव्य-सद्गुणार्णव का थाह पाना अति कठिन है।

बड़े-बड़े रस-मर्मज्ञ भी इसके लावण्यभरी रचना एवं भाव-सौंदर्य पर मुग्ध हैं. तथा यथार्थ अर्थ कहने में असमर्थ हैं। 'माधुर्यं सौम्यत्वे' के अनुसार जिस रचना के सौम्यता को श्रवण करने से मन द्रवीभूत हो वही माधुर्य है, तथा 'आल्हादकत्वं माधुर्यं' अल्हादकता ही माधुर्य है, क्योंकि यह मन को द्रवीभूत करने वाला है। यह शृंगार-रस में अतिशय रहता है—इसे ही माधुर्य-गुण कहते हैं। यह गुण महावाणी में विशेषरूप से व्यवहरित है। 'ओजो दीप्तौ' दीप्ति ही ओज है, यह मन को तेजयुक्त करता है। महावाणी के पदों के श्रवण-मात्र से ही रसज्ञ-भावुक पुरुषों का मन भक्ति-भावावेश में तेज-युक्त हो जाता है। 'प्रसादोनैर्मल्ये' के अनुसार काव्य में शीघ्र प्रवेश कराने की शक्ति प्रसाद गुण में होती है, इससे साधारणता का भास नहीं, किन्तु चमत्कारिक आकर्षकता एवं विशेष शब्दाडम्बर से रहित विविध भावपूर्ण सुन्दर शब्द-प्रयोग का उद्देश्य है। महावाणी में एक ऐसी शक्ति विद्यमान है—जिससे वरवश चित्त आकर्षित होकर, भाव-सागर में गोता खाने लगता है। इन गुणों को भूषित करने वाला काव्य में अनुप्रासालंकार है, सो महावाणी में पर्याप्त है—इसलिये पदों की रचना सुस्वादु और प्रभावशाली हैं। विशेषता यह है कि किसी-किसी पदों में यह विशेष व्यवहरित होने पर भी भाषा भावानुगामिनी एवं स्वभाविक प्रवाहमय है। बहुत से वाक्यों में अनेकानेक स्पष्ट सुन्दर अर्थ भाषित होते हैं--जिससे पद कलवृक्ष सदृश्य प्रतीत होते हैं। इस 'श्लेष' गुण का भी इसमें विशेष चमत्कार है। पदों की रचनायें मुक्तक में हैं, किन्तु श्रीराधा, श्रीकृष्ण और सखियों की बोलन होने से कथा-प्रासंगिक-रूप से भी आस्वादन कर सकते हैं।

श्रीमहावाणी में पाँच सुख हैं, सेवा, उत्साह, सुरत, सहज और सिद्धान्त। सेवासुख में नित्यविहारी श्रीराधाकृष्ण की अष्टयाम सेवा वर्णित है। सखी भावावेशमें तन्मय होकर तथा अन्य झंझटों से अनावकाश होकर, श्रीप्रिया-प्रियतम की समयानुसार अष्टप्रहर सेवा में निमग्न रहने का ही नाम अष्टयाम—सेवासुख है। सेवासुख में यही

समय-समय के पद वर्णित हैं। इसमें प्रथम ३६ श्लोकों एवं एक स्तोत्र द्वारा सखी रूपा आचार्यपादों की वन्दना है, पश्चात् मंगला, शृंगार, मध्यान्ह, संध्या एवं शयनादि की सेवायें, स्तोत्रें, कार्य-प्रणाली सहित वर्णित हैं। इस सेवासुख की सेवा के अधिकार को, प्राप्त वही मनुष्य कर सकता है, जो महावाणी में ही वर्णित आचार्यपाद की आज्ञानुसार ही अपने जीवन को लौकिक-व्यवहारों से विरक्त होकर, एक सीमित साँचे में ढाल ले।

'....जाके दस पैढ़ी अति दृढ़ हैं; बिन अधिकार कौन तहां चढ़िहैं।
पहिले रसिकजनन को सेवै; दूजी दया हृदय धरि लेवै।
तीजी धर्म सुनिष्ठा गुनि हैं; चौथी कथा अतृप्त ह्वै सुनि हैं।
पंचमि पदपंकज अनुरागै; षष्ठी रूप—अधिकता पागै।
सप्तमि प्रेम हिये विरधावै; अष्टमि रूप ध्यान गुन गावै।
नवमी दृढ़ता निश्चय गहिवैं; दशमी रसकी सरिता वहिवैं...।'

यद्यपि नित्यविहार में नैमित्तिक उत्सवादि का अभाव है ; वहां प्रिया-प्रियतम नित्यकेलि की आनन्द से अनवकाश रहते हुए, अहर्निश प्रेमार्णव में निमग्न रहते हैं, और 'एक स्वरूप सदा द्वै नाम' के सत्यार्थ को व्यक्त करते हुये सुशोभित हैं। सखी-समाज भी इनकी इच्छानुसार अपनी-अपनी सेवा में निमग्न है, और रूपमाधुरी अवलोकन से ही अवकाश नहीं! तद्यपि आचार्यपाद ने एक विशेषा-नंद-प्रदत्त-उत्सवसुख वर्णन की है। इसमें नित्य वस्तु को नैमित-रूप से केवल इसीलिये कहा गया है। इससे सेवाधिकारी सखियों को नित्य-नवीन आनन्द अनुभव होता है।

सुरतसुख महावाणी का तीसरा भाग है, इसके अनुसार श्रीनित्यविहारी श्रीराधाकृष्ण परस्पर एक एक के सुरत-सागर में निमग्न रहते हैं। इसमें दिव्य सर्वोत्कृष्ठ रसके चरमावस्था का वर्णन है, श्रीप्रिया-प्रियतम के एक क्षण भी अनवकाश अवस्था में एक दूसरे के अद्भुत अपार मनमोहिनी स्वरूप पर मुग्ध रहते हुए अभंगकेलि का नाम सुरत-विहार है। जो परिपक्व होकर, इस सुरतसुख का ध्यान धरता है वह 'नेम, प्रेमते परे जो अति दुर्ल्लभ अधिकार' को प्राप्त करता है। यह रस अति गोपनीय और दुर्ल्लभ है।

सहजसुख में स्वाभाविक प्रेमावस्था में विभोरता का वर्णन है। इस सुख के अनुसार प्रिया-प्रियतम प्रेमवैचित्री-भाव में निमग्न हैं। परस्पर एक दूसरे के एक निकट विद्यमान रहते हुए भी बिछुरन

के भय से अधीरता है। कभी भावावेश में निमग्न होते हुए धैर्य-रहित होकर अतिशीघ्र मिलन की व्याकुलता है। परस्पर एक दूसरे के विशेष से विशेष किस प्रकार अपना सकें, इस अविष्कार के प्राप्त की अति शीघ्रता है। इस सुख में अति हित पूर्वक हृदयोल्लास के संग विलास है। यह सुख अति गोप्य नहीं है, किन्तु कर्म-हीन, संशय से मन, बुद्धि आच्छादित-जन, उपासना-तत्त्व से रहित बुद्धिवाले, एवं गुरु-मार्ग से वहिर्मुखों के लिये वर्जनीय है।

सिद्धान्तसुख एक अति गंभीर विषय है। इसमें उपास्य-तत्त्व, धाम-तत्त्व, सखीनामावली एवं महावाणी के गूढ़ विषयों की तालिका विस्तृत-रूप से वर्णित हैं। उपास्य-तत्त्व-वर्णन में माधुर्य एवं ऐश्वर्य का अद्भुत रीति से समिश्रण है। श्रीनित्यविहारी श्रीराधाकृष्ण के विभूति वर्णन के संग सर्वेश्वरता के सामर्थ्यत्व की अद्भुत अभिव्यंजना है। धामतत्त्व के परात्परता, सर्वोपरि सुन्दरता, अखण्ड-नित्यता का सुन्दर प्रतिपादन है। इस सिद्धान्त के अनुसार निराकार, अविकार, परब्रह्म, शुद्ध चैतन्य, निर्विशेष और सर्वव्यापक श्रीनित्यविहारी के चिदंशमात्र हैं। श्रीनित्यविहारी ही अखिल-ब्रह्माण्ड व्यापक हैं, अखिल अण्ड के आधार हैं। अपार माधूर्यमूर्ति, सर्वशक्ति संपन्न यही श्रीसर्वेश्वर अनेक रूप धारण करके अखिल ब्रह्माण्ड में लीला करते हैं—इत्यादि वर्णित है। सखी-नामावली में प्रमुख आठ सखियों के आठ-आठ एवं उनके भी आठ-आठ सखियों के नाम वर्णित हैं। योगपीठ श्रीवृन्दावनधाम-वर्णन इसमें, रत्न हैं। इस सुख में काव्य-शुषमा का भी विशेष रूप से अद्भुत चमत्कार है।

इस प्रकार इन आचार्यपाद के ईश्वरीय-शक्तिसम्पन्न, प्रभाव-पूर्ण-जीवन महत्व, एवं विद्या तथा काव्य प्रतिभा का जो कुछ वर्णन किया जाय वह सूर्य के सन्मुख दीपक दिखाना है। मिश्रबन्धु-विनोद में इनका विद्यमान संवत्, ग्रन्थों के नाम अशुद्ध हैं। उदाहरण में उद्धृत पद भी अन्य कवि का बनाया हुआ है, तथा उसमें इनके पूर्ण नाम का भी अभाव है। यही हालत वम्बई वेंकटेश्वर—प्रेस में प्रकाशित भक्तमाल में भी है, उसमें ये अनभिज्ञता—वस गृहस्थ लिखे गये हैं तथा श्रीहरिरामजी व्यास और इनके चरित्र को खिचड़ी बना दिया गया है, वह ठीक नहीं। इनके द्वारा निर्मित श्रीमहावाणी में से कुछ पद उद्धृत करते हैं —

[श्रीराधा स्तोत्र । राग सारंग]

जय नमो राधारसिकिनी । जय नमो मृदुमधुमुसुकिनी ॥
जय नमो प्रीतमवल्लभा । जय नमो प्रनतनसुल्लभा ॥
जय नमो पियमनरंजनी । जय नमो बिरहविभंजनी ॥
जय नमो प्रेमपयोधिनी । जय नमो रतिरसबोधिनी ॥
जय नमो सबसुखसागरी । जय नमो सब गुनआगरी ॥
जय नमो अद्भुतआननी । जय नमो मनहरमाननी ॥
जय नमो चन्द्रप्रभाहरा । जय नमो प्रेमापरपरा ॥
जय नमो कोकिककलरवा । जय नमो भवभंजनिभवा ॥
जय नमो वीरीचर्विता । जय नमो गुननिधिगर्विता ॥
जय नमो अधरप्रबालनी । जय नमो रदनसुढालनी ॥
जय नमो नासाचटकनी । जय नमो पियमनअटकनी ॥
जय नमो नकबेसरि धरा । जय नमो प्रीतम मनहरा ॥
जय नमो नैनविसालनी । जय नमो रूपरसालनी ॥
जय नमो अंजनअंजिता । जय नमो खंजनगंजिता ॥
जय नमो इत्तनआतुरा । जय नमो चितवनिचातुरा ॥
जय नमो भौंहेंसोहनी । जय नमो पियमनमोहनी ॥
जय नमो श्रुतितार्टकनी । जय नमो अलकनिबंकनी ॥
जय नमो आड़ललाटिका । जय नमो दिव्यसुहाटिका ॥
जय नमो सीससुफूलनी । जय नमो नीलदुकूलनी ॥
जय नमो सुभसीमंतनी । जय नमो रसबर्षंतनी ॥
जय नमो सुखसरसंतनी । जय नमो सुभदरसंतनी ॥
जय नमो गंडउदारनी । जय नमो चिबुकसुचारनी ॥
जय नमो कंठअदूषना । जय नमो जगमगभूषना ॥
जय नमो कंचुकिकसवनी । जय नमो नवरँगरससनी ॥
जय नमो उरजसुढारनी । जय नमो मनिगनहारनी ॥
जय नमो मुक्तादामनी । जय नमो अति अभिरामनी ॥
जय नमो उदरसुबेसनी । जय नमो नाभिसुदेसनी ॥
जय नमो सुंदरग्रीवनी । जय नमो सोभासीवनी ॥
जय नमो बाहुविचित्रनी । जय नमो परमपवित्रनी ॥
जय नमो चूरीचित्रनी । जय नमो मोहनमित्रनी ॥
जय नमो कंकनकंचना । जय नमो महारससंचना ॥
जय नमो पहुँचिप्रभावुका । जय नमो अगनितभावुका ॥
जय नमो हरिकरपाननी । जय नमो रतनविधाननी ॥
जय नमो मनिमुद्रावली । जय नमो नगहीरावली ॥

जय नमो नख-चन्द्रावली। जय नमो परमप्रभावली ॥
जय नमो करतलकलितनी। जय नमो रंगसुललितनी ॥
जय नमो कृसकटिराजनी। जय नमो किंकिनिबाजनी ॥
जय नमो पृथुलनितंबनी। जय नमो मनअवलम्बनी ॥
जय नमो रंगसुकेलिनी। जय नमो प्रीतमभेलिनी ॥
जय नमो जानुसुहेतकी। जय नमो पिंडुरिकेतकी ॥
जय नमो जेहरिहेमकी। जय नमो मूरतिप्रेमकी ॥
जय नमो गुल्फसुसाजिता। जय नमो नूपुरबाजिता ॥
जय नमो एड़ीअद्भुता। जय नमो रंगसुसंजुता ॥
जय नमो पद-पदपानभा। जय नमो सबसुखदानभा ॥
जय नमो अँगुरीचारुभा। जय नमो सुखदसुढारुभा ॥
जय नमो हंसकअनवटा। जय नमो सोहतशुभघटा ॥
जय नमो नखमनिबिसदनी। जय नमो पदतलरसदनी ॥
जय नमो कन्ताकामिनी। जय नमो नवघनदामिनी ॥
जय नमो छबिचंपकतनी। जय नमो सहजहिंसुखसनी ॥
जय नमो गौरांगीप्रिया। जय नमो स्यामाशुभश्रिया ॥
जय नमो रासबिलासिनी। जय नमो रहसिहुलासिनी ॥
जय नमो प्रेमप्रकासनी। जय नमो नेहनिवासनी ॥
जय नमो रंगबिहारनी। जय नमो पियहियहारनी ॥
जय नमो पियउरधारनी। जय नमो रसबिस्तारनी ॥
जय नमो अखिलानन्दनी। जय नमो बल्लभबन्दनी ॥
जय नमो पियमनफंदनी। जय नमो परमाकंदनी ॥
जय नमो जीवनिजीयकी। जय नमो प्रेमापीयकी ॥
जय नमो प्रेमप्रदायका। जय नमो नागरिनायका ॥
जय नमो प्रगलभभक्तिदा। जय नमो तुरियबिरक्तिदा ॥
जय नमो निगमागमसदा। जय नमो रसिकानंददा ॥
जय नमो राधानामिनी। जय नमो 'हरिप्रिया' स्वामिनी ॥३

[दोहा]

श्रीहरिप्रिया स्वामिनि प्रनमि पुनि प्रनमो पिय प्रान।
कमलनैन श्रीकृष्ण कहि बर्नौं बिबिध बिधान ॥

* स्तोत्र *

जय श्रीकृष्ण कमलदल-लोचन दुखमोचनि-मृगलोचनि राधा ।
जय श्रीकृष्ण स्यामघन सुंदर दिब्यघटा तन गोरी राधा ॥
जय श्रीकृष्ण रसीलोनागर रसिक-रसीली-नागरि राधा ।
जय श्रीकृष्ण छबीलो-दूलह नवल-छबीली-दुलहिनि राधा ॥
जय श्रीकृष्ण मनोहर-मूरति परम-मनोहर-मूरति राधा ।
जय श्रीकृष्ण सदा सुख-सागर सहज सदा-सुख सिंधुनि राधा ॥
जय श्रीकृष्ण राधिका-बल्लभ कृष्ण-बल्लभा रसिकिनि राधा ।
जय श्रीकृष्ण प्रियामनमोहन प्रानप्रिया मनमोहनि राधा ॥
जय श्रीकृष्ण चारु-चंद्रानन सुधा-सदन-ससिबदनी राधा ।
जय श्रीकृष्ण पद्म-परिपूरन पूरन-परम पद्मिनी राधा ॥
जय श्रीकृष्ण तमाल तरुनछबि कनकलता छबि छाजति राधा ।
जय श्रीकृष्ण मीनमन मानहुँ नीर्मल-जलजनु-जीवनि राधा ॥
जय श्रीकृष्ण नित्य-नवरंगी नवरंगनि-रँग-भीनी राधा ।
जय श्रीकृष्ण सुकोमल-सींवा अति-सुकुमारी-सींवा राधा ॥
जय श्रीकृष्ण अमित गुन आगर अति अद्भुत गुन आगरि राधा ।
जय श्रीकृष्ण बिलास-बिभाकर रूप-रसाल प्रभाकरि राधा ॥
जय श्रीकृष्ण सुभग सुभ सुंदर सरस सुभग सुभ सुंदरि राधा ।
जय श्रीकृष्ण बिलास बिसारद बिसद बिलास बिचत्तनि राधा ॥
जय श्रीकृष्ण दिब्य द्युति कन्द्रप कोटि दिब्य रति राजति राधा ।
जय श्रीकृष्ण किसोर नित्य-नव नित्य-नबीन किसोरी राधा ॥
जय श्रीकृष्ण नीलमनि-आभा कंचनमनि-आभा अति राधा ।
जय श्रीकृष्ण लाड़िलो प्रीतम प्यारी प्रिया लाड़िली राधा ॥
जय श्रीकृष्ण सिरोमनि-सर्बस सर्ब-सिरोमनि-सुंदरि राधा ।
जय श्रीकृष्ण अखिल-परमापर परमापर-प्रानेसा राधा ॥
जय श्रीकृष्ण कल्पतरु तरुवर तरुतम कल्प-तरोवरि राधा ।
जय श्रीकृष्ण हरे हरि स्वामी 'श्रीहरिप्रिया' स्वामिनी राधा ॥४॥

[दोहा]

पराभक्ति रति बर्द्धिनी स्यामा सब-सुख-दैनि ।
रसिक मुकुटमनि राधिके जय नवनीरज—नैनि ॥

[राग-गौरी । स्तोत्र]

जयति जय राधा रसिकमनिमुकुट मनहरनी त्रिये।
पराभक्ति-प्रदायनी करि कृपा करुना—निधि प्रिये॥
जयति गोरी नवकिसोरी सकलसुख-सीमा श्रिये। परा०
जयति रति-रस-बर्द्धिनी अति-अद्भुता-सदया हिये॥ परा०
जयति आनँद-कन्दनी जग-बन्दनीवर बदनिये। परा०
जयति स्यामा अमित-नामा बेद-बिधि निर्बाचिये॥ परा०
जयति रासबिलासिनी कल कला-कोटि प्रकाशिये। परा०
जयति बिबिध बिहार-कवनी रसिक-रवनी शुभधिये॥ परा०
जयति चंचलचारुलोचनि दिब्यदुकुला भरनिये। परा०
जयति प्रेमा प्रेम-सीमा कोकिलाकल-बैनिये॥ परा०
जयति कंचनदिब्य-अंगी नवलनीरजनैनिये। परा०
जयति बल्लभबल्लभा आनन्द-कलभा तरुनिये॥ परा०
जयति नागरि गुनउजागरि प्रान धन मन हरनिये। परा०
जयति नौतम नित्यलीला नित्यधाम निवासिये॥ परा०
जयति गुनमाधुर्य्यभूपा सिद्धिरूपा सक्तिये। परा०
जयति शुद्ध-सुभाव-सीला स्यामला सुकुमारिये॥ पर०
जयति जश-जग प्रचुर परिकर 'श्रीहरिप्रिया' जीवनिजिये। परा० ५

[दोहा]

नव-नव रंगि त्रिभंगि जय स्याम सु अंगी स्याम।
जय राधे जय हरिप्रिये श्रीराधे सुखधाम॥

[रागगौरी-तालरूपक]

जय राधे जय राधे राधे जय राधे जय श्रीराधे।
जय कृष्ण जय कृष्ण कृष्ण जय कृष्ण जय श्रीकृष्ण॥
स्यामा-गोरी नित्य-किसोरी प्रीतम-जोरी श्रीराधे।
रसिक रसीलो छैल-छबीलो गुन-गरबीलो श्रीकृष्ण॥
रासबिहारिनि रसबिस्तारिनि पिय-उर-धारिनि श्रीराधे।
नव-नव रंगी नवल-त्रिभंगी स्याम-सु अंगी श्रीकृष्ण॥
प्रानपियारी रूप-उजारी अति-सुकुमारी श्रीराधे।
मैन-मनोहर महा-मोदकर सुन्दरवर-तरु श्रीकृष्ण॥

सोभा-श्रेनी मोभा-मैनी कौकिल-बैनी श्रीराधे।
कीरतिवंता कामिनिकंता श्रीभगवंता श्रीकृष्ण ॥
चन्दाबदनी कुंदारदनी सोभासदनी श्रीराधे।
परमउदारा प्रभा-अपारा अति-सुकुमारा श्रीकृष्ण ॥
हंसा-गवनी राजति-रवनी क्रीड़ाकवनी श्रीराधे।
रूपरसाला नैन-बिसाला परम-कृपाला श्रीकृष्ण ॥
कंचन-बेली रतिरस-रेली अति-अलबेली श्रीराधे।
सबसुखसागर सबगुनआगर रूपउजागर श्रीकृष्ण ॥
रवनी-रम्या तरुतर-तम्या गुन-आगम्या श्रीराधे।
धाम निवासी प्रभाप्रकासी सहज-सुहासी श्रीकृष्ण ॥
शक्त्याह्लादिनि अतिप्रियबादिनि उर उन्मादिनि श्रीराधे।
अँग अँगटोना सरस-सलोना सुभग-सुठौना श्रीकृष्ण ॥
राधानामिनि गुन अभिरामिनि 'हरिप्रिया' स्वामिनि श्रीराधे।
हरे-हरे-हरि हरे-हरे-हरि हरे-हरे-हरि श्रीकृष्णा ॥६।

[दोहा]

रंग रँगीली सहचरी रंग रँगीली आदि।
श्रीराधा रंग बिहार को बरनत हैं उनमादि ॥

[राग-खम्माच । स्तोत्र]

श्रीराधा रंग-बिहारिनि। श्रीराधा पिय-उर-धारिनि ॥
श्रीराधा सुख-विस्तारिनि। श्रीराधा रति-सुख-सारिनि ॥
श्रीराधा अति-सुकुमारी। श्रीराधा स्यामा-प्यारी ॥
श्रीराधा रूप-उजारी। श्रीराधा योबन-वारी ॥
श्रीराधा नेह-नबीना। श्रीराधा प्रेम-प्रबीना ॥
श्रीराधा रति-रस-भीना। श्रीराधा हित-आधीना ॥
श्रीराधा गुन-गरबीली। श्रीराधा छैल-छबीली ॥
श्रीराधा सोभा-सीली। श्रीराधा रसिक-रसीली ॥
श्रीराधा स्याम-सहेली। श्रीराधा कंचन-बेली ॥
श्रीराधा गर्व—गहेली। श्रीराधा अति-अलबेली ॥
श्रीराधा नित्य-किसोरी। श्रीराधा गुन-निधि-गोरी ॥
श्रीराधा मनमृग-डोरी। श्रीराधा प्रीतम जोरी ॥

श्रीराधा सब-सुख-सागरि । श्रीराधा सब-गुन-आगरि ॥
श्रीराधा रूप—उजागरि । श्रीराधा नवनित-नागरि ॥
श्रीराधा दिव्य—सुदामिनि । श्रीराधा भव्य-सुभामिनि ॥
श्रीराधा कंता-कामिनि । श्रीराधा भा अभिरामिनि ॥
श्रीराधा सोभा--श्रेनी । श्रीराधा मोभा—मैनी ॥
श्रीराधा पंकज-नैनी । श्रीराधा कोकिल-बैनी ॥
श्रीराधा मृदुमधु--हँसिता । श्रीराधा द्विजदुति-लसिता ॥
श्रीराधा पिय हिय बसिता । श्रीराधा रति-रस-रसिता ॥
श्रीराधा कृष्ण-बल्लभा । श्रीराधा कृपा-सुल्लभा ॥
श्रीराधा कोमल-अंगा । श्रीराधा मैन—तरंगा ॥
श्रीराधा उरसि-उमंगा । श्रीराधा केलि—अभंगा ॥
श्रीराधा कुंज-निवासिनि । श्रीराधा रास-बिलासिनि ॥
श्रीराधा प्रेम-प्रकासिनि । श्रीराधा प्रभा-प्रभासिनि ॥
श्रीराधा बारिज- बदनी । श्रीराधा सुषमा--सदनी ॥
श्रीराधा बिसद-बिरदनी । श्रीराधा मोहन-मदनी ॥
श्रीराधा हंसा-गवनी । श्रीराधा राजति-रवनी ॥
श्रीराधा क्रीड़ा-कवनी । श्रीराधा दुखहि-दवनी ॥
श्रीराधा जीवनि जियकी । श्रीराधा प्यारी पिय की ॥
श्रीराधा हितू सुही की । श्रीराधा रहसि रसीकी ॥
श्रीराधा लावनि-ललिता । श्रीराधा अमृत-सलिता ॥
श्रीराधा कोमल-कलिता । श्रीराधा करुना-बलिता ॥
श्रीराधा चंपक-बरनी । श्रीराधा चारु-अभरनी ॥
श्रीराधा पियहिय-हरनी । श्रीराधा प्रेम-बितरनी ॥
श्रीराधा कुंचित--केसा । श्रीराधा सहज-सुबेसा ॥
श्रीराधा महा-सुदेसा । श्रीराधा प्रिय प्रानेसा ॥
श्रीराधा बामा भामा । श्रीराधा स्यामा-रामा ॥
श्रीराधा नित्य-सुनामा । श्रीराधा नित्य-सुधामा ॥
श्रीराधा मोहन-मित्रा । श्रीराधा परम-पवित्रा ॥
श्रीराधा चातुर-चित्रा । श्रीराधा चारु-चरित्रा ॥

श्रीराधा पराभक्तिदा । श्रीराधा शुद्धशक्तिदा ॥
श्रीराधा सानुरक्तिदा । श्रीराधा गुनबिरक्तिदा ॥
श्रीराधा रंगरँगीली । श्रीराधा हियेबसीली ॥
श्रीराधा बारबड़ीली । श्रीराधा लाड़लड़ीली ॥
श्रीराधा मोहनिमूरति । श्रीराधा सोहनिसूरति ॥
श्रीराधा परमापूरति । श्रीराधा नित अविछूरति॥
श्रीराधा सुंदरिसोभा । श्रीराधा माधुरि मोभा ॥
श्रीराधा आनँदगोभा । श्रीराधा लोचनलोभा ॥
श्रीराधा रूपमंजरी । श्रीराधा रंगमंजरी ॥
श्रीराधा नवलमंजरी । श्रीराधा नेहमंजरी ॥
श्रीराधा सबसुखसाधा । श्रीराधा गुननिअगाधा॥
श्रीराधा हरनीबाधा । श्रीराधा "हरिप्रिया" राधा ॥७

[दोहा]

कृष्णरूप श्रीराधिका राधे रूप श्रीस्याम ।
दर्शन को ए दोय हैं, हैं एकहि सुखधाम ॥

राधेकृष्ण राधेकृष्ण कृष्ण कृष्ण राधे राधे ।
राधेस्याम राधेस्याम स्याम स्याम राधे राधे ।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण नवघन गोरी राधे ।
राधेस्याम राधेस्याम सुंदर जोरी राधे ।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण अद्‌भुत रूपा राधे ॥
राधेस्याम राधेस्याम सहज -स्वरूपा राधे ।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण मोहनि-मूरति राधे ॥
राधेस्याम राधेस्याम सोहनि-सूरति राधे ।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण नवरँग-भीना राधे ॥
राधेस्याम राधेस्याम परम प्रवीना राधे ।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण कोमल-अंगा राधे ॥
राधेस्याम राधेस्याम सहज-अभंगा राधे ।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण अति सुकुमारा राधे ॥
राधेस्याम राधेस्याम सुखद-सुढारा राधे ।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण अति कमनीया राधे ॥

राधेस्याम राधेस्याम रति-रमनीया राधे।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण परमा-पुंजे राधे॥
राधेस्याम राधेस्याम रहसि-निकुंजे राधे।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण सबसुख-सारा राधे॥
राधेस्याम राधेस्याम परम-उदारा राधे।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण प्रिय प्रानेसा राधे॥
राधेस्याम राधेस्याम दिब्य-सुवेसा राधे।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण मनहर-मित्रा राधे॥
राधेस्याम राधेस्याम बिसद-बिचित्रा राधे।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण मंगल-नामा राधे॥
राधेस्याम राधेस्याम दिवि-गुनधामा राधे।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण नीरज—नैना राधे॥
राधेस्याम राधेस्याम आनँद—ऐना राधे।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण नित्य—बिहारा राधे॥
राधेस्याम राधेस्याम प्रान-अधारा राधे।
राधेकृष्ण राधेकृष्ण रूप-उजारी राधे।
राधेस्याम राधेस्याम 'हरिप्रिया' प्यारी राधे॥८॥

दोहा—करना सब दुख चूरना मम सरना सुकुंवारि।
श्रीराधा प्रानाधिके जयति कृष्ण सुखकारि॥

[राग-बिलावल। तालरूपक]

जयति श्रीराधिका कृष्णसुखसाधिका सुगुणअगाधिका मम शरण्यं।
जयति हरिभामिनी कृष्णघनदामिनी मत्तगज-गामिनी मम शरण्यं॥
जयति रतिबर्द्धिनी सौभगसुसर्द्धिनी प्रीतमसमर्द्धिनी मम शरण्यं।
जयति नवनागरी सर्बसुखसागरी दिब्यगुनआगरी मम शरण्यं॥
जयति दिब्यंगनी स्यामनिजसंगनी प्रेमरसरंगनी मम शरण्यं।
जयति रसदायिका पियशयनशायिका नित्यनवनायिका मम शरण्यं॥
जयति मृदुहासनी नीलवरबासनी परमप्रकासनी मम शरण्यं।
जयति मनमोहनी सर्बतनसोहनी दयासंदोहनी मम शरण्यं॥
जयति मृगलोचनी दृष्टिदुखमोचनी कृष्णमनरोचनी मम शरण्यं।
जयति आनंदनी गुह्यगुनछंदनी पीयमनफंदनी मम शरण्यं॥

जयति निधिरूपिका अद्भुतानूपिका भागवती भूपिका मम शरण्यं ।
जयति कलकेलिनी रंगरसरेलिनी मदनमदपेलिनी मम शरण्यं ॥
जयति जनपालनी लोचनबिसालनी रसिकारसालनी मम शरण्यं ।
जयति जनतूरणा सर्बदुखचूरणा परानन्दपूरना मम शरण्यं ॥
जयति प्रियश्रेष्ठनी महारसबेष्ठनी परापरमेष्ठनी मम शरण्यं ।
जयति मनिमालिका मंजुरससालिका प्रानप्रतिपालिका मम शरण्यं ॥
जयति पियपोसिका नित्यतनतोषिका सोकसरसोषिका मम शरण्य ।
जयति सुउदारनी प्रियवदाचारनी चरितचितहारनी मम शरण्यं ॥
जयति जगतितुपमा नितंबनिमनरमा बर्त्तुलस्तनसमा मम शरण्यं ।
जयति पद्मानना बेणिवरबन्धना केसमनरंजना मम शरण्यं ॥
जयति श्रुतिगोचरा सरसकरुनाकरा रासरसतत्परा मम शरण्यं ।
जयति नगभूषणा पीयजलजपूषना स्यामसंतूषना मम शरण्यं ॥
जयति हरिकामिनी मनहरानामिनी प्रियाअभिरामिनी मम शरण्यं ।
जयति वरलालिता लालहितसंहिता कृष्णाहृदयस्थिता मम शरण्यं ॥
जयति छबिछाजिता कृशकटिबिराजिता नित्यसुखसाजिता मम शरण्यं ।
जयति भव-भंजनी भक्तमनरंजनी सर्बसुखसंजनी मम शरण्यं ॥
जयति सुभसुंदरी महारसमंजरी विस्वगुनवल्लरी मम शरण्यं ।
जयति हेमांगदा स्यामसेब्यासदा रतिरहसिरंगदा मम शरण्यं ॥
जयति हितआलया नेहनीनिर्भया मंजुलमहाशया मम शरण्यं ।
जयति रसरासनी कादिकउपासनी बिपिनपतिबासनी मम शरण्यं ॥
जयति हरि-धीमता रसमया-रसरता कृष्ण-अंतरगता मम शरण्यं ।
जयति मृदुलाकृता, स्नेहनि-सुधाधृता सौरभा-सादृता मम शरण्यं ॥
जयति वरसर्बिता ताम्बूल-चर्बिता गोरी-गुन-गर्बिता मम शरण्यं ।
जयति पिय-तल्पगा निर्मला-कल्पगा रंगरति-शिल्पगा मम शरण्यं ॥
जयति विम्बाधरा कृष्ण-चुंबितवरा सर्ब-सुख-विस्तरा मम शरण्यं ।
जयति पिय-पूजिता कलस्वर-कूजिता कोकिल-चमूजिता मम शरण्यं ॥
जयति मनिकुंडला कामला-कोमला कुंजकौतूहला मम शरण्यं ।
जयति रुचिरारमा रसभरा-संगमा निगम-गुह्यागमा मम शरण्यं ॥
जयति पोयूषदा-प्रेयसी पारदा सौहृदा-सारदा मम शरण्यं ।

जयति रसवर्षनी चित्तआकर्षनी नित्यहियहर्षनी मम शरण्यं ॥
जयति गुनआवली कुटिलअलकावली सुभ्रशोभावली मम शरण्यं ।
जयति हरिजल्पिता चारुतिलकंकिता कृष्णपदबंदिता मम शरण्यं ॥
जयति गुनअर्नवाकिंकिनी कलरवा नित्यनवउत्सवा मम शरण्यं ।
जयति सौभागिनी प्रीतिप्रतिपागिनी कृष्णअनुरागिनी मम शरण्यं ॥
जयति जनआर्तिहा इन्दिरासुस्पृहा पीयमुखमधुलिहा मम शरण्यं ।
जयति कृष्णस्तुता कृष्णगुनगनरता कृष्णमनबंछिता मम शरण्यं ॥
जयति सुखसद्मिनी विषमधुपपद्मिनी अन्त:अछद्मिनी मम शरण्यं ।
जयति हरिभर्तिनी भर्तृबसवर्तिनी स्यामसंधर्तिनी मम शरण्यं ॥
जयति दुखखंडनी चारुकलगंडनी कृष्णउरमंडनी मम शरण्यं ।
जयति प्रानाधिके कृष्णआराधिके 'हरिप्रिया' राधिके मम शरण्यं ॥१॥

[दोहा]

कृष्ण-सरोवर हंसनी कृष्ण-तरोवर बेलि ।
राधे राधे राधे जय श्रीराधे रस—रेलि ॥

[राग–विलावल । तालरूपक]

राधे राधे राधिके । जयराधे राधे राधिके ॥
राधे राधे राधिके । श्रीराधे राधे राधिके ॥
कृष्णकान्त मनोहरा जय० सर्ब गुनगन तत्परा श्री० ॥
कृष्ण मन मधुकर हिता जय० मालतीबन महकिता श्री० ॥
कृष्ण आनँद-दायका जय० नित्य नौतम नायका श्री० ॥
कृष्ण सुखदा सागरी जय० अमित रूप उजागरी श्री० ॥
कृष्ण चित आकर्षनी जय० सदा रस घन बर्षनी श्री० ॥
कृष्ण-पंकज पोषनी जय० समर हिय दुख शोषनी श्री० ॥
कृष्ण हिय-सर हंसनी जय० सकल लोक प्रसंशनी श्री० ॥
कृष्ण तरुवर बल्लरी जय० सदा अमृत रस भरी श्री० ॥
कृष्ण मन-मृग डोरिका जय० बसीकरन किसोरिका श्री० ॥
कृष्ण प्रान कपूरहित जय० महागुंजा मंजुलित श्री० ॥
कृष्ण अलि मन रंजनी जय० सहज सुभित कंजनी श्री० ॥
कृष्ण चातक स्वातिकी जय० जीव जीवनि थातिकी श्री० ॥
कृष्ण कनक सुहागनी जय० द्रवकरा बड़भागनी श्री० ॥

कृष्ण जलचर जलासय जय० अहनिस आधारमय श्री० ॥
कृष्ण रस आस्वादनी जय० उर सदा उन्मादनी श्री० ॥
कृष्ण संपति सर्बसा जय० प्रेयसी प्रीतम बसा श्री० ॥
कृष्ण तनघन दामिनी जय० श्रिया 'हरिप्रिया' स्वामिनी श्री० ॥

[दोहा]

कहत परस्पर सहचरी उर में भरी उछाहु ।
निरखि-निरखि या सुख समै लेहु नैनन को लाहु ॥

[राग-सारङ्ग । एकताल]

नैनन को लाहो लीजिये !
गोरी स्याम सलोनी जोरी सुरस माधुरी पिजिये ॥
छिन-छिन प्रति प्रमुदित चितचावहिं निजभावहिं में भींजिये ।
'श्रीहरिप्रिया' निरखि तन, मन, धन, लै न्योछावर कीजिये ॥११॥

[राग-सारङ्ग । तिताल । दोहा]

कृष्णवल्लभा लाड़िली राधावल्लभ लाल ।
बसहु निरंतर हीय में आनँद रूप रसाल ॥

पद—जीवनधन राधाबल्लभलाल !
कृष्णबल्लभा रसिकिनि राधा बारिज-बदनी बाल ॥
जुगलकिसोर किसोरी जोरी गोरी स्याम तमाल ।
बसहुँ निरंतर हिये 'श्रीहरिप्रिया' आनँद रूप रसाल ॥१२॥

[राग-कल्यान । दोहा]

नखसिष सुंदर बरनवर अंग अंग आभर्न ।
जोरी स्यामा-स्याम की बनी मैन-मन-हर्न ॥

पद—स्याम-स्यामा बनी जोरी मनहरनरी ।
कोटि कंदर्प-रति दिब्य दंपति दरस-
सरस अनुराग अँग अंग बर बरनरी ॥
मुकुट मंजुल चिकुर चन्द्रिका नीलपट-
सीस सोभा सुमन मिलि मुक्त लरनरी ।
तिलक लल्लाट ताटंक कुंडल श्रवन-
गंड मंडल झलक अलक सो ढरनरी ॥
भोंह सोहनि चपल नैन अंजन सुरति-

रंग रंजनि सुकंज गंज खंजरनरी ।
नासिका अग्रमुक्ता हलनि झलमलति-
देखि दुति दलमलति अमित दुति धरनरी ॥
बदन सुख-सदन मधि रदन-रस रगमगे-
रदछद अरुनई हू ते अति अरुनरी ।
मंद सस्मित मधुरवत् रसन रसरते-
अति अलंकृत किये दिये भुज गरनरी ॥
कनक केयूर चूरी कटक कंकने-
पहुँचि-कर पत्र मुन्दरी सुकर तरनरी ।
नखनि-मनि जोति लखि होत लोयन ललक-
पलक चाहत न छवि छलक ते टरनरी ॥
कसिव कंचुकि कसी अति लसी कंचुकी-
बसी उर उर्बसी श्रकन की सरनरी ।
पदिक चौकी सरी चौसरी लरी मिलि-
लसत सुंदर तनु दरज दुख दरनरी ॥
कटि निकट जटित कटि पटी पुरट सुघटी-
पृथु नितंबनि अटी निज पटांबरनरी ।
जेहरि पान पद परसि पायल परत-
अनुसरत ऐसे आदेस आचरनरी ॥
परम रमनीय महा रंजित नूपुर रतन-
खचित हंसक नवट नखन रँगररनरी ।
पदतली ललित कोमल कमल दलन सम-
निरखि-दृग-मधुप गति होत विस्मरनरी ॥
उदित आनंदमय इंदु इकरस सदा-
रसिकसिरमौर पटतर जु वर परनरी ।
अमित अद्भुत प्रभा पुंज 'श्रीहरिप्रिया'-
सकल सोभा सुकृत सम न कोउ करनरी ॥२३॥

[राग-विहागरो । दोहा]

सोभा हद सोहत सरस रदछद चित्र अमंद ।
लै लरमुक्ता वारहीं लखि जगमग मुखचंद ॥

पद—जगमगे चन्द्रबदन की जोति।

अति सुंदर सोभा की सीमा लखि चखचौंधी होति॥

प्रीतम के मुख-अम्बुज रस करि चित्रित अमित उद्योति।

लखि सुख 'श्रीहरिप्रिया' हितू सखी बारति हैं लरमोति॥१४॥

[राग–केदारो। दोहा]

बिबिध भाँति गुन, भेद–गति रीझि भींजि अँग अंग।

नचत नवल नागर दोऊ रहसि रास–रस-रंग॥

पद–नचत नवल–नागर रहसि रासरंगे।

सुभग बन पुलिनथलकलपतरुतलबिमल मंजुमंडल कमलदल अभंगे॥

रुनुनुनूपुर रमकि झमकिहंसक झुनुनु कुनुनु किंकिनि कलित कटि सुधंगे।

चरन की धरन, उच्चरन सहक सुरन, हरन–मन न करन उर उमंगे॥

भृकुटि मटके लटे, लटकि अटके उझटि, झटकि नासापुटे चटकि चंगे।

अलग लग दाट अपटे झपट झट रपट, सुघट सांगीत रट थुंग थुंगे॥

खिरर थिररे तृवट,तिर्प उरपे उरनि मुरनि सिर दुरनि अति गति सुढंगे।

चखनि चलवनि चपल, चिंदचाली चलन, चच्चरीभेद भ्रुवनि बिभंगे॥

रीझि रस भींजि रीझवार दोउ रसिकवर परस्पर पी सुधाधर समंगे।

मत्त अनुराग अंगे अनंगे रमत रंग 'श्रीहरिप्रिया' नित्य संगे॥१५॥

[राग–सोरठ। दोहा]

कहत बिहारीलाल बलि सुनिये बिहारिनि बैन।

अर्द्धनिसा आई यहै अब कीजै सुखसैन॥

पद—बिहारिनि कीजिये सुखसैन।

अमित बदन सोहै मनमोहै झपकोहै नीरज-नैन॥

अलबेली आनंद की हो आई अधरैन।

'श्रीहरिप्रिया' स्वामिनी हितू सहेलिनि की सुखदैन॥१६॥

[राग–बसंत। इकताल। दोहा]

श्रीराधा रस रूपिनी सनी रूप गुन भार।

लिये संग अँग संगिनी बिहरें विपिनबिहार॥

पद–बिहरें श्रीराधा बनबिहार। अति भरी सरस गुन रूप भार।

आनंद उमगि अँग अंग सैन। चित चमतकार मन मथत मैन॥

मधुराकृत कुंडल कलकपोल। रस लेत देत प्रति छिन अतोल।

रति बनी योवनी तनी हेम। सुखसनी सोहनी परम प्रेम ॥
कलकुंजनि-कुंजनि कमलकेलि। मिलि सचिपायो रतिरंग रेलि ॥
लहलही ललितकुल लता लूमि। मृदु मंजु मनोहर भिली भूमि ॥
बर बरन-बरन सम सुमन भोर। मकरंद संदमति भ्रमत भौंर ॥
मुदि मदन मान मर्दन महीप। करिलीनी अपनो सुबस दीप ॥
जय 'श्रीहरिप्रिया' ह्वै निसंक। लड़लड़ी लाड़ लड़ लड़े लंक ॥१७॥

[राग-बसंत । इकताल । दोहा]

मृदुमूरति मन भाँवते करत कुज कलकेलि।
चलिहो सहचरि छबि जहाँ अवलोकें अलबेलि ॥

पद-चलिचलिहो अलि अवलोकें जाय। जहाँ रमत रसिक रसभरे भाय ॥
बृन्दाबन जमुनाकुंज केलि। दोउ बिलसहिं नागरि नवनवेलि ॥
कछु कही जात नहिं बात बैन। सुख देखतही बनि आत नैन ॥
मृदुमूरति मनभव नवकिसोर। अँग अंग उठे छबिकी हिलोर ॥
इक पहिलेही रगमगे रंग। पुनि आनि परयो होरी प्रसंग ॥
अलबेलि प्रिया अलबेलो लाल। अलबेली संग सहेली-जाल ॥
अलबेलो खेल मच्यो अनूप। अलबेले मन भाँवते भूप ॥
चोवा चंदन बंदन अरु अबीर। भये सोरबोर सबके सरीर ॥
तकि-तकि परस्पर करत मार। तूटि-तूटि परत भूषन अपार ॥
डफताल बैन बाजे मृदंग। सहनाई महुवरि मिलि उपंग ॥
बीना मुखचंगा सुर रसाल। कल अमृत कुंडल इभ कपाल ॥
कोलाहल सबदिसि रह्यो छाय। बिचबिच हो-हो बोलत सुहाय ॥
पिय प्यारी दिये दोउ भुजा अंस। क्रीड़त सुख सरवर राजहंस ॥
तन गौर-स्याम अभिराम जोरि। लाजें लखि कंदर्प-रति करोरि ॥
बलि 'श्रीहरिप्रिया' अनुराग फाग। निरखहिं जिन-जिनके धन्यभाग ॥

[राग-विहागरो । दोहा]

फूलमहल फुलवारि में फूलसिंगार किये।
श्रीहरिप्रिया बैठे दोऊ फूले फूल हिये ॥

पद—देखो सखी ! फूलन की फुलवारी।
फूले फूल-महल में बैठे फूलि-फूलि पिय प्यारी ॥

फूलनके सिर मुकुट बिराजे फूलन माँग सँवारी।
फूलनकी कलँगी जगमग छबि फूलनकी चंद्रिकारी॥
फूलनके आभूषन पहिरे फूलन कंचुकि सारी।
फूलनकी अँगिया उपरैना फूलई लरी लहँगारी॥
फूलन शिखर फूलको मंडप फूलनके छाजारी।
फूलनकी छबि देत झरोखा अरु फूलन की जारी॥
फूलमई सब ठौर-ठौर फबि फूल रही फुलवारी।
फूल चौकमय फूल-फूलकी छूटत फूल फुहारी॥
फूल सिंहासन आसपास ठाढ़ी फूलि सबै सहचारी।
फूल-फूलकी सौंज लिये कर फूलन फूल शृंगारी॥
फूलन चमर ढुरावति फूली लै फूलन बिजनारी।
ब्यारत ब्यार सुगंधनकी लपटें मन-हरत महारी॥
कहा कहों कछु फूल फूलकी सोहै अति सोभारी।
'श्रीहरिप्रिया' फूल फूलन पर फूलकरौं बलिहारी॥१९॥

[राग–आनंदसिंधु। तिताल। दोहा]

फूलमई बन लखि गई तनमनकी सब सूल।
फूलमई उर फूलके कहा कहों सुख फूल॥

पद—हौं कहा कहों सुखफूलमई।
फूलहिं फूल फबी सब बनमें तनमनकी सब सूल गई॥
फूल दिसनि बिदिसनि में फूली छिति अंबर में फूल छई।
फूल लता, द्रुम सरित सरनमें खग-मृग सबठाँ फूल ठई॥
फूल निकुंज निलय निकरनि में बर्न-बर्न में फूल नई।
"श्रीहरिप्रिया" निरखि नैनन छबि फूलनके उर फूल भई॥२०॥

[राग-सारंग। ताल झप। चम्पक।]

कुंजबिहारिनि कुंजबिहारी बनि बैठे चंदन चित्रसारी।
चंदन अंग सिंगार किये हिये चंदनसम सीतल सुखकारी॥
घसि चंदन घनसार सुहृदनी करि अर्चन चर्चे पियप्यारी।
'श्रीहरिप्रिया' प्रसन्न बदनकी बारबार छबि ऊपर वारी॥२१॥

[राग-सारंग। तिताल। दोहा]

रदरस चंदन चित्रकरि लेत मदनमन मोहि।

श्रीहरिप्रिया अँग अंगकी अद्भुत छबि रहे जोहि ॥

पद–सुंदरवर बिबि दिबि चंदनके अँग-अँग अद्भुत चंदन सोहै।
चित्रित चित्र बिचित्र रदन रस मदन कोटि मनको मोहै॥
तन मन सकल भए सीतल तऊ कल नहिं परत है परत बिछोहै।
'श्रीहरिप्रिया'की केलि कलावलि हरषत निरखि सखी जन जोहै॥२२

[राग–सारंग। इकताल]

दोउ जल-क्रीड़ा–रस रचे।
स्यामा-स्याम सुरत-सरिता में मगन अतन तनक न बचे॥
सोहत सहज सुभग उर लागे मर्कत कंचन मनि खचे।
'श्रीहरिप्रिया' बिमल बन बर्षत निरखत खग-मृग मद मचे॥२३॥

[रागमलार। तालझप। दोहा]

चहल पहल भई महल में गई अहल तरसाय।
अद्भुत बर्षा बर्षहीं घनदामिनि हरषाय॥

पद—आजबन अद्भुत बर्षा बर्षी।
सजल स्यामघन सँग सो दामिनि बर भामिनि हिय हर्षी॥
चहल पहल भई सकल महल में गई अहलनि तन तर्षी।
'श्रीहरिप्रिया' मिलि रही निरंतर हितू सहेलिनि सर्षी॥२४॥

[राग–मलार तालचम्पक। दोहा]

जमुना तट संघट बिटप जहँ कोकिल कलबैन।
ठाढ़े भुजअंसनि दिये देखहुरी भरी बैन॥

पद—देखो सखि! दोऊ कदमठाढ़े।
जमुनातीर भीर तरुवनि की कोकिल कूजति गाढ़े॥
भुजा परस्पर अंसनि दीने अंग अनंगनि बाढ़े।
'श्रीहरिप्रियाजू' रतिरस भीने सुरति-सिंधु ते काढ़े॥२५॥

[रागमलार। तालरूपक। दोहा]

रमन तीज सबसहचरी चली जुगल मिलिसंग।
सावन सहज सुहावनो अति बढ़ावनो रंग॥

पद—सहजसुहावनो दिन आज।
मास सावन सुख बढ़ावन पुरवनो मनकाज॥१॥
कंज-कुंजन ते चली मिलि सहचरी सजि गोल।

मनहु आई अरसि ते ए उतरि पुतरिन टोल ॥२॥
प्रमुदि पद बंदन कियोकल कह्यो बचन सुभाषि ।
आई वलि या तीज के त्योहार को अभिलाषि ॥३॥
देखिये जगमगत कैसी लगत प्यारी भूमि ।
हरित रंग सुहावनी पर आवनी छबि ऊमि ॥४॥
सुनत श्रवन सुदेस बैना चले आनँद ऐन ।
प्रिया जू के अंश भुजदिये लिये सहचरि सैन ॥५॥
झुंड झुंडनि उमगि दामिनि घेरि बिच घनस्याम ।
कोउ आगे कोउ पाछे कोउ दछिन बाम ॥७॥
एक एकनि ते अधिक उपजावहीं कौतूह ।
लहरिदार सुढार गावत हंस गवनि समूह ॥८॥
दृष्टि-पथ करि मिथुन मन्थम सकल बनकी वेलि ।
जाय जमुनातट चढ़े नवरंग झूलनि झेलि ॥९॥
देति झोटा सहचरी आनंद उर न समाय ।
अलक अंचर हारते हटि रहे कटि लपटाय ॥१०॥
देखि छबि तृन तोरहीं चहुँ ओर खग,मृग, मोर ।
मिलि परस्पर कहत जय जय जयति जुगलकिसोर ॥११॥
तैसेई घन आय घुमड़्यों दरस दंपति हेत ।
निरखि सोभा सहज ह्वै तन बदन बुंदनि देत ॥१२॥
चपल चपला चमकि चहुँदिसि वारहीं निजप्रान ।
रमकि झमकनि देखि अपनो परिहर्यो अभिमान ॥१३॥
त्रिबिध सीतल मंद सौरभ पवन गवन सुदेस ।
चरन बंदन करन को वलि कियो आनि प्रवेस ॥१४॥
सर्ब रितु संपदा रितु रूप पावष धारि ।
आई वलि छवि देखिबेको हरषि हीय मझारि ॥१५॥
देहु इनहि दयानिधे कछु कामना फल जोय ।
भजत भाव अनन्य ह्वै ह्वै शुद्ध अंतः सोय ॥१६॥
सहज, सुख, उत्साह, सेवा, सुरति संपतिसार ।
बिलसहीं दोउ हुलसि हिय में तीज को त्योहार ॥१७॥

धन्य जिनके भाग्य हैं जे निरखहीं भरिनैन।
हितू 'श्रीहरिप्रिया' को सुख सदा आनँददैन ॥१८॥२६॥

[राग—मलार। तालचम्पक। दोहा]

नवल निलय नीरज महा आँगन अंग रसाल।
नवल हिंडोरे झूलहीं आलीरी नवलाल ॥

पद—आलीरी झूलत हैं नवलाल नवल हिंडोरना॥

नवल वृन्दाबिपिन अवनी सहज सुखद रसाल।
ललित लतिका लपटि रहि लहलही तरु तमाल ॥१॥
फूल फुल दल बिमल झलमल बरन-बरन बिसाल।
भयो सुभित सकल वन घन मुदित मधुक रसाल ॥२॥
नवल कुंजनि कुंज प्रति-प्रति रही अति छबि जाय।
उमड़ि-उमड़ि सुघाटघटसों घटा घुमड़ी आय ॥३॥
बकनि पाँति सुभाँति दमकनि दामिनी दरसाय।
त्रिबिधपवने गवन की मनरवन लेत रमाय ॥४॥
नवल निर्मल नीर जमुना बहत तरल तरंग।
तहां कमलकुल डहडहे अँग अंग रंग सुरंग ॥५॥
जुगतटी नगजटी सुमन सो अटी सौरभ संग।
तीर तीरनि तरुन की छबि भीर उदित उतंग ॥६॥
नवलचातक शुक पिकनि की मधुर धुनिसुनि मंद।
कुहुक कै कै केकि कोकनि नृत्यकरत सुछंद ॥७॥
बजनि बाजनि बिबिध आली सुमिलि चाली चंद।
तैसिये रमकनि झमकि गति में बढ़त अति आनंद ॥८॥
नवल नीरज निलय आँगन रच्यो रंग हिंडोर।
तहाँ झूलत फूल फूले उभय नवलकिसोर ॥९॥
पुलक प्रेमानंद में सुख बढ़यो नाहिन थोर।
अंग अंगनि सहचरी छबि भरी लेत हिलोर ॥१०॥
अरुन बरन पाटंबरन की फबि रही फहरानि।
चपलचखि चितवनि लसी ए बसी मृदु मुसकानि ॥११॥
नवलडाड़ी कर गहे दोउ झूमिझुकि रस लेत।
मृदुलअंग मनोज मोहन सुरत संग निकेत ॥१२॥

चंद्रिका की चटक मंजुल मुकुट अति छबि देत।
किरत कबरी कुसुम रंजन गिरत गुलिक उपेत ॥१३॥
नवलकेलि कला कुतूहल रमत रहसि उमाहिं।
रुष लिये दोउ रसिक सन्मुख सुख न बरन्यो जाहिं ॥१४॥
सखी सहेली सहचरी छबि निरखि दृग न अघाहिं।
हितू 'श्रीहरिप्रिया' बिलसत हुलसि हीयनि माहिं ॥१५॥२७॥

[राग-धनाश्री । इकताल । दोहा]

प्रानवारि बलिहारि लै सुधि वुधि सकल बिसारि।
बदन सुधानिधि निरखि के फूली तन सहचारि ॥

पद--सहचरि फूली अंग न माई।
बदन सुधानिधि निरखि स्याम को सबमिलि मोद बढ़ाई ॥
वारत प्रान लेत बलिहारी तन, मन सुधि बिसराई।
गावत गीत पुनीत महल में धुनि अंबर छिति छाई ॥
भरि-भरि मोतिनथार परस्पर डारत अति छबि पाई।
परमप्रेम रस बोरी गोरी निरखत नैन सिराई ॥
छूटत पट आभूषन टूटत सुख लूटत अधिकाई।
जय जय जय रव करि करि बोलत डोलत डोल सुहाई ॥
भादोकृष्ण रोहिनी आठे अर्द्धनिसा जब आई।
प्रगटे 'श्रीहरिप्रिया' प्रानधन भई सबन मनभाई ॥२८॥

[राग-गौरी । इकताल । दोहा]

बहु साधन हिय जियभरे चुनि-चुनि सुमनसुरंग।
साँझी खेलत साँझ मिलि पिय प्यारी दोउ संग ॥

पद--पियसंग बिहारिनि लाड़िली मिलि खेलत साँझीसाँझ हो।
चूँटत सुमन चुचाय के बहु भाय हिये जिय माँझ हो ॥
इंदीवर कलकली ललीवर कोकनँदन कर लीनी हो।
सुभग गोद में दवटि मोदसो नारि नवाय नबीनी हो ॥
पियबासे, सुम, सुही, सेवती, सदा सुहाग बसंती हो।
चुनि-चुनि चारु चँम्वेलिनबेली सु फेलि लड़ेलिलसंती हो ॥
सोन सुगन्धी, जानराय पिय कर पकराय प्रवीना हो।
सरस गुलाल, गुलाव मौलसिरी मेलि भई लवलीना हो ॥

लै लै फूल दुकूलन में अनुकूल अलौकिक नीके हो।
मधुक मालती जाति यूथकी करबीरन हर हीके हो॥
अन-अन भाँति रंग रंगन के सकल सुगंध सुहाये हो।
चतुर चोंप चित चाढ़े बढ़ि-बढ़ि गाढ़े रंग बढ़ाये हो॥
चहल पहल निज महल कुंज कोरनि कल भीतिलिपाई हो।
रची सँवारि सहेलिनि-सम्मत मन अभिलाष पुराई हो॥
पूजो परम प्रीति सचि स्यामा-स्याम सम्पूरन साधा हो।
स्वरनथार भरि भोग धरत ढरि हरनबितन तन बाधा हो॥
देय दृगंचल रहे तनक तजि चंचलता सजि मौना हो।
पुनिपीयूष पिवाय पुलकतन दै बीरी रुचिरौना हो॥
नीराजन करि चरनन सिरधरि कहत उचरि मृदुबैना हो।
देवी सदा प्रसन्नबदन अए महा अनुग्रहऐना हो॥
सुफल-प्रदा विसदा जसदा रसदा दवनी दुख-द्वन्दा हो।
त्रिभुवन अधिपति इश्वरी अति बितरन उर आनंदा हो॥
सुख विलास बिलसत साँझी, साँझी माझी सुखसानी हो।
"श्रीहरिप्रिया" निहारि नवलछबि, वारि-वारि पीवें पानी हो॥ २९॥

[राग-केदारो। तालयात्रा। दोहा]

तत थेई उघटति सुगति अति अंग अंग रँगररी।
श्रीरसिकिनिजू गावहीं रासमध्य रस भरी॥

पद—रास में रस भरी रसिकिन जू गावें।
स रि ग म प ध नि प नि ग म प ध नि न न न न न
न न न न न अनअना सुगति उपजावैं॥
थ्रि गड़दा थ्रिगड़दा त त त त थेई थेइय तत बहुत
गति, भेदजुत परनि समुझावैं।
द्रमिकिं द्र द्र द्र न न द्र न न द्रं द्रं द्रुमांक मृदंग,
'श्रीहरिप्रिया' सहचरि बजावैं॥ ३०॥

[राग-केदारो। तालचम्पक। दोहा]

रंग भरे गुन रस भरे साँवल गौर सहास।
दोउ रसिक मनमोहने सरस नृत्यत रास॥

पद—नृत्यत रसरास रसिकमनमोहन, दोउ बहियां जोरैं।
रंग भरे रस भरे गुन भरे सोहत साँवर गोरैं॥
कुं कुं कुं भुं कुं कुँ भुक भनन भनन भीमां मांद्री मांद्री मां मृदंग घोरैं॥
ध ध म फ ध फ फ ध धं म फ धां म फ धां तां तां तानन तोरैं॥
मुकुटलटक अरु चटकचंद्रिका भृकुटिमटक चित चोरैं।
'श्रीहरिप्रिया' प्रसन्नबदन रीझि-रीझि सिर ढोरैं॥ ३१॥

[राग—केदारो। इकताल। दोहा]

देखौ देखौरी सखी! चिदानंद घन रूप।
प्यारी राधे को बन्यो वृन्दाविपिन अनूप॥

पद—प्यारी राधे को वृन्दावन, देखोरी चिदानंदघन।
तैसिय सरद उज्यारी राका रुचिकारी, तैसोइ त्रिबिधि बहै पवन सननसन॥
कुंज कुंज द्रुमवेलि प्रफुल्लित अलवेली भेली रस झूमि झूमि रहि रति रेलीतन॥
तहाँ 'श्रीहरिप्रिया' हुलास भरे रच्यो रास रसिक प्यारे लाल तत्ता थेई
थेई उघटत न न न न न॥ ३२॥

[राग—खमाच। दोहा]

कला चिबुक लिये चरन में नइनइ गति उपजाय।
नृत्यत प्रेम उमंग सो ए दोऊ छबि पाय॥

पद—ए दोउ नृत्यत छबि पावैं।
करे करन में चिबुक चरन में नइ-नइ गति उपजावैं॥
हँसनि लसनि दशननि की दमकनि चितवन चित्त चुरावैं।
भृकुटि बिलास चपल आयत अति अंखियन मार मचावैं॥
रीझि-रीझि रस-भींजि परस्पर प्रेम उमग उमगावैं।
"श्रीहरिप्रिया" निसंक अंक भरि लै-लै लंक लगावैं॥ ३३॥

[राग—खम्माच। तिताल। दोहा]

सुघट सुरनि संघट उघट भीदी बीली भीन।
रूपउज्यारे रास में, नृत्यत री रसलीन॥

पद—रास में नृत्यतरी! रसभीने।
प्यारी प्यारे रूप उज्यारे दोउ गरबहियाँ दीने॥
थेई-थेई रट सुघट उघटहीं सुरसंघट परवीने।
उरप तिरप में तृवट सुलप थट अलग लाग दट लीने॥

थुंकट थुं थुंकट अपट झपट झट, झ्रां झ्रां झ्रकटत झीने।
'श्रीहरिप्रिया' भीदी बीली भों, न न न न न न न न कीने ॥ ३४ ॥

[दोहा]

जैसिय नगमनि जोति तन जगमगात सुखसाज।
तैसिय निसि दीपावली बिलसत दंपति आज ॥

पद—बिलसत आज दिवारी दंपति।
जैसिय नगमनि जोति जगत तन तैसिय सुमन बेलि तरु संपति।
तैसिय कृष्ण निसा नीलांबर उड़गन से मुक्ता लर कंपति।
मंगलचार उचार कमलमुख मधुर-मधुर बानीवर जंपति ॥
हाव, भाव युत करत कटाछै मानहु मंद दीप शिष लंपति।
'श्रीहरिप्रिया' निरखि छबि रीझी मंद मुसक किधों दामिनि चंपति ३५

[राग-रामकली। तालझप। दोहा।]

करत रहौ निसि दिन दोऊ अद्भुत रस को मेह।
देखि-देखि जीऊँ सखी! सुख की सोभा एह ॥

पद--कहिन परै सोभा या सुख की।
मेरे नैनन को सर्वस धन जीऊँ देखि-देखि दुति मुख की ॥
और कछू भावत नहिं जिय में लगी रहौ लग इक याही रुख की।
'श्रीहरिप्रिया' करत रहौ निशिदिन अति अद्भुत बर्षा पीयूष की ३६।

[राग-रामकली। दोहा]

तुमहिं बनत जो बनत नहिं अनत सनत किहि ठाउं।
अब जो अति गति भई सब, दर्श देहु बलि जाउं ॥

पद—नेक दर्शाइये दर्श वलि जाउं!
अब तो अति गति भई निरखि नैनन नई दई ओ दई सो लई वलि जाउं।
तुमहिं जो बनत सो बनत और न कहूं अनत नहिं सनत सुनि बिनै वलि जाउं ॥
'श्रीहरिप्रिया' जिनहिं लखि जिजियतुहैं जगत दीजियतुहैं दगहिं हर्ष वलि जाउं ॥

[राग—रामकली। तालझप। दोहा]

तुव पद प्रापत लालसा लगी रहत उर मोर।
अहु आनँदनिधि स्वामिनी हौं बलिहारी तोर ॥

पद -हौं वलि वलि आनंदनिधे अब!
तव पद प्रापति की रहै लालस बाल कहौं यह कौन विधे अब?

जानि परी जिय में न कछू यह बानि सदा सुखदानि रिधे अब।
'श्रीहरिप्रिया' अहो स्वामिनि तो बिन नाहिन सूझत सर्व सिधे अब।३९

[राग—रामकली। दोहा]

पद— बिलसौ दोउ लाल मेरे हियसदन सुखसने।
सुरत रसलीन अँग-अँग नागर-नवल कमल की माल लह लही डहडह तने॥
मुकुट की लटक अरविंदपदपरसिनी सरसनी समर अद्भुत सुआनंद घने।
'श्रीहरिप्रिया' ललित उर सो मिली झिलमिली दिलमिली दीपति दुति जोर जोबन जने ॥ ४० ॥

[राग-टोड़ी। तालझप। दोहा]

सफल मनोरथ होत सब आवत हिये जितेक।
मेरे नैनन को अरी यह अहार है एक॥

पद—अरी मेरे नैनन को अहार।
कल न परै पलएक बिना मोहिं अवलोके सुखसार॥
सकल मनोरथ सफल होत तब करत हिये संचार।
'श्रीहरिप्रिया' प्रानजीवनधन को यह सुरत बिहार॥४१॥

[राग—टोड़ी। दोहा]

कमल कुमुदिनी वृंद के दायक उर आनंद।
जयति सुरति रनधीर बिबि, विसद रूप रबिचंद॥

पद—जयति सुरति रनधीर दोउ कुंवर कुलमंडने खंडने दर्प कंदर्पदल के।
विसदवरवेस रसिकेस समबय-सुघर समरसुखरूप सिरमनि सकल के॥
अद्भुतानंद के कंद कमनीयकलचंद रबिवृंद कुमुदनि कमल के।
'श्रीहरिप्रिया' प्रानपोषनप्रवर प्रतिदिन छिनछिन दरन दुख पलहि पलके॥४२

[राग—बिहागरो। तालझप। दोहा]

अँग-अँग अनँग अड़े दोऊ अनुकूले चितचाड़।
सोहत हैं श्रीहरिप्रिया सुखसंपति लड़ि लाड़॥

पद—सोहत हैं लड़लड़े लाड़ आज।
अँग अँग अनँग अड़े अनुकूले बढ़े बितन चित चढ़े चाड़ आज।
लसनि दसनि मृदु मधुरहँसनि में परत मनोहर गंड गाड़ आज॥
'श्रीहरिप्रिया' सुखसंपति दंपति रतिपति के अति देत आड़ आज॥

[राग–विहागरो । दोहा]

किये पान रस मत्त मन अँग संगिनि की सैल ।
उमगभरे मिलि चले दोऊ कुंजकुटी की गैल ॥

पद—चले मिलि कुंजकुटी की गैल ।
उमग भरे अँग-अँग ररे अँग-संगिन की सैल ॥
किये पान रस मत्त परस्पर छकनि छके दोउ छैल ।
'श्रीहरिप्रिया' प्रसन्न बदन अलबेले अलक लड़ैल ॥ ४४ ॥

[राग–केदारो । इकताल । दोहा]

तुम बिन स्वामिनि सुखनिधे को समझे यह मर्म ।
मोहि देहु पद-परम प्रिय है जु तुमहि सब शर्म ॥

पद—प्रिया मोहि दीजै हो पदपर्म ।
प्रनतन पाल कृपाल कृसोदरि है तिहरो यह धर्म ॥
तुम विन अहो सुकुमारि शिरोमनि को समझे यह मर्म ।
'श्रीहरिप्रिया' स्वामिनी सुखनिधि है जु तुमहिं सब शर्म ॥ ४५ ॥

[राग-भैरव । दोहा]

एकहिं तन मन एकहीं साँचे ढरे सुढंग ।
जोरी अद्भुत दुहुन की रँगी सहजसुखरंग ॥

पद—सहज सुखरंग की रुचिर जोरी ।
अतिहि अद्भुत कहूं नाहिं देखी सुनी सकल गुनकला कौशल किसोरी ॥
एकही द्वै जु द्वै एकही दीपहिंदिन किहिं साँचे निपुनई करि सुढोरी ।
'श्रीहरिप्रिया' दर्शहित दोय तन,दर्शवत् एक तन,एक मन,एक दोरी ॥४६॥

[राग-भैरव । दोहा]

तो पदपंकज की सदा रहौं जु मधुकर होय ।
मन, वच, क्रम मेरे न कछु और कामना कोय ॥

पद—और कामना मोहि न कोई ।
मन, वच, क्रम करि रहों निरंतर तुव पद-पंकज मधुकर होई ॥
अहु वलि जाउं बिहारिनि मेरी जीवन निज जिय जानउ जोई ।
'श्रीहरिप्रिया' सहज सबहीके अंतर गति की समझति सोई ॥४७

[राग–ललित । दोहा]

निरखि-निरखि संपति सुखै सहजहि नैन सिराय ।
जीजतु हैं वलि जाउं या जगमाहीं जस गाय ॥

पद—जुगलजस गाय-गाय जीजिये।
या जगमें वलि जाउं अहो अब जीवनफल लीजिये॥
निरखि-निरखि नैनन सुखसंपति सहज सुकृत कीजिये।
'श्रीहरिप्रिया' बदन-पर पानी वारि-वारि पीजिये॥४८॥

[राग-बिलावल। तिताल। दोहा]

अमित रूप-धरि कोउ कछु करत न टहल अघाऊं।
अति उदार सुकुमारि अहु यहै मनोरथ पाऊं॥

पद-यहै मनोरथ निज उर मेरे दंपतिकी निज टहल मनाऊं।
अमित रूपधरि कोउ कछु,कोउ कछु करति रहौं नाहि अघाऊं॥
तुमहौ परमउदार अहो सुकुमारशिरोमनि यह बर पाऊं।
'श्रीहरिप्रिया' लाड़िलीलाल लड़ाय अहो यों बितवाऊं॥४९॥

[राग-बिलावल। ताल-चम्पक। दोहा]

बड़े भाग्य पाईजु हम जीवनप्रान अधारि।
जोरी रसिकसिरोमनि सहज सदासुखकारि॥

पद-रसिकसिरोमनि जोरीजू। नव-नित्य-किसोर किसोरीजू॥
सहज सदा सुखकारीजू। यह जीवनप्रान हमारीजू॥
बड़े भाग्य हम पाईजू। बरनी नहिं जाय बड़ाईजू॥
नवल-निकुंज-निवासीजू। उर आनँद प्रेम प्रकाशीजू॥
गौर-स्याम तन सोहैजू। घनदामिनि उपमा कोहैजू॥
रूप अनूपम राजैंजू। लखि-कोटि काम रति लाजैंजू॥
सहज सनेह सनेहीजू। ए एकप्रान द्वै देहीजू॥
सब सोभाके सागरजू। नवनागर रूप-उजागरजू॥
आनँद आल्हाद स्वरूपाजू। सत, असत परे परभूपाजू॥
मूरति सब सुखरासीजू। ए अद्भुत प्रेमउपासीजू॥
रंग रँगीले सुंदरजू। परधाम प्रकास पुरंदजू॥
उपजीविन के उपजीवीजू। दंपति सुखसंपति दीवीजू॥
मंगल-मोद प्रदायकजू। गुनआगर स्वतैस्वभायकजू॥
निरवधि नित्य-बिहाराजू। पावें जिहिं वार न पाराजू॥
'श्रीहरिप्रिया' सलोनेजू। आगे भए न अब कोई होनेजू॥५०॥

[राग–आसावरी । इकताल । दोहा]

पूरन-प्रेम-प्रकाश के परी पयोनिधि पूरि ।
जय श्रीराधा रस-भरी स्याम सजीवनिमूरि ॥

पद—जय श्रीराधिका रसभरी ।
रसिक सुंदर साँवरे की प्रानजीवनि-जरी ॥
गौर-अंग-अनंग-अद्भुत सुरति रंगनि ररी ।
सहज-अंग अभंग-जोरी सुभग साँचे ढरी ॥
परमप्रेम-प्रकास-पूरन पर-पयोधिनि परी ।
हितू 'श्रीहरिप्रिया' निरखति निकट निज सहचरी ॥५१॥

[राग–आसावरी । इकताल । दोहा]

सदा सनातन एकरस सदा बसत सब काल ।
श्रीराधा—रानी जहाँ राजा—मोहनलाल ॥

पद—जय जय बृन्दावन रजधानी ।
जहाँ बिराजत मोहन राजा श्रीराधा सी रानी ॥
सदा सनातन इकरस जोरी महिमा निगम न जानी ।
'श्रीहरिप्रिया' हितू निजदासी रहति सदा अगवानी ॥५२॥

[राग–आसावरी । दोहा]

अमृत जस जुग लाल कौ या बिन अचौ न आन ।
मो रसना करिबो करो याही रस को पान ॥

पद—करौ मो रसना यहि रस पान ।
लाड़िली लालन को मधु-अमृत या बिन अचौं न आन ॥
याही छक में छके रहौ दृग अहोनिसा उन्मान ।
मुदित रहौं नित 'श्रीहरिप्रिया' को गाय-गाय गुनगान ॥५३॥

[राग–आसावरी । दोहा]

नैन, बैन, अरु श्रवन, उर, कर, पद, शिर सब अंग ।
मो बित नित लगि रहौ यहां प्रिया संग रसरंग ॥

पद—मो बित लगौ नित इहि ठाम । प्रियाजू के काम ॥
नैन राधे बसो मूरति बैन राधे नाम ;
श्रवन राधे सुजस कीरति हृदय में बिश्राम ॥

कर लगौं परिचर्य्या हू में पद लगौं परिक्राम;
मधुप ह्वै मन रमो मो इहि विपिन में अभिराम ॥
टरहु जिन इहि ठौरहूते अहुनिसा सब जाम ;
चरनरज 'श्रीहरिप्रिया' की करौं शिरपर धाम ॥५४॥

[राग—भैरव । दोहा]

सूक्ष्म कलरव जन्य पर वेद तंत्र को मंत्र ।
बृन्दावन 'श्रीहरिप्रिया' नित्यबिहार स्वतंत्र ॥

वेदतंत्र को मंत्र मनोहर श्रीबृन्दावन नित्य–बिहार ।
सूक्ष्म कलरव जन्य ब्रह्म पर परमधाम को परमाधार ॥
निरवधि नित्य अखंडल जोरी गोरी स्यामल सहज उदार ।
आदि,अनादि,एक-रस अद्भुत,मुक्ति परे पर सुख दातार ॥
अनंत,अनीह,अनावृत,अव्यय,अखिल अंड अधीश अपार ।
अंघ्रि, अब्ज, आभूषन–रव करि केतन केत लेत अवतार ॥
अचल,अचिंत्य,अगम,गुन-आलय,अक्षरते अक्षर अधिकार ।
'श्रीहरिप्रिया' बिराजत हैं,जहाँ कृपासाध्य प्रापति सुखसार ॥५५

[राग—विभास । तालयात्रा । दोहा]

जय श्रीराधा रसिक रस मंजरि प्रिय सिरमौर ।
रहसि रसिकीनी सखी सब बृन्दावन रस–ठौर ॥

पद—जयति जय राधिका रसिक रस मजरी रसिक–सिरमौर मोहन बिराजैं ।
रसिकिनी रहसि रसधाम वृन्दाविपिन रसिकरसरसी सहचरि समाजै ॥
रसिक–रस–प्रेम सिंगार–रँग रँगि रहे रूप आगार सुखसार साजै ।
मधुर माधुर्य्य सौंदर्य्यंतावर्य्य पर कोटि ऐश्वर्य्य की कला लाजै ॥
नित्य नवनायिका, नित्य सुखदायिका, नित्य–नव–कुंज में नित्य राजै ।
नित्य–नवकेलि नव–नित्य–नायक–नवल नित्यनवनिपुनता भव्य भ्राजै ॥
कसित कौसेय कोमल कमल कनकद्युति चिकुर मेचक मुरित छुरित छाजै ।
दिव्यआभूषणा–भूषिता भानुनी अद्भुता नंददा जय सदा जय ॥
चंचला–लोचनी, आतुरा–चितहरा, चारुभा-चंद्रिका, चंद्रिका जय ।
सच्चिदानंद की सिद्धिदा शक्तिदा स्यामा सुधामा शुभादा सुभा जय ॥
चातिकीकृष्णकी स्वातिकी बारिदा बारिधा रूप–गुन–गर्विता जय ।
मदन–मद मोचिनी रोचिनी रतिकला रतन–मनि–कुंडला जगमगा।जय ॥

प्रानप्रियतम प्रिया प्रियतमा प्रेयसी, पद--पद्म पांसु पावनकरा जय।
परम रसबर्षिनी कर्षिनी-चित्त-प्रिय नित्य हिय-हर्षिनी 'श्रीहरिप्रिया' जय ॥२६

[राग–विभास । तालयात्रा । दोहा]

दर्प करै, दलमलै सबै को कंदर्प करोरि।
घनस्यामल जोरी सहज बनी भामती जोरि॥

पद–बनी मोहनी जोरि घनस्याम गोरी महासोहनी रूप, गुन की अगाधा।
नित्य नव--कुंज आनंद के पुंज में मंजु क्रीड़ा करैं श्रीकृष्ण राधा॥
सर्ब–सुख–सींव दोउ ग्रीव भुज मेलि के करत हैं केलि नवरंग रंगे।
पल जु बिछुरे परे कल न जिय ललनके उमँग अँग-अंग सदा एकसंगे॥
अष्टसहचरिन के बिना परिकर यहां और सहचरिन को नहिं प्रवेसा।
काल गुन रहित निज-धाम वृन्दाविपिन परम-अभिराम ताको सुदेसा॥
दिव्य-अद्भुत-नगनि जगमगति जगति अति अमित अँशुमान के अंशलाजै।
कोटि कंदर्प के दर्प दलमल करै गर्ब गोलोक के सर्व भाजै॥
रसिकजन उरसि अनुराग की वर्द्धिनी मुक्ति सारिष्ट पर सुखकी दाता।
सकल अंशादि अवतार के सेव्य श्रीस्याम-स्यामासुजोरी विख्याता॥
चतुर चूड़ामनी चारु चंद्राननी चित्त चितहर चमत्कारैं अपारैं।
जिनहिं दिब्यदृष्टि देते ए करिके दया तेइ यथार्थ इनको निहारैं॥
अज्ञजन होय आशक्त सुख–जक्त अव्यक्त–निज–धाम कल्पित बखानैं।
सच्चिदानंदरस–अमृत को त्यक्त करि अन्य याते कछु अधिक मानैं॥
कर्म अरु ज्ञान करिके सदा दुर्लभा सुलभा पराभक्तिहि प्रकासी।
हितू 'श्रीहरिप्रिया' की कृपादृष्टि सो निकट निरखैं तहाँ नित्यदासी॥२७॥

[राग–विभास । तालयात्रा । दोहा]

अतैश्वर्य्य माधुर्य्यको बरने को बिस्तार।
परमधाम राजै जहाँ आनँदमयी अपार॥

आनंदमय–अंग इंगितज्ञ ईश्वर अधिप अनंत–विर्यैश्वर्य्य रूप अधिकार।
इंदिरेशादि, इड़ित उपेन्द्रादि, उत्कट अनन्यादि, कारन अकर्तार॥
उत्मोत्तम, उपादान, उत्पति–रहित, एक–ऐश्वर्य्य, परिपूर्नाधार।
ओज, औदार्य्य, उर्ध्वंग, उसत्तम, उर्ध्व, नित्य, नैमित्य प्रति कृपाकूं पार॥
अजित, अच्युत, अनामय, असतसत, असंग, अप्रमेयादि अव्यक्त सुबिहार।
कमन, कैसोर, कीर्तन्य, गुनकौतुकी, कोटि–कन्दर्प–लावन्यतागार॥

परमअभिराम, परमधाम राजत सदा, सर्व-परसेव्य, परसेव्य सुखसार ।
अमित ऐश्वर्य्य माधुर्य्य 'श्रीहरिप्रिया' कहन बिस्तार कवि पावै को पार ॥५८॥

[राग-विभास]

रहि गयो मारग उरै नेम अरु प्रेम को पर चल्यो परा को परम-परपंथ ।
निगम को निगम अरु अगम आगमन कौ नहिं समरत्थ गुन गनन में ग्रंथ ॥
अखिल ब्रह्मांड बैराट के थाट सब महाबैराट के रोम के कूप ।
सावकाशे उड़त रहत नित सहजहीं परमैश्वर्य्य आश्चर्य्यमय रूप ॥
सो प्रथम एकही शून्य मांध समिरह्यो जैसे त्रिसरेनु को रेनु सत अंश ।
याते दश-दश-गुनी सहस्र-सत शून्य पुनि तिनते लखसहस्र महाशून्य अवतंश
तिन महाशून्य के शिखर पर तेजकौ कोटि गुनते गुनौ अति अमित विस्तार ।
तहाँ निजधाम वृन्दाविपिन जगमगै दिव्य बैभवन को दिव्य आगार ॥
मन, वचनहूं तहाँ पहुँचि न सकत कवहूं बुद्धि विथकित चित्तहूँ अतिहिं असमर्थ
सकल साधन स्वकृति मुक्ति सारिष्ट लगि बिन कृपा कोटि कोट्यानविधि व्यर्थ ॥
नित्य विहरत जहाँ नित्यकैसोर दोऊ नित्यसहचरिन सँग नित्य-नवरंग ।
नित्यरस रास उल्लास आनंद उर नित्य-प्रतिकास परभास अँग अंग ॥
निर्विकार, निराकार, चैतन्यतन, विश्वव्यापक, प्रकृतिपुरुष के ईश ।
अक्षरातीत, परब्रह्म, परमात्मा सर्वकारण परे जोति जगदीश ॥
नाद के अंड ते अखंड धारा द्रवत श्रवत जामध्य सतसृष्टि के हेत ।
जिहिं जिहिं भाँति जेजे उपासत जिन्हें तिहिं तिहिं भाँति तेते तिन्हें देत ॥
तत्त्व के तत्त्व सिद्धांत सिद्धांत के सार के सार सुख रूप के रूप ।
अमित ऐश्वर्य्य माधुर्य्य 'श्रीहरिप्रिया' भाँवतिन भवन के भाँवते भूप ॥५९॥

[राग-विभास । दोहा-]

भर्म तजौ श्रीहरिप्रिया भजौ सजौ अनन्यव्रत एक ।
यही यही निश्चय कही सही गही उर टेक ॥

यही है, यही है, भूलि भर्मौ न कोऊ भूलि भर्मे ते भव-भटकि मरिहौ ।
लाड़िलीलाल के नित्यसुखसार बिन कौनबिधि वारते पार परिहौ ॥
एक अनन्य की टेक उरमें धरौ, परिहरौ भर्म, ज्यौं फूलि फरिहौ ।
'श्रीहरिप्रिया' के परमपद पासहीं आस अनयासही बास करिहौ ॥६०

[राग-विलावल । तिताल । दोहा]

अग्रवर्ति इहिं अवसरहीं आई धरि वरवेष ।
औरनि वाहू संगमिलि चलहुँ चलैं निजदेश ॥

पद—चलहुँ चलहुँ चलिये निजदेश। रंगरँगीले जुग नरेश जहां-
दिव्यकनकमय अवनि अखंडित मनिमंडित जहां करै प्रवेश ॥
करुनानिधि जहां नित्यकिसोरी करि अनुकंपा कियो आदेश।
आई अग्रवर्ति अलवेली धरि वरइच्छा विग्रह वेश ॥
ऐसो अवसर बहुरिन ऐहैं औरनि वाहू संग सुदेश।
नेम प्रेम ते परे पंथ तहाँ तुरत पहुँचि हैं अति अकलेश ॥
मंजनादि नवसत अभरन तन सजिये मनरंज सुभवेष।
विविध सुगंधन अँग अंगन में करहुँ अलंकृत कुसुम सुकेश ॥
सबजन भए अनुकूल अपनके भय न रह्यो अब तनकहुँ शेष।
सकुन समागम अगम जनावत प्रतिकूलन के गये लवलेश ॥
सुफल फली मनरली सबनको जागे निज-निज भाग विशेष।
हिलिमिलिहुलसि हिए हर्षहु अहु निरखहु 'श्रीहरिप्रिया' परेश॥६१॥

[राग—विलावल। तालयात्रा। दोहा]

श्रीहरिप्रिया-पद-पावनो अति ही दुर्ल्लभ सोय।
बहुत बिघन जगमगहि में मिलिहि चले सुख होय ॥

पद

मिलिचलौ मिलिचलौ मिलिचले सुखमहा, बहुत है बिघन जगमगहिमाहीं।
मिलिचले सकलमंगल मिले सहजहीं अनमिलिचले सुख नहिं कदाहीं ॥
मिलिचले होत सो अनमिलिचले कहां ? फूट ते होत है फटफटाहीं।
'श्रीहरिप्रिया'जू को यह परम-पद पावनो अतिही दुर्लभ-महा सुलभ नाहीं ॥६२॥

[राग—विलावल। तिताल। दोहा]

आदि, मध्य, अवसान में परिकर सहज सहेत।
परते पर श्रीहरिप्रिया राजत परम-निकेत ॥

पद—राजत परते पर सर्वेश्वर ; परमधाम वृन्दावन निजघर।
आनँद अहलादिनि अद्भुतवर; गौरस्याम सोभा अपरंपर ॥
आदि, मध्य, अवसान एकरस सब कारन कारन-कर्तार।
आगम,अगम,अगोचर,अधिपति,पदनखअगु आभाअवतार ॥
विवि स्वरूप इच्छा बिग्रह करि अमित कोटि बैकुंठ विलास।
जामधि उपजि समावत जामधि कुर्मोआदि कुल कोटि प्रकास ॥

शुद्ध,सत्व,अब्यय,अबिकृतकृत अगुन गुनालय ईश अनूप।
है-है नहीं-नहीं जिहिं भाषत शब्द-ब्रह्म सो शुद्ध-स्वरूप॥
अद्वय,द्वय बहु भेद बिशेषन,आदि,आभाषि, अचिन्त्य, अनंत।
'श्रीहरिप्रिया' सहज़परिकर सह करतविहार कामिनीकंत॥६३॥

[तालचम्पक]

जोरी जीवनि जीय की श्रीहरिप्रिया जिनके सदा।
नित्यधाम निवास निश्चल सकलफल मनवंछदा॥
आनंदकंद किसोरमूरति गौरस्याम स्वयं प्रभा।
कोटि रवि,शशि लाजहींलखि चरननख-मनि मंजुभा॥
कहत हैं जिहिं बिदुष व्यापक ब्रह्म है जग में जोई।
चरन-नख आभास करि कवि साँच कल्पत हैं सोई॥
निर्विकार, विशेषणादि, स्वरूप-सुंदर-सोहने।
अखिल-ओक अधीश अधिपति बपुष विश्वबिमोहने॥
धाम नामऽरु कामकृतिवृति अमल-अंग अनामयं।
दिव्यचिदघन चारु-चरित उदार शुद्ध सुधामयं॥
है नहीं सो, नहीं है सो, बदत है बिधि वेद में।
कही है कर सही ऐ परि भ्रमत है भव-भेद में॥
हितू सहचरि निज कृपाकरि जासु तन चितवें जवै।
नित्य-बिभव-विलास को सुख सहज पावै सो तवै॥
जय जय 'श्रीहरिप्रिया' जोरी गोरी स्यामल गुन भरी।
स्वयं सिद्ध प्रसिद्ध लीला ललित मिश्री की डरी॥६४॥

[राग-आसावरी। तिताल। दोहा]

निगम-निगम आगम अगम लहि न सकै गुन-अंत।
जे कारन सवजक्त के तिनके कारन कंत॥
पद—सकल कारन के कारन कंत लीला अमल अनंत।
निगम-निगम आगम अगम गम ग्रंथनि में गोप्य।
सबते सब सिद्धान्त ते सब सिद्धांत अलोप्य॥
जाको अंश परमात्मा प्रकृति-पुरुष के ईश।
पर इच्छा आधीन ह्वै जगमगात जगदीश॥

एके आप अनेक ह्वै, ह्वै अनेक ते एक।
आदि, मध्य, अवसान में रमिरह्यो एकामेक ॥
जो है सो सब इनहिं ते, इनहीं ते सब नाहिं।
सब के बाहिर आपुहीं है आपुहिं सब माहिं ॥
ऐसे विश्व-अनंत में एकहिं ए बहु अंश।
परमातम अवतार ह्वै निर्विकार निरशंस।
तिन की लीला तिनहि के अधिकारी उलखंत।
ह्यांतो एकहि अंश को आवत नाहीं अंत ॥
श्रीराधा—पद—कमल ते नूपुर कलरव होय।
निर्विकार ब्यापक भयो शब्द-ब्रह्म कहि सोय ॥
जय जय नित्य-विहार जय जय बृन्दावन धाम।
जय जय इच्छा-शक्ति जय इनकी ए-ए काम ॥
प्रियाशक्ति आल्हादिनी प्रिय आनंद-स्वरूप।
तन बृन्दावन जगमगै इच्छा सखी अनूप ॥
कोटिन कोटि समूह सुख रुष लिये इच्छा शक्ति।
प्रानेशहिं प्रमुदावहीं प्रमुदावलि अनुरक्ति ॥
जवते ए ए तवहि ते ए ए एक अनंत।
श्रीबृन्दावन में सदा नित विलासि विलसंत ॥
सरिता रस शिंगार को बहति सदा चहुँ ओर।
इकछत राज करैं जु 'श्रीहरिप्रिया' जुगलकिसोर ॥

[राग—विलावल । दोहा]

परमातम परब्रह्म करि बिस्तारन जगजाल।
जनपालन जय जय सदा रासविहारीलाल ॥

पद—महारसरासविहारीलाल । वारी जाऊं जय जय जय जनपाल ॥

निराकार, अविकार, परब्रह्म, शुद्धचैतन्य।
निर्विशेष ब्यापक भयो जिहि चिदंश ते जन्य ॥
जाके एकहि अंश करि परमातम अवतार।
परइच्छा आधीन ह्वै कीनो सब विस्तार ॥
अखिल अंड ब्यापक भयो अरु अखिल अंड आधार

अखिल अंड के ईश ह्वै हरत करत प्रतिपार ॥
एक दोय अरु तीन पुनि चार पाँच बहुरूप ।
धरि-धरि लीला धारहीं आप अपार अनूप ॥
जाकरि ए सब होत है सो ए नित्य किसोर ।
'श्रीहरिप्रिया' सिरोमनी सदा बसौ निसिभोर ॥६६॥

[राग-विलावल । तालयात्रा]

सदा-सर्वदा राधिकारवन राजैं ; रसिक रसभवन में भव्य भ्राजैं ॥
मधुर माधुर्य्य औदधि उदारा ; श्रवत नित रहत सुख-सुधा-धारा ॥
सहज स्वकीयानि प्रतिपोषकर्ता; अमित गुनवंड ब्रह्मांड भर्ता ॥
'श्रीहरिप्रिया' जुगल बपुधरि बिहारैं; धन्य हैं ए जु इनहिं निहारैं ॥६७॥

[राग-सारंग । तिताला । दोहा]

शुद्ध, सत्व, परईश सो सिखवत नाना भेद ।
निर्गुन, सगुन बखानि के बरनत जाको वेद ॥

पद—निर्गुन, सगुन कहत जिहिं वेद ।
निजइच्छा बिस्तारि विविधि विधि बहु अनवहो दिखावत भेद ॥
आप अलिप्त लिप्त लीलारचि करत कोटि ब्रह्मांड बिलास ।
शुद्ध, सत्व, परके परमेश्वर जुगलकिसोर सकल-सुखरास ॥
अनंत-शक्ति आधीश अचिंतक ऐश्वर्य्यादि अखिल गुनधाम ।
सब कारन के कर्ता नित नैमित्य नियन्ता स्याम ॥
सकल लोक चूड़ामनि जोरी घोरी रस माधुर्य्य अशेष ।
कोटि कोटि कंदर्प दर्पदल-मलन मनोहर विसद सुवेश ॥
परावरादि असत-सत-स्वामी निर्वधि नामी नामनिकाय ।
नित्य-सिद्धि सर्वोपरि 'हरिप्रिया' सब सुखदायक सहज सुभाय ॥

[राग-सारंग । दोहा]

तिहि समान बड़भाग को सो सब के शिरमौर ।
मन,वच, क्रम सर्वस सदा जिनके जुगलकिसोर ॥

पद—जिनके सर्वस जुगलकिसोर ।
तिहिं समान अस को बड़भागी गनि सबके सिरमौर ॥
नित्य-बिहार निरंतर जाको करत पान निसिभोर ।
'श्रीहरिप्रिया' निहारत छिनछिन चितय चखन की कोर ॥६९॥

[राग—सारंग । दोहा]

तिनहिं प्रियाहरि हितहि करि नित राखैं निज पास ।
नवकिसोर सुखराशि को जिनके अननि उपास ॥

पद—जिनके रहै अनन्य उपास ।
तिनको प्रिया लाल नित हित करि राखैं अपने पास ।
माया त्रिगुन प्रपंच पवन की, अंच न आवै तास ।
'श्रीहरिप्रिया' निपट अनुवर्तिन ह्वै निरखैं सुखरास ॥७०॥

[राग—गौरी । दोहा]

बृन्दावन घनकुज में बिलसत साँवर गौर ।
मनहरनी जोरा महा सुखसरसनी किसोर ॥

पद—सुखसरसनी मनाहर जोरी युववर जुगलकिसोर किसोरी ।
बृन्दाबनघन कुंजसदन में बिलसत बहुविधि साँवर गोरी ॥
अति अभिराम अमल मृदु-मूरति अद्भुत मंजुलरस में बोरी ।
महामोद मंगल मर्य्यादा छबि झकोरि माधुर्य्य झकोरी ॥
दैन नैन चित चैन सबनि के ऐन मैन मनु साँचे ढोरी ।
'श्रीहरिप्रिया' साक्षात् स्वयं बपु सदाबसौ उर निशाअहोरी ॥७१॥

[राग—गौरी । दोहा]

सहस बदनहूँ सकत नहिं जाकी महिमा लाध ।
इकमुख अल्प कहा कहों अति गुन रूप अगाध ॥

पद—अतिहिं अगोचर अगम अगाध ।
लीलाउदधि पार नहिं पावत सदसबदन से समरथ साध ॥
इकमुख अल्प कहां लगि बरनें अमित कल्प लो भन्यो उपाध ।
कृपाकटाक्ष चितै 'श्रीहरिप्रिया' तबहीं सकै चरन-रज लाध ॥७२॥

[राग—सारंग । दोहा]

सदा सर्वदा जुगलइक एक जुगलतन धाम ।
आनँद अरु अहलादमिलि बिलसत ह्वै द्वै नाम ॥

पद एक स्वरूप सदा द्वै नाम ।
आनद के अहलादिनि स्यामा अहलादिनि के आनँद स्याम ॥
सदासर्वदा जुगल एक तन एक जुगल तन बिलसत धाम ।
'श्रीहरिप्रिया' निरंतर नितप्रति कामरूप अद्भुत अभिराम ॥७३॥

[राग-गौरी । दोहा]

नवरँगभीनी सखी सँग महल टहल अनुकूल ।
नित बिहरैं 'श्रीहरिप्रिया' सकल सुखन को मूल ॥

पद-स्यामा-स्याम सकल सुख-मूल ।
नित्य-बिहार करत बृन्दाबन कलकलिंदजाजू के कूल ॥
सखी संग नवरंग रँगीली महल टहल फूली उर फूल ।
'श्रीहरिप्रिया' प्रति छिन प्रमुदावति गावति गुन मिलि टूलनि टूल ॥

[राग-कल्याण । दोहा]

विपुल पुलक अँग अँग भरे नवल चारु चैतन्य ।
अरस परस दरसत सदा कोटिकाम-लावन्य ॥

कोटिकंदर्प-द्युति ललित लावन्य ।
दीपतिदंपति दर्श सरस दिन-दिन प्रति अमित अभिरामता पुंज परजन्य
परस्पर बिपुल पुलकावलिन निकर नवनित्य नागर नवल चारु चैतन्य
'श्रीहरिप्रिया' निरखिनिजनैन छबिऐन अलि सैन सब मानहीं भाग बड़ धन्य

[राग-कल्याण । तालझप । दोहा]

दौरत बहुत बिसाल बन जहँ लगि कहियत दौर ।
श्रीहरिप्रिया निजधाम-छवि वरनत ह्वै बुधिबौर ॥

पद-बरनतहीं बुधि होत है बौर ।
दौरत बहुत बिसाल बिपिन में जहँ लगि कहियत मन की दौर ॥
सूर के नीचे शेष के ऊपर गोपुरहू ते अगोचर ठौर ।
'श्रीहरिप्रिया' बिराजत हैं जहाँ जुगलकिसोर सकल सिरमौर ॥७६

[राग-गौरी । तिताल । दोहा]

साधन करि नाकादि फल नस्वर पावत जोय ।
एक कृपा ही करि कछू सिद्ध होय सो होय ॥

पद-एक कृपा करि होय सो होई ; साधन सिद्ध रह्यो नहिं कोई ॥
नाकादिक नस्वर फल पावै ; जाय आय में आयु बितावै ॥
जितने साधन उरमें धरहीं ; तितने या बिच अंतर करहीं ॥
सब तजि सदा मनावै याही ; औरनते मन धरि अवज्ञाही ॥
'श्रीहरिप्रिया' परमपद चाहै ; तो या बिना न आन उमाहै ॥७७॥

[राग–कान्हरो । तिताल । दोहा]

बिधि–निषेध आदिक जिते कर्म, धर्म तजि तास ।
प्रभु के आश्रय आवहीं सो कहिये निजदास ॥

पद–जो कोउ प्रभु के आश्रय आवै ; सो अन्याश्रय सब छिटकावै ॥
बिधि–निषेध के जेजे धर्म ; तिनको त्यागि रहे निष्कर्म ॥
झूठ, क्रोध, निंदा तजि देही ; बिन प्रसाद मुख और न लेहीं ॥
सब जीवन पर करुना राखै ; कबहूँ कठोर बचन नहिं भाखै ॥
मनमाधुर्य्यरस माहिं समोवै ; घरी पहर पल वृथा न खोवै ॥
सतगुरु के मारग पग धारै ; हरि, सतगुरु बिच भेद न पारै ॥
ए द्वादश लच्छन अवगाहै ; जे जन परा परमपद चाहै ॥
जाके दसपैड़ी अति दृढ़ हैं ; बिन अधिकार कौन तहाँ चढ़िहैं ॥
पहिले रसिक जनन को सेवै ; दूजी दया हृदय धरि लेवै ॥
तीजी धर्म सुनिष्ठा गुनिहैं ; चौथी कथा अतृप्त ह्वै सुनिहैं ॥
पंचमि पद–पंकज अनुरागै ; षष्टी रूप अधिकता पागै ॥
सप्तमि प्रेम हिये बिरधावै ; अष्टमि रूप ध्यान गुन गावै ॥
नौमी दृढ़ता निश्चय गहिवैं ; दशमी रसकी सरिता वहिवैं ॥
या अनुक्रम करि जे अनुसरहीं ; शनै–शनै जगते निरवरहीं ॥
परमधाम परिकरमधि बसहीं ; 'श्रीहरिप्रिया' हितू सँग लसहीं ॥७८

[रागकान्हरो । तिताल । दोहा]

अति अनूप साँचे ढरी निरखि होति मति भोरि ।
अद्भुत स्यामा स्याम की सहज भाँवती जोरि ॥

पद–स्यामा–स्याम भाँवती जोरी; अविचल नित्यकिसोर किसोरी ।
साँवल पिय प्यारी तन गोरी; सोभा वरनि सकै कबि कोरी ॥
अद्भुत रूप रंग–रस बोरी; अति अनूप साँचे सी ढोरी ।
'श्रीहरिप्रिया' करति चितचोरी; निरखत नैन होत मति भोरी ॥७९॥

[राग–विहागरो । इकताल । दोहा]

जाके पद–नख–जोति की आभा को अणुलेश ।
जगमगात है जगत में पारब्रह्म परमेश ॥

जाऊं बलिहारी नित्य बैभव विहारी; जुगलकिशोर स्वयं सत्य श्रुति सारी

अखिल ब्रह्मांड ब्रह्म व्यापक है जोई; तिहारे चरन-नख-आभा है सोई
परमातम विश्वकाय नारायन विष्णु; धर्म है तिहारे तुम धर्मी जगजिष्णु
बाल, कौमार, पौगंड बपु धरि के; करत बिहार जनहित अनुसरि के
ललित अगाध लीला बरनि नहिं जाई; 'श्रीहरिप्रिया' भागवत कहै प्रभुताई ८०

[राग-विहागरो । दोहा]

कारनीक कारनहि के मंगल मंगल के जु ।
अवतारी अवतार के अंशी अंशन के जु ॥

[पद]

अंशन के अंशी अवतार अवतारी; कारन के कारनीक मंगल महारी ॥
स्वयं रूप शुद्ध सत्व इच्छाबिस्तारी; जाकरिके भयो नादब्रह्म निर्विकारी ।
ताकौ सब थाट, पाट, घाट, अघटारी; असत सत्ताहि पारावर के प्रचारी ॥
विविध बिशेषण बिचारि बक्तारी; बरनति है वानी जाहि मति अनुसारी ।
'श्रीहरिप्रिया' नित्यधाम विलसतविहारी; कोटिकाम अभिराम विचित्रसोभारी

[राग-केदारो । दोहा]

अँगसंगनि तत्पर सदा टहल करैं सब याम ।
सबसुख-अवधि जहाँ बसे अद्भुत स्यामा-स्याम ॥

पद—सबसुख अवधि स्यामा-स्याम ।
नित्यधामनिवास अद्भुत अहनिशा अभिराम ॥
महलनी निजटहल में तत्पर सदा सब जाम ।
'श्रीहरिप्रिया' अँगसंग सेवा पुजवहीं मनकाम ॥ ८२ ॥

श्रीपरशुरामदेवजी

छप्पय—जँगलीदेश के लोग सब, श्रीपरशुराम किय पारषद।
ज्यों चन्दन को पवन, निम्ब पुनि चंदन करई।
बहुत काल तम—निविड़ उदय दीपक ज्यों हरई॥
श्रभिट पुनि हारिव्यास सन्त मारग अनुसरई।
कथा, कीरतन, नेम, रसन हरिगुण उच्चरई॥
गोविन्द-भक्ति-गद-रोग गति तिलक दाम सद—बैद हद।

—श्रीनाभाजी

श्रीपरशुरामदेवजी का जन्मस्थान जयपुर राज्यान्तर्गत किसी ग्राम का है और जन्म सम्वत् १६ वीं सताब्दी है, विशेष विषय अज्ञात है। इसका कारण प्राचीन पद्धति के अनुसार महात्माओं को अपना परिचय गुप्त रखना है; किन्तु मुख्य कारण साम्प्रदायिक वैष्णवों में, महानुभावों के चरित्र—सम्बन्धी खोज में अरुचि एवं असावधानी है। एक किसी समाज के मुख्याचार्य्य राजगुरु, आत्मशक्ति-सम्पन्न एवं महाकवि होते हुये भी तत्सर्वादरणीयपावन चरित्र एवं अविर्भाव—स्थानादिकों का पता उपलब्ध न होना, अपने मन्द—भाग्यता का ही उदाहरण है। इनका जन्म राजपूतानान्तर्गत ही पंच—गौड़ ब्राह्मण—कुल में हुआ था। ये श्रीहरिव्यासदेवजी महाराज के शिष्य थे, इसलिये इनके सम्बन्ध से दीक्षा—काल का अनुसन्धान असम्भव नहीं है। यहां इनके संग में घटित सलेमशाह फकीर का एक अद्भुत प्रसंग उद्धृत करना आवश्यक है; क्योंकि यह उनके ऐतिहासिक-सम्बन्ध—काल और आत्मशक्ति-पूर्ण पराक्रम का उद्योतक है।

सम्बत् सोलहवीं का मध्य—कालीन—समय, यावनीयप्रभुता और बर्बरता के कारण हिन्दुओं के लिये अत्यन्त कठिन था। हिन्दु अनेक प्रकार सताये जारहे थे, उनके प्राबल्य के कारण अनेक यवन—फकीर

अल्पसिद्धाभिमानियों की खूबही बनपड़ी थी। राजपूतानाअन्तर्गत अजमेर के निकट एक सलेमसाह नामक फकीर रहता था। वह पैशाचिक अल्पसिद्धि से, द्रोहता एवं स्वधार्मियता-दुर्बुद्धि केकारण हिन्दू चतुः साम्प्रदायिक या अन्य हरिभक्त साधुओं के लिये दनुज दैत्यादिकों से भी बढ़कर दुखदाई था। कहा भी है-"दुष्ट स्वभाव न छाड़ई, निज जातीयता अंश। भक्त सदन सद्जन्म पर अशुर अंश सो कंस ॥"

समस्त साधु-समाज में उसके दुष्टता की चर्चा होने लगी। बहुत से परिचित साधु उस प्रसिद्ध द्वारका-मार्ग को त्याग दिये। पश्चिमीय तीर्थों में अन्य मार्ग से जाने लगे। जो भूले भटके उस मार्ग से निकलता, वह उन्हीं से छेड़खानी करता था। एकबार कईएक साधुओं की जमात, इन्हीं आपत्तियों से ब्यथित होकर,अनेक सन्तों के दुखनिवारणार्थ प्रार्थना करनेके लिये मथुरामें आई। श्रीहरिब्यासदेवजी महाराज सन्तों के समाज में विराजमान थे, वहां वे जाकर, उसके निन्दनीयकर्म का परिचय देते हुए बोले—'हे आचार्यवर्य ! आप सर्व सामर्थ हो, यदि आप ध्यान नहीं देंगे तो वह दुष्ट अपने कुकर्मों को परित्याग नहीं करेगा, अनेक सन्त उसके दुष्कर्म-सर का शिकार बनेंगे। आप स्वयं पधार, अथवा अपने शिष्यादिकों में से किसी को भेजकर, अनेक सन्तों के मार्ग को निष्कंटक करिये।"

संसार में ऐसे भी बज्र-हृदय मनुष्य अनेक होते हैं जिनका हृदय परदुख से किञ्चित भी नहीं पिघलता ; किन्तु बहुत से कोमल-हृदय सन्तोंके लिये मानो परदुख रूप वज्राघात इन्हींके हृदय पर होता हो ! उनका हृदय टुक-टुक हो जाता है। वह प्राणाहुति करके भी परदुख निवारणार्थ व्याकुल हो उठते हैं। वहां तो श्रीहरिब्यासदेवजी महाराज का अवतार ही दुष्टजनों का विनाश और हरिभक्तों की रक्षाकर, धर्म संस्थापनार्थ हुआ था। हरिभक्तों पर संकट देखकर उनका हृदय-कमल मुरझा गया, उन्हें अत्यन्त दुख हुआ। श्रीपरशु-रामदेवजी पर कृपावलोकन करते हुये एवं इस कठिन कार्य्य साधन के लिये योग्य समझ कर,सादर सुमधुरवाणी बोले-मानो उनकी यह दिव्य-वाणी, उस असाध्य-कार्य को साधन के लिये आशीर्वादात्मक हो !

"परशुराम ! यह कार्य विना सिद्धता के पूर्ति होना अत्यन्त दुष्कर है, तुम्हीं इस कार्य के जोग्य हो, जाओ पूर्ति कर, श्रीहरिभक्तों को अभय प्रदान करो।" श्रीपरशुरामदेवजी, गुरुवाक्य को सहर्ष शिरोधार्य कर भक्त-दुख निवारणार्थ एवं आज्ञा पालनार्थ ही, पून्यभूमि मथुरा और गुरुसेवा को परित्याग किया एवं नहीं जाने से भक्तापराध समझ, मारवाड़देश को जाना स्वीकार किया। कइएक सन्तों को संग लेकर वहाँ गये और फकीर के आश्रम से कुछ दूर पर, एकान्त में इन्होंने अपना पड़ाव डाल दिया। आप स्वयं अकेला ही वहाँ गये, उस समय वह कहीं चला गया था। उसके अनेक सामान को नष्ट कर वहाँ से चल दिये। वह आया तो वहाँ किसी को नहीं देख, अनेक दुर्वाद वक-झक कर चुप हो गया। आप दूसरे दिन भी जाकर उसका सामान नष्ट करने लगे इतने ही में आगया और अपनी सिद्धि प्रयोग के लिये इन्हें थप्पड़ मारा। उसे तीन सिद्धियाँ थी जो प्रहार से ही प्रयोग करता था। उसके प्रहार से इन्हें कुछ भी नहीं हुआ। पुनः द्वितियवार मारा तौ भी इन्हें वैसाही पाया; तृतियवार प्रहार करते ही उसका हाथ इनके पीठ पर चिपक गया। वह अपने सिद्धि को असफल और इनके सिद्धाई का प्रभाव देख, सभय होकर प्रार्थना पूर्वक क्षमा माँगी। इन्होंने उसकी तीनों सिद्धियें हर ली। वह फकीर उस भूमि को परित्याग कर सिन्धदेश में चला गया। वह मार्ग सन्तों के लिये, उसके दुष्कर्म-कंटक से साफ हो गया। कुछ दिन पश्चात् वह वहाँ ही आकर शरीर परित्याग किया। उसने श्रीपरशुरामदेवजी को प्रार्थना कर, वरदान माँग लिया था कि "आप यहीं विराजें और यहाँ जो ग्राम वसाया जाय उसका नाम 'सलेमावाद' रखा जाय" ! श्रीपरशुरामदेवजी का शिष्यता ग्रहण करने के कारण, अवभी उसके कब्र पर प्रसादी पुष्पादिक चढ़ता है। सलेमावाद का दूसरा नाम 'परशुरामपुरी' भी है; क्योंकि आपही उस नगर के संस्थापक हैं।

वृहद् मन्दिर निर्माण किया गया और उसमें श्रीराधामाधवजी को प्रतिष्ठा-पूर्वक विराजमान कर, सुव्यवस्थितरूप से सेवा होने लगा। जो अवनि सन्त-दुख से पीड़ित हो तलमला रही थी वही आज

मानों प्रलयकाल पर्यन्त के लिये दृढ़ता दिखा रही हो ! उस भूमि के इस शुभ-परिवर्तन के व्यवस्था को अवलोकनार्थ, अनेक साधु-सन्त और जनता की अपार भीड़ होने लगी। अनेक राजा भी वहाँ आकर शिष्य, सेवक हो गये और सेवा में भारी जीविकायें लगाई। सिद्धता के सिवाय, बुद्धि तीक्ष्णता, चातुर्यता एवं विरक्तता के भी महोदधि थे। इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण यहाँ उद्धृत करते हैं—

एकबार एक जिज्ञासू ब्राह्मण, भगवद् एवं भक्तितत्त्व के जानने की इच्छा से किसी सन्यासी गुरु का शरणागत हुआ। उसने स्वसंस्कारानुसार इन्हें भी शिखा-सूत्र रहित कर, शुष्क अद्वैतवाद ज्ञानोपदेश किया। सरस-भक्तिरस-रहित होने के कारण इन उपदेशों से उसके हृदय की तृषा तृप्ति नहीं हुई। किंचित भी सन्तोष न धारण कर, श्रीपरशुरामदेवजी से आकर प्रार्थना की कि—"हे आचार्य्यवर्य ! कृपया मुझ अज्ञानी को भक्तितत्वोपदेश कर कृतार्थ कीजिये" इन्होंने उसे अनेक प्रकार उपदेश कर अभक्तिज्ञान-तृषा को भक्तिज्ञानामृत से तृप्त की। उसने इनके तत्त्वोपदेशों पर मुग्ध होकर शिष्यत्व ग्रहण की एवं श्रीगोपालमन्त्रराज की विधिवत् दीक्षा ली। ये दीक्षितोपरान्त कुछ दिन व्यतीत होने पर, किसी कार्य्यवस उस सन्यासी के पास गये; जिससे प्रथम दीक्षा ली थी। उसने इन्हें नवीन वैष्णवीय-वेष में परिवर्तित देखकर दुखी हुआ और इनके गुरु की बुद्धिमता का परीक्षा लेना निश्चय किया। इनके शिर पर एक घड़ा जल धर कर श्रीपरशुरामदेवजी के पास भेजा। उसका अभिप्राय था कि—हमने इसके हृदय-कुम्भ को अद्वैतवेदान्तज्ञानोपदेश द्वारा प्रथम ही भर दिया था आपने उसे नवीन स्वरूपानुकूल विशेष ज्ञान क्या दी ? श्रीपरशुरामदेवजी उसमें बतासा छोड़ कर मीठा कर दिये और उलटे उसके पास ही भेज दी कि-तुमने शुष्क-ज्ञानोपदेश किया था हमने भक्तिरस-तत्व से इसके हृदय को सरस बना दिया है। सन्यासी इनके इस विलक्षण चातुर्यता पर मुग्ध हो गया एवं इनमें उसकी अत्यन्त श्रद्धा हुई।

जिस प्रकार चन्दनस्पर्श वायु से नीमादिक कड़वे वृक्ष का भी गुन परिवर्तित होकर सुगन्धित हो जाता है और बहुत कालान्तर

तमोच्छादित-सदन को भी दीपक क्षणभर में उज्ज्वल कर देता है, उसी प्रकार उस जँगली देश के भक्ति-ज्ञान-शून्य मनुष्यों को भी श्रीपरशु-रामदेवजी ने तिलक-मालादिकों से मण्डित कर, पार्षद कर दिये। मानो गोविन्द-भक्ति-शून्य प्रवल रोग के लिये कंठीरूप दवा अत्यन्त उपयोगी हो ! वहाँ नित्य नियमित रूप से कथा कीर्तन की चहल पहल रहने लगी। प्रत्येक व्यक्ति के जिह्वा पर गोविन्द-नाम, अपना प्रभाव जमा लिया।

कथा में इनकी त्यागपूर्ण वाणी को श्रवण कर, एक महन्त ने परीक्षार्थ इनसे प्रश्न किया कि—"आपकी वाणी तो इस प्रकार त्याग और वैराग्य प्रदर्शक हैं ; किन्तु आपतो हाथी, घोड़ादि अनेक माया-स्वरूप वैभव के संचालक हैं ।" इन्होंने उत्तर दिया—"जो माया के सच्चे त्यागी हैं उनके पीछे माया ही स्वयं फिरती है, वह माया से रंचक भी स्नेह नहीं करते ! जो रात्रि-दिन माया के स्मरण में रहते हैं, उनसे वैभव अत्यन्त दूर रहता है। जिसप्रकार जल कमल में विभिन्नता है उसीप्रकार संसार में अनेक हरिभक्त निवाश करते हैं। जैसे जनकजी गृहस्थाश्रम में रहते हुये भी ज्ञानवैराग्य एवं भक्ति-तत्त्वादिकों के मूर्तिमान स्वरूप एवं पथ-प्रदर्शक थे। हमको भी माया-संग्रह से अत्यन्त वैराग्य है ; किन्तु वैभव-स्वरूप माया पीछा नहीं छोड़ती। उस महन्त के हृदय में विश्वास नहीं हुआ विवादपूर्ण हठ करने पर इन्होंने उसे प्रत्यक्ष कर दिखाना निश्चय किया। आचार्य्यवर्य कोपीन कमण्डल लेकर उसके संग हो लिये और नागेश्वरपर्वत के गुफा में ध्यानावस्थित वैठ गये। तृतीय दिवश वह साधू तो भिक्षा के लिये बस्ती में चले गये। उसीसमय यहाँ स्वामीजीकाही शिष्य एक बनजारा अकस्मात् आगया। उसका नियम था कि बिना वैष्णव-सेवा किये भोजन नहीं करता था। इसीलिये किसी वैष्णव को वहाँ तलास करने लगा। स्वामीजी का ही दर्शन कर उसके हृदय में हर्ष की सीमा न रही, उसने वहाँ चमर, छत्र, घोड़ा, हाथी अमित वैभव भेट किया। समस्त वही राजसी ठाटवाट हो गया। इतने में ही वह परीक्षक साधू वहाँ आकर देखा कि उनके निकट वही राजसी वैभव-बिद्यमान है।

उसके आश्चर्य की सीमा न रही,त्याग के प्रत्यक्ष प्रभाव को देखकर इनके चरणों में गिरपड़ा और प्रार्थना पूर्वक क्षमा याचना की। आप उसी प्रकार चमर छत्रादिकों सहित परशुरामपुरी को आये। इसप्रकार इनके अनेक चमत्कार-पूर्ण-चरित्र पाये जाते हैं।

इन्होंने परशुरामसागर नामक एक वृहद्ग्रन्थ निर्माण किया है; जिसमें वाइससौ दोहा, छप्पै, छन्द और हजारों पद हैं, जो भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, गुरुनिष्ठा, प्रेम, उपदेशात्मक हैं। संसारिक-जीवों के लिये कल्याणप्रद हैं। यह ग्रन्थ साम्प्रदायिक वैष्णवों के असावधानी के कारण अभीतक अप्रकाशित ही है, यदि प्रकाशित हो जाय तो साहित्य-जगत में एक कमी को पूर्ति करने वाला होगा। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित सैकड़ों प्रति हैं। सलेमावाद में भी एक प्रति है। यह ग्रन्थ वहीं से प्रकाशित होने योग्य है। श्रीपरशुरामदेवजी के द्वारे का मुख्य गद्दी 'सलेमावाद' ही है। और भी इस द्वारे के विभिन्न प्रान्तों में वृहद् सैकड़ों स्थान वने हुये हैं। कृष्णगढ़, जयपुर, सिरोही, बूँदी, उदयपूर, अजमेर, पंजाव, संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त और व्रज आदि प्रान्तों में विशाल स्थान आचार्य्यकीर्ति स्मरण करा रहे हैं। श्रीपरशुरामसागर से कुछ दोहे और पद उद्धृत किये जाते हैं—

दोहा—श्रीगुरु संत समान हरि जो उपजै विस्वास;
दरसन परसन परमसुख 'परसा' प्रेम निवास॥ १ ॥
परमेश्वर के पर्मगुरु परम—सनेही साध;
'परसा' इनके स्मरन किये कटैं कोटि अपराध॥ २ ॥
श्रीगुरु समझ सनेह करि बारंबार सम्हार;
'परशुराम' भवसिंधु को नाव उतारै पार॥ ३ ॥
नाव तरैं भव—सिंधु में श्रीगुरु के उपकार;
'परसा' दीखै परगटै हरि सेवक निर्भार॥ ४ ॥
अंदेसौ अनुराग कौ सिंधु सकल संसार;
'परसा' तामे ना परै श्रीगुरु राखनहार॥ ५ ॥
कटुक बचन गुरु के भले जिनते कारज होय;
अमृतवानी जगत की 'परसा' निष्फल सोय॥ ६ ॥

श्रीगुरु कहे सो मानिए सत्य शब्द बलिजाव;
और झूठ सब जग बकै सुमरि साँच हरिनाँव ॥७॥
परसुराम सुनि सीखलै हरि सुमरन की शाख;
श्रीगुरु दई दयाल हो सो हृदय धरि राख ॥८॥
श्रीगुरु लई कमान कर बाहन लागे तीर;
परसा बहु घायल भए मुए जु भिरे सरीर ॥९॥
घायल घूमैं गहि भर्‍यो राख्यो रहै न ओट;
परसा जतनन जीवहीं लगी मर्म की चोट ॥१०॥
लगी दवा सू निसरै छानी कभी न होय;
परसा भार्‍यो मर्म को जीवै नाहीं सोय ॥११॥
परसा श्रीगुरु बाण लै मार्‍यो मर्मजु प्रान;
जीवन का संशय पड़ो सालै सकल संधान ॥१२॥
परसुराम सत सूरगुरु बाहनहार अथाह;
एक जु वाही प्रीति सो बैठी फोड़ सनाह ॥१३॥
सतगुरु मारयो वान भरि घर,बन कछु न सुहाय;
तन मन विकल सुपीड़ते परसा कहिए काय ॥१४॥
हँसै न बोलै उनमुनी चंचल छोड़यो भार;
'परशुराम' भीतर भिद्यो सतगुरु को हथियार ॥१५॥
साँचे गुरु के साँच घर झूठौं झूठ समाय;
परसा अस्थिर साँच है झूठा आवै जाय ॥१६॥
परसा पूर्‍यो प्रीति सों प्रेमवान गुरु सूर;
बाहर तजि भीतर भिद्यो सूवो साम हजूर ॥१७॥
मन मूवो क्यों जानिये क्यों घर सहज समाय;
परसा पीवै प्रेमरस पिय सो प्रीति लगाय ॥१८॥
पियसो प्रीति लगाय के सुमरो तजि अभिमान;
छनभरि पलक न बीसरौ परसा प्यारो स्याम ॥१९॥
प्रेम सरस अंतर पर्‍यो प्रान रह्यो विरमाय;
लागी प्रीति अपारसो परसा तजी न जाय ॥२०॥
लागी प्रीति अपार सो अब मन अनत न जाय

'परसा' बोले आन सो तो फिर स्याम रिसाय ॥२१॥
भय भागा निर्भय भया जन्म मरन ना पास ;
लौ लागी हरिनाम सो परसा सुख में दास ॥२२॥
आना जाना भर्म है जानेगा जन कोय ;
'परसा' प्रीतम स्याम विन जाके उती न होय ॥२३॥
साखी सुनौ मुरारि की 'परसा' प्रीति लगाय ;
एक पलक के प्रेम में मन दै गयो समाय ॥२४॥
'परसा' श्रीगुरु अंकुशहि पशु पिछाने नाहिं ;
हरिअमृत को वेंचि करि बिषय विसाहन जाहिं ॥२५॥
'परसा' मन में संतगज अंकुश मानै नाहिं ;
तन मंजन सिंदूर मढ़ि लेहि खेह सिरमाहिं ॥२६॥
मन में अन्त न मानही गुरु अंकुश को ज्ञान ;
'परसा' जे भूले फिरै अपवल अंध अजान ॥२७॥
वदै न श्रीगुरु-शब्द की मन-हाथी में मंत ;
'परसा, सभी अचेत पशु अपने वाय बहंत ॥२८॥
'परसा' श्रीगुरु का करै रह्यो बहुत समझाय ;
वावर मनवां बरजता चल्यो दोजखे जाय ॥२९॥
'परसा' गुरु अंकुश सहै तो लहि सुख संतोष ;
श्रीगुरु को अंकुश नहीं सुमरिन शील न पोष ॥३०॥
परशुराम क्यों वीसरै गुरु गोविंद शरीर ;
हृदय वसै ज्यों सीप को स्वाति बूंद को नीर ॥३१॥
परशुराम तन मन बसत हरिजल बिन बलहीन ;
जब धोवै तव निर्मला नातर सदा मलीन ॥३२॥
तन वस्तर उज्ज्वल भए परसा पानी धोय ;
जब घर आवै रेह को तव मन उज्ज्वल होय ॥३३॥
'परसा, तब मन निर्मला लीजै हरिजल धोय ;
हरि सुमिरन बिन आत्मा निर्मल कभी न होय ॥३४॥
साँच झूठ नहिं राचही झूठो मिलै न साँच;
झूठ झूठ समायगो साँचो मिलि हैं साँच ॥३५॥

साँचो सीझै भवतरै हरि पुर आड़े नाहिं;
परशुराम झूठो दहै बूड़े भव जल माहिं ॥३६॥
ज्यों जल परसै सिंधु को लै सलिता कौ संग;
परशुराम त्यों मिलन है मारग सच्चा संग ॥३७॥
सतसंगति बिन जो भजन सो न लहै सुख सीर;
परसा मिलै न सिंधु सो नदी बिहीना नीर ॥३८॥
नीर विना निपजै नहीं परशुराम भुवमंड;
साधु न निपजै साधु बिन फिर खोजो नवखंड ॥३९॥
सीप न निपजै सिंधु बिन मुक्ताइल बिन सीप;
साधु न निपजै साधु बिन परशुराम कहुँ दीप ॥४०॥
साधु समागम सत्य करि करै कलंक बिछोह;
परसुराम पारस परसि भयो कनक ज्यों लोह ॥४१॥
परसुराम हरि पारसो परस्यां मन निकलंक;
हरि पारस परसे नहीं तब लगि मन सकलंक ॥४२॥
परसुराम हरि पारसो जो न लियो मन चेटि;
बाँकी भगी न जीव की रहीं टेटि की टेंटि ॥४३॥
परसुराम सतसंग सुख और सकल दुख जान;
निर्वैरी निर्मल सदा सुमिरन शील पिछान ॥४४॥
निष्कामी निकलंक नित निर्वैरी निर्भार;
परसुराम ता दास के सुमिरन सील शृंगार ॥४५॥
परसा निर्मल साधु को शरन सदा निकलंक;
सेवत हरि सुख सिंधु को चढ़ै न देत कलंक ॥४६॥
परसुराम सतसंग को फल निर्मल निज सार;
भव तारन निर्भय करन मनके हरन विकार ॥४७॥
निर्मल दीखै सत्य करि सदा सुखी सतसंग;
भाव, भक्ति, विश्वास, रति परसा प्रभु को अंग ॥४८॥
निर्वैरी निर्मोह तरु छाया सुफल अनूप;
परसा हरि जन हरि यथा संत सदा सुख रूप ॥४९॥
परसा साधु समागमी कीजै प्रीति; लगाय

प्रेमकथारस स्याम-रति सुख में रह्यौ समाय ॥५०॥
जो भक्ता भजनीक जन भजन भज्यौ जीवंत;
परसुराम जन प्रेम ते हरि-अमृत पीवंत ॥५१॥
परसा सेवन हरि जनन मानै श्रीहरि राय;
सोभा सुख ता विंब को ज्यों प्रतिविंब दिखाय ॥५२॥
परसा दरपन नैन को उभय मिलाप अनूप;
जो देखे निज रूप को सो देखे हरि-रूप ॥५३॥
ज्यों दर्पन पावक पड़े परसत ही रवि धूप;
परसुराम हरि नाम ते प्रगटे हरि निज रूप ॥५४॥
'परसराम' फल बीज में बीरज महि बिस्तार;
फल ताही विस्तार में ताफल-रस-सुख न्यार ॥५५॥
'परसराम' हरि संत सँग यहै भक्ति उपचार;
रतिवंती पति को भजै कारन रहत निवार ॥५६॥
परसराम ब्रह्मांड मिलि करै सबै आराधि;
उपजै फिर जहँ बास करि सो सुखसिंधु अगाध ॥५७॥
ब्रह्मा निपजै ब्रह्मते हरि निपजै हरि लागि;
परसा सब निपजै जहाँ सो लगि हरि सो जागि ॥५८॥
हरि हरि जामें अंत बिन उपजै सींव असींव;
को जाने केते बसे परसराम से जीव ॥५९॥
हरिही में उपजै खपै कौ बाँधे परबंध;
परसराम ऐसी समझ हरि जीवन को सिंध ॥६०॥
परसा पंथन पंथिया हरि गति वार न पार;
परम-पदारथ परम-धन धीरधर निरभार ॥६१॥
परसुराम हरि आपने कीजै अति मनुहार;
अंतरगति की आप ही लेसी सबै बिचार ॥६२॥
परसुराम साहिब भलौ सुनै सकल की बात;
दुरै न काहू की कभू लखै लखी नहिं जात ॥६३॥
सुख दुख जन्महि मरन को कहै सुनै कोउ बीस;
परसा जीवन जानहीं सब जानै जगदीश ॥६४॥

परसुराम जलबिंदु ते जिन हरि दीनों दान;
सो जाने गति जीव की हरि गति जीवन जान ॥६५॥
परसा साँचहि झूठ को कहिये मन की दौर;
आशय ईश्वर जानि हैं मेरी तेरी और ॥६६॥
'परसा, अकलप कल्पना निष्कामी सहकाम;
जानन हारौ जानि हैं जहँ मन को विश्राम ॥६७॥
जिन सिरजै सो जानि हैं सब के मन की बात ;
'परसा' घरते क्यों दुरै घरही घर जो जात ॥६८॥
जल छानी सो थल बसै थल की जल अविसार ;
'परसराम' जल थलवसी जानी सब की सार ॥६९॥
'परसराम सब जीव को गुन औगुन को ज्ञान ;
उदय अस्त आदित्य गति जाने सो भगवान ॥७०॥
ज्ञानधर्म वैराग सुख ईश्वर जेता अंस ;
'परसा' श्रीयश जासको सोईसूर बड़ वंश ॥७१॥
द्रष्टक दीखै बिनसतो अविनासी हरि नाउं ;
सो हरि भजिये हेत करि 'परसुराम' बलि जाउं ॥७२॥
सब जीवन में हरि बसै हरिही में सब जीव ;
सर्व जीव को जीव हरि 'परसराम' सो सीव ॥७३॥
हरि जल,थल, व्यापक सकल सबकी कन सँभाल ;
'परसुराम' सोइ हरि भजै तजै जगत जंजाल ॥७४॥
ज्यों घृत दीखै दूध में सुमिलि आपको अंग ;
'परसा' प्रीतम त्यों बसै प्रेरक सब के संग ॥७५॥
जैसे तिल में तेल बसि जावति फलरस आथि ;
'परसा' त्यों प्रीतम बसे व्यापक सब के साथि ॥७६॥
ज्यों दर्पन द्रष्टक बसै दीखै गह्यो न जाय ;
'परसा' अन्तर्यामि त्यों सब घट रह्यो समाय ॥७७॥
दास हरी अंतर नहीं 'परसा' भज सामानि ;
ज्यों हरि व्यापक सकल में तू हरिजन त्यों मानि ॥७८॥
'परसा' आस्तिक रूप को नास्तिक हीये नाहिं ;

आस्तिक को नास्तिक कहै सो नर नास्तिक माहिं ॥७९॥

'परसा' नास्तिक नामबिन आस्तिक जहँ हरिनाम ;
हरि आस्तिक आदर नहीं तहीं नास्तिक ठाम ।८०॥

आस्तिक सब नास्तिक भए जहँ हरि सुमिरन हानि ;
साँचे आस्तिक हरि भजन परसा लेउ पिछानि ॥८१॥

हरि की आस्तिक 'परसराम' रही सकल भरिपूरि ;
सब में बरतै कोई लखै है हाजिर पै दूरि ॥८२॥

हरि आस्तिक को छाँड़ कर भर्म होय नहिं दूर ;
'परसराम' जाको मिटै जाको रहै हजूर ॥८३॥

जल, थल व्यापक देखिए समझि बिचारि अनूप ;
'परसा' प्रेरक प्रान को सो सब आस्तिक रूप ॥८४॥

आस्तिक चिन्ह सु-आतमा आपा परम न लाय ;
'परसराम ता आस्तिके माने त्रिभुवन राय ॥८५॥

सर्व-सिद्धि को सिद्ध हरि सब साधन को मूल ;
परसा सब सिद्धयार्थ हरि सिद्ध सुवनि स्थूल ॥८६॥

आसतीक आनंद पद नासतीक ते न्यार ;
'परसा उज्ज्वल आस्तिक नासतीक मलधार ॥८७॥

कर्महीन कलपत फिरै सदा दुखी जे प्रान ;
'परसुराम' गिरिकंचने छुवत होत पाषान ॥८८॥

वापी कूप समुद्र जल जाय कहूँ चलि प्रान ;
'परसुराम' ज्यों कुम्भलो लेसी भर उनमान ॥८९॥

'परसा संपति बिपति सुख जहँ तहँ एक समान ;
जावक हू भावै यहाँ हरि लिख सो परमान ॥९०॥

सबको पालेपोष है सबको सिरजन हार ;
'परसा' सोन विसारिये हरिभज बारंबार ॥९१॥

गर्भवास जठराअगिनि जिन हर लीनों राखि ;
'परसा' सौन विसारिये सुमिर सदा सुख साखि ॥९२॥

परसा जिन पैदा कियौ ताको सदा सम्हारि ;
नित पोषै रच्छा करें हरि पीतम न विसारि ॥९३॥

परम सनेही आपनो आपन माहिं पिछान ;
परसा तूं जो जाननो तौ ताही को जानि ॥९४॥
जे हरि जाने आपको तौ जानी भल लाभ;
परसा हरि जानौ नहीं तौ अति भई अलाभ ॥९५॥
जल के दोउन सारिखी पनहारी तट तीर;
परसराम रीतो नहीं भरन गई हरिनीर ॥९६॥
परसा सकुचि न हरि रहि पानी देखि चमारि;
आवै सरनहि सन्मुखै जलवामनी विचारि ॥९७॥
परसराम हरि भजन सुख भेद न कछू अभेव;
सब काहू को एकसौ जेहि भावै सो लेव ॥९८॥
मानसरोवर वक तजै जहँ छीलर तहँ जाव;
परसा हंस न सेवहीं छीलर यहै स्वभाव ॥९९॥
खर, भसमी, स्वनहा, सड़ी, सूकर, सर्प, विलाव;
परसा अमृत प्याइए छांड़ै नहीं स्वभाव ॥१००॥

[राग—ललित]

गोविंद ! मैं बंदीजन तेरा।
प्रात समय उठि मोहन ! गाऊँ तौ मन मानै मेरा ॥
कृत्यम कर्म, भर्म, कुल करनी ताकी नाहिन आसा।
तेरा नाम लिया मन मानै हरि सुमिरन विस्वासा ॥
करूं पुकार द्वार सिर नाऊं गाऊँ ब्रह्म विधाता।
'परसुराम' जन करत वीनती सुनि प्रभु अविगति नाथा ॥ १ ॥

[पद]

जो जन सुमिरन-ब्रत-धारी।
सो क्यों डरै दास दुविधा तै जाके श्याम-महाबल भारी।
नृप नारी अहंकार आप बलि पति देखत सुत मान उतारी ॥
राख्यो जतनि जानि जग ऊपर दीसै धू अधिकारी।
नरसिंह रूप धर्यौ हरि प्रगटे हिरनाकुस मार्‍यो उर फारी ॥
जन प्रहलाद बाँह दे अपनी राख्यो सरन उबारी।
कौरव-सभा सकल नृप देखत चीर गह्यो ग्रब हारी ॥
हरि सुमिरत द्रोपदि पति राखी प्रगटी प्रीति पुकारी।

रावन रंक कियो जिन छिन में अनुग सहित सब सेन संहारी॥
'परसुराम' प्रभु थापि विभीषण निर्भय लंक दिखारी ॥२॥

[राग-विलावल]

हरि-हरि सुमिरि न कोई हारयो।
जिन सुमिर्‍यो तिनही गति पाई राखि सरन अपनी निस्तार्‍यो ॥
कौरव-सभा सकल नृप देखत सती विपति पति नाहिं सँभार्‍यो।
हाहाकार शब्द सुनि संकट तिहिं औसरि प्रभु प्रगट पधार्‍यो ॥
हरि सो समरथ और न कोई महापतित तिन को दुख टार्‍यो।
दीनानाथ अनाथ निवाजन भगतवछल जु विरद जिन धार्‍यो।
'परसुराम' प्रभु मिटै न कबहूँ साखि निगम प्रहलाद पुकार्‍यौ ॥३॥

हरि सन्मुख जो पै मन रहि है।
तो पै कहा चित करिबेकी जो चहियत सोई हरिमहि हैं॥
सकल सिद्धिको मल कल्पतरु सोइ समरथ इच्छा-फल दै हैं।
मनबाँछित पद उच्च अभैय सुख हरिको दियो फेरि को लैहैं॥
रविको उदय असह निसिहै अति आतुर चलत न पल रहि हैं।
त्यों अघ-तिमिर ताप, तन मन तजि पद, प्रकास परसत दुरि जैहैं॥
यह परतीति सत्य सब जानै हरि सुखसिंधु न दुखको सहि हैं।
'परसुराम' को सेवत जन सो न वहुरि कबहूँ प्रभु पछितैहैं ॥४॥

[पद]

हरि सौं प्रेम नेम जो रहि हैं।
तौ कहा जगत उपहास प्रीति ते सरै कहा कोऊ कछु कहि हैं॥
हरि निज रूप अनूप अभैवर सुवस भयो ऐसो सुख जहि हैं।
परम पवित्र पतित-पावन जस सो तजि कौन स्वर्ग चढ़ि ढहि हैं॥
पतिब्रत गयो तो रह्यो नहीं कछु, ऐसी बड़हानि जानि को सहि हैं।
कौन पतित पति को ब्रत परिहरि भ्रमि संसार-धार में वहि हैं॥
आन उपासन करि पति परिहरि धृग सोभा ऐसी जो महि हैं।
तजि पारस पाषान बाँधि उर बसि घर में घरको को दहि हैं॥
हरि सुख-सिंधु अपार प्रगट जस सेइ,सुमिरि सुनि करि जस लहि हैं।
'परसराम' निर्वाह समझि यह तजि हरि-सिंह स्वान को गहि हैं ॥५॥

[पद]

श्रीमनमोहन के रँग रँग्यो सुनि जात निचोऱ्यो;
　　　　रंग तजै न सो फीको परै झाझै झकझोऱ्यो।
हरि सन्मुख जब ही चल्यो तब मैं न वहोऱ्यो;
　　　　हरि सों मिलि सर्वस दियो मोतै मुख मोऱ्यौ॥
पलटि प्रान तहँ को भयो मोतै चित चोऱ्यो;
　　　　हरि आधीन कुरंग ज्यों डोलत सँग डोऱ्यो।
जतन जतन करि प्रीति सो पहिली मैं जोऱ्यो;
　　　　तार्पानि को परसि प्रवल भयौ तूटत नाहीं तोऱ्यो॥
मन मो तन चितयो नहीं अरु मैं हू न निहोऱ्यो;
　　　　नैन उभै सुख-सिंधु ज्यौं आवत न अहोऱ्यो।
एकमेक पिय प्रेम सो अंग संग दुहेऱ्यो;
　　　　'परसा' पै पाती मिल्यो सुविधुरत न विछुऱ्यो॥६॥

[पद]

अविगत गति जानी न जाय काहू कै कीए;
अगम अगोचर निगम ते जु खोजत मन दीए।
अबरन वरन इहां उहां कहिए जो ऐसा;
सेत न पीत स्याम सो जैसे का तैसा॥
कोई कैसे ही कहौ मति को उनमाना;
ज्यों पंखी सब लै उडै अपन् उड़ाना।
उड़ि जानै सोई उड़ै पाँखा के सारै;
गहि राखै न गिराइ देइ जीतै न कछु हारै॥
स्वर्ग कौन ते दुरि है अरु कौन ते नीरा;
सब काहू को सारिखौ तातौ न कछु सीरा।
डोलै डिगै न डरु करै कहूँ जाइ न आवै;
जैसो को तैसो रहै परसा सुख गावै॥७॥

[पद]

जब कबहूँ मन हरि भजै तबही जाइ छूटै;
　　　　नातरि जग-जंजाल ते कबहूँ ना बिछूटै।

काम, क्रोध, मद, लोभ सो वैरी सिर कूटै;
हरि बिन माया मोह को तंतूर न तूटै ॥
हरष, सोक, संताप ते निज नेह न खूटै;
हरि निर्मल-नीर न ठाहरै मन वारुणि फूटै।
सोच, मोच, संसै सदा सर्पिन ज्यों चूटै;
'परसा'प्रभु विन जीवको दुखसुख मिलि लूटै ॥८॥

[पद]

हरि सुमिरन बिन तन मन झूंठा।
जैसे फिरत पसु, खर, सूकर उदर भरत इंदर भ्रमि वूठा ॥
अकरम कर्म करत दुख देखत मध्यम जीव जगत का जूठा।
निर्धन भये श्याम धन हार्‌यो माया, मोह, विषै मिलि मूठा ॥
हरि सुमिरन परमारथ-पति त्रिन जमपुर जात न फिरत अपूठा।
'परसराम'तिनसों का कहिए जो पारब्रह्म प्रीतम सों रूठा ॥९॥

[पद]

अघतिमिर दुरत हरि-नाम तै।
ज्यों रजनी चलिवे को चंचल थिर न रहत रवि-घाम तै ॥
सुमिरन सार प्रगट जस जाको, भव तारन गुन-ग्राम तै।
जीवन मरन विघन टारन कोई, और नहीं बड़ स्याम तै ॥
कलह केलि कुल काल कलपना, कटत कल्पतरु छाम तै।
तन, मन सुद्ध करन करुनामय, बर निर्मल निहकाम तै ॥
मिटत दुरत दुर्बास दुसह दुख, सुख उपजत अभिराम तै।
पतित पतित-पावन पद पर्सत, छूटत छल, बल काम तै ॥
हरि-हरि-हरि सुमिरन सोई सुकृत, विरता मत धन धाम तै।
असरन सरन प्रेम रत जन कौ, करन अरति भ्रम भाम तै ॥
हरि सुमिरै ताको भय नाही, निर्भय निज बिश्राम तै।
लिये नहीं संसार सु परसा, अधिकारी जल जाम तै ॥१०॥

[पद]

हरि बिन घर सोभित जैसे कूवा।
भक्ति नीर बिन सूनि सदा निसि संसैसाल सोकनि धूवा।
तामहि वसत भुजंगनि भामनिस पलेटक धोटक ते जूवा।

विषै बिकार भरै नखसिख लों अकरम करम करन को हूवा ॥
अति भयभीत रहत निसिवासर घर महि न खाली वसि सूवा।
सदा दुखी सुख लहत न कबहूँ घर-घर करि पापी पड़ि मूवा ॥
फूले फिरत असोभ अलेखै निर्फल कड़वे लीफे फूवा।
उपजि खिरत बहु बार जगत में ज्यों तरवर के पतवा ॥
विनसि जात बिश्राम विमुख सब क्यों सुधरत नाहिन हरि दूवा।
'परसा'प्रभु को भजि न सकल सठ काहिं अति नर हूवा अनहूवा॥११॥

राग—टोड़ी

जो जन भयो हरि नावन जोको तो हरि बिन जनम अकारथ जीको।
ज्यों विकल जीव सँगि बुद्धि भ्रमी'को;सोच न उपजत समझ गमी कौ॥
रुचि करि अँचवत ओस जमी को; डारत करते कलम अमी कौ।
'परसा' तन सुमिरन बिन फीकौ; तन धरि हरि भजिए सोई नीको ॥१२॥

[पद]

हरि सुमिरन करिए निस तरिए; हरि सुमिरन बिन पार न परिए।
हरि सुमिरै सोई हरि नाती; हरि न भजै सोई आतम-घाती ॥
हरि सुमिरै हरि को हितकारी; हरि न भजै सोई व्यभिचारी।
हरि सुमिरै सेवक सुखनामी; हरि न भजै सोई लोनहरामी ॥
'परसा'हरि सुमिरै हरि-सोषी; हरि न भजै सोई हरि-दोषी ॥१३॥

[पद]

मनरे ! उलटि मन को सोधि।
पाइए क्यों परम पद यौं आन पसु परमोधि ॥
जलत रुचि पट आसपासी मोह-माया-जालि
अकल-जल बिन अंध अपवलि गिले संसै कालि ॥
आप जाय सुवसै अंतर अकल अबिचल साँच।
ताहि लागि बिकार परिहरि सुभ-असुभ-कृत-काँच ॥
प्रगटि पावक पवन लागो सकल झल व्यौहार।
ऊँच नीच विवान जल, थल धसति धुंधकार ॥
क्यों बुझै असमान लागी बाद बल अहंकार।
'परसुराम' निवास हरि बिन गये बड़रे हार ॥१४॥

[पद]

है कोई साधु सुभट संग्रामी घरि संग्राम सँभारै ।
बाहर जाय भिड़ै नहि पर दल अपनो कुटुँव सँहारै ॥
सूरौ सो जु मध्य मिलि जूझै निकसि न जी से हारै ।
दस दल मेलि हतै सब कायर सूरै सूर उबारै ॥
आसा तजि निरास रहै जो कर सिर भार न लेई ।
सोई रन सूर सधीर महामुनि पति को पीठि न देई ॥
मन लवलीन दीन पै रिसबिन फिरि आपन पौ मारै ।
'परसा' सो नर भिड़ै न भाजै ता संगीन निसतारै ॥१५॥

[पद]

हरि ! मेरी जारति क्यौं न हरौ ?
मैं अनाथ प्रभु अन्तजामी सुनि किन कृपा करौ ॥
मैं जन दीन दुखित दिस नाही तुम बिन गत सगरौ ।
अब करुनासिंधु सहाय करौ किन गुन औगुन न धरौ ॥
तुम किये पवित्र पतित पुरमंडल अघहोइ अगनिचरौ ।
जन-जीवन दुख हरन कृपानिधि वैसे क्यों बिसर्यौ ॥
खोट कमाई गाँठ में बाँध्यो दोनो डारि खरौ ।
लेउ सुधारि सकब पति सति करि खोजों कहां परौ ॥
मैं मतहीन भाव सेवाविन पर घर घालि धरौ ।
'परसुराम' प्रभु भगत वछलता यह जिनि विरद टरौ ॥१६॥

[पद]

मेरी तुम ही कौ सब लाज बड़ाई ।
ज्यों जानो त्योंहीं त्यौं राखौ अपनो करि आपन हरि राई ॥
कर्म उपाय बहुत करि देखै मति निःकलप तृपति नहिं आई ।
हरि-कल्प-तरोवर की छाया बिन कबहूँ मन कल्पना न जाई ॥
दीनानाथ अनाथ निवाजन कृपन-पाल गोपाल कन्हाई ।
परम पवित्र पतित पावन प्रभु अधम उधारन विरद सदाई ॥
पाप हरन त्रेताप निवारन असरन सरन बड़ी सरनाई ।
अब न तजौं तन, मन द्वै भजिहौं हरि अमृत निधि प्यासैं पाई ॥
श्रीगुरु कही सुनी मैं नीकै कीरति प्रगटि सकल भरि छाई ।

सेस आदि निगमादि सु महिमा भव विरंचि उर धरि मुख गाई ॥
तुम दीनदयाल कृपाल कृपानिधि हरिदुख-हरन सकल सुखदाई ।
लै निवहन कौ 'परसुराम' प्रभु तुमबिन कोउ सूझै न सहाई ॥१७॥

[राग धनाश्री]

हरि परिहरि भर्मत मति मेरी ।
कहत पुकारि दुरावत नाहिन यह तो प्रगट फिरत नहिं फेरी ॥
श्रीगुरु शब्द न मानत कबहूँ उमगि चलत अपनी हरि हेरी ।
तजि निज रूप विषय मन उरझत हित सो चढ़ि बूड़नकीबेरी ॥
नाहिन सङ्क करत काहू की चरत निशंक कूप तें नेरी ।
'परसा' छिटकि परी भव-जल में अब कैसे पैयत सो हेरी ॥१८॥

[पद]

हरि विन धृग जीवन व्यौहारा ।
जो लगत न मन गोपाल भजनसौं तजत न विषय बिकारा ॥
कलि को रस विलसत सुख करि-करि परि गये कठिन ठिकारा ।
अब मिटत न वैजु डुवास निकसे गत कागद के कारा ॥
निघटि गई निज सौंज वादि पै सोचि न कियो विचारा ।
हार्‍यो रतन जनम बलि साटै सो वहुरि न मिलत उधारा ॥
जोनि अगिन जल थल कुल भर्मत सुख न लहत फिरि सारा ।
'परसुराम' भागवत विमुख नर धर्म राय के प्यारा ॥१९॥

[पद]

कहा सह्यो नरनाह रूपतैं भूपति भूप कहायो ।
जीवन जनम गयो दुरि दुख महि पै हरि-सुख-सिंधु न पायो ॥
वेद पुरान सुन्यो सब सीखो गायो गाय सुनायो ।
मेटि न सक्यो कर्म मन तन तै हरि निहकर्न न गायो ॥
कियो करायो सबै गमायो जो हरि मन में न बसायो ।
मन के दोष मिटै क्यों परसा हरिमन माहिं न आयो ॥२०॥

[पद]

गयो मन वादि अस्थिर न होई; जो सत्य निज रूप सुमिर्‍यो न सोई ।
हारि चाल्यो महासिद्धि साधी; न सामुग्धबल बुद्धि विन वस्तु खोई ॥
क्यों होत निस्तार निज ठौर निधि परिहरी भक्ति नित नेम निहचै न कोई ।

तज्यो वास वेसास विश्राम हृदय न विनजान पहिचान को देत ठोई ॥
जोनि अनेक जगजन्मि भ्रम्यो ज्यों तूटि तखान सही न छोई।
तृष्णा तरस रुलतन-मूल सालै सदा दुखितसुख सोचि लोच्वो न लोई ॥
तृप्त उर बहुत हरिहत 'परसा' समझि प्रीति पति प्रेम जैसी समोई ॥२१

[पद]

सोई हरि प्रान पति प्रगट मन किन सँभारै,
विन भक्ति नर जन्म कित वादि हारै।
समझि दृढ़ बुद्धि करि सुद्ध निमल सुपति,
सत्य सुख—रूप निर्भय मुरारी।
निरखि निधि सेइ भजि गाय गुन पर्म-पद,
सकल सुख आनन्द—कारी ॥
हरिनाम सुख-रूप साधन बड़ौ भजन को,
भज्यौ उर धारि भव पार तारै।
सर्व सुखदेत वैकुंठ पुरि आदि दै और,
दुख, सोक, भय हरि निवारै ॥
कछु समझि मति अन्धतजि धंध पखंध,
ए कर्म करि सुख न कोई।
श्रुति स्मृति कहै साखि सुख—सिंध को,
श्रवन सुनि सीख मुख सुमिरि सोई ॥
चित चेति गहि चरन दुख हरन के सरन,
रहि कृष्ण, केशव सुमिरि साखानी।
'परसा' सु वेसास उरधारि प्रभु सेइ,
अन्तर निरन्तर वसै सत्य जानी ॥२२॥

[पद]

ऐसो भजन भय हरन भय और व्यापै नहीं,
अभय हरि नाम जो हेत भासै।
त्रिविध तन ताप संताप सोषन प्रवल,
सुनत बल व्याल भयकाल नासै ॥
अघ-तिमिर निसिघोर अंधार देखत मिटै,
कवहि जब सत्य करि रवि प्रकासै।

त्यौं रौर वर चौर निज रूप रचा करन,
　　कृष्ण घनश्याम नर उर उजासै ॥
ज्यों सिंह धुनि श्रवन सुनि सकल संसय,
　　सुरति वन भुवन जीव जंत्रादि जासै ।
त्यों हरषि अरि सोक सब जन्म मरनादि दै,
　　सुतरि कबहूँ न फिरि वस्तुवासै ॥
मिटत सब किरन वलहीन तन तेज बिन,
　　निरखि रवि रूप जब राहु ग्रासै ।
इत सु तित पावन सुयश श्रवन जो संचरै.
　　तौ सोधि वपु विथा की जड़ उकासै ॥
सुनत घन गाज मृगराज जीवै नहीं,
　　मरत करि पिंडते प्रान पासै ।
त्यों कल न कलि बिघन कलिकाल कुल,
　　कल्पतर सकल सुखमूल भजि दुख निकासै ॥
रहत निर्भार तजि भार दिसि ओर ज्यों,
　　सिंधु सन्मुख सदा नहिं निवासै ।
'परसा' सुजन धन्य नित नेम निहचै गहै,
　　प्रेम निज नीर जिन पियो प्यासै ॥२३॥

[पद]

कैसे होत हरि भजन ऐसे आनि वानी ।
कठिनता जीवको पार पैलौ भयो बीचही वार। महि और ठानी ॥
फंद माता, पिता, वंधुकुल भाकसी जगत पसु पौरि पटुकानि मानी ।
पगैत्रिया वेड़ी गलै पुत्र पासी जड़य स्वाद संकलि पड्यो मोह खानी ॥
काम, छल, क्रौधबल लोभ घनलोह ज्यों छीज यों ताइतन जात हानी ।
कर्म-जंजीर भ्रमजाल 'परसा' पऱ्यो भक्ति ताविमुख छूटै न प्रानी ॥२४॥

[पद]

लोचन लोचत है ल्योलाए ।
हरिदर्शन कारन अति आतुर उलटिन फिरत फिराए ॥
पलभरि पलक न पलटत चितवत समझत नहिं समझाए ।

उझि-उझि चलत जुगल जग परिहरि हरि सन्मुख सुखपाए ॥
उमगि मिलन कारन निसिवासर रहत सजल जल छाए।
'परसुराम' निर्भय रुचि मानत पीव कै प्रेम समाए ॥२५॥

[पद]

भजन विन कारे ह्वै हौ काटि।
कहां जनम पायो जो हार्यो ज्यों रगुली गर माटि ॥
ज्यों समसेर बिना सिकलीगर मल सौं तोड़ै खाटि।
ऐसे यों मन रहै कपट रत स्याम कहन को नाटि ॥
भव बूड़त मति-हीन खसम बिन ज्यों गनिका तन हाटि।
अंति विमूचनि, परसा, प्रभु बिन भागिन लिख्यो ललाटि ॥२६॥

राग—सारंग

सुनि प्रीतम तुमसे कहूँ तैं मोह्यौ मन मेरो हो मोहन !
हम निरखत चन्दचकोर ज्यों मुख मंगल तेरो हो मोहन ॥
ज्यों चातिक चित रितु बसै यों हम उर धरि सुमिरत हो मोहन।
नादलीन मृग ज्यों आपन पो सौंपि दयो सबही हो मोहन ॥
यों मन ता तन को जियो मोह्यो जात जहां हो मोहन।
ज्यों मधुरिख मधु कारने सर्वस सौंप दियो हो मोहन ॥
यों रसिया रस सौं रस्यो जिन मन मोल लयो हो मोहन ॥
मन सुखसिंधु सो मिलि रहै रस अमृत पीवै हो मोहन।
तहां प्रेम पलटि जानै नहीं तहां 'परसा' जन जीवै हो मोहन ॥२७॥

राग—बसंत

बन फूले अति सोहहीं आयोरी सखी मास बसंत।
नाना रंग वास नवी-नवी नव-नव तर नव पल्लव विकसंत ॥
नव-नव सुर कोकिल बोलहीं गुंजत अति मधुकर मैमंत।
पत्ती बहु वानी चवै गुन नब-नव गावै सुरसंत ॥
नव-नव किसलय दल वीनहीं नवनागरि करि भरि बरसंत।
नव संगीत नव नेह सौं नव गागर नव-रस विलसंत ॥
रति नायक रितु विहरहीं राजत अति तामें हरिकंत।
'परसुराम' प्रभु भजि लीजै हरि सुख सब सोभा कौ अंत ॥२८

[पद]

मनुवा ! मनमोहन गायरे ।
अति आतुर होय के हरि-हरि सुमिरि-सुमिरि सुख पाय रे ॥
हरि सुख-सिंधु भजन भजता सुनि सब दुख दोस दुराय रे ।
यौं अवसर फिरि मिलै न मिलिहैं तौ भजि लीजै हरि राय रे ॥
पतित-पतित पावन करिके जमपुर ते लैं बुलाय रे ।
यह हरि साखि समझि सुनि चितकरि भजिमन विलँब,लाय रे ॥
करि आरति हितसो हरि सन्मुख जो सक्यो नसीस नवाय रे ।
तौ जनमि जमद्वार निरादर बारम्बार विकाय रे ॥
अति संकट बूड़त भव-जल में अंत न और सहाय रे ।
तिहि और हरि परम हितू बिन को राखै अपनाय रे ॥
जग पंडित भुवपाल छत्रपति हरि बिन गये खिसाय रे ।
अति बलबंत न बदत और को काल सबनि को खाय रे ॥
पायो नर औतार विगार्‍यो कहा कियो यहां आय रे ।
करि न सक्यो हरि बनिज अचेतन चाल्यो जनम ठगाय रे ॥
हरि सेवा सुमिरन बिन जाको तन मन वादि विलाय रे ।
'परसुराम' प्रभु बिन नर निर्फल बहिगयो वस्तु गमाय रे ॥२६॥

[पद]

यह हरि हमसौं किन कही खरी ।
तैं किनो तिरस्कार हमारौ सुकहा हमते बिगरी ॥
क्यों भोजन मिष्टान्न अभाये अनरुचि आनिअरी ।
खायो जाय बिदुर को साग सो कारण कौन हरी ॥
भोजन भलौ भाव करि लागै कै आपदा परी ।
तेरे प्रीतिान विपति हमारौ यों रही रसोई धरी ॥
हम राजा भूपाल छत्रपति तुम गोपाल घरी ।
हम तुमःसाख न कछू सगाई मीठन सींब सरी ॥
मोही ते उपजै सब मेरी तैं कछ वै न करी ।
अंध असमझ कहत कित ऐसी अति अभिमान भरी ॥
तेरौ कहा विभौ सब मेरौ लेत न लगत घरी ।

अरुदेत न कछू विलंब न सकल कौ होत न पलक भरी ॥
श्रीमुख बचनसुनत अरिऐसे नखसिख अगिन जरी।
'परसा' प्रभु को दरस दुष्ट की दृष्टि न कदे ठरी ॥३०॥

[पद]

सखी ! हरि परम मंगल गाय।
आज तेरे भवन आये अकल अविगति राय ॥
लोक, वेद, मरजाद, कुल की कानि, बानि बहाय।
हरि परम-पद निसान निर्भय प्रगट होय बजाय ॥
उमगि सन्मुख अंक भरि-भरि भेंटि कंठ लगाय।
विलसि सुखनिधि नेमधरि सखि प्रेम सौं लौलाय ॥
वारि डारि तनमन प्रान धन कछु राखिये न दुराय।
'परसा' प्रभु को सौंपि सर्वस सरन रहि सुख पाय ॥३१॥

[पद]

क्यों न चलूं हरि मिटत न मन को मोह।
लगि जु रह्यो पति प्रेम हेम ह्वै बिन रवि रितु न बिछोह ॥
निज जीवन तजि गवन करन रुचि धृग मति जनम सयान।
परम रूप परमारथ परहरि सुखन लहै सोई प्रान ॥
जाको प्रान वसै जा माहीं सोई फिर तहीं समाय।
यों महासिंधु को जीव महाप्रभु निकसि न क्यों पछिताय ॥
क्यों तुमहि व्यापै परम कृपानिधि दीन दुखित को दोक ॥
जो पै मीन तलफि तन त्यागै तौ नीर न सालै सोक।
मोहि तोहि विथा न एक अगह आरति बिन चल्यो न जाय।
यों सहि न सकौ दुख दुसह चरन तजि 'परसा' पति न पठाय ॥३२॥

[पद]

जो तुम अंतरजामी जान।
तो क्यों न विचारहु करुना सागर लाग सब्द सुवान।
जल तजि मीन वसै क्यों बाहर मिटत विरह की आन ॥
जीवै नहीं नीर विन पलभरि तलफि तजै तन प्रान।
पतिवरता पति तजै न कबहू ज्यों गिरि नीर निवान।
'परसुराम' प्रभु चरन सरन तजि भजै सुतन पाषान ॥३३॥

श्रीरूपरसिकदेवजी

छप्पै

विप्रवंश-अवतंश भक्तिरत चिंतक दृढ़चित;
जगमाया मुखमोरि भूरि भव भावुक परहित।
हरिव्यास आचार्य मध्य मथुरा प्रगटाये;
सच्ची-भक्ति प्रताप देव सो दीक्षा पाये।
यश आचार्य हरिव्यास दिव्य पुनि कविता में वर्णन किये;
श्रीआचार्य-हरि करि कृपा इन हस्त महावाणी दिये।

इनके द्वारा निर्मित अद्यावधि-पर्यंत तीन ग्रन्थ उपलब्ध होसके हैं। तीनों में सर्व-प्रथम की रचना हरिव्यासयशामृत है। ये इस ग्रन्थ के द्वारा सफलता-पूर्वक अपने पथ पर अग्रसर होकर; अपने अभीष्ट को प्राप्त कर सके हैं। गुरु, आचार्य एवं श्रीहरि में अभेद सम्बन्ध है। वैष्णवी-सिद्धान्त में जो इनमें भेद करता है उसका कल्याण नहीं-है भी बात यही, इसे वेद शास्त्र पुराणादिकों ने भी खूब गाया है। गुरु-तत्त्व ही एक ऐसी वस्तु है, जिसके अधिक सशक्त-शक्ति के समक्ष ईश्वर को भी झुकना पड़ता है। इस तत्त्व को प्राप्त कर मानव जीवन में आवश्यकीय अभीष्ट की सिद्धि हो जाती है। उसे मायादि प्रपंच एवं भौतिक-जगत में जिज्ञासात्मक होकर विशेष भटकना नहीं पड़ता। उसे अनन्त-प्राप्ति के मंजिल सुगम हो जाते हैं, जिसके सफलता पर देवगण भी मुग्ध होते हैं। गुरु और आचार्य एक हैं। परम्परा प्राप्त इन्हीं की कृपा द्वारा श्रीगुरू से हमें आलौकिक वस्तु प्राप्त होते हैं। आचार्य-तत्त्व भी शास्त्रानुकूल ब्रह्म-तत्त्व से अति निकट तथा सुदृढ़ सम्बन्ध सूत्र से बंधा है। 'आचार्यं मामभिजानीयात्' के अनुसार तत्त्व-दृष्टि से भी इसे ईश्वर स्वीकार करते हैं। ये आचार्य स्वयं श्रीहरि या पार्षदावतार होते हैं या श्रीहरि-प्रेषित ही कोई दिव्य-शक्ति होते हैं; जो अवनि पर प्रगट होकर अधर्म का बिनाश तथा धर्म संस्थापनादि ईश्वरीय-कार्य्य-साधनादि सम्पन्न करते हैं। इन तत्त्वों को श्रीरूप-रसिकजी ने खूब समझ कर दृढ़ विश्वास को मूर्तिमान प्रत्यक्ष करने में दृढ़-संकल्प थे। श्रीहरिव्यासयशामृत इसका एक सुन्दर उदाहरण है इसमें इन्होंने यही गाया है, आचार्य-गुरू ही अभीष्ट-प्रद हैं।

वृहदोत्सवमणिमाल एक वृहद् ग्रंथ है। यह ग्रन्थ उत्सव-क्रमादि से श्रीहरिव्यासदेवजी विरचित महावाणी के उत्सवसुख का

अनुसरण है, किन्तु इष्टतत्त्व-निरूपण भिन्न है। श्रीमहावाणी में श्रीनित्यविहारी के नित्यकेलि में ही नित्य को नैमित बनाकर केवल एक विशेषानंद के लिये, उत्सवक्रम में वर्णित है। बृहदोत्सवमणिमाल इस रीति से सर्वथा भिन्न है—इसमें नैमित प्रमुख है नित्य नहीं। इसमें श्रीनन्दनन्दन-वृषभानुनन्दनी के, जन्म मंगल-बधाई से लेकर नित्य वसन्त, होरी भूला, प्रभृति समस्त उत्सव सुन्दर एवं व्यवस्थित रूप से वर्णित है। श्रीकृष्णावतार के सिवा श्रीराम, श्रीनृसिंह, श्रीवामनादि दशों अवतारों के भी प्रादुर्भाव-दिवस के मंगल बधाई उत्सवादि के पद हैं। अन्त में कुछ शान्तरस के पद वर्णित हैं। यह ग्रंथ इनके विसद-काव्य-प्रतिभा का द्योतक है। ये पदों में अपनी उद्देश्यानुसार रस मूर्तिमान खड़ा करने के उद्योग में प्रशंसनीय सफलता प्राप्त कर सके हैं। पदों की भाषा, ब्रजभाषा है तथा यथास्थान में योग्तापूर्वक सुन्दर अर्थ व्यक्त करने वाले शब्द व्यवहरित हैं। यमक-अनुप्रासादि की भी छटा सुन्दर है। यह इस सम्प्रदाय में लब्ध-प्रतिष्ठ ग्रन्थ है। श्रीवृन्दावन में इसके पद नित्य सेवादि एवं आचार्य उत्सवादि में गाये जाते हैं। यह अभी तक अप्रकाशित है, हस्तलिखित सैकड़ों प्रति वृन्दावन में विद्यमान हैं। इसमें जहाँ-तहाँ दोहे भी हैं-जो धाममहत्व, नाममहत्व, उपदेश, चेतावनी और नीति आदि विषयों पर वर्णित हैं।

श्रीनित्यविहारपदावली केवल १२० पदों की संग्रहीत एक छोटी वाणी है। इसमें केवल शुद्ध नित्यविहार-रस के पद वर्णित हैं। ब्रजलीला का सर्वथा अभाव है। महावाणी के सिद्धान्तानुसार निर्मित है, तथा गम्भीर और चित्ताकर्षक है। इसमें भी ये अपने ध्येय पर सफल हो सके हैं।

इनके परिचय के सम्बन्ध में विशेष बातें उपलब्ध नहीं होतीं क्योंकि प्रथम महात्मा प्रतिष्ठाओं से अरुचि कर अपना परिचय स्व-निर्मित ग्रन्थों में अथवा अलग नहीं लिखते थे। यह एक नियमित रूप से भी व्यवहरित था। सदैव निस्पृह एवं त्याग-वृत्ति में रहते हुए भगवद्भजन-भाव में निमग्न रहते थे।

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के प्राचीन, सहस्रों वर्षों से आज पर्यन्त असंख्य महात्माओं के सद्चरित्र प्रसिद्धता को नष्ट करने में यही अड़चनें सिद्ध हुई हैं। इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत; बड़े बड़े ऋषि, आध्यात्मिक योगी, सिद्ध, भक्त, हो गये हैं, उनके अद्भुत सूक्ष्म चरित्र एवं कठिन काव्यादि इन भावों के सूचक हैं। श्रीरूप-रसिकजी को भी इन्हीं की संख्या में सम्मिलित किया जाय तो अनुचित न होगा ! ये महात्मा दक्षिणी पंच-द्राविड़ ब्राह्मण कुलोत्पन्न थे। इनके पूर्वज प्राचीन काल से ही इस देश के प्रवासी हो गये थे। इनके पूर्वजों ने स्वदेश को क्यों परित्याग किया ? इसका वास्तविक उत्तर अत्यन्त कठिन है परन्तु तो भी उनके कृत्यों का यह श्लोक पुष्ट-पोषक है—

"यस्यान्त सर्वत्र गतिः स कस्मात्स्वदेश रागेणादियाति नाशम्।
तातस्यकूपोयमिति ब्रुवाणः क्षारं जलं का पुरुषाः पिबन्ति ॥
यस्मिन् देशेन सम्मानो न बृत्तिर्नच बान्धवा।
नच विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्ज्जयेत् ॥"

उपरोक्त किसी अड़चनों से ही देश को परित्याग किये हों। जन्मभूमि के कारण इनका रहन सहन सकुकुम्ब इसी देश वासियों के ढलन में टल गई थी। इनकी बाल्यकालीन शिक्षा उपदेशादिक भी इसी देश में हुई थी। इसलिये इनकी मातृ भाषा भी इसी देशवासियों की सी थी। संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। बाल्यावस्था से ही नैष्ठिक ब्रह्मचर्य्य पालनपूर्वक श्रीराधाकृष्ण के सेवार्चन में सदा रत रहा करते थे। माधुर्य्य रस के गम्भीर भावनादिकों संग ही नवधाभक्ति के श्रवणादिक में अत्यन्त अभिरुचि थी। श्रीकृष्णोपासक वैष्णवा-गमन श्रवण मात्र से ही इनका हृदयकंज खिल उठता था। अत्यन्त हर्ष-पूर्वक दर्शनोत्कण्ठित हो शीघ्रता से नंगें पाँव दौड़ते हुये परम स्नेह से, धेनुवच्छवत् जा मिलते थे। सजल नेत्रों को भक्त वदनाम्बुज दर्शन करा तृप्त करते थे। और उनके मुख कमल द्वारा भक्त एवं हरि चरित्र श्रवण कर अति प्रसन्न होते थे।

३६ वर्ष पर्य्यन्त इसी प्रकार भक्ति, भावना, साधु सेवादिकों में व्यतीतोपरान्त इन्हें सद्गुरु प्राप्ति की सत्य अभिलाषा हुई। भगवान्

अपना परम प्रियभक्त भक्त जान, पूर्व जन्म संस्कार-संकृत, इनकी उच्चाति-उच्च उपासना देख आज्ञा की कि, तुम श्रेष्ठ-क्षेत्र मधुपुरी (मथुरा) धाम में जाकर, श्रीहरिव्यासदेवाचार्य्य से शिष्यत्व ग्रहण कर, उनकी आज्ञानुसार भजन भावना में जीवन व्यतीत करो। केवल उनसे ही तुम्हारी अभीष्ट-सिद्धि होगी। जब जीव भगवताश्रय ग्रहण कर उन्हीं को सर्व कर्म धर्मादिक अर्पण कर देता है और अत्यन्त दीन हो नम्र भाव से कहता है कि—

"प्रभु ! नाहिन मम विश्व मैं तुम विन आश्रय और।
भुवन चतुर्दश भोग्य यह हैं असत्य सब ठौर ॥"

जब ऐसी दृढ़ धारणा के प्राबल्य पराकाष्ठा को पहुँचता है, तब वे त्रैलौक्य वैभव एवं विश्व साम्राज्य-भोगादि को भी तुच्छ समझते हुये, विधि निषेध को परित्याग पूर्वक पंच नवधादिक में निमग्न होता है। एवं कर्म धर्मादिक एवं अपनत्व से तृप्त होकर कहता है—"त्वदीय वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पितम्।" तब श्रीहरि को स्वयं उसकी चिन्ता होती है और उसे परमप्रिय जान उच्चाति-उच्च मार्ग में प्रविष्ट कर सदा कृपा दृष्टि द्वारा रक्षा का ध्यान रखते हैं।

"प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान कहो—
कैसे रहै प्रान जोपै अनिख रिसाइ हौ।
तुम तो उदार दीन हीन आइ पर्यो द्वार—
सुनिये पुकार याहि कौलो तरसाइ हौ॥
चातक हो रावरो अनोखो मोहि आचरो—
सुजान रूप वावरो वदन दरसाइ हौ।
विरह नसाइ दया हिय में वसाइ आइ—
हाय ! कब आनँद को घन वरसाइ हौ॥"

इन्होंने श्रीहरिव्यासदेवाचार्य्यजी के अलौकिक प्रभाव एवं सद्गुणों को हृदय कंजपर प्रथम से ही भ्रमर बना रक्खा था। अनेक सन्त वहां जाते थे, और श्रीहरिव्यासदेवजी का अद्भुत प्रभाव वर्णन किया करते थे। श्रीहरिव्यासदेवाचार्य्य के तत्कालीन भक्तों में सर्वश्रेष्ठता का परिचय, तथा उनमें भक्ति भावना का अत्यन्त प्रावल्यता सुन उनके

दर्शन के लिये इनके हृदय में अत्यन्त उत्कट इच्छा हुआ करती थी दर्शनाभिलाषी एवं व्याकुल होकर प्रार्थना करते हुये कह उठते थे कि—"हे प्रभो ! हे आचार्य्यवर !! मुझे आपके चरणाम्बुज दर्शन का सौभाग्य कब प्राप्त होगा ; जिससे मैं इस मानव—देह को कृतकृत्य समझूंगा ।"

श्रीहरि-आज्ञा पाकर अति प्रसन्न हुये, उसी समय कठिन-सांसारिक श्रृंखला को तोड़, दिव्य-जीवन के स्वछन्द मन-वाटिका में भ्रमण करते हुये, हृदय में दर्शनाभिलाषा के उत्कट धारणा को धारण किये, ध्यान के संलग्नता में मथुराधाम को प्रस्थान हो गये। अदर्शनयुक्त एक-एक क्षण एक-एक कल्प के समान प्रतीत होने लगा। मार्ग में उनका ही गुणानुवाद करने लगे—

"हरिव्यासदेवाय नमः पारक—मन्त्र जु एह ।
　　मनु नायक तारक यहै दायक जुगल सनेह ।
हरिव्यासदेवाय नमः शरणमन्त्र यहज्ञान ।
　　या विन राधारमण सो होय न दृढ़ पहिचान ॥"

ऐसे अनेकप्रकार श्रीहरिव्यास-नाम--संकीर्त्तन करते हुये मथुरा में श्रीहरिव्यास—आश्रम में पहुँचे; किन्तु वहां तो आल्हाद के स्थान पर विषाद का साम्राज्य था। सभी वैष्णव तेजहत हो रहे थे, मानो सहस्रों प्रभाकर रश्मि—रहित हो, मलीनता को ग्रहण कर लिये हों, वहां की प्रकृतिसौंदर्य दिव्याभूषण को खोकर भयंकर रूप धारण कर रही थी। तरुलता मुरझाकर मूर्छित से प्रतीत होते थे। समस्त अपने प्रभावशाली प्रियभाजन के बिछोह में दुखी थे। मानो अनाथ बच्चा पिता के आजन्म अज्ञात से दुखी हो। श्रीहरिव्यासदेवजी स्वानन्द मेंही सहस्रों को तड़फते छोड़कर निज नित्य विहारस्थ परिकर में स्वरूप से जा मिले थे। वहां अनेक दिनों के विछुरे प्रधान्या सेवा—सहयोगिनी को पाकर नित्य नये आनन्द मनाये जा रहे थे। आश्रम के समस्त वैष्णवों के मनोद्गार में श्रीरूपरसिकजी को भी सम्मिलित होना पड़ा। इन्होंने सब को दुखी देखकर इसका कारण पूछा तो ज्ञात हुआ कि श्रीआचार्य्य-वर्य्य इस अनित्य-अवनि पर नहीं है। सब को अनाथ त्याग, नित्य-

धाम को प्रस्थान करगये। सुनते ही इनके हृदय में मानो वज्राघात हुई, मूर्छित होकर पृथ्वी के गोद में लेट गये। वहां सन्त एवं दर्शकजनों में घबराहट फैल गई, कि ब्राह्मण को क्या हुआ! वे अनेकप्रकार चेष्टा कर मूर्च्छावस्था से जागृत किये। इन्होंने सब के सन्मुख अपने आने का उद्देश्य कहा और प्रतिज्ञा की कि—"जब तक श्रीआचार्यवर्य का दर्शन न कर लूंगा तब तक अन्य कार्य्य नहीं करूंगा।" इसप्रकार कह कर एकासन से ध्यानावस्थित हो, दृढ़ता पूर्वक बैठ गये। सात दिनरात्रि व्यतीत हो गये अनसनव्रतारूढ़ से विचलित नहीं हुये।

एकदिन श्रीनृसिंह भगवान् को भी लोह-खम्भ विदारण कर प्रगट होना पड़ा था। एक बाई के व्यञ्जनोलाहनामय विलाप से भक्त तुकाराम का स्वरूप भगवानने धारण किया था। भक्तों के व्यञ्जना वाक्य और हठ भी उनके विशाल शान्तावस्था को भंग कर देता है, उन्हें भी प्रसन्न ही करना पड़ता है। भक्त वाक्यों को स्नेहपूर्वक स्वीकार कर, उसे पूर्ति करना स्वकीर्ति समझते हैं। भीष्मप्रतिज्ञा पूर्त्यक भी तो आप ही थे। इसीप्रकार स्वयं श्रीहरि को श्रीहरिव्यासदेव रूप अथवा श्रीहरिव्यासदेवाचार्य्य को ही स्वयं प्रगट होना पड़ा। यहां संशय की आवश्यकता नहीं! लौकिक में भक्तियोग के संग ही अष्टांग-योगादि सिद्धिपूर्ण योगियों के लिये यह कार्य स्वाभाविक ही है। उनमें गुप्त प्रगटादिशक्ति का होना अनिवार्य्य ही है, क्योंकि तत्व में प्रवेश, अन्तर्ध्यान, वपुपरिवर्तन अनेक शक्ति उनके आश्रय रहती है; तथापि येतो सर्वशक्तिमान श्रीहरिप्रिया—स्वरूप ही थे इनकी शक्ति-समालोचना कर सूर्य्य को दीपक दिखाना है। आज अपने एक भक्त के हृदयागार में, प्रगाढ़-प्रेम-तत्त्व के दृढ़ता में परीक्षोतीर्ण का परिचय पाते ही और विलम्ब में असमर्थ हो,प्रगट होकर सुमधुरवाणी से कहने लगे—"हे प्रिय वत्स! नेत्र खोलो—उस दिव्य प्रेमयुक्त--वाणी को श्रवण कर, नेत्र खोलते ही, श्रीआचार्य्यवर्य का दर्शन कर, हृदय गद्गद् होगया, आनन्द की सीमा न रही। निर्धन, आश्रयहीन को यदि विश्व का राज्य मिल जाय तो उसके आनन्द की समालोचना कौन कर सकता है? किसी दुष्कर कार्य के साधक को उसके साध्योद्देश्य की पूर्ती हो

जाने पर उसके अपार आनन्दप्राप्त का वर्णन करना अति कठिन है। भक्त श्रीहरिदर्शन के आशा पर त्रैलोक्य न्योछावर करना भी तुच्छ समझते हैं। तत्कालीन आनन्दानुभव श्रीरूपरसिकजी को भी ऐसाही प्रतीत हुआ। तत्क्षणही श्रीचरणाम्बुजों में लेट, नेत्राश्रु द्वारा अवनि सींचन करते हुये, गद्‌गद्‌स्वर से अनेकप्रकार स्तुति के उपरान्त, उनके कृपा पर मुग्ध होगये। श्रीआचार्य्यवर्य ने स्वाभिप्राय प्रगट करने की आज्ञा दी। इन्होंने प्रार्थनायुक्त-वाक्य से प्रार्थना की कि "हे प्रभो ! हे शरणागत रक्षक ! हे गुरुदेव ! आप सर्वान्तरर्यामी हैं; तथापि आप अपने चरणाश्रय-भक्तों के विनम्र सुमधुर-वाक्यों को श्रवण करने में अति चाव रखते हैं। माता-पिता वात्सल्यतावस अपने शिशु को अनेक बातों में उलझा, उसके विभोर-युक्त कोमल-वाक्यों को श्रवण कर, अति प्रफुल्लित होते हैं। मैं भी संकोच परित्याग कर प्रार्थना करता हूँ कि—शरणागत कर, इस अपार भवोदधि में फँसा हुआ, मुझ पतित को उद्धार करने की कृपा करिये।" भक्त के कातर—हृदय से निकली हुई सविनयवाणी, दिव्यवपु आचार्य्यवर्य को इस वरदान के लिये विवश कर दिया। उसीक्षण हृदय से लगा कर, स्वभक्तवत्सलयता के पराकाष्ठा की परिचय दी। विधिपूर्वक श्रीगोपालमन्त्रराजोपदेश एवं 'श्रीमहावाणी' प्रदान कर, स्वसच्चे भक्तों के लिये अदूरदर्शिता और नामधारियों के लिये दूरदर्शिता का परिचय दे, निज दिव्याचार्य्य वपु को अन्तर्ध्यान कर, निज स्वरूप से नित्यविहार में प्रवेश कर गये।

जिसप्रकार श्रीमद्‌भागवत्‌ को श्रीव्यासजी ने निर्मित कर, उसे विश्व में प्रचार, श्रीशुकदेवजी के द्वारा कराया, उसीप्रकार श्रीमहावाणी को श्रीहरिव्यादेवजी ने श्रीरूपरसिकदेवजी के द्वारा प्रगट करने की आज्ञा की। इन्होंने ही श्रीमहावाणी को रसिकों में प्रचार किया। अभी-तक इनके द्वारा निर्मित तीन काव्यों का पता लगा है। १"वृहद्‌ोत्सव मणिमाल" २-'हरिव्यासयशामृत' और ३-'नित्यविहार पदावली।'

श्रीहरिव्यासयशामृत में श्रीहरिव्यासदेवजी का स्वरूप-तत्त्व वर्णन है। सं० १९८१ में बाबा श्रीरामचन्द्रदासजी वृन्दाबनबासी ने छपवा

कर विरतण करवाया था। श्रीवृहदोत्सवमणिमाल अमुद्रित है। इसमें बसन्त से लेकर व्यञ्जनद्वादशी तक दशों अवतार के मंगल वधाई और अन्य उत्सव के पद हैं। इस ग्रन्थ की १६९४ श्लोकसंख्या है। नित्यविहारपदावली में १२० नित्यविहार सम्बन्धी पद वर्णित है।

श्रीवृहदोत्सवमणिमाल

[पद]

आज साँवरे की सुरंग पाग परहरे जुरंग जब थरहरे।
ता ढिग सरस रसाल मंजरी पेचनि मिलि हीं अरहरे॥
अति अभिराम तामरस लोचन कोटिकाम-दुति दरहरे।
'रूपरसिक' ब्रजजुवतिन को मन श्रीगोबर्द्धनधर हरे॥१॥

[पद]

हो घनस्याम भरौ जिन मो तन चोवा छिरकन भोरे ही।
अपने रंग मिलायेई चाहत सहत नहीं काहू गोरे हीं॥
जानतिहों पछितावत हौ मन लखि मों अंगनि औरेहीं।
'रूपरसिक' विधना के सारे श्रवन होत बरजोरे हीं॥२॥

[बसन्त]

आज बसन्त बिपिन में अलिमिलि चलहुँ विलोकनि जाइएरी!
झूलि फूलि रहि ललित-लता-संकुलित निरखि सुख पाइएरी!
कोकिल कीर कलाप अलापनि सुनि धुनि श्रवननि छइएरी!
अति अनूप जहां युगल स्वरूप को 'रसिकरूप' लखि लइएरी! ३॥

[बसन्त]

यह अति लागति है अब नीकौ कंत-कामिनि कौ बसंत।
अरसि परसि बिहरौ वलि ऐसेइ जाहि देखि दुख नसंत॥
सहज सौंज सुखदायक सब दिन दंपति—दुति जु लसंत।
'रूपरसिक' जन के मन कौ, महाघनरस बन बरषन्त॥४॥

[बसन्त]

जुवराज जुगल खेलत बसंत; बंसीबट जमुना तट इकंत॥
कमनीय कुंज मृदु महा रंजु; सजिलई सहज सुखमई संजु॥
बरबनक बनी चहुं ओर वाल; मिलि मच्यो परस्पर रंग जाल॥

छिरकें छिरकावें छवि सो गात; नेह नीर भरे अंबर चुचात ॥
बहु बरन बरन बूका गुलाल; करि कौतुक अति बाढ्यो विसाल ॥
बाजे मृदंग डफतार ताल; गावें सुगन्ध सुरगीत गाल ॥
रह्यो रागरंग अनुराग छाय; सोसुख मुख करि कछुकह्यो नजाय ॥
नवरंग रँगीले नवकिसोर; अँग अंग उमंग न भरे थोर ॥
वलि 'रूपरसिक' जन प्रान पाल; हिये वसो अनुदिन दोऊ लाल ॥५॥

[राग-काफी]

ए सुकुमार खिलार कहावत होरी खेल न जानत ए जू ।
उमगि उमगि रँग भरत निठुर ह्वै नेक हार नहिं मानत ए जू ॥
अपनी सी औरन में अटकर बरजोरी वर बानत ए जू ।
मृदु-मूरति मनहरति कुँवरि सो खेल अटपटे ठानत ए जू ॥
जानि परी सब आज कुंवरई कहत न बनत वखानत ए जू ।
'रूपरसिक' लैहों रुष जवहीं पैहों सुख मन मानत ए जू ॥६॥

[राग-काफी]

होरी जिन खेलौ मोसौं ।
भरि पिचकारी मुखपर डारी अकरि केलि जिन केलौ मोसौं ॥
लाल गुलाल परी लोइन में ललन मिलन जिन मेलौ मोसौं ।
'रूपरसिक' कहें रस न रहे अब भरि भेलन जिन भेलौ मोसौं ॥७॥

[राग-काफी]

दुरि मुरि खेल कहा यह खेलत खरे रहो नेक सन्मुख दोऊ ।
हमहूँ निरखिसकैं छबि कैसेक छैल कहावत निज मुख दोऊ ॥
अलि वलि अभिलाषत हैं सही होत बने नहिं सन्मुख दोऊ ।
'रूपरसिक' पै होय रपदई रूप रहै पदरन मुख दोऊ ॥८॥

[राग-काफी]

प्यारे हम नहिं खेलत होरी ।
हो हो करत अरत हीं आवत दिखरावत बरजोरी ॥
नए खिलार लाड़िले मुख पर लै लपटावत रोरी ।
'रूपरसिक' ई जानि परी अब, देखत हैं सब गोरी ॥९॥

[राग-विभास]

खेलत होरी में गोरी के सीस पै ढोरी है स्याम सने हकी सीसी ।

ह्वै के सगबगे स्याम के अंग सो स्यामजू एके करी अपनीसी ॥
'रूपरसिक' सहचरी रही उनहारि निहारि जकीसी ।
आजु के फाग अहो अनुराग सो लाग रहो बलि दोउन खोसी ॥१०॥

[पद]

ऐसे कहा जु खिलार भए महा भोरे ही लाए हो होरी की ढोरी ।
निंद कहूँ निसि आई कि ना अतुराईसो उठि आए एही ओरी ॥
खेलत तो सब कोऊ है तुम कोऊ अनोखिय खोरनि खोरी ।
'रूपरसिक' रसासव में छकि डोलत हौ डहके बरजोरी ॥ ११ ॥

[पद]

खेलत होरी मरोर सो गोरी यों गोरी सो होरी मरोरसो खेलौ ।
खेलत हैं रँग सो अलबेलि यों अलबेली सो रँग रेलौ ॥
जानत हौ पै जनावत है हमें आवत है भ्रम सो अपेलौ ।
'रूपरसिक' हिय हरषें निरखें भरि-भरि नैननि नेह नवेलो ॥१२॥

[पद]

आज फाग अनुराग भरेन नागर नवल निकुंज बिहारी ।
सिथिलित बसन गुलाल सगोबग रंगेहै रगोबग रंग महारी ॥
उमग्यो है रति रंग धार अपार छुटे पिचकारी कटाक्ष अपारी ।
'रूप' चहल में रहे अहल दोउ सुख लूटत सन्मुख सहचारी ॥१३॥

[राग–बिहागरो]

छवि आज नैन निहारो री !
झूलनि डोल अमल अनुकूलनि लै उर धारौ री !
सोहत सुंदर खंभ मनोहर लगत अचंभ निहारि ।
ललित माधुरी बलित कलित द्युति देति सहेति मयारि ॥
मुरवनि मुरनि मनोरथ पुरवनि डाँडी सुभग सुढार ।
परम प्रभा पटली अटली पर पुलकि चढ़े सुकुँवार ॥
झूमिझूमि झुमकनि दिवि दमकनि रमकनि रस सरसात ।
झटकिझटकि झट चटकिचटकि चट लटकि २ लटकात ॥
उमँग अंग अल अनँग रँग-रल बलकत बल कल बैन ।
झलकन झलमल बिमल वक्षस्थल लखि कलमल रति मैन ॥
मचकि मचनि में लचनि अंक आतंक उपीवत ओप ।

देखत दृग निमेष नहिं लागत पगिजु रहे पग रोप ॥
बिसद केलि अलवेलि रेलि रस झेलि झेलि दोउ लाल ।
परम पोष पागे अनुरागे अरस परस अँकमाल ॥
झोटा देति अली अनुवर्तिनि सन्मुख रुष सचुपाय ।
प्रेम मगन तनमन धन वारति सुधि बुधि सब बिसराय ॥
छिरकत छींट छवीली छवि सों सरस सुगंध सँवारी ।
अबीर गुलाल ऊपर बुरकावहिं अति विचित्र सहचारी ॥
कियो चारु पिछवार फाग को राग रँग रसरीति ।
बरनत बैन बनै न यहै सुख रसमय रहसि पुनीति ॥
बिलसत इहि बिधि झूल फूल में जुगल स्वरूप अनूप ।
'रूपरसिक' उर बसौ सदा दोउ रसिक भाँवते भूप ॥ १४ ॥

[पद]

संपति दंपति केलिहिं की अलवेली रही रसझेलि महारी !
मंजुल फूलनि फूल फवी सुछवि कबि पै कहि जात कहारी !
सौरभ मत्त मधुब्रत पुंज सु गुंजहिं कुंज निकुंज अहारी !
'रूपरसिक' जु है धनि जो इन लोइन ते लखि लेत लहारी ! १५॥

[राग--विहागरो]

फूले फूल राजत हैं फूलन के डोल पर फूले फूले फूल की माला उर पहरे
फूलन के भूषन बसन फूले फूलन के फूलेफूले फूलन की छटै छवि छहरे
फूली प्यारी कहैं वात फूल से झरत जात फूलेपिय रीझि भींजे अंगरंग गहरे।
फूले फूले देखि 'रूपरसिक' प्रवीन दोऊ फूलै नैनभीन परे माधुरी की दहरे

[राग--सारंग]

स्याम-घन तन चंदन छवि देत ।
देखहुरी ! देखहु अति अद्भुत चितै चुराये लेत ॥
मनहु मंजुमनि नील सैल पर खिली चाँदनी सेत ।
किधौं भीतर ते बाहिर प्रगट्यो प्रानप्रिया के हेत ॥
नहिं समान पटतर दैबे कूं उपमा आन अचेत ।
'रूपरसिक' रस उपजावन मनु मीनकेत कौ खेत ॥१७॥

[पद]

बिधना ऐसी बिधि ना कीजै ।

श्रीमुख आप कहत श्रीपतिजू अहो अटल क्यों दीजै ॥
अपराधी महा अधम असुर कों बरदैके भरमायो।
बिन परिणाम कामकर्ता कर ता उर सोच न आयो ॥
मेरौ सहूँ भक्त को मोपै सह्यो जात नहिं पलकौ।
'रूपरसिक' जन दुखवत हों छिन में करों नास वा खल को ॥१८॥

[पद]

ऐसी तुमहीं पै बनि आवै।
भक्तन हित अवतार धरत हरि कबहुँन अरस अनावै ॥
सावधान सब समय स्वजन के बिघन अनेक नसावै।
'रूपरसिक' ऐसे गुन जाके न्याय भक्तजन गावै ॥१९॥

[पद]

अरस परस मिलि कंत कामिनी कमल कुलन कल मार मचाई।
मृदुल मनोहर सुरँग रंग के अँग अंगनि प्रति परसहिं जाई ॥
झेलहिं पेलहिं पुलकि दोऊ जन तन मन मोद बढ्यौ अधिकाई।
'रूपरसिक' बड़भागिन सहचरि देखत दृगननि मेष न लाई ॥२०॥

[राग-सारंग]

देखहुँरी ! सोभा या रथ की।
विविध भांति जगजोति जगमगी नगमोतिन के गथ की ॥
कंचन साज सुरंग तुरंगम चंचल चलन सुपथ की।
अति छबिजाल जरी परदन पर झालर ओप अकथ की ॥
तापर बनि बैठे सजि संपति दंपति रति मन्मथ की।
चले रले रसपुंज कुंज मग-लै सहचरि निज सथ की ॥
मास असाढ़ शुक्लपक्ष पावन आवन दुतिया त्यथ की।
'रूपरसिक' जनकी मनभावन और वहां बन व्यथ की ॥२१॥

[पद]

बैठे आज मनोहर रथ पर प्रानप्रिया सँग रङ्ग बढ़ावै।
करतजात मृदुवात परस्पर सो सुखमुख सखि ! कहत न आवै ॥
रीझत भींजत मोज मनोजनि चोजन सनि-सनि अति सचुपावै।
'रूपरसिक' जन सम्पति दंपति देखत ही नहिं नैन अघावै ॥२२॥

[राग–मलार]

सोभा देखि री ! यह आय ।
सुभग स्याम सुअवनि ऊपर गौर न रह्यौ छाय ॥
महा मन की मोहनी रस–जोहनी झर लाय ।
सरस सुरसारेल पेली उमग अपने भाय ॥
हँसनि में दुति दसन दमकनि दामिनी दरसाय ।
'रूपरसिकन' तोषि पोषत त्रितन वन बरसाय ॥२३॥

[पद]

हमारे माई ! राधामाधव ध्येय ।
काहू बात की कमी न राखें जो चाहै सो देय ॥
रजधानी वृन्दावन जैसी निगमागम की ज्ञेय ।
अनायासही 'रूपरसिक' जन पावत सबसुख सेय ॥२४॥

[पद]

सखीरी ! स्यामा स्याम स्वरूप ।
देखत ही मिटि जाय दृगन तन जनमजनम की धूप ॥
सदा सनातन इकरस जोरी उपमा को न अनूप ।
'रूपरसिक' जनके सुखदायक दोऊ भाँवते भूप ॥२५॥

[पद]

चलि वा कदम कुंज के ओट ।
यह देखौ घन छाय रह्यौ बन करत न चहुँ दिसि कोट ॥
अब न सम्हरिहें तब कहाकरिहें परिहें पानी पोट ।
'रूपरसिक' ह्वै जैहें इहि छिन अंग–अँग सगवग रोट ॥२६॥

[पद]

पीतांबर लीजिये मोहिं उढ़ाय ।
भींजत है मेरी सुरँग चुनरिया काहे को करत कुढ़ाय ॥
जौलों चलें कदमतर तौलों समुझहुँ सजन सुढाय ।
'रूपरसिक' होइ करत न कोई इहिविधि रंग रुढाय ॥२७॥

[पद]

चुचावत चूनरी रँगनीर ।
देखन की अभिलाष दृगन कौ तो नवतन के तीर ॥

क्योंहीं क्यों बरसा रितु आई सरसाई सुख-सीर।
ताहू में तुम 'रूपरसिक' वलि चहत बचाए चीर ॥२८॥

[पद]

मेटत ताप वितन के तनकी नृत्यत केकि सुहाई।
अंगअंग भूषन रुनु झुनुकत मानो मिलि दादुर रट लाई ॥
मुसक्यत बदन दसन-दुति दमकत विदुति दमक दरसाई।
गरजत प्रेम नेह उर बरसत हियसर भरत झिलाई।
अंकुरित मन लखि बचन पात धरि फूल सहन छवि छाई ॥
सफल परस्पर होत सखीरी ! बहुविधि नवनिधि पाई।
'रूपरसिक' आनंद-भंडारे उनत रही नहिं काई ॥२९॥

[पद]

स्यामघन उमगि-उमगि इत आवै।
क्रीट, मुकुट, कुंडल, पीतांवर मनु दामिनि दरसावैं ॥
मोतिन माल लसत उर ऊपर मनु वग-पंक्ति लखावै।
मुरली गरज मनोहर धुनि सुनि श्रवन मोर सचुपावै ॥
हम पर कृपा करी हरिमानो नीर नेह झर लावै।
'रूपरसिक' यह सोभा निरखत तन मन नैन सिरावै ॥३०॥

[पद]

नेक विलोकि री ! इकवार।
जो तूं प्रीति करन की गाहक मोहन हैं रिझवार ॥
महा-रूप की रासि नागरी नागर नंदकुमार।
हाव, भाव, लीला ललचौहीं लालन नवल विहार ॥
मोहि भरोसो स्यामसुंदर कौं करिराख्यौ निरधार।
नेक एक पल जो अभिलाषें 'रूपरसिक' वलिहार ॥३१॥

[पद]

देखौ सुंदरता को सागर।
स्यामास्याम सकल सुखदायक दोऊ रूप उजागर ॥
उपटत अंग-अंग की सोभा मानहुँ उठत तरंग।
नैकमल भू, लता, पात युग रुचि कपोल श्रुति संग ॥
नाशा दीप विराजत मुक्ता मनो यहै कलहंस।

विद्रुम लता अधर दुति लाजत मधुर वचन मधु अंस ॥
कंवु सुकंठ भुजंगम भुज तट भीन सुपल्लव पानि।
यह वंसी वह बीन बजावनि चपल चलनि अधिकानि ॥
नखमनि मनो खान ते निकसे राखे सुघर सुधारि।
श्रीवत्स भ्रमर कलस उर अमृत वड़वा वितन विचारि ॥
राजा रोम उदर लघु जलचर कटि तट नाभि गँभीर।
मनो रतन काढ़न को लुब्धिन खनी भूमि चित-धीर ॥
जघन सु विपुल लसत मनु परवत उरू रंभ जुग खंभ।
जंघ विटप पद-पद्म राग मनु नखमनि दुतिजुत अंभ ॥
स्याम गौरवर बरन सुहावन सुधा-छीर-सर दोउ।
मिले मनो अनुरागहिये सजि सजन परस्पर सोउ ॥
सहजहिं चार पदारथ पावत यह छवि नैन निहारि।
'रूपरसिक' तिनकी का कहिये ते राखत उर धारि ॥३२॥

[पद]

स्याम-गुन स्यामाजू विस्तार्यो।
एकहीं छिन की लीला गावत बिधि सम्भू पचि हार्यो ॥
वानी थकी गाय जस निर्मल और कौन कवि गावै।
जो कछु कहै सोई कर पावन कृष्ण-रूप दर्सावै ॥
जो क्रीड़ा वृन्दावन कीनी राधे सुंदरस्याम।
'रूपरसिक' रसिकन की जीवन एक बस्तु द्वै नाम ॥३३॥

[पद]

देखो सुंदरता की सीवाँ।
जमुना-तीर कदम की छहियाँ दै ठाढ़े भुज ग्रीवाँ ॥
वह बंसी वह मधुर-मधुर सुर गावत राग उचारी।
वह मोहन सब ब्रज को सजनी वह मोहनी महारी ॥
दुरी कुंज दै ओट लखोरी! धन्य प्रहर पल घरी!
'रूपरसिक' वह स्यामसुंदर वह राधे रूप भरी ॥३४॥

[पद]

आज छबि स्यामास्याम निहारे।
वरषत प्रेम लाय झर निशि दिन गरजत नेह नियारे ॥

मुक्ता वग-पंकति दादुर-धुनि नूपुर चलनि सुढारे।
केकी चित्र पपीहा काँची त्रिवली चहत सुनारे॥
नाभि-सरोवर भरत न उपटे अंग पुलक तृन् वारे।
विकसत पद्म मंद मुसकनि निरखहि नैन सुखारे॥
'रूपरसिक' सब जीवनि जियकी जिन यह रूप निहारे॥३५॥

[पद]

आज सखी ! मोहन-रूप निहार्‍यो।
जिहिं जिहिं ठौर लग्यो मन मेरौ सोई सौंज बिचार्‍यो।
पूरव भाग भलोरी सजनी ! प्रथम नैन दरसाई।
मिलि गिलि रह्यो लोनपानी ज्यों सहजहिं तहां समाई॥
सव अँग सुभग स्यामसुंदर के कहिधों कौन निहारे।
'रूपरसिक' मन एक सौं अटक्यो अवकहि कौन विचारे॥३६॥

[पद]

नैना प्रकृति गही यह न्यारी।
जाचत जे लै स्याम स्वरूपहि बन-बन विकल महारी !
अटके नेक न रहे लालची सीख दये सब हारी।
'रूपरसिक' दरसे मनमोहन तवहीं होय सुखारी॥३७॥

[पद]

लोचन लालची महारी !
लोकलाज कुलकानि सवै तजि चितवत लालविहारी॥
तन वाजार हाट अँग अंगनि सौदा करत न हारी।
भरत अहर्निस हृदय भण्डारनि देत न एक लगारी॥
नफा वहुत आवत है तोपै अधिक अधिक आधकारी।
'रूपरसिक' रस-लोभ लपेटे अड़े वड़े व्योपारी॥ ३८॥

[मलार]

आज झुलत हि डोरे देखे।
कवहुँक प्यारी कबहुँक प्यारी दोऊ प्रीति विसेषै॥
कोमल-कर को परस पाय के मदन बान कर लीन्हें।
धरे अंक पीवत मधुरामृत सहज सुरत-सुख दीन्हें॥

मंद-मंद सो चलत हिँडोरा प्रेम विबस भए दोऊ।
'रूपरसिक' लखि बिसरि गए सव सुधि वुधि रही न कोऊ ॥३९

[मलार]

आज या रमकनि की वलि जाऊं।
पियके संग सुरंग हिँडोरे निरखत द्दग न अघाऊं॥
उलटि रही वेनी उर ऊपर हार उलटि भुज मूल।
छवि पावत मानो सुर वरषत झरत माल ते फूल॥
सिथिल वसन,अधखुले नैननि मचकनि अधिक डरात।
मानो सुरत नवल बाला पिय नाहीं करत कुलात॥
ज्यों ज्यों पिय-हित गड़ी नवेली वैन सैन मचलात।
त्यों त्यों 'रूपरसिक' पिय के उर अति अनँद न समात॥४०॥

[मलार]

अद्भुत एक हिँडोरो माई।
प्रेम-डोर पटुली पन सोभित झूलत दोउ सुख पाई॥
मरुवा-मूल सुरँग-रस-डाँडी गुन गन लूं बिलगाई।
हृदय विकास प्रकास वीजूरी नवल नेह झर लाई॥
गावत प्रान रोम रँग बीना अँग नृत्यत। सुखदाई।
'रूपरसिक' वलि-वलि झूलन पर लसौ हिए सुख आई॥४९॥

[मलार]

पिय-हिय झूलत हैं नित प्यारी।
रूपरसाल विसाल नैन गुन नेक न होत सु न्यारी॥
डाँडी भुज पटुली हिय पंकज लूँव सु गुन गन भारी।
ओल्हरि स्याम घटा घन वरसत प्रेम-बूंद सुखकारी॥
विद्युत सी दमकें उर अंतर दुरि दुरि दुरि दमकारी।
नेह-डोरि ऐंचत हलवेकर सब अँग सखी सु वारी॥
हौं वलि गई निरखि यह सोभा श्रीस्यामा सुकुँवारी।
'रूपरसिक' दंपति हित भरिभरि अद्भुत केलि निहारी॥४२॥

[मल्हार]

दोउजन झूलत प्रेम-हिंडोरे।
स्यामास्याम सहज-सुख-संपति हियहीं लेत हिलोर॥

भृकुटी भौंह ललाट तिलक कच लचनि कटाक्ष झकोरे।
बानी सुखदानी मृदु मुसक्यनि ललकनि मलकनि थोरे॥
जहां जहां चलिजात परस्पर नेह-डोरि कर वोरे।
तहां तहां चित फिरत संगहीं मानो लेत झुलेरे॥
भींजे अंग स्वेदकन झलकन पुलक अंग तृन तोरें।
रीझें अंग-अंग सखियन के 'रूपरसिक' रस बोरे॥४३॥

[मलार-पवित्रा]

आजदिन परम-पवित्र सुहायो।
परम-पवित्र मास सावन यह पुन्य पवित्रहि पायो॥
परम पवित्र रचाय पवित्रा प्रीतस उर पहिरावौ।
नाना भांति भोग सामिग्री रुचि-रुचि भोग लगावौ॥
उमगि अंग अनुराग बढ़ावौ राग रंग रस भीजौ।
धूप, दीप, आरती सजौ सब रीति सु उत्सव कीजौ॥
नवकिसोर-छवि नैन निहारौ वारौ तन, मन सबरी।
परम पबित्र होय आपनपौ या अनुक्रम ते सबरी॥
या दिन की महिमा अति अद्भुत गरगमुनी मुख गाई।
'रूपरसिक' जनजानत हैं के, जानति हैं यशुमाई॥४४॥

[राग- विसागरो]

रासमें रसिक नवरंगनागर नचत।
प्रानप्यारी के संग सरसगति अति सुधंग
अलग लग दाट के थाट कोऊ न वचत॥
चरनविन्यास वहु भास हस्तक निपुन
हुमई धरि जु ध्रुव भ्रुव-विलासहिं सचत।
सुघर संगीत अवघर जु विद्याबिदित
बिपुल वर उर्प अरु तिर्प रसमय रचत॥
मुकुट-मंजुल अलक रलक कुंडलझलक
ललक लखि विमल गंडस्थलनि दृग चलत।
मधुर-रस-ऐन कलवैन थेई-थेई करत
दैन मन नैन की चैन हिय में रुचत॥
रुनित नूपुर कुनित किंकिनी कलित कल

ललित बनमाल मधुजाल मधुकर मचत।
मन्द मुख-हास परकाश दशनावली
अधर आरक्त फलबिंब कहको पचत॥
देखि दुति बिसद दशनावली की उरसि
अमित चपला चमक इंदु कोटिक कचत।
वसहुँ अद्भुत अनूप 'रूपरसिक' सुखद
हीय मन भाँवते मन वचन यही जचत॥४'॥

[पद]

राजत रास रसिक-मन-रंजन।
अति सुंदर गुन, रूप मनोहर दिए ग्रीवा कर कंजन॥
गौर-स्याम अनुरूप अंग रति-काम कोटि मद ग्रत्र गंजन।
चलवनि चपल नैन में मिलवनि मान सहज सुख-संजन॥
मधुर बचन मुखरचन थेई थेई सचन सुगति मति-मंजन।
भृकुटि बिलास बिभेदन पितपन मिथुन विथा जु विभंजन॥
कलित केलि कमनीय कुँवर की निरखि थकित भए खंजन।
'रूपरसिक' अद्भुत अनूप-रस बढ़्यो बिपुल पुल पंजन॥

[राग-बंगाल]

नृत्यत रास कमल-दल-नैन सरद सुरैन अति सुखदैन॥
श्रीबृन्दावन बंसीबट तट, जमुनापुलिन पवित्र।
पूरनचंद अमंद किरनि करि, रंजित रुचिर बिचित्र॥
नवल—फूल फूले अनुकले नाना रंग सुरंग।
मधुकर पुंज लुब्ध मधु गुंजत, लिए संग अरधंग॥
त्रिविध-पवन मन-रवन सहायक, सुखदायक सब काल।
परसत अंग-अंग सचुपावत उपजावत रस-जाल॥
द्वै द्वै बीच सचि एक-एक तन बिहरत स्याम सुदेस।
कनक-कनी बिच मनहुँ नीलमनि सोहत सुघर सुबेस॥
मध्य जुगल मनहरन बिराजत छाजत छबि जु अपार।
राग रंग बहु भाँति भेद भर तरत रंग बिस्तार॥
नूपुर कंकन किंकिनि की धुनि सुनि लज्जित कलहंस।

भुज फरकनि तरकनि कंचुकिकच छुरि जु रहे दुरि अंस॥
कुंडल झलक ढलकि सीसनि की झलक भाल छवि देत।
पलक ललक नग चलक कलक मुखवलक संगीत सहेत॥
पगपटकनि पटझटकनि खटकनि भूषन नख चटकानि।
लटकनि हार मुखन की मटकनि अंग अंग लटकानि॥
मंद हँसन भौंहन की लसन सु खुलनि कसनि तन कूल।
रसन बसन तन सिथिल सुश्रमकन किरनि सिरन ते फूल॥
पावनि धावनि धरनि सुहावनि चावनि नृत्य करंते।
गावनि सुरहिं मिलावनि पियहिं रिझावनि वच उचरंते॥
बंसी वजावें ग्राम जमावें कल सुर अधिक चढ़ाय।
निकट आय परसावें उरवर अद्भुत तान बढ़ाय॥
डोलनि मुकुट सुकुंडल लोलनि थेइ-थेइ बोलनि बोल।
पट झट झोलनि ओप अतोलनि ढरि-ढरि देन तँबोल॥
परसत, मरसत, सरसत तन, मन मधुर सुधा रस पाय।
श्रमित जानि श्रमकन पिय पोँछत कहिरस बैन सुहाय॥
क्रीड़त बहुगत रास विलासहिं थकित भए दोउ चंद।
'रूपरसिक' यह सोभा निरखत बाढ़त अति आनंद॥४७॥

[राग–केदारो]

नृत्यत नागरी नगधरन।
मंजुल रासमंडल मध्य करसो कर जोरि
किसोर कुँवर गौर साँवर बरन॥
उरप तिरप लाग दाट नाट्य थाट में सुचाट
थेई थेई रट बदन मदन मान–भंग–करन।
अरस परस सरस पुलक छलकि रही सुछवि छलक
ढलक मुकुट अलकरलक झलक-कुंडल लरक-लरन॥
तान,मान पर बंधान,गान गति सुअति सुजान,
सकल–कला गुन–निधान,ढरनि सुढर ढरन॥
रीझि-रीझि रहसिरंग भींज-भींज अंग बाढ़त,
उर अति उमंग रति–रस विस्तरन।

'रूपरसिक' सहचरिजन निरखि थकित भई,
भूप भाँवते अनूप की सुकेलि हिय की हरन ॥ ४८॥

[राग-बिहागरो]

चाँदनी बिछाई ओप छाई चार चांदनी की,
चांदनी तनाई तैसी रही चांदनी चटकि ।
चांदनी सिंहासन के आसपास चांदनी सी,
सोहति सरूप सबै रूपलता सो लटकि ॥
तैसेइ जु बनि के बिराजे विवि चंदलाल,
छाजे छबिजाल चहुँओरनि छई छटकि ।
अद्भुत अनूप 'रूपरसिक' निहारि नैन,
पावत है चैन दुधा सुधारस को गटकि ॥ ४९ ॥

[राग-सारंग]

जय जय गोवर्द्धनदेवजू ।
आनि कानि कहि और मगावत परत्यक्ष भोजन लेव जू ॥
बहुत बरस लों हम वृजजन सब कीनी सुरपति सेवजू ।
ऐसे वलि कबहूँ न आरोगी परम प्रीति करि एव जू ॥
अहो ! अपरपर अब हम जानी तुव महिमा अपरेव जू ।
'रूपरसिक' नँदलाल कृपाते लह्यो रावरो भेव जू ॥ ५० ॥

[राग-सारंग]

हो प्रभु ! क्षमा करौ मम खोट ।
मैं नहिं जान्यो त्रिभुवननायक, घोष तिहारे ओट ॥
भूलत हैं संसार-समुद्र में बांधि कर्म की पोट ।
तिनको कहा दोष प्रभु दीजे महामूढ़ मति छोट ॥
सुरपति को काँपत मुख आगे, देख्यो ब्रजपतिधोट ।
'रूपरसिक' प्रभु मया करी महा, परमदया के कोट ॥ ५१ ॥

(राग-सारंग)

आरोगत व्यंजन दोउ रुचिकर सखिन सहित अतिहि आनँद भरि ।
चखत चखावत जात परस्पर, पुलकि न मावत गात प्रियाहरि ॥
नवल जुगलवर जिय की अटकरि फिर परोसावति चुरुसनि सहचरि ।
'रूपरसिक' रस रहचटि मे ररि छकि रहि जीवति छवि हियमें धरि ॥५२॥

श्रीहरिव्यासयशामृत

श्रीहरिव्यास प्रात उठि गावो।
भवनिधितरन हरनदुख हियके सबसुखकरन चरन चित लावो।
यह तन दुर्ल्लभ पाय भजन बिन अकज न जाय सोई सज लावा ॥
चिन्तित फलद दयानिधि नागर जगत-उजागर पद सिर नावौ ॥
सकलसुभद हर्षद बिसद कौ भजि-भजि असद अलाप नसावौ।
परमछबीलौ छबि की झिलिमिलि विमल ध्यान उर माँहिं बसवौ ॥
जगसंपति सबशक्ति पराकृति ताकी अति विपति बहावौ।
मृदु---मूरति सो करि मनसूरति प्रेमपुलक उमगावो ॥
जुगल महल की टहल अहल की चहल पहल की सहि लहि पावो।
सखी रूप परिकर अनूप में 'रूपरसिक' मिलि रसिक कहावौ ॥५३॥

[राग-देवगंधार]

रे मन ! भजि हरिव्यास उदार।
बिन हरिव्यास न जगमें तेरो मेरो बचन बिचार ॥
मानुस तन अति दुर्ल्लभ पायो काहे करत खवार।
बेगि सम्हारि मूढ़ मति बौरे अब क्यों करत अवार ॥
जो दायक दंपति सुखसंपति वृन्दाबिपिन बिहार।
पतित उद्धार हेत जग प्रगटे आप जुगल अवतार ॥
असरण सरन हरन संसृतिदुख निराधार आधार।
अगवानी सो रंगधाम को महावानी कर्तार ॥
दसदिसि जीति भक्ति विस्तारी तिनकी कथा अपार ॥
कृपासिंधु सो दीनबंधु, हैं सर्गुन निर्गुन आगार ॥
श्रीहरिप्रिया अनूप रूप सो मूरति-रस-श्रृंगार।
'रूपरसिक' भक्तेश भूप विन अनत फजीता चार ॥५४॥

[राग--देवगंधार]

सन्तो ! हम सेवक हैं जाके।
मायागुरु हरिव्यासदेवजू चरन-सरन न भय ताके ॥

कर्म, धर्म, सब भर्म मिटाए महल.टहल-रस छाके।
निर्भय रहे लोकत्रय माहीं जन्म, मरन भय हाके॥
त्रिगुन किंए सोक अति वाँके ह्वै हरिव्यासी पाके।
'रूपरसिक' हरिप्रिया उपासी चौरासी ते थाके॥५५॥

[राग--देवगंधार]

हमतो श्रीहरिव्यास-उपासी।
सदा उदासी त्रिगुन गवन सो कुंज-भवन के बासी॥
गावें पराप्रेम रसरासी महावानी अबिनासी।
चाहत नहीं मुक्ति अदिक सुख गंगा रेवा कासी॥
अगवानी दंपति के सबदिन संपति कोटिक मासी।
जिनकी सरन भागवत माही श्रीमुख हरिव्यास प्रकासी॥
अर्द्ध नाम हरिव्यास उचारत होय नास अघरासी।
'रूपरसिक' भक्तेश भूप विन बिचरे सदा खुलासी॥५६॥

[पद]

श्रीहरिव्यास-पदांवुज रागे, ते अलि या कलि में बड़भागे।
उन्मत रहत सदा सँग लागे परमप्रेम पीयूषहि पागे॥
बिचरत विषय वासना त्यागे, अवलोकतहि अमंगल भागे।
शुद्धरूप के दायक सागे, नित्य-नेह के पहिरे वागे॥
निरखत जिनके भाग हैं जागे, 'रूपरसिक' रस में अनुरागे॥५७॥

[पद]

भजि हरिव्यास महासुखसागर।
भक्तिभूप चूड़ामनि स्वामी अंतर्यामी जगत-उजागर॥
सबदुखहरन करनआनँदघन असरन सरन प्रेमपरआगर।
श्रीहरिव्यास सरन बन जगमें सर्व सरन कागर की सागर॥
तिनकी सरन बिना तिहुँ पुरमें मिले न जुगल नागरी नागर।
'रूपरसिक' हरिव्यास भजो नित तन मन वानी करि एकागर॥५८

[राग-सोरठ]

भजिये श्रीहरिव्यास सुजान!
नाहिर भीतर जुगल ललित-छबि करत सदा दृढ़ पान॥

रसिक-नायक जुगल-दायक सही सो भगवान।
या विन प्रिया लाल सो, नाहि होत मिलान॥
राधिका हरि अनँत लीला सकल को सो पान।
'रूपरसिक' सु प्रानजीवन धनि हरिव्यास निदान॥५९॥

[राग-मारू]

सोई रसिकअनन्य कहावै।
जिनको जुगल चरित्र बिना कछु श्रवनन नाहीं और सुहावै॥
याही रंग रँगिरहे रँगीले तिनही को सँग भावै।
अनुदिन रहस भावना भोने नव-नव रुचिहिं बढ़ावै॥
जो कोउ बाधक या वतियन में तिनको संग छिटकावै।
सदा सर्वदा हितसहेलीजू की कृपा मनावै॥
हरषि हिये श्रीहरिप्रिय स्वामिनि अपने निकट वसावै।
नित्यरहसि निरखत निज नैननि सैनन में समुझावै॥
'रूपरसिक' अनुपमछबि लखि-लखि पुलक न अंग समावै॥६०॥

[राग-सारंग]

जिनको हरिजन नाहि सुहात।
तिनको मुख कारो करि के सिर ऊपर दीजे लात॥
कहा भए कविताई सीखे ह्वै करि मोटी जात।
रीतो होय निरंतर जैसे ज्यों हँड़िया बिन भात॥
हरि प्यारे के प्यारे जिनको मन में नाहिन आत।
निहचै नरकनिवासी ह्वै हैं तिनके पुरुषासात॥
महाअधम ते अधम जानिए कहत पुकारे धात।
'रूपरसिक' तजिये सँग तिनको भजिए स्याम सँगात॥६१॥

[राग-कानड़ो]

बृथा जन को जग आवन।
भक्तन को चरनोदक ले जिहि नाहिं कियो अपनों गृह पावन॥
रुचिकरि जिहि जूठनि नहिं खाई निज कुलको अभिमान नसावन।
खात फिरत जे महा गलीची जैसे सूकर कूकर गावन॥
निज श्रवननि हरिकथा सुनी नहिं उरमे अति आनँद उपजावन।
तिनको 'रूपरसिक' प्रभुको कहो कौन भाँति करि होय मिलावन ?६२॥

[पद]

अच्युतगोती मेरे इष्ट ।
जिन सेवा ते सकल कामना पुरवत मन आनंद प्रविष्ट ॥
कृष्ण-कृपामृत पावत अनुदिन बोलि बोलि बानी मुखमिष्ट ।
सुनि-सुनि श्रवननि उपजत अति रति बढ़त हिए अनुराग अभिष्ट ॥
पदपंकज-रज के प्रताप करि होत शिष्ट जे महा कनिष्ट ।
अनायास पावत सर्वेश्वर जबही चितवत कृपा सुदृष्ट ॥
जम को सब डर डारि जगत में विचरत जैसे बीर बरिष्ट ।
'रूपरसिक' ताकी पदवी में पाई जित खाई उच्छिष्ट ॥ ६३ ॥

[पद]

जहां तहां हरि ऐसी कही ।
भक्तन की निंदा करि मोको पूजत मो मन दोसी सही ॥
षोड़श विधि सेवा विस्तारत वेद तंत्र की सब विधि गही ।
मैं मानत नाहिन तनकउ कछु वृथा पचत है मूरख वही ॥
मेरे कछु भक्तन बिन नाहिन भक्तन के मो बिन कछु नहीं ॥
'रूपरसिक' प्रभु ताकी पदवी सो तो सब इनही ते लही ॥ ६४ ॥

[पद]

प्रानन ते मोहिं भक्त हैं प्यारे ।
मैं न्यारो नाहिन इनते कछु ए कछु नाहिन मोते न्यारे ॥
बड़ी बड़ाई लच्मी मेरे ताहू ते जन जानत न्यारे ।
ज्यायो जीवत प्यायो पोवत इन साधुन के माँझ सँवारे ॥
सुनि उद्धव जिन मेरे कारन सब धन धामरु काम बिसारे ।
तिनको 'रूपरसिक' कहो कैसे अभ्यंतर ते जात नकारे ॥ ६५ ।

[पद]

हरिजन निरखि न हरषत हिए ।
ते नर महा अधम पाखंडी धृक्-धृक् हैं जग जिनके जिए ॥
मुख मीठे अमृत गर गटकें हृदय कूर ना छिए ।
क्यों नहिं मार परै तिनके शिर जिनकी ऐसी कुटिल धिए ॥
स्वाँग पहरि स्वकिया को सुंदरि लच्प्रत्यच्छ पोषत परकिए ।
'रूपरसिक' ऐसे बिमुखन को कुम्भीपाक नरक नाखिए ॥६६॥

(पद)

हरि सेवा ते हरिजन सेवा।
आपन ते अधिकी करि मानत दया-उदधि देवन के देवा॥
सहि नहिं सकत भक्त अपराधे निज अपराधे चित्त धरेवा।
दुर्वासा के कोपकालना भाग तनय के त्रान करेवा॥
सकल लोक चूड़ामनि स्वामी ब्रह्मादिक पावत नहिं भेवा।
सो आधीन रहत भक्तन के 'रूपरसिक' प्रभु की यह टेवा॥६७॥

[पद]

कारो मुँह करि नीले पावे।
हरिभक्तन सो नाहिना भावै ता नारी को संग कहावै॥
देखि दूर ते श्यामसनेही राँड दुष्टनी भौंह चढ़ावै।
गृह आए ते महा बिमूढ़ा मंदभागनी कलह बढ़ावै॥
परम पापिनी अति संतापिनि अपने पतिको विपति लगावै।
जीवत जगमें कुजसकारिनी परे नरक में लै पहुँचावै॥
मेरो कह्यो मान नररे! जो तेरे उर निश्चय यह आवै।
'रूपरसिक' वसि ऐसे घर में काहे को घरवस्यो कहावै॥५८॥

[राग-सोरठा]

अपने कर्महि आप बँधायो।
जैसे कीट कौसकारी-गृह-द्वार मूँदि पछितायो॥
जैसे मधुकर मुदित कमल में पल विश्राम न पायो।
भटकि-भटकि सिर रह्यो पटकि तौ दुख अंत न आयो॥
जैसे मधुमाखी मधुलालच आनि फँसी ता माहीं।
प्रान दिये ही होय निबेरो और उपायऽब नाही॥
जानि बूझिकर पड़त खाँड़ में जैसे मद-गज-मातो।
करन केलि करनी भ्रम भूल्यो होय गयो दृग हातो॥
कहा होय पछताव किए अब तवतो सब बिसरायो।
'रूपरसिक' सतसंग छाड़ि के विषय बिपिन में धायो॥६९॥

[राग-सोरठ]

कहा तैं जगमें आय कियो रे!
श्रीभागोत सुधारस गटक्यो श्रवन फुटा न पियो रे!

नर-तन रतन यतन बहु पायो व्यर्थहिं खोय दियो रे!
ताको सठ तोहि सोच न आयो धृक है तेरो जियो रे!
क्यों नहिं रही बाँझ जननी वह जिहि धरि उदर लियो रे!
'रूपरसिक' ही कष्ट होत है देखि तिहारो हियो रे! ७० ॥

[राग-झँझोटी]

अबतो करुना कियेई बने बलि!
भवसागर विकराल बिपुल ताकी भँवर-जाल ते जाउं कहाँ चलि?
औगुन खानि जानि आनाकानी जो उर आनी तौ नाहिं कहूँ थलि।
हौं मतिहीन मलीन कर्म को तुमते बिछुरि गई रज में रलि॥
कलपांतर कहूँ जाय परोंगी तौ कब ऐहौं तुम पद ढिग ढलि!
वहि आज्ञा उर में सुधि करिए तूं मेरी है 'रूपरसिक' अलि॥७२।

[पद]

मेरौ कछु नाहिन बस करुनामई।
सुधि बुधि भूलि भरम भटकत हौं कर्मनकर प्रतिकूल भई॥
ज्यों ज्यों सुरझाऊं त्यों त्यों उरझत ऐसी दसा कोउ आय गई।
सुधि बुधि बिसरि विकल विलपत हौं या जगकी त्रयताप दई॥
जानत सब जनके जियकी जू तुमते कौन दुरी है दई।
'रूपरसिक' अलि कहां यह कहां यह जाचत नहीं बलि होत नई॥७२।

[चौपाई]

बांचे पोथी चमड़ी कूटै; साधु कहावै खोसे लूटै ॥ १ ॥
जगत छोड़ि चाहै व्यवहारा; पढ़िके भजे नहीं करतारा॥ २ ॥
बिषयी होय धरै जो ध्यान; गिरही कहै ज्ञान विज्ञान ॥ ३ ॥
तपब्रत धारि होय जो क्रोधी; वैरागी पारापुढसोधी ॥ ४ ॥
भक्त होय पुनि भग को सेवै; हरिजन कलप्यौ दान जू लेवै ॥ ५ ।
नरतन पाय कृष्ण नहिं जापी; इक पापो को होय मिलापी ॥ ६ ।
बिद्या बेचि उदर जो भरहीं; जो काहू की निंदा करहीं ॥ ७ ।
देत फिरै जो सापा सापी; पुनि कोउ आन मंत्र को जापी ॥८
माँगै गाम देहुरा सेवै; आन देव को जूठ जु लेवै ॥ ९ ॥
श्राद्ध कनागत हरिजन खावै; हरि अर्पन बिन जो कछु पावै॥१०॥
वेद पुरान उलंघि जो चालै; बिना गुरू डालै गलमालै ॥ ११ ।

साधु देखि दंडौत न करहीं; संतन बचन हृदय नहिं धरहीं ॥१२॥
राजअन्न पावै जो कोऊ; मिथ्या बात कहै जन सोऊ ॥ १३ ॥
एकादशी दिना अन्न पावै; संप्रदाय सरनै नहिं आवै ॥ १४ ॥
हरिभक्तन सों प्रीति न जोड़ै; जो कोउ बर पीपर को तोड़ै ॥१५॥
संन्यासी शस्तर जो धारै; अज्ञमनुष्य जीवादिक मारै ॥१६॥
हरिप्रसाद को छूत लगावै; मानुषबुद्धि गुरू सो ल्यावै ॥१७॥
चरणन सुधा पानी करि जानै; पाहनादि हरि अरचा मानै॥१८॥
भक्तन की जो जाति बखानै; आन देव सम श्रीहरि जानै ॥१९॥
अन-श्रद्धा उपदेश करै जो; परसंपति जस देखि जरै जो ॥२०॥
नाम महातम साँच न धरहीं; नाम भरोसे पाप जु करहीं ॥२१॥
नारी में मन जाका जावै; विमुख संग में जो कोउ पावै ॥२२॥
बिमुखन सों मित्राई जोड़ै; काहूको मन फोड़ै तोड़ै ॥ २३ ॥
जो कोउ मादिक वस्तू पीवै; पुनि पापीजन को कोई छीवै ॥२४॥
ऐसी बुद्धि चलै नरनारी; तिनको ठौर न नरक मझारी ॥२५॥
सकल पुराणन माँहि कहानी; इनमें एक बात नहिं छानी ॥२६॥
ये उनचास वात छिटकावै; सो हरिव्यासी जन मन भावै ॥२७॥
संतकृपाल होइ ताइनपर; 'रूपरसिक' पावे सो सुखघर ॥२८॥

[महालक्षण चौपाई]

पहिले श्रद्धा लक्षण जानो; तापीछे सतसंग बखानो ॥२९॥
सतसंगन करि हरि को भजो; आन देवको आश्रय तजो ॥३०॥
सदा प्रसन्न होय हरि सेवौ; पुनि विरुद्ध सबसों तजि देवो॥३१॥
सब जीवन पर करुणा राखो; कबहुँ कठोर बचन जिन भाखो ३२॥
मन हरि सुमिरन मांहि समोवो; घरी पहर पल वृथा न खोवो ॥३३॥
धर्म सनातन में अनुसरो; विषय वासना सब परिहरो ॥ ३४ ॥
उभय सनेह सेवामें मानो; आपनपो अनित्य करि जानो ॥ ३५ ॥
हरिजन हरि में भेद न करो; सदा बुद्धि थिर ह्वै अनुसरो ॥ ३६ ॥
झूठ,क्रोध,निंदा तजि देवो; बिन प्रसाद मुख और न लेवो ॥ ३७ ॥
लिखे पढ़े अरु करे करावे; झूठ वादि करि अनन्य कहावै ॥ ३८ ॥
एकादशी अवसि व्रत करो; माला तिलक सदा ही धरो ॥ ३९ ॥

सदाचार में जो विधि कही; तिहि विधि सो कर धारो सही ॥ ४० ॥
हरिजन होय धीरज जिन छोड़ो; हरिपद-पंकज सों रति जोड़ो ॥४१॥
हरिजन होय तहां चलि जावो; प्रीति सहित पुनि दर्शन पावो ॥ ४२॥
जिनसो मिलि हरिगुनगन गावो ; और कुसंग सबै छिटकावो ॥४३॥
अपने अर्थन उद्यम करो ; यथा लाभ सन्तोषहि धरो ॥४४॥
अस्तुति निन्दा दुख सुख जोई ; हानि लाभ सब मानो सोई ॥४५॥
हरि-विमुखन सो करे न चरचा ; करो प्रीतिसो हरिजन अरचा ॥४६॥
नम्री-भूत ह्वै के नित रहो ; दास दास के भावहि गहो ॥४७॥
मिथ्या-वाद विबादहिं त्यागो ; हरिकी कथा सुधारसरागो ॥४८॥
उत्सव दिन विशेष करि मानो ; जन्मकर्म दिव्य हरि को मानो ॥४९
मानऽरु भय अमर्ष न करौ ; हरिके चरन सदा चित धरौ ॥५०॥
सत्रु, मित्र दोऊ सम मानो ; सहनसीलता उरमें आनौ ॥५१॥
नाम भरोसे पाप न करौ ; नामी नाम एक बुधि धरौ ॥५२॥
सदा नाम विस्वासहि राखौ ; उठत बैठत नामहि भाखौ ॥५३॥
नाममहात्म्य ऐसो सोई ; याते अधिक और नहिं कोई ॥५४॥
नामहि सो नित बाँधौ नातौ ; जगत-मोह सो डोरा डातौ ॥५५॥
साँस उसास नामही जापौ ; चित्त जुगलपद में लै थापौ ॥५६॥
नित हरिचरणामृतरु दंडवत ; धरि उर नेम निवाहो यह मत ॥५७॥
प्रारथना करजोरि करो पुनि ; जिहिं विधि हरि उकतावें नहिं सुनि ॥५८
होय निरालस हरिको पूजो ; गुरु विन गहो न मारग दूजो ॥५९॥
गुरुसो गोविंद गोविंदसो गुरु ; ऐसो भाव सुधरियो निज उर ॥६०॥
साधनको छल छिद्र न धरो ; कपट छाड़ि आराधन करो ॥६१॥
वक्तासो हरिगुन सुनि रहो ; श्रोतासो हरि-गुन पुनि कहो ॥६२॥
दुखी देखि उर दया विचारौ ; सुखी देखि हिय हर्षहि धारौ ॥६३॥
सरल स्वभाव सबनि ते रहनो ; मधुर वचन मुखते सोइ कहनो ॥६४
पर उपकार बिषै बुधि धारौ ; अनुचित कर्म क्रिया निरधारौ ॥६५॥
हरि अनुकूल जिती उर धारौ ; पुनि प्रतिकूल तिती परिहारो ॥६६॥
हरिसो निरवधि नेह निवाहो ; निसिदिन चरनन को रति लाहो ॥६७
हरिजन होयजु हठ नहिं करिवो ; हरिआज्ञा ही में अनुसरिवो ॥६८॥

हरिरसपान करो निसिदिना ; नीरसजस छाड़ो हरि विना ॥६९॥
सवहिनसों करि राखो समता ; देह, गेह को छाड़ौ ममता ॥७०॥
सत्य अहिंसा शान्ति सोच सुनि ; समदमादि ए उरहि धरो पुनि ॥७१
नैन, वैन, रसना, श्रुत, घ्राण ; कर, पद, शिर, पुनि हृदयरु प्राण ॥७२
हरिवर करि राखो सव अंग ; पारो जिन उपायन में भंग ॥७३॥
ह्वै अनन्य उर दृढ़ व्रत करो ; सखी भाव लिये हिये अनुसरो ॥७४
छाड़ि कुनेम प्रेम मन पागो ; युगल पदाम्बुज सो अनुरागो ॥७५॥
प्रभुको रूप ध्यान उर धरौ ; मगन होय नित नृत्यहि करौ ॥७६॥
सर्व भाव करि हरिहिं रिझावौ ; 'रूपरसिक' ज्यों सब सुख पावौ ॥७७

[दोहा]

स्यामा-स्याम विहार निज वृन्दाविपिन उदार ।
अर्ब खर्व वैकुंठ को गर्व मिटावन—हार ॥ १ ॥
जय वृन्दावनधाम निज सकल लोक सिरताज ।
सर्बेश्वर सर्बेश्वरी जहां रहत जुवराज ॥ २ ॥
अवधादिक हरिधाम को फल वैकुंठ कहंत ।
वनरज ऊपर वारिये सो वैकुंठ अनंत ॥ ३ ॥
जय जय जय वृन्दाविपिन जुगलकेलि-आगार ।
ताकी महिमा कहनको हारे वेद हजार ॥४॥
श्रीहरिव्यास कृपा विना लहै नहीं सो धाम ।
अति दुर्ल्लभ वृन्दाविपिन निजघर स्यामास्याम ॥ ५ ॥
अज, अव्यय, अविनासि पद हद, वेहद ते दूरि ।
श्रीवृन्दावनधाम है रसिकन जीवन—मूरि ॥ ६ ॥
जयति जयति नम जयति नम श्रीवृन्दावन वाग ।
जामें प्यारी पीय को अविचल सदा सुहाग ॥ ७ ॥
व्याह, परोजन, कारटो होम, कनागत खाहिं ।
व्यतिपात, मावस, ग्रहण, तुलादान, मखमाहिं ॥ ८ ॥
सतीद्रव्य, सुत जन्म कौ नौतन वधू—विवाहि ।
कङ्कण कौ, रणचढ़न कौ हरिजन लेत न ताहि ॥ ९ ॥

चढ़यौ उतरयो देवकौ वारि फेरि दियो दान।
मूल सान्ति, संक्रांति को आन उच्छिष्ट अमान ॥१०॥
कलप्यो, कुँवारे हाथकौ विमुख-साथ कौ भोज।
अननि होय अनुरक्ति है; तो जाइ भक्ति कौ खोज ॥११॥
निन्दा, निन्दक, नीचधन भइया भूत फरेश।
पीर सारिणी छायके खोवै सुकृत जु लेश ॥ १२ ॥
ना बिस्वासी गुरुविमुख अघी, उपासी अन्य।
कष्टी, दुष्टी. प्रेत कौ लेत न कबहुँ अनन्य ॥ १३ ॥
सदा प्रेत इनमें रहै जो कोउ इनको लेत।
भ्रष्ट-बुद्धि ह्वै भजन में कबहुँ न आवै चेत ॥ १४ ॥
जैसे काँजी दूध में परे बूंदहीं आय।
हरिविमुखन के अन्नते ऐसे भक्तिविलाय ॥ १५ ॥
चातक की सी ब्रत धरै करै न अन्य अपान।
एक स्वाति वून्दी विना सब जल खार समान ॥ १६ ॥
श्रीवृन्दावन-महल सुख है सब रस को सार।
'रूपरसिक' जिनको मिले तिनपर कृपा अपार ॥ १७ ॥
नित्यकिसोरी वपुष यह श्रीवृन्दावन—धाम।
नवनिकुंज कलकेलिहित राजत भूपर धाम ॥ १८ ॥
'रूपरसिक' कोउ कहत है बादर काहि दवात।
सो इन मूरख नरन को दृग माया फिरि जात ॥१९॥
सूर सोई आगा धरे पाछा धरे न पावँ।
'रूपरसिक' सर्वेश ते तबहीं होय मिलाव ॥२०॥
एक भूत के लगे की सही परत नहिं आँच।
'रूपरसिक' जिनकी कहा तिनको लागे पाँच ॥२१॥
या माया खाया सबै याकी भारी चोट।
'रूपरसिक' जन ऊबरे माया गुरु की वोट ॥२२॥
तन्त हमहिं जानत भले नहीं और के भाव।
छोटो मुख मोटी कहै नीचन यहै स्वभाव ॥२३॥
अपने अपने मनहि में रहै पतिव्रत धारि।

'रूपरसिक' सोई सही कहै पड़ोसनि नारि ॥२४॥
भक्ति भाव समझै नहीं आपाको अधिकाव।
सेर चून दै साधुकौ कहै कुँवे धसि जाव ॥२५॥
साधु शरम मार्‍यो कछू बोल सकै नहिं वैन।
'रूपरसिक' की ओर ह्वै जोवै टग टग नैन ॥२६॥
'रूपरसिक' ऐसे कहै सुनो हमारी बात।
सेर चून पहिले लयो अब काहे पछतात ॥२७॥
आसी सो पासी सदा नाहिं तलासी तास।
रहैं उदासी जगत ते हम हरिव्यासी दास ॥२८॥
स्वारथ माहीं चतुरसब परमारथ कौ नास।
'रूपरसिक' ता हिय नहीं ए कोरे हरिदास ॥२९॥
मुख सो भाषे अनन्यता तन में राखे टोंठि।
ठाकुर के आगे धरे उजवना की ओंठि ॥३०॥
रीति चलावे आपनी है कलि की यह टेक।
बिना सरन हरिव्यास की उपजे कहा विवेक ॥३०॥
जो कोऊ चाहै चाह सो तिनको दुखसुख संग।
'रूपरसिक' नहिं करे तो होत रसिकता भंग ॥३२॥
समय परे ते जानिए हित अनहित की बात।
'रूपरसिक' ज्यों प्रगटहीं छीन पीनता गात ॥३३॥
हमहीं बहुत पढ़ी सुनी सिद्धान्तन की साखि।
साधन सो कछु मति कहै आपि आपनी राखि ॥३४॥
मुख आगे स्तुति करै पीछे करै चवाय।
'रूपरसिक' वा दास कौ नास जाय पै जाय ॥३५॥
भक्ति भाव हिरदे धरै डिम्भ तज्यो नहिं जाय।
'रूपरसिक' इन त्रियन को है सहजेहि सुभाय ॥३६॥
नृत्य करत लाजन मरे ते नर तिय तन पाय।
सदा अदेरी हाथ में सूत समेटत जाय ॥३७॥
हम काहूँ के होयँ तो कोउ हमारो होय।
'रूपरसिक' संसार में देखे सबही जोय ॥३८॥

'रूपरसिक' संसार में कोउ न अपनो जान।
एक दोय की कहा चली सबहीं स्वप्न समान ॥३९॥
साधु सदाही शुद्ध है, जिनके मते अगाध।
'रूपरसिक' कहा जानहीं जीव भरे अपराध ॥४०॥
हरिभक्तन सों द्रोह करि गई चहै हरि—लोक।
'रूपरसिक' वा राँड़ के परे करम में ठोक ॥४१॥
हरि सुमिरे ह्वै हैं कहा हरिभक्त सो वैर।
'रूपरसिक' पावै कहाँ बिना उसीला खैर ॥४२॥
आवै तो आनन्द कौ उपजै और जंजाल।
'रूपरसिक' इन तियन को संग तजौ तत्काल ॥४३॥
जगत भगत सबहीं हँसौ बुरौ न मानूं कोय।
श्रीराधावर सुमिरताँ होनी होय सो होय ॥४४॥
मैं देखौं सब इष्ट को श्रीराधावर अंश।
मूरख नर समुझें नहीं उलटी धारैं गंश ॥४५॥
गुरु सबहीं के होत हैं निगुरे रहत न कोय।
सतगुरु के सरने बिना सुख प्रापति नहिं होय ॥४६॥
गुरु की कृपाहिं जानिए सतगुरु मिलैं जु आय।
मूरख छोड़यो कहत है जासों कहा बसाय ॥४७॥
छोड़यो जाको जानिए हरि तजि भजे जु और।
अमृत—रस को पीठ दै फिरतो फिरै कुठौर ॥४८॥
साँची सो झूठी कहै झूठी सो कहे साँच।
ऐसे या कलिकाल में प्रगट भये हैं पाँच ॥४९॥
तिनको मुख खंडन करन हरन कलेश अपार।
प्रगट भये हरिव्यासजू स्वयं रूप अवतार ॥५०॥
कोने में करिबो करै घुचपुच घुचपुच चोर।
'रूपरसिक' हरिव्यास की चौड़ाही में ठौर ॥५१॥
लिये नरक दीये स्वरग 'रूपरसिक' भुगतन्त।
दोउन ते न्यारे रहैं जिनको नाम महन्त ॥५२॥

महताई मुश्किल महा नाम धरें कहा सिद्धि।
'रूपरसिक' जिनके नहीं आनंद रूपी रिद्धि ॥५३॥
भला कहा रीझे नहीं बुरा कहा न खिजन्त।
'रूपरसिक' सोइ जानिये आनँद-रूपी सन्त ॥५४॥
'रूपरसिक' संसार की देखो उलटी चाल।
परिहरि नरहरि-चतुरदशि पूजे खेतर-पाल ॥५५॥
जाको चाहत है दियो लीलारस अधिकार।
'रूपरसिक' तो बुद्धि को बारंबार धिक्कार ॥५६॥
प्रथम दइवी जीव में करम ज्ञान करि हीन।
फिर तिनहीं को सोधिये लीला रस में लीन।५७॥
लीलारस के जीव में युगल-ध्यानरत जोय।
युगल-ध्यान-रत में कोऊ सखी भावयुत सोय ॥५८॥
सखी-भाव-जुत में कोऊ बृन्दावनी उपास।
तिनहूँ में पुनि देखिये श्रीहरिव्यासी दास ॥५९॥
श्रीहरिव्यासी दास में महावाणी रुचि जाहिं।
तिनसो हिलिमिलि कीजिये हिय की बात उमाहिं।६०॥
अधिकारी बिन जो कहूँ भाखै यह रस रीति।
'रूपरसिक' सुख नहिं लहै उलटो ह्वै विपरीति ॥६१॥
दुर्ल्लभ या संसार में रसभजनी रतिवान।
'रूपरसिक' ऐसे बहुत नीरस रीस निवान।६२॥

॥ इति ॥

श्रीतत्त्ववेत्ताजी

—छप्पय—

विप्र-वंश-मधि जन्म निज देश भक्ति-रस सान्यो।
पूर्व-जन्म-कृत-पुण्य बहु सिद्धि शक्ति उर आन्यो॥
आत्म-तत्त्व को ज्ञाता उत्कट विमुख नाम सो वैर।
जिन सिद्धान्त गहि अमित नर भव-वारिधि गए तैर॥
श्रीहरिव्यास-पद-पद्माश्रित तत्त्ववेत्ता तत्त्वहि लह्यो।
आज्ञा श्रीगुरुदेव लै, जैतारन मधि दृढ़ वसि रह्यो॥

— बिहारीशरण

इस परम पवित्र भरतखण्ड में सनातनधर्म-संरक्षक जो जो महात्मा हुये हैं; उनमें महामुनि श्रीतत्त्ववेत्ताजी एक प्रमुख हैं। इनके जन्मादि के विषय में ऐसी किंवदंती है कि लगभग संवत् १५५० में मारवाड़ देश के अन्तर्गत जयतारण नाम का एक उपनगर है, उसके समीपवर्ती किसी गांव में छैन्याती-ब्राह्मण-वंश में इनका जन्म हुआ था। माता पिता बाल्यावस्था ही में स्वर्ग सिधार गए थे, अतः इनके लालन पालन का भार बड़े भाई के आश्रित रहा। गाँव के भीतर जो छः न्याती ब्राह्मण रहते थे वे सभी इस होनहार बालक की रक्षा किया करते थे। येभी "वसुधैव कुटुम्बकम्" इस महावाक्य के अनुसार सभी में बहुत ही श्रद्धा भक्ति रखते थे। जब ५ वर्ष के हुए तो इन्हें कुछ हिन्दी शिक्षा प्राप्त हुई। विद्यार्थी अवस्था में भी भजन भाव ही में लगे रहते थे। एक दिन किसी भद्र पुरुष के साथ इनका जयतारण जाना हुआ, वहाँ उस दिन नृसिंहलीला होरही थी।

नोट—यह परिचय श्रीमान् महान्त श्रीहरिशरणजी की आज्ञा से पुष्कर निवासी पं० श्रीशिवदत्तजी त्रिपाठी ने श्रीनिम्बार्कमाधुरी में प्रकाशनार्थ भेज कर मुझे अनुग्रहीत किया था; इसलिये श्रीमान् महान्तजी एवं पंडितजी को धन्यवाद!

उस अवतार के चरित्र देखने तथा कथा सुनने का इनपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि इन्होंने श्रीलक्ष्मी नृसिंहजी को ही अपना इष्टदेव मान, 'लक्ष्मीनृसिंह ॐ लक्ष्मी नृसिंह" इसी महामंत्र का जप करने लगे। जब पाठशाला में छात्रों को भी इन्होंने यही शिक्षा दी तो कतिपय छात्र भी इनके अनुयायी होगये। गुरुजी महाराज गुर्जरगौड़ ब्राह्मण थे, वे भी इनका भगवान् में असाधारण प्रेम देख, इन्हें प्रल्हाद-भक्त कहकर पुकारने लगे। उस ग्राम में इनका प्रल्हाद-भक्त नाम विख्यात हो गया। इनका भाई बड़ा सुशील था परन्तु भौजाई बड़ी कर्कशा थी, अतः उसने इनको क्षेत्र-रक्षा का भार सौंपा। एक दिन वह गाँव में भाता लेने गई और इनको पाणत करने का काम दिया। यद्यपि इनको हरिध्यान के अतिरिक्त कोई भी कार्य्य अच्छा नहीं लगता था; तो भी बड़ों की आज्ञा मानना अपना परमधर्म समझकर, उस कार्य को भी सावधानी से करने लगे। भगवान् की माया बड़ी प्रबल है कोई भी उसका पार नहीं पा सकता जिस धोरे में पाणत करने लगे वहां कोई कीड़ियों का बिल था, उसमें जल भर जाने के कारण सहस्रों ही मरी हुई कीड़ियां क्यारी में तैरने लगीं। इस घटना से इनके मनमें सहसा वैराग्य उत्पन्न होगया। इन्होंने सोचा कि "खेती में आरंभ से अन्तपर्यंत हिंसा ही हिंसा प्रतिदिन करनी पड़ेगी। हाय! इस पापी पेट के निमित्त मैं क्यों इतना पाप कमाऊँ? दो रोटी भगवान् जहाँ जाऊँगा वहीं देंगे।" इस प्रकार सोच विचार, अज्ञात रूप में वहाँ से चल पड़े। संयोग से एक यात्रियों का झुण्ड इनको मिल गया उनके साथ पुष्करराज पहुंचे। यहाँ इन्होंने स्नान कर, ब्रह्माजी, बाराहजी आदि देवताओं का दर्शन किया। अगस्त्य, वामदेवा, जमदग्नि, कपिलादि महर्षियों के स्थान देख, दधीचीआश्रम को ही अपना निवासस्थान बनाया। कई दिन तक कठिन तपस्या करके, मथुरा वृन्दावन काशी, प्रयागादि तीर्थ भ्रमण करते हुये नेपाल पहुँचे। ऐसी जनश्रुति है कि ज्योंही गण्डकी में स्नान कर, पूजा के निमित्त श्रीनृसिंह विग्रहार्थ शालग्रामजी का ध्यान करने लगे उसी समय दो हिरण्यगर्भ शालग्रामजी दाहिनी और बाँई गोद में अनायास उछलकर आगये। पश्चात् पशुपतिनाथ की यात्रार्थ नेपाल पहुंचे। इनकी सिद्धाई के समाचार को लोगों ने नेपाल नरेश के पास भी पहुंचा दिये। राजा इनके दर्शनार्थ उपस्थित हुआ और इनकी भव्य मूर्ति को देख, संतुष्ट होकर बड़े सत्कार के साथ

अपनी राजवाटिका में इन्हें ठहराया। वहीं रहते हुये अनेक जीवों को उपदेश देकर कल्याण किया। राजा भी इनके नैष्ठिक—ब्रह्मचारिता की प्रशंसा किया करते थे और इनसे ज्ञान चर्चा सुना करते थे। प्रस्थान के समय राजा ने बहुत सा धन दिया, उसे इन्होंने सुपात्र ब्राह्मण और तीर्थयात्रार्थी साधु महात्माओं को तुरंत ही बाँट दिया। शिष्यों को बहुधा यह शिक्षा दिया करते थे—

तत्त्ववेत्ता संसार में पाँच बात है सार।
हरिसेवा, गुरुभक्ति रति, विद्या, तप, उपकार॥

पुनः अनेक तीर्थों में बिविध महात्माओं से सत्संग करते एवं शिष्य लोगों को शिक्षा देते हुये हरिद्वार पहुंचे। यहाँ आचार्य श्रीहरिव्यासदेवजी महाराज के साथ इनकी भेंट हुई। इनके ज्ञान और ध्यान से संतुष्ट होकर आचार्यपाद ने इनसे श्रीनिम्बार्कसम्प्रदाय की वृद्धि के लिये अनुरोध किया। गुरुदेव की शिक्षा मानकर, तत्काल ही दीक्षित बन गये। बहुधा आचार्यवर्य श्रीहरिव्यासदेवजी महाराज अपने शिष्यों को स्वयं पूजाक्रम बताया करते थे। एक दिन श्रीपुष्करक्षेत्र में गुरुजी तो ठाकुरजी की सेवा करते थे और शिष्यमण्डली बाहर ज्ञान ध्यान में तत्पर थी। इसी अवसर पर किसी ने गुरु महाराज के दर्शनार्थ आकर पूछा कि—महाराज कहाँ हैं? इस प्रश्न को सुनकर अन्य सब शिष्य तो चुप रहे; पर इस चरित्र के नायक बोल उठे कि "गुरुजी श्रीठाकुरजी की पूजा के लिये फूल लेने पुष्पवाटिका में गये हैं., जब पूजन से निवृत्त होकर गुरुजी बाहर आये और शिष्यों के मुख से यह बात सुनी तो वे अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले कि—"मैं तो इनकी शक्ति को प्रथम ही से जानता था; किन्तु आप लोगों को आज ही परिचय मिला है। भाइयो! इनको तुम सामान्य साधु मत समझो। यह कोई असाधारण हरिभक्त हैं। इनको आत्मज्ञान होगया है इसलिये आज से इन्हें 'तत्त्ववेता' की पदवी से विभूषित करो।" उसी दिन से समग्र शिष्यमण्डल इनको तत्त्ववेता के नाम से पुकारने लगा। समय पाकर इनका वंशक्रमागत नाम तो लुप्त होगया और 'तत्त्ववेत्ता' नाम से ही विख्यात हुये। कुछ समय के उपरान्त मथुरा, वृन्दावन से गुरुआज्ञापाकर, अपनी जन्मभूमि को लौटे। मार्ग में कृष्णगढ़ के पास हरमाड़ा नामक ग्राम आया। यहाँ के निवासी कतिपय दुर्जन इनकी शक्ति देख, जल गये और अवसर पाकर उन्होंने

भोजन में विष मिला दिया। ये तुरंत ताड़ गये कि–अवश्य इसमें विष है। शिष्य लोग परीक्षा करने के लिये थोड़ा सा अन्न कुत्ते को खिलाया उसे भ्रान्तजान पुनः चिकित्सा से तुरंत ही चैतन्य कर दिया। कहते हैं कि महात्माजी ने उस समय कहा था कि-"हर हमारा-हर हमारा" अर्थात् भगवान् हमारे हैं सो अवश्य हमारी रक्षा करेंगे। उसी दिन से उस ग्राम का नाम 'हरमारा' पड़ गया। पहले उसका कोई दूसरा ही नाम था।

वहाँ से चलकर अजमेर आये, यहाँ बादशाही शासन था। चक्रवर्त्ती-राजा अजयपाल की नगरी होने से हिन्दू लोग भी इसे पुन्यनगर मानते थे। एक समय हिन्दू मुसलमान दोनों जातियों में परस्पर विवाद हुआ। मुसलमानों की ओर से कोई अच्छा फ़कीर और हिन्दूओं की पक्ष से तत्ववेत्ताजी पहुंचे। आनासागर पर एक विराट् सभा हुई। प्रसंगवश तत्ववेत्ताजी ने मुसलमानों से कहा कि—"चोटी ईश्वर की दी हुई मनुष्यमात्र की सम्पत्ति है। भाई! आपलोग आकाश से नहीं गिरे हो। यहीं के हिन्दू जो बादशाहों के अत्याचार से मुसलमान होगये थे उन्हीं के तो संतान हो।" श्रुति एवं शास्त्र-संगत वाक्यों से समझाया कि-"भाइयो! आप लोग भी मूर्ति पूजक हो। कबर और ताजिया पूजना यह भी प्रकारान्तर बुतपरस्ती ही है।" इसके उपरान्त थोड़े से समय के लिये वह वाद विवाद स्थगित सा रहा। कुछ समय के उपरान्त पुनः विवाद उठा और सूवा द्वारा महात्माजी का आसनभी उठाने का संदेश आया। इन्होंने श्रीनृसिंहजी से उपद्रव शांत्यर्थ प्रार्थना की। भगवान् ने तुरंत ही ऐसा चमत्कार दिखाया कि चारों ओर मानों सिंह ही सिंह दहाड़ने लगे। इस विचित्र घटना से चकित हो उपद्रवीलोग डरगये और महात्माजी अपने स्थान पर ही डटे रहे। वह स्थान आजकल सरकारी बाग़ के निकट है। इसके अनन्तर महात्माजी अपनी जन्मभूमि जयतारण पहुँचे। उनदिनों वहां कनफटे जोगियों का प्रधान्य था। ग्रामवासियों ने इनका बड़ा अतिथ्य सत्कार किया। इस पर वे लोग बड़े असंतुष्ट हुए। एक दिन उनके गुरु और तत्ववेत्ताजी में परस्पर वार्त्ता-लाप हुआ-जिसमें तत्ववेत्ताजी की जीत हुई। उनके ही अखाड़े में गोपाल द्वारा बनाया गया। समस्त ग्रामवासी और आसपास के राठौर क्षत्रिय भी इनके कंठीबन्ध शिष्य हो गये। कुदावत आदि राठौर सरदार कई सहस्र की संख्या में अब भी इनके अनुयायी हैं।

कई दिनों के अनंतर महामुनि तत्ववेत्ताजी अजमेर पधारे। वहाँ इनके ३ प्रधान शिष्य थे। उनमें से प्रथम को तो इन्होंने २नृसिंह मूर्तियां; जो इन्हें नैपाल में मिली थीं, प्रदान की। एक श्रीनृसिंहद्वार अजमेर में स्थापित है और दूसरी श्रीपुष्करराज के नृसिंह मंदिर में बिराजमान है। इस शिष्यपरंपरा में अच्छे२ ज्ञानी ध्यानी महंत हुये। आजकल दोनों देवालयों के महंत श्रीहरिदासजी महाराज बड़े आस्तिक हरिभक्त हैं। अजमेर भादवा सुदि ११ की जलयात्रा में रेवाड़ियों की जुलूस के समय पालकी मे बैठने का अधिकार आप ही को है; जो शाही समय से चला आ रहा है। आप अजमेर में स्थित कई–एक मन्दिरों के अध्यक्ष हैं। अजमेर जिले के सरकारी व इस्तमरारी गांवों से भी आपकी गद्दी व मन्दिर के लिये बरषायण (सालाना भेंट) नियत है जिसके पट्टे मरहठा राजाओं द्वारा दिये हुए आज भी मौजूद हैं। अजमेर के इस एकमात्र आचार्य गद्दी में दीक्षित ब्राह्मण, अग्रवाल महेश्वरी, बीजाबर्गी, माली, तेली आदि अधिक हिन्दू जातियों के अधिकांश लोग शिष्यवर्ग हैं। जो देशकालानुसार अच्छी योग्यता रखने वाले हैं।

दूसरे शिष्य जयतारण में विराजे वे गोपालद्वारा के महन्त हुये। वर्तमान महन्त जमनादासजी बड़े भजनानंदी और विचारशील हैं। सभी शिष्यमंडली इनका बड़ा सम्मान रखती है।

तीसरे शिष्य जयपुरान्तर्गत थोलाई ग्राम में प्रतिष्ठित हुए, वहाँ भी जयपुर नरेश की ओर से बड़ी भारी जागीर के साथ उन्हें देवालय प्राप्त हुआ। महाराजा उनका अच्छा मान रखते हैं। वर्तमान महंत भी बड़े हरिभक्त और ज्ञानी ध्यानी हैं। जब तक पुष्करराज में पानी रहेगा तब तक महामुनि तत्ववेत्ताजी की भी कीर्ति, श्रीमान् परमपूज्य आचार्यवर्य १००८ श्रीनिम्बार्क भगवान् के साथ अखंडित बनी रहेगी।

श्रीतत्ववेत्ताजी की वाणी एक बृहद् हस्तलिखित ग्रंथ है जिसमें सिद्धान्त के छप्पय संग्रह हैं। अन्त में उत्सव के पद भी सम्मिलित हैं। इस वाणी को श्रीमान् महन्त श्रीहरिशरणजी (अजमेर) मुद्रित कराने का विचार भी कर रहे हैं। पाठकों की सेवा में इनके द्वारा निर्मित अलभ्य छप्पै उद्धृत किये जाते हैं।

कमल--नाभ कल्याण कृष्ण बसुदेव कुमारा;
पंकज--नाभ प्रसिद्ध पाप--परचंड--प्रहारा।

नाभ नाभ नभ नाभ नाम लीया निस्तारा;
नलिन नाभ निज नाभ नमो निरमल निरभारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में विविध नाम विस्तरिरह्या।
सर्वनाभ कौं सुमिरतां परमनाभ परचै भया ॥ १ ॥
आदि अगनि उनचास अंगनि सूरज अवतारा;
जठराअग्नि जाजुलि उरमैं पचत्त अहारा।
महाअगनि महातेज अगनि माया विस्तारा;
काल-अगनि करतार कृष्ण वसुदेव कुमारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में ज्ञान अगनि गुन गाइयै।
कोटि करम काया कलेश ज्वाला मांहि जलाइयै ॥ २ ॥
कामअगनि सह कामदेव सुरनर सब काया;
क्रोध अगनि बिकराल सर्वता माहिं समाया।
लोभअगनि जमलाय लोक परलोकां लागी;
मोहअगनि घरमांह मरत मूरख मंदभागी।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में ब्रह्म अगनि विस्तारि रही।
सर्ब अगनि को सुमिरता परम अगनि परचै भई ॥ ३ ॥
आदि कटि असमान असल कटि अपरंपारा;
सहस कटि सुदेश स्यामसुंदर सुकुमारा।
महा कटि मृगराज महा महिमा विस्तारा;
कोटि कोटि मेखला कृष्ण वसुदेवकुमारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में विविधि कटि बिस्तरि रही।
सर्व कटि कौ सुमिरता परम कटि परचै भई ॥ ४ ॥
आदि नितंब अनूप अनंत नित्त अवतारा;
सहस्र नितंब स्वरूप स्यामसुंदर सुकुमारा।
महा नितंब महंत महा महिमा विस्तारा;
कोटि नितंब करतार कृष्ण वसुदेव कुमारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में ब्रह्म बीरज गुण गाइये।
सर्व नितंब कौ सुमिरतां परम नितंब परचै भया ॥ ५ ॥
आदि इन्द्री असमान अनंत इन्द्री अवतारा.

कर्म इंद्री करतार ज्ञान इंद्री गुण सारा।
महाइंद्री मुनि इंद्र बिबिध परजा बिस्तारा;
जितइंद्रीय जोगेंद्र जोगिजन करत जुहारा।
तत्त्ववेत्ता त्रयलोक मैं बिबिधि इन्द्री बिस्तरि रही।
सर्ब इन्द्रीय कौ सुमिरता परमइन्द्रीय परचै भई॥ ६ ॥

आदिबीरज असमान अनंत बीरज अवतारा;
अत्रैबीरज अदृष्ट अखिल आत्तम आधारा।
महाबीरज जल बीज बीज्र बीरज बिस्तारा;
सहश्र बीरज सबीज स्यामसुंदर सुकुमारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं ब्रह्म वीरजगुण गाइए।
राजबीज बंडराज कौ दरसन परसन पाइए॥ ७ ॥

पाय पुनि द्रुबीज प्रबल पावक परजारण;
कर्म धर्म कौ बीज कृष्ण कारण को कारण।
भगति बीज भगवंत भगतबछल भवभंजन;
मुकति बीज महाराज रामसीता मनरंजन।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं बिस्वबीज बिस्तरि रह्या।
सर्वबीज कौ सुमिरता परम बीज परचै भया॥ ८ ॥

आदिजोनि अवतार आतमजोनि अपारा;
धर्मजोनि धर्मज्ञ अखिल आतम आधारा।
महाजोनि महतत्व महामहिमा बिस्तारा;
पदमजोनि परसिद्ध पाप—परचंड प्रहारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं बिरच जोनि बिस्तरि रह्या।
सर्ब जोनि कौ सुमिरतां परम जोनि परचै भया॥ ९ ॥

आदिद्वार गुरद्वार अनंतद्वारा अवतारा;
अलखद्वार असमान अखिल आतम आधारा।
महाद्वार मुखद्वार बेद—बानो बिस्तारा;
मूलद्वार मृत्यावर्ण बित्तल मै बाय किकारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं गंगाद्वार गुण गाइए।
हरिद्वार हरिराय कौ दरसन परसन पाइए॥ १० ॥

राजद्वार बड़राज राम रघुबंस कुमारा;
देवद्वार दातार दान बरदान उदारा।
संभुद्वार परसिध संभु जहां सुरति संवारा;
सहश्रद्वार सिंगार सर्व संसय संहारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में ब्रह्मद्वार बिस्तार रह्या।
सर्व द्वार कौ सुमिरतां परमद्वार परचै भया। ११॥

आदि बिरक्तनुदार सार रिषभा अवतारा;
परसराम उदारनुदार प्रथु अपरम्पारा।
महामनु उदार महामहिमा विस्तारा;
चरणनुदा कर उदार चतुर्भुज चारु विचारा।
तत्त्ववेत्ता त्रयलोक मैं रामनुदार गुणगाइयै।
कृष्ण उदार किसोर कौ दरशन परसन पाइयै॥ १२॥

दानि उदार दधीच सर्व सुरनर सुखदाई;
सिव उदार सरदार सर्वघट रह्या समाई।
हरि उदार हरिचन्द प्रगट जाकै हरि आया;
बलि राजा उदार दान दे आप बँधाया।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं बनि उदार बलि बँधि रह्या।
सर्व उदार को सुमिरता परम उदार परचै भया॥ १३॥

आदि उरू असमान अनन्त उरू अवतारा;
सहश्र उरू स्याम सुत उरू सुकुमारा।
महा उरूमरा महाराज वैस्य उरू विस्तारा;
रम्भा उरू राम विपरजय अरथ बिचारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में विविधि उरू विस्तरि रहीं।
सर्व उरू कौ सुमिरता परम उरू परचै भई॥ १४॥

आदिजान असमान अनन्त जानु अपरंपरा;
सहश्रजानु सुजान स्यामसुन्दर सुकुमारा।
महाजानु भगवान तलातल जानु तुम्हारी;
कदली जानु कृपाल कृष्ण कल कुञ्जबिहारी।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं विविधि जानु बिस्तरि रही।
सर्व जानु कौ सुमिरता परमजानु परचै भई॥ १५॥

आदि जंघ असमान अनन्त जँघ अपरंपारा;
सहस्र जंघ त्रिभंग स्यामसुन्दर सुकुमारा।
महाजंघ मनहरनं महामहिमा विस्तारा;
कोटिजंघ करतार कृष्ण वसुदेवकुमारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं विविधि जंघ विस्तरि रही।
सर्वजंघ कौ सुमिरता परमजंघ परचै भई ॥ १६ ॥

आदिगुलफ असमान अनंत गुलफा अवतारा;
सहश्रगुलफ स्वरूप श्रुति स्मृति गुणसारा।
महागुलफ मनहरण महामहिमा विस्तारा;
कोटिगुलफ करतार कृष्ण वसुदेवकुमारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं विविधि गुलफ विस्तरि रह्या।
सर्व गुलफ कौ सुमिरता परमगुलफ परचै भया ॥ १७ ॥

आदिपद परपद अनंत परपद अपारा;
रसाताल परपद राम रघुनाथ उदारा।
महापद परपद महामहिमा विस्तारा;
सहश्रपद परपद स्यामसुन्दर सुकुमारा।
तत्त्ववेता तिहुँलोक मैं बिबिधि प्रपद बिस्तरि रह्या।
सर्व प्रपद कौ सुमिरतां परमप्रपद परचै भया ॥ १८ ॥

आदि अंगुली अनूप अनन्त अंगुली अपारा;
कोटि कल्पतरु अंगुली कामधेनु कोटिहजारा।
महाअँगुली महत्त महामहिमा विस्तारा;
सरल अँगुली बिशाल स्यामसुन्दर सुकुमारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं बिबिधि अंगुली बिस्तरि रही।
सर्व अंगुली कौ सुमिरतां परमअंगुली परचै भई ॥ १९ ॥

आदिनख असमान इष्ट गंगा अवतारा;
ईश्वरनख अवलोकि अमरगण भ्रांति अपारा।
महानख कूरम महामहिमा विस्तारा;
सहश्रनख सुनख स्यामसुन्दर सुकुमारा।
चन्द्रभान नख चारु चतुर चिंतामनि राया;
कोटिकाम कांति सर्वनख मांहि समाया।

तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं विविधि नख बिस्तरि रह्या।
सर्व नखन को सुमिरता परम नखन परचै भया॥ २०॥

आदिमच्छ अमृत्त-कलस अर्ध चांदा अवतारा;
महात्रिकूण मन-जीत सदा जंबूफल सारा।
गोपद गुण बिस्तार इंद्रधनु असुर संहारा;
पूरनचंद प्रकास संख सुर सब्द सुढारा॥

बाम चरण मैं नौ चिन्ह बेदव्यास बायक कहै।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं स्यामचरण मैं चित रहै॥ २१॥

आदिस्वसाक आनन्द अष्टकोण आदर पावै;
महाछत्र कलपतरु सर्बसंताप नसावै।
सुदर्सन जवसार उरध—रेखा अधिकारा;
ध्वजा प्रगट परताप बज्र बड-पाप-प्रहारा॥
अंकुस मन अस्वभ हस्ति मन अनत न जाई;
अष्टकमल-दल मध्य भँवर मन रह्यो समाई।

दाहिना चरण मैं दस चिह्न कृष्ण द्वैपायन यों कहै।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में कृष्ण-चरण में चित्त रहै॥२२॥

आदिचरण गुरुचरण अनत हरि-चरण अपारा;
पुरष चरण पाताल पादतल प्राणअधारा॥
महाचरण मनहरण ब्रह्मचारी चरण बिचारा;
सूद्रचरण समरथ सर्ब सेवक संसारा।

तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में स्याम-चरण गुण गाइये।
कृष्ण चरण कल्याणरूप सुमरि-सुमरि सुख पाइयै॥२३॥

पूरव पछिम चरन चरन सोंइ स्वर्ग पताला;
वृन्दावन में चरन पादरत्ता बिनु पाला।
श्रीगुरु-चरण-चरन सरोज दोउ बलिद्वारा;
सहश्र चरन की सरन सर्ब-संसय-संहारा।

तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में बिष्णु चरण बिस्तरि रह्या;
सर्व चरन कौ सुमिरता परम चरन परचै भया॥ २४॥

आदि सरन गुरु सरन श्रेष्ठ धार्‍यो अवतारा;
असरन सरन उदार अखिल आतम आधारा।

महासरन मनसरण बन चरा सरन विचारा;
ब्रह्मसरन शिव सरन व्याधि-सब हरण विकारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में गोपसरन गुन गाइए;
विभीषण शरण बलवन्त कौ दरसन परसन पाइए ॥२५॥

भीत सरन भगवंत भगतबछल निरभारा;
दीन सरन हरिदेव दान बरदान उदारा।
पतित सरन परसिद्ध–पाप-परचंड प्रहारा;
अधमसरन अधिकार अटल अविचल इकतारा।
तत्त्ववेत्ता त्रयलोक में बिविधि सरन विस्तरि रह्या;
सर्व सरन कों सुमिरता परम सरन परचै भया ॥ २६ ॥

आदि गति अवगति अगमगति अपरम्पारा;
अरध गति उरधगति अखिल आतम आधारा।
महागति सद्गति त्रयगति बहु विस्तारा;
कालगति करतार कृष्ण बसुदेव कुमारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में गरुड गति गुन गाइए;
अंतरगति आराधिए तौ निर्भय गति कौ पाइये ॥ २७ ॥

गंगा यमुना गति समुद्र में जाइ समाई;
चन्द्रभागागति चारु चहूं दिस बाट चलाई।
करमगति करतार स्वर्ग पाताल पठावै;
भगति गति भगवान बल वैकुण्ठ बसावै।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में विबिधि गति विस्तरि रही;
सर्व गति को सुमिरता परमगति परचै भई ॥ २८ ॥

आदिपति अधिपति इंद्रापति अपारा;
ऊखपति अनिरुद्ध अखिल आतम आधारा।
महापति महीपति बागपति गुन विस्तारा;
सीतापति श्रीपति स्यामसुन्दर सुकुमारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में गनपति फनपति गाइए;
गोपति भूपति गोप ता लीलापति लव लाइए ॥ २९ ॥

रमापति रतिपति राम रघुनाथ उदारा;
कमलापति कुलपति कृष्ण बसुदेवकुमारा।

रघुपति जदुपति रूप सर्व सुरनर-मनरंजन;
भृगुपति मृगपति भूप भगतबछल भवभंजन।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में त्रिभुवनपति गुन गाइए;
विद्यापति वैकुण्ठपति कौसलपति कौं पाइए ॥ ३० ॥

परजापति पसुपति प्रानपति प्रानअधारा;
ब्रजपति अजपति बिष्णुवैष्णव-हरन-विकारा।
दिगपति बिगपति देव दानव पति दान उदारा;
सुरपति नरपति साधसभापति सुखपति सारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में विश्वपति विस्तरि रह्या;
सर्वपति को सुमिरता परमपति परचै भया ॥ ३१ ॥

आदि मारग असमान अनत मारग अवतारा;
सनमारग सनकादि बाममारग बिचारा।
महामारग मेरदण्ड वेदमारग विस्तारा;
राजमारग बड़राज राम रघुनाथ उदारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में ज्ञान मारग गुन गाइए;
भगति सागर भगवंत कौ भूरि भाग तै पाइए ॥ ३२ ॥

धर्म मारग खड्गधार कर्ममारग कछु नाहीं;
साध मारग सिरताज सिद्ध मारग मनमाहीं।
जोग मारग जोगेंद्र जोगि जोगेश्वर जानें;
हरि मारग हरिराय वेद भागवत बखानें।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में बिबिध मारग विस्तरि रह्या;
सर्व मारग को सुमिरता परम मारग परचै भया ॥ ३३ ॥

आदि आसन असमान अनतआसन अवतारा;
सेषासन सुखसेज स्यामसुन्दर सुकुमारा।
महाआसन प्रकृति विस्व आसन विस्तारा;
राजासन बड़राज इन्द्र आसन अधिकारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं गरुडासन गुन गाइए;
पद्मासन परसिद्ध को दरसन परसन पाइए ॥ ३४ ॥

रतनासन रघुनाथ राम राघव रघुराई;
कनकासन करतार कृष्ण कल्यान कन्हाई।

जोगासन जोगेन्द्र जोगि जोगेश्वर जानैं;
बड़आसन वैकुण्ठ वेद भागवत बखानैं।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं ब्रह्मासन बिस्तरि रह्या;
सर्व आसन को सुमिरता परम आसन परचै भया ॥३५॥

आदिछत्र असमान अनन्तफन छत्र अपारा;
अमृतश्रावी छत्र अखिल आतम आधारा।
महाछत्र वैकुण्ठ मेघछत्र मङ्गलकारी;
पत्र छत्र परसिद्ध पाप परचंड प्रहारी।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं गोवर्द्धन छत्र गुन गाइए;
सहश्र छत्र स्वरूप कौ दरसन परसन पाइए ॥ ३६ ॥

स्वेत छत्र सिरताज सर्व सुरनर सिंगारा;
अरुन छत्र अधिकार अटल अविचल इकतारा।
पीत छत्र परसिद्ध प्रगट पूरन परकासा;
कृष्ण छत्र कलपत्र दरस पावे निजदासा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में वृक्षछत्र विस्तरि रह्या;
सर्व छत्र को सुमिरता परम छत्र परचै भया ॥ ३७ ॥

आदि चमर असमान अनंत चमर अपरंपरा;
धर्म चमर जसचमर अखिल आतम आधारा।
सेस रसन सब चांवर स्यामसुन्दर सुकुमारा;
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं बिबिधि चमर विस्तरि रह्या;
सर्व चमर को सुमिरता परम चमर परचै भया ॥३८॥

आदि संख दरिद्र अनंतकबू अवतारा;
पंचायन पांचजन्य दाहिनावर्त दानि उदारा।
महाजलमई संख वेद वायक विस्तारा;
समुद्र संभव संख-सब्द सुर संभु संहारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं बिबिधि संख विस्तरि रह्या;
सर्व संख कौ सुमिरता परम संख परचे भया ॥ ३९ ॥

आदि चक्र अरेंद्र अनंत हरि चक्र अपारा;
सहश्र धारा चक्र सुदर्शन सत्रु-संहारा।

महातेजमय चक्र महामहिमा बिस्तारा;
कालचक्र करतार कृष्ण बसुदेवकुमारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं अकडमचक्र गुन गाइए;
षटचक्र नवचक्र खोजिए तौ षडबिस कनै पाइए ॥४०॥
गोपचक्र गोपाल गोप गोवर्द्धनधारी;
देवचक्र दातार पाप—परचंड—प्रहारी।
ज्योतिचक्र जगदीश जोगि जोगेश्वर जानैं;
सिशुमार चक्र स्वरूप वेद भागवत बखानैं।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं बिबिध चक्र बिस्तरि रह्या;
सर्व चक्र को सुमिरता परमचक्र परचै भया ॥ ४१ ॥
आदि गदा अवलंब ओजमय गदा अपारा;
असनिगदा असमान अजितप्रिय प्रानअधारा।
महागदा बलमस्त बिस्फुलिंगे विस्तारा;
कौमुदकी कराल कुष्मांडक क्षयकारा।
तत्त्ववेत्ता त्रयलोक मैं बिबिधि गदा विस्तरि रही;
सर्व गदा को सुमिरता परमगदा परचै भई ॥ ४२ ॥
आदि पदम उरबास पदम पदमा अवतारा;
षटगुन पदम खरारि अखिल आतम आधारा।
महापदम मुखपदम वेदबानी विस्तारा;
हस्तपदम पदपदम हरन—संताप—हमारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं विश्व पदम विस्तरि रह्या;
सर्व पदम को सुमिरता परम पदम परचै भया ॥ ४३ ॥
आदि धनुष असमान राम राघव अवतारा;
काल धनुष करतार कोटि कलिमल क्षयकारा।
महाधनुष महाराज महामहिमा विस्तारा;
सरँग धनुष सुदेव—सत्रु रावन संहारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं बिबिध धनुष बिस्तरि रह्या;
सर्व धनुष को सुमिरता परम धनुष परचै भया ॥ ४४ ॥
आदि वाण संधान अवधि मंडन अवतारा;
उग्रबान अमोघवान अखिलआतम आधारा।

महाबान परकिरति विघ्न वेधन विस्तारा;
कर्मबान करतार कृष्ण वसुदेवकुमारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं बिबिध बान विस्तरि रह्या;
सर्व बान को सुमिरता परम बान परचै भया ॥ ४५ ॥

आदि असि आकाश अस्त्र ईश्वर अवतारा;
अगनिझाल असिधार असुर बनदहन अपारा।
महाअसि महाराज विद्याधर गुन विस्तारा;
ईसजुगत असिराज अटल अबिचल इकतारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं बिबिध विस्तरि रह्या;
सर्व असि कौ सुमिरता परम असि परचै भया ॥४६॥

आदि चरम अज्ञान चरम संभल अवतारा;
आच्छादन घोराषि अखिल आतम आधारा।
महाचरम अभिमान चरम माया बिस्तारा;
सहश्र चरम सतचन्द्र स्यामसुंदर सुकुमारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं बिबिधि चरम विस्तरि रही
सर्व चरम को सुमिरता परम चरम परचै भई ॥ ४७ ॥

आदिदंड भुजदंड आतमादंड अपारा;
दौरदंड दातार दान वरदान उदारा।
महादंड मेरुदंड महामहिमा बिस्तारा;
राजदंड जमदंड सहत साकत संसारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं ब्रह्मदण्ड विस्तरि रह्या;
सर्व दण्ड को सुमिरता परम दण्ड परचै भया ॥ ४८ ॥

आदि पास आसपास आतमापासि अपारा;
पसुपास परलंब पाप-परचंड-प्रहारा।
महापास मनपास पास माया विस्तारा;
करमपास करतार कोटि वसुदेव कुमारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं ब्रह्मपास विस्तरि रही;
सर्व पास को सुमिरता परम पास परचै भई ॥ ४९ ॥

आदिवज्र अविनाश इन्द्र कर बज्र अपारा;
असनिबज्र असमान अखिल आतम आधारा।

महावज्र जम रूप बज्र वायक विस्तारा;
कालवज्र करतार कृष्ण वसुदेवकुमारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक मैं बज्र पंजर विस्तरि रह्या;
सर्व बज्र को सुमिरता परम बज्र परचै भया ॥ ५० ॥

आदि परम असमान अनंत परसा अवतारा;
परसराम की फरस पापिष्ट प्रान-प्रहारा।
महापरस महामूति महामहिमा विस्तारा;
पीयापरस प्रसिद्ध प्रान के प्रानअधारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुंलोक मैं बिबिध परस बिस्तरि रही;
सर्व परस को सुमिरता परम परस परचै भई ॥ ५१ ॥

आदिसूल तिरसूल सूल संभू अवतारा;
त्रिविधि ताप त्रिसूल त्रिगुन त्रिसूल तुम्हारा।
महासूल तिरसूल सूलमाया विस्तारा;
तीन काल त्रिसूल सर्व-सुर-नर-संहारा।
तत्त्ववेत्ता तिहुँलोक में त्रिबिधि तिरसूल विस्तरि रह्या
सर्व त्रिसूल कौ सुमिरता परम त्रिसूल परचै भया ॥५२॥
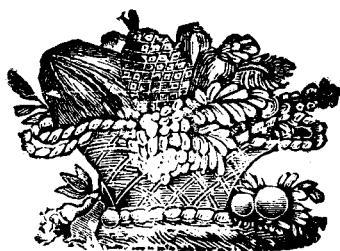
श्रीवृन्दावनदेवजी

* छप्पै *

श्रीआचार्य रस गायक लीला श्रीहरि;
वरन्यो विविध विहार प्रेम सेवा सर्वोपरि।
सर्वशास्त्र को तत्त्व सोधि रस में मन सान्यो;
पादपद्म तजि दंपति संपति अन नहिं मान्यो।
श्रीवृन्दावनशरणदेव आचार्यराज राजत जहां;
प्रगट धर्म धरि रूप भूमि पर सत्युग आनत तहां।

श्रीपरशुरामदेवजी के शिष्य श्रीहरिवंशदेवजी सलेमावाद में ही विराजमान रहे, पश्चात् इनके शिष्य श्रीनारायणदेवजी गद्यारूढ़ हुए। जब महाराणा प्रतापसिंहजी की प्रबल-शक्ति से बादशाही-सेना पूर्णतः पराजय हो चुकी तो उदयपुर बसना प्रारम्भ हुआ। कुछ दिन पश्चात् महाराणा परलोक-प्रवासी होगये और इनके पुत्र महाराणा जगतसिंहजी गद्दी पर आरूढ़ हुए। उसी समय श्रीनारायणदेवजी सम्भवत' महाराणा के निमंत्रण से सं० १६५० में उदयपुर पधारे। राजा ने वहीं रहने की आग्रह की, और श्रीवाईजीराज के कुण्ड पर स्थान निर्मित कराकर सेवा खर्च के लिये कुछ जमीन भी अर्पण की। श्रीनारायणदेवजी के मुख्य दो शिष्य थे--श्रीवृन्दावनदेवजी और श्रीहरिदासजी। श्रीवृन्दावनदेवजी सं० १७५६ में सलेमावाद आगये, और भरतपुर-नरेश की प्रार्थना से भरतपुर पधारे। श्रीहरिदासजी सं० १७८१ के लगभग कुंड-स्थान में ही महंताई प्राप्तकर गद्दी पर विराजे। वहां इनके सेव्य-ठाकुर श्रीनवनीतरायजी अद्यावधि पर्यंत विद्यमान हैं। श्रीहरिदासजी के दो शिष्य हुए, श्रीईश्वरीदासजी और श्रीप्रयागदासजी। श्रीईश्वरीदासजी को सं० १८०६ में कुंड-स्थान की महंताई मिली और श्रीप्रयागदासजी ने उदयपुर में एक अन्य स्थान स्थापित किया, जो स्थल-स्थान नाम से प्रसिद्ध है। सं० १७०० के लगभग श्रीवृन्दावनदेवजी दीक्षित हुए। ये राजपुताना-अंतर्गत ही किसी गौड़ ब्राह्मण-कुल में प्रगट हुए थे। अनेक प्राचीन महात्माओं के समान इनकी भी परिचय-संम्बन्धी विशेष बातें उपलब्ध नहीं होतीं। इनकी शिष्या एवं प्रसिद्ध महाराजा श्रीनागरीदासजी (कृष्णगढ़ाधिपति) की बहिन श्रीसुंदरिकुँवरिजी द्वारा निर्मित मित्रशिक्षा-नामक ग्रंथ में एक प्रेत के प्रसंग से भक्तिपूर्ण एवं चमत्कारिक सिद्धि

शक्ति का पता चलता है—उसीसे यह भी विदित होता है कि, आप शिष्य एवं संतों की जमात को लेकर हिन्दुस्तान के समस्त तीर्थों में भ्रमण किये थे। वह प्रसंग इस प्रकार है—

'श्रीप्रभूजू एक समय तीर्थन जात्रा काज; भये पधारत संग लै निज वैष्णवन समाज।' एक समय आप शिष्यों एवं वैष्णवों को लेकर तीर्थ-यात्रा में पधारे। अनेक तीर्थों में परिभ्रमण करते हुए पंजाब-प्रांत में पहुँचे। एक दिन मार्ग चलते-चलते संध्या होगई, वहीं उस रात्रि में विश्राम के लिये पड़ाव रखने का निश्चय हुआ; क्योंकि वह स्थान ग्राम से कुछ दूर अलग एक प्राचीन विशाल-कोट से घिरा हुआ रमणीक उद्यान था। जब अर्द्धरात्रि का समय हुआ तो बगीचे के एक बुर्ज में से किसी के कराहने का शब्द सुनाई दिया। अत्यंत दुखी मनुष्य के दुःखद वेदनाभरे शब्द को समझकर मोकाम में से कइएक वैष्णवों नें वहां जाकर सर्वत्र देखा कहीं भी कोई मनुष्य नहीं पाया, बहुत ही खोज करने पर वहां उन्होंने क्या देखा कि, बुर्ज के अंदर दिवाल में एक कील गड़ी हुई है—उसीमें से वह शब्द निकल रहा है। इन्होंने उस कील को उखाड़ दी, पश्चात् शब्द होना बंद होगया। वे वैष्णव पुनः आश्रम में आकर सो गये। कुछ देर में इन्होंने देखा कि भैंसा आदि जानवर एवं सफेद-वस्त्रधारी मनुष्य, प्रगट होकर अन्तरीक्ष हो जाते हैं इन्होंने इस भयंकर कांड को देख, भयभीत होकर, श्रीवृन्दावनदेवजी महाराज के निकट आकर देखे समस्त कांड को वर्णन किया। इन्होंने प्रेत-बाधा समझकर कहा कि 'डरो मत' एवं जल को हाथ में लेकर आमंत्रित किया और उसी दिशा में मारा, जिस दिशा में वह दृष्टिगोचर हुआ था। वह पुनः दिखना बंद होगया। जब समस्त वैष्णव सो गये तो वह मनुष्य-रूप धारण करके इनके निकट आया और श्रीचरणों में दंडवत् करते हुए प्रार्थना की कि—'महाराज! मैं प्रेत हूँ, प्रथम मैं यहां बहुत ही उत्पात किया करता था इसीलिये किसी गुणी ने मुझे मंत्र द्वारा किलकर बाँध दिया था, इसी कारण मेरे शिर में असह्य वेदना हुआ करती थी, और उसीसे मैं चिल्लाता था। आपने पधार मुझे उस दुख से निवृत की, अब अपने ही शरण में हमें भी रखिये। मैं आप एवं वैष्णवों के सामान को मार्ग में ले चलूंगा और आज्ञानुसार जो हमसे हो सकेगा सेवा-कार्य्य भी करते रहूँगा।' उस प्रेत के विनय को श्रवणकर इन्हें दया आई और उसके इस निश्चय विचार पर अति प्रसन्न हुए।

और आस्वासन दिये कि तुझे संग रखेंगे। सबेरा होतेही इन्होंने सब वैष्णवों को वृतान्त सुनाया और कहा कि—"वह हमारे संग रहेगा और तुम लोगों की सेवा करेगा उससे डरना मत। मार्ग में सामान लेकर चलतेसमय सामान तो दिखेगा और वह नहीं!"सबने हर्ष प्रगट किया और इस कौतूहल को देखने के लिये बहुत ही उत्सुक हुये। वह प्रेत उसी प्रकार कार्य्य करते हुये समस्त यात्रा में संग रहा। आश्रम पर आने के पश्चात् श्रीमहाराज ने उसके मोक्ष के लिये कुछ कर्मादिक करवाये; इससे उसका मोक्ष होगया और अनेक प्रकार प्रार्थना करते हुये दिव्यरूप से वह स्वर्ग को गया। आकाश मार्ग में उसकी तेजयुक्त ज्योति सबने स्पष्ट देखा।

आचार्यपाद के समस्त जीवन के चरित्रों का पूर्णरूप से पता न लगाना हम आचार्य्यचरणाश्रितों के लिये मंदभाग्यता का ही परिचय है। सलेमाबाद के अधिकारीगणों से भी प्रार्थना करने पर इनका चरित्र पूर्णरूप से उपलब्ध नहीं हो सका। प्रसिद्ध श्रीसुन्दरिकुंवरिजी, श्रीनागरीदासजी (सावन्तसिंहजी) की बहिन इन्हीं की शिष्या थी। इनके पश्चात् श्रीगोविन्ददेवजी उपनाम रसिकगोविन्दजी सलेमाबाद को गद्दीपर विराजमान हुये। इनके द्वारा निर्मित समस्त वाणी वृन्दावन एवं सलेमाबाद में सुरक्षित हैं। जिसका नाम श्रीकृष्णामृतगङ्गा है। कुछ पद नीचे दिये जाते हैं—

[राग—देवगन्धार]

आज अति प्रमुदित-सागर नन्द।
जशुमति-उदर प्राची दिशहीते उदय भयो श्रीगोकुलचन्द ॥
असुर-तिमिर गए सुदित भए हैं, उडुगन ब्रजजनवृन्द।
'वृन्दावन' प्रभु भक्त-चकोरनि, मिटे सकल दुखद्वन्द ॥१॥

[राग—विभास]

ब्रजरानी की गोद विनोद करैं हरि मोद भरि यों लडावति मैया।
नए गावति गीत नचावति दै कुटकी तिहिं जो तिहुँलोक नचैया॥
समात न नन्द आनन्द में देखि सुतै सु मनोरथ पुन्यो है दैया।
कबहुँ दिन ह्वै है बहुमोल लला सु 'वृन्दावन' जैहैं चरावन गैया॥२॥

[राग—रामकली]

आँगन खेलत बालगोविंद।
इन्द्र नीलमनि वरन स्याम तन नखशिष आनँदकंद॥

बिथुरि रही शिर कुटिल-लटूरी मृदु-मुसकत मुखचंद।
घुटुरन चलत किंकिनी नूपुर बाजत मंदहि मंद॥
थिर ह्वै रहत किलकि रिंगत अति निरखि जशोमतिनंद।
'वृन्दावन' प्रभु अद्भुत लीला गावत चारो छंद॥३॥

[राग-देवगंधार]

चलौ किन देखौरी ! गोविंद।
मुरली अधर धरे तिरभंगी मृदुमुसकत मुखचंद॥
लालपाग की झलक अलकपर अलक मनोभवफंद।
भौंह कुटिल दृग मंजुकंज से निरखि मिटे दुख द्वंद॥
पीतझगा झीने में झलकत स्याम-अंग-छवि अनुपम चंद।
'वृन्दावन' प्रभु सो सुत जिनके धन्य जसोमति नंद॥४॥

[राग-पंचम]

चलौरी ! चलौ लालहिं देखैं।
कोटि काम अभिराम स्याम तन निरखि नैन फललेखैं॥
मदगयंद गति आवत ह्वै हैं वंसी अधर धरै।
नितनवरंगी ललितत्रिभंगी नटवर वेश करै॥
हम तन हेरि फेरि नीके सुनि नइ-नइ तान सुनैहैं।
'वृन्दावन' प्रभु नेह को नातौ नैन की सैन जनैहैं॥५॥

[राग-पंचम]

आज सखी ! वनते वनि आवत गावत स्याम सखागन में।
गति-गंजित मत्त गयंदहु की लखि कौन रहै अपने पन में॥
पगिया शिरलाल रही झुकि भाल सुपीत झगा झलके तन में।
उपजी उपमा मन में इक यों सु मनौं चपला लपटी घन में॥
घुँघुरारी लटैं लटकें मुख ऊपर रंजित है रज गोधन में।
चित्रलिखी सी रही हौं निहारि 'वृन्दावन' प्रभु वृन्दावन में॥६॥

[राग-परज]

लयो चित चतुर विहारी चोरि।
लाल पाग रहि लटकि भालपर ठाढ़ो ब्रज की खोरि॥
एकदिना सखी ! रोकि रह्यो मग गयो मेरी वहियां मरोरि।
बस कीनी उनि रसिक आपने बाँधि प्रेम की डोरि॥

तादिन ते मैं सुजन वंधुपति सवसों डारी तोरि।
'वृन्दावन' प्रभु हाथ विकानी कहौ कोउ बातै कोरि ॥७॥

[राग–कानड़ी]

लोइन लागने लाल तिहारे देखत ही हरे नैन हमारे।
खंजन मीन कुरंग सरोरुह जिनकी कटाच्छ पै वारे॥
ब्रजजुवतीजन–मन हरिवेको विधिमनौ टोन सँवारे।
'वृन्दावन' प्रभु मोल लई विन दामन कान्हर कारे ॥८॥

[राग–वृन्दावनी काफी]

लाल ! भुलाए सेडोलत कहूँ के सोचि विचारि सँभारि के वोलो।
वे कोउ औरहि जानौ वधू जिन सो हँसि बोलि के आँखिन घोलौ॥
उनकौ सनमान करौ,तुम्हे दान वे देहैं सही उनसौ मन खोलौ।
'वृन्दावन' प्रभु, वैसी नहीं हम घेरी घिरैं इतनौ कहा जोलौ ॥९॥

[राग–कानड़ी]

जय जय गोकुल राजकुमार रसिक–भक्तनजन प्रानअधार।
ब्रज खंजननैनी,द्रग—अंजन राधाउर मर्कत—मनिहार॥
ब्रजरानी लोचन जुग तारक वारक निज जन विघ्न अपार।
योगी–जन–मन अंजन मंजन नामहीं भंजन पाप–पहार॥
विधि शिव ईश मान जब गुरु करैं प्रिय–पायन परैं वारम्बार।
'वृन्दावन' प्रभु निगम अगमहू सुगम भयो ब्रज में वसि प्यार ॥१०॥

[राग–षट]

देखिरी ! छवि मदनगोपाल की।
जरकसी–पाग पर छीए परभाग को लसत मनिपेच सखी ! मिले दुति भाल की॥
थिरकि रही चन्द्रिका चारुता पर अरी, हरति मुसकानि मन लोचन विसाल की।
जलज दुलरी ग्रीव मंजु गुंजावली पुंज गुंजत अलीवास बनमाल की।
करन कुंडल कनक कटक हीरा जटित मिली धुनि नूपुरनि किंकिनी जाल की॥
'वृन्दावन' प्रभु की रूप–माधुरी जीव जीवनि इहै सकल ब्रजवाल की ॥११॥

[राग–कल्याण]

आज मैं देखेरी ! राधा–रवन।
कोटि गुनी सोभा वाहूते सुनी हुती जैसी श्रवन॥
अंग-अंग में वसत मोहनी वरनि सकैकवि कवन।
अब 'वृन्दावन' प्रभुविन छिनहू मोहि सुहात न भवन ॥१२॥

मुसकाइ के तैं वृषभानु-सुता वलि ! मोहन पै कछु कोहनी डारी।
राधाइ राधा रटे न हटै छिन देखन ठाट ठटै गिरिधारी॥
मोसो जतावन तोसो कह्यो सब तू उन उत्तर देत कहारी !
'वृन्दावन' प्रभु जोरी वनी अब वे घनस्याम तू गोरी महारी !१३॥

[रागौ-गरी]

प्रीति नई उरमाँझ जगी पिय नैननि तेरिय चाह लगी है।
देखे बिना पलकौ न लगे पल देखे ते लागि रहैई ठगी है॥
तेरोइ ध्यान रहै निसिवासर और सबै चित्त चाह भगी है।
'वृन्दावन' प्रभु के मन माननि तेरिय मूरति जाय खगी है॥१४॥

[राग-कानड़ी]

प्रेम को रूप सु इहै कहावैं।
प्रीतम के सुख सुख अपनो दुख वाहिर होत न नेक लखावै॥
गुरजन वरजन तरजन ज्योंज्यों त्योंत्यों रति नित-नित अधिकावै।
दुरजन घर-घर करत विनिंदन चंदन सम सीतल सोउ भावै॥
पलक ओटहू कोटि वरस के छिनक ओटि सुख कोटि जनावै।
'वृन्दावनप्रभु' नेही की गति देही त्यागि धरै सोइ पावै॥१५॥

[राग-टोड़ी]

डस्यो दृग-नागिनि-कारी तिहारी।
रोम-रोम गयो व्यापि प्रेम-बिष घूमत लहरन लेत बिहारी॥
करि-करि कोटि उपाय पचि हारे क्योंहू जात न विथा सहारी !
चलि 'वृन्दावनप्रभु' उपाय करि वंक विलोकनि मंत्रमहारी॥१६॥

[राग-ललित]

तो मुख-चंद किधों अरविंद सो दृग धोखे परेइ रहैरी !
देखन को अति आतुर हैं सु इन्हैऊ चकोर के भौंर कहैरी !
ए सब प्रेम मनौ इनही बस मोहू लिए फिरैं गैल गहैरी !
'वृन्दावन' प्रभु रोके रहै नहीं धाइ परै जब तोहि लहैरी !॥१७॥

[राग-गौड़सारंग]

तुव मुख देखि-देखि हौं जीवत।
दूरहि भए चकोर चंद लो रूप-सुधा-रस पीवत॥

ए दृग लगे पगे तोही सौं आन सुपने नहिं छीवत।
'वृन्दावन' रानी भयो तोपर टूक-टूक मन तो गुन सीवत॥१८॥

[राग-हमीरकल्याण]

प्यारी ! तेरे दृग जुग खंजन नंदन।
अति चंचल मुख-मंजु-कंज पर नाचत है दुखकंदन॥
भृकुटी काम नरिंद फंद मनौ रच्यो इनही हित फंदन।
'वृन्दावन' प्रभु दृगखंजनहू विधए इन करि छंदन॥१९॥

[राग-धनाश्री]

वसी तुव मूरति नैननि मेरे।
कैसे चैन परै प्यारी ! अब भली भाँति विनु हेरे॥
तनक किरिकिरी खरकति सो तो नखशिष भूषन तेरे।
'वृन्दावनप्रभु' नेह अंजन ते खरकति और घनेरे॥२०॥

[राग-विहागरो]

जब जब लाल ! निहारौं तोहि।
तुमहौ वे हौ हौं इह इह कछु नाहि रहति सुधि मोहिं॥
तन, मन, श्रवन, रसन, इन्द्रिन गति रहति जु दृगनि समोइ।
'वृन्दावन' प्रभु प्रेम-तरंगनि कहूँ जो कहन की होइ॥२१॥

[राग-नायकीनट]

तुमविनु दृगन सुहात न और।
नींद रैन दिन वसी रहतही वाहू को नहिं ठौर॥
अब कैसे फीको जग भावत चाखे रूप सलोने कौर।
'वृन्दावन' प्रभु सुरझत नाहीं परे प्रेम के झौर॥२२॥

[राग-पूरबी]

नेह निगोड़े को पैड़ोही न्यारौ।
जो कोइ होय के आँधौ चलै सु लहै प्रियवस्तु चहूँघां उजारौ॥
सोतो इतै उत भूल्यो फिरै न लहै कछु जो कोउ होय अँख्यारौ।
'वृन्दावन' सोइ याको पथिक है जासो कृपाकरैं कान्हर-प्यारौ॥२३॥

[राग-कनड़ी]

इन सोचन लोचन होत संवारौ।
को मिलिवे कवकौ नवभांति मिलै मनमोहन प्रानपियारो॥

असन, वसन, तन, धन, जीवन सब वा विन लागत आक सौं खारो ।
'वृन्दावन' प्रभु जीजै कौन विधि ? पैंडे पर्‍यो विरहा बजमारो ॥२४॥

[राग–पूरिया]

ह्वै गयो छिन में तनु जो परायो ।
मोहि वेचि पर हाथ अनाथलौं साथ फिरत आपुहि अव धायौ ॥
सदा संग ही रहत मित्र हो तनक तरस याको नहिं आयो ।
'वृन्दावन' अब कोउ न काहुकौ सुख पायो जब निज जिय भायो ॥२५॥

[राग–रामकली]

दृगनि के साथ ह्वै विकानो परहाथ,
इह दीजै काहि दोष कहौ कौन पै पुकारिए ?
भूल्यो धन धाम अब कहांघन स्याम आली !
बिना काम देह यों वियोग भागि जारिए ॥
'वृन्दावन' प्रभु कहुँ नेकहू निहारिए–
सु तन, मन, धन, प्रान वारि–वारि डारिए ॥२६॥

[राग–श्रीटंक]

सुकुमार सिवार से मर्कत तारसे कज्जलसारसे वारनिवारि सुकावति वाला ।
मार के जार सिंगार के चौर से एड़ी छिए पुनि ऐसे विसाला ॥
स्याम–घटा ते मनौ निकसे मुखचंद दिए तन दामिनि––माला ।
'वृन्दावनप्रभु' ओट भए लखि पानि परी सुत नंद के लाला ॥२७॥

[राग–मालकौशिक]

प्रानप्यारी मुख-कंज लाग्यो रूप–सरवर ।
हरि मन–मधुकर सुरति लगाए परिभव भ्रमत रहत वाही वाही पर ॥
गुरुजन भीतिनि सकुच्योइ रहत अति मुकुलित होत देखिर पिय दिन कर
'वृन्दावन' जाको सोभा मकरंद गंध फैलि रह्यो दशौदिसि घर घर ॥२८॥

[राग–मालकौशिक]

देखौ-देखौ लाल-छवि लाड़िली अनूप की ।
छुटि रही लटा मानौ दामिनी की छटा अटापर उनई सुमानौ घटा रूप की ।
वरषत सरस त्योंही त्यों विरही सरसन ललित लता नवीन पंचसर भूप की ॥
'वृन्दावन' प्रभुचख चातकनि देत मोद रची विधि हरन हारिविरह दुख, धूपकी ॥

[राग-देवगधार]

देखो, अचरज कनकलताचल तापर पूरनचंद ।
नीलनलिन तापर द्वै राजत तिनपर दोइ मिलिंद ॥
नीके चम्पकली इक सोहति तातर विंवी दोय ।
तिन मधि दमकति बीजदाड़िमी तरे अंब-फल जोय ॥
तातर द्वै लागति अति नीके अरन जु नलिन सनाल ।
तिनमधि द्वै श्रीफल भल दीसत तिनतर बेलि सिंवाल ॥
ताके मूल अलौकिकवापी बँधी कनक सोपान ।
तातर द्वै कदली द्वै तिनपर कनक केतकी कली समान ॥
तिन तर द्वै पुनि कमल अधोमुख तिन दल पर दस इंद ।
'वृन्दावन' प्रभु बनमाली जिहिं रस सींचत गोविंद ॥३०॥

[राग-पंचम]

हरि नाचत गोप-वधू-मधिमंडल कुंडल लोल कपोलनि में ।
उघटे गति भेद अनेक अनेक सु मोहत है मन वेलनि में ॥
सुंदरताई कहां लो कहौं उपमा नहि आवति तोलनि में ।
नैन वही रससा भए डोलत 'वृन्दावन' प्रभु डोलन में ॥३१॥

[राग-कनड़ी]

नाचत मोहन मंडल महिंयां ।
जमुना पुलिन नलिन वन फूले मंद पवन वंसीवट छहियां ॥
लेत हैं यों आतुर अड़वाई जानति सबै गहै मो वहियां ।
'वृन्दावन' प्रभु अद्‌भुत लीला तिहुँ पुर में देखी नहि कहियां ॥३२॥

[राग-षट]

रास-मंडल रच्यो रसिक—हरि-राधिका तरनिजा-तीर वा नीर कुंजे ।
फूले जहां नीप--नववकुल कुल मालती माधुरी मृदुल-अलि-पुंज गुंजे ॥
सुमन के गुच्छ अति सुच्छ चल वातवल तरु मनो चहुँदिशि चांवर करहीं ।
करत इवसारि शुक पिक सु नाना विहंग नचत केकी अधिक मनहि हरहीं ॥
त्रिगुन जहां पवन को गवन नितहीं रहत बहत स्यामल तटनि चलत रंगा ।
विबिध फूले कमल कोक कलहंस-कुल करत कल कुणित अरु जल विहंगा ॥
हेममंडल रचित खचित नाना रतन मनहु भूकरन कुंडल विराजै ।
वंस वीनादि मुहचङ्ग मिरदंगवर सवन मिलि मधुर-धुनि एक बाजै ॥

नचतरसमगन वृषभानुजा गिरिधरन वदन छवि देखि सुधि जात रतिमदन की।
मुकुट की थरहरनि पीतपट फरहरनि तत्त थेईथेई करनि हरनि सब कदन की॥
दशनि दमकनि हँसनि लसनि अंग अंग की अधरवर अरुन लखि उपम को है।
दृग जलज चलनि ढिग कुटिल अलकनि झुलनि मनहुं अलिकुलन की पाँति सोहै॥
लाग अरु डाट पुनि उरप उरमेइ तिरप एक एक गति लेत भारी।
करत मिलि गान अति तान बंधान सो परस्पर रीझि कहैं वाऱ्यो वारी॥
चारु उर-हारवर रतन कुंडल-ललित हीरवर वीर श्रवननि सुहाई।
नील-पट पीत-तन गौर स्यामल मनौ परस्पर घन औ दामिनि दुराई॥
सखी चहुँ-दिसि बनी कनक-चंमकतनी चन्द-वदनी इक एक ते आगरी।
वचत मंडल किये चित्त दुहुंतन दिये भूलि गई सकल अप अपनी सुधि नागरी॥
रमत इहि भाँति नित रसिकसिरमौर दोऊ संगललितादि लिए सुघरि सुंदरि अली।
मनसि 'वृन्दावन' वसहु जीवनिधना ब्रजराजसून वृषभानुजू की लली॥३३॥

[राग-कनड़ी]

नाचैंरी ! दोउ वाहां जोरी।
इत नँदनँदन रसिक लाड़िलो उत वृषभानकिसोरी॥
गौर-स्याम भुज गहैं परस्पर निरखि उपम उपजत मति मोरी।
सोभा-सर लाल नीलकमल मनौ मिले करत झकझोरा झोरी॥
मुकुटलटक पट चटक कटक कर चरन पटक मृदंग गति बोरी।
तत्त खिरिरिरि तात न न न न सखी सुघरि उघटति चहुँ ओरी॥
अलापत रागिनी राग तान श्रुति लागि रही एकैसुर डोरी।
'वृन्दावन' प्रभु धुनि सुनि थिर चर मोह्यो जात न कोरी॥३४॥

[राग-काफी]

वैठि तहां मिलि गावन लागे।
वीरी खाय खवाय परस्पर तान मान सुनि अति अनुरागे॥
मूर्च्छना रचना श्रुति धारि भए थिर जंगम थावर जागे।
'वृन्दावन' प्रभुरीझि अपनायौ भूलि गए दंपति-रस-पागे॥३५॥

[राग-केदारो]

दूध को उफान को उफान ऐसो मान कीजै भामिनी।
वैठें कुंज-भवन रवन गवन कीजै वीती जात बात नहिं छोटी मधुजामिनी॥

तोबिन बिन सलोनो सब लागति अलोनी सौंज यद्यपि निकट हैं अनेकसत कामिनी
'वृन्दावनप्रभु' संग तूही यों विराजति है जैसे हेममानिक औ स्यामघनदामिनी ॥३६

[राग-कल्यान]

कोप किए नित कौन बड़ाई।
जनमहि ते जानो मेरी स्वामिनि बैठी ए बैठी तू मौन कमाई ॥
कोऊ पढ़ी रस रीतिऔ नीति सुप्रीति की रीति जु गौर बताई।
तो कौं तऊ ठकटेरे ज्यों भामिनि है दिन जामिनि ऐसी सुहाई ॥
'वृन्दावनप्रभु' सो कहिए कहा ऐसी अनोखी सो प्रीति लगाई ॥३७॥

[राग-परज]

निपट कपट की खोनि कन्हाई।
मेरी सी मोसौं तेरी सी तोसौं यह न मिटिहैं बानि ॥
काहू सौं भेठ सहेट काहू सौं काहू सौं नई पहचानि।
'वृन्दावनप्रभु' वहु नायिक सो कोनौं नेह अजानि ॥३८॥

[राग-पुरिया]

लड़बावरी लाल करी अतिही लग लागत देति न काहू को प्यारी।
तिहारी दुहाई न मनाई मनै हमतो चतुराई कै कै पचिहारी ॥
पीठि दिए सम्हैं नीठि हू डीठि करै न धरै चित बात हमारी।
पाँय छुएं अनखाय महा वहि भाइ सुहाय ठगोरी सी डारी ॥
सयानी कहै कि अयानी यहै नहिं जानि परै अति रूप उजारी।
'वृन्दावनप्रभु' देखौ तौ जाइ मनाइ इतौ रस पैहौ न भारी ॥३९॥

[राग-बिहागरो]

ज्यों-ज्यों करै प्यारी पिय त्यों-त्यों तू रुखाई देति
ज्यों-ज्यों परै पाइँ तू ठठ्स ह्वै रहति है;
लाल होत सन्मुख तब तूं बिमुख होति
करत उह बीनती कछु न तूं कहति है।
बिपरीत रीतिफल इहांई निहारि नीके
चंदन चंद चंदहू ते दाह तूं लहति है;
ऐसो हठ और नारी के निहार्यो मैं न
'वृन्दावनप्रभु' प्यारी जैसो तू गहति है ॥४०॥

[राग-वृन्दावन-काफी]

झूठ रु साँच को लीजिए और यों झूठीए बातनि क्यों अनखैए।
कला सबही में प्रवीन महा हौ अयानी पै होय जु ताहि सिखैए॥
पाँइ परै पिय देखि इतै बलि चूक परी गुनहगारी लिखैए।
'वृन्दावनप्रभु' भाँवती ह्वै अनभाँवती ह्वै मुंह कैसे दिखैए? ४१॥

[राग-अड़ानो]

प्यारी नाइ लई हरिप्यारे।
बचन-बचन बहु बिनय बीनतो निरखि अपनपौ सखीजन वारे॥
केलि सदन चल मुदित बदन ह्वै भुजा परस्पर अंसनि डारै।
'वृन्दावनप्रभु' दंपति-छवि देखैं ललिता राई लौन उतारै॥४२॥

[राग-काफी]

सुनोरी! सुनौ कान दै तान सखी! कहा गावति प्यारी बिहारी के संग?
बजावति बीन बिसाखा-प्रवीन कला-सलिता ललिता लै मृदंग॥
नाग्रदी नाग्रदी तत्ता ग्रदी था परनि परै दुहु आनि सुधंग।
'वृन्दावनप्रभु' दंपति रससंपति भरें वरषैं मिलि अद्भुत रंग॥४

[राग-विहागरो]

पाँव धारिए प्यारी बिहारी तिहारी निहारत बाट इतै दृग दीए।
मनोरथ रावरे पूरनकाज सु आज सिंगार बनाय के कीए॥
के हूँ के बैठे संकेत निकेत धरे इक आपको ध्यानजु हीए।
'वृन्दावनप्रभु' अकुलात ह्वै हैं न डरौ चलि हौ तुम्हैं छाने लीए॥४७॥

[राग-पूरिया]

अलीन के संग ह्वै कुंजगलीन चली पिय पै सजि प्रानपियारी।
धीरसमीर कलिंदजातीर पै बैठे जहां बलबीर बिहारी॥
शिखते नखलौं मुक्ता पहिरे अरु सारी सफेद रूपहरि किनारी।
तारनि वृन्द लिए चपला मुखचंदहि भेंटन आई कहारी!
फूलन सेज रची पचि आलि ने जाइ रही छवि सों उजियारी।
'वृन्दावनप्रभु' देखतही उठि धाय के आय भरी अँकवारी॥४५॥

[राग-विभास]

आज विराजत जुगलकिसोर।
अंग-अंग रति रंग सने दोऊ उठि बैठे सैय्या पर भोर॥

नैन मैन मद घूमत झूमत चारु चिकुर बिथुरे चहुँ ओर।
'वृन्दावनप्रभु' दंपति सुखसंपति हैं रतिपति रतिकी चितचोर ॥४६॥

[राग-विभास]

कैसे नीके लागत नवनागर गिरिधरन।
याही ते अधर अंजन रंजित कीने प्यारेलाल डीठि के डरन ॥
अरुन उनींदे नैन बोलत हौ आधे बैन ऐंडे बैंडे परत हैं रावरे चरन।
जानियतु आजु रैन जागे अनुरागे कहूँ आपुनि निज देवता को जागरकरन॥
पागकी ललाई भाल झलकत जावकसी अंगकी झलक पट भयौ नीलवरन।
'वृन्दाबनप्रभु' ही रिझावन किधौं मेरी रीझि लागे मनहि हरन ॥४७॥

[राग-विभास]

मन भावन आंगन पावन कीनौ।
दावन घावन आवन कै इत प्यारी रुठावन जावन दीनौ ॥
रूप रिझावन प्यावन सावन चावन सीरे किए दृग मीनौ।
'वृन्दावनप्रभु' गावन गावन गावत वाही को नेह नवीनौ ॥४८॥

[राग-ललित]

धरि नेमहि स्वारथ साध्यो किधौं तुम प्रेमहु सौं पहिचान करी है।
नखते शिषलौं कपटाई लै मूरति मोहनी डारि विरंचि धरी है।
वहि मोहनी मोहत डोलति है मुरली अधरामृत लै जु भरी है।
'वृन्दावनप्रभु' मोहै नहीं अस को सुर किन्नर नारि नरी है॥ ४९ ॥

[राग-विभास]

आज यहि बानिक की बलिहारी !
आलस-बलित ललित सोभित तन सुरति चिन्ह गिरिधारी ॥
अंजन अधर गंजन मधुकर-द्युति अरुन-सरोज बिहारी ॥
लटपटी पाग रही बाम भाग झुकि तापर पीत पिछौरी डारी ॥
रस पागे जागे निसि झपकत पलक अलक अनियारी।
मनहुँ राहु दुहुँ दिसि ससि ऊपर रह्यौ कर काढ़ि कटारी ॥
खंडित-बचन रचन उर मंडित अब हथियार सँवारी।
'वृन्दावनप्रभु' चारु-कपोल तँबोल की छाप विराजत भारी ॥५०॥

[राग–रामकली परज]

प्यारे बिन सुखद लगे दुख दैन।
लागत मलय-समीर तीर सौं चंद लग्यौ जिय लैन॥
असन बसन तन डसन भए सर मारत तनि-तनि मैन।
'बृन्दावनप्रभु' नैननि गोंड़नि चैन नहीं दिन रैन॥५१॥

[राग–पूरवी]

क्यों करि दिन भरिए बिन प्यारे ?
मनतौ साथ फिरत उनही के तन इत जियवै न्यारे॥
सुजन, बंधु, घर, असन, वसन ए सारे लागत खारे।
'वृन्दावनप्रभु' विरह धार में हमैं छिटकाय सिधारे॥५२॥

[राग–परज]

अंत उदासी भए ब्रजबासी तो नाहक प्रेम की डारी क्यों फाँसी ?
दासी करी जग हाँसी भई पै तऊ सुधि कोहू लई न विसासी॥
दई न दई है दया कवहूँ जिनको अब तेऊ हैं प्रेमप्रकासी।
'वृन्दाबनप्रभु' छाती तिहारी सी जो करे तो होय प्रेम की हाँसी॥५३॥

[राग–गौरी]

मदनगोपाल ! तेरे हित में गृह वित तजि दीन।
बिन देखे तेरी मूरति तलफौं ज्यों जल बिन छिन मीन॥
अलवेली तेरी वंक-बिलोकनि मो मन तौ हरि लीन।
'वृन्दावनप्रभु' सुध्यो विसारी महा कठिन हिय कीन॥५४॥

[राग–सोहनी]

आयो है बसंत भयो मोहि तो अनंत दुख
बिना कंत कैसे या असंत पै निवाहिए;
देखि-देखि हेली वेली द्रुमनि सो भेली फूली
हौं दीए अकेली एक यातें देह दहिए।
कोकिला मराल बानी लागति कराल अति
साल शेष लहति हिए का सों पीर कहिए;
'बृन्दावनप्रभु' तो निपट ही निर्दई दई
जाके हित एतो अपलोक सिर सहिए॥५५॥

[राग–इमन]

दुखतम दूरि भयो सब जीको।
बढ़्यो हर्ष वारिधि लौं सजनी बदन-इंदु लखि पीको ॥
सचुपायो अति नैन-चकोरनि बन सुलोम गन हीकौ।
'वृन्दावनप्रभु' उहडहौ कीनौ, बदन कुमुद सम नीकौ ॥५६॥

[राग–षट् वा वसन्त]

देखौ ! ब्रजराज-सुत किये नवसाज सखी ! रमत वृन्दाविपिन माँझ होरी।
इतहिं सुवलादि संग बने वहुरंग सने उतहि बनी अलिन लिए राधे गोरी ॥
पिचक की छिड़क रही चहुंओर पूरि के परस्पर भिरत मिलि रंगधारा।
मनहु सब सुख–सदन मदन के बाग में छूटत अनुराग अगनित फुहारा ॥
कबहु हरि घेरि मिलि लेत ब्रज सुंदरी कबहु वृषभानु की कुंवरि ग्वाला।
बदन लपटाय मृगमद सु चंदन दुहुनि बोलि हो होरी सब देति ताला ॥
बाल अरु लाल भए लाल गुल्लाल रँग वढ़ी तिहिं काल कछु छवि अपारा।
मनहु नहि मात जो गात रोम रोम ते उमड़ि चली नेम तजि प्रेम–धारा ॥
जबहि हरि भंटु कुट करन लागे वधू करन गहि कनक के दंड धाई।
मनहु चढ़ि दामिनिनि अगन सौदामिनी मुदित ह्वै श्यामघन घिर आई ॥
लचकें कचकुचनि के भार अति छीन-कटि तामें पुनि भरी अति रूप–भारा।
चलत–तार्टक अरु वंक अलकें छुटी थरहत उरनि पर मोतिक–हारा ॥
बजत कल किंकिनी चरन नूपुर मधुर फरहरत विविध अंचल सुहाए।
मनहुं वनि की सैन हरि पर चढ़ि वजत बाजे विविध बाने बनाए ॥
करन लगी मार पुनि उमगि अति प्यार सों ग्वार सुकुमार छल बल बचावैं।
लाति कोऊ कबहुँ जो कुटिल चितवनि सहित फूल सम मानि बहु मोद पावैं ॥
कुंज की धूरि अरु चूर कर्पूर कौ फिरत भरे सकल अप अपनी ओरी।
परत सब बिखरि के डगर अरु बगर में परस्पर करत झकझोराझोरी ॥
गावैं सबनारिमिलि गारि बहु भाँति की भर गगन पूरिरह्यो बहु गुलाला।
मदन मनो करन बस जुवति जुवजनन को डार्यो परवीन अनुराग जाला ॥
धाय पिय लाय उर लेत बनितान को प्रान सम पाय न छोड़त सुहायैं।
'वृन्दावनप्रभु' रसिक-कुल–मुकुट–मनि देत फगुआ जोव जाहि भावै ॥५७॥

[राग—काफी]

हो होरी खेलौंगी स्याम-सुजान सौं-गुन-गन-रूप-निधान सौं।
चोवा चंदन अतर अरगजा चरचोंगी बहु मान सौं ॥
बाजत ताल मृदंग चंग मन अटक्यौ मुरलीतान सौं।
निशंक हँसी सब लोग सखीरी ! क़ाम कहा मोहि आन सौं ?
भूलि गई तन मन सुधि सबही करी घायल दृगवान सौं।
याही मिस भेटौंगी सजनी 'वृन्दाबनप्रभु' प्रान सौं ॥ ५८ ॥

[राग—मलार]

ठाढ़े दोउ सघन कुंज की छहियां।
बड़ी बड़ी बूंदनि बरषत बादर मेलि रहे गरवहियां ॥
बहुत दिननि के बिछुरे बातनि करहु जेती मन महियां।
'वृन्दाबनप्रभु' चाहत है नित ऐसी बनै विधि कहियां ॥५६॥

[राग—मलार]

गरजत-घन सघन—बन छोटी-छोटी बूंदनि बरषि बरषि।
तहां बैठेकरैं बातैं छबि छाके स्यामा-स्याम रूप परस्पर दरसि दरसि।
सोहै सूहे वसन पर फवतेई अभरन हरैं श्रम त्रिगुन पवन परसि परसि॥
चहुँ ओर मोर नृत्य करत चकोर सोर पीव पीव रटत पपीहा सरसि सरसि
हरीभरी दूव पर इन्द्र बधू ठौर ठौर पहिरी मनौ भूमिहरी चूनरी तरसि तरसि
सबगुनन आगार गावत मलार लेत 'वृन्दाबनप्रभु' नान अरसि अरसि ॥६०

[राग—वैजयन्ती]

भजेऽहं भजे केशवं कृष्णचन्द्रं।
मुरारि हरि सच्चिदानन्द कन्दं कृपासागरं सत्यसंधं मुकुन्दं ॥ भ०
अचेतः प्रचेतो गृहानित नन्दं वोनंन मद्भक्त भंघैक शंदं।
वलिध्वसिनं बंसिनं माफलत्रं सुपुत्रं सुरत्रं विहंगे सपत्रं ॥ भ०
नवांभोधरामं तड़ित्पीतवस्त्रं रमेशं यमेशं गदाचक्रशस्त्रं।
अजंचाच्युतं गोपपुत्रैकमित्रं सवित्रं पवित्रं दुराशालवित्रं ॥ भ०
अरालालकं कंजनेत्रं जपित्रं चलत्कुंडलं चारुचर्चाविचित्रं।
सदा स्वप्रकाशं जगद्विलासं जनानांनिवाशं ब्रजागारवासं ॥ भ०
रुणन्नूपुरं रासलीलाविलासं क्वणत्किंकिणीकं मनोहारिदासं ॥ भ०
पापनाशं गुणग्रामकुंडं शरच्चन्द्रतुंडं लद्बाहुशुंडं कृतंश्यालमुंडं।

परापारपंडं सुरेशारिदंडं विनीतैकमंडं मिलंगंडं दुष्टचन्डं ॥ भ०
सुवर्णांगदं रंगदं पुष्पमालं कुरंगागजारोव नारोचि भालं।
महागायिकं नायिकं कालकालं स्वकीयासशं छिन्नसंसारजालं ॥ भ०
नृसिंहावतारं विभिन्नारिगातं पयःपूर्णपाथोद गम्भीरबातं ।
गलोद्भासिभास्वन्महारत्नराजं किरीटादिनानोरुनेपथ्यभाजं ॥ भ०
मोहितानंनिषेधैकगम्यं विभुं वेदसारंलसद्धारभारं नरंनिर्विकारं ।
व्रजाधीशजाया यशोदाकुमारं सुवृन्दावनान्तस्सदासद्विहारं ॥ भ०॥६१॥

[राग—वैजयन्ती]

जय जय हो जनि जननि यशोदे । वत्सलरूपिणि नन्दयशोदे ॥
विश्वम्भर परिपोषणमोदे । दूरीकृत भवजलनिधितोदे ॥
भववन्धनहरवन्धनदायिनि । उत्संगे धरणीधरशायिनि ॥
निगमागोचर निजगोचारिणि । पष्ढयाभीति भयदभयकारिणि ॥
शरदींदीवर दलाभिरामे । नवनिधिविधि परिपूरितकामे ॥
सन्ध्यानभनिभ दिव्यदुकूले । जातीश्रग्वेष्टित वरचूले ॥
गोरसमंथन मंथरदेहे । स्वयशोभूषित सुखदसुभावे ॥
किंकिणि रव पुतकंकणरावे । व्रजजन रंजन सुखदसुभावे ॥
सरसीरुह भव—भवमुनिगीते । शिशुगोपी गोपीपरिवीते ॥
'वृन्दावन' बासिनि तवतनये । वितररतिं करुणानिलये ॥६२॥

[राग—वैजयन्ती]

जय जय श्रीवृषभानुसुते । गोकुल राजकुमारनुते ।
ता तन नन थ थथे थथथे थथथे थाथुंथु नृत्यरते ॥
ठंठं ठननन धुधुधुधु कटताल मृदंगनिनादहिते ।
अभिनयतल निपुणे कलगानसमान सुतानसमुल्लसिते ॥
गौरी शचीरतिसुन्दरता मदहारिणि कामकला ललिते ।
रासविलास विभूषण सुन्दरि दासजनैककृपाकलिते ॥
कुक ककुथः ककुथौ तत्थादिसमुद्घटना घटनालिवृते ।
'वृन्दावन' स्वामिनि तवचरणे प्रणतोहं किलदास्यकृते ॥६३॥

स्तोत्र

जय जय श्रीजमुनेरविकन्ये यदुमहेन्द्रमहिविश्वधिगरण्ये ॥
गोकुलचन्द्रपदंकितवन्ये । पावनजलमुक्तिकृतजन्ये ।

नानारत्न रुक्मतटवन्धे। यमपुरगति प्रतिवन्धन सन्धे॥
द्रवीभूत हरिविग्रहधारिणि। गिरिकलिन्द गह्वरसंचारिनि।
'वृन्दावन' रसिकेमे प्रीतिम्। सन्तनुकिल निगमागमगीतिं.॥६४॥

जय जय वृन्दे सन्दे मुखकेन्द चरणसरोज महं तव बन्दे।
राधाकृष्ण विलास बिनोदिनि निज वैभव परिकर जनमोदिनि॥
विविधकुसुमकृत भूषणशोभे नन्दतनयविहरण धृत लोभे।
मतमधुप गुंजनपरिणूते रासविलास विभव सहूते॥
नानासवसंतर्मितरामे पूजकजन परिपूरित कामे।
रसर्त्तुसेवित विपिन विहारे रञ्जितवल्लवी बल्लभदारे॥
कारय मे वासं वरदायिनि 'वृन्दावन' विपिनेथनपायिनि॥६६॥

[राग-भैरव]

श्रीवृन्दावन चिदानन्दघन दिव्यकनकमय भूमि।
विविध भांति वर तरुनि तरुनिसो ललित लतारहि लूमि॥
ठौर—ठौर सुख—पुजनि कुंजनि—कुंजनि राजैं।
मोहन महल सेजपर दोऊ श्यामा-श्याम विराजैं॥
श्रीरंगदेवी आदि सहचरी नित परिकर यह नीकौ।
सन्मुख रुप ठाढ़ी सेवन सुख लैमन प्यारी पीकौ॥
श्रीहरिप्रियाहितचित्त अनुसारिनिविविधविनोद प्रकाशी।
निरखि निरखि नैनन वरवानिक वलिश्रीवृन्दावनदासी॥६७॥

[राग- पंचम]

वेदहूते ब्रजरीति है न्यारी याविध पाय पै कुंजविहारी।
रजदेते बताईजु आवत हैं तम देत मिलाय महासुखकारी॥
प्रात सतोगुन में विछुरे यमत्रासहु ते दुख होत है भारी।
'वृन्दावनप्रभु' की महिमा कछ वच्छ हरे ते विरंचि निहारी॥६८॥

[राग-भैरौ]

प्रभु! अबतो मोहि सम्हारौ।
कहोंकित भटकौं घर घर? अघहर' किंकर होय तिहारौ॥
काम क्रोध मदलोभ प्रवल रिपु आगे नाहिन चारौ।
ए मोहि बोरत भव-सागर में, देखत देहु न टारौ॥

यद्यपि वहु औगुन भरयो हौं, सब कौ लागत खारौ।
'बृन्दावनप्रभु' लाज सरन की, तुम कर ते जिन डारौ ॥ ६९ ॥

[राग–भैरवी]

आँखिन पाँख दई न दई किन।
प्रीतम वदन नलिन मकरंदहिं मधुप ज्यों पी पी आवत प्रतिदिन ॥
क्योंहूँ न चैन परै दिन रैन सोच दहै तन को छिनहीं छिन।
'वृन्दावनप्रभु' विरह कसाई, मोहि जु करी वकरी इन ॥ ७० ॥

[राग–कनड़ी]

प्रेम की मरोरनि मसोसै मन मारिये।
हगनि के साथ ह्वै विकानो पर हाथ यह दीजै काहि दोष कहौ कौन पै पुकारिये
भूल्यो धन धाम अब कहाँ घनश्याम आली ! बिना काम देह यों वियोगआग जारिये
'वृन्दावनप्रभु' कहुं नेकहू निहारिए सु तन, मन, धन,प्रान वारि वारि डारिये ।७१

[राग–कान्हरो]

जमुना–तट झट पट घटहि भरन लागी चंपक के चाप जिमि आप उतै नै गई।
दिखाइ हाव भाव मुसकाय सकुचाय नेक नैनन की सैन माँझ मैन ताप वै गई ॥
जु लट में लपेटि झट मन नटनागर को, दै के पट ओट वटपारि नारि लै गई।
'सु बृन्दावनप्रभु' को व कछुक सुहात तौ ते नैननि ह्वै तेरी छवि रोम रोम छै गई ॥

[राग–बृन्दावनी काफी]

वैठि तहां मिलि गावन लागे।
बीरी खाय खवाय परस्पर तान मान सुनि अति अनुरागे ॥
मूर्च्छना रचनाश्रुति धारि भए थिर जंगम थावर जागे।
'वृन्दावनप्रभु' रीझि अपनपौ भूलि गए दम्पति–रस पागे ॥७३॥

[राग–देवगंधार]

भोरहि सुमिरौ श्रीगोविन्द।
वह-मुकुट पट पीत लकुट कर मुरली अधर धरे गोकुलचन्द।
आछे काछे लाल काछनी चहुँदिसि गोपी गोपगोवृन्द।
'वृन्दावनप्रभु' निज भक्तन पर बरषत कृपासुधा सुखकन्द ॥७४॥

[ध्यानमंजरी रोला छन्द]

श्रीगुरु-चरन-सरोज-रज हरन भव, मंगलकारी।
बंदन करि धरि ध्यान ध्यान, बरनौ पिय प्यारी ॥ १ ॥

रहि फल भारन भूल फूल तरुवेलि छहूँ रित ।
मंजु कुंज अलि--पुंज गुंज सुनिए जितही तित ॥ २ ॥
आवत धीरसमीर तीर जमुनाजल परसैं ।
अमल कमल मकरंद सकल दिसि सुमनन वरसैं ॥ ३ ॥
कोक, कारिका पढ़त रहत जित पिक सुक, सारी ।
दम्पति तेहि अनुसार करत क्रीड़ा सुखकारी ॥ ४ ॥
कुसुम—सैन पर परम चैन पावैं मिलि दोऊ ।
वैठे करत बिनोद मोद भरि और न कोऊ ॥ ५ ॥
दोहा—प्रथमहि प्यारी को करत, सिखनख वरनन चार ।
जाहि सुनत मोहि देइंगे, पिय रिझि अपनो हार ॥ ६ ॥
छंद—सहज सुचिक्कन स्याम मांग मोतिन बिच पाटी ।
उज्वल रस गिरि माँझ हास—रस मानहुँ घाटी ॥ ७ ॥
सीसफूल तेहि कूल मूल सोभा कछु न्यारी ।
फूल रही मनु काम–केलि—फूलन की क्यारी ॥ ८ ॥
गुही स्याम मखतूल पीठ पर विलुलित बेनी ।
बास आस तेहि चली मनौ चंचल अलिश्रेनी ॥ ९ ॥
मृगमद तिलक ललाट भौंह अति कुटिल रही वनि ।
पिय मनमृग की घात मदन मनु बान रह्यो तनि ॥ १० ॥
मुखमयंक पर बक रही कछु अलक छूटि अस ।
डारि छई मनु नागफांस तेहि ताहि करन बस ॥ ११ ॥
श्रवन ललित ताटंक संक मनु ताकि हिए करि ।
कनकमेरु को दरी दुरयो मनु ढाल वाहुधरि ॥ १२ ॥
बड़रे मोती अग्र लसैं सुवरन की बारी ।
उज्वल—रस—मंजूस मनो खोलन की तारी ॥ १३ ॥
नील नलिन–छवि नैन—मधुप मनु चंचल तारे ।
पिय मुख–चंद्रहि देखि—देखि फूलत अति भारे ॥ १४ ॥
नासा सुवरन तिल प्रसून जनु तून पंचसर ।
आनि धस्यौ विधु पास जानि हिय में हर को डर ॥१५॥
हीरकनी मधि चुनी बनी वेसरि मुक्ता की ।
देखि देखि छवि कछू अनूपम पियमति छाकी ॥ १६ ॥

जपा छिपा छवि देखि अधर विंवन अरुनाई।
दसन-सिखर की पाँति कांति कछु बरनि न जाई॥ १७ ॥
अति उज्वल मृदु-हास तासु पर रदन छदन तल।
आपु आय पुट वास करत मनु नूतन वल दल॥ १८
चिवुक विंदु अति स्याम धाम सोभा को सोहै।
पिय मन सौनो कसन कसौटी काम मनोहै॥ १९॥
कंठ पोत मनि-ज्योति मिली मुक्ता छवि छाजैं।
मनहुँ त्रिवेनी कनक कम्बु चहुँ ओर विराजैं॥ २०॥
गुरु उरोज मधि जटित नील मनि सुंदर चौकी।
मूरति अंतर बसति लसति मनु बाहिर पौकी॥२१॥
कंकन कर केयूर मूंदरी चुरी स्याम रंग।
नखमनि बिमल मयूष मिली झलकति तिनही सँग॥२२॥
त्रिवली उदर सोपान नाभि सोभा अमृत-सर।
रोमावलि मनु व्याल वाल रच्छक है तापर॥ २३॥
कटि लखियत अति छीन मीनध्वज दीठ लगी भल।
कनक किंकिनीराव मधुर अति होत क्वनित कल॥ २४॥
वरतुल विपुल नितम्ब चलत बर चारु जंघ भरु।
नमित मनौ फल-भार कनक कंचन कदली-तरु॥ २५॥
पिंडुरी पीवर अति सुढार विधि आपु सँवारी।
कनक केतकी कली भली ये इनपै वारी॥ २६॥
नाना मनि मुक्तानि जरी जेहरि पगवाला।
सुरति जज्ञ श्रुति सब्द मनहुं निर्मित जु रसाला॥ २७॥
अँगुरिन बिछिया छवि जराव अनवट छवि भारी।
मानौ श्री निज सदन पदन पै रची अटारी॥ २८॥
नखर सिखर मनि ज्योति होति अँगुरिन पर झलमल।
कमल दलन पर आपु आय वैठो मनु मंगल॥ २९॥
नलिन मलिन दुति होति देखि अति अरुन चरन तल।
याहीते दिन रैन करत तप सेवत ते जल॥ ३०॥

छंद--अँगिया हरी नील तन सारी लहँगा लाल चुहचुहो माँझ।
नाना रंग-बादरन लपटी मनहुँ दामिनी फूली साँझ ॥३१॥

दोहा—अब बरनौं नँदलाल को सिखते नख लौं हेरि।
जाहि सुनत मोहि देहिगीं प्यारी बीरी टेरि॥ ३२ ॥

छंद--लाल पाग रहि नवल लालके बाम भाग झुकि।
नील जलद पर रह्यौ आय मनु अरुन जलद धुकि ॥३३॥
तापर अद्भुत रतन पेच पर अरु हीरावर।
मनहु दिखाई देत दामिनी धनुष पुरंदर ॥ ३४ ॥
सोंधे रगमगि अलक मनहुँ धुरवा रस लूटे।
बरषि भरे चहुँ ओर उमँग सोभा-सर छूटे ॥ ३५ ॥
तामधि कुंडल मीन प्रफुल्लित नैन कोकनद।
भए प्यारी दृग देखि किलकिला तीन तीन पद ॥३६॥
भौंह मोहनी घनी बनी छवि नाहिं लोक तिहुँ।
अटके मनहुं सिवाल-जाल पै आप आय कहुँ ॥३७॥
नासा मोतिन जोति देखि आवत उपमा मन।
मनु इन्दीवर भली कली पै लसत ओस कन ॥ ३८ ॥
लाल लाल से ओठ लसैं मधि दसनन पाँती।
अरुन किरन ते अरुन तप्र जनु मोतिन काँती ॥ ३९ ॥
त्रय-रेखा-जुत कंठ निरखि उपमा असि भ्राजै।
मनहुँ दाहिनावर्त्त कम्बु ज्यों स्याम विराजै ॥ ४० ॥
मुक्तामाल बिसाल उरस्थल आनि रही है।
मनहुँ नीलगिरि शृंग-उतँग ते गंग वही है ॥ ४१ ॥
अंगद पहुँची कर जड़ाव मुंदरी सु जरी कर।
राजत मदन मतंग सुंड मनु लिए कंजवर ॥ ४२ ॥
रोमावलि मनु स्याम विराजत भाँति भली है।
नाभि प्रयाग मनौ जमुना वहि आनि मिली है ॥ ४३ ॥
कटि तट पट पर छुद्र घंटिका होत सब्द भल।
कलहंसन के बाल करत मनु मिले कनित कल ॥ ४४ ॥

धोती मोती बरन बीच झलकै अरधंगा।
मनहु त्रिवेनी धसी धरनि पर चपल तरंगा॥ ४५॥
अरुन चरन नख-पाँति कांति-सुषमा को सागर।
भो संगम जनु जानु तिहुन को सुजश उजागर॥ ४६॥
द्वै द्वै मोतिन लर सु पाँय लपटी मन-ररन।
मानहु मज्जन करत देह धरि भक्ति बिमल मन॥ ४७॥
दोहा—पीत उपरना काँध धरि चंदन खौर सु अंग।
को कवि छवि यह कहि सकै, होत निरखि मति पंग॥ ४८॥
यह बानिक ब्रजराज रचि, लिए लाड़िली संग।
बीरीखात खवावतो हँसत बढ़ावत रंग॥ ४९॥
छंद—लाल बजावत बेनु बीन लै बाल बजावत।
मिलै करत दोउ गान तान सों तान मिलावत॥ ५०॥
रीझि परस्पर पुनि निसंक ह्वै लेत अंक भरि।
प्रेम विवस ह्वै जात मधुर अति अधर पान करि॥ ५१॥
देखि परस्पर रूप होत दुगुनित दोउ मोहन।
याही ते दिन-रैन कबहुँ छूटत नहिं गोहन॥ ५२॥
करत विविध शृङ्गार अलौकिक कहत न आवै।
तदपि सुमति अनुसार भक्त कहि कै सचुपावै॥ ५३॥
तातें सिखनख ध्यान कह्यो मैं रसिक जनन हित।
कंठ पाठ करि राखि याहि सुमिरन करिहौ नित॥ ५४॥
दोहा—हाव भाव लावन्य अति, अगिनित गिने न जाहिं।
निरखत सचुपावैं सखी दुरि-दुरि कुंजन माहिं॥ ५५॥
ज्ञानहु को यह ज्ञान है, ध्यान रसिकजन प्रान।
पान करै जो कान यह, सो न छुवै कछु आन॥ ५६॥
श्रीवृन्दावनधाम रुचि स्यामा-स्याम सुअंग।
जन्म-जन्म 'वृन्दावन' हि दीजो निज जन संग॥ ५७॥

॥ इति ॥

श्रीगोविन्ददेवजी

—छप्पै—

रसिक रसीक—गोविंदजी नूरजहां दरसन दिये ।
रहत प्रेम में मगन लगन लागी पिय—प्यारे ।
कही अनेक धमार रेखता माँझ नियारे ॥
भाव भावना कुशल कहीं दिल्ली पगधारे ।
बेगम सुनि सुनि मिलन के हेत बिचारे ॥
सखि रूप धरि महल माधि प्रेमभक्ति बरषन किये ॥

—गो० श्रीराधाचरण

श्रीगोविन्ददेवजी महाराज, श्रीपरसुरामदेवजी के द्वारा—गद्दी, सलेमाबाद (परसुरामपुरी) के आचार्य थे। इनका ही उपनाम 'रसिकगोविन्द' था, प्रायः पदों में उक्त छाप ही लगाया करते थे। ये इस गद्दी की तीसरी पीढ़ी में हुये थे। इनका कविता—काल सम्वत् १६७० के लगभग समझना चाहिये। क्योंकि जहांगीर बादशाह सन १६०५ में दिल्ली के तख्त पर बैठा था; उसके कुछ समय पश्चात् आप वहाँ पधारे थे।

प्रथम आचार्यगण अपने संग में अनेक वैष्णवों की जमात एवं विद्वानों का समूह लेकर विशेषतः भ्रमण किया करते थे। उनकी यात्रा का प्रमुख उद्देश्य, अधर्म का नास एवं धर्म- संस्थापन करते हुये जीवों को वैष्णव धर्म में दीक्षित कर, हरि सन्मुख करना था। अथवा आचार्यपादों को बड़े—बड़े राजा एवं बादशाह निमंत्रण देकर; बुलाने में अपना सौभाग्य समझते थे। श्रीरसिक गोविन्ददेवजी एक समय धर्म—प्रचार के लिये दिल्ली पधारे। आचार्य होने के कइएक इश्वरीय—गुण आप में विद्यमान थे; क्योंकि भगवान् का ही श्रीमुख वाक्य है कि—"आचार्य्यं मामभि जानायात्" आपके गुण—सौरभ—सुगंध पाकर नगरनिवासियों की भीड़, उपदेशादि श्रवण एवं दर्शन करने के लिये आने लगी और इनके उपदेशामृत की प्रशंसा सर्वत्र होने लगी। रसिकमहानुभावों में एक अपूर्व भावों की विशेषता होती है, इनकी भाव मिश्रित भजन—शैली परा-

भक्ति से सम्बन्ध रखते हुये लौकिक एवं शारीरिक सम्बन्धी-ज्ञान विस्मरण करा देता है। जैसे श्रीभगवतरसिकजी ने कहा भी है—

'पाँचे भूले देह सुधि छठे भावना रासकी; सातें पावै रीति रस श्रीस्वामीहरिदास की'

श्रीगोविन्ददेवजी के इस प्रकार भावना-कुशल अनेक प्रशंसा श्रवनकर, नूरजहां दर्शन करने की इच्छा प्रगट की। बादशाह जहांगीर इन्हें सादर लेने के लिये पधारे। बादशाह के आग्रह से आप महल में पधारे और भाव-सिद्ध सखी-स्वरूप धारण कर प्रेम-भक्तियुक्त उपदेशामृत पान करा कर, शाह-जादी सहित सब को पावन किये।

ये आचार्य श्रीवृन्दावनदेवजी के शिष्य थे; जिनका प्रसंग प्रथम आ चुका है, उनके पश्चात् येही गद्दी पर प्रतिष्ठित हुये। इनके श्रीवृन्दावन-धाम-प्राप्त होने पर, इन्हीके शिष्य श्रीगोविन्दशरणदेवजी गद्दीपर विराजे; जिनका प्रसंग आगे है। इनके द्वारा रचित 'श्रीयुगलरसमाधुरी' परमोत्कृष्ट-काव्य ही उपलब्ध है; ये प्रकाशित भी हो चुकी है, वह आगे दिया जाता है। फुटकर और आचार्य्यों के मंगल, वधाई के पद बहुत हैं, जो श्रीवृन्दावन की समाज में गाये जाते हैं। सलेमाबाद में सैकड़ों पदों की हस्तलिखित वाणी भी सुनते हैं जिसका प्राप्त होना आकाश में स्थित तारे के समान असम्भव है।

[रोला-छंद]

जय जय श्रीहरिव्यासदेव दिन-बिदित-विभाकर।
भ्रम, तम, श्रम, अघ, औघहरन सुखकरन सुघरवर॥ १॥
कृपा—सिन्धु आनन्दकन्द दम्पति-रस—भीने।
मोसे मूढ़ अनेक पतित जिन पावन कीने॥ २॥
जासु कृपा परसाद जुगल-रस—जस कछु गाऊं।
सब रसिकनि को हाथ जोरि पुनि सीस नवाऊं॥ ३॥
श्रीवृन्दावन-सघन-सरस-सुख नित छबि छाजत।
नन्दनबन से कोटि-कोटि जिहि देखत लाजत॥ ४॥
जहँ खगमृग द्रुमलता बसत जे सब अविरुद्धित।
काल,कर्म,गुन,काम, क्रोध, मद रहित सहित हित॥ ५॥
परम रम्य—घन चिदानन्द सर्वोपरि सोहैं।
तदपि जुगलरस-केलि काज जड़ ह्वै मन मोहैं॥ ६॥

तैसिय निर्मल—नीर निकट जमुना बहि आई।
मनहुँ नील-मणि-माल बिपिन पहिरें सुखदाई॥ ७॥
अरुन, नील, सित, पीत कमल-कुल फूले फूलनि।
जनु बन पहिरें रंग-रंग के सुरंग दुकूलनि॥ ८॥
इन्दीवर कल्हार कोकनद पद्मनि ओभा।
मनु जमुना दृग करि अनेक निरखति बन-सोभा॥ ९॥
तिन मधि झरत पराग प्रभा लखि दृष्टि न हारति।
निज घरकी निधि रमा रीझि जनु बन पर बारति॥ १०॥
सरस सुगंध पराग छके मधु मधुप गुंजारत।
मनु सुषमा लखि रीझि परस्पर सुजस उचारत॥ ११॥
पुलिन पवित्र बिचित्र चित्र चित्रित जहँ अवनी।
रचित कनक मनि खचित लसत अति कोमल कमनी॥१२॥
सुघट घाट बहु रंग छबीली छतरी सोहैं।
कुसुम-भार झुकि लता परसि जल मन को मोहैं॥१३॥
जल में झाँही झलमलाति प्रति बिम्बित सरसें।
जल के भ्रमर तरंग रंग रंगिन के दरसें॥ १४॥
तट पै ताल तमाल साल गहवर तरु छाए।
सभा-काज ऋतुराज बितान मनहुँ तनवाए॥ १५॥
कल्पवृक्ष संतान पारिजातक हरिचन्दन।
देवदारु मंदार अगर अंबर मलयजघन॥ १६॥
तिनपर चढ़िकर लता उच्च अति फूल झरत खिलि।
मनु बिमान चढ़ि देवबधू बरषति कुसुमावलि॥ १७॥
तुलसी कुंद, कदंब, अंब, निंबू बहुरंगी।
बट, असोक, अश्वत्थ, अगस्त, आमर्द पतंगी॥ १८॥
कोबिदार, कचनार, बंस के बिरुआ चोखे।
बिजयसार, शृंगारदार, अरु चारु अनोखे॥ १९॥
अमलबेत, आरू, अंगूर, अञ्जीर, अमृतफल।
बरना, आरिनी, कर्निकार, कलियार, बेत भल॥ २०॥
सेमर, तिंदुक, मधुक, विल्व, पापरी पलासा।

सरस, बहेरा, कुरा, कैथ, कमरख, सविलासा ॥ २१ ॥
सीताफल अरु जम्बु और बदरीफल, श्रीफल ।
पिस्ते, पाडल, पनस, हरर, बड़हर, बदामकल ॥ २२ ॥
खारिक, खिरनि, खजूर, दाख, दाड़िमहि, बिजोरे ।
नासपाति, नारंगि, सेव, सहतूत, लिसोरे ॥ २३ ॥
जाइ, जायफल, बकुल, इलाइचि, लौंग, सुपारी ।
कदली मिली कपूर गहरि जिहि लगि रहि भारी ॥२४ ॥
केतकि अरु केवरा नागकेसरि, केसरि अति ।
मेहँदी अरु माधवी मधुरि मल्ली अरु मालति ॥ २५ ॥
फूली चंपक फैलि रही जिहि सुगंध बिसाला ।
निज गुन मनहु प्रकाशि लसति नवजोबन-बाला ॥२६॥
जुही, चमेली, फूलि रहीं अस लगति सुहाई ।
सरदजोन्ह जनु जुगल-दरस-हित विहंसति आई ॥२७॥
नागबेलि बेला प्रवाल को है बिस्तारा ।
नरगस मुक्ता, मदनबान, मोगरा, निवारा ॥ २८ ॥
सुगंधार, सतबर्ग, जीवबंधुक अरु दौना ।
गुलहबाँस बहु खिले मदन के मनहुँ खिलौना ॥ २९ ॥
सूरजमुखी, गुलाब, गुलाला, नाफर मानो ।
सोनजुही, सेवती, सरू लै बिच-बिच ठानो ॥ ३० ॥
और लता बहु भाँति जाति कापै कहि आवति ।
एक-एकते अधिक जुगल हित छबिहि बढ़ावति ॥ ३१ ॥
कोउ छोटी कोउ बड़ी कोऊ अधबिच की जानी ।
गुलमलता उलही अनेक अवनी लपटानी ॥ ३२ ॥
सुरतरु सम द्रुम-बेलि जाति सब सुख-कर श्रेनी ।
चिंतामनि महि सकल बनी चिंतत-फल-देनी ॥ ३३ ॥
द्रुमबल्ली संकुलित सकल अस लगत सुभग तन ।
मनु जड़ ह्वै निज तियहि सहित सेवत सब सुरगन ॥ ३४ ॥
बौरमंजरी मूल-फूल फल-दल-मनि-मोती ।
ओत पोत प्रतिबिंब परत अगनित छबि होती ॥ ३५ ॥

मुकुलित पल्लव फूल सुगंध परागहि झारत।
जुग मुख निरखि विपिन जनु राई-लोन उतारत ॥ ३६॥
फूल फलन के भार डार झुकि यों छबि *छाजैं।
मनु पसारि दइ भुजा देन फल पथिकनि काजैं ॥ ३७ ॥
मधु मकरंद पराग लुब्ध अलि मुदित मत्त-मन।
बिरद पढ़त ऋतुराज नृपति के मनु बंदीजन ॥ ३८ ॥
सुवा सारिका पढ़त कोकिला कूक मचावत।
मनहुँ टेर दै पथिकजनन को टेर बुलावत ॥ ३६ ॥
चातक, मोर, चकोर, सोर चहुँओर निकाई।
रतिपति-नृप के दूत देत जनु फिरत दुहाई ॥४० ॥
राजहंस कलहंस बंस यों सब्द सुनावत।
मनहुँ सप्तसुर मधुर-साज मिलि गंध्रव गावत ॥ ४१ ॥
सुधा-सलिल-सर भरे विमल कमलनि जुत अलिगन।
निगुन-ब्रह्म जनु सगुन होइ सोहत मोहत मन ॥ ४२ ॥
ठौर-ठौर जल-जन्त्र-जाल बँगला उसीर के।
हौद भरे केसरि गुलाब सौरभ कि भीर के ॥ ४३ ॥
कुंजगली कुसुमित रसाल बहु भाँति सुहाईं।
फरस सुलपहे सरस-अतर बरसों छिमकाई ॥ ४४ ॥
सब ऋतु सन्त बसन्त लसत दूनी छबि दिन दिन।
सीतलमन्द सुगंध सहित मारुत बह सब छिन ॥ ४५ ॥
महा छबिनु की भीर रहति नित-नव-गुलजारी।
जनु रति पति नृप नित बिहार की निज फुलवारी ॥४६॥
या बनकी बानिक समान पावनहिं निकाई।
जाकी छवि की छटा छलकि छबि सब बन छाई ॥४७॥
मनमथ मदन मनोज मार मकरध्वज माली।
उज्जल रससों सींचि करत रचि पचि रखवाली ॥ ४८॥
चित्रित चित्र बिचित्र महल झुकि रहे झरोखे।
छज्जे दरवज्जे कपाट फटिकन के गोखे ॥ ४९ ॥
मनि मानिक जगमगत जोति जित-तित बिस्तारत।

बहुत दृगनि करि भवन जुगल-छवि मनहुँ निहारत ॥५०॥
द्वारनि बन्दनवार बनी गजमुक्तनि भारी ।
विहँसत हैं जनु सदन रदन दुति लगत उज्यारी ॥ ५१ ॥
ऊपरही रति-कलस धुजा फहरति पचरङ्गी ।
मनु कारीगर काम सदन सिर धरी कलङ्गी ॥ ५२ ॥
परसत रबि शसि रस मिस रस दुति जगमगात यों ।
बन घन में दामिनि स्वरूप इकरस राजत ज्यों ॥ ५३ ॥
घनसारनि के घनेसार घसि अँगन लिपाये ।
गावति मङ्गलचार सखागन बजत बधाये ॥ ५४ ॥
साएवान सु बितान तने बादिले झलाझल ।
जरकस परदा परे बिछे मृदु गिलम सु मखमल ॥ ५५ ॥
बहुत सुगन्धनि धूप दीप बहु रतन दिखावत ।
निसदिन होत प्रकाश तिमिर कहुँ रहन न पावत ॥ ५६ ॥
रङ्गमहल की छबि अनूप कछु कही न जाई ।
अखिल भुवन सिरमौर सहज जाकी ठकुराई ॥ ५७ ॥
मनि-मण्डल मुक्ता मयूख मधि रतन सिंघासन ।
सरस सुवासनि सहित कमलदल को मनु आसन ॥ ५८ ॥
तहँ राजत दोउ मीत प्रीति सों नित सुखदानी ।
रसिकराज महाराज राधिका श्रीमहारानी ॥ ५९ ॥
प्रीतम सुन्दरश्याम प्रिया छवि फबी गुराई ।
मनु सिंगार रस सङ्ग सिंगार किय सुन्दरताई ॥ ६० ॥
दोउ परस्पर प्रतिबिम्बित अद्भुत छबि छाजत ।
गौर श्याम मिलि हरित होत उपमा सब लाजत ॥ ६१ ॥
चटकीले पट नील पीत फरहरत सुहाये ।
रस बरसन को उनै मनहुँ घन दामिनि आये ॥ ६२ ॥
दोउ तन दर्पन अंग-अंग प्रतिबिम्बित सरसैं ।
दुगुन तिगुन चौगुन अनेक गुन भूषण दरसैं ॥ ६३ ॥
अंग संग बिहरतु कुंजबिहारिनि कुंजबिहारी ।
दामिनि घन रति काम कनकमनि छबि पर वारी ॥ ६४ ॥

जावक रंग सुरंग अरुण महमृदु तिय पदतल ।
पिय हिय को अनुराग लग्यो जनु प्रगावत पल पल ॥ ६५ ॥
अरुण-चरण-तलचिह्न चारु जगमगत बिराजें ।
मो मनके अभिलाष लगे जनु पदरज काजें ॥ ६६ ॥
चम्पकली अँगुली भली नखचन्द जुन्हाई ।
सखिजन नैन-चकोर निरखि रहे इक टक लाई ॥ ६७ ॥
अमल अमोल अनोट बीछिया शब्दित ऐसे ।
कूजत कल कलहंस प्रभा के निधि में जैसे ॥ ६८ ॥
कमल-चरन नूपुर जराइ के राजत गाजत ।
मनहुँ सुरति संग्राम बिजय के बाजे बाजत ॥ ६९ ॥
गुलफ गुलाब प्रसून निरखि अलि पिय मति भूली ।
अतरस अतरोटा अनूप नीवी मखतूली ॥ ७० ॥
अति सूच्छम कटि तट सुदेस मनि-किङ्किन-जाला ।
मदन सदन के द्वार बँधीं जनु बन्दनमाला ॥ ७१ ॥
रस सर उदर तरंग उमगि त्रिवली छबि छाई ।
नाभि-कमल अलि अवलि रोमावलि मनु चलि आई ॥ ७२ ॥
केसरि अँगिया कसें उरज उन्नत अरु गाढ़े ।
कनक कवच सजि सुभट जीति रति रन जनु ठाढ़े ॥ ७३ ।
विमल सजल कल मुक्तमाल उर रुरति उदारा ।
मनु सुमेरु के श्रंग जुगुल बिच सुरसरि धारा । ७४ ॥
उरसि उरबसी मध्य अरुण नग यों छबि छाजत ।
तिय हिय को अनुराग बिदित जनु बाहिर राजत ॥ ७५ ॥
बलया बाजूबन्द भुजा पिय अंसनि दीने ।
मनु घनश्याम स्वरूप दिव्य दामिनि कसि लीने ॥ ७६ ॥
कङ्कन पहुँची चुरी चारु जे भूषन करके ।
आल बाल किय मनहुँ मैन माली सुरतरु के ॥ ७७ ॥
कमलपानि-दल अँगुरि बुन्द मेंहदी लपटानी ।
छला बजत सित मनहुँ हंस सुत कहत कहानी ॥ ७८ ॥
दुतिय हाथ लिये अमल कमल कल फूल फिरावत ।
ज्यों श्रीपति संग श्रीसुजान सुन्दर छबि पावत ॥ ७९ ॥

कण्ठ सरी दुलरी हीरनि धुकधुकी सुधारें।
लटकत मुक्ता मनहुँ नचत नट मदन अखारें ॥ ८० ॥
पोति-पुंज मखतूल श्रवन भूषन जगमग छबि।
मनु दुरि चल्यो पताल तिमिर दुहुँ ओर उदित रबि ॥ ८१ ॥
धसति पान की पीक लसति गोरे गल ऐसी।
ललित लालकी गुली बन्द भूषित नव जैसी ॥८२ ॥
कण्ठकम्बु सम मुख प्रसन्न श्रम-जलकन नीके।
मनहुँ चन्द के लगि सुछन्द रह बुन्द अमीके ॥ ८३ ॥
नीलाम्बर मधि गौर बदन सोभित सबिलासा।
मनु पावस घन चीर सरद शशि कियो प्रकाशा ॥ ८४ ॥
उज्ज्वल मुख के आस पास छबि फबी किनारी।
चन्द्रचारु जनु घेरि रही नव दामिनि प्यारी ॥ ८५ ॥
ललित चिबुक बिच सुभग श्याम लीला शोभित अनु।
गिऱ्यो गुलाब सुमन स मझार मधु छक्यो मधुप मनु ॥८६॥
अधर सधर मुख बास हास मृदु सिति दसनावलि।
अरुन कमल मधि बसत सहित जनु तड़ित बज्र मिलि ॥८७॥
दीपसिखा सी नाक मुक्त पर मुख ढिंग डोलैं।
मनहुँ चन्द की गोद चन्द को कुंवर कलोलैं ॥ ८८ ॥
हँसत कपोलनि गाढ़ परति पुनि इक तिल स्यामल।
मनहुँ सुधा-सर-मध्य खिल्यो इक नील कमल कल। ८९ ॥
मुकुर कपोलनि श्रुतिभूषन प्रतिबिम्ब सुहाये।
अमल कमल बर बदन अलक अलि कौतुक आये ॥ ९० ॥
कर्न तरोनातरल झलमलत नीलाँचल में।
पऱ्यो प्रात प्रतिबिम्ब भानु जनु जमुना जल में ॥ ९१ ॥
सजल पलक सित असित लाल दृग सरस सुअंजन।
बनि बैठ्यो रसराज नृपति जनु कमल सिंहासन ॥ ९२ ॥
मदजोबन छकि रहे स आलस घूम घुमारे।
मदन-बान बहु कुटिल कटाच्छनि ऊपर वारे ॥ ९३ ॥
कोरे चपल बिशाल बहुरि भृकुटी अनियारी।

मनहुं सकल जग जीति मदन धनु धरे उतारी ॥ ६४ ॥
केसरि खौरि सुभाल गुलाली बिन्दु बिराजत ।
कनक-लता फल लग्यो लालनग मनु छबि छाजत ॥ ६५ ॥
हीरनि बेना सीसफूल बर अरुन रतन गनि ।
भाल भाग सिरपै सुहाग जनु बैठे बनि ठनि ॥ ६६ ॥
चिकुर चन्द्रिका चारु जगमगाति मुख मन मोहै ।
मदन बिजय की धुजा मनहुँ छबि घर पर सोहै ॥ ६७ ॥
अग्रभाग पाटी असेत गुहि जुही चमेली ।
दुहुँदिसि उमड़ी घटा मनहुँ बक-पांति नवेली ॥ ६८ ॥
असित केस सित मुक्त माँग गुन अरुन गुही है ।
मनु सिंगार भुव सुजस प्रेम-रस-नदी बही है ॥ ६६ ॥
पीठि लुरित वैनी बिसाल पर बसन प्रभारम ।
कदली-दल पर अलि अवली पर श्यामघटा जिम ॥१००॥
सोंधे तें सतगुन सुबास सहजें अङ्ग अङ्गी ।
केसरि रङ्ग अँग रँग्यो कि अँग रँग केसरि रङ्गी ॥१०१॥
सारी कारी सरस देह-दुति अति नव-बाला ।
मनहुँ कुहू निसि मध्य दिपै दीपनि की माला ॥१०२॥
श्यामघटा मधि किधों दिव्य-दामिन-दुति सोहै ।
रसिकराय रिझवार चतुर चातक मन मोहै ॥१०३॥
नखसिख अतुलित छबि सु कौन पै जाय उचारी ।
जिहि लखि पिय बस भयो कियो सरबस बलिहारी ॥ १०४॥
पिय-पद-पृष्ठ जु श्याम अरुण तल नख सित श्रेनी ।
मनु शोभा के सिंधु मध्य यह ललित त्रिवेनी ॥ १०५ ॥
अङ्कुस कुलिश कमल जवादि मुनिजन से न्हावैं ।
नूपुर बाजत मनहुँ हंस कल शब्द सुनावैं ॥ १०६ ॥
गुल्फैं पिंडुरी सुलभ जुगल जङ्घन की शोभा ।
मनु सिंगाररस मिले भले कदली के गोभा ॥ १०७ ॥
श्याम सच्चिकन देह चटक पीताम्बर पहिरें ।
मरकतमनि पर पर्यौ प्रात आतप जनु गहिरें ॥ १०८॥

कटि तट किङ्किनि बनी मनिनमय भूषित ऐसी।
तरु तमाल इक चमू लगी खद्योतनि कैसी ॥ १०९ ॥
सुन्दर उदर उदार ललित रोमावलि मनु अनु।
नाभि भ्रमर त्रिवली तरङ्ग शृङ्गार सरित जनु ॥ ११० ॥
रस-सर उर उरबसी लसी मनु मनमथ तरनी।
कौस्तुभमनि मनु खिली भली पद्मनि छवि करनी ॥१११॥
मुक्तहार सरि कण्ठ धुकधुकी मुक्त कलौलैं।
हँस-पाँति ढिंग हँस सुवन जनु खेलत डोलैं ॥ ११२ ॥
माल तुलसिदल बिबिध कुसुम मिलि सरस सँवारी।
आस पास छवि देत मनौ फूली फुलवारी ॥ ११३ ॥
भाँई अवसि सुग्रीव रेख त्रिवली इमि जानौ।
कोमल श्यामल सङ्ग सरस अद्भुत इक मानौ ॥ ११४ ॥
चिबुक चारु आनन प्रसन्न श्रम जल-कन जागे।
मनहुँ भोर मकरंद-बुन्द अरबिन्दहि लागे ॥ ११५ ॥
मधुर मनोहर हँसनि लसनि दुति सित दसनावलि।
निकसि चन्द्र ते जोन्ह मनौ बरषति कुसुमावलि ॥११६॥
इक कर मुरली अधर मधुर प्रिय नाम उचरहीं।
मनहुँ मदनमोहनी-मन्त्र पढ़ि जग बस करहीं ॥११७॥
दुतिय बाहु तिय अँस धरे बाजूबन्द साजे।
छबि-मन्दिर पर धुज सिंगार रस कीधौं राजे ॥ ११८ ॥
कमल-पानि मनि जटित कनक पहुँची दुति भारी।
निज चर के चहुँ पास रमा जनु कृत रखवारी ॥११९॥
हाटक दोऊ मुखनि हरित नग लगे सुहाते।
मनहुँ कमल गल लागि पियत मधु मधुकर माते ॥१२०॥
करतल सुमन गुलाब चतुर अँगुरी अँगुष्ठवर।
मनहुँ पञ्चसर नृपति सुभट के सुघट पञ्चसर ॥ १२१ ॥
अँगुरी अरु अँगुष्ट मुद्रिकनि नग छवि छाजैं।
नील-कमल के दलनि मनौ खद्योत विराजैं ॥ १२२ ॥
अरुण अधरतर मुख सुबास नासिका सुहाई।

मनहुँ बिम्बफल मधुर जानि सुक तुण्ड झुकाई ॥१२३॥
मुक्ता सजल सुढार बिमल कल नासा दीनौ।
मनहुँ असुर गुरु सुघर उदय उश्वासन कीनौ ॥ १२४ ॥
अधरन मुरली धरी रहीं अलकैं लपटाई।
नील कमल पर अलि अवलिन जनु कलह मचाई ॥१२५॥
मकराकृत कुण्डल कर्ण लसत अति ललित कपोलनि
मनु अगाध जल-बिमल-मध्य कृत मकर कलोलनि ॥१२६॥
रुचिर पलक दृग कोर अरुण सित कारे तारे।
मनहुँ कमल-दल नवल जुगुल अति मधु मतवारे ॥१२७॥
कुटिल कटाछैं अति आछें भ्रुव बक्र बनी अनु।
मन मथ बरषत बान तानि मनु जुग मरकत धनु ॥१२८॥
केसरि तिलक लिलार बिन्दु बन्दन छबि छाजत।
मनु सुर गुरु की गोद भूमि सुत बिदित बिराजत ॥१२९॥
सीस मुकुट मधि सेत रत्न जगमगत नवीने।
घनतें मनहुँ उदोत शरद शशि उड़गन लीने ॥१३०॥
मुकुट सुघट बर बिमल मुक्त कल कलँगी थर हर।
मनहुँ कलस धुज धरे मदन रस राज सदन पर ॥१३१॥
बेनी बनी बिशाल पीठि पर लगति सुहाई।
तरु तमाल बक अलि अवली जनु रहि लपटाई ॥१३२॥
श्याम अङ्ग अङ्गराग चन्दन घन सार गुराई।
जमुना जल पर जगमगाति जनु शरद जुन्हाई ॥१३३॥
सहज सुवास शरीर सरस सोधेतें सुन्दर।
भ्रमर भ्रमत चहुँओर जानि जनु नील नलिनवर ॥१३४॥
पिय घन श्याम सुजान प्रिया तन गोरी भोरी।
नव जोवन गुनरूप अनूपम अद्भुत जोरी ॥१३५॥
हाव भाव लावण्य सरस माधुरी मनोहर।
अङ्ग अङ्ग छबि पर बारि दिये दिन कर रजनी कर ॥१३६॥
सङ्ग सखी सुखरासि ललित ललिता रङ्ग देवी।
निरखति नित्य बिहार जुगुल रस सरस सुसेवी ॥१३७॥

अरु सखि सबसुखदेनि रुखहि लिय मुखहिं निहारैं।
अपनी-अपनी उमग सहित सब सोंज सँवारैं ॥१३८॥
सबसु मन की लहैं रहैं रिझवति पिय प्यारी।
ज्यों सेवति बिमलादि सखी सिय-अवधबिहारी ॥१३९॥
कोउ कर लीने विमल छत्र जिहिं जगति जुन्हाई।
मनु घन-दामिनि सीस शरद शशि छबि रहि छाई ॥१ ०॥
गजमुक्ता की लूम सुघट सज्जल उजलाई।
मनु लटकत यह चिद्विलास सुन्दर सुखदाई ॥१४१॥
नीलबरन दुँहुँ ओर मोरछल लगत सुहाये।
नीलकण्ठ जनु नवघन तड़ित दरस हित आये ॥१४२॥
दुहुँ दिशि चामर चलत सेत शोभित अरु गहरे।
मनहुँ मराल रसाल प्रभानिधि के तट बिहरे ॥१४३॥
लिये अड़ानी दुहूँ ओर सखि छबिहि बढ़ावति।
मनु द्वै ठाढ़ी तड़ित दुँहुँनि आरसी दिखावति ॥१४४॥
कोउ दर्पन कोउ ब्यजन सुमन-भूषन कोउ लीने।
कोउ जराय भूषन संपुट लिये जटित नगीने ॥१४५॥
कोउ लीने मुक्तनि मण्डन महामनोहर।
कोउ लिये घनसार चार के अलङ्कारवर ॥१४६॥
कोउ मृगमद चन्दन कपूर केसरि लीने घसि।
कोउ चोआदि गुलाब लिये सीसी भरि रही लसि ॥१४७॥
अतरदान कोउ पानदान कोउ लै पिकदानी।
सुरङ्ग बसन चुनि चारु लिये कोउ सखी सयानी ॥१४८॥
कोउ नवनीत सितादि मधुर-मेवा लिये थारी।
कोउ भरि लिये सुगन्ध सीत जमुना-जल-झारी ॥१४९॥
कोउ रुमाल कर-कमल बदन पर भ्रमर उड़ावति।
कोउ दुहुँ कर बलिहारि लेति लखि कोउ सिर नावति ॥१५०॥
कोउ कर लै सखि सुवा सारिका सुघर पढ़ावति।
फूलछरी लै खरी कोऊ इतमाम जनावति ॥१५१॥
कोउ मृदङ्ग कोउ बीन मुरज कोउ मधुर बजावति।

कोउ तमूर सारङ्ग सितार करतार सुनावति ॥१५२॥
कोउ रवाव कोउ चङ्ग उपङ्ग सुरंग मिलावति।
कोउ लिये ताल बिधान बजति सैननि समुझावति ॥१५३॥
कोउ अलापि स्वरसप्त पञ्च मधुरे मिलि गावति।
कोउ ऊँचे सुरतान तरङ्गनि रङ्ग बढ़ावति ॥१५४॥
कोउ नूपुर सजि सुढङ्ग नचति कोउ सुघर नचावति।
बटा उछारत कोउ चकई कोउ लट्टू फिरावति ॥१५५॥
कोउ सखि छन्द प्रबन्ध काव्य उघटति सरसाई।
सुधमुद्रा लै सुरति ग्राम मूर्छना मिलाई ॥१५६॥
आरोही अवरोही अरु थाई संचारी।
दुरनि मुरनि मुरकनि चितवनि हस्तनि-छबि न्यारी ॥१५७॥
कोक-कला सङ्गीत राग रागिनि गति जेती।
अभिनव मूरतिवन्त सुघर सखि दिखवत तेती ॥१५८॥
हाव भाव आलम्ब उद्दीपन सरस निकाई।
सेवति धरि-धरि रूप जाति जेतिक मधुराई ॥ १५९ ॥
नृत्य गीत बाजन्त्र सकल मिलि यों धुनि साजैं।
महामोहनी मदनमन्त्र मनु अद्भुत बाजैं ॥ १६० ॥
रीझि खवासिन अपन बसन भूषन दोउ देहीं।
सखि सभाग अति उमगि सीस सादर धरि लेहीं॥१६१॥
ज्यों चिन्तामनि सुरतरु देत मनोरथ सरसैं।
त्यों जुगकमल-पराग सुगंध अलिकुल हित बरसैं ॥१६२॥
कोउ सखि छबि लखि रीझि रही टकटकी न टारैं।
कोउ सिर चालन करति रीझि कोउ सर्वस वारैं।
राई लौन उतारि कोऊ छबि पर तृन तोरति।
कोउ काहू कछु बात कहति कोउ हँसि मुख मोरति ॥१६४॥
ऐसे चरित अनेक एक मुख कहे न जाई।
ज्यों तारागन चन्द्र भानु नहिं मुठी समाई॥ १६५ ॥
श्यामा श्याम सुजान सखिन की सभा सुहाई।
मनु छबि रीझि रसाल माल बन को पहिराई ॥ १६६ ॥

सखिन मध्य नित प्रिया सङ्ग पिय शोभित ऐसे।
सब सक्तिन मधि श्री समेत पुरुषोत्तम जैसे ॥ १६७ ॥
जिन पद-नख-छबि-छटा कोटि शशि सूरज सोहै।
तिन समान उपमान आन या जग में कोहै ॥ १६८ ॥
जेतिक उपमा कही सही परि सम नहिं लेखै।
ज्यों झीनें पट मधि अमोल नग सुघर परेखैं ॥ १६९ ॥
अखिल विश्वव्यापीक ब्रह्म जिनकी उजियारी।
सो वृन्दाबनचन्द्र सदा श्रीकुंजबिहारी ॥ १७० ॥
जहँ नित-नव खग मृग लतादि सखि सकल रसिकजन।
ह्वै ह्वै रूप अनूप दुहुनि सेवत अति दृढ़-मन ॥१७१॥
महा मनोहर मही मुकुर-मनि-मय सब ठाँहीं।
प्रतिबिम्बित सब शोभ दुतिय बन जनु भुव माहीं॥१७२॥
नित अनुराग सुहाग भाग आनन्दमई है।
नित रसरीति प्रतीत प्रीति नित नई नई है ॥ १७३ ॥
नित सुखसार बिहार सखी नित दरसन पावैं।
बिन सखियन की कृपा आन कोउ जान न पावैं ॥१७४॥
जहाँ जिती जे वस्तु अलौकिक नित-नव सोहैं।
सब सोभा कहि सकैं सुकबि या जग में कोहैं ॥१७५॥
मन भर चाँवर चारु सुघर घट इक मधि सीझत।
इक कन लै दृढ़ तोरि ताहि सम सब लखि लीजत ॥१७६॥
तैसेहि यह रस कथा यथामति कछु इक गाई।
इक मच्छर ज्यों सब अकाश की थाह न पाई ॥१७७॥
ऊख पयूष मधूनि आदि जग जिती मिठाई।
ते सब नीरस यहै मधुररस सरस निकाई ॥ १७८ ॥
स्वर्ग सुधा-रस पिये छीन तप भुव पर परई।
प्रेम सुधारस पिये जुगल नित दरसन करई ॥ १७९ ॥
प्रेम सुधानिधि महामधुर कोउ पार न पाहै।
अलप मीन मन मोर ताहि किहि बिधि अवगाहै ॥१८०॥
जलधर-धार अनेक एक चातक किमि पीवै।

कछु जल-कन मुख परे सु लै सुख पावै जीवै ॥१८१॥
चन्द्र चारु बहु इक चकोर छबि किहि बिधि गावत ।
निरखि हरखि हिय थकित रहत कछु कहत न आवत ॥१८२॥
रसना के दृग नहीं दृगनि के रसना नाहीं ।
कहै सु लखि नहिं सकै लखे जेहि कहे न जाहीं ॥१८३॥
तौ कहिये केहि भाँति प्रभा सब सुख के साधा ।
मीठो दै कछु कही रसिक छमियो अपराधा ॥ १८४ ॥
यहै परम माधुर्यध्यान सर्वोपरि जानौ ।
गोप्य गोप्य अति गोप्य भूलि जनि प्रगट बखानौ॥१८५॥
यहै निरन्तर ध्यान धरत कैलाश—निवासी ।
इहि बनसखि ह्वै दीप दिखावत करत खवासी ॥१८६॥
यहै ध्यान ब्रह्मादि धरैं सादर सिर नावैं ।
इन्द्रादिक हैं तुच्छ आन की कवन चलावैं ॥१८७॥
शुक, सनकादिक, नारदादि ब्यासादिक गावैं ।
शारद, शेष, गनेश, आदि कोउ पार न पावैं ॥१८८॥
आगम निगम पुरान आदि नित नेति बखानैं ।
ता महिमा कौं अलप बुद्धि इक जन क्यों जानैं ॥१८९॥
श्रीगुरु श्रीहरिव्यासदेव के शरणैं आयो ।
तिनकी कृपा सुदृष्टि यथामति रस जस गायो ॥१९०॥
महापतित महाकृपन कुटिल सठ क्रोधी कामी ।
सो लीनो अपनाइ कृपानिधि श्रीगुरुस्वामी ॥ १९१ ॥
जैसे पारस परसि लोह कंचन तन धरई ।
ज्यों चन्दन की पवन नीब पुनि चन्दन करई ॥१९२॥
श्रीगुरू की महिमा अनन्त कछु कही न जाई ।
जिन घर सिर धरि बासुदेव लकरी पहुँचाई ॥ १९३ ॥
सब-देवन के देव सदा गुरुदेव कहावैं ।
इन्हैं छाँड़ि के महामूढ़ जो औरै ध्यावैं ॥ १९४ ।
निज-सुख-हित 'रस-जुगुल-माधुरी' चरित बनायौ ।
रसिकन हितसों दियौ बिमुख सों महा दुरायौ ॥१९५॥

जे जन रसिक चकोर-मीन-चातक व्रत-धारी।
ते भल इहि मग चलैं आन कोउ नहिं अधिकारी १९६॥
जिनके यह रससार आनरस सुन्यौ न भावै।
ते नित ये सुख लहैं आन सपने नहिं पावै॥ १९७॥
यहै अगम आधार सुगम साधन किमि होई।
श्रीगुरु श्रीहरिव्यास-कृपा बिनु लहै न कोई॥ १९८॥
'रसिकगुबिन्द' सखि चरन सरन दिन दरसन पावै।
जय जय श्रीगुरुदेव यहै सुख दृगन दिखावै॥१९९॥

दोहा—यह अगाध निधि मधुर रस, छवि कछु कही न जाइ।
चटक चहै सबही पियौ, पै इक बुन्द समाइ॥ १॥
यहै जुगुल-रस-माधुरी, सादर लहै जु कोइ।
प्रेमभक्ति सब सुख सदा, 'श्रीगोविन्द' तेहि होइ॥ २॥

श्रीगोविन्दशरणदेवजी

* छप्पै *

श्रीगुरुदेव समान काव्य-रस-रीति दृढ़ाये ।
अनुशीलन-गुरुभक्ति सु जग जन पाठ पढ़ाये ॥
गद्यारूढ़ाचार्यपाद हरिभक्ति प्रसारी ।
श्रीवृन्दावन प्राप्त किये तजि असत विचारी ॥
श्रीगोविंददेव-कृत शिष्य श्रीगोविंदशरण आचार्यवर ।
श्रीमाधव संग जैपुर गये नृप विनती स्वीकार कर ॥

—बिहारीशरण

श्रीगोविन्दशरणदेवजी श्रीगोविन्ददेवजी के शिष्य थे। गुरुदेव के पश्चात् श्रीपरशुरामदेवाचार्यजो-परम्परानुगत-गद्दी को यही सुशोभित किये। इनका कविता-काल अठारहवीं शताब्दी है। इनके जन्म स्थान-माता पिता का नाम इत्यादि उपलब्ध होना अति असम्भव है; क्योंकि प्राचीन-पद्धति केअनुसारही अपने वाणी में इन्होंने आत्मसम्बन्धी विषय कुछ भी नहीं लिखा है और न सलेमाबाद में ऐसे कोई महानुभावही हुये हैं. जिन्हें आचार्य-पद-प्रेम प्रेरणा कर, तत्परिचय सम्बन्धी मुख्य विषयों का खोज ही करावे। वैष्णवों में शरणागत-सम्बन्ध को ही द्वितीय जन्म मान लेते हैं; किन्तु वहां यह समय भी प्राप्त नहीं अस्तु—

इनका एक आत्मशक्ति-पूर्ण प्रसंग, चिड़ावा निवासी स्वर्गीय पं० श्री राधिकाप्रसादजी कृत भक्तनामावली से ज्ञात है। वह इस प्रकार है—एक जमींदार जो आपका शिष्य था, उसने किसी समय कुछ रुपये भेंट कीया, उन रुपयों से मकान बनवाया गया। प्रतिष्ठामें उसने अनेक प्रकार की मिष्टान्न, व्यंजन तैयार करवाकर भोग लगवाया। श्रीसर्वेश्वरजी को भोग लगाने के पश्चात् पंगति होने लगी बहुत से वैष्णव प्रसाद पाने के लिये पंगति में विराजे। उसी समय मकान की छत टूटने लगी, जो विशाल शिलाओं से पटी थी। आपने खड़े होकर अपने बेंत से डाट लिया और कहा कि—"चिन्ता मत करो प्रेम-पूर्वक प्रसाद पाओ"। समस्त वैष्णव निर्भय होकर प्रसाद पाये, पश्चात् जब उस मकान से सभी वाहिर हुये उस समय आप भी बाहिर आगये इनके निकलते ही हजारों मन

का शिला लेकर वह मकान मलवा के रूप में परिवर्तन होगया। पश्चात् पांच मन का पुआ बनवाकर इस प्रायश्चित के लिये भोग लगवाए कि अशुद्ध मकान में भोग आरोग कर श्रीसर्वेश्वरजी को कष्ट हुआ है। उस शिष्य पर भी बहुत रुष्ट हुये, कारण कि उसने अशुद्ध रुपये भेंट किया था; जिससे यह भयंकर दृश्य उपस्थित हुआ। वह मकान भी उसी के रुपयों से बना था। रुष्ट होकर उसके यहां आना जाना भी त्याग दिये। यह आचार्यपादों के ऐश्वरीय-शक्ति का ही प्रत्यक्ष उदाहरण है।

इनके द्वारा निर्मित हजारों पदों की वाणी संग्रह सलेमावाद में सुरक्षित है। श्रीवृन्दावनस्थ मंगल वधाई के हस्तलिखित संग्रह ग्रन्थों में हजारों पद सम्मिलित हैं वे आचार्योत्सव में गाये जाते हैं। इस गद्दी के आचार्यपादों को भरतपुर नरेशों ने तीन पीढ़ी तक अपने यहां रखा और उनसे शिक्षा दीक्षा ग्रहण किया भरतपुर से सर्व प्रथम श्रीगोविन्दशरणदेवजी महाराज ही जैपुर नरेश जयसिंह के प्रार्थना करने पर जैपुर आये। यहां विशाल मंदिर निर्माण होकर गद्दी स्थापित हुई जो आद्यावधि 'श्रीजी की मोरी' नाम से विख्यात है। इसके आधीन कइएक बड़े-बड़े मंन्दिर थे। और लाखों रुपये की जीविकायें थीं; वे समस्त वैभव, रामसिंह के समय वैष्णव-शैव के झगने में, श्रीगोपेश्वरशरणदेवजी महाराज तृणवत् परित्याग कर सलेमावाद चले गये। वे समस्त मंदिर और जायदादें राज्य ने खालसे कर लिया।

[छप्पै]

सर्प पीवत नित पवन सोई दुरबल वपु नाहीं।
बन के गज तृण पात मस्त पीवर तन आहीं॥
कंद-मूल करि असन मुनी यों काल निवाहैं।
जल, थल जग में जीव सहज ही सुख अवगाहैं॥
जो इहि मिलै विरंचि-पद, त्रिपति न पावै अधम मन।
गोविंदसरन कहैं नरन कै इक संतोष जु परम-धन॥१॥

गंगा औरऊ नदी नीर मिलै सागर पहियां।
गर्व न मन कछु धरै रतन बहु भरे जा महियां॥
मेढ़क गोपद-नीर आय अति ही गरबानौं।
बैठ्यो आसन मारि मनौं तिहुँ पुर को रानौं॥

एक बकौहू जगत में यहै रसना लागी जु रट;
लघु विद्या जु गुन पाइ यौं गोविंदसरन फुलै अभट ॥२॥

ज्यौं सींचत तरु-मूल स्कंध साखा सरसाहीं;
ज्यों प्रानन कौ असन दियै इन्द्री त्रिप्ताहीं।
सब देवन को मूल एक अच्युत को गायो;
ताकी सेवा किये सहज ही सुख सब पायो।

यह प्रगट बचन भागवत में रिषिवर जु परीक्षित प्रति कह्यो;
सो सार भजन हरिदेव को गोविंदसरन निज जन गह्यो ॥३॥

कोउ कहै अमृतसिंधु मध्य कोउ विधिहि बतावै;
विधु बंदन कोउ कहत कोउ अहिधाय जतावै।
सिंधु खार क्यों हुए इंदु क्यों छीनक लागनि?
पति पतनी क्यों मरे अही मुख विष जु क्यों व भनि?

रात दिवस पंडित वदत हरि-नाम रहत जिहि मुख-सदन;
निश्चय करि गोविंदसरन सुधर बसत हरिजन-वदन ॥४॥

नहीं बड़े-कुल जन्म नहीं सौभाग्य हमारे;
बानीहू नहिं मूल वुद्धि-वल कछुन विचारे।
आकृत गुन करि हीन दीन बनही मधि ओका;
बिन कारन यदुनाथ कृपा जानत सब लोका।

कि पुरुष कै जननि प्रति हनूमान भाषै गरज।
अचरज सद्गुण एकनहिं मोहि कियो सखा लक्ष्मण अग्रज ॥५॥

अथवा सुर हरि भजो असुर कुलहू अधिकारी।
नर नारायण भजौ अमरहू भजनर नारी ॥
सर्व भाव गोविंदसरन जनकृत भल जानै।
औगुन गुनै न रंच रंच गुन मेक प्रमानै ॥

ब्रह्म नराकृत राम कै वर्नभेद नहिं कोय।
अवधि सकल जीवन भरी सुरपुर पठई सोय ॥६॥

गंगा पाप जु हरैं ताप रजनी यह टारैं।
सुरतरु कलपना हरै दरदी न मनी निहारै ॥
अमृत अमर जु करै हरै अहि-मणि विष-धारी।
औषधि रोग जु हरै चित्त-चिंतामणि-हारी ॥

ए आराध सब जगत में एक-एक गुन को करै ।
सन्त द्रवैं जा दीन पै गोबिंदसरन सब सुख करैं ॥ ७ ॥

धन को भ्रम मन जानि महीतल खोदि निहारयो ।
भस्म करी गिरि-धातु अर्थ बित काठ बिगारयो ॥
सरिता कौ पति सिंधु सोऊ दुस्तर रह्यौ भोई ।
सेए बहु नर देव कभी राखी नहिं कोई ॥

मंत्र साधि साधन थक्यौ हाथ जोरि हौं कहत तोहि ।
मिली न कौड़ी एक अब हे ! तृष्णा तू त्यागि मोहि ॥ ८ ॥

कवित्त

गुरुदेव कृपाबल पसुहुतौ नर भयौ गुरुदेव कृपाबल सुभ-असुभ दरसायो है; गुरु की कृपाते निज-रूप, पर-रूप जान्यौ भगवत मग सद् गुरुही बतायो है । गुरु की कृपाते सब रिद्धि अरुसिद्धि पाई गुरुकी कृपातेजगआय सिरनायो है; ऐसी वस्तु कौन ? जाते गुरु सुप्रसन्न कीजे गोबिंदसरन यहसोच जिय छायो है ॥ ९ ॥

पूरब जन्म किधौं द्विजकुल जन्मही में साध्यो निज धर्म पर्म कृपाको उतंग है; किधौं कोटिजन्म पाये जोगकी जुगति साधी अनल अराधि जीत्यो प्रबल अनंग है । किधौं नेम यम कीन्हें वेदपाठ कीन्हें किधौं जीव दयापाल लियो गोतौ श्रीगंग है; किधौं तप सिद्धि किधौं जपकौ भयौहै फल गोबिंदसरन जासों पायो सत्संग है ॥ १० ॥

घरकौ धनी तौ ग्रामपति की विभौकूं चाहै ग्रामपति कहै देशपति बात मोटी है; देश कौ धनी तौ मंडलपति की श्रीकौं चाहै सप्तदीप राज तन ममता अहोटी है । चक्रवर्ती हू कहाय इन्द्रपद भोग चाहै ब्रह्मपद चाहै पुनि बुद्धि तौ न लौटी है; गोबिंदसरन तृष्णा तरल निगोड़ी एक प्रभु के सरन बिन सबै बान खोटी है ॥११॥

राजै मृगनैनी पिकबैनी छबिरैनी वोरी लचकत छीन कटि सोभा भर भार है; बैगनिया सारी पै किनारी जरतारी भारी देखिके सुमारभयौ अति सुकुमार है । मनौ रूपसागर में सरस सिवार लसै किधौं चंद लपटाने पन्नग कुवार है; किधौं मखतूल स्याम मरकत के तार किधौं ठाढ़ी फुलवारी मांहि सुखवत वार है ॥१२॥

आनन की ओप अति बैनन बसीकरन नैन अनियारे विवि खंजन चय चार हैं; ललित श्रवन जुग करनफूल कल सोहै, मोहै मन

मोहन को अति सुकुमार हैं। बाजूबंध मोतिन के पहुँची रुचिर कर मोतिन के हार गुन रूप के आगार हैं। सारी स्वेत सारी तापै राजत किनारी प्यारी पौरपर ठाढ़ी सुखवत निजवार हैं ॥१३॥

ककरेजी सारी तन सोहै उजियारी नीकी लगी है किनारी ब्रज देखि जरितार है। भृकुटी नचानि अति मीठी बतरानि सुनि भासा की चटानि अजु रूप ही कौ भार है। लटकन मोती-जोती चहुँ ओर रही फैल पद्म से नैन चले सैनन की मार है। कुंवरि किसोरी गोरी थोर वय भोरी प्यारी ठाढ़ी फुलवारी माँझ सुखवत बार है ॥१४॥

सरस पलास-फूल कुसुम-मन-मोद-वन ललित द्रुमनि लगि चढ़ी वन बेलि री ! ठौर-ठौर सर तहां अमल कमल खिले नूत-मंजरी पै करत मधुकर केलि री। कोकिला को कलरव सुनिकै जगैगो काम आपही मनौगी मानि वचन सहेलि री। गोविंदसरन प्यारी उठि चलि मोहन पै ऐसौ है वसंत कल कंठ भुज मेलि री ॥१५॥

नृत्यत सुघंग दोउ राधिका-रमन संग रंग वरसावैं कल गावैं मृदु तान री। तत्तथेई थेई करें मति लेत मति हरें, भरे हाव भाव चाव एक ही समान री। ग्रीव की लटक औ चटक पट नील पीत उमगि उमगि अंग अंग लपटान री। वार वार कहैं विवि रीझि रीझि अंक भरें, गोविन्दसरन है विकानि ही की बान री ॥१६॥

जमुना सुकर कूल सरस संवारि राख्यौ, मनो चन्द्र चूरि रज मृदुल सुहावनो। मालती मधुर-गंध मन भए भौंर भ्रमैं सेवति सुवास विवि केलि सरसावनो। तैसोइ मयंक कला पूरन प्रगट भयो वन-छबि छाइ मन मदन जगावनो गोविन्दसरन रास-रसिक बजाइ वेनु ऐसो बृन्दाविपिन लख्यौ हैमनभावनौ ॥ १७ ॥

कनक-लता सी गोरी एक डार की सी तोरी भूषन वसन अंग सोहै वरषत है। छबि-सिंधु मीन किधौं चंचल-कल-खंजन से अनियारे नैन मैन मनै सरसत हैं। रंभा मैनका सी बारूँ पटतर दीजै काहि नीकी देव वधुन सी सबै पग परसत हैं; हेम-थार अंबमार रूप-गुन मंजरी सी आइ हुलसाइ तजै बसंत वरषत है ॥१८॥

लछिमी लुनाई चंद-वदन अधर-सुधा मृदु-वानी कामधेनु सम

सुखदानी है; चाँप भौंह रंभा हसं कंबु-कंठ विष परत कुच-कुम्भ वारनी सो मादिक भरानी है। धन्वंतरि पाणि अश्व मनोरथ रागमनि सुरहूआर्चन जगहि लै बखानीहै; रूप सिंधु प्यारी तन चौदह रतन भर्‍यो याही ते विहारी भयो अति अभिमानी है॥१६॥

बोलै मधुमंगल सो दानी मधुवानी कहि रोको मग जाय यह जात म्हरेठी है; केह वेर दान आगे मारि के हमारो गई औचक अचानक ही भागन सी हेटी है। याही बेर सब लहौ पाछले की दाव दै हीं अंग-अंग भरी याके रतन की पेटी है; कीजिये न गई अब दईने कराई भेट गोविंदसरन आज पहले ही भेटी है॥२०॥

ऐसी चाल चलो जो सबही को भले लगौ एढ़ी टेढ़ी बात यह औरन सों कहिवो; रावरे डराये कहो कैसे डरि बैठि रहौं ढोटा सदा हम ही को याही देश रहिवो। दधि को न दान सु गुनमंजरी सुन्यो है कान तुम नई रीति करौ कौन भांति सहिवो; ऐसो लघु मन किए कबहुँ न पुरी परी बड़ौ कोउ दान जाय दानिन सो गहिवो॥२१॥

जगे विवि प्रात वलि मोद न समात गात आलस बलित अति ललित रसीले हैं; झुमत झुकत जमुहात अङ्गरात दोउ सोहैं अङ्ग अङ्ग आभरन पट ढीले हैं। पीकवर छाप लगी ललित कपोलनि सो अंजन अधर दृग राजैं अर्द्ध मीले हैं; सखी गुणमंजरी लै सुकर मुकर देखि प्रतिबिंब अति लसि लजत लजीले हैं॥२२॥

प्रातकाल नंदलाल वाल उठि बैठे सेज सरस रसीली छवि-पुंज न कही परै; खुले कलवार अंक हारन उरझि रहे मरगजे बसन अब नई दुति को धरै। पीकवर लीक लगी ललित गण्डस्थल अधखुले नैन गुणमंजरी हिये को हरै; रजनी व्यतीत भई रुचि पल-पल नई उठिवो चहत पै न उठिवो सह्यौ परै॥२३॥

जुगल टहल हित सखी रगमगी डोलें कनक-लता सी भानु एक सांचे काढ़ी है; पानदान पीकदानी बिजन बसन हाथ काहु काहु कर चौंर चहुँ ओर ठाढ़ी हैं। गावति विभास गुणमंजरी वजावै बीन अतिही नबीन सुख-सलिता सी बाढ़ी है; पीव रूप-माधुरी न अंग को सम्हार काहू मानौ विवि चन्द सों चकोरी चाह चाढ़ी है॥२४॥

मंगला को भोग सखी मेवा मिश्री आई लैके कछु यक रुचि सो अरोगे दोउ प्यारे हैं; आरती करत गुणमंजरी लै आरती सों जय जय राधाधवजू की शब्द उचारे हैं। छबिन की भीर भई काहू न सँभार रही, सबें प्रान वारि जीवें दृगन के तारे हैं; सांवल गौर पट नील पीत शोभा देत राजें घनदामिनि ज्यों रूप उजियारे हैं ॥२५॥

चले स्नान कुञ्ज अब पग डगमग धरें विपिनवर भूमि सब भई रूपमई है; जिहि द्रुम लता तन चाहत युगलवर तेइ तेइ ठौर और रूप भार छई है। पलकन के पांवड़े बिछावत सखीजन देखि गुन-मंजरी विवस तन भई है; पंछी गहि मौन लखि पलक वसन भूलि रतिपति की हू अबमतिथकि गई है ।२६॥

रतन-जटित-चौकी दुति रोकी ग्रहनो की, मखमल गादी मृदुलवर छाई है; देत सुख हेत सखी कंचन की झारी कर जल भरि ल्याई सो सुगंध सरसाई है। तापै बैठे प्यारे मिलि वदन पखारि लीनै स्वच्छ हाथ सोधों पोंछि प्रभा की निकाई है; गौर साँवल अंगओपी मणि सोहै जैसे सखीजन जरे हरि हीयेही धराई है ॥२७॥

प्रथम फुलेल लै लगायो मृदु-अङ्गन सों पुनि उवटाय छबि छाये मन भाए हैं; सरस सुगंध जुत जल लै न्हवाये प्यारे अङ्ग-अङ्ग अंगुछाये पट चारु पहराए हैं। पादुका पदमपाँय आनि कर आगे धरी लटपटी गति लखि लोचन लुभाए हैं; निगम अगम सोइ भाषत सुभग जग भागनि भगिनि चारु चौकी पधराए हैं ॥२८॥

[दोहा]

श्रीगुरु गोविन्द कृत, हृत संशय अघ-सूल।
श्रीहरि गुरु-पद सुमिरि के, लिखौं महा सुखमूल ॥
देही बिन ज्यों देह यों, धाम क्षेत्र बिन संत।
तातें नित प्रति पाठ कर; धामक्षेत्र निजतंत ॥

श्रीगुरु निम्बादित्य प्रनाम। करि धरि उर में स्मामा-स्याम ॥ १ ॥
धामक्षेत्र चौपाई-बन्द। बर्नन करी देवगोविन्द ॥ २ ॥
इनको अर्थ अपर्मित भाई। इहाँ लिखत मैं ग्रंथ बनाई ॥ ३ ॥
तातें ग्रंथ हृदय ते जानौ। नाममात्र हम करें बखानो ॥ ४ ॥

निम्बादित-पद्धति की रीति। सुमिरों समता करि नित प्रीति ॥ ५ ॥
मथुरापुरी जान ध्रमसाला। पुरीद्वारिका धाम बिसाला ॥ ६ ॥
क्षेत्र गोमती परम सुहायो। सुखविलास वृन्दाबन गायो ॥७॥
गोबर्द्धन परिक्रमा सुनिलै। श्रीगोपाल-मंत्र नृप गुनिलै ॥८॥
इष्ट-रुक्मिनी युगल जानिलै। सामवेद ततसार मानिलै ॥९॥
श्रीबृन्दा देवी सुखकरनी। साखा अनँत अनँत दुखहरनी ॥१०॥
अच्युत-गोत्र नासिका-द्वार। श्रीहरि-मंदिर तिलक लिलार ॥ १॥
पूजा बंसीबट श्रीयमुना। सेवा पुलिन धूरि मन-रमना ॥१२॥
गरुड़ देवता अति उदार जू। श्रीमत सनकादिक आचार जू ॥१३॥
पाटसना सनादि भुज चारी। मलयाचल पुनि पाट निहारी ॥१४॥
मुक्ति समीप सहचरी भाव। प्रेम-भक्ति मन अधिक उछाव ॥१५॥
अष्टकाल नित ध्यान महासुभ। हरि गुरु भजन जानि तिनके उभ॥१६॥
हरि गुरु नाम अहार जु कहिये। ब्रत सुभ पाँच साँच करि लहिये ॥१७
श्रीगुरु निम्बादित्य प्रनाम सुमिरन तिनके स्यामा-स्याम ॥१८॥
अननि सरन ध्रम जुगल उपास शुक्ल बरन मल त्रिगुन बिनास ॥१९॥
नित्य पारसद बास इकंत। परमहंस सँहिता सु ग्रन्थ ॥२०॥
द्वैताद्वैत महा सुभ बाद। श्रीहरिव्यास सुर महाप्रसाद ॥२१॥
पंच काल पुनि पंच उपाय। पंच अर्थ जानौ चित लाय ॥२२॥
पंच अस्त्र धार पुनि पांच। संस्कार जिनके ए साँच ॥२३॥
पंचम बर्ण प्रगट छिति नित्य। नाम भागवत निम्बादित्य ॥२४॥
श्रीगुरु-बानी पाठ जु तिनके। मंत्रारथ विचार है जिनके ॥२५॥
ऐसे चालीसौ पर पाँच। निम्बादित्य हृदय में साँच ॥२६॥
सो हम लै चौपाइ बनाइ। जो गुरु मुखते जानौं भाइ ॥२७॥
धामक्षेत्र की बात सुहाई। श्रीमुख निम्बादित प्रभु गाई ॥२८॥
मेरे दास सही वह जानौ। धामक्षेत्र नित करत बखानौ ॥२८॥
धामक्षेत्र बिन साधू ऐसौ। देही बिना देह है जैसो ॥३०॥
धामक्षेत्र कौ अर्थ है भारी। गुरु ग्रन्थन ते लेहु बिचारी ॥३१॥
धामक्षेत्र माला सुभ नाम। चौपाई षोड़श अति अभिराम ॥३२॥
श्रीनिम्बादित तंतम गाई। श्रीगोबिंदसरन उर बसे सदाई ॥३३॥

[पद]

जय जय कृष्णचंद्र करुनानिधान; ब्रजजन पंकज बन सुखद भान।
नवल-जलधर सम अंग स्याम; लावन्य-धाम छवि कोटि काम।
अभय दैन भुजदंड मूल; दामिनि समान राजत दुकूल।
मद छके असित सित अरुन नैन; मृदु हँसन सुधा वरषत सु वैन।
कुंडल मंडित श्रुति दुति अतोल; परी झलक गंड सोभित कपोल।
मुख मुरली सुधा वरषत सुछंद; निज जन जीवन आनंदकंद।
सखि ! वृन्दावन खेलत वसंत; बृजरमनी मिलि भयौ सुख अनंत।
वंदित विरंचि; शिव पाद-मूल; बाढ़्यौ सुख-समूह कालिंदी-कूल।
'गोबिदशरन' रहौ हिए ध्यान; छयो सकल लोक पर जस-वितान॥२०॥

[राग-वसंत]

मंगल-निधान भजि कृष्णचंद्र; जाके नाम अगनि जरे पाप-वृन्द।
द्रुम धर्म मूल करुना निकेतु; पवना पवित्र कर अभय हेतु।
विश्राम-धाम जन जासु नाम; कविजन रसना अवलंबु स्याम।
जन परमहंस मुक्ता सुनाम; जग त्रिविध ताप विश्राम धाम।
है पाप विपिन को हरि-कुठार; वासना-वृन्द कैरव तुषार।
भक्ति-भूमि मृगपति उदार; मृग आन धम वर्जित विहार।
भवसिंधु-पोत हरि नाम एक; समतूल नाहिं साधन अनेक॥३०॥
विपिन-चंद जुग गौर-स्याम; सोभा-निकेत जन-पूर्ण-काम।
'गोबिंदशरन' जन जिवन मूल; भजि पद-पंकज मिटे सकल सूल॥३१॥

[राग-आसावरी]

सखी ! नीके बने ए छैल।
कुंवर ब्रजराज लला चलत गति सिंधु रमत अरैल॥
अरध भाग भृकुटी छीए सखी ! बाँधे पाग-सुरंग।
रतन-पेच तुर्रा लसैं तापै मोर को चंद उतंग॥
झगा केसरी सोहहीं सखी ! स्याम सलोने गात।
मन हरत हँसन मन-भावतो जब चितवत द्दग जलजात॥
इहि वानिक वनि लाड़िलो सखी ! वनक वनी ले संग।
हो हो हो मुख बोलहीं उड़यौ गुलाल सुरंग॥

पिचकारी कर कनक की रंग कंचन कलस भराय।
रँगीली त्रियन को छिरकहीं सुख बढ़यौ कह्यौ नहिंजाय॥
उत प्यारी संग सहचरी वय गुन रूप समान।
कनकलता पायन चलत छवि पावत रूप निधान॥
वाजे सरस वजावहीं वरवीना मुहचंग।
ढोलकी ढोल सुहावने महुवर मधुर मृदंग॥
हाथन फूलन की छरी गेंदुक फूल वनाय।
हरषि परस्पर खेलही मन वढ़यौ चौगुन चाय॥
इक नाचत इक गावही इक हँसत वढ़ावत मोद।
सोभित मदन बरात सी लखि हरष वढ़यौ दोउ कोद॥
मूठी भरी गुलाल की पुनि डारत भरि अनुराग।
नीकी छवि तहां पावहीं मनु पंकज छुरित पराग॥
अरुन वरन सव ह्वै गए धर अंवर वनवाग।
फैलि रह्यो दृग देखिए मनु हिय को अति अनुराग॥
कहत किसोरी भांवते अवकित जैहो लाल।
मन भायौ करि छांड़ि हैं सुंदर-नैन-विसाल॥
धूँधरि भई गुलाल की तामें छिपि कै छवीली वाम।
सखा न कोऊ संग रह्यौ गह्यौ आनि अचानक स्याम॥
घिरि आईं चहुँओर ते तरुनी-तन-कंचन-रंग।
चपलाथिर मनु राजहीं सोभित घन के संग॥
कोउ दृग अंजन आँजहीं कोउ परसत रुचिर कपोल।
कान्ह मुरली हरि लई कोउ लै आई पीत निचोल॥
फगुआ दिए अव छूटिहौ सुनौं कुँवर व्रजराज।
वहुत वेर छल वल गए वस परे हौ हमारे आज॥
मंद हसे मनमोहना फगुवा दियौ मँगाय।
यह सुख मुख न कह्यौ परै 'गोविंदसरन' वलि जाय॥ ३२॥

स्वामी श्रीहरिदासजी

छप्पै
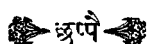
आसधीर उद्योतकर रसिक छाप हरिदासकी ॥
युगल नाम सो नेम जपत नित कुंजबिहारी।
अवलोकत रहे केलि सखी सुख के अधिकारी ॥
गानकला गंधर्व स्याम स्यामा को तोषे।
उत्तम भोग लगाय मोर मर्कट तिमि पोसे ॥
नृपति द्वार ठाढे रहैं दर्शन आशा जास की ॥

—श्रीनाभाजी

स्वामी श्रीहरिदासजी का जन्म, श्रीवृन्दावन से अर्द्ध कोस पर, राजपुर ग्रामान्तर्गत, सं० १५३७ में, भाद्र शुक्ल अष्टमी को हुआ था। इनके माता एवं पिता का नाम गंगाधर और चित्रादेवी था। ये सनाढ्य-ब्राह्मण-कुलोत्पन्न थे, जैसा कि कविन्द्र सहचरिशरणजी गुरु-प्रणालिका में लिखते हैं —

"श्रीस्वामी हरिदास रसिक-सिर-मौर अनीहा।
द्विजसनाढ्य सिरताज सुयश कहि सकत न जीहा ॥
गुरु अनुकंपा मिल्यो ललित निधिवन तमाल के।
सत्तरिलों तरु बैठि गनै गुन प्रिया लाल के ॥"

इनके भ्रातृ-वंश के सैकड़ों घर ब्राह्मण, आज पर्यन्त भी श्रीवृन्दावन और राजपुर में निवास करते हैं। बाल्यावस्था में इन्हें अन्य बालकों के खेल सम्बन्ध से उपराम थी, अहर्निश श्रीबिहारीजी की सेवा-युक्त खेलों में ही रत्त रहा करते थे। इनके इस प्रकार अद्भुत एवं चमत्कारिक-खेल को अवलोकन कर लोग आश्चर्यान्वित हुआ करते थे। जब पौगण्डावस्था को प्राप्त हुए; तब श्रीनिम्बार्क-चरण नैष्ठिक श्रीआशुधीरदेवजी ने विधि-पूर्वक यज्ञोपवीत संस्कार कर, मंत्रराज की दीक्षा दे स्वधर्म और आचार्य स्वरूप में प्रविष्ट कराया।

"अति विचित्र पुनि चित्र सुभावा ; सब मधि सब नहिं पावत दावा।
सब मिलि सबते अमिल प्रभावा। सब अभाव सबते सब भावा ॥
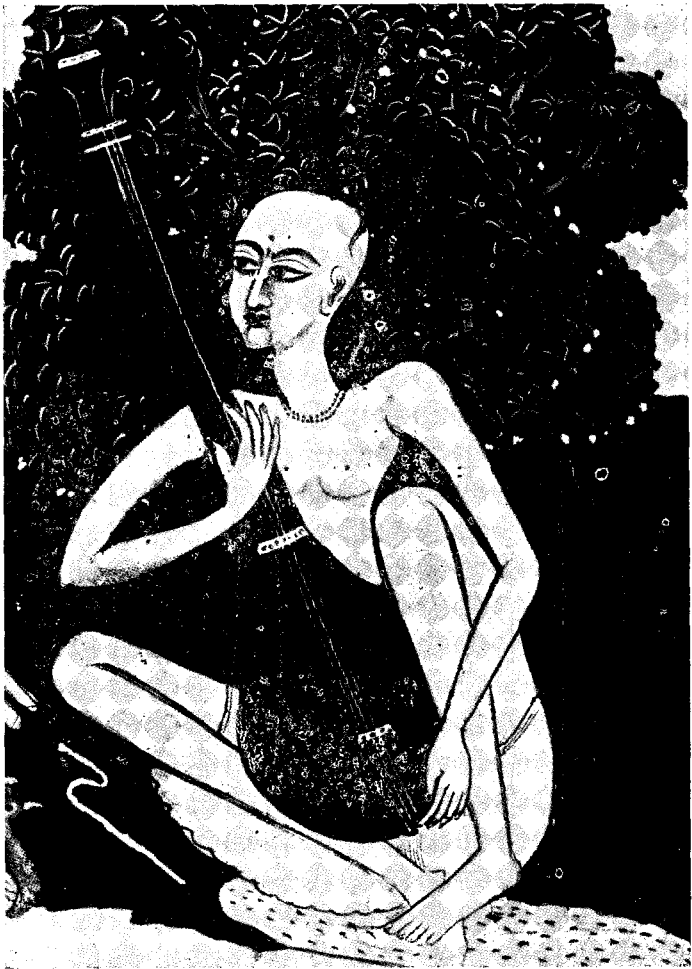
रसिकराजराजेश्वर, विरक्तवर-चूड़ामणि,
श्रीनित्यधाम, प्रिया-प्रियतम-पद-पद्म-मधुप, वृन्दावन-निवासी,
श्री १००८ स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज

स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज, प्रत्यक्ष-प्रगट,
श्रीप्रिया-प्रियतमको गान श्रवण कराते हुए।

असन वसन स्वादी न सवादा ; ना सुवाद नाहिन अपवादा।
सब सुख सहित सुखन सुख दोऊ; सबके लगत न लागे कोऊ।
निरअंजन रंजन सब केरे ; सबते दूरि सबन मिलि घेरे।

इस प्रकार ये अद्भुत स्वभाव में रहते हुये वृन्दावन-वास तथा भजन करने लगे।

श्रीआशुधीरदेवजी इनके दीक्षा-गुरू थे, ये श्रीनिम्बार्क सम्प्रदायांतर्गत एक प्रसिद्ध महात्मा थे, और श्रीवृन्दावन-वास करते थे। इनका परिचय देते हुये श्रीसहचरिशरणजीने गुरू-परम्परा में लिखा है—

सम्वत् पन्द्रहसै पैंतीसा ; भादों शुक्ल-अष्टमी दीसा।
बुधवार मध्यान्ह विचारयो; श्रीहरिदास प्रगट तनु धारयो।
गृह में वर्ष पचीस बिताए; फिर वैराग्य त्याग उपजाए।
सत्तरि वर्ष कीन्ह बनवासा; गुप्त भाव कीन्हा परकासा।

इस प्रकार ये सं० १५३५ में अवतरित होकर २५ वर्ष तक घरमें रहने के पश्चात् सं० १५६२ में विरक्त-वैष्णव होकर संवत् १६३२ तक निधुवन में विद्यमान रहे।

ये तत्कालीन एक बड़े भारी प्रसिद्ध महात्मा थे, इनके अनुयायी संत-कवियों के सिवाय, अन्य सम्प्रदायावलम्वी कवि महात्मागण भी इनकी प्रशंसा करना, अपनी वाणी तथा कवित्व-शक्तिका महत्त्व समझते थे। प्रशंसा करते हुए श्रीसहचरिशरणजी ने ललितप्रकाश में लिखा है—

प्रेमको सरूप छिति नेमको सरूप आछो, नेमको सरूप नेहनवल निदानकौ
प्रीतिको सरूप रस-रीतिको सरूप साँचो, राजत अनूप रूपरंग रसखानकौ
धामकोसरूप सखिस्यामकोसरूप संग, अंगनअभंग छबिस्यामासुरतानकौ।
स्वामीहरिदास आशुधीरतेप्रकाश कियो, जैसे उदयाचलते उदयहोत भानकौ।

भक्तमालकर्ता श्रीनाभाजी के गुरू श्रीरामानन्दसम्प्रदायाचार्य श्रीअग्रदासजी ने प्रशंसा की है—

नमो-नमो हरिदास वृन्दाविपिन-वासवर प्रान सरवस सदा बाँकेविहारी;
स्यामा-स्याम जुगलरूप-माधुर्य के रसिक रिझवार प्रेमावतारी।
परम-वैराग-निधि निधुवन वसत सदा भावनालीनसो प्रवीन भारी ;
कामना-कल्पतरु सकल संतापहर अग्रदासअलि कल्यानकारी।

अष्टछाप के कवि गोविंदस्वामी इनकी अनन्य रसिकता पर प्रसन्न होकर, इस मार्ग को ऋषि-मुनियों द्वारा गर्हित तथा वेदों के लिए भेदागम्य बताते हुए लिखते हैं:—

जा पथ को पथ लेत महामुनि मूँदत नैन गहै नित वाको ;
जा पथ को पछितात हैं वेद लहैं नहिं भेद रहैं जक जाको।

सो पथ श्रीहरिदास लह्यो रस रीति की प्रीति चलाय निशांको;
निशाननि बाजत गाजत गोविंद रसिक-अनन्यनको पथ बाँको।

लालस्वामी, जो एक प्रसिद्ध महात्मा-कवि हैं- उन्होंने प्रशंसा में निम्न लिखित दोहा कहा है:—

रवनि रसायन परिहरी शाह न मानत कौन;
आसू के हरिदास की लगे लाल पग पौन।

श्रीराधावल्लभीय-संत महाकवि श्रीध्रुवदासजी ने भक्तनामावलीमें लिखाहै-

रसिक अनन्य हरिदासजू गायो नित्यविहार;
सेवाहू में दूरि करि विधि-निषेध-जंजार।
सघन निकुञ्जन रहत नित बाढ़यौ अधिक सनेह;
एक विहारि हेत लगि छाड़ि दिये सुख देह।
रंक छत्रपति दुहुन की धरी न मन परवाह;
रहे भींजि रसमाधुरी लीने कर करवाह।

महाकवि श्रीव्यासवाणी-निर्माता ओड़छे के राजगुरु श्रीवृन्दावन-निवासी श्रीहरिरामजीव्यास ने स्वानिर्मित पद सेवा में अर्पण की है--

अनन्यनृपति श्रीस्वामीहरिदास।
श्रीकुंजविहारी सेये विन इकछिन न करी काहू की आस।
सेवा सावधान जानि दिन गावत सुघर रसरास;
ऐसो रसिक भयो नहिं ह्वैहैं भूमण्डल आकास।
देह विदेह भये जीवतही बिसरे विश्व—बिलास;
श्रीवृन्दावन रेणु तन मन भजि तजि लोक वेद की त्रास।
प्रीति रीति कीनी सबही सौ किये न खास खवास;
अपनो व्रत यह और निवाह्यो जबलग कंठ में स्वास।
सुरपति, भूपति, कंचन, कामनि, जिनके भाये घास;
अबके साधु व्यास हमहू से करत जगत उपहास।

इन प्रसिद्ध महानुभावों द्वारा की हुई प्रशंसाओं से विदित होता है कि ये प्रसिद्ध महात्मा थे। इनसे इनके रहन-सहन, उपासना-उपास्य स्वरूप, अपूर्व-त्याग प्रभृति का भी पता चलता है। इन पदों के अर्थ स्पष्ट ही हैं उल्लेख करने की आवश्कता नहीं!

स्वामीजी श्रीनिम्बार्कसम्प्रदायानुयायी विरक्त-वैष्णव थे—यह प्राचीन अर्वाचीन लेखक एवं कविगण सबों ने स्वीकार की है। विशेष विरक्तता तथा व्रज-रज-निष्ठा के प्रमाण-स्वरूप इन्होंने सम्प्रदायांतर्गत केवल करूवा-गूदड़ी प्रचलित की है—तिलकादि परिवर्तन नहीं किया।

ये प्रसिद्ध महात्मा थे ही–इसलिये इनके सैकड़ों प्रसिद्ध शिष्य हुए और सम्प्रदायांतर्गत एक भिन्न परम्परा तथा गद्दी स्थापित हो गई। इस गद्दी के तीसरी पीढ़ी में विहारिनिदेवजी हुए, इन्होंने विरक्तावस्था में आकर, स्वामीजी द्वारा प्रगटित तथा सेव्य ठाकुर श्रीविहारीजी को जगन्नाथ-नामक ब्राह्मण को (एक मुलतान के निकटस्थ उच्चग्राम निवासी जो वृन्दावन वास करते थे) सेवार्थ अर्पण कर दिया। कुछ वर्ष पश्चात् स्वामी हरिदासजी का निवासस्थान तथा विहारीजी का प्रागट्य-स्थान भी जगन्नाथ के वंशधरों के अधिकार में चला गया। पश्चात् इनके परम्परानुयायी गद्द्याचार्य तथा अन्य वैष्णवगण वृन्दावन में यत्र–तत्र निवास करने लगे। जब सम्वत् १७४१ में रसिकदेवजी ने रसिकविहारी-मन्दिर निर्माण करवाई तो इसी में पुनः गद्दी स्थापित हुई। इन्हीं रसिकदेवजी के शिष्य श्रीललितकिशोरी-देवजी थे, इन्होंने निधुवन पर पुनः अधिकार जमाना चाहा, किन्तु सफल नहीं हो सके—तब इन्होंने टट्टीस्थान स्थापित की। रसिक विहारी और टट्टीस्थान दोनों ही इस परम्परा की गद्दीस्थान हैं।

स्वामी श्रीहरिदासजी श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायांतर्गत एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी विरक्त संत महानुभाव थे। इनकी परम्परानुगत कई विद्वानों ने इन्हें श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायानुयायी तथा विरक्त संत लिखा है। श्रीरसिकदेवजी (जो सम्वत् १७४१ से १७५८ तक श्रीरसिकविहारी के गद्दी पर विराजमान थे और एक प्रसिद्ध विद्वान संत थे) ने लिखा है–'हंसादीन् च गुरुन्नत्वा नित्यौ कुँजविहारिणौ; सम्प्रदायप्रबोधाय वच्मि गुरु परम्पराम्।' पुनः कविवर श्रीकिशोरदासजी ने निजमतसिद्धान्त महाकाव्य में लिखा है...

स्वयं प्रकास्य वृन्दावन-धाम; सनतकुमार जान निहिकाम।
महलटहलनी धर्म दृढ़ायो; सो नारद बड़भागन पायो।
आचारज नारद वपु धारयो; पंचरात्र कर मत विस्तारयो।
तामें गुरु-पद राधास्याम; दिव्यकेलि क्रीड़त अभिराम।
सो मत श्रीनिम्बारक गह्यो; श्रीनिवास पुनि सोई लह्यो।

स्वामीश्रीहरिदासजी की ही परम्परानुगत-संत श्रीसहचरिशरणदेवजी ने भी लिखा है—

प्रथम हंस अवतार कियो निराधार सार को;
ताहि धरयो उर माहि हरन भ्रम भरन प्यार को।
जिनके शिष्य श्रीसनक-सनंदन जनचित-चन्दन;
सदय सनातन के जु करत मुनिगन पदवन्दन।

सनतकुमार महान सुयश निगमागम गावत;
करुणाविग्रह धारि चारहू भक्ति बढ़ावत।
श्रीमन्नारद विरद शरद शत चन्द्र-मंद-कर;
सदय हृदय गुणखानि जानि आनन्दकन्द पर ।
निंबादित्य सुनिंब ताहि पर रवि दर्शायो;
डंडी को भ्रम हरयो परम निजदास सुहायो।

इस प्रकार स्वामी श्रीहरिदासजी के अनुयायिओं ने हंस भगवान तथा श्रीनिम्बार्क-भगवान् से ही अपनी परम्परा स्वीकार की है। ऐसे ही भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद, श्रीराधाकृष्णदास, माननीय मिश्रबन्धु, पं० श्रीरामचन्द्र शुक्ल, श्रीवियोगीहरि, श्रीलोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी साहित्याचार्य, साहित्यरत्न—प्रभृति आधुनिक प्रसिद्ध विद्वान् लेखक तथा साहित्य महारथियों ने भी इन्हें श्रीनिम्बार्क संप्रदायानुयायी लिखा है। प्रणामो-सम्प्रदायावलम्बी तो इन्हीं के परम्परा में से हैं जो निम्बार्कीय हैं।

सम्वत् १६६५ में 'आचार्य-तत्वनिर्णय'-नामक एक ट्रैक्, श्रीनन्दकुमारशरण ब्रह्मचारी के नाम से प्रकाशित हुआ था—उसमें स्वामी श्रीहरिदास-परम्परानुगत विरक्त-वैष्णवों एवं विहारीजी के पुजारी गोस्वामियों के परस्पर स्वामी हरिदास-संबन्धी कई वर्ष प्रथम से लेकर अब तक के मतभेदों का उल्लेख है—उसमें लिखा है कि 'विहारीजी के गोस्वामीगणों के पक्ष से सम्वत् १६८४ में 'आवश्यक सूचना' प्रकाशित हुई थी—जिसमें इन्हें सारस्वत-ब्राह्मण तथा हरिदासपुर जन्मभूमि लिखे हुये थे, उसका वैष्णव शालिग्रामदासजी ने' मिथ्यावाद विधूनन' द्वारा खंडन किया था। दो वर्ष तक बराबर विज्ञापनों का दौर-दौरा रहा था, अंत में स्वामीजी की परम्परानुयायी विरक्त वैष्णवों के पक्ष से 'जय-पराजय आदर्शपत्रिका', निकली—इन दोनों पुस्तकों में प्रकाशित विषयों का किसी ने आज तक उत्तर नहीं दिया–जिस विवाद को दस वर्ष हो चुके।' इस पुस्तक में इन्हें और भी अनेक प्रकार से सनाढ्य ब्राह्मण-वंशावतंश, श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायानुयायी, श्रीआशुधीरदेवजी के शिष्य, और वृन्दावन के निकट राजपुर जन्मभूमि आदि सप्रमाण सिद्ध किये गये हैं। उसमें गोस्वामीगणों के सन् १६२४ में परस्पर सेवा-पूजा के लिये मोकदमे हुए, उसमें बयान तहरीरी की नकलें भी उद्धृत हैं, लिखा है—

'······उजरात नं० १ यह कि मन्दिर श्रीबिहारीजी निम्वार्क-वैष्णव-सम्प्रदाय का है। जिसकी कवायद के बमूजिब उदियात तिथि

के लिहाज से तिथि शुमार की जाती है, यानो बररत्वतूलूप आफताव जो हिंदी की तिथि मौजूद होती है······।' यह बयान तहरीर विहारीजी वाले पंचों के तरफ से लिखा गया था।

इस ट्रैक्ट में श्रीविष्णुस्वामी तथा इनके द्वारा प्रचलित सम्प्रदाय के सेवापूजा, सिद्धांत, पद्धति, उपासना, परम्परा, आचार्यों के नाम, भोगराग परिपाटी, सेवा के अधिकारी और पूर्वजों के शिष्य होने के साल-सम्वत् के विषय में प्रश्न किए गये हैं—जिनका प्राप्त होना असम्भव है। ये वही बता सकता है--जो परम्परा से सम्प्रदाय का चिर-सेवक हो।

इस पुस्तक में अनेक प्राचीन पट्टे प्रमाणों द्वारा स्वामीजी निम्बार्कीय सिद्ध किये गये हैं, तथा इसमें उपासना विवाद से भी स्वपक्ष पुष्ट करने की चेष्टा की गई है। वास्तविक में विष्णुस्वामी सम्प्रदाय में वात्सल्य-भाव की उपासना है, शृंगार की नहीं। ललितादि अष्टसहचरि निकट सेवा में होने से शिंगार की उपासना सिद्ध होती है—जिसकी निम्बार्क-सम्प्रदाय की वाणियों में यथेष्ट उपलब्धि है। ललितादि की उपासना जिसे देखना हो, श्रीकृष्णदासजी-कृत माधुर्य-लहरी आदि देख सकताहै। परम्पराप्राप्त से सेवादिनामोंसे भी सम्प्रदाय का पता लग सकता है—श्रीनिम्बार्क-संप्रदाय मे हिन्दुस्तान के कोने-कोने में सैकड़ों विहारीजी के मन्दिर हैं, किन्तु विष्णुस्वामी सम्प्रदाय में नाम के लिये ढूंढ़ा जाय तो एक भी नहीं निकलेगा। श्री निम्बार्क-सम्प्रदाय में किशोरावस्था की जुगल-उपासना है--वैसे इस सम्प्रदाया-नुयायी महानुभावों द्वारा निर्मित इस सम्प्रदाय को वाणियें भी 'युगलमाधुरी-लीलाविषयों में वर्णित हैं—इन्हीं में से केलिमाल भी है। विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय में ऐसी एक भी वाणी नहीं। अंत में इस ट्रैक्ट में व्रज-मंडल के चतुः सम्प्रदायी वैष्णवों के हस्ताक्षर उद्धृत हैं। सभों ने स्वीकार की है, कि स्वामी हरिदासजी श्रीनिम्बार्क-संप्रदाया-नुयायी थे।

स्वामीजी की उपासना सखी-भाव (गोपी भाव) की है, तथा भक्ति शृङ्गार है। इन्होंने अपनी वाणियों में दिव्यप्रेम-वर्णन की है। जो मनुष्य मानवीय प्रेमकाव्य से इन रसिकों की वाणियों से समता करते हैं वे मूर्ख हैं, भक्ति-पथ से लाखों कोस दूर हैं। इस प्रकार के रसिकों की उपासना सिद्धांत का विवेचन करते हुए विहारी-दर्शनकार लिखते हैं—'भक्ति-शृङ्गार में भक्त आत्मा भगवान में कान्त अर्थात्

पति-भाव से भक्ति करती है, और अपना सर्वस्व लोक और परलोक भगवान के चरणों में समर्पित करती है। इस प्रकार की भक्ति श्रीमद्भागवत-धर्म या वैष्णव-धर्म के प्रेम मूलक भक्तिमार्गी महान् भक्तों ने की है। इसमें अशेष सौंदर्य-निधि, प्रेम मूर्ति भगवान् से मिलने की तीव्रतम आकांक्षा होने पर प्रियतम भगवान् से भावनारूपसे तदाकारता प्राप्त हो जाती है। भगवान् में यह भाव भक्ति की तल्लीनता में उस समय होता है जब भक्तजीवात्मा को यह दृढ़ अनुभवात्मक ज्ञान हो जाता है कि भोक्ता तो केवल भगवान् है, और सम्पूर्ण चराचर भोग्य हैं। जब तक अपने आपमें भोग्य दृष्टि भलीभाँति न हो जाय, तबतक भगवान् में भोक्ता की दृष्टि असंभव है।···प्रेम-तत्त्व की जैसी उदात्त अभिव्यंजना वैष्णव-कवियों में पाई जाती है, वैसी संसार साहित्यमें सर्वथा दुर्लभ है।···इसी प्रकार इनकी वाणियों में भी भक्ति, प्रेम-तत्त्व की विस्तृत व्याख्या है।···इनके रचयिता परम वैष्णव भक्त-कवि लोक परलोक से परे केवल प्रेमानंद का वर्णन करने में तल्लीन रहते हैं। उन्हें लोक-रक्षा, लौकिक मर्यादा से कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा। उनका वर्णनीय कृष्ण गोपी-प्रेम भक्त के भावना लोक का वर्णन है। उसमें लौकिकता को गुंजाइश नहीं है। इनका एकान्त उद्देश्य परब्रह्म श्रीकृष्ण और व्रजगोपियों विशेष कर ब्रह्म की आल्हादिनी-शक्ति श्रीराधिकाजी को लेकर प्रेमतत्त्व की विस्तृत अभिव्यञ्जना-मात्र है। इन रचनाओं में श्रीकृष्ण के लोक-पक्ष का समावेश नहीं है। यथार्थ में ऐसे वर्णनों में तो माधुर्य पूर्ण प्रेम-भक्ति का ही वर्णन रहता है।' भक्ति के प्रधान आचार्य देवर्षि श्रीभगवान्–श्रीनारदजी ने भी प्रेम-मूलक चूड़ांत भक्ति का आदर्श व्रजगोपियों को ही ठहराया है— 'यथा व्रजगोपिकानाम्।' श्रीमद्भागवत में श्रीशुकदेवजी ने भी लिखा है- नेयंविरंचो न भवो न श्रीरप्यंङ्गसंश्रया; प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात्।' अर्थात् 'विमुक्ति देने वाले भगवान् श्रीकृष्ण से जिस कृपा (प्रसाद) को व्रजगोपियों ने प्राप्त किया था, उसे न ब्रह्मा न शंकर और न उन हरि के वामाङ्ग में निरन्तर वास करने वाली लक्ष्मी ही प्राप्त कर सकीं, भक्ति शास्त्र के अनुसार यही व्रजगोपिकाएँ भक्ति का चूड़ांत आदर्श हैं, और इनमें भी श्रीराधिकाजी का प्रेम तो इस मधुर गोपी प्रेम का चूड़ांत निदर्शन है।इनकी चरण-रज को प्राप्त करने के हेतु ब्रह्मादिक देवता भी लालायित रहते हैं। भक्ति के चरम आदर्श गोपी-प्रेम को समझने के लिए इस अशुद्ध एवं अन्नमय देह और इन्द्रियों तथा वासनामय अन्तःकरण को विकसित करना पड़ेगा। इनके

बहुत ऊपर उठकर शुद्ध-भाव से भगवान का अनुग्रह प्राप्त करने के हेतु सम्पूर्णतया आनन्द-घन भगवान की शरण लेनी पड़ेगी। इस प्रकार जब विशुद्ध अन्तःकरण में प्रेममय इन्द्रियां और शरीर नूतन उत्पन्न हों, और प्रेममय जगत में विहरण करें, तबतक ही गोपियों के विशुद्ध प्रेम को समझने की सामर्थ्य हो सकती है गोपियों के प्रेम में लौकिकता के साथ आलौकिक भक्ति का अद्भुत अभिन्न सामंजस्य है। उनकी उद्दाम चित्त-वृत्ति में प्रेम-भक्ति और वासना का संगम हुआ है। कांत-भाव की भक्ति करने वाली गोपिकायों के मनोभावों में इन तीनों की प्रधानता है, इसीसे वे कृष्णलीलामयी और कृष्ण विलासिनी थीं। उनके श्रीकृष्ण अनादि, अनंत, सर्वांतर्यामी एवं सृष्टिकर्ता पालक एवं संहारक होते हुये भी उनके लिये यशोदा के पुत्र ग्वालों के सखा और गोपीजन-वल्लभ हैं। उन्होंने श्रीकृष्ण में मनुष्यत्व और देवत्व को पृथक करके नहीं देखा है। वृन्दावन के गोपीजन-प्रिय श्रीकृष्णके आलौकिक में लौकिक जिस मधुररूप हास-विलास की तरंगों से परिपूर्ण अनंत सौंदर्य का समुद्र है। इसमें लोक-पक्ष की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा है, और उस सौंदर्य और प्रेम के निधान सच्चिदानंद के आगे प्रायः शील और संकोच को न्योछावर कर दिया है। इसीसे महान अध्यात्मिक भावना से परिपूर्ण भक्ति-श्रृंगार की वैष्णव शाखा के भक्त कविश्वरों ने अपने भगवत् प्रेम की पुष्टि के लिये जिस श्रृंगारमयी लोकोत्तर छटा और आत्मोत्सर्ग की अभिव्यञ्जना से जनता को रसोन्मत्त किया, उसका लौकिक, स्थूल दृष्टि रखने वाले जीवों पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसकी ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। इसीसे मलीन हृदय, विषयाँध लोगों ने इस रचना में विषय की प्रधानता समझने का भ्रम किया है। महान भक्त वैष्णव कवि भगवतरसिक, जो '''श्रीस्वामी हरिदास के सम्प्रदाय के अनन्य वैष्णव थे, इसीको लक्ष्य करके लिखते हैं'—

> यह रसरीति प्रिया-प्रियतमकी दिव्यदृष्टि जल जैसे री;
> विषयी, ज्ञानी, भक्त, उपासक, प्राप्त सबन को तैसे री।
> कदली-खंभ, पपीहा, सीपी स्वाँति बून्द जल जैसे री;
> 'भगवत्, कछू विषमता नाहीं, भूमि भाग्य फल तैसेरी।

स्वामी श्रीहरिदास के चरित्र इस संप्रदाय के प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ श्रीकिशोरदास-निर्मित निजमत-सिद्धांत, और महंत

श्रीसहचरिशरण कृत ललितप्रकाश में वर्णित हैं, जो इनके चमत्कारपूर्ण दैविशक्तिके द्योतक हैं। एकवार दयाराम-नामक ब्राह्मण इनका शिष्य होकर भेट में पारस पत्थर अर्पण की; किन्तु इन्होंने उस पत्थर को जमुनाजी में फेंक दिया, उसके दुखित होने पर जमुनाजी में सहस्त्रों पारस दिखाये।

ये निधुवनमें एक स्थान पर नियम पूर्वक दंडवत करते थे, शिष्यों के जिज्ञासा करने पर इन्होंने वहाँ एक गुफा में विहारीजी का दर्शन कराया। वह अगहन शुक्ल-पञ्चमी का शुभ दिन था, विहारीजी गुफा से बाहिर लाये गये और नियमित रूप से सेवा होने लगी जो वृन्दावन में 'बाँकेविहारी' नाम से विद्यमान हैं। अकवरी-दरवार के प्रसिद्ध गवैया तानसेन इन्हीं के शिष्य थे, एक वार तानसेन वीरवल आदि को संग लेकर अकबर बादशाह वृन्दावन आया और इनका दर्शनकर कृत-कृत्य हो गया। बादशाह के द्वारा कुछ लेने के लिए आग्रह करने पर मोर बन्दरों के लिये १०० मन चना स्वीकार किया। किसी समय राजाराम बघेल को इनके द्वारा व्यवहरित रज-पात्र में घृणा करने पर उन पात्रों का दर्शन उसे स्वर्ण निर्मित हुआ, पश्चात् उन्होंने क्षमा मांगी। वृन्दावन में श्रीनित्यानंद, श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु का आगमन हुआ था। स्वामीजी के निकट भी गये, उसी समय राधाकुंड-निवासी श्रीरघुनाथ-दास अपनी मानसिक-शृंगार में खोई हुई प्रियाजी की पुष्प-वेणी ढूंढ़ते वहीं आ पहुँचे। स्वामीजीने वहीं अस्वत्थ वृक्ष के नीचे पता बताते हुये उनकी मानसिक सेवा की समस्त व्यवस्था वर्णन कर दी। समस्त समाज आश्चर्य-चकित रह गया। लाहौर-निवासी विज्ञानी-नामक क्षत्री के हृदय में अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न हुआ वह वृन्दावन आ गया, जब स्वामी के दर्शन को गया तो एक अतर की शीशी, जो बहुत ही कीमती थी, भेट की। इन्होंने उसे जमुना-पुलिन में उंमेल दी। उसके दुखित होने पर, उसे विहारीजी के दर्शन के लिये कहा। उसने मन्दिर में आकर दर्शन की, तो अपना अतर विहारीजी के अंग पर लगा हुआ पाया। उसकी शंका निवृत्त हुई और इनके भाव-सेवा के प्रभाव पर मुग्ध होकर क्षमा मांगी। उस समय उसे साक्षात भगवद् दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उसने विविध प्रकार से इनकी स्तुति की। व्यासजी ने प्रश्न की 'उसे आपने क्या दर्शन कराया, जिससे उसका हृदय शुद्ध होकर, दुर्ल्लभ भक्ति उदय हुई?' इन्होंने कहा कि जो उसने दर्शन किया—वह आप

सब भी करो, सबों ने श्रीठाकुर-प्रियाजी को सहस्रों सखियों के संग, सहस्रों सूर्य्य के समान प्रज्ज्वलित तेज में दर्शन किये। यह लीला एक क्षण में ही अन्तर्ध्यान हो गई। इनके ईश्वरीय-शक्ति पर मुग्ध होकर, सबों ने स्तुति की।

जब श्रीहरीरामव्यासजी ने अपने पुत्रों के लिये वैभव को तीन हिस्सों में विभाग किया तो छोटे श्रीकिशोरदासजी ने तिलक कंठी एवं छाप ली, उस समय उनके नेत्रों से अश्रु-बूंद टपकने लगे। श्रीव्यासजी ने एकान्त में इस का कारण पूछा, इन्होंने कहा—"यह मेरे मनमें प्रथम ही आनी उचित थी आज पर्य्यन्त व्यर्थ ही समय नष्ट किया।" श्रीव्यासजी ने पुत्रको हृदय से लगाकर प्यार किया और स्वामीजी के शिष्य होने का अधिकारी समझ कर विरक्त शिष्य कराया।

ऋषिशर्मा नामक षट्शास्त्री पंडित काश्मीर में रहता था। इसके संग ५२ शिष्य एकसे एक बढ़कर विद्वान रहते थे। कश्यपपुरी के जापी ब्राह्मण और इसमें शत्रुता रहती थी, एक बार उनमें परस्पर शास्त्रार्थ हुआ। शर्त ठहरी कि-जो हारेगा उसीको शिष्यता स्वीकार करनी पड़ेगी। जापी ब्राह्मण हार गये पश्चात् उसे नीचा दिखाने के लिये इन्होंने देवी की आराधना की। देवी ने उन्हें हराने के लिये युक्ति बताई कि-"ऋषिशर्मा से कहो कि वृन्दावनस्थ स्वामी श्रीहरिदासजी के शिष्य श्रीअनन्य को परास्त करो तो शिष्यता ग्रहण करेंगे"। ऋषिशर्मा समस्त शिष्यों को संग में लेकर वृन्दावन आया और अनन्य से शास्त्रार्थ के लिये कहा। इन्होंने कहा—"कि वाद-विवाद हम नहीं करते, केवल ईश्वर का भजन करना जानते हैं।" उसके विशेष आग्रह करने पर इन्होंने आत्मशक्ति प्रगट की। उनसे प्रश्न किया कि—"तुम कौन कौन शास्त्र जानते हो?" ऋषिशर्मा ने कहा कि—"हम कोई शास्त्र नहीं जानते।" फिर इन्होंने कहा तुम हार गये? उसने उत्तर दिया, हाँ! उसकी इस प्रकार विक्षिप्त-अवस्था हो गई और परास्त होकर, स्वदेश को लौट गया।

श्रीप्रकाशदास, जो इनके शिष्य थे, उनका प्रथम नाम पर्वतपुरी था। ये दसनामी—गोसांई बड़े ही सिद्ध, सर्व-स्वरूप-धारण-शक्ति-सम्पन्न थे। स्वामीजी की प्रसिद्धी श्रवण कर, वृन्दावन आये और विविध स्वरूप धारण करने लगे; किन्तु स्वामीजीने सबका परिचय देदिये। उसने आधीनता स्वीकार की और इनका अद्भुत प्रभाव देखकर शिष्य होगया।

इस प्रकार स्वामीजी के अनेक चमत्कारपूर्ण अद्भुत कृत्य हैं जिनको वर्णन करने के लिये एक स्वतंत्र ग्रन्थ की आवश्यकता है। इन्होंने 'केलिमाल' जिसमें श्रीराधाकृष्ण के नित्यविहार-सम्बन्धी १०८ पद हैं और १८ सिद्धान्त के पद निर्माणकिये हैं जो प्रकाशित हो चुके हैं।

सिद्धान्त के पद

ज्योंही ज्योंही तुम राखत हो त्योंही त्योंही रहियत हो हरि!
और तौ अचरचे पायँ धरौं सो तौ कहौ कौन के पेंड़ भरि?
जदपि हौं अपनौ मनभायो कियो चाहौं सुतौ कैसे कर सकौं जोतुमराखौपकरि
कहैं श्रीहरिदास पिंजराके जनावर लों तरफराय रह्यो उड़िवे कौ कितौऊ करि

[पद]

काहू कौ बस नाहिं तुम्हारी कृपा ते सब होइ बिहारिनि।
और मिथ्या प्रपंच काहे को भाखिये सो तौ है हारिनि॥
जाहि तुमसों हित, तासौं तुम हित करौ सब-सुख-कारिनि।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी प्राननि के आधारनि ॥२॥

[पद]

कबहुँ-कबहुँ मन इत उत जात, यातें वह कौन है अधिक सुख?
बहुत भाँतिन घत आनि राख्या नाहिं तौ पावतौ दुख॥
कोटि काम लावन्य विहारी ताके मुहाँचुही सब सुख लिये रहत रुख।
श्रीहरिदासके स्वामी-स्यामा-कुंजविहारी कौ दिनदेखतरहौं विचित्र मुख॥३॥

[पद]

हरि भज हरि भज छांड़ि न मान नर-तनकौ।
मति बंछै रे! मति बंछै तिल तिल धन कौ॥
अनमाँगे आगे आवैगो ज्यों पल लागै पलकौ।
कहैं श्रीहरिदास मीच ज्यों आवै त्यौं धनहै आपनकौ॥४॥

[राग-विलावल]

हे हरि! सो मोसौं न विगारन को, तोसौं न सँम्हारनकौ मोहि तोहि परीहोड़।
कौनधो जीतें कौनधो हारे पर बदीनन छोड़॥
तुमरी मायावाजी पसारी विचित्र मोहे मुनि सुनि काके भूले कोड़।
कहि श्रीहरिदास हम जीतें हारे तुम तऊ न तोड़॥५॥

[राग—आसावरी]

बंदे अखतियार भला।
चित न डुलाव आव समाधि भीतर न होहु अगला॥
न फिरि दर दर पिदर दर न होहु अंधला।
कहि श्रीहरिदास करता किया सु हुआ सुमेर—अचल चला॥६॥

[पद]

हित तो कीजै कमलनैन सौं जा हित के आगे और हित सब लागै फीकौ।
कै हित कीजै साधु—संगत सौं जो कलमस जाय जी कौ॥
हरि को हित ऐसौ जैसौ रंग मजीठ संसार हित रंग कसूंभ दिन दुतीकौ।
कहि श्रीहरिदास हित कीजै बिहारीजी सौं और निवाहु जानिजीकौ॥७॥

[पद]

तिनका बयापि के बस।
ज्यों भावै त्यों उड़ाय लै जाय अपने रस॥
ब्रह्म-लोक सिव-लोक और लोक अस।
कहि श्रीहरिदास विचारि देखौ बिना बिहारी नाहि जस॥८॥

[पद]

संसार—समुद्र मनुष्य मीन, नक्र, मक्र और जीव बहु बंदसि।
मन बयार प्रेरे सनेह फंद फंदसि॥
लोभी मर जिया लोभ-पिंजरा पदारथ चार खंड खंडसि।
कहि श्रीहरिदास तेई जीव पार भए जे गहि रहे चरन आनंद नंदसि॥

[पद]

हरिके नाम कौ आलस कित करत है रे! काल फिरत सर साधै।
बेर कुबेर कछू नहिं जानत चढ्यौ रहत है काँधे॥
हीरा बहुत जवाहिर संचे कहा भयो हस्ती दर बाँधे।
कहि श्रीहरिदास महल में बनिता बनि ठाढ़ी भई,
कछु न चलत जब आवत अंत की आँधे॥१०

[पद]

देखो इन लोगनि की लावनि।
बूझत नहिं हरि-चरन—कमल कौ मिथ्या जन्म गमावनि॥
जब जमदूत आनि घेरत हैं तब करत आप मन भावनि।
कहि श्रीहरिदास तबहि चिरजीवै जब कुंजबिहारी चितावनि॥११॥

[पद]

मन लगाय प्रीति कीजै कर करवा सौं ब्रजवीथिन दीजै सोहनी।
वृन्दावन सो वन उपवन सौं वन गुंजमाल हाथ पोहनी।
गो गो सुतन सो मृगी मृगी सुतन सों और तन नेक न जोहनी।
श्रीहरिदास के स्वामी-स्यामा-कुंजबिहारी सौं चित्त ज्यों सिर दोहनी॥१२॥

[राग—कल्यान]

हरि को ऐसोही सब खेल।
मृगतृष्णा जग व्यापि रह्यो है कहूँ विजौरो न वेल॥
धन-मद, जोवन-मद, राज-मद ज्यों पंछिन में डेल।
कहि (श्री)हरिदास यहै जिय जानौ तीरथ को सौ मेल॥१३॥

[राग—कान्हरो]

झूठी बात साँची करि दिखावत हौ हरि नागर।
निसिदिन बुनत उधेरत जात प्रपंच को सागर॥
ठाठ बनाय धर्यौ मिहरी कौ है पुरुष ते आगर।
कहि श्रीहरिदास यहै जिय जानौ सपने को सौ जागर॥१४॥

[पद]

जगत प्रीति करि देखी नाही गटी को कोऊ।
छत्रपति रंक लौं देखे प्रकृति विरुद्ध बन्यौ न कोऊ॥
दिनजो गये बहुत जन्मन के ऐसे जावो मति कोऊ।
कहि 'श्रीहरिदास' मीत भले पाए बिहारी ऐसेपावौ सबकोऊ॥१५॥

[पद]

लोग तो भूले भले भूले तुम मति भूलो मालाधारी।
अपनो पति छांड़ि औरन सों रति ज्यों दारन में दारी॥
स्याम कहत ते जीव मोते बिमुख भए जिन दूसरी करि डारी॥
कहि 'श्रीहरिदास' जज्ञ देवता पितरनकौ श्रद्धा भारी॥१६॥

[पद]

जौलौं जीवै तौलौं हरि भजिरे! मन और बात सब वादि।
दिवस चारि के हला भला में तू कहा लेइगो लादि?
माया-मद, गुन-मद जोवन-मद भूल्यौ नगर विवादि।
कहि 'श्रीहरिदास' लोभ चरपट भयो काहे की लगै फिरादि॥१७॥

[पद]

प्रेम-समुद्र रूप-रस गहरे कैसे लागे घाट ?
वेकार्‍यौ दै जान कहावत जानपन्यौ की कहा परी बाट ?
काहू कौ सर सूधो न परत मारत गाल गली गली हाट।
कह 'श्रीहरिदास' जाने ठाकुर बिहारी तकत ओट पाट ॥१८॥

* श्रीकेलिमाल *

[राग-कान्हरो]

माई सहज जोरी प्रगट भई जु रंग की गौर-स्याम घन-दामिन जैसे।
प्रथमहुँ हुती अबहूँ आगैहूँ न रहिहैं न टरिहैं तैसे ॥
अंग अंग की उजराई सुघराई सुंदरता ऐसे।
'श्रीहरिदास' के स्वामी-स्यामा-कुंजबिहारी सम-वैस वैसे ॥१॥

[पद]

रुचि के प्रकास परस्पर खेलन लागे।
राग-रागिनी अलौकिक उपजत नृत्यत संग अलग लाग लागे ॥
रागही में रंग रह्यौ रंगके समुद्र में ए दोऊ झागे।
'श्रीहरिदास' केस्वामी-स्यामा-कुंजबिहारी पै रंग रह्यौ रसही में पागे ॥२॥

[पद]

ऐसेही देखत रहौं जनम सुफल करि मानौं।
प्यारे की भाँवती भाँवती के प्यारे जुगलकिसोरै जानौं ॥
छिन न टरौं पल होहु न इत उत रहौं एक तानों।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी मन रानों ॥ ३ ॥

[पद]

जोरी विचित्र बनाई री ! माई ! काहू के मन के हरन कौ।
चितवत दृष्टि टरै न इत उत मन, बच, क्रम याही सँग भरन कौ ॥
ज्यों घन-दामिनि संग रहत नित बिछुरत नाहिन और बरन कौ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी-स्यामा-कुंजबिहारी न टर नकौ ॥ ४ ॥

[पद]

इत उत काहे को सिधारति ? मेरी आँखिन आगे ही तू आव।
प्रीति कौ हितू हौ तौ तेरौ जानौं ऐसो ही राखि सुभाव ॥

अमृत से वचन जिय के प्रकृति सौं मिलि ऐसोही दै दाव।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कहतरी प्यारी!प्रातिकौ मंगल गाव ॥५॥

[पद]

प्यारीजू जैसे तेरी आँखिन में हौं अपनपौ
देखत हौं तैसे तुम देखति हौ किधौं नाहीं।
हौं तोसौं कहौं प्यारे आँखि मूंदि रहौ लाल निकसि कहाँ जाहीं ?
मोकौ निकसिवे कौ ठौर बतावो साँची कहौं बलि जाऊँ लागौं पाहीं।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी
तुमही देख्यो चाहत और सुख लागत काहीं॥

[पद]

प्यारी तेरौ बदन अमृत की पंक तामें बींधे नैन द्वै।
चित चल्यौ काढ़न कौ, विकच संधि संपुट में रह्यौभ्वै,
बहुत उपाइ आहिरी प्यारी! पै न करत स्वै॥
'श्रीहरिदास' के स्वामी-स्यामा-कुंजबिहारी ऐसे रहौह्वै ॥७॥

[पद]

आवत जात बजावत नूपुर।
मेरो तेरौ न्याव दई के आगे जो कछु करौ सो हमारे सिर ऊपर॥
प्यारीजू निपट निकट मवास ह्वै रही पैंड दू पर।
'श्रीहरिदास' के स्वामी-स्यामा-कुंजबिहारी विलसत निहचल भूपर ॥८॥

[पद]

दृष्टि चेंपवर फंदा मन-पिंजरा राख्यौ लै पंछी बिहारी।
चुनो सुभाव प्रेम-जल अंग श्रवत पिवत न अघात रहे मुख निहारी॥
प्यारी-प्यारी रटत रहत छिनही छिन याके और न कछू हियारी!
सुनि 'हरिदास' पंछी नाना रंग देखत ही देखत प्यारीजू न हारी ॥९॥

[पद]

भूले भूलेहू मान न करि री प्यारी!तेरी भौंहैं मैली देखत प्रान न रहत तन
ज्यों न्यौछावर करौं प्यारी तोपर काहे तू मूकी ? कहत स्यामघन॥
तोहि ऐसे देखत मोहि अब कल कैसे होइ ? जू प्रान धन !
सुनि 'हरिदासी' काहे न कहत यासों छांड़ि री! छाड़ि अपनोपन ॥१०

[पद]

बात तो कहत कह गई अब कठिन परी बिहारी।
प्रान तो नाहिने तन अस्त व्यस्त भए कहे कहा ? प्यारी !
भाँवते की प्रकृति देखत जु श्रम भयो बहुत हियारी।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा बाँह सो बाँह मिलाय रहे सुख निहारी॥११॥

[पद]

कुंजबिहारी हौं तेरी बलाइ ल्यौं नीके हो गावत।
राग रागिनीन के जूथ उपजावत॥
जैसी ये तैसी मिली जोरी प्रियाजू कौ मुख देखत चंद लजावत।
'श्रीहरिदास'के स्वामीस्यामाकुंजबिहारी को नृत्य देखत काहि न भावत ?

[पद]

एक समय एकांत बनमें करत सिंगार परस्पर दोई।
वे उनके वे उनके प्रतिबिंबनि देखत रहत परस्पर भोई॥
जैसे नीके आज बने ऐसे कबहूँ न बने आरसी
सब झूठी परी कैसी योऽब कोई।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी रीझि परस्पर प्रीतिनोई॥१३॥

[पद]

राधे चलिरी ! हरि बोलत कोकिला अलापत सुर देत पंछी राग बन्यो।
जहाँ मोर काछ बाँधे नृत्य करत मेघ मृदंग बजावत बंधान गन्यो॥
प्रकृति की कोउ नाहीं याते सुरति कै उनमान गहिहौं आई में जन्यो॥
'श्रीहरिदास' के स्वामी-स्यामा-कुंजबिहारी
की अटपटीबानि और कहत कछु औरै भन्यौ॥१४॥

[पद]

तेरो मग जोवत लालबिहारी।
तेरी समाधि अजहूँ नहिं छूटत चाहत नाहिं नेकु निहारी॥
औचक आइ द्वै कर सों मूंदे नैन अरवराय उठी चिहारी।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा ढूढ़त बनमें पाई प्रिया दिहारी॥ १५॥

[पद]

मानि तू अब चलिरी ! एक संग रह कीजै तौ कीजै जो बिन देखे जीजै।
ए स्यामघन तुम दामिनि प्रेम-पुंज वरषा-रस पीजै।

'श्रीहरिदास' के स्वामी-स्यामा-कंजबिहारी सौं हिलिमिलि रंगरसलीजै॥१६

[पद]

तूं रिस छाड़िरी राधे राधे ।
ज्यौं-ज्यौं तोकूं गहरु त्यौं-त्यौं मोकौं बिथारी ! साधेसाधे ॥
प्रानन कौ पोषत है री ! तेरे वचन सुनत आधे आधे ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी-स्यामा-कुंजविहारी तेरी प्रीति बांधे बांधे॥१७॥

[पद]

आज तृन टूटत है री ! ललित त्रिभंगी पर ।
चरन-चरन पर मुरली अधर धरे चितवनि बंक छबीली भुव पर ।
चलहु न वेगि राधिका पिय पै जो भयो चाहति सर्वोपर ।
'श्रीहरिदास'के स्वामी-स्यामा-कुंजबिहारी कौ समयौ नीकौ-बन्यो
हिलिमिलि केलि अटल रति भई धूपुर ॥१८॥

[पद]

दिन डफताल बजावत गावत भरत परस्पर छिन - छिन होरी ।
अति सुकुमार वदन श्रम वरषत भले मिले रसिक किसोर किसोरी ॥
बातनि वत बतात राग रंग रमि रह्यौ इत उत चाह चलत तकि खोरी ।
सुनि 'हरिदास' तमाल स्याम सों लता लपटि कंचन की थोरी ॥१९॥

[पद]

द्वै लर मोतिन की एक पुंजा पोति को सादा नेत्रन दृष्टि लागौ जिनि मेरी ।
हाथनि चारि चारि चूरी पायन इकसारचूरा चौपहल इकटक रहे हेरि हेरी॥
एक मरगजी सारी तनते कंचुकी न्यारी अरु
अंचरा की बाँई गति मोरि उरसनि फेरी ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी
या रस ही बस भये हरे-हरे सरकनि नेरी ॥२०

[पद]

जोबन रँग रँगीली सोनो सो गात ढरारे नैना कंठ पोत मखतूली ॥
अंग-अंग अनंग झलकत सोहत कानन बीरें सोभा देखत ही बने-
जोन्ह में जोन्ह सी फूली
तनसुख सारी लाहीअंगिया अतलस अतरौटा छवि चारिचारिचूरीपहुँचनि
पहुँची खमकि बनी नकफूलजेव मुख बीरा चौका कौंधे संभ्रम भूली ।

ऐसी नित्यविहारिनि श्रीबिहारीलाल संग अति आधीन आतुर लट-पटाय ज्यों तरु तमाल कुंजमहल श्रीहरिदासी जोरी सुरति हिंडोरेझूली ॥

[पद]

राधे दुलारी ! मान तजि। प्रान पायौ जात है री ! मेरौ सजि ॥
अपनौ हाथ मेरे माथे धरि अभय-दान दै अजि।
'श्रीहरिदास' के स्वामीस्यामाकुंजबिहारी कहत प्यारीवलि रंग रुचिसों लजि

[पद]

गुनकी बात राधे तेरे आगे को जानें जो जानै सो कछु उनहारि।
नृत्य, गीत, ताल भेदनि के विभेद न जाने काहूँ जिते किते देखे झारि ॥
तत्त्व सुद्ध सुरूप रेख परमान जे विश्व सुघर ते पचे भारि।
'श्रीहरिदास'के स्वामी-स्यामा-कुंजविहारी प्यारी नेक तेरी प्रकृति के अंगअंग और गुनी परे हारि ॥२४॥

[पद]

सुघर भये हो विहारी याही छांह ते।
जे जे गढ़ी सुघर सुजानपन्यो की ते ते याही बाँह ते ॥
हुते तो बड़े अधिक सबही ते पै इनकी कस न खटात याहीते।
'श्रीहरिदास'के स्वामी-स्यामा-कुंजविहारी जकि रहे चाहते ॥२५॥

[पद]

राधारसिक कुंजबिहारी कहत जू हा कहूँ न गयो सुनि सुनि राधे तेरी सौं मोहि न पत्याहु तो संग हरिदासी हुती पूछि देखि भटू कहि धौं कहा भयौ प्यारी तोहि गड़ौ धन प्रतीति छांड़ि छीया जान दै इतनी व एरी सौं।
लगि लपटाय छैल दोउ छातीसों छाती लगाय रहे फेरा फेरी सौ ॥२६॥

[पद]

प्यारी ! तेरी महिमा कही न जाय मोपै जिहि आलस काम वस कीन।
ताको दंड हमें लागत है री ! भये आधीन ॥ साढ़े ग्यारहउ यों ओटि दूजे नवसत साजि सहजही तामें जवादि करपूर कस्तूरी कुंकुम के रँग मीन
'श्रीहरिदास'के स्वामी—स्यामा—कुंजबिहारी रस वस कर लीन ॥२७॥

[पद]

श्रम जलकन नाहीं होत मोती माला को देहु।
देखे बहुत अमोल मोल नाहीं तन, मन, धन, न्योछावरि लेहु।

रति विपरीति प्रीति कौ आलस नाहिन नायक तेरे मधि एहु।
'श्रीहरिदास'के स्वामी-स्यामा-कुंजबिहारी प्रतिवर मिले ये बेहु॥ २८

[पद]

नील लाल गौर के ध्यान बैठे श्रीकुंजबिहारी।
ज्यौं ज्यौं सुख पावत नाहीं त्यौं त्यौं दुख भयोभारी॥
अरबराइ प्रगट भई जू सो सुख भयो बहुत हियारी!
'श्रीहरिदास'के स्वामीस्यामाकुंजबिहारी करिमनुहारी॥२९॥

[पद]

आज की बानिक प्यारे तेरी प्यारी जू तुम्हारी बरनि न जाइ छबि।
इनकी स्यामता तुम्हारी गौरता जैसे सित असित बेनी रही भुवंगम ज्यों दवि
इनकौ पीताम्बर तुम्हरौ नील निचोल ज्यौं ससि कुंदन जेब रबि।
'श्रीहरिदास' के स्वामी-स्यामा-कुंजबिहारी की सोभा बरनी न जाय जौ
मिले रसिक कोटि कबि॥३०॥

[पद]

देखि देखि फूल मई।
प्रेम के प्रकास प्रीति के आगें है जु लई॥
सुनिरी सखी! बागौ बन्यौ आज तुम पर तृन टूटत जु नई।
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामा सकल गुन निपुन ताता थेई थेई गतिजुठई॥

[राग—कान्हरो]

ऐसी तो विचित्र जोरी बनी। ऐसी कहूँ देखी सुनी न भनी।
मनहु कनक सो दाह करि—करि देह अद्भुत ठनी॥
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा तमालै उठंगि बैठी धनी॥३२॥

[पद]

हँसत खेलत बोलत मिलत देखौ मेरी आँखिन सुख।
बीरी परस्परलेतखवावतज्यों घनदामिनिचमचमात सोभा बहुभांतिनसुख
सुरति घुरिराग केदारो जम्यो अर्ध राति निसा रोम रोम सुख
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामाके मिलिगावत सुर देत मोर भयों परमसुख

[पद]

अद्भुत-गति उपजत अति नाचत दोऊ मंडल कुँवर किसोरी

सकलसुधंग अंग २ भरि भोरी पिय नृत्यत मुसकनि मुखमोरि परिरंभन रस रोरी ॥ ताल धरे वनिता मृदंग चंद्रागति घात बजै थोरी—थोरी समयभाइ भाषा विचित्र ललिता गायन चित चोरी ॥ श्रीवृन्दावन फूलनि फूल्यौ पूरन ससि त्रिविध-पवन वहै थोरी थोरी। गति विलास रस हास परस्पर भूतल अद्‌भुत जोरी ॥ श्रीजमुनाजल विथकित पुहपनि वरषा रति-पति डारति तृन तोरी। 'श्रीहरिदास' के स्वामी-स्यामा-कुंजबिहारी कौ रस रसना कहै कोरी

[पद]

प्यारीजू ! जब-जब देखौं तेरौ मुख तब-तब नयो-नयो लागत। ऐसो संभ्रम होत मैं कबहूँ देखी न री ! दुति कौ दुति लेखन कागत ॥ कोटि चंद तै कहारी ! दुराए नएनए रागत ॥ 'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कहत कामकी सांति नहोइ नहोइ तृपति रहौं निसिदिन जागत

[पद]

ऐसी जीय होइ जो जीय सौं ज्यौ मिलै तन सो तन समाइ ल्यौं तौ देखौं कहा हौ प्यारी ? तो ही सौं हिलग आँखि आँखिन सो मिली रहै जीवत कौ यही है लहा हौ प्यारी ॥ मोकौ इतो साज कहाँ री प्यारी हौं अति दीन तुव वस भ्रुवक्षेप जाइ न सहा हौं प्यारी । 'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कहत राखिजै वाहुवल हौं वपुरा नेह-दहा हौ प्यारी ॥३६

[पद]

आज रहस में देखीयत प्यारीजू एक बोल मांगौं जो लिखि देहु। साखी तेरे नैन, दसन, कुच, कच कटि, नितंब जौ लिखि देहु ॥ प्रीति द्रव्य रुचि व्याज परस्पर मन, वच, क्रम करि जो लिखि देहु ॥ 'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा प्यारी पै बोल बुलाय लिखौ लिखि देहु॥

[पद]

प्यारी तेरी वाक्यन वान सु मार लागे भौंहें ज्यौं धनुष, एकहीवार ज्यों छूटत है जैसे बादर बरषत इंद्रअनष ॥ आर हथ्यार को गनै चाहनि कनष । 'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुँजबिहारी सों प्यारी जब तू बोलति चनष चनष ॥३८॥

[पद]

काहे ते आजु अटपटे से हरि।

लटपटी सी पाग अटपटे से बंद अटपटी देत आगै सरि॥
अटपटे पाँइ परत में परखे जब आवत है इत ढरि।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्याम जानि हौं पाए आज लाल औरे परि॥

[पद]

काहे को मान करति मोहि अब कित दुख देति।
वासे कैसी दृष्टि लिये रहौं तेरी जीवन तोहि समेति॥
अब कछू ऐसी करौ जु भौंहनि टाटी जिन देहु कहत इत नेति।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा छलकै गरे लगाई भई रमेति॥४०॥

[पद]

रोम रोम रसना जो होती तउ तेरे गुन न बखाने जात।
कहा कहूँ एक जीभ सखीरी! बात की बात॥
भान अमित और ससिहू अमित भइ और जुवती जात।
'श्रीहरिदास' के स्वामी-स्यामा कहत री प्यारी! तू राखतिप्रानजात॥

[पद]

तुव जस कोटि ब्रह्मांड विराजे राधे। श्रीसोभा वरनि न जाइ अगाधे॥
बहुतक जन्म विचारत ही गए साधे साधे।। 'श्रीहरिदास' के स्वामी
स्यामा कुंजविहारी कहत री प्यारी! ए दिनमें क्रम-क्रम करि लाधे॥४२॥

[पद]

भूली सब सखी देखि देखि।
जच्छ, किन्नर, नागलोक देवस्त्री रीझि रही भुव लेखि लेखि॥
कहत परस्पर नारि नारि सौं यह सौंदर्जता अवरेखि रेखि।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजविहारी ए कैसैहूँ चितवै परेखि रेखि॥४३

[पद]

पीय सौं तू जोई जोई करै सोई सोई छाजै। तेरी सेंध करै जो कोऊ
सोऊ लाजै॥ तू सुरज्ञान सब अंग सखी री! मान करत वे काजै।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजविहारी जी तो मैं बसै तू नित ही विराजै॥

[पद]

सोई तो बचन मोसों मानि तैं मेरो लाल मोह्यौ री! साँवरो।
नव-निकुंज सुख-पुंज-महल में सुवस बसै यह गाँवरौ॥
नव-नव लाड़ लड़ाय लाड़िली नहीं नहीं यह ब्रज जाँवरो।

'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामा कुंजविहारी पै वारौंगी मालती भाँवरी ॥

[पद]

जो कछु कहत लाड़िलो लाड़िलीजू सुनिये कान दै ।
जो जिय उपजै सो तेरेही हितकी कहत हौं आन दै ॥
जो मोहि न पत्याहु तौ छाती टकटोरि देखौ पान दै । 'श्रीहरिदास' के
स्वामी स्यामा कुंजबिहारी प्यारी ! जाचक को दान दै ॥४६॥

[पद]

स्यामाप्यारी आगैचलि आगैचलि गहवरवन भीतर जहां बोलैंकोइल री !
अतिहि विचित्र फूल पत्रनकी सय्या रचि रुचिर सँवारी तहाँ तू सोइल री !
छिन-छिन पल-पल तेरी एहै कहानी तुव मग जोइल री !
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कहत छबीलौ काम-रस भोइल री ! ४७॥

[पद]

प्यारी अब सोइ गई ।
ज्यों ज्यों जगावत त्यों त्यों नहिं जागति प्रेम-रस पान करि भोइ गई ॥
जागति होइ तो जगाऊं प्यारी तातैंव परम सचु रसही रसिक रस वोइ गई ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा उठि गरे लगाई नवल प्रीतिसो नोइ गई॥

[पद]

झूलत डोल दुलहिनि दुलहु ।
उड़त अबीर कुमकुमा छिरकत खेल परस्पर सूलहु ॥
बाजत ताल रबाब और बहुत तरनि तनया कूलहु ।
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामा कुंजविहारी कौ अनत व नाहिने फूलहु ॥

[पद]

प्यारी पहिरें चूनरी ।
तैसोही लहँगा बन्यौ सिलसिल्यौ पूरनमासी कीसी पूनरी ॥
हौं जु कहत चलिए मनमोहन मानेंगी न घूंनरी ।
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामा कुँजविहारी चरन लपटाने दुहून री ! ५०॥

[पद]

बनीरी ! तेरे चारि-चारि चूरी करन ।
कंठ सिरी दुलरी हीरन की नासा मुक्ता ढरन ॥
तैसोहि नैननि कजरा फबि रह्यौ निरखि काम डरन ।
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामाकुंजविहारी रीझि रीझि पग परन ॥५१

[पद]

प्यारी अब क्योंहूँ क्योंहूँ आई है।
इत तुम श्रमित पथिक मनमोहन मैं कोटि जतन समझाई है ॥
उत हठ करत बहुत नवनागरि तै तीय नई ठकुराई है । 'श्रीहरिदास' के
स्वामी स्याम कर जोरि मौन ह्वै दूवरे की राँधी खीर कहौ कौनै खाई है ?५२

[पद]

सुनि धुनि मुरली वन बाजै हरि रास रच्यौ ।
कुंज-कुंज द्रुम, वेली प्रफुलित मंडल कंचन मनिन खच्यौ ॥
नृत्यत जुगल किसोर जुवती जन-मन मिलि राग केदारो मच्यौ ।
श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजविहारी नीकैरी आज प्यारौलाल नच्यौ ॥

[राग-कल्यान]

जहाँ जहाँ चरन परत प्यारीजू तेरे तहाँ तहाँ मत मेरौ करत फिरत परछाहीं ।
वहुत मूरति मेरी चौंरदुरावति कोऊ बीरी खवावति एक आरसी लै जाहीं॥
और सेवा बहुत भाँतिन की जैसी ये कहै कोऊ तैसीये करौं जो रुचि
जानौं जाहीं। 'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कौ भलै मनावत दाव उराही

[पद]

यह कौन बात जो अबही और अबही और अबही औरै ।
देव-नारि नाग-नारि और नारि ते न होइ और की औरै ॥
पाछै न सुनी अबहूँ आगे न ह्वै हैं यह गति अद्भुत रूपकी औरकी औरै।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी या रसही बस भये यह भई
और की औरै ॥ ५५ ॥

[पद]

माईरी ! ए बसीठ इनके ए इनके औरधों को परे बीच ?
हाथा-पाई करत जु श्रम भयौ अंग अरगजा की कीच ॥
प्यारी जू के मुख अंबुज को डहडहा ऐसो लागत मानो अधरामृतकीसींच ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजविहारी के राग रंग लटपटानि के भेद
न्यारे ही न्यारे जैसे जो पानी में पानी नरीच ॥ ५६ ॥

[पद]

कस्तूरी को मर्दन अंगमें किए मुरली धरे पीताम्बर ओढ़े कहति राधे
हौ हीं स्याम। किसोर कुमकुम को सिंगार किए सारी चुरी खुभीनेत्रनि

दिये स्याम ॥ बाँह गहि लै चले चलिए कुंजमें चितै सुख हँसे मानौ एई स्याम । 'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामा छाती सों छाती लगाए गौर स्याम॥

[पद]

प्यारी तेरौ बदन-चंद देखे मेरे हृदय-सरोवर ते कुमोदनि फूली।
मनके मनोरथ तरंग अपार सौंदर्जता तहाँ गति भूली ॥
तेरौ कोप-ग्राह ग्रसे लिए जात छुड़ाए न छूटत रह्यो बुद्धि, वल भूली।
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामा चरन वनसी सौ गहि काढ़ि रहें लटपटाय गहि भुज-मूली ॥५८॥

[पद]

प्यारी तेरौ वदन कनक को कन श्रम-जल-कन सोभा देतरी !
ता में तिल दृष्टि परत ही मन हरि लेत री ॥
उर तन जात पाँति प्रानंनि को काट सो करि संकेत री !
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्याम कुंजविहारी कहत अचेत री ! ५९॥

[पद]

बचन दै मान न करौं। मन, वच, क्रम तीनहु ते न टरौं ॥
तेरेहि किए मान व्याप होत हैरी तन कहि कैसे कै भरौं।
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्याम कुंजविहारी प्यारी कहतरी कैसे के लरौं ॥६०॥

[पद]

कुंजविहारीजू नाचत नीकै लाड़िली नचावति नीकै।
औघर ताल धरें श्रीस्यामा ताता थेई ता थेई मिलवति गावति संग पीके
तांडव लास और अंग को गनै जे जे रुचि उपजति जीके।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कौ मेरु सरस भयौ और रसगुनी परै फीके

[पद]

डोल झूलत विहारीविहारिनि रागरमिरह्यौ। काहूकेहाथ अघौटी काहूके वीन काहू के मृदंग कोऊ गहै ताल काहू के अरगजा छिरकत रंग रह्यौ ॥
डांडी छांड़ै खेल बढ़यौ जु परस्पर नहि जानियत पग क्यों रह्यौ।
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामा कुंजविहारी कौ खेल खेलत काहू ना लह्यौ

[पद]

रातिन बेचि बेचि जाति हमारौ दान मार्‍यौ इन ।
घेरौ सखा ! जान ज्यों न पावै छीयौ जिन॥ देखौ हरि के ऊज

उठाइवे की बात राति विराति वहू-बेटी काहूकी निकसति है पुनि।
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्याम की प्रकृति न फिरी छीया छांड़ौ किन ॥

[पद]

गुन रूप भरी विधना सँवारी दुहुँ कर कंकन एक एक सोहै।
छुटे बार गरे पोति दीपति मुखकी जोति देखि-देखि प्रानपति रीझै तोहि
नैन सलोनी मन मोहै ॥
सब सखी निरखि थकितभई आली ज्यौंज्यौं प्रानप्यारौ तेरोमुख जोहै।
रस बस करि लीने 'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा तेरी उपमा कौ कहि धौंकोहै ॥

[पद]

अजहू तू कहा कहति हैरी ! मारे नैन आरनि।
भौंहे ज्यौं धनुष चितवन वान वांफिनि फौंकधरे कहत स्याम प्यारनि ॥
तूही जीवन तूही भूषन तूही प्रान—धन यारनि।
'श्रीहरिदास' के स्वामी श्यामा कुंजविहारी सौ मेरु भयो री विहारनि ॥६४

[राग—सारंग]

प्यारी तू गुननिराइ सिरमौर।
गतिन में गति उपजावति नाना राग रागिनी तार मंदर सुर घोर ॥
काहू कछू लीयौ रेख छाया तौ कहा भयौ झूठी दौर।
कहि 'श्रीहरिदास' लेत प्यारीजू कौ तिरप लागनि में किसोर ॥६५॥

[पद]

प्यारी तोपै न कितौक संग्रहछबिनिकौ अंगअंगप्रति नानाभाइ दिखावति।
हाथ किन्नरी मधि सचुपाइ सुलप रागरागिनीन सौं तू मिलि गावति ॥
कहा कहौं एक जीभ गुन अगनित हारि पर्यो कछु कहत न आवति।
'श्रीहरिदास'केस्वामीस्यामाकुंजविहारी कहतरी प्यारीतूं जेजे भाइ ल्यावति ॥

[पद]

परस्पर राग जम्यो समेत किन्नरी मृदंग सुरतार।
तीनहू सुरन के तान बँधान धुरधुपद अपार ॥
विरस लेत धीरज न रह्यो तृप लाग डाट मुरि निसार।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजविहारी जे जे अंग
की गति लेति अति निपुन अंग—अंग अहार ॥६७॥

(पद)

तोको पिय बोलत हैरी ! लाल ठाढ़े कदमतर ।
अबके ऐसो ज्यों कीये कहा होत हैरी ! माररही कुसुम-सर ॥
कुंजविहारी अपनों अंस तासों क्यों कीजै छदमवर ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा ढुढ़तवन में पाई क्रमक्रम करि विषम डर ॥

(पद)

चलिये छवीली छवीलो बोलत ।
आज की वानिक पर तृन टूटत कही न जाइ कछु स्याम तोहिहेरत ॥
सखी लै चली मनाइ ज्यों हित की आई घत । 'श्रीहरिदास'के स्वामी
स्यामा बीचही आइ मिलेतन की सुवास सकल भँवर कलासत ॥६९॥

(पद)

वेनी गूँथि कहा कोउ जाने मेरी सी तेरी सौं ।
विच विच फूल सेत पीत राते को करि सकै एरी सौं ॥
बैठे रसिक सँवारन वारन कोमल-कर ककही सौं ।
'श्रीहरिदास'केस्वामीस्यामा नखसिखलो बनाइ द काजर नखही सौं ७०॥

(पद)

प्यारी तेरी पुतरी काजरहू ते कारी मानो द्वै भँवर उड़ेरी ! वरावरि ।
चंपे की डार बैठे कुंदन अलि लागी है जै व अराअरि ॥
जब आनि घेरत कटक प्रेम को तब जिय होत डराडरि ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजविहारी दोउ मिलि लरत झराझरि ॥

(पद)

स्यामकिसोर जु तुमको दोऊ रंग रंगित है पीतांवर चूनरी ।
ऐसो रूप कहां तुम पायो अहर्निशि सोच उधेरा बूनरी ॥
मनमोहन सुरज्ञान सिरोमनि अंग कोकनिपूनरी ! 'श्रीहरिदास'के स्वामी
स्यामा कुंजविहारी की विचित्र ताई प्रेमसो पाइयत रससूनरी ॥७२॥

(पद)

चौकी कहाँ वदलि परी हो प्यारे हरि ।
लाल-पाट की हुती जँगाली ल्याये वरि ॥
वह तो हुती हीरन खचित पै यह दुरंग पन्ना लालै मिलि लैहों लरि ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजविहारी की चतुराई रही भरि ॥७३

(पद)

आवहु लाल ऐसो मद पीजै तेरोभगा मेरी अँगिया धरि।
कंचुकी सुराही नैनन के प्याले दारू देहुँगी ज्यों अंकौभरि।
अधरनि चुवाइ लेहु सबरो तनकौ न जानदेहु इत उत ढरि। 'श्रीहरिदास' के स्वामीस्यामा कुंजबिहारी की सुहवत असर जहां आपुनहरि ॥७४॥

[पद]

डोल भूलत बिहारी बिहारनि पुहुप-वृष्टि होति।
सुरपुर पुर गंधर्ब और पुतरिन की नारि देखत वारति लर-मोति ॥
घेरा करतिं परस्पर सब मिलि कहुँ न देखी ऐसी जुवती-जोति।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामाकुंजविहारिनि सादा चूरी खुभी पोति ॥७५

[राग-विभास]

प्यारीजू बोलत नाहीं, कै तूं सुता उनींदा कैधों काहू कछू कह्यौ कै तेरो-ऐसो ही सुभाव। मोहि तेरे देखे बिन कल न परै री कै तूं छाँड़ि कुभाव ॥
काहू की भुक हमें देतरी ! उपजत जुद भाव।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कहत ताके बस परे प्रगटत जु भाव ॥

[पद]

आलस भींजेरी ! नैन जँभात आछी भाँति सुदेस।
कर सों करटेकि अँगुरिन पेचमानो ससिमंडल बैठ्यो अति भांति सुदेस
मनके हरिवे कौ और सुख नाहिं प्यारी कोऊ तोते नखसिख भांति सुदेस
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा छातीसों छाती लगाये अंग-अंग सुदेस ॥

[पद]

प्यारी जू एक बात को मोहि डर लागत हैरी ! मति कबहू कुमया करिजात पल-पल हित वंछित हौंरी ! मति परै भाँत ॥
यह सचु ऐसे ही रहौरी जिनि टरौ तेरी घांत। 'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कहत यौं वाढ़ौ ज्यौं पुरइन जल की रीति- तोही लौसांत ॥

[पद]

प्यारीजू हम तुम दोऊ एक कुंज के सखा रूसे क्यों बने।
ह्यां कोऊ हितू मेरौ न तेरौ जो यह पीर जने ॥
हौं तेरा बसीठ तू मेरी और न बीच सने।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजविहारी कहत प्रीति पने ॥७९॥

(पद)

चूनरी में जाड़ौ लागै कीजिये सुख-सैन ।
घरी-घरी के रूसने पहर मनावत जात मीठे-मीठे वैन ॥
उठि सदि के बुलाइ लेहु प्रकृति यों न चाहिये धाइये ज्यों मैन ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजविहारी लटपटाय रहे-
मानि सबै सुख चैन ॥८०॥

(पद)

दुहुन की सहज विसांति दोऊ मिलि सतरञ्ज खेलत ।
उररुख नैन चपल अस्व चतुर बराबर झेलत ॥
आतुरता फील पयादे निग्रह फरजी चौंप अनूपम पेलत ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजविहारी सहसा राखे खेलत ॥८१

[पद]

होड़ परी मोरनि और स्यामें ।
आवहु मिलहु मध्य सचु की गति लेहि रंग धों कामें ॥
हमारे तुम्हारे मध्यस्थ राधे और जाहि बदौ बूझि देखौ तृन-
दै कहा है यामें । 'श्रीहरिदास' के स्वामी कौ चौपरि को सौ
खेल इक गुन दुगुन त्रिगुन चतुरागुनरी जाके नामें ॥८२॥

[पद]

कहौ यह काकी बेटी कहा धौं कुँवरि कौ नाउ ।
तुम सब रहौरी हौं हीं उत्तर देहौं चले किन जाउ ढोटा वाय वावरो गाँउ ॥
सबसखी मिलि छिरका खेलनलागी जौलौंतुमरहौरी तौंलौ हौंन्हाउ ।
'श्रीहरिदास' केस्वामीस्यामा लै वुड़कीगरेलागिचौंकपरीकहाँ जाउ ॥८३

[पद]

एक समय एकांत बनमें डोल झूलत श्रीकुंजविहारी ।
झोटा देत परस्पर सब मिलि अवीर उड़ावत डारी ॥
कबहुँक वे उनके वे उनके हौं दुहुन की एक सारी ।
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामा कुंजविहारी बढ़्यौ रंग भारी ॥८४॥

[पद]

कुंज-कुंज डोलनि मृदु बोलनि टूटी लर छूटी पोति अति छवि लागत ।
भँवर गुंजार करत सँग डोलत मानों मेघ राग रागनी संग लिये रागत ॥

जूथ अनेक सुघर जुवतिन के तुम्हारी रीझि पल व नहिं लागत।
'श्रीहरिदास'केस्वामीस्यामाकुंजबिहारी परतनमनधनन्यौछावरकरौंकागत

[राग-बिलावल]

प्रिया पियके उठिवे की छवि वरनि न जाइ सब ते न्यारे।
मानहु दिवस रैनि इकठौरे सोए न भये न्यारे॥ वार लटपटे
मानो भँवर यूथ लरत परस्पर कमल दलनि पर खंजरीट
सोभा न्यारे। 'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी विहारिनि
ऊपर कोटि कोटि अनंग ब्रह्मांड वारि किये न्यारे ॥८६॥

[पद]

स्यामा स्याम आवत कुंजमहल ते रगमगे रगमगे।
मरगजी वनमाल सिथिल कटि किंकिनी अरुन-नैन चारों जाम जगे॥
सब सखी सुघराई गावति वीन वजावति सब सुख मिलि संगीत पगे।
'श्रीहरिदास'के स्वामीस्यामाकुंजविहारी की कटाक्ष सौं कोटि काम दगे॥

[राग-मलार]

हिंडोरे झूलत लाल दिन दुलहिनि दूलह विहारी देखौरी! ललना।
गौर स्याम छवि अति दुति बहु भाँतिन री! वलना॥
नीलाम्बर पीताम्बर अंचल चलत ध्वजा फहरात कलना।
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी विहारनि अब चलना ॥८८॥

[पद]

ऐसी रितु सदा सर्वदा जो रहै बोलत मोरनि। नीके वादर नीके धनुष
चहुँ दिसि नीकौ श्रीवृन्दावन आछी नीकी मेघनि की घोरनि॥
आछी भूमि हरी-हरी आछी बूंदनि की रेंगनि काम करोरनि।
'श्रीहरिदास'केस्वामीस्यामाकैमिलि गावतरागमलारजम्योकिसोरकिसोरनि

[पद]

आये दिन पावस के सचुके। सु बोल बोलिए जू मान न करिहौ घरी
घरी के। रूसने क्यों वने सो वोल वोलिए जू मन क्रम बचकै।
भयौ है वंधान बहुत जतननि करि विसरे गुन गसके।
'श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजविहारी प्यारी वसके॥ ९०॥

[पद]

यह अचरज देख्यौ न सुन्यौ कहूँ नवीन मेघ सँग विजुरी एक रस।

ता में मौज उठति अधिक बहु भाँति लस ॥
मनके देखिवे को और सुख नाहि प्यारी चितवत चितहि जु करत बस ।
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामा कुंजविहारी विहारिनि जूकौ पवित्र जस ॥

[पद]

बूंदे अब सुहावनी री ! लागति मति भींजै तेरी चूनरी ।
मोहि दै उतारि धरि राखौं बगल में सु तूनरी ॥
लगि लपटाइ रहे छैल दोऊ छातीसों छाती लगाये ज्यों न आवै तोहि बौछार की फूनरी । 'श्रीहरिदास'केस्वामी स्याम कहत बीजुरी कौंधे करिहां हूनरी ॥

[पद]

भींजन लागेरी ! दोऊ जन । अँचरा की ओट करत दोऊ जन ॥
अति उन्मत्त रहत निसिवासर राग ही के रंग रँगे दोऊ जन ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्याम प्रेम परस्पर नृत्य करत दोऊ जन ॥९३॥

[पद]

नदित मन मृदंगी रस-भूमि सुकांति अभिनय सुभनव गति त्रिभंगी ।
धापि राधा नटति ललिता रसवती नागरी गाय तीव्र नाभि तान तुंगी ॥
रसद विहारी वंदे वल्लभा राधिका निसिदिन रंग रंगी ।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा कुंजविहारी संगीत संगी ॥ ९४ ॥

[पद]

दामिनि कहति मेघसों हमारी उपमा देहिते झूठे एही मेघ एहीविजुरीसाँची
जिन जिन हमारी उपमा दीनी तिन तिन की मति काँची ॥
ऐसी कहूँ सुनी जू बूंद ते कन न्यारो ता पटतर क्यों दीजै समुद्र राची ।
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामा कुंजविहारी अटल अटल प्रीति माँची ॥

[पद]

नाचत मोरनि सँग स्याम मुदित स्यामाहि रिझावत ।
तैसीये कोकिला अलापत पपीहा देत सुर तैसोई मेघ गरजि मृदंग बजावत
तैसी ये स्यामघटा निसिकारी तैसी ये दामिनी कोंधे दीप दिखावति ।
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामा कुंजविहारी रीझि राधेहँसि कंठ लगावत ॥

[पद]

हरि के अंग कौ चंदन लपटानौ तन तेरे देखियत जैसे पीत चोली ।
मरगजे अभरन छिपावति छिपै न छिपाये मानौ कृष्ण बोली ॥

कहूँ अंजन कहूँ अलक रही खसि सुरति रंग की पोटै खोली।
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामा मिलि विहारिनि हार न रह्यौ कंठ विच श्रोली

[राग-वसंत]

कुच गडुवा जोवन मोर कंचुकी वसन ढाँपि लै राख्यौ वसंत।
गुन मंदिर रूप बगीचा में वैठी है मुख लसंत ॥
कोटि काम लखन्य विहारी जाहि देखे सब दुख नसंत ऐसे रसिक
श्रीहरिदास के स्वामी तिनको भरन आई मिलि हसंत। ॥ ९८ ॥

[पद]

कुंजविहारी को वसंत सखी चलहु न देखन जाहिं।
नव वन नव-निकुंज नव-पल्लव नव-जुवतिन मिलि माहिं ॥
वंसी सरस मधुर-धुनि सुनियत फूली अंग न माहिं।
सुनि हरिदास प्रेम सो प्रेमहि छिरकत छैल छुवाहिं ॥ ९९ ॥

[पद]

चलिरी भीर ते न्यारे ही खेलें। कुंजनकुंज मंजु में झेलें ॥
तहां पंछिन सहित सखि न संग कोऊ तिहि बन चलि मिलि केलें।
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामा प्रेम परस्पर वूका वंदन मेलें ॥१००॥

[पद]

अबके वसंत न्यारेई खेलें काहू सों न मिलि खेलें री तेरी सौं।
दुचिते भये कछू न सचुपैयत तू काहू सखी सों न मिलि मेरी सौं ॥
देखैगी जो रंग उपजैगो परस्पर राग रागिनीनि के फेरा फेरी सौं।
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामा कुंजविहारी रागही में रंग उपजैगो एरीसौ

[पद]

रहौ रहौ विहारीजू मेरी आँखिन में वूका मेलत कित अंतर ह्वै मुख अवलोकनि कौ
और भाँवती तिहारी,मिल्यौ चाहत मिसके पइयाँ लागौं पन-पन कौ ॥
गावत खेलत जो सुख उपजत सो तो कोटि व रहै तन कौ।
'श्रीहरिदास'के स्वामी को मिलत खेलत कौ सुख कहाँ पाइयत है ऐसौ सुख मन कौ ॥१०२॥

[राग-गौरी]

सोंधे न्हाइ वैठी पहरै पट सुन्दर जहां फुलवारी तहां सुखवति अलकैं।

कर नख सोभा कलकेस सँवारति मानों नवघन में उडुगन झलकैं ॥
विविधसिंगारलिये आगेठाढ़ी प्रियसखीभयौ भर आनि रतिपतिदल दलकैं
'श्रीहरिदास'के स्वामीस्यामाकुंजविहारीकी छबि निरखत लागत नहिंपलकैं

[पद]

चल सखी ! कुंजविहारी सौं चित दै मिलि देखैं उनकी भाँवती।
सुंदर सों सुंदरि मिलि खेलति कैसे है धौं गावती॥
औचक आइ परी सखी तहाँ पीय पै पाँइ चँपावती।
'श्रीहरिदास'के स्वामी स्यामा कुंजविहारीसौं मिलि पौढ़ी तन मन रावती

[पद]

राधा रसिक नवकुंजविहारी खेलत फाग सब जुवतीजन कहत हो होरी
भरत परस्पर काहू की काहू न सुधि हँसि कै मन हरत मोहन गोरी॥
करसौंकर बरजोरे कटि सों कटिवर मोरे करत नृत्य काहू न रुचि थोरी।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्यामा फिरत न्यारेई न्यारे सब सखियन की
दृष्टि बचावत तकि तब खोरी ॥१०५॥

[पद]

नव निकुंज ग्रह नवल बीना मधि रागगौरी ठटी।
मानो दस इंदु पीयूष बरषत सुखद चपल करजावली दृष्टि पिय की जटी
रीझिरीझि पिय देत भूषन बसन दाम उर रसन दसननि धरत निरखि
सारंगकटी। रसद श्रीहरिदास बिहारी अंग अंग मिलत अतन उदोत
करत सुख आरंभटी ॥१०६॥

[पद]

झूलत डोल दोऊजन ठाढ़े।
हाथन जोरि सहित जैसें जाके डाँडीन गहै गाढ़े॥
बिच-बिच प्रीति रहसि रस-रीति की राग रागिनीनि के जूथ बाढ़े।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी रागही के रँग रँगि काढ़े॥

[पद]

झूलत डोल कुंजविहारी।
दूसरी ओर रसिक राधावर नागर नवल दुलारी॥
राखै न रहत हँसत कहि-कहि प्रिया खिलखिलात पिय भारी।
'श्रीहरिदास' के स्वामी स्याम कहत री प्यारी अबके राखिहहारी ॥१०८

॥ इति श्रीकेलिमाल ॥

श्रीविट्ठलविपुलदेवजी

छप्पै—कृपापात्र हरिदास पास सेवा मन लाए;
मामा पुत्र, प्रताप भक्ति पद दुर्लभ पाए।
बंद चच्छु करि सदा ध्यान स्वामी को धारे;
व्याकुल विरह असह्य पाय निज धाम सिधारे।
श्रीविट्ठलविपुल प्रताप जग प्रगट सदा जबतलक रवि;
चालिस पद रसमय विरचि गायो विविरस छलक छवि।

श्रीविट्ठलविपुलदेवजी ने केवल चालीस पद निर्माण की है। इन थोड़े से पदों के द्वारा ही इन्होंने स्वसंप्रदायांतर्गत, परंपरागत रससिद्धांत एवं उपास्य-तत्त्व को परिपुष्ट कर दी है। इन पदों में श्रीराधाकृष्ण के,नित्यविहार-संबंधी विषय चिताकर्षक एवं अतिरोचक हैं। पदों में भाव, स्वामी श्रीहरिदासजी निर्मित केलिमाल के ही अनुसार निरूपित हैं, किन्तु रचनाशैली भिन्न है। इनमें यमक, अनुप्रासादि पर ध्यान रखते हुए यति-गतिपर भी दृष्टि है।

ये घर-संबंधी नाते में स्वामी श्रीहरिदासजी के मामेरा-भ्राता लगते थे, अर्थात् मामा के पुत्र थे और इनसे कई वर्ष उम्र में बड़े थे। विरक्त-अवस्था में भी यही प्रमुख शिष्यों में सबसे बड़े थे। जब स्वामी श्रीहरिदासजी बाल्यावस्था में अन्य समवयस्क बालकों के संग बाल्यक्रीड़ा करते थे, तभी से ये उनके क्रीड़ा-दर्शन में अलौकिक-भाव प्रगटकर मुग्ध होते रहते थे, उनके उन अपूर्व भावपूर्ण खेलों से इन्हें अनीर्वचनीय आनंद प्राप्त होता था। इसलिये उन्हें ये—एक क्षण भी परित्यागकर अलग होना नहीं चाहते थे। जब स्वामीजी युवावस्था में, विरक्त-वेष ग्रहणकर श्रीधाम में निवास करते हुए, भजन करने लगे तो इनके हृदय में भी भारी वैराग्य उत्पन्न हुआ, और कुछ दिवश पश्चात ही गृह-झंझटों को परित्यागकर वृन्दावन आगये, और यहां श्रीआशुधीरदेवजी ने इन्हें स्वामी श्रीहरिदासजी को शिष्य कर लेने के लिये आज्ञा दी। स्वामीजी ने गुरू-आज्ञा पाकर इन्हें संवत् १५५० में श्रीगोपालमंत्रराज की विधिवत् दीक्षा देकर, अगहन-शुक्ल-पंचमी को सर्व-प्रथम शिष्य की। इस समय इनकी अवस्था तीस वर्ष की थी। चालिस वर्ष तक श्रीधाम में निवास कहते हुए विद्यमान रहे। स्वामीजी के नित्यधाम प्रस्थान के पश्चात् संवत् १६३१ में वृन्दावनस्थ संत--महंतों ने आग्रहकर इन्हें स्वामीजी की आचार्य-गद्दीपर आरूढ़ की। इनकी श्रीगुरु में दृढ़-निष्ठा एवं भक्ति थी, विरह से ये बहुत ही व्याकुल

हुये उसी समय से इन्होंने दोनों नेत्रों में पट्टी बाँधली और एक स्थान पर बैठे-बैठे ही ध्यानावस्थ रहने लगे। किसी के कारण पूछने पर उत्तर देते कि—"जिन नेत्रों से दिव्यांग श्रीहरिस्वरूप श्रीहरिदास का दर्शन कर लिया उन नेत्रों से अशान्ति-रूप संसार का दर्शन करने में कुछ भी सार नहीं।" इसी प्रकार सदा अपने ध्यान में निमग्न रहने लगे।

एक समय रसिक-समाज में रासलीला का आयोजन हुआ। स्वामी श्रीहरिदासजी के अनुपस्थिति का अभाव उस समाज में अत्यन्त ही खटका। समस्त रसिकों ने परामर्श किया कि—स्वामीजी के ही शिष्य श्रीविट्ठलविपुलदेवजी यहां आजाँय तो इस अभाव की कुछ पूर्ति अवश्य होगी। किन्तु यह समस्या कठिन थी; उन्होंने कहीं भी आना जाना परित्याग कर दिया था पुनः समस्त रसिक-समाज में परामर्श हुई कि—यदि श्रीव्यासजी जाँय तो उनके आने की पूर्ण आशा है; क्योंकि स्वामीजी और इनमें प्रगाढ़ स्नेह था उस सम्बन्ध से अवश्य पधारेंगे। श्रीव्यासजी रसिक-समाज की आज्ञा शिर पर सहर्ष धारणकर, इनके पास आये और सादर दण्डवत् करते हुये संत-समाज के समस्त वृतान्त को वर्णन कर, पश्चात् पधारने के लिये भी प्रार्थना की। श्रीविट्ठलविपुलदेवजी ने कहा—

विनुचंद चकोर किधों धरनी; बनहीन सु मीन किधों बरनी।
फणि को फणि ज्यों मणि के बिसरे; तलफें तनु त्यों किमि धीर धरैं।
सरसीरुह ज्यों तुष तोष भये; महि मांहि महीरुह जू लहये।

इस प्रकार कहते हुये नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी और फूट-फूट कर विलाप करने लगे। वहां श्रीव्यासजी ने भी उनके बिलाप में भाग लिया और विरह ने इनके भी सौभाग्यवान् नेत्रों से बून्दें टपकाये। पश्चात् रसिक-समाज की आज्ञा को इन्होंने पुनः दोहराया और कर-जोड़ कर, उस पावन-समाज में पधारने के लिये निवेदन किया। वे इस महान् आज्ञा का उलंघन करना उचित नहीं समझ कर, वहां गये, समस्त समाज स्वागत में उठखड़ी हुई। श्रीव्यासजी ने इन्हें सादर ले जाकर सब के मध्य में बैठाया। इनके आगमन से सब के चित्त में अत्यन्त प्रसन्नता हुई। गुरु-विरह में मौनव्रत धारण और नेत्रों पर पट्टी बाँधने से सब को दुख भी हुआ। पट्टी खुलवाने और बोलने का उपाय समझ, सब ने परामर्श किया और

रासमण्डलस्थ श्रीप्रियाजी से प्रार्थना की गई कि—इनका कर ग्रहण कर, नेत्र खोलने की आज्ञा दें। श्रीप्रियाजी ने वैसा ही किया और आज्ञा की कि—"मैं ही श्रीराधा हूं नेत्र खोलकर दर्शन करो।" आपनें नित्यकेलि की सहचरि भावावेश में प्रियाजी के संग परस्पर खेल को समझ कर नेत्र खोल दिये। पश्चात् उपस्थित समाज को अवलोकन कर सन्तोष नहीं हुआ तब इन्होंने कहा—

"करुनानिधि मम प्रियवरी तुम पकर्यो मम हाथ;
अब करुना करि लाड़िली राखि आपने साथ।"

इस प्रकार कहते हुये उसीक्षण सर्वोपरि श्रीनित्यविहारी के नित्य-लीला में सदा के लिये सामिल हो गये। इन्होंने दो शिष्य किये, श्रीकृष्णदासजी और श्रीबिहारीदासजी जिनका प्रसंग आगे है। इनके द्वारा निर्मित चालीस पद प्राप्त हैं; जो अष्टाचार्य की वाणी में सम्मिलित है।

[राग–विभास]

प्रात समय आवत आलस भरे जुगलकिसोर देखे कुंज की खोरी।
लटपटी पाग छूटी बंद पियके प्रियाजू की बेनी विथुरी छुटी कच डोरी
ललितादिक देखत जु नैन भरि अति अद्भुत सुंदरवर जोरी।
श्रीविट्ठलविपुल पुहुप बरपत नव तृन टूटत अब हो हो होरी॥ १॥

[राग–भैरों]

आज बनि लाड़िली प्रीतम संग आवति।
सोंधे भींजी लट छूटी पियके अंश भुजा पाछे सखी सुघर विभासैं गावति
श्रमजल-बिंदु निसिके सुख सूचित मोहन बदन सो बदन मिलावति।
श्रीविट्ठलविपुल कल रसिकबिहारीलाल आनन्द-समुद्र मथिमदनझिलावति

[राग–बिलावल]

आई भोर भए प्यारी छूटी लट बगरी।
बाँह-जोरी लाल संग निसिकिएकुंजरंगसुखसकिए बिहारीकुंवर अचगरी।
निसिके चिन्ह फबे गौरस्याम तन छविपद-नख पर वारों जेती केती नगरी
'श्रीविट्ठलविपुल' केलि मनहुँकंचन वेलि अरझीस्यामतमालआवे कुंज डगरी

[पद]

प्यारी तेरी चाल चितवनि बाँकी।
बाँके बसन आभरन बाँके बंक रेख उर आँकी॥

वंक सुभाव मिलनि बाँकी प्रिया वंक कोर रही झाँकी।
श्रीविट्ठलविपुल बिहारी बाँके मिले ताते तू फिरतिनिसांकी ।।४।।

[राग–भैरों]

प्रातही किसोर जोर कुंज केलिनी।
अंग २ गुनतरंग गौरस्याम रूप-रासि मदनकेलि सुरतिसिंधु पुलकझेलिनी
तरुनिनंदिनीसुतीरगावतपिकमृंगकीर त्रिगुनमरुत माधुरीश्रमबुंद पेलिनी
बर बिहार राजिनीसुनूपुरादिबाजिनी श्रीविट्ठलविपुलवारनेभुजकंठमेलिनी

[राग–विलावल]

लालहिबसकरनी मदनमदहरनी मल्लिकिपगधरनी उरजउदित री !।
हेमलता की फलनी श्रमजल की झरनी निकट सुता तरनी बदन मुदितरी
रूपसुधाकी भरनी मोपै क्यों आवै बरनो पियटक टरनी तृषित छुधितरी
रस वसकै वरनी विपुल प्रेम परनी विट्ठलकुँज घरनी विहारीवुधित री ॥

[पद]

प्रिया स्याम संग जागी है।
सोभित कनक–कपोल ओप पर दसन–छाप–छवि लागी है॥
अधरन रंग छुटी अलि की वल सुरति रंग अनुरागी है।
श्रीविट्ठलविपुल कुंजकी क्रीड़ा काम–केलि–रस पागी है ॥७।।

[पद]

रसिक रसीली भाँति छबीली नैन रँगीले तू पिय पै ते आई।
अलक कंचुकी छुटी चारि चारि चूरी फूटी आलस मदन लूटीलेति जँभाई
कहा रही मुख मोरि नागरि नवकिसोरी तृन टूटतहोहो होरी ललन बनाई
श्रीविट्ठलविपुल वेख उर बनी नख रेख रजनीके अव सिख जानिमैं पराई

[पद]

स्यामा चलहु लड़ैती प्रिया कुंजनि करहु केलि।
स्याम-तमाल-लाल नवलकिसोरी बाल तुम जु नवल नव कनक–वेलि
विविध-कुसुम–घन-रचित श्रीबृन्दाबन बोलत सुहाये पिकमधुप रहे झेलि
श्रीविट्ठलविपुल रस रसिकबिहारी विहारे वम जमुनाके तीर सुख विसद
बिलास केलि ॥१।।

[पद]

आवत लाड़िली लाल फूले।

कुंजकेलि नवरंगविहारी सुरति-हिंडोरे झूले ॥
निसि जागे अलसात रगमगे पट पलटे गति भूले।
श्रीविट्ठलविपुल पुलक ललितादिक दिन देखे द्रुम मूले ॥१०॥

[पद]

आवनि कुंज ते पुहुपीरी।
प्रिया जँभाति कर जोरि रसमसी ललन खवावत बीरी ॥
सुरति श्रमित अंग-अंग शिथिल अति भुज भरि स्याम रसीरी।
श्रीविट्ठलविपुल विनोद करत मिलि नहिं ललितादिक नीरी ॥११॥

[पद]

सुनहु रसिक श्रीवृन्दाबन को जस।
कुंज-केलि मानिनी मनोहर सरवस भए नाहिने अपने बस ॥
इहि बन नित्य नवीन जुगलवर द्रुमदल दिव्य श्रमित सलिता लस
'श्रीविट्ठलविपुल' विनोदविहारी को पान कियो चाहत रसना रस ॥१२॥

[राग-वसंत]

सजनी नव-निकुंज द्रुम फूले।
अलिकुल संकुल करत कुलाहल सौरभ मनमथ मूले ॥
हरखि हिंडोरे रसिकरायिवर जुगल परस्पर भूले।
श्रीविट्ठलविपुल विनोद देखि नभ देव विमाननि भूले ॥१३॥

[पद]

जुगलकिसोर मेरे कुंजविहारी प्यारी वनविहार विहरत नव रंगा।
अरुन हरित मुकुलित द्रुम पल्लव अलिकुल-गुंज अनंग तरंगा ॥
सोंधे बहुत अबीर अरगजा हरषि परस्पर छिरकत अंगा।
श्रीविट्ठलविपुल बिनोद रीति रस सुख देखत ललितादिक संगा ॥१४॥

[पद]

डोल झूलैं स्यामा स्याम सहेली।
नवनिकुंज नव रंग पिया सँग विहरत गर्व-गहेली ॥
कबहूँ प्रीतम रमकि झुलावत कबहुँक प्रिया नवेली।
श्रीविट्ठलविपुल पुलकि ललितादिक दिन देखत आनँदकेली ॥ ५॥

[पद]

तैं मोह्यौ प्यारी मेरौ लाल।

जिहि गुन सर्वस चोरि लियो नागरि तैं गुन अब प्रतिपाल ॥
तैं कछु प्रेम ठगौरी मेली तुव मुख जोवत नैन-विसाल।
भामिनि कनक लता ह्वै लपटी 'श्रीविट्ठलविपुल' उर स्याम-तमाल ॥१६॥

[पद]

प्यारी नेक निरखौ नवरंग लालै।
तुव पद पंकज-तल-रज वंदत तिलक बनावत भालै ॥
तेरे बरन वसन आभूषन उर धरि चंपक-मालै।
श्रीविट्ठलविपुल विनोद विहारिनि भुज भरि बाँह विसालै ॥ १७ ॥

[पद]

लालन तेरेई आधीन।
सुनि री सखी ! हौं साँची कहति हौं तुव जल ए मीन।
तेरेई रस वस स्यामसुंदरवर जाँचत है ज्यों दीन।
श्रीविट्ठलविपुल' विनोद बिहारी होत मनावत लीन ॥ १८ ॥

[पद]

लाल करत तेरे गुन गानै।
जो न पत्याहु सपथ नहिं मानौ चलि सुनि अपने कानै ॥
तुम जो स्याम होहु वे स्यामा तौ यह वेद न जानै।
श्रीविट्ठलविपुल बिनोद बिहारी सौं वादि रूसनो ठानै ॥१६॥

[राग-सारंग]

रस बस होत लाल प्यारी तेरी बदन झलक।
अपने सुभाइ सहज की माधुरी बनी है ललाट परत री अलक ॥
कौनहुँ भाँति चितवनि चितयो तबते मोहनजू की लगत न पलक।
श्रीविट्ठलविपुल बिनोद विहारी सो हिलिमिलि जैसे बाढ़ै छिन२ ललक ॥

[पद]

प्रिया पाँव धारिये पिय पहियाँ।
कुंज-भवन के द्वारे ठाढ़े कुंवर कदम की छहियाँ ॥
सुनत बचन हँसि विलँब न कीनो चली अली गहिबहियाँ।
श्रीविट्ठलविपुल विनोदबिहारी लाय लई उर महियाँ ॥२१॥

[पद]

मेरौ लाल रँगीलौ रँग भर्यौ।

जो भावै सो करो किसोरी मोहन तेरे बस पर्यौ ॥
जमुना-पुलिन निकुंज-भवन में सर्वसु सचि तोको धर्यौ ।
श्रीविट्ठलविपुल विनोद बिहारी सगुन गाँठ दै वरवर्यौ ॥ २२ ॥

[पद]

नैना प्रगट करत पिय प्रेमे ।
झूठेहि उत्तर करत सखीरी ! छांड़ि मान के नेमे ।
कोप कपट कौ अधर कंप सखी ! अति हुलास हृदे में ।
श्रीविट्ठलविपुल विहारी नटवर जटित सु तुव तन हेमे ॥२३ ॥

[पद]

प्यारी तेरे नैना री ! अति बाँके ।
ललित त्रिभंगी विहारी नागर तैं अपने करि आँके ॥
कहिधौं कुँवरि किसोरी कोकगुन सिखए इनहिं कहाँ के ।
श्रीविट्ठलविपुल विनोद विहारी पिय प्राननि में ढाँके ॥ २४ ॥

पद

प्यारी तेरे नैनन पर तृन टूटत ।
मानौ कुँदकली पर भौंरा हित अमृत-रस घूटत ॥
कहारी कहौं इन बानि विशेषे इत लागत उत फूटत ।
श्रीबिट्ठलविपुल विनोद विहारिन पिय को सर्वस लूटत ॥ २५ ॥

[पद]

हमारे माई स्यामाजू को राज ।
जाके आधीन सदाहिं साँवरो या ब्रज को सिरताज ॥
यह जोरी अविचल श्रीवृन्दावन नाहि आन सौं काज ।
श्रीविट्ठलविपुल विहारिन के बल दिन जलधर संग गाज ॥२६॥

(मलार)

जमुना-तट स्याम-घटनि की पाँति ।
हरित-भूमि-बन हरित-सिखंडी बोलत अति रस भाँति ॥
सुरँग चूनरी की छबि दुलहिन अभरन नाना भाँति ।
श्रीविट्ठलविपुल विनोद विहारी सों मिलि बिलसत किलकाँति ॥२७॥

[पद]

नीके द्रुम फूलेफूल सुभग कालिंदीकूल इंद्रधनुष राजे स्याम-घटनि में ।

नीके गृहलता कुँज नीकी आलिअलिगुँजनीको रागरंगरह्यो पिकनीरकीटनिमें
नीकी गति मंदमंद विहारी आनँदकँद नीको भेद बन्यो अरुन पीतपटनि में
श्रीविठलविपुल रंग ललिताकेकूजेअंगमिलत देखौगी नैननिकीविधिछूटनिमें

[पद]

प्यारी पियहि सिखावति बीना।
ताल बँधान कल्यान मनोहर इत मन देह प्रवीना ॥
लेत सम्हारि-सम्हारि सुघरवर नागरि कहति फबी ना।
श्रीविट्ठलविपुल विनोद विहारी को जानत भेद कवी ना ॥२६॥

[पद]

हौं तेरे वारने मंद गति चलि पिय सोहीं।
मेरेपाछे दुरि मुरि नीलाम्बर ओढ़ि सखीअबहीमिलहि लालहि गुपतकीगोहीं
आतुरह्वै आवेंगे तब न बनैगी मेरो कह्यो मानि प्यारी कहति हौं तोहीं।
श्रीविट्ठलविपुल विनोद बिहारी सौं हिलमिलि कै तोरो ज्यों जानै कै हौंहीं॥३०॥

[पद]

मिलि खेलि मोहन सो करि मनभायो।
कुँजविहारीलाल रसबस विलसत मेरे तन मन फूलि अपनो करिपायो।
तुम दिन दुलहिन ए दिन दूलह सघन-लता गृह-मँडप छायो।
कोकिल मधुपगन परैगी भाँवरि तहीं 'श्रीविट्ठलविपुल' मेघमृदँग बजायो

[राग केदारो]

विलसत प्यारी लाल कुंज रजनी।
वदन सो वदन जोरे मदन लड़ावत नूपुर के सुर मिलि वलया की बजनी
पुलकि पुलकि तन आनंद मगन मन मधुरे वचन श्रवन सुनि सजनी।
'श्रीविट्ठलविपुल'रसरसिकविहारी वस नव-त्रिया-तिलकसुरतिजीतिगजनी

[पद]

तेरे नूपुर धुनिरी प्यारी श्रवन सुनी।
अचल चले चल रहेरी रहित-गति,खग मृग व्रत मानो धर्यो है मुनी ॥
नवनिकुंज वर हस्त सँवार्यो लाल सैय्या रचित बहु कुसुम चुनचुनी।
'श्रीविट्ठलविपुल' की रति मिलिहैं मदन जीति तू सिरमौर सबगुननिगुनी

[पद]

जिन रूठौ लागै पिय पैयाँ।

तेरे तन की सोभा सुंदरि मेरे उर लागत है भैयाँ ॥
तन मन वारौं एक रोम पर मेरो मन लाग्यो तो तैयाँ।
'श्रीविट्ठलविपुल' विनोदविहारी संभ्रम गयो लाय उर लैयाँ ॥३४॥

[पद]

नव-वन नव-निकुंज नव-वाला।
नवरँग रसिक रसीलो मोहन विलसत कुंजविहारी लाला ॥
नव-मराल जित अवनि धरत पग कूजत नूपुर किंकिनि-जाला।
'श्रीविट्ठलविपुल' विहारी के उर यों राजति जैसे चंपे की माला ॥३५॥

[राग-केदारो]

नव-निकुंज नव-भूमि रगमगी।
नवलविहारी लाल लाड़िलो नवल सरद की जोन्ह जगमगी ॥
नवसत साजि सकल अँग सुंदरि नवल वदन पर अलक सगवगी।
'श्रीविट्ठलविपुल' विहारी के अँग संग लाड़िति लाड़लि सहज उर लगी ॥

[पद]

सुख-सेज पौढ़ी भामिनी रसिक लाल के अंग संगनी।
सुरति रंगवर चपल अंगअंग लज्जित नवघन दामिनी ॥
सुंदरता को रासि किसोरी नहिं उपमा को कामिनी।
'श्रीविट्ठलविपुल' विनोद विहारी सौं इहि रस विलसत जामिनी ॥३७॥

[पद]

हठ करि रही पिय बातौ न कहई।
ललिता तू समझाइ जुगति सों करि जैसे रस रहई ॥
तन मन वारों एक रोम पर जो नेक इक चितई।
'श्रीविट्ठलविपुल' बिहारी कहत सखी सो करि जतन रसई ॥३८॥

[पद]

बदी पिय आज प्रिया सँग होड़।
उमगि उमगि सुर भेद मिलावत नवनिकुंजवर कोड़ ॥
करतारी दै कहत लाड़िली हारे कुंवर न रोड़।
'श्रीविट्ठलविपुल' बिनोद विहारी जीतिहैं कुंवरि व छोड़ ॥३९॥

श्रीविहारिनिदेवजी

छप्पै

देवविहारिनि विदित वात जग में अतिध्यानी;
श्रीस्वामी-रसमार्ग ईष्ट तजि अन्य न मानी।
विरचे पद सिद्धान्त रास रस पुनि वहु गायक,
प्राप्त किये पद-परम जगत तजि लौकिक मायक।
इन सम यही सुसंत जग रस रम्यो मगन मन प्रेम पगि;
महिमा परम प्रताप अति वरनें कवि कहँतलक लगि।

श्रीविहारिनदेवजी का जन्म दिल्ली में शूरध्वज-ब्राह्मण के घर में हुआ था। इनके पिताका नाम मित्रसेन था, ये एक प्रतिष्ठित रईस तथा अकबर बादशाह के अनेक राज्य-संबंधी-कार्यकर्ताओं में से एक थे। विहारिनदेवजी श्रीविट्ठलविपुलदेवजी के शिष्य थे। जब संवत् १६३२ में गुरुदेव परमधाम पधार गये तो ये गद्दी पर विराजमान हुए, और संवत् १६५६ तक विद्यमान रहे।

इनके द्वारा निर्मित कुल ७०० सौ दोहे और ३०० सौ के लगभग पद हैं, जिनकी रचनायें भक्ति, ज्ञान,। वैराग्य, नीति, उपदेश, आचार्य-निष्ठा, शृङ्गार आदि विविध विषयों पर हुई हैं। अष्टाचार्यों की वाणियों में यही एक ऐसे रचयिता हैं, जो अपने काव्य-मार्ग के मंजिल को सफलतापूर्वक तय कर सके हैं। इनकी रचना में निर्भीकता, प्रत्यक्षानुभूति, निष्पक्षपात, चरमत्याग और गुरु-ईष्ट के प्रति अनन्यता विसद रूप से समावेश हैं। जिस प्रकार इन्होंने कथन की है; वैसे ही ये कर्तव्य-कर्मी भी थे।

निजमत—सिद्धांत में लिखा है कि—'संतान-रहित होने के कारण इनके पिता के चित में अति उदासीनता बनी रहती थी। वे पुत्र-प्राप्ति के प्रयत्न में सदैव चिंतित् रहते थे। पिता ने यंत्र, मंत्र, तंत्र-प्रयोग, देवी-देवता-पूजन, और साधु-संतों की सेवायें, अनेक प्रकार के शुभकर्म, धर्मदानादि पुत्र प्राप्ति की इच्छा से की; किंतु समस्त चेष्टायें निष्फल हुईं, किसी से भी मनोरथ-पूर्ति नहीं हुई। एकवार इन्होंने एक मित्र के मुख से स्वामी श्रीहरिदासजी की प्रशंसा श्रवण की, तत्काल ही वृन्दावन के लिये प्रस्थान होगये, और वृन्दावन में स्वामीजी का दर्शन कर अति प्रसन्न हुए। एक दिन इन्होंने स्वामीजी का विधिवत् पूजन कर दंडवत् की और संग ही पुत्र प्राप्ति के लिये प्रार्थना की। इनकी अत्यंत-श्रद्धा से प्रसन्न होकर स्वामीजी ने वरदान दी और संग ही यह भी आज्ञा कि—'एक [illegible]

होगा और २२ वर्ष तक घर में तुम्हारे यहां रहेगा- पश्चात् विरक्त होकर वृन्दावनवास और भजन करेगा। वरदान पाकर मित्रसेन के हृदय में अति प्रसन्नता हुई। एक वर्ष व्यतीत होने के उपरांत स्वामीजी की कथनानुसार पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। इन्होंने इस पुत्र को श्रीधाम में लाकर नाम संस्कारादि स्वामीजी से ही सम्पन्न कराया।

उसी समय ये बिहारीदास-नाम से विख्यात हुए। पिता ने इन्हें हिन्दी, उर्दू और संस्कृत की अच्छी प्रकार शिक्षा दिलवाई। जब मित्रसेन का देहावसान होगया तो बादशाह ने इन्हें उसी पद पर नियुक्त की इनके दिव्यांग, ईश्वर में श्रद्धा-विश्वास, और प्रखर बुद्धि को देख कर, बादशाह अकबर खानखाना एवं अन्य उच्च पदाधिकारीगण प्रभृति अत्यन्त स्नेह करने लगे।

आमेराधिपति महाराज मानसिंह ने अनेक समर में विजय प्राप्त करने पश्चात् आसाम प्रदेश पर आक्रमण की, किन्तु वहां के राजा कमलापति से पराजित होकर एवं सुलह कर दिल्ली वापिस आना पड़ा। यहां खानखाना ने इनकी उपेक्षा कर मित्रसेन को स्वयं पराजित करने की प्रतिज्ञा की और बिहारीदासजी को भी अपने सङ्ग चलने के लिये कहा। अकबर की इच्छा से इन्होंने सङ्ग में जाना स्वीकार की, शर्त यह हुई कि युद्ध में मेरी इच्छा से विरुद्ध एवं अधार्मिक कार्य न होने पावे, शर्त के विरुद्ध होगा तो तत्क्षण सङ्ग छोड़ कर अलग हो जायँगे। खानखाना ने शर्त को स्वीकार करली। विशाल सेना दिल्ली से प्रस्थान हुई, कई मास में मार्ग को तयकर आसाम पहुँची। वहां के राजा से घोर संग्राम हुआ, पुनः विजय राजा की ही रही। खानखाना ने सन्धि कर लेने की इच्छा से राजा को अपने निकट आने के लिये सन्देश भेजा। राजा ने भी किसी मनुष्य को भेज कर उत्तर दिया कि 'तुम्हारा विद्वान बिहारीदासजी किसी प्रकार कपट न होने का, विश्वास दिलायेंगे तो हम आ सकते हैं, अन्यथा नहीं। राजा बिहारीदास की न्याय-शीलता एवं साधु-स्वभाव से परिचित प्रथम से ही था। इन पर उसे भली प्रकार विश्वास था। खानखाना के आग्रह से इन्होंने भी राजा को आने की आज्ञा दे दी। जब राजा फौज में आया तो मुसलमानों ने विश्वास घात कर उसे मार डाला, इस नीच कर्म पर बिहारीदासजी ने खान खाना को बारंबार धिक्कारा और अपना ही अपराध समझ कर, प्रायश्चित के लिये अपने एक हाथ को काट डाला और तत्क्षण वृन्दा वन के लिये प्रस्थान हो गये। वृन्दावन में स्वामीजी का दर्शन करते ही कटा हाथ पुनः पौधे के समान उग आया, उसी समय से ये विरक्त

अहर्निश श्रीनित्यविहार के नित्यकेलि में ध्यानस्थ रहने लगे। श्रीयमुना-पुलिन, झाड़ी एवं स्थानीय कहीं भी वृक्षों के नीचे समाधिस्थ होकर बैठ जाते, वहां ही बैठे-बैठे, दो-दो चार-चार दिन तक व्यतीत हो जाता। विहारीजी की सेवा अर्चन की कुछ भी सुधि नहीं रहती। निश्चिन्त होकर, ध्यान-मग्न को ही सार समझने लगे। एकबार मदनटेर के निकट जमुना-स्नान के लिये गये, वहाँ प्रभाती करते २ यह पद गाने लगे-"आवत वर-भामिनि की भीर। सखी संग प्रिय मध्य लाल ललि विहरत श्रीजमुना के तीर॥" पद गाते गाते दिन-रात्रि व्यतीत होगई। विहारीजी की सेवा एवं भोगराग-कृत्य बिल्कुल विस्मरण होगई। भक्त वत्सल श्रीमदनमोहनजी को इन्हें प्रसाद पवाने की स्वयं चिन्ता हुई। भगवान्ने सोचा कि-"यह बड़भागी भक्त, सखी-भाव से नित्यविहार-केलि-रस-पान कर रहा है; किन्तु लौकिकमें भूखेप्यासे बैठा है, किसीने सुधि तक भी नहीं ली यह सोच कर, ठाकुरजी ने पुजारी को आज्ञा दी कि--"थाल लेकर शीघ्र ही विहारिनिदेव के पास जाओ, उन्हें प्रसाद पवाकर तृप्त करो।" पुजारी स्वप्न में आज्ञा पाकर उठा और शीघ्रही प्रशाद का थाल लेकर वहाँ पहुँचा और सादर उन्हें प्रसाद पवाकर तृप्त किया।

श्रीवृन्दावन से दोकोस की दूरी पर मांठ नामक एक ग्राम है। वहां का एक ब्राह्मण मूलचन्द, श्रीविहारिनिदेवजी का शिष्य था। श्रीविहारीजी में उसकी अत्यन्त प्रीति थी, वह रूपमाधुरी और लावण्यता के छटा पर अति ही मुग्ध था। श्रीविहारीजी के नित्य-प्रति दर्शन किये बिना उसे चैन नहीं पड़ता था एक दिन भी नागा होजाने पर व्याकुल होजाता था। उत्तम २ मिष्ठान्न, व्यञ्जन अमनिया बनवाकर वृन्दावन लाना, और भोग लगाकर वापिस लौट जाना उसका नित्य-कर्म था। श्रीविहारिनिदेवजी को, जहाँ तहां बैठे-बैठे ही ध्यानावस्थित होजाने के कारण उसे ढूढ़ने में बहुत ही परिश्रम पड़ता था। इन्हें किसी दिन यमुना-पुलिन, कभी झाड़ी में, कभी तट पर बैठे पाता और प्रार्थना पूर्वक लिवालाता। किसी किसी दिन तो बहुत ही परिश्रम करने पर, दर्शन कर पाता था। इस प्रकार विहारीजी अपूज्य भी रह जाते थे। इसलिये उसे भय हुआ कि—महान सेवापराध का भागी होना पड़ेगा। एक दिन वह डरते-डरते हृदय को दृढ़ कर, श्रीविहारिनिदेवजी से प्रार्थना-पूर्वक कहने लगा-"आपतो ध्यानावस्थित होकर, मानसी सेवार्चन कर लेते हैं; किन्तु श्रीविहारी

जी का प्रगट रूप में सेवा न होना, यह रीति निन्दनीय है। अर्चा की विधि श्रुति स्मृतियों में वर्णन है; उसी प्रकार होना आवश्यक है और यह आपकी परम्परा-प्राप्त रीति है। आपके ही गुरु श्रीहरिदासजी थे, उनके कृत्यों से स्पष्ट प्रगट है कि—उन्होंने किस प्रकार लाड़-प्यार-पूर्वक सेवा की है। नित्य-प्रति नित्यनये भोग वस्त्रादिकों से सेवा हुआ है और आप इस प्रकार सेवा में ध्यान ही नहीं देते, कृपा-पूर्वक इस शंका से मेरे मन को समाधान करिये !" श्री विहारिनिदेवजी बोले—"कि जो तुम्हारे मन में सन्देह है वह मैं समझ गया, उसे हृदय में लाना व्यर्थ है। तुमने लौकिक-निंदा पर ध्यान देकर, इस प्रकार प्रश्न किया है, उसका उत्तर श्रवण करो ! विश्वमें त्रैगुण-धारी मनुष्य भिन्न २ होते हैं; उत्तम, मध्यम और अधम। उत्तम के हृदय में भक्ति, विवेक विद्वता और प्रण-पूर्णार्थ भाव भरे होते हैं। वह आदि, मध्य, अवसान में लीन होकर, अत्यन्त उत्साह पूर्वक देखते हुये, समझने की कोशिश करता है, उत्तम तत्त्व के भाव से पूर्ण होता है। मध्यम-श्रेणी का मनुष्य तत्त्व के लिये जिज्ञासात्मक होता है, समस्त विषय पूछ कर, सन्देह निवारण कर, हृदय में धारण करता है। अधमों के संसारिक-व्यवहार नरक-निष्ठ होते हैं; वह सारासार का विचार न कर निंदा रूपी अप्रमाणित वाक्य, रात्रि-दिन पशुओं के तुल्य भूंसते फिरते है। यदि सहस्रों श्वान भूंसते होंय तो भी केसरी अपने चित्त को विचलित नहीं करते हैं। निन्दास्तुति करना संसार की रीति है। श्रुति स्मृति में भी भावानुकूल ही आज्ञा है अज्ञानी जन विना समझे ही अवज्ञा करते हैं। प्रतिमा के विषय में शास्त्र कहतीं हैं, कि—"प्रतिमा अष्टप्रकार की लोही दारु, पाषान। लेख्या, लेप्या, सैकता, मणि मानसी निदान॥" इनमें सर्वोपरि मानसी-पूजा को ही शास्त्रों ने वर्णन की हैं। कारण से कारज उत्पन्न होता है लोग कारण को परि-त्यागकर, कार्य्य परही दौड़ते हैं। सबका कारण श्रीनित्यविहारी हैं, उन्हींने यह प्रतिमा की आकृति धारण की है। उनते यह और इनते वह, यह सिद्धान्त भ्रम-पूर्ण है। जो प्रथम कारज पर ध्यान देता है; वही कारण को भी देख सकता है; नहीं तो कारण-कृत्य कारज को भुला देती है। "कारण नित्यविहार है प्रतिमा कारज रूप; कारण मन परसे नहीं, कारज परम अनूप।" और जो तुमने स्वामीजी की सेव्य कही ; सो उन्होंने ही तत्त्व उपदेश किया है और वेही व्यक्ताव्यक्त परस्पर भाव बताये हैं। व्यक्ताव्यक्त-पूर्ण एक ही मूर्ति

ने दो वपु धारण की है। परम्परा-प्राप्त समस्त रीति, ऐसीं ही चली आरही है। तुमने जो विलक्षण प्रश्न किया, उसका मैंने यथार्थ उत्तर दिया है।" यह श्रवण कर, मूलचन्द के हृदय में इनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा हुई। पुनः उसने प्रार्थना करते हुये कहा कि – "हे स्वामी ! विना समझे मेरी मति भ्रमपूर्ण थी, जब आपने तत्त्वोपदेश किया तो हमको आपके स्वरूप का ज्ञान हुआ। किन्तु—"छिन छिन जो दग उर चुभ्यो बंकविहारी रूप। क्षण क्षण प्रति निरखत रहूं यही परम अनूप॥" इन्होंने श्रीविहारीजी में मूलचन्द की अटूट प्रीति देख कर, सेवार्थ उसे ही अर्पण कर दिये। मूलचन्द ने श्रीविहारीजी को माठग्राम लाकर, चार वर्ष तक अत्यन्त श्रद्धा-प्रीति-पूर्वक सेवा की जब पास के समस्त धन सेवा में खर्च हो गये तो, धनाभाव में अत्यन्त कष्ट पाने लगा। विहारीजी की सेवा में अड़चन आने से उसे बहुत ही दुख हुआ। मूलचन्द का कृपाराम नामक भाई रालग्राम में रहता था, उसने भाई के इस प्रकार कष्ट का वृतान्त सुन कर, श्रीविहारिनिदेवजी के निकट आया और श्रीविहारीजी को स्वयं सेवा के लिये माँगा। इन्होंने उसकी श्रद्धा देखकर, सेवा की आज्ञा देदी और साथ ही वरदान भी दी कि—"दो मुहर चरण-कमल के चौकी से नित्य प्रगट होंगे उनसे श्रद्धापूर्वक भोगरागादिक सेवा करो! उनमें से किञ्चित वचाते न हुये, समस्त साधु ब्राह्मणादि के भोजन में प्रतिदिन खर्च कर देना!" कृपाराम बहुत ही प्रसन्नता-पूर्वक माठ गया और दोनों भ्राता मिलकर विहारीजी को राल लाये एवं प्रीति-पूर्वक सेवा करने लगे। इन्होंने सात वर्ष तक अटूट सेवा की पश्चात् शरीर परित्याग कर, परलोकगामी हुये। इनके पश्चात् स्त्रियें सेवा करने लगीं। अज्ञानतावस उन्होंने दो मुहर को बीस दिन तक खर्च की; इसलिये मुहर प्रकट होना वन्द हो गया। वे एक वर्ष तक तो कठिनता-पूर्वक सेवा कीं पश्चात् विहारीजी को श्रीबिहारिनिदेवजी के निकट हो बृन्दावन पधरा गई।

एक बंगाल का रहने वाला कायस्थ, इनका शिष्य होकर, वृन्दावन वास करता था, वह विहारीजी का अत्यन्त प्रेमी था, श्रद्धा-पूर्वक नित्य-सेवा की सामिग्री लाकर, अर्पण किया करता था, उसके हृदय में अहर्निश श्रीविहा-रीजी के प्रसन्नता की प्रतीक्षा वनी रहती थी। श्रीविहारिनिदेवजी के श्रीमुख से जो वाणी निकलती, वह तत्काल ही लिपिबद्ध कर लेता था। इस प्रकार

उसने एक लाख पद लिखा। किसी कार्य्य-वस यहां से वह चन्द्रकोण गया और वाणी भी अपने संग लेगया। पुनः वहां से वह लौटा न वाणी ही! उनसे विशेष जो पद निर्मित हुये वे आजकल प्रचलित हैं।

पावस की अन्त और शरद की आरम्भ थी; उस समय निधुवन की चारुता नन्दनवन को लज्जित कर रही थी। सुन्दर वृक्ष, कुसुम और फलों से लदे हुये, अपने सर्व-विमोहित-शक्ति को प्रगट करते हुये से प्रतीत होते थे। सघन, सच्चिक्कन डालियों की शोभा अपूर्व थी, गिलवे-गुंजयुक्त-वेलि सुन्दर तरुवों से लपट कर, चारुता की अनेक गुन वृद्धि कर रहीं थीं, मानों सत्पति के संग भामिनि की आल्हादमय-क्रीड़ा हो! चतुर्दिक, केकि, कीर और पिकन की वाणियें, वन को गुञ्जायमान कर रहीं थी; मानों बनराज से सुन्दर कहानी कहरहीं हो! उस समय आकाश में दामिनि भी रंग दिखा रही थी, वार-वार प्रगट होकर, घन में प्रवेश कर जाती थी और मंद-मंद गर्जन कर सुन्दर शब्द सुना रहीं थी। उस समय को शोभा मानों—

"कोक निपुण चंचल प्रिया अंग-अंग छविछाय।
रति जाचत प्रीतम नटत लटकि-लटकि लपटाय॥"

चन्द्रमा भी वार-वार घनों में छिप कर और प्रगट होकर अद्भुत रसमय-लीला विस्तार कर रहे थे; मानो प्रियतम इकटक मुखाम्बुज अवलोकनार्थ अभिलाषित होयँ और प्रिया हठ कर के नीलाम्बर से वारम्वार ढक लेती होयँ। शीतल, मंद, सुगन्ध, वायु चल रहीं थी; जिसके स्पर्श से अत्यन्त ही सुख अनुभव होता था। ऐसे रमणीक वन के सुशोभा को अवलोकन कर, श्रीविहारिनिदेवजी, नित्यकेलि अवलोकन करते हुये ध्यानावस्थित होकर बैठ गये। उसी समय भक्त के उच्च एवं दृढ़ भाव का दिग्-दर्शन, व्रजसखा-वृन्द को कराने के लिये, व्रजपति श्रीनन्दनन्दन उनके सहित वहां पधारे। महात्मा को समाधिस्थ बैठे देखकर; एक सखा ने प्रश्न किया कि—"हे प्रिय सखा! यहां यह कौन बैठा है?" श्रीव्रजराजकुमार बोले कि—"ये सहचरि-स्वरूप-प्रकाशक, स्वामी श्रीहरिदासजी के अनन्य-उपासक दास हैं।" पुनः सखा ने कहा—"सर्वोपरि श्रीनित्यविहार-उपासना है; जो हम सबों को भी दुर्लभ है, उसको इन्होंने कैसे प्राप्त किया?" श्रीव्रजराजकुमार हँसकर बोले—"बीजभूत जो सर्वोपरि मेरा रूप है; उसको श्रीहरिदास सह-

चरि भाव में रत्त होकर, अवलोकन करते थे, वह हरिदास युगल स्वरूप के अंग थे। स्नेह वारिधि के पार खड़े, दम्पति-वपु के समान हो श्रीस्वामी हैं। धाम धामी भी उन्हीं के अनुकूल हैं। उनके शिष्य उन्हीं के अंग हैं, प्रिया कृपा-बल उत्साहित और अति दृढ़ हैं। इनके आधीन वह ऐसे रहते हैं, जैसे सत्स्त्री सत्पति के वस में रहती हैं। ये प्रिया-अमल में नित्य मस्त रहते हैं और सहचरि श्रीहरिदास-वपु के निरीक्षण में सदा संलग्न रहते हैं।" किसी सखा ने कहा कि—"इनके संग बतराओ और अनन्य भाव के वाक्य श्रवण करो।" तब भगवान् श्रीनन्दनन्दन बोले—"विहारिनदास! नेत्र खोलो, हम तुम्हारे पास ही खड़े हैं!" तब ये नेत्र बन्द किये ही बोले—"तुम कौन हो?" श्रीकृष्ण बोले—"हम चित-वित माखन, हरण, स्वरूप नन्दनंदन ब्रजराज हैं। प्रसन्न होकर तुम्हारे निकट आये हैं।" पुनः इन्होंने पूछा कि—"क्या तुम्हारे संग श्रीहरिदास आये हैं? हमारे शिर पर वही हैं, हम उन्हीं के बचन का विश्वास करेंगे।" श्रीठाकुरजी बोले—तुम्हारे गुरु श्रीहरिदासजी तो दम्पति-केलि-अवलोकन सुख में रहते हैं हमारे संग तो सखा हैं।" फिर ये बोले—"हमारे तो श्रीस्वामीजी ही सर्वस्व हैं; जिस स्वरूप का वे दर्शन करावेंगे, वही हम दर्शन करेंगे। मेरे चित्त, वित्त, वही हरण किये हुये हैं। तुम तो चित्त, वित्त, नवनीत के हरैय्या और ब्रजगोपिन के संग रासकरैय्या हो, हरण कर-कर के तुम लाला हो रहे हो! तुम्हारी कोई चाल मुझ से छिपी नहीं है। मुझको अनन्य श्रीहरिदासजी मिल गये, उन्होंने श्रीलाडिलीलाल के निकट निवाश दीया है, उनके वाक्य में ही मुझे विश्वास है, और स्वरूप को हम नहीं जानते! सखागण इनके अनन्य-निष्ठा का अवलोकन और वाक्यों को श्रवण कर, अति प्रसन्न हुये। पश्चात् नंदनंदन सखान सहित अन्तर्ध्यान हो गये।

एक मुल्तान निकटस्थ, उच्चग्राम--निवासी जगन्नाथ नामक सारस्वत ब्राह्मण, इनका अविरक्त शिष्य होकर, वृन्दावन—निवाश करता था। उसके घर पर तीन लड़के थे; जो खर्च भेजा करते थे। घर से किसी कारण उसका खर्चा आना बंद होगया, इसलिये वह अत्यन्त कष्ट पाने लगा, एकदिनउसने सोचा कि यदि श्रीविहारीजी का सेवा मिल जाय तो बड़े सौभाग्य की बात है। हमारे समस्त कुटुम्बादिकों का निर्वाह भी हो जाय और पुजारी होने से मान,

प्रतिष्ठादि के भी भागी होयँ। यह विचार कर, श्रीविहारिनिदेवजी से जाकर प्रार्थना की कि—"श्रीविहारीजी की सेवा-पूजा हमको दे दी जाय तो हम आपके आज्ञानुसार सेवा करें और आप निश्चिन्त होकर भजनध्यानादि में संलग्न रहें। श्रीविहारिनिदेवजी ने सेवा में उसकी प्रीति देख, प्रार्थना स्वीकार कर लिये और विहारीजी को उसे सेवा-पूजा के लिये अर्पण कर दिये। उसे स्वामी श्रीहरिदासजी द्वारा प्रचारित प्रथानुसार सेवा की समस्त विधि से ज्ञात कराये जो अभीतक प्रचलित हैं। इनके चरित्र-सम्बंधी विषय से विशेष ज्ञान होना हो तो टट्टी-स्थानाधिपति महन्त श्रीभगवानदासजी महाराज द्वारा प्रकाशित निजमन-सिद्धान्त नामक बृहद ग्रंथ को अवलोकन करें, ये प्रसंग उसी के आधार पर संक्षिप्त से लिखे गये हैं।

आप अनेक जीवों को संसार-समुद्र से उद्धार कर, सम्वत् १६२६ में श्रीनिकुंज के नित्यलीला में शामिल होगये।

इन्होंने ७०० दोहे और सिद्धान्त एवं रस के पद निर्माण किये हैं जो टट्टी स्थानीय अष्टाचार्यों की वाणी में सम्मिलित हैं। इनके द्वारा निर्मित कुछ पद नीचे दिये जाते हैं—

[राग—विलावल]

श्रीवृन्दावन को सो सुख कहुँ न लह्यो।
धर्म, अर्थ कामना, मुक्त-पद भेद-भक्ति बहु भांति कह्यो॥
परम-पवित्र-पुलिन सौरभ-कन पावन जमुना-नीर वह्यो।
तिहि सलिता सीतल मन कीनौ जिहि संताप न जगत दह्यो॥
और लोक वैकुंठ आदि दै अनत कहूँ कछु बचि न रह्यो।
कामधेनु गनत न कल्पद्रुम सोई दिन देत जोई जो चह्यो॥
नित-नौतन-रस छाड़ि विषय वस कितक मान अपमान सह्यो।
परम उदार बिहारी 'विहारिनिदास' जानि जिय सरन गह्यो॥१॥

[पद]

द्वै हैं प्रीति ही परतीति।
गुनग्राही नित लालविहारी, नहिं मानत कपट अनीति॥
करिहैं कृपा कृतज्ञ जानि हित जिनके सहज समीति।
'विहारीदास' गुन गाइ विमल जस नित नौतन रस-रीति॥२॥

[पद]

हरि भली करी प्रभुता न दई।
होते पतित अजित-इन्द्री-रत तव हम कछु सुमत्यो न लई ॥
डहकायो वहु जन्म गमायो कर कुसंग सब बुधि वितई।
मान अमान भ्रम्यो भक्तन तन भूलि न कबहूँ दृष्टि गई॥
पढ़ि-पढ़ि परमारथ न विचार्‍यो स्वारथ बक-बक विष अँचई।
लै लै उपज्यो सफल वासुता जो जिहि जैसी बीज वई॥
अब सेवत साधुन को सतसँग सींचत फूले मूल जई।
'विहारीदास' यों भजै दीन ह्वै दिन दिन बाढ़ै प्रीति नई॥ ३॥

[पद]

माया, मद मोहे अभिमान।
थोरेई सुख सहत दुसह-दुख जो गुरु कह्यौ सो कियो न कान॥
श्रीभागवत चलत दै वायें अपनी उक्त आचरत आन।
कुंजर सोच असोच सदा श्रम समझत अधम अज्ञान॥
संग कियो समलत लोगन सों घटत प्रेम मह प्रगट प्रमान।
कहा कहों साधक वपुरा की सिद्ध विगूचे भरत समान॥
एके मन एके परमेश्वर एकहि ताकी रहै दिनमान।
ता पै काज सरै कछुए ना 'विहारीदास' यों वरन वखान॥ ४॥

[पद]

अधम किए अभिमान गयो।
अपने आसन सकुच भूल, ऊंचे पर पगन पयो॥
को जाने कैसी प्रतीति तब कहा समझि तो यह समझयो।
गर्वत कहा जीव वपु राजै विजय-धाम ते डार दयो॥
भावै सिद्ध जो साधु कहत हैं उपजे है सोई जु वयो।
'विहारीदास' हरिदास कृपाते आपन ही अपनाय लयो॥५॥

[पद]

परि गई कौनहुँ भाँति टेव यह कैसे कै निरवारौं?
सुख, संतोष होत जिय जबहीं आनँद-वदन निहारौं।
मन अरु प्रकृति परा उनके अंग अन्तर बैठि विचारौं॥
छुटि गई लाज, काज सुत, वित हित निमिष न इत उत टारौं॥

बाधक बहुत तकत मुसिवे को काहू की सी नाहिं सम्हारौं।
कोउ कछु कहौ सुनौं न घटै रुचि बंधु पिता पचिहारौं॥
जैसे कंचन पाय कृपन धन गनत रहौ न विसारौं।
'विहारीदास' हरिदास चरन-रज काज आपनो सारौं॥६॥

[राग रामकली]

भजसि रे! मन मनहि बयारे, भुलवत कत प्रभु के उपकारे।
जन्मत मरत भ्रमत न डरत दिन रत उलटे वल वस्तु अगारे॥
लह्यो फिरत उरधमुख पसु लौ परम-विषय विष अति भै भारे।
काम, क्रोध मद, मोह मुदित मन धन दारा संग्रहत विकारे॥
कीने श्रम सब दिन विवेक विन सुख सपने न लख्यो संसारे।
तजि तन निठुर लजत न महासठ लै बाँध्यो ममता अहंकारे॥
विवस परयो न डर्‌यो जानत जव विषय-विपति वूड़त जलधारे।
बुद्धि वहु सगुन नैन वैन लै रच्यो चरन कर श्रवन सुधारे।
सुंदर अङ्ग सुसंग समागम सम्पति सहज सु कसन संभारे॥
ब्रह्मा, इन्द्र, कीट, पशु, पक्षी, को गनि सकै भए कै बारे।
'विहारीदास' ऐसो अवसर पाय सुलभ तन जनम न हारै॥७॥

[पद]

कैसे करत प्रीति मुरारि ?
एक मनहि अनेक ठौरनि धरत परत न हारि॥
देह, गेह, सनेह, सम्पति मान लेत गँवार।
लोह-पट लै हेम हारत बिना विमल-विचार॥
संग संग्रह वैर विग्रह कृपा-निग्रह जहाँ।
भेद, भय, भ्रम जक्त जानत भक्ति ज्ञानत तहाँ॥
योग यज्ञ कलेस करि करि विविध-मारग वहत।
काम रति पशु प्रान-हत ते क्यों भक्ति अनुसरत॥
भक्ति भक्तन को दई हरि भक्ति भक्तहि हेत।
'बिहारीदास' के आस श्रीहरिदास प्रेम समेत॥८॥

[पद]

क्यों पाइयत वल, बुद्धि विश्राम वृन्दावन-निधि सब-सुख-धाम।
मन,क्रम, बचन, अनन्य भजन बिन नाम विना गाए गुन ग्राम॥

जानि भक्ति-फल मूल परम-पद व्याज-विषय छाड़त नहिं आम।
बाढ़त कर्म न घटत काहु कै सेवत देवन सदा सकाम॥
याही ते धन, धाम विवश भए वितवत वृथा गमावत जाम।
'विहारीदास' निर्भय भज हरि-पद चाहत छूटि भयो निह्काम॥६॥

[पद]

प्रभुजू हौं तेरा तू मेरा।
राजी खसम कहा करै काज़ी लोग बको बहुतेरा॥
हौं तू एक अनेक गनै गुन दोष न किसहू—केरा।
जल तरंग सो सहज समागम निर्मल साँझ-सवेरा॥
कोऊ स्वामी कोऊ साहिब, सेवक कोउ चाकर कोऊ चेरा।
बिना ममत्व इकत्व न ऐसा, जगत में भक्त घनेरा॥
तन, मन, प्रान प्रान सो सन्मुख अब न फिरै मन फेरा।
'बिहारीदास' हरिदास नाम निज प्रेम नवेरा भेरा॥१०॥

[पद]

कैसे हरि-जस गाइहौं सन्मुख व्है सब दिन ?
कब यह औसर पाइहौं छिन-छिन आलस बिन ?
मन मतिमंद महाबली औगुननि संजोयो।
जिह्वा अति अपराधिनी स्वाद वाद विगोयो॥
सन्तत सुनत असत कथा श्रवण–पुट पोयो।
चंचल नैनन चैन भूलि हरि वदनन जोयो॥
नासा निर्मालय बिना और भविष भोयो।
तन अपने रस परस विवस पर आसन सोयो॥
ए अपने बल सूर सबै मिलिहौं गहि गोयो।
निकसि न सक्यो सभा संकेत ते संगहि समोयो।
तब मैं सरन तकी भय मान जानि तिनके डर रोयो।
'बिहारीदास' प्रभु दयासिंधु देखत दुख खोयो॥११॥

[राग–आसावरी]

जब ते सुरति करी प्रभु मेरी।
कीनी कृपाकटाक्ष दीन पर तब फिरि इत चितएरी॥

श्रीहरिदास-प्रताप चरन-बल विपुल टहल दई नेरी।
माया, मोह-प्रवाह परयौ मन बहे जात बुधि फेरी॥
कर्म काल अरु विधि-निषेध को संसय दियो निवेरी।
जाति, वरन अभिमान गयो सब भई महल निज चेरी॥
दियो प्रसाद स्वाद सेवा-सुख और द्वार अब हेरी।
श्रीबिहारी 'बिहारिनदास' कुंज-रस, जसगावत टेरा टेरी॥१२॥

[पद]

हौं तो आयो शरन तेरी तूं मया करि स्वामी।
मन, बच, क्रम स्याम न गायौ सुनि-सुनि दुख दुहूँ दिसि धायो संतत मारगनामी।
बहु जन्म जोनि भ्रम्यो त्रिजगत में रह्यो कृपन कातर कामी।
अबकी तबकी सब जानत जाकी जैसी जाकी तैसिय करवावत तुमही अंतरजामी॥
गुन रूप सम वैस जोर बृज-नृपति नित नौतन किसोर कैसे कहि आवै।
अंतर आरत निवार निरखो निज बदन सार बार बार भावै॥
हौं पतित-तुम पतित पावन निज-जन ताप नसावन औसर बड़ भारी।
अब कैसे मन कपटहिं राचत छिन-छिन दिन यह जाँचत दीन 'दासबिहारी'॥१३॥

[पद]

अब कछु मेरो कह्यो सुनौ।
जो सन्तत सुख पाए चाहो तो छाँड़ो हठ अपनौ॥
टेढ़ी चाकी चले विगरै पटता को मूड़ धुनौ।
हम सो बने प्रेम तारन जो उलटि उधेर बुनौ॥
हम तुमहू ते शंखल-पथ-वामी बरजे होत सवाए।
श्रीहरिदास-कृपा-अंकुर कर इत सुख-सहज नवाए॥
प्रकृति-विरोध काज विगरत तुम काहे को होत पराए।
'बिहारीदास' भई सुमति सबन में एक भए हरि पाए॥१४॥

[पद]

अब मोहि सेवन दै सुख साँचौ।
विकल भयो भ्रम भूल्यो सुनि-सुनि कृपनन कौ मत काँचौ॥
नैन, श्रवन, रसना, मन अंग अंग संग लाइ लै पाँचौ।
'बिहारिनिदासि' मिलि संत सजातिन गाइ गूढ़ गुन नाँचौ॥१५॥

[पद]

वाली है जो लागेगी।
जैहैं चली सहज पावन पथ जो विष-रूखन खागेगी॥
कठिन काल कलि-कर्म कुसंगी सावधान जो जागेगी।
इत उत बिन चितये अपने व्रत सन्मुख भए न भागेगी॥
कृपा कवच करि गात घात दृढ़ छल बल बिन झुक हागेगी।
'बिहारीदास' तो पै साँची बुधि जो स्याम सुखन अनुरागेगी॥१६॥

[पद]

अंखिया भूलि कौतुक स्याम।
नव-निकुंज विहरत वृन्दावन गुन-निधान वर वाम॥
श्रवनन सुजस भागवत रसना गावत गुन गन नाम।
मनहु कोउ मन मोद बढ़ायो अंग अंग अभिराम॥
विवस भए रस परस परायन सबन विसारे धाम।
काहू कछू सम्हार न तन की जात न जानत जाम॥
निडर भए सम डोलत मेटत लोक वेद की माम।
'विहारीदास' देखत हू तृप्ति न यह रूख सदा सकाम॥ ७॥

[पद]

ताते भजन स्याम करि लीजै।
विद, कृम, भस्म सहज ताके गुन तवड़ो कहा लै कीजै॥
ऐसेहि घटत अंबु अंजलु लौं तैसे यह तन छीजै।
जीवो अल्प विकल्प परे घट घुन ज्यों दारु चरीजै॥
यहै उपाइ सुन्यो सन्तन पै हरि-सेवत सुख जीजै।
श्रवन, कीरतन, भक्ति भागवत नौ प्रकार तरीजै॥
विषय-विकार विरचि रचि मन क्रम, वचन चरन चित दीजै।
'विहारीदास' प्रभु सदा सजीवन वदन-अम्बुज-रस पीजै॥१८॥

[पद]

मन ! मेरे अजहू होहु सयानो।
हरि-पद-कमल विसारि विषय रति कहा फिरत बौरानो ?
सोइ सोइ दाव उपाव करत नित जो अपने चित भानो।

भयो विवस आलस अभिमानी नेकु न हित नियरानो ।।
सेर कुहाउ खाल गज डेढक यह ममता इतरानो।
ताके हेत करत परिग्रह अहंकार उरझानो ।।
सुत दारा को निरखि निरखि मुख अधम न उबिठि अघानो।
ना कछु आइ न ताहि विचारत स्वारथ काज विकानो ॥
जीवत मृतक भयो लोभिन सँग रहत लोभ लपटानो।
'विहारीदास' विन बहुत विगूचे कितेक वरन वखानो ।।१६॥

[पद]

मन ! मेरे अनत कहूँ जिन जाहि ।
चरन-कमल-मकरंद स्वाद-सुख अलि ह्वै अचै अघाहि ।।
भयो फिर्‌यो तेरे वस वहुत दिन देख्यो अवगाहि ।
अब छवि निरखि महा मोहन की मेटि पाछिली पाहि ॥
कर धरि करनि कहै समुझावत जो समझै न पत्याहि ।
आतुर स्वाद स्वान जूठन ज्यों लोभ लटा जिन खाहि ।।
श्रीवृन्दावन वसौ इतौ सुख देत कृपा करि काहि ।
मेरौ कह्यो विचारि हिए धरि मति पाछे पछिताहि ॥
औगुन सवै कहौं व कहांलौ कहा वकौं वकवाहि ?
'विहारीदास' रति मानि जानि या पद के अर्थ न चाहि ॥२०॥

[पद]

मन ! मेरे तू जिन भुलवै ताहि !
पायो रतन अमोलक भागनि गए पूछ है काहि ।।
मन,क्रम,बचन राखि हृदय धरि कृपननि ज्यों जड़ताहि ।
छिन-छिन गनत विचारत आरत आलस जिन लपटाहि ॥
अपने सन्त सजातिन सो कहि सुनि आनन्द बड़ाहि ।
यहै सु दृढ़ ह्वै सुनि सिख मेरी विमुखन सँग जिन जाहि ॥
निर्भय भयो गयो भय सब को अब जिनि जिय अकुलाहि ।
'बिहारीदास' प्रभु सब सुख-सागर लैहैं स्याम निवाहि ।।२१।।

[पद]

मन ! मेरे कहे सुने न पत्याहि ।
नटनागर सुख-सागर सर्वस राख्यो निकट दुराहि ॥

हड़िया हाड़ विषय खर पूर रह्यो जग मृग बिझुकाहि ।
हरो खेत हरि-भजन आपनौ निर्भय भयो न खाहि ॥
सुख बिसर्‍यो घर जरत न जान्यो घूर बुझावन जाहि ।
यों भ्रमभूलि रह्यो जड़ तन,मन धूरि धुवा लपटाहि ॥
यह अविवेक आवर्‍यो बहुत दिन मनकी टेव न जाहि ।
'विहारीदास' तो प्रभु सुख सूझै जो तुमही देहु दिखाहि ॥२२॥

[पद]

हरि-पथ चलहुँ न साँझ सवेरो ।
ब्याल सिकाल अलूक लागि हैं आलस होत अवेरो ॥
कर्म-फन्द सनबंध सवन सौं जन्म-जन्म को फेरो ।
जानि बूझि अब होत कृपन अबही किन करहु निवेरो ॥
कहा करत ममता झूठे सो दिन दस छयो वसेरो ।
लैहैं ऐंचि बधिक वनसी लौं छुटि जैहैं तन तेरो ॥
जुदिन सुदिन जीवै तू ह्वै रहि हरिदासन को चेरो ।
'विहारीदास' वसी तिन्हैं भरोसो स्याम-चरन रति केरो ॥२३॥

(पद)

हरि विन कूकर सूकर ह्वै हौ ।
दाँत न पूँछ कुरार पाछले पाँयन मूड़ खुजैहो ॥
साँझ भोर भटकत भड़ियाई तउ न अहार अघैहो ।
जहँ तहँ विपति बिडारे त्रसकारेहू लटि कटि खैहो ॥
मीरा मुए निगोड़े ह्वै खसमैहू लाज लजैहो ।
लोक परलोक परमारथ विन घर वाहिर बुरे कहैहो ॥
कहा भयो मानस को आकृत उनहू ते दुगुनहि खैहो ।
'विहारीदास, विन भजे साँवरो सुख सन्तोष न पैहो ॥२४॥

[पद]

हरि-जस गावत सब सुधरे ।
नीच अधम अकुलीन विमुख खल कितने गुनो बुरे ॥
नाऊ, छीपा, जाट, जुलाहौ सनमुख आइ जुरे ।
तिन-तिन को सुख दियो साँवरे नाहिन विरद दुरे ॥

विवस असावधान सुत के हित ह्वै अच्छर उचरे।

'विहारीदास'प्रभु कोटि अजामिल से पतित पवित्र करे ॥२५॥

[पद]

हरि-जस विन को भयो सपूत।

सब जस अपजस विन वृन्दावन किए सगाई सूत॥

हरिदासन को संग न सेवत तिनसे कौन कपूत।

पंडित गुनी चतुर अभिमानी बड़ौ भरम आकूत॥

साकत सूत सो जो ममता करै जाए जान अपूत।

दोष लगै ताकी महतारी बाप मुगल को मूत॥

सवै सयान अयान जानि हित आप अपनपौ धूत।

'विहारीदास' भये धन ह्वै हैं भजन अनन्य अभूत॥२६॥

[पद]

धृक्-धृक् ऐसे जन्म जियौ।

जिनही को पोस्यो तोस्यो तन तिनही सुमनन दियौ॥

बड़ौ कृतघ्नी सुकृत न विचार्यो चरनन चित न छियौ।

भयो विमुख विषया के लालच सुखहि न समझ लियौ॥

भक्ति साधारन के अपराधहि काँपत डर न हियो।

कौन कुमति साधी अपराधी गुरु कर वैर कियो॥

गुरु गोविन्द कहत हैं विवेकी पायँ पखार पियो।

'विहारीदास' श्रीगुरु सेवन विन नाहिन भजन वियो॥२७॥

[पद]

श्रीगुरु सेवत सवै सहाई।

ज्यों जल मूल दिए फल-फूलन उमगि चलत अरुनाई॥

साधन सिद्ध होत ताही छिन भ्रम, तम, श्रम न सजाई।

तिन सों प्रीति प्रतीति बढ़त छिन छिनही सहज सवाई॥

श्रीवृन्दावन-धन-निकुंज-नव दम्पति सम्पति सुखदाई।

'विहारीदास' हरिदास कृपा ते हस्तामल विमलाई॥२८॥

[पद]

परमारथ को कछू न चहिए स्वारथ को सब चिष्टा।

आरम्भटी साधत संसारहि सब सो कर घर धिष्टा॥

गहि-गहि नाक अँगुरियन गन गन बिना प्रेम नेम निज निष्ठा।
क्यों संचरै मनहि आचारै बिन विचार भए भिष्टा॥
प्रेम पदारथ घटत न जान्यो क्योंहू बढ़ै प्रतिष्ठा।
सबै प्रपंच पुरान पुकारत पति सूकर की विष्टा॥
उसको बड़भागी अनुरागी जो आराधै इष्टा।
'विहारीदास' विरले दुल्लभ कोउ एक विवेकी इष्टा॥२९॥

[पद]

पाँड़े पढ़ पढ़ाय बक वहके।
परमारथ सपने नहिं सूझै स्वारथ ही को सहके॥
उपजत नहीं विवेक साँच बिन झूठहि लालच लहके।
सहि न सकत उत्कर्ष औरको मन-मत्सर चित चहके।
जीवत मरत रहत संशय मन मेंडुक कालीदहके।
गए नियराय निघट बिन वायहि ज्यों वादर पींरी पहके॥
औरन के गुन दोष गनत सठ अपने गुन सुनि गहके।
'विहारीदास' तिनके सँग तजि जे तृष्णा-डायन डहके॥३०॥

[पद]

बहुत पढ़ेते बहुत विगूचे।
सबै त्याग अनुराग भागवत ह्वै अखरा सुख सूचे॥
इत उत भ्रमत भ्रमावत वहुमत मन संदेह न मूचे।
अपने ही अज्ञान अपन मुख अपनेई कर कूचे॥
निर्नय करि निवहै न महामठ आइ न प्रेम पहूचे।
एकरूप रस वयस विहारी 'विहारिनि' दासै सूचे॥३१॥

[पद]

या जीवेते भला मुवा।
वृन्दावन इकठौर कहूँ परि रह्यौ न पीके लुवा॥
स्वारथ नगर गन्यौरे गाहत गूदर मूटै डुवा।
यः रस के रस-विवस भयौ सुख पाए पहित पुवा॥
फिरि फिरि परत भीर में पावत धक्का धूर धुवा।
अभिमानी अविवेकी अंधरे पशुलों परत कुवा॥
कह्यौ सुन्यो समझत न महासठ सर्वस हानि हुवा।
'विहारीदास' ह्वै अजहूँ भज जिन हारे जनम-जुवा॥३१॥

[पद]

औरे देत निहोरे वादि ।
अपने प्रभु पहिचाने विन जनु दीसत बुरी निहादि ॥
गर्भ वसत कहहुँ तो गांठ गथ कहनि कसौ लै लादि ।
अब तव सम्पति विपति सजीवन सुमिरि साँवरो आदि ॥
दीन वचन कित बोलत डोलत घर-घर करत फिरादि ।
'विहारीदास' प्रभु विनु को समरथ कौन दिवावे दादि ॥३२॥

[पद]

भक्त न सोहै माँगत भीख ।
आपुन लजत लजावत हरि गुरु तिनकी भुलई सीख ॥
जितनोइ अब अहार तितनोई सब दिन समै दुभीख ।
अष्ट-सिद्धि नव निद्धि मुक्त-पद दै बौरावत दीख ॥
'विहारीदास' अनन्य न टरिहैं तजि वृन्दावन वीख ॥३३॥

[पद]

ह्वै हैं किए न बात बनै ।
द्वै ते दसहू है घट छूटे हरकत क्यों न मनै ॥
गई आयु कित लटि लालच चुपरत तेल तनै ।
काको करत संग संग्रह सठ हठ ही हठ अपनै ॥
गीदर खर सूकर कूकर खल कामी फिरत घनै ।
जे निहकाम सूर सिंहन के संग नौ दसन सुनै ॥
'विहारीदास' ह्वै सकौ न वोधा वंधन वंध्यौघनै ॥३४

.(पद)

जवते साधुन को सँग छूटौ ।
तवते सुजश श्रवन भरि कबहूँ अमृत अघाइ न घूटौ ॥
तनक प्यास तृष्णा पानी की और वाट परि फूटौ ।
खैड़े गाँव विषय बेहड़ में यों कृपनन मिलि लूटौ ॥
छाड़ौ गथ न गह्यौ हो लोभी लौहनि लातनि कूटौ ।
'विहारीदास' सुनि भज्यौ झटकत वेनेक जनेऊ टूटौ ॥३५॥

[पद]

यहै कहै हो कहा डरानो ।

कलप लेत कछु हेत न पावत याते अति अकुलानौ ॥
केवल हीन भयो आलस वस, कै भयौ भजन में कानौ।
कै विषयन को संग लग्यो रँग यह जिय जानि घिनानौ।
राख्यो बाँधि आँधरे पशुलों सुनौ सदा निमानौ ॥
खेलत हँसत हँसावत तव वा सुखहि सुमिरि पछितानौ।
यहै सकुच तेरौ हिय कांपै दीन वचन मुख आनौ।
तुम बिन होउ उदास 'विहारिनिदास' बिरद दै बानौ ॥३६॥

[पद]

अपराधन कौ दण्ड दै मोकौ।
कृपा सुकृत साधन श्रद्धा-जुत सचि राखौ रति तोकौ ॥
रोग भोग संयोग वियोगै आवत जात न रोकौ।
तुम्हरे वस कछु व न जानौ दुख सुख हर्ष न सोकौ ॥
अन्तरंग वहिरंग मगन मन पाँचो प्रेम चहोकौ।
'विहारिनिदास' भई'बन विहरौं दिन दम्पति अवलोकौं॥

[पद]

जो पै भक्ति स्वतंत्र न होती।
तो अभिमानी मारि दारि तैं निसुगे सूद न सोती ॥
यद्यपि दीन अधीन वरन आश्रम विमुख होत कर दोती।
क्यों पावे रस रीति अभागे फोटक सोटे मोती ॥
इत कंचन को कोटि भजन उत कर्म काँच को पोती।
ताको श्रम करि मरत महासठ समझत हानि न ओती ॥
छाक खात स्याम सुख ब्रज में ताको अपर सधोती।
'विहारीदास' सो यह निज नातौ एक प्रेम कुल गोती ॥३८॥

[पद]

मोहि न कछु उजर ब्रजनाथ।
सकुचत कहत इतनी पै तुम सो रहत सर्वदि ना साथ ॥
घट वढ़ टहल करौं सब तुमरी कहत रहौं गुन गाथ।
जब फिरि सुनहु श्रवन दै मो तन चितये होत सनाथ ॥
मेरी लाज लाड़िली तोही सवै तिहारे हाथ।
'विहारीदास' को अब न आन गति तुम्हरे चरन-कमल मम माथ ॥

[पद]

त्यों-त्यों उपजत है चित चाव।
साँचो विरद विहारीजी कौ सब दिन करत सहाव ॥
प्रकृति, गुन, दुख, सुख, विष भोयो पर्यो पंक में पाँव।
यहि विधि कौन धीर मन धरिहौं कहै निकसि क्यों धाव ॥
मैं श्रम, क्रम कछु न कीनौ करुनानिधि तव कृपा उपाव।
गयो भरम कढ़ फटिक छिनक में ज्यों वदरा विन वाव ॥
तव कोउ आदर करौ निरादर और न कहौं कोउ आव।
लोक, वेद, कुल, सील जाति पति श्रीसोभा जस जाव ॥
यों सब काज कियो छल वल के आनँद-निधि दै दाव।
'विहारीदास' आवर्न मिटौ अब हरिवो ह्वै गुन गाव ॥४०॥

[पद]

रसिक अनन्य भए सुख पैए।
जो जुग सहस्र जनम कोटिक धर और उपाय न पैए ॥
तप, तीरथ, व्रत, होम, नेम संजम के श्रम उपजैए।
मथत कपास निरास मन्दमति कहत काढ़ि घ्यौ खैए ॥
बाढ़ै भलै भूख भर्मन के कल पाए न अघैए।
यह दृष्टांत प्रगट कर-कंकन दर्पन कहा दिखैए ॥
'विहारीदास' लीजत वो कहा लुन ज्यों कल्लर भुसवैए ॥४१॥

[पद]

जिन हरि-चरनन चित्त दयो।
विसरि गए सब रोग दोष दुख मन को सूल गयो ॥
सर्व आतमन सन्मुख सब दिन श्रद्धा नाम लयो।
तजि भजि लोक, वेद मर्यादा मनहुँ अमृत अचयो ॥
सुंदर रूप अनूप आप हरि औरहि ठान ठयो।
अपने को बहु भाँति दयो सुख नित-नित नेह नयो ॥
ऊसर जोति सींचि खारे जल कर्म-कुबीज बयो।
'विहारीदास' निहकाम भजन ते जमै न भूंज वयो ॥४२॥

[पद]

खसमै भावै तित लै धावै।

एकहि सूत्र जगतमनिगन लौं सहज पर्यौ चलि आवै ॥
जल, थल, घर बाहर, बन, बेहड़ गहि गिरि-शिखर चढ़ावै ।
सूर स्वतंत्र सुघर यह मौसर इनही पै बनि आवै ॥
को माया मन कर्म, काल, प्रारब्ध न पहुँचन पावै ।
सब दिन, सब पर, सबको नियन्ता, सबही की नारि नचावै ॥
अनजानत मानत नाना मत संसारै भरमावै ।
लीलासागर नटनागर अपनी रुचि रमै रमावै ॥
भक्तन को परकासत यह मत सहै जु स्याम सहावै ।
'विहारिनिदास' प्रभु को रुष लिए सुख दै नाचै गावै ॥

[पद]

जिनके ग्वाल गोसल गुसाँई ।
सोपि निडर ह्वै रहे भरी से पूछत गई न आई ॥
अति निरपेक्ष नाम के नाते राखत थिना चराई ।
तिनकों दरस परस जस गावत सुधरी सब हरिहाई ॥
जो बिगरी बिडरी वाढ़ी ते हित करि हाथहि लाई ।
चढ़त चली अनुराग प्रेम भर दूने दूध दुहाई ॥
तिनकी सबै सम्हार साँवरे लै पहिले पहुँचाई ।
पहिचान्यो घर द्वार कसम को रहत निपट नियराई ॥
स्याम-धाम विश्राम काम मनसा परिपूरन पाई ।
लाल रसाल अंग अवलोकत अमित अमृत अघवाई ॥
सबै अविद्या विषय वासना होन न दई पराई ।
'विहारीदास' प्रभु नेह निवाहत उलटावत बुधि आई ॥४४॥

[पद]

ऐसो कीजै खसम गुसाँई ।
पूरे प्रेम-प्रकासक अँग अंगन पुनि चतुर चतुराई ॥
जोरि तोरि जोरि दृढ़ वानत ढीली उसल बनाई ।
तक तानत वानत तोलत तव उनही तन धुक धाई ॥
बहुरि सुघर सुतिढार छोल छेप सुहस्त समराई ।
जब जानी जन के तन मनकी अब रेडी गुटी गवाई ॥
कहा कहौं सतभाव स्याम कौ अनसमझी समझाई ।

तव हम कह्यौ न मानत हैं अनुभव बिन परत न पाई ॥
खायो स्वाद निहारी सोभा सवै प्रीति पिछनाई ।
'विहारीदास' प्रभु प्रगट कर दई जे ही दुरी दुराई ॥४५॥

[पद]

ऐसो है सबही कौ साँई ।
आदि, मध्य, अवसान एकरस संतत-सुखद गुसाँई ।
नए नेह नित राखत ज्यों दूलह दुलहिनि दुलराई ॥
गुप्त मते की बात मनोहर कहत रहत सुखदाई ।
सौति विमुख दुख जरत ज्वर मानत न कही कहाई ॥
मेरेइ रंग रहत रंगीलो वे सकाम बहकाई ॥
ज्यों अर्भक हित मात तात नित राखत लाड़ लड़ाई ।
खेलत खात न खेटत मेटत हठ कर कोटि चुराई ॥
और कहां लों कहों स्यामकी करत सवै मनभाई ।
'विहारीदास' प्रभुकी सब साँची सो मन माँह समाई ॥४६॥

[पद]

यों जन प्रभु सो प्रीति करै ।
ज्यों सेवक अपने प्रभु तन सनमुख सतभाइ टरै ॥
बिन साधन क्यों सिद्ध होत कृत को औगुनहि हरै ॥
काम, क्रोध, मद, मोह मनहि वस करै तो काज सरै ॥
ज्यों पसु हित नित देत करव खर धनी दूध के लोभा ।
ऐसे जो जन देहि निवाहत भजन बढ़ै बिन छोभा ॥
तव निर्मल ह्वै कहै विमल-जस उदित प्रेम तन गोभा ।
'विहारीदास' कीजै परमारथ स्याम मिलै सब सोभा ॥४७॥

[पद]

जग अहंकार रह्यौ रिस रोहि ।
जहां सु तहां सवनि राख्यौ ममता के गुन मन पोहि ॥
अरु यों कहत करत हम करिहैं सुनत रहत मुख जोहि ।
अद्भुत कथा जतर्क तिहारी आसंग परत न मोहि ॥
उतपति करत प्रलय प्रतिपालत यह मत लियो न टोहि ।
'विहारीदास' चितवत तुमही तन सब ताको पर तोहि ॥४८॥

[पद]

सुनि अहंकार भलो न भिया।
काहे को दुख सुख मानत हौ पैयत न विना दिया॥
बुद्धि, विवेक भजन भरि राखत मोहन हेरि हिया।
'विहारीदास' प्रभु कियो सु मान्यो यों जनु जानि जिया।४९॥

[पद]

जबते कियो साँवरे चेरो।
कागरु फेरि निवारि लियो हरि मेटि सबन सो झेरो॥
जब होहुँ तो अनाथ नाथ विन खिच्यो फिरत मन मेरो।
सबकी कानि कनावड़ मानत छिन छिन भ्रम भटभेरो॥
देव फिरत निदरत पाँचो मिलि चितवत कुटुम करेरो।
रहे सबै चुपचाप चितै जब हित जान्यो हरि केरो॥
दियो प्रसाद प्रतीति प्रीति के राखि निपट नित नेरो।
मोल लिये की इती करत को हौं जाइ उघर हेरौ॥
श्रीहरिदास साँठि साँचे विन को करि सकै निवेरो।
विहारीदास' निभय पावन-पथ लोगहु लगौ सवेरो।।५०॥

[पद]

जनु जाही को होत न लीनौ।
छाड़ि गए सब रोग, दोष, दुख तन को खोज न चीनौ॥
भूलि पऱ्यो अज्ञान भीर मैं पहिचान्यौ पट भीनौ।
काम, क्रोध, मद, मत्सर काहू तिरछौ हाथ न कीनौ॥
साँचो विरद विहारीजू को अपने विरदनि हीनौ।
'विहारीदास' प्रभु जान न दीनौ यद्यपि हुतौ कमीनौ।।५१॥

[पद]

स्यामाजू के सरन जे सुख न सिराने।
तिनको सुख सपने न लिख्यो जे फिरत विविध वौराने॥
करि अहंकार वंद ते छूटत, सठ अपने ही अज्ञानै।
बाँधि रहे अविवेक बड़ाई टरै सुनै नहिं कानै॥
सीचत अंड आम की आसा फूल फलै न पिछानै।
दरसत परसत खात न जानत आँखि अछत अँधरानै॥

वहुरो उद्यम करत निलज ह्वै इन्द्र भए न अघानै।
ताहू भए अनभए निर्धन निघट गए पछितानै॥
जरत हरित गीली लकरी लौ तन, मन म्लिन धुंधानै।
ते जानौ आतम-हत-पशु संसार-सोक में सानै॥
थोरी आयु मनोरथ लाम्वे विना वाहु-वल तानै।
'विहारीदास' विन भए बौरिया वूड़ै सवै अयानै॥५२॥

[पद]

अव हौं वँध्यो मोह के फंदा।
संकट परै सहाय न कोऊ तुम विन आनँदकंदा॥
अपनेही अज्ञान सहत सठ विविध दुसह दुख द्वंदा।
नस्वर नेह देह सुख मानत काम, क्रोध आनंदा॥
विनती कर न सकौं सनमुख तुम सौं वृन्दावनचंदा।
किए आपने भाए तुम, विसराए ऐसो मतिमंदा॥
कीने जतन जिते जाने अव हारि पर्‍यो छन्दवंदा।
'विहारीदास' के भय-मोचन तुम दिन दूलह मकरंदा॥५३॥

[पद]

रे! तूं वहुरि कहा फिर आयो?
हम जान्यो पहले लेखे ते अवहूँ कै डहकायो॥
लोभ लाग उनही सरक्यो सठ दूनौ सुनि-सुनि धायो।
कीनौ मन कृपनन मिलि काँचौ श्रम कर मूल गमायो॥
मानस कवहूँ भयो न भैया मिलि सतसंग न गायो।
करुना-निधि प्रभु को रस जस तोहि काहू कछु न सुनायो॥
भई न प्रीति प्रतीति भजन-धन दारा मोह बढ़ायो।
आनँदनिधि राखी न्यारी तू करई खर वौरायौ॥
पछितान्यो परिहर्‍यो नर्कहू उनहू वदन दुरायो।
'विहारीदास' विन भजे साँवरो यों वहुतम दुख पायो॥५४॥

[पद]

कहियत पैयत स्यामसुजान।
मन, क्रम, वचन किए कहत तूं कर सतसंग गुरु आन।
सुल्लभ संग समाज समभ सुनि श्रीभागौत-पुरान।

तू नर ए नागर सुख-सागर श्रीहरिदास न मौन ॥
बाँदर, रीछ, गीध, गज, गनिका इते साखि सुनि कान ।
'बिहारीदास' संदेह न राख्यो श्रीमुख बचन प्रमान ॥५५॥

[पद]

याते मोहि कुंजबिहारी भाए ।
सब दिन करत सहाय सुने मैं सुक, नारद मुनि गाए ॥
भूल परौ अपनो घर तब उझकत फिर्यो पराए ।
ए गुन सुमिरि लिए सुख दुख के पैड़े सबै बताए ॥
जिनको प्यार तुमही तन चितवत ते न जात बौराए ।
'बिहारीदास' किए ते हित करि अपने संग बसाए ॥५६॥

[पद]

अब हौं कासो बैर करौं ?
ऐसे कहत पुकारे श्रीमुख 'घट-घट हौं बिहरौं' ॥
तो कहियत अपराधी-जन जो आज्ञा पग न धरौं ।
दुसरी किए बहुत बिगूचे अब का हौंहूँ नर्क परौं ॥
प्रानी सब समान अवलोकौं भक्तन अधिक डरौं ।
'बिहारीदास' हरिदास कृपाते नित निर्भय बिचरौं ॥५७॥

[पद]

कबहूँ दीन ह्वै न हरि गाए ।
हम पंडित, हम चतुर, गुनी हम कवि अहंकार कहाए ॥
सो बिसरौं जाते सब सूझै जठर जरत जिन ज्याए ।
छिन-छिन प्रतिपार्यो न्यारो करि सुनि पग धरनि धराए ॥
बालक, बृद्ध, तरुन तीनौं कहि परवान बनाए ।
कबहूँ चलत घुटुरुवन कबहूँ धाय कबहूँ कटि टेक उठाए ॥
अपने प्रभु पहिचाने बिन अभिमाने गए गमाए ।
उत्पति करत प्रलय प्रतिपालत ए गुन सुमिरन आए ॥
काढ़त काँध जिते देखेते सबै त्रिबिध बौराए ।
'बिहारीदास' प्रभु अन्त भक्त ही अपने बिरद धुकि धाए ॥५८॥

[पद]

हरियश हरि ही के हेत न गायो ।

स्वारथ ही परमारथ मान्यो परमारथ विसरायो ॥
हरि-रस-अमृत विषय-विष मिलयो अँधरे पशु लो खायो।
जो निरधार कियो शुक नारद सो मुख स्वाद गमायो ॥
काहू भाग भयो गुरु सन्मुख तिन सतसंग दृढ़ायो।
श्रवन कथा सुनि-सुनि रुचि बाढ़ी कछुक सुकृत उपजायो।
धन, दारा आगार बन्धु तजि सात समुद्र तरि आयो।
गोपद जल देहा अभिमानी बढ़त खोज नहिं पायो ॥
गर्भवास अति त्रास भक्ति सुनि अन्तर अति अकुलायो।
करी कृपा हरिदास 'विहारीदास' हि जब समुझायो ॥५६॥

[पद]

रे चित चंचल ! अनत न जैए।
जुगलकिसोर चतुर चिंतन विन सुख संतोष न पैए।
कहुँ आदर कहुँ होत निरादर विन विवेक विष खैए।
मानस किए हौ कित कूकर भड़हाई न अघैए ॥
कंचन लोहनि गढ़ हठ छूटै मनसा हू न वँधैए।
पाप पुन्य दोऊ सम सुनियत है डहकाए डहकैए ॥
परमारथ विन जे स्वारथ की सवै जानि दुख दैए।
विहारीदास प्रभु को आनँद नित नागर नेक रिझैए ॥६०॥

[पद]

मेरो मन श्रीवृन्दावन अटक्यो।
राख्यो श्रीहरिदास महाबल भूलि न इत उत भटक्यो ॥
विसो विस्व विलास त्रास उपहासन नेकु न मटक्यो।
उपज्यो अति आनन्द हिए सुख सफल प्रेम लै लटक्यो ॥
दियो प्रसाद प्रतीति कै महल कुमहलन हटक्यो।
'विहारीदास' दम्पति सुख चैनन नैन मधुर रस गटक्यो ॥६१॥

[पद]

मेरे नित नेम निकुंज-निधान।
यह पतिव्रत विदित करिहौं गाइहौं गुनगान।
मोहि दियो प्रेम-प्रसाद श्रीहरिदास रति मन मान ॥
अहलमहल की टहल निसिदिन करत हियो सिरान।

बहुत बहुतनि डरत निहोरे फिरत लोभ लुभान।
जहां जैसो तहां तैसो सुनत कायर कान।
तप निवृतनि अचार आतुर करत आसा आन।
साधन कोटि खद्योत समजुत नाम निज बिन भान।
सबै वलि तकतोल देखे लगत लवण समान।
'विहारीदास' विश्वास बरबस किए सुघर सुजान ॥६२॥

[पद]

सतगुरु गोविंद वेद निहारी।
दीनो मधुमथ प्रेम सु औषधि उपाधि यहै उपचारी ॥
नेक बदत दरसै सुख जानत बिन परसे करनारी।
काम-कुरोग ग्रसत संसृत मन तृष्णा हरी हमारी ॥
अति निरपेक्ष उदार कहावत संतत सब सुखकारी।
'विहारीदास' सो हुती मृतक की प्रगट प्रतिज्ञा पारी ॥६३॥

[पद]

वाँके विरद बुलावत साँचे।
सर्वस रीझि देत रसिकन को गुन गाए नेकु नाचे।
आपुनहू मिलि हँसत हँसावत सुख पावत रुचि राचे।
'विहारीदास' प्रेम की परिपाटी कवहू उमचन माचे ॥६४॥

[पद]

अपनो कर काहे ब राव ?
करुनानिधि नित विदित जगत जस हमही कहा जो विरद लजावो ॥
उक्ति युक्ति विनती सम्भ्रम ते कहत रहों गुन दोष नसावो।
अपनी रुचि राचो विरचो तुम प्रेम परस कैसीये वनावो ॥
ज्ञानी अभिमानी हों नाहों जन जानो कछुक कहावो।
तुमहि न दोष लगै न मोहिं अहंकार सु मन मते दृढ़ावो ॥
मोहिं न सकुच होइ न तुम्हें झुकतिहि रीति पग धरनि धरावो।
'विहारीदास' प्रभु सब सुखसागर ज्यों ही राखौं त्यों तुम सुखपाव ॥६५॥

[पद]

को जाने हरि क्यों रुचि मानै ?
काहू को श्रम करवाइ बहुत दिन काहू की बात सहजही वानै ॥

पंडित सुघर साधि दैवे को वहुत पचे कवि कोटि सयानै।
कूर कुरूप न बस काहू के जाकी फवै सु परि परितानै॥
महाप्रपंच रच्यो माया को ऐसो को वपुरा जो पिछानै।
'विहारीदास' प्रभु की अद्भुत गति नेति-नेति श्रुति स्मृति वखानै॥६६॥

[पद]

बुरो मानियत कवते काको ?
काहू के घर द्वार न उझकत जिन्हें व्यसन निज कुंज लता को॥
खेलत हँसत हँसावत सुख दै बड़ो लोभ मन या ममता को।
देखत जियत अहार विहारै जीवन-मुक्ति तिन्हें उर काको॥
विनती सुनौ विवेकी साँचे झूठे एक डगर जिन हाँकौ।
बिन समझे अपराध परत शिर कंचन काँच कसौटी आँकौ॥
ताको सुयश वखानत श्रीमुख स्यामा-स्याम कहत जस ताकौ।
'विहारीदास' हरिदास विपुल-वल भजन अनन्य सभामें साकौ।६७।

[राग-गौरी]

कहा गवैंर ! मृतक-नर ?
स्वान स्यार को खान पान तन ऐंठि चलत रे ! निलज निडर॥
यहै अवधि जग विदित वहु वांभन वड़े भए वीरवर।
मरत दूख्यौ ह्रीयो न जीयो कियो न सहाय साह अकवर॥
त्रास निकस न सकत सुर असुर राखे रौंथ काल करतर।
इतहि न उतहि बीचही भूल्यौ फूल्यौ है फिरत कौन के घर ?
सुखद सरन हरि चरन-कमल भजि वादी फिरत जु भटकत घर।
'विहारीदास' हरिदास विपुल वल लटक लग्यो संग सर्वोपर। ६८॥

[पद]

मन ! तू छाड़ि दे अहमेव।
कुटिलई अविवेक बूड़त विकट बाँको टेव॥
हितू जानै कहत तोसौं भेद या निज भेव।
विषय तजि वैराग करि अनुराग हरि की सेव॥
ब्रह्म शेष असुर शिरोमनि वन्दनीय अतेव।
साँवरो सतभाइ भजि नवकुंज देवी देव॥
मानुसी-तन तम तरन को यह वडौ लाहाछेव।

'बिहारीदास,बिस्वास गावहु सुजस नाम निषेव ॥६९॥

[पद]

हमसे पतितन को न सँभारे।
साँचो बिरद उदार-शिरोमनि गुन औगुन न बिचारे ॥
बिधि-निषेध आचरन जानत ऐसे अन-अधिकारे।
मोहन मुरली-धरन-धीर बिनु को अति अधम उधारे ॥
आपुन अति अनुराग हितू लो बोलि निकट बैठारे।
अपनो सहज दिखाइ प्रेम भरि दै प्रसाद प्रतिपारे ॥
सुनियत यहै सुभाव स्याम को दीनन निपट निहारे।
'बिहारीदास' निरपेक्ष-महाप्रभु बिन को काज सँभारे ॥७०॥

[राग- बिभास]

प्रात समय नव कुंज द्वार पै ललिता ललित बजाई बीना।
पौढ़े सुनत स्याम श्रीस्यामा दम्पति चतुर प्रवीन प्रवीना ॥
अति अनुराग सुहाग परस्पर केलिकला निपुन नवीन नवीना।
'बिहारीदास' बलिबलि दम्पति पर मुदित प्रान न्योछावर कीना ॥७१॥

[राग- बिलावल]

साँवरो नवरंग।
तैसिए तन-घन में दामिनि दुति कुँवरि किसोरी गोरी को संग ॥
यह रस रसिक उपासित स्वातै चातक लो जल जाचत लगत नंग ;
'बिहारिनिदासि' अनन्य-भजन बिन साधन आन न करत कछु ढंग ॥७२॥

[राग—रामकली]

प्यारी तेरे नैन सुख चैन रसरंग राते।
स्याम अंबुज-अधर सरस-दल-मधुर मनो पानकर मधुप मकरंद माते ॥
और अँग अंग अवलोकि बलहीन भए छके छबि छैल सुंदर सुहाते।
मुदित उघरत लसत उटत घूमत हँसत सुरत सुख सुमिरि अकुलाय पाते ॥
अलक घुंघट ओट पलक पल बसनही उदित मन मुदित ह्वै उमग गाते।
कियो चाहत दरस परस पुनि-पुनि प्रिये प्रेम-बल लटत तन लटक जाते ॥
देत अविलम्ब न बिलंब कर सुघरवर चरनकर धरत नेक न सकाते।
मिले फिर ईठ अति दीठ आतुर्य ह्वै अभिलषन छिनछिन बिलसत न अघाते ॥
मन न करखत सुखन बरषत 'बिहारिनिदास' परहाँस प्रान नहिं ताते।

सहचरि ह्वै भजौं पल पास क्यों तजौं ? संग वसिहौं मान कोटि नाते ॥७३॥

[राग-टोड़ी]

चलत लटकत अटकत लर छूटी छबि देखि सखी वलि जाई।
मंद-मंद मुसकत मुख दरसत यहि विधि रीझि रिझाई॥
कबहुँ-कबहुँ विरमत कौतुक मिस विहरत अति सुख श्रमहिनसाई।
यह रस रसिक 'विहारिनिदासी' कै विचित्र विहारीराई ॥७४॥

[राग-सारंग]

अँखियाँ लाल की ललचौहीं।
इत उत चितै हँसत सकुचत से पुनि बात कहत गहि गौहीं॥
नैन, श्रवन, नासा अवलोकत भाल तिलक दरसौहीं।
'विहारिनिदासि' स्वामिनि रस वर्षत यह सुख समझत हौंहीं ॥७५॥

[राग-सारंग]

पिय प्यारी चंदन चित्र कीए।
मानहु सरस प्रेम के अंकुर सींचे दृष्टि दिए॥
अति अभिलाषत लाल ललना मिलि सीतल होत हिए।
'विहारिनिदासि' दम्पति दुलरावति यह सुख सखी जिए ॥७६॥

[राग-मलार]

घुमेर गगन गरजत घन मंद-मंद बरसत,
वृन्दावन सरस घन पावस-रितु जु सुहाई।
चातक, पिक,मोर मुदित नाचत गावत भरे रंग,
निरखि-निरखि दम्पति सब सम्पति सुखदाई॥
तैसिए सरस सरद्व निसि आई तैसिए निकुंज,
कुसुमन छाई तैसिए ललना लाड़ लड़ाई अंक लपटाई।
'विहारिनिदासि' गाइ गूढ़ ओढ़नी उठाइ,
रीझि रहे अंग भींजि मिलि मलार गाई ॥७७॥

[राग-गौरी]

आज कौतुक वृन्दावन बंसीवट।
घुघट मुकुट काछनी काछे आछे नाचे जमुना-तट॥
दै सुलप सुधंग अंग मिलि तान तिरप में निपुन मनहुँ नट।
नेम विरस रस रहौ परस्पर विबस भए छबि निरखि छुटी लट॥

सारी सिर सँवारी प्यारी सखी पिय अंग झपत पियरे पट।
'विहारिनिदासि' हरिदासी के सँग गावत राग रीझि गौरी ठट ॥७८॥

[राग-धमार]

रासमंडल मध्य नृत्यत दोऊ।
विमल-भूमि विमल-द्रुम-दल नव-नृत्य निरंतर आलस न कोऊ॥
ज्यों ही ज्यों अपने अंग नृत्यत इत त्योंहीं त्योंही अपने अंग नृत्यत वेऊ
उपजावत गति में गति उकत रहत न हारि मानि मन कोऊ॥
रीझि-रीझि वारति सखी तन, मन, धन अद्भुत कौतुक जुवती जोऊ।
देत असीस 'विहारिनिदासि' इन रसिक अनन्यनि सुख में सुख होऊ॥

[राग-केदारौ]

जोरी अद्भुत आज बनी।
वारों कोटि काम नख-छवि पर उज्ज्वल नील-मनी॥
उपमा देत सकुच निर-उपमित घन-दामिनि-लजनी
करत हाँस परहाँस प्रेमजुत सरस विलास सनी॥
कहा कहों लावन्य रूप गुन सोभा सहज घनी।
'विहारिनिदासि' दुलरावत श्रीहरिदास कृपा वरनी ॥८०॥

[राग-केदारौ]

आज कछु औरे बनाव वन्यो।
हास विलास भेद भृकुटिन ते उपजत रहसि सन्यो॥
अंग-अंग प्रति पट, भूषन तन साँवल सुभग ठन्यो।
जागत जामिनि वढ़्यो रीति जो सुख कापर परत गन्यो॥
अति आनन्द मगन सुरत सदन छिन न विहात जन्यो।
'विहारिनिदासि' नवकुंज केलि मनमथ मान हन्यो ॥८१॥

[राग-केदारौ]

विहरत दोउ अति रंग भारे।
अंसनपरभुजदिएविलोकतवदनज्योतिरतिहोतपरस्परनिरखिकोटिमदनमदहारे
अति अनुराग सुहाग भए वस रहि न सकत निमिष न दोऊ न्यारे।
'विहारिनदासि'दम्पति राजत मन्दिर निकुंजनित सुन्दर सुघर सुकुमारे॥१८२॥

[पद]

देखि सोभा सखि ! अति वन विराजै।

फूल में फूल अनुकूल सब द्रुमलता लपटि भावै भजत स्याम सुख साजै।।
और रोचक रसिक रहत राधा बसिक सघन तन तड़ित मिलि मधुर मिलिगाजै॥
मुदित मोरी मोर देतचित चहूँ ओर रीझि कुंवरकिशोर सब सुख समाजै ।।
कहत श्रीमुख धन्य धन रसिक अनन्य रहत सन्मुख सुखद मम केलि काजै ।
'विहारीदासिन' विदितसुखसमए मिलिहंसत सुजसरसनारसत सबदिन सुधन्यआजै ॥

[पद]

राजत रास रसिक रस रासे ।
आस पास जुवती मुखमन्डल मिलि फूली कमला से ॥
मध्य मराल मिथुन मनमोहन चितवत आतुरता से ।
वचन रचन सुर सप्त नृत्य गति मदन मयंक विकासे ॥
बाजत ताल मृदगं अंग संग मंद मधुर सुर हासे ।
घुंघट मुकट अटक लटकत नट अभिनय भृकुटि विलासे ॥
वारति कुसुम सुगंध देखि सखि आनन्द हिए हुलासे ।
तृण तोरत जोरत छिन-छिन छबि विपुल 'विहारिन' दासे ॥८४॥

[पद]

विहारी लाल बाँकुरा विराजै ।
सोहत सहज सिंगार प्रिया उर छिन-छिन प्रति रति साजै ॥
उपमा कोटि करौं न्योछावर इनहीं निरखि निपट छबि छाजै ।
'विहारीदास' हरिदास विपुल वल गाइ गूढ़ गुन गाजै ॥८५॥

[पद]

ललित-गति चलत चरन नूपुर बाजै ।
रही जक जुवती नृत्यत सु पग धरत परस संगीत वारत सत समाजै ।।
अंगअंग अभिरामिनी बिन भाइ भामिनी सहजहि इत उत चितै समरसर साजै ।
'विहारिनिदासि' स्वामिनी रीझि रसवस किए रवन रमि रसिक संग कुंज वसि आजै

[राग-केदारो]

रास रवनी रवन रसिक नवरंगी ।
विपुल भूतल नहीं अलप मंडल रचित सुरति नृत्यत उदित मुदित अंगसंगी ॥
सभा कलकुंज सुख-पुंज संपति सहित सघन मनि दीपवन कुसुमित सुरंगी ।
कहुं भृंगी कहुं मृगी कौतुक कहुं नैन सैनन विना वैनन विहंगी ॥
ससि भूल्यो भवन गवन जमुना पवन रहे मन वारि अनुरागिनि अभंगी ।

तहां नहिं श्रम कछू तम न गम विरह भ्रम मान लवलेश न प्रवेस न प्रसंगी ॥
विमल गोरे गात मनहुँ निसि-गत प्रात आइ उभी भई उरजन उतंगी ।
सकल सुख साधि आराधि राधागुरै धरत पग चलत साँवल तन त्रिभंगी ॥
सब्द रसनावली ताल नीवी बंद वलय वाजत मृदंग नूपुर उपंगी ।
रेख परमान अति जान सनमुख सुलप मिलि चलत लटक गति भ्रुव भंगी ॥
कोक संगीत अवघर सुघर लाड़िली अलग लागनि लेत अनगति अनंगी ।
उपज औरे औरे रसिकवर सिरमौर रीझि रहे गहि ठौर सरस अंग अंगी ॥
तहां सखी सकल निमेष अंकुश सकुच जीति गजवर मनौ मिलि मन मद मतंगी ।
वहुरि प्रिया पिय विहँसत हँसत प्रेम-घन भए मन मगन तन तरलित तरंगी ॥
श्रीहरिदासी खड़ी विपुल प्रेमनि भरी मनन लै अनुसरी अंकन उतंगी ।
जय श्रीवर 'विहारिनिदासि' कहत सुखसार सुजस त्रैलोक सर्वोपरि सुमंगी ॥

[राग-केदारो]

रास में रसिक नृत्यत रंगभारे ।
गौर-स्यामल अनूप निपुन गुनगन रूप निरखि सत जूथ कल काम वलिहारे ॥
तरनि-तनया-कूल सरद-निसि अनुकूल विविध मुकुलित फूल भँवर गुंजारे ।
रिषभ षड़जात पंचम सुर सप्त मिलि लेत करतार उघटत नवल तारे ॥
उलट नागर लेत प्रियातन चित देत ज्यौंहीज्यौंही कहत त्यौंही त्यौंही चरन धारे
लाग कठर डाट भ्रूविलास न साट लेत गति सुधंग वर अंग न सम्हारे ॥
चतुर सहचरि नारि सुनि श्रवन सुर धारि हरष तन मुदित मन प्रान धन वारे ।
चित चकित चंद गति मंद उडुगन सहित सरस विवि-बदन भूतल निहारे ॥
करन सों कर जोरि सब युवती चित चोरि स्याम नागर गौर रमत न्यारे-न्यारे ।
कुंज चलि रहसि रस बरष आनंद हँसि 'विहारीदासनि' उभय प्रान प्रतिपारे ॥

[पद]

बसिवो श्रीवृन्दावन को नीको ।
छिन-छिन प्रति अनुराग बढ़त दिन दरस बिहारीजू को ॥
नैन, श्रवन, रसना रस अँचवत अँग सँग प्यारी पिय को ।
'श्रीविहारिनिदास' अंग सँग विछुरत नाहिन कांत रती को ॥६०॥

श्रीनागरीदासजी

॥ छप्पय ॥

निज गुरु सम वैराग्य, त्याग को सीमा कीनौ।
धार–प्रवाहक–प्रेम–रस करवा कोपिन लीनौ।
अमिट ध्यान अहनिसि विवि–छवि में भीनौ।
राव, रंक अरु रेह, रत्न को सम करि चीनौ॥
शिष्य विहारिनिदेव प्रिय दासनागरी सम सज्यो।
सम्बत सोलह-सत जन्म अरु सोलह सत्तरि तन तज्यो॥

—बिहारीशरण

जब बंगाल के राजा का मंत्री कमलापति को बैरमखां के लड़के ने धोखे से विष दिलवा कर, मार डाला एवं विहारीदासजी की अद्‌भुत आत्म–शक्ति से पुनः जीवित होने के पश्चात् उसने इन्हीं को अपना तन, मन, धन सर्वस्व समर्पण कर दिया और इनको अपना सद्‌गुरु मान कर, आज्ञानुसार भजन भाव में रत्त रहने लगा। इनकी कृपा–रूप महान् उपकार को अपने ऊपर भार स्वरूप मानने लगा। इनके प्रति उसकी उत्कट श्रद्धा उत्पन्न होगई। वह घटना स्मरण होने पर, पुकार उठता था अहा! "श्रीगुरुदेव विहारिनिदेवजी ने मेरे ऊपर कृपा–पूर्वक जो उपकार किया है; उससे उऋण होने का कुछ भी उपाय नहीं! हमारे तो सर्वस्व वे ही हैं, उन्होंने हमारे अधम-प्राण-रक्षा के निमित्त अपने पुनीत बाँह को काट कर, अपार कष्ट पाया। अब मैं ऐसे महान् सन्त को परित्याग कर, किसका स्मरण करूं? हमारे तो सर्वेश्वर वही हैं।

"मो मात, पित, गुरुदेव, बन्धू श्रीविहारनिदास हैं;
तन,मन,वचन,क्रम सकल अंगन मोर तनु जन तास हैं।
तिनके कमल-पद-जुगल प्रफुलित गंध मो अघ नास है,
मम उर-सरोवर बसो निसिदिन और अनत न आस है।"

इस प्रकार वह सदा उन्हीं के ध्यान में रत्त रहते हुये, इनके कृपा-भार–ऋण से उरिण होने का उपाय सोचने लगा। एक दिन उसने निश्चय किया कि-"अपने कुल–पूज्य श्रीहनुमानजी से ही चल कर इसका उपाय जिज्ञास करूं, इस प्रकार निश्चय कर, श्रीहनुमानजी से आकर प्रार्थना की कि"—हे देव! आप

हमारे कुलपूज्य हो, इस संशय-ग्रसित दास को आपके सिवाय कौन निःसंशय कर सकता है, इस विषय में मेरा क्या कर्तव्य है? आप ही कृपा-पूर्वक आज्ञा करो!" श्रीहनुमानजी ने प्रार्थना सुनली और आज्ञा दी कि-"तुम्हारी अब द्वादश-वर्ष की ही अवस्था शेष है, परलोक-गमन के पश्चात् तुम्हारे दोनों पुत्रों के हृदय में वैराग्य उत्पन्न होगा और गृहस्थ-जीवन से सदा के लिये अलग होकर भजन करने के निमित्त बन को प्रस्थान कर जायेंगे; इसलिये तुम प्रथम ही इन्हें श्रीविहारिनिदेवजी के चरणों में भेट कर दो जिससे तुम उरिण हो सको।

कमलापति ने श्रीहनुमानजी द्वारा दी हुई आज्ञा को नारायण और शुक्लाम्बरधर दोनों पुत्रों को सुनाई। पिता के वाक्य को श्रवण कर, ज्ञानी पुत्रों ने कहा-"आपकी आज्ञा पालन करना मेरा परम-कर्तव्य है, यह शरीर आपका ही है, हमारा इसमें किंचित भी अपनत्व नहीं! आप जो आज्ञा करेंगे; वह हम सहर्ष करने को उद्यत हैं। आप तो परम धर्म के ज्ञाता हैं जो हमारा विचार था वही श्रीहनुमानजी ने निर्द्धारित किया, सोई आप कह रहे हैं; इसलिये प्रसन्नता पूर्वक हम दोनों को अवश्य स्याम-शरणागत कराइये। हमें सर्वोपरि श्रीविहा-रिनिदेवजी गुरु मिल रहे हैं. इसलिये हमें त्रैलोक्य-सम्राज्य भी त्याज्य है। प्रसन्न-चित्त से आज्ञा हो अभी हम वृन्दावन को प्रस्थान करें।"

पुत्रों के ज्ञान वैराग्य संयुक्त-वाक्य को श्रवण कर, कमलापति के हृदय में अत्यन्त प्रसन्नता हुई और दोनों को साधु २ कह कर; प्यार करते हुये बोले— 'तुम्हारी बुद्धि श्रीगुरु-चरणाम्बुज-भक्ति में अति प्रवीण है। हमने अनेक विचार-धारा में गोता खाई, किन्तु कहीं भी निश्चयात्मक रूप से बुद्धि नहीं ठहरी। तुम मेरे अंगज मेरे समान ही हो। भाव, भक्ति एवं विवेक से युक्त हो, अब मेरी आज्ञा से तुम शीघ्र ही वृन्दाबन जाकर, श्रीगुरु-चरणाश्रित हो, उनकी सेवा में संलग्न हो जाओ। श्रीवृन्दावन को परित्याग कर, अन्यत्र कहीं भी मत जाना, अहर्निश श्रीगुरु कृपा की ही प्रतीक्षा में रहना। दूसरे के दुर्वचन सुनते हुये आप अमृतवत्-वाक्य उच्चारण करना!' "अखिल विश्व ऐश्वर्य हद सब सुखनिधि वैराग सो उर भरि शिरपर धरो गुरु-पद-कमल पराग।"

पिता के सद्वाक्यों को हृदय में धारण कर, उसी क्षण दोनों श्रीवृन्दा-वन के लिये प्रस्थान होगये। श्रीवृन्दावन के लम्बे-मार्ग को समाप्त करके इन्होंने

आकर श्रीगुरुदेव विहारिनिदेवजी के चरण-कमलों का दर्शन किया और श्रीगुरुदेव से गृह-परित्याग का समस्त वृतान्त भी वर्णन की। इनके वाक्यों को श्रवण कर, श्रीविहारिनिदेव अत्यन्त प्रसन्न हुये, इन्हें अपना ही समझ कर, इनके हृदय में अत्यन्त प्रसन्नता हुई। इन्होंने विशेष अपनत्वता से सहर्ष शिष्य कर, अपने सदृश्य ही कर दिया, जैसे एक दीपक से अन्य प्रकाशित हो जाते हैं। इनका नाम श्रीसरसदास और श्रीनागरीदास रखा गया। दोनों अत्यन्त प्रसन्नता-पूर्वक वृन्दाबन में निवास करते हुये भजन करने लगे। "कर करुवो गर गूदरी आनँद वदन विकास। मत्त रहत रसमें छके मनहुं विहारिनिदास ॥"

इस प्रकार त्याग-मूर्ति नित्यविहार-केलि-रस-पूरित-हृदय नागरीदास जी श्रीवृन्दाबन में निवास करने लगे। कुछ दिन पश्चात् इनका भतीजा भी जिसका नाम 'नवल' था सदनस्थ समस्त वैभव को परित्याग कर, श्रीवृन्दाबन आगया, उसे इन्होंने अत्यन्त स्नेह-पूर्वक रखा और शिष्य कर, 'नवलसखी' नाम से उच्चारण किया। एक समय 'नवलसखी' ने नम्र सुमधुर-वाणी से कहा—"मेरेशिर पर आपके समान सद्गुरू की छत्रछाया है; इसलिये हमारे जैसा भाग्यवान कौन है? अब अपने वाक्य सत्यार्थ ऐसा कृपा करो कि-अन्तरंग बहिरंग से एक सदृश्य सखी-स्वरूप हो जाऊं। जब नवल ने ऐसा सरस और दुर्ल्लभ वरदान माँगा तो इन्होंने कृपाकर कहा—
नवल सखी तोते कह्यो नवल-नेह नव-रूप। वाहिर भीतर एक रस रहियो परम अनूप ॥" इसप्रकार वरदान देते ही इन के शरीर में अत्यन्त प्रकाश हुआ और

" जुग कर मधि झलक्यो कल चूरौ; तिलक भाल दृग अंजन रूरौ।
नैन—कमल दलवत् रतनारे; नित्यकेलि पूरित ..मतवारे ॥
अंजन चूरा तनु झलकाए; परस न होत न मिटत मिटाए।
मत्त मुदित गजवत गति डोलैं छकनि छके मुख ते नहिं बोलैं ॥

इस प्रकार नवल सखी-स्वरूप धारण कर, गुरू आज्ञानुसार वृन्दावन से बरसाने मे आकर मोरकुटी पर निवास करते हुये भजन भाव में निमग्न रहने लगे।
किसी समय दो कुस्तीगीर पहलवान-ब्राह्मण हलधर, भूधर, नामक आकर इनके शिष्य हुये। इन्होंने गुरूदेव को तीस हजार रुपये भेट की थी। वह समस्त रुपये नवलसखीजी ने वृन्दावन लाकर, श्रीनागरीदासजी को भेट करदी। श्रीनागरीदास जी का समय, निजमत सिद्धान्तकार ने इसप्रकार निरुपण किया है।

"सम्बत सोरह सै तनु धार्यौ। माह—शुक्ल—पंचमी बिचार्यौ॥
विराजमान सत्तरि बरस गृह मधि बीस रु दोय।
विपिन सु अड़तालिस बसि तिन सम ते नहिं कोय॥
सम्बत् सोरह सै सत्तरि। तब लौं रह्यो शरीर प्रेम भरि॥
वदि–वैसाख–सु–नौमी आई; तनु तजि निज स्वरूप मिल जाई॥

इनकी अति मधुर, ललित भावपूर्ण सौपदों की वाणी प्राप्त है; जो टट्टीस्थानीय अष्टाचार्य की वाणी में समिलित है। कुछ सवैये और पद उद्धृत किये जाते है–

[नवल–चौवोला]

प्रथम प्रेम-पग परसि नवल नित्य–नवल विहारिनिदास।
नवल नागरीदासि नवल सुख सेवत नवल उपास॥
नव बन नवल–निकुंज सदन सुख नवल परस्पर हास।
नवल प्रिया–पिय नवल–प्रेम वलि नवल नागरीदास॥
नवल सेज सुख लीजै नवल भूसन नवल नेह नव–ख्याल।
नवल केलि फूले करत हरत मन नवल लाड़िलीलाल॥
नव किसोर नवरूप नवल- छवि पटतर देहु कहि काहि।
नवल नयन मृदु–वैन नवल सुख जीवन है मुख चाहि॥
नवल एकरस वैस नवल नेह सखी नवल कामिनी कन्त।
नवलविहार विलोकत नवल सखि नव–आनन्दहि न अन्त॥
नवल हास रस रास नवल नित नवल विचित्र विनोद।
नवल ललक पलक न लगे नवल मदन मन मोद॥
नवल दरस परस नवल उर नवल लटक लपटात।
नवल सुधाधर पान नवल करत न नवल नेक अघात॥
नवल सुरति रति रंग नवल सखी नवल सहज अनुराग।
नवल विहार विवस नव–नागर नागरि सहज सुहाग॥
नवल प्रेम को नेम नवल नित नवल सहज आनंद।
नवल-प्रीति रस रीति नवल दोउ दिन दूलह मकरन्द॥
नवल मनोजन मौज चोज हित नवल दरस मुख मौन।
नवल छैल छवि छुवत नवल अलि! यह सुख बरने कौन?
नवल कमल–मुख नैन नवल अलि! पिवत नवल मकरंद।

नवल लाड़िलीलाल नवल सुख नवरति आनँदकंद ॥
नवल गौर लसै नवल छवि नवल अंग-अँग अनंग ।
नवल स्याम नव ख्याल परस्पर विहरत नव-नव रंग ॥
नवल करत सिंगार नवल प्रतिबिंब निहारें ।
नवल सुमन गहि केस नवल कर चित्र सम्हारें ॥
नवल कवच कसि कंचुकी नवल बसन अभिराम ।
नवल सुभट सन्मुख जुरे नवल करत संग्राम ॥
नवल कुंज नवखेत नवल नव कुसुम तलप मैदान ।
नवल भृकुटि धनुषन धरे नव नैन कटाच्छन बान ॥
नवल सुरति संग्राम नवल मची चोज मनोजन मार ।
नवल सूर सम वैस नवल दोउ अद्भुत नवल विहार ॥
नवल कसन कसि कंचुकी नवल हार गए टूट ।
नवल प्रेम अँग-अँग मिले नवल करत रस लूट ॥
नवल पान रसमत्त करत नवल न अंग सँभार ।
नवल रंग घूमत रमत झूमत नवरति सुरति सुमार ॥
नवल सेज सुख सहचरी नवनिकुंज कल छाहिं ।
नवल प्रेम प्रिया नवल दोउ लै राखे उर माहिं ॥
नवल सहेली सजै नवल रति नवल चतुर चित चाव ।
नवल सुरति सुख सेज नवल ए सेवत नव-नव भाव ॥
नवल विपुल मन सहचरी नवल सुखद हरिदास ।
नवकुंज विहारिनिदासि नवल वलि नवल 'नागरीदास' ॥
नवल नागरीदास नित सेवत सहज सुवाइ ।
विहारी विहारिनिदास के सुख में रही समाइ ॥१॥

[सरस-चौबोला]

सरस मुदित मन फल सरस प्रेमा सु पग परसें ।
सरस विहारिनिदास सरस दिन दम्पति दरसें ॥
सरस कुंज कौतुक सरस सरस रसिक रस रास ।
सरस सुमन सुख सेज वलि सरस नागरीदास ॥
सरस मृदुल मनि भूमि सरस वृन्दावन राजैं ।

सरस मदन सुख सदन सरस सम्पति सुख साजैं ॥
सरस जमुन कल कूल सरस सर सरसी कुंजैं ।
सरस फूल कुल कमल सरस दरसत सुख-पुंजैं ॥
सरस लताद्रुम लपटि सरस रस बल्ली फूली ।
सरस सुमन रसमत्त सरस अलि अवली भूली ॥
सरस सुखद बहै पवन सरस सुक पिक सुर गावैं ।
सरस काम कल केलि सरस मन मोद बढ़ावैं ॥
सरस छै रितु जु वसंत सरस सौरभ सुखकारी ।
सरस रंग मनि महल सरस खेलत पिय प्यारी ॥
सरस उबट सिर खौरि सरस रस कुँवरि किसोरी ।
सरस सुरँग पट पहिरि सरस राजत नवजोरी ॥
सरस कुसुम गहि केस सरस कर चित्र सँवारी ।
सरस सुजस रस हेज सरस बिबि बदन निहारी ॥
सरस स्याम सँग गौर सरस अँग अंगन राजैं ।
सरस मनोजन मौज सरस रति रंग विराजैं ॥
सरसबिहँसि रस रहसि सरस गुन गूढ़नि खोलैं ।
सरस स्वाद सुर संचि सरस मृदु हँसि-हँसि बोलैं ॥
सरस दम्पति गुन गान सरस तन मन आकर्षे ।
सरस रसिक मन रीझि सरस रस रंगन वर्षे ॥
सरस गौर गुन गरूर सरस नव—बाहु निहोरें ।
सरस प्रिया प्रिय प्रान सरस बिबि चिबुक टटोरें ।
सरस उमग अनुराग सरस अंकन भरि लेहीं ।
सरस ललक नहिं पलक सरस रस चुम्बन देहीं ॥
सरस पिवत मकरंद सरस बिलसत न अघाहीं ।
सरस नेह रस रंग सरस अँग-अँग अरभाहीं ॥
सरस विचित्र विनोद सरस विहरत रँग भारी ।
सरस मत्त मन मगन सरस रस कुंजविहारी ॥
सरस भोग भोगी सरस सरस सुगंध जलपान ।
सरस नागरीदास सरस रस सेवत सरस सुजान ॥

सरस सिरोमनि स्वामिनी सरस सुखद हरिदास।
सरस विपुल मनरूपनी सुघर सरस रस रास ॥
सरस नागरीदास सरस सुख सेवत हिए हुलास।
सरस सहेली सरस मन सरस विहारिनिदास ॥
सरस सनेह नव "नागरीदासी" सरस रति रंग।
फूलत तन, मन सुखी पिय प्यारी अँग संग ॥२॥

[सवैया]

नितही मेरे नेम विहारी विहारिनि विहारिनिदास उपास सही;
यहै सिध साधन बाधा नहीं कछु मैं सुखही मनमाहिं लही।
सुख सौं सनवंधहि अंध न जानत मानत कूर कुपन कही;
'नागरीदास' हुलास कहै नव-प्रीति प्रिया पिय सो निवही ॥३॥
विहारिनिदास जु सुखकी रासि सबै गुनको सु प्रकास कियो;
कर्म विज्ञान पढ़त पुरान सुभक्ति निदान को भेद कियो।
तामें ब्रजरीति सु प्रेम समीति सुलीला-प्रकार दिखाइ दियो;
ताते रस रीति बढ़ै मन प्रीति सो नित्य विहार सो सार गियो ॥४॥
विपुल विनोद बढ़ै मन मोद श्रीस्वामिनि क्रोध अगाध हियो;
वलि नागरिदास अनन्य प्रकास कृपाकर चरनन बास दियो।
दियो वनवास सु थाह दिखाइ आनन्द बढ़ाय बुलाय लियो;
रंगराग सही सुख यों विलसै छिनहीं छिन अंग सुसार पियो ॥५॥
हरिदास भजै सु सदा सुखरासि विहारिनिदास सदागति मेरे;
विस्वास विलास त्रास न मानत भक्ति, ज्ञान विधि मुक्ति वेरे।
साधक सिद्ध प्रसंसत जाके सुता के तिन्हें वल है चित हेरे;
निकुंज-भवन मनरवन में ज्यों जुगल नवल रहे नित नेरे ॥६॥
नित नागरिदास के नेम यहै श्रीविहारिनिदास-उपास वने;
दुर्ल्लभ देह संदेह नसाइ लड़ाइ प्रियापिय पाइ धने।
मोसर होत जो औसर चूकत कोटि करौ फिर तौ न वने;
प्रीति प्रतीत बढ़ै रस रीति सो पूरन काम यों राखि मने ॥ ७ ॥
कृष्णदास प्रिय विपुल विनोद विहारिनिदासि उपासि रहौं।
दुर्लभ संग अभंगन ते गुरु वासिन वृंद ज्यों सुख चहौं ॥

श्रीहरिदास सेए सुख-रासि लड़ाइ प्रिया गन नाम कहौं।
नागरिदास प्रकास कहै हित सुखद विहारी तौ निबहौं ॥ ८ ॥

लाड़िली लाल के प्रेम सहायक दायक मुख्य सबै गुनरासी।
राग के रंग रिझावत गावत भावत हैं नित श्रीहरिदासी ॥
अँग संग रहै मन स्वास लहै रस रीझि प्रियापिय देत स्यावासी।
'नागरिदास' लड़ावत ज्यों धन्य धन्य अनन्य विहारिनिदासी ॥ ९ ॥

सुखदायक देखि विहारी विहारिनिदास सहाइ सबै गुन री!
अद्भुत रूप अनूप भरी सुखरी! रँग अंग फबी चूनरी ॥
श्रीहरिदास-सनेह सलोन सबै विधि अंग रची उन री;
बलि नागरिदास लड़ावत गावत तान तरंग न तू सुनरी! ॥ १० ॥

श्रवन सुनौं रसना गुन गाऊं स्वरूप अनूप हृदय में विचारौं;
नासिका आस सुवास उतीरन माला सुमन बसन सिंगारौं।
बंदन सीस करौं दिन यों मनकी मनसा इत उत्त न ढारौं;
'श्रीनागरिदास' के आस यहै नित नैन विहारिनिदास निहारौं ॥ ११ ॥

सर्वस श्रीहरिदास-उपास अनन्यन के धन कुंजविहारी;
या रस प्रेम रसिकन के रस-रीति-रसायन प्रीतम प्यारी।
निरखैं परखैं हरखैं अँग अँग अनंग उदै रति रंग दिहारी;
सदा सुख मत्त विहारिनिदासि श्रीनागरि नागर की बलिहारी ॥ १२ ॥

जाके हृदय हरिदास बसैं भिया ताहि कहा कछु वे अब कीवैं;
बसे बन वृंद स्वछंद भए धन धन्य अनन्य सदा सुख जीवैं।
रहे गर्व भरे रस प्रानप्रिया के फिरे उनमत्त महा मधु पीवैं;
'नागरिदास' विलास विहारिनिदासि भंडार लिए दिन दीवैं ॥ १३ ॥

न जानत जात निसा दिन काल न कर्म कलेवर के न डरोसे;
विपिन सुधारस पान करें कहु काहि तृषा जाहि आप परोसे।
'नागरिदास' विलास विहारिनिदास कृपा सु विनोद करोसे;
विहारी विहारिनि कौ सुख जोवत सोवत श्रीहरिदास भरोसे ॥ १४ ॥

अति नृत्यकला गुनगान सुजान बजावति बीन प्रवीन प्रिया;
मानो नृत्यत हैं दस चंद नखन द्युति ह्वै कर काम प्रकास किया।
चकचौंधि रहे हरि हेरि मनो तान तरंग के रंग जिया;

दासनागरी के गहि पांइ रिझाइ रसिक सु अंक लिया ॥१५॥
ललित-लता भूमी द्रुम-वेली मनिमय रज कपूर सुहाई;
त्रिविध-पवन मनि-भवन मधुप कूजत पंछी जमुना रस छाई।
कुंजमहल कुसुमन-शैया पर विहरत कुँवरि कुँवर सुखदाई;
विहारिनिदास हरषि जस गायौ जय जय श्रीवृन्दावन सुखदाई ॥१६॥
कोऊ कहै उद्यम साधि उपाधि अगाध सो बात कैसे उर आने;
कोऊ कहै व्याज बिचार करौ तुम कोऊ धन कालहि जात न जाने।
अपनी अपनी सब साँच कहैं बल है नटनागर नेह-निधाने;
नागरीदास के नाथ के हाथ ए वाद बके बकवाद अघाने ॥१७॥
लोक, वेद मर्याद गहै न लहैं सुख आपु कुसंग निवासी;
वैठत आन अनन्य के आसन दासन प्रेम असंग उदासी।
साहिब सेवक रीति न जाने क्यों माने महासठ बुद्धि-विनासी;
ह्यां सुद्धअनन्य बसें बन वृंद खरिक खरौ खोटौ लोग लिवासी ॥१८॥
सुख दुख के देह सदेह कछू न भजन्न भरम्म भूल बिलसें;
साधक, सिद्ध सुहाइ सुधर्म अनन्य ह्वै आन की आस नसें।
ह्यां, कृपासुख सार तैसे तिरस्कार अज्ञानआरूढ़ ते मूल खसे;
सुनि नागरिदास कहै सु लहै सुख सिद्ध के संग ह्वै सिद्ध बसे ॥१९॥
राखि हृदय प्रिया-प्रेम-सुधा-रस-सार दुराइ दिखावत है उर ;
करि विषय तन माया-प्रचंड कृपा बिनु वस्तु लहै क्यों मूर ?
श्रीगुरु प्रेम प्रसन्न बसें बन-धर्म-अनन्य महामन सूर ;
नागरिदास को दै सुख संग श्रीविहारिनि जानि पर्‌यो गर कूर ॥२०॥
श्रीगुरु इष्ट अनन्य उपासना आस कहूँ मनसा मति धावै ;
रुप लै सुख स्वास गने तो बने तब सेवक साहिब के मन भावै।
जानि कृपा नित दै चितये ज्यों भृंग ह्वै कीट स्वरूप को पावै;
ह्वै नागरिदास विलास रस बस ह्वै तो जो वसु ह्वै वसुलावै ॥२१॥
लोभ को दम्भ किए न हिए हरि हेत बिना भ्रम भूलि फँसै।
गुरु,इष्ट सो प्रेम न नेम कछू धृकधृक महाकाल व्याल डसै।
नित नागरिदास विलास बिना रुचि मानौ विषय खर खात भुसै;
माया प्रपंच को संग बँधे सठ कामिनी काम कुरोग ग्रसै ॥२२॥

कपि-कौतुक बाँधि दिखावत ज्यों नट त्यों भ्रम भूलि के प्रीति पचौ;
उपजौ विनसौ वहु नाम सकाम ह्वै साधि विषय जग न जचौ।
अब दीनो कृपाकरि वास विपिन श्रीविहारी विहारिनि रूप रचौ;
भए नागरिदास विना यों विगूचत ज्योंज्यों नचावत त्योंत्यों नचौ ॥२३॥

रोग, भोग, संयोग, वियोग विधाता बनाइ दयो याको धर्म यहौ:
दुख सुख ते माया प्रपंच निवारि विचारि निज सुख जो निवहौ।
विलोकि विपिन विहार अधार अनन्य ह्वै नागरिदास कहौ,
यहै विट क्रम भस्म निसानी दुख की देह पै सुख चहौ ॥२४॥

सुख दुख को देह दुराव नहीं लोक-लज्जा-कपाट ते खोलि दिए;
पुनि काढ़ो कुबुद्धि ते सोधि कृपा करि आपुलै औरही ठान ठए।
विहरे उर-अम्बुज में सुख-पुंज प्रिया पिय रंग सो नेह नए;
नित नागरीदास विलास विलोकत भयो वन-वास निसंक भए ॥२५॥

उपज्यो नहिं प्रेम ऐसो न हिया ताते दुख सुख फिरत हिल्यो;
गुन गाए विना न सुखी मुख मौन गहें मानो मंत्र किल्यो।
सुख जीवत नागरिदास कृपा बिहारी विहारिनिदास डिल्यो;
या देह कौ कष्ट सहै सु गनै न कर्म को हीन कुसंग मिल्यो ॥२६॥

बेटा बहू और कुटुंब सबै तिन कौ सत संतत जात बखानो;
असमंजस बात विगूचत घात अनन्य महाबिष में रस सानो।
श्रीनागरिदास उदास भए बिन गूढ़ प्रिया सुख क्यों पर जानो;
कुंजबिहारी बिहारिनि-कृपा बिन है सुख संग सदा सठ बानो ॥२७॥

काम, क्रोध, मद, मत्सर, मोह ते लोभ छोभ जरि जाहि सबै अरि;
नाहिनै और समर्थ सुजान तन मन ताप संताप हरौ हरि।
नागरिदास के आस बिलास प्रिया-पिय-प्रेम सो राखौ हृदय धरि;
आपुन ही अपनाय कहौ किन काढौ कर्म की फाँस कृपाकरि ॥२८॥

बखानत प्रेम-प्रताप महातम साँच न स्वाँग कसे कस काँची;
साधक, सिद्ध भयो तो कहा जो कुँवरि-किसोरी कृपा नहिं बाँची।
श्रीगुरु प्रेम प्रसन्न विहारिनि दासश्रीनागरि के रँग-रांची;
रे बुद्धि! विवेक विचार यहै जो कहै सो लहै तो करै सब साँची॥२९॥

चातक ज्यों घन चंद चकोर विसन विनोद विलोकहियां;

ज्यों जल मीन जियै मकरंद को पान करै अलि ह्वै के हिया।
दरसे परसे नित नागरीदास प्रिया पिय राखै हृदय महियां;
मनसा वाचा कुंजविहारी बिना गति आन अनन्यन के नहिया॥३०॥
निन्दत वंदत है अनबूझ न सूझै प्रतीति बिना ढिग ढेरौ;
प्रपंच विषय-बस धर्म बिना अनुराग की दृष्टि न वस्तु को हेरौ।
नित नागरिदास विपिन सुधारस पान करत तिनै कत छेरौ; ?
श्रीगुरु-प्रेम प्रसन्न सब सुख संच सो संच मिल्यौ मन मेरौ ॥३१॥
कौन करै तप तरपन तीरथ तीन प्रकार कहा मन लाऊं;
कौन करै व्रत संयम नेम ? सुप्रेम पुनीत प्रसादहि पाऊं !
कुंज-निवास रसिक-श्रीनागरिदास-विलास बढ़ाऊं;
चित्त लगाय उभय-पद-अम्बुज नित्यविहारी विहारिनि गाऊं॥३२॥
भूल्यो हो भ्रम विषय वेहट में अनसमझे जु रह्यो जकथक्का;
कछु न सुहाय समाय हृदय में गुरु वचनन चरन चित तक्का।
लाल रसाल अंग अवलोकत ढाहि कोटि दुर्जन के रक्का;
जब पायो वन विश्राम कुंज-नव संग छुड़ाइ कियो मन इक्का ॥३३॥
विमल कमल कर्पूर पुलिन रज सेवत जल-जमुना जुग राजै;
मृदुमनि भूमि खचित कंचनमय मनसिज सैनन सेज सुखसाजै।
नवनिकुंज विहरत दोउ प्रीतम नागरिदास सहचरिन समाजै ॥३४

[राग-विभास]

आवत रंग भरे दोउ गावत।
कुंज कुंज सुख-पुंज प्रिया पिय प्रेम परस्पर मोद बढ़ावत ॥
सहज सप्त सुर उमग उमग उर तान तरंग रंग उपजावत।
पुलक पुलक तन उदित मुदित मन सहज सुघरवर रीझि रिझावत
सुरति सुखद रति अति-अनूप-मग रसिकसखी हित सुख वरषावत
विहारी विहारिनिदास सुखद सँग नव 'नागरीदास' मन भावत ॥२५

[राग-रामकली]

देख प्रिया, सखी ! आज बनी।
स्याम-तमाल जु अंस भुजा मानौ कनकलता फूली मृदु-कमनी ॥
केस कुसुम अलके झलकैं छवि भृकुटी नैन राजै विधु-वदनी।

अधर, दसन-छवि मुदित मुदित रवि जुग ताटंक नासा जलज-मनी ॥
मृदु इषद हास अनंग प्रकास सौरभ सरस प्रमान घनी ।
चिवुक चारु राजै ग्रीव हार उर कंचुकि स्याम सुभग तनी ॥
रोम-रोम लसै सारी सुमन कृश-कटि-नाभि नितम्ब सु पद रमनी ।
अंग-अंग निपुन नव-कोक-कला गुन वरषै माधुरि सहज धनी ॥
वलि 'नागरिदास' ए रूप की रासि विपुल विहारिनिदास भनी ।
कल केलि करैं अनुराग ढरैं प्यारी प्रीतम हेत रमैं रमनी ॥३६॥

[राग-रामकली]

मोहनी मोहन रंग भरैं ।
खेलत हँसत लसत वर आनन प्रमुदित मत्त अरैं ॥
कुंज-कुटी अभिराम-धाम-सुख नव-कल-केलि करैं ।
लोचन-चारु निहारि परस्पर रस अनुराग ढरैं ॥
रंग अनंग अंग प्रति साजैं सन्मुख सूर लरैं ।
वलि वलि विशद 'दासिनागरि' उर सुख संचरैं ॥ ३७ ॥

[राग-रामकली]

मुसक्यात जात सखी कहत बात ।
प्रेम मुदित ह्वै उदित प्रिया पिय पुलकि-पुलकि नव-गात ॥
अनँग रँग रसरूप अनूपम फूले अँग अंग न समात ।
'नागरिदास' दम्पति दुलरावत निरखि-निरखि नैन न सिरात ॥३८॥

[राग-विलावल]

नागरी नवरंगविपुल मन ।
स्याम-तमाल रसाल किसोरी कनकलता मानौ गौर सुभग तन ॥
दरस परस रस रंग भरे दोऊ बचन रचन मृदु कहत धनी धन ।
'नागरिदास, नव-कुंज-सदन में करत केलि-कल यहै प्रेम पन ॥३९॥

[राग-विलावल]

विहारिनि लाड़िली सुखरासि ।
रूप-अनूप महा-मनमोहनि सहज छबीली हासि ॥
अँग सु प्रेम सुख रंग स्याम सँग बिलसत मनहिं लासि ।
यह रस मत्त मगन अनुदिन वलि जाहि 'नागरीदास' ॥४०॥

[राग-सारंग]

विहरत जमुना-जल जुगराज।
वृन्दाविपिन विनोद सहित नव-जुवतिन जूथ समाज॥
छिरकत छैल परस्पर छबि सो सखी सम्पति रतिसाज।
नवल 'नागरीदास' श्रीनागर खेलत मिलै भल आज॥ ४१॥

[राग-मलार]

पावस-रितु आई सबन के मन भाई तैसोइ श्रीवृन्दाबन राजै सुखदाई। तैसिय घनकी घोर धनुष चहुँओर तैसेइ नाचत मोर तैसिए चातक पिक बोलन सुहाई॥ तैसी भूमि हरी हरी डोलैं बूड़ै रंग भरी लता अनुराग डरी रही छवि छाई। निरखि 'नागरीदास' प्रिया पिय सुखरासि विल-सत मन हुलास गावत मलार लाल ललना लड़ाई॥ ४२॥

[राग-वसंत]

बिहरत बिपिन भरत रंग ढरकी।
हरषि गुलाल उड़ाइ लाड़िली सम्पति कुसुमाकर की॥
कुसुंमी-सारी सौंधे भींजी ऊपर वंदन मुरकी।
चोली नील ललित अंचल चल झलक उजागर उर की॥
'नागरिदास' केलि सुख सनि रही प्रेम ललक नहिं मुरकी॥४३॥

[राग-वंगाल]

ए नवनागरी सब गुन आगरी मेरौ मन मोहि लियो।
रूप रंग रुचि माधुरी नव निरखि छके छबि नैन॥
बचन रचन सुर श्रवन रस रसन बिसारे बैन।
मुकुलित पुहुप पराग अंग-अंग नासिका मत्त सुबास।
नवयोबन उरज मंजरी रस छाके मधुप मकरंद हुलास॥
मेरे तू तन, मन, धन लाड़िली तू मम जीवन-प्रान।
'नागरीदास' के कुंजबिहारी बिहारिनि नेह-निधान॥४४॥

रागकेदारो

रसिक रसिकिनो किशोर नृत्यत रंगभीनै।
गौर सुभग श्याम तेज नटवर बपु बेष बनै तत ठुमक थेई थेई थेई उघटत गति लीनै॥
कोक संगीत सुघर गावत सुख सर्बोपरि तान तिरप लेत प्यारी पहिरे पटझीने।

अधर दसन दुति प्रकाश अलक झलक भ्रूविलास तान सुगन चोरत चित नवल नेह नवीने
रीझि रवन मोहि रहे धाइ चपल-चरन गहे लए लाल ललना हँसि अंस बाहु दीने।
'दासिनागरि'नवेलि नागर शिल करत केलि आनँद रसझेलि खेल पूरन प्रवीने॥

[पद]

रँगे अँग संग रँगीले।
तन में तन मिलि मनमोहन मोहन छबि सो छैलछबीले॥
पिए जिए मकरन्द—स्वाद—सख अति—स्वादी अरबीले।
'नागरिदास'श्रीकुंजबिहारीबिहारिनि सुरति रंग ढरेभरे अनुरागरसीले

[रागधनाश्री]

झूलत फूलत स्यामा—स्याम।
फूल डोल को फूल बनायो फूल उभग—सुभ—ग्राम॥
फूलन ही की शैया राजत फूलन ही के धाम।
उभय अंग पर फूल परस्पर उपजावत अभिराम॥
फूलन के आभूषन राजत देखे पूरन काम।
'नागरिदास' निरखि ललितादिक फूल सौं फूली भाम॥४७॥

[पद]

स्यामा नागरी हो प्रवीन।
सकल—गुन—निधान राजत नागरि नेह—नवीन॥
नख शिख छवि रूपकी रासि सोभित मोतिन मंग।
अलक झलक देखत छवि मोहै लाल अनंग॥
कवरी कुसुम ग्रथित कच तिलक विंदुली भाल।
वंक भृकुटि मोहत मन चपल नैन विसाल॥
अति दुति ताटंकन छवि भ्राजत लाल कपोल।
अधर दसन मुसक्यन-छवि मधुरे-मधुरे बोल॥
सुभग नासा सोभित अति वेसरि मनि लाल।
मुक्ता बहु भांतिन लसे चिबुक बिंदु रसाल॥
कंठ पदिक छूटी लरै मिही जंगाली पोत।
हेम जटित चौकी छवि जगमगै अति जोति॥
कुच जुग स्याम कंचुकी यों राजत मोतिन हार।
उर अम्बर उडुगन मनौ कीनौ है उद्गार॥

भुज-मृनाल जुगल वलयझाविन फौंदा सुढार।
पुहुप सुरंग फूलै मनौ मदन-विटप की डार॥
त्रिवली-नाभि कटि-नितम्ब किंकिन सुरतार।
कदलि-जंघ जेहरि खुभी छवि नूपुर झनकार॥
जुगल-कमल अरुन चरन राजै बहु भाँति।
नख-मनि-गन देखत छवि मोहन मन सांति॥
पचरँग ढिग अरुन सारी लहँगा पीत दुकूल।
गौर तन भोरेमन देखत जोहै लाल फूल॥
निरखत छवि अँग अंग मोहै स्याम प्रवीन।
चकचौंधी लागी नैनन लाल भए आधीन॥
कुंज-कुंज डोलनि बहु लीने सखी संग।
मुदित मोर नृत्यत देखि दामिनी घन रंग॥
दम्पति रति सोहत अति विलसन सुखसार।
ललितादिक देखत दिनहिं सर्वस प्रान अधार॥
जय श्रीवरविहारिनिदासि कृपा सेऊं सुखरासि :
छिन-छिन प्रति वलि-वलि नवल 'नागरीदासि॥ ५०॥

॥ इति॥

श्रीसरसदेवजी

छप्पय
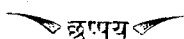
रसिक शिरोमणि सरस हृदय मृदुलता सरसत ।
भक्ति सने सब वाक्य मनो अमृत-झर बरषत ॥
विपिन अखंड निवास स्याम स्यामा सो नातौ ।
रहत केलि अवलोकि मस्त अति रस में मातौ ॥
शिष्य विहारिनिदेव लघु सरसदेव गादीसवर ।
आब्द कलासत इकसठ ऊपर जन्म मान्य इन रसिक कर ॥

—विहारीशरण ।

श्रीसरसदेवजी कमलापति मंत्री के द्वितीय पुत्र थे एवं श्रीनागरीदासजी के छोटे गुरुभाई और सगे भाई भी थे । गौड़ ब्राह्मण कुलोत्पन्न थे । ये उभय भ्राता, पिता की आज्ञा से साथ ही श्रीवृन्दावन में आकर श्रीविहारिनिदेवजी के शिष्य हुए । श्रीसरसदेवजी का जन्म संवत् १६६१ में आश्विन-पूर्णिमा का था । ३० वर्ष घर में व्यतीत कर उक्त उम्र में ही श्रीविहारिनिदेवजी के शरणागत हुये । ४० वर्ष तक श्रीवृन्दावन में अखण्डनिवासोपरान्त ७२ वर्ष की अवस्था यानी सं० १६८३ में शरीर का परित्यागकर नित्य निकुञ्जधाम को प्राप्त हुये ।

ये निज स्वरूपानुकूल स्थिति प्रवृति को सच्चे सांचे में ढालने के लिये भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, नम्रता एवं क्षमा से युक्त, श्रीस्वामीजी के वंश में प्रशंसित सदा नित्यकेलि ध्यान में रत रहते थे । आचार्योपासना, माधुर्य-भाव में अनन्यता एवं इष्ट में दृढ़ प्रीति युक्त धारणाधारी थे । सबके मित्र एवं सबसे भिन्न भी रहते थे आकाश के समान निर्मल घनवत सजल-सरस अनुरागयुक्त भक्ति के भण्डार थे । समुद्र के समान गम्भीर, क्षितिवत क्षमाशील, नीरवत् नम्र, अनल के समान तेजवान और पवन के समान स्वच्छन्द रहते हुये; नित्य नित्य विहारकेलि अवलोकन ध्यान में रत रहते थे । श्रीगुरु पाद-पद्म और रसिक भक्तों के अनन्य प्रेमी थे । संत समागम और संतसंगादिक से परम संतुष्ट होते थे ।

एक दिन सन्तों ने श्रीसरसदेवजी से प्रार्थना की कि "हे अनन्यमणि ! आपतो परम-विवेकी और नित्यविहारी के उपासना में दृढ़ हो । श्रीहरिदास-परम्परा में ऐसी ही रीति भी है और द्वितीय श्रीबिहारिनिदेवजी सदृश्य विराज-

मान हो। जैसे नित्य विहार अनादि हैं; वैसे ही श्रीहरिदासवंश की गद्दी भी है इस पर नित्य सिद्ध ही सुशोभित होते हैं। अन्य की स्थिति नहीं। इसलिये इस गद्दी को सुशोभित करने योग्य शिष्य कीजिये।

वैष्णवों की वाणी को श्रवणकर श्रीसरसदेवजी बोले कि "हमारी परम्परा में जैसा चाहिये वैसा ही ब्राह्मण कुल में अद्भुत बालक नरहरिदास नामक उत्पन्न हुआ है। बुन्देलखण्ड में दसान नदी के तट पर गूढ़ो नामक ग्राम है, वह विश्वामित्रजी का तपस्थान है, वहां बहुत काल पर्यन्त उन्होंने तपस्या की है। वहीं नन्दी नामक विप्र निवास करता था, उसके पुत्र का नाम विष्णुदास है; उसी के घर, उस पवित्र वंश में बालक का जन्म हुआ है वही मेरे परम्परा एवं गद्दी को सुशोभित करेगा। मैं छः वर्ष पश्चात् जाकर उसे शिष्य कर आऊंगा। आपकी भविष्यवाणी को श्रवणकर समस्त वैष्णव समाज अति प्रसन्न हुई। आपकी वाणी अष्टाचार्य की वाणी में सम्मिलित है, जिनमें से कुछ उद्धृत की जाती है।

[कवित्त]

विविध वर माधुरी सिंधु में मगन मन बसत वृंदाविपिनवर सुधामी।
महल निज टहल में सहल पावै न कोऊ छत्रपति रंक जिते कर्मकामी॥
रसिक रस रीति की रीति सों प्रीति नित नैन रसना रसत नामनामी।
हृदय कमल मध्य सुखसेज राजत दोऊ रसिक शिरमौर हरिदास स्वामी॥१॥
जमुन कल कूल कलकेलि कल कल्पतरु तीर छवि भीर वसि बन विश्रामी।
मंजु नवकुंज सुखपुंज गुंजै सुनत सरस अनुराग गुन राग धामी॥
पच्छि लच्छ लच्छ जे अलच्छ लच्छ नखच्छनिरखि निरपेच्छ लता ललित नामी।
नैनपुनरी ता ऊपर सुखसेज क्रीड़त दोऊ अनन्यमणि धन्य श्रीहरिदासस्वामी

[सवैया]

फबी अति ऐंड़ सबै मन मैंड़ सदा सँग क्रीड़त कुंज-किसोरा।
रसरीति सो प्रीति प्रतीति निरंतर चोप बढ़ी जैसे चंद चकोरा॥
अति आनंद में अमनैक विराजत गाजत भाजत लोग लटोरा।
सरस सिरोमनि श्रीहरिदास अनन्य जनन्य को न्यारोइ तोरा॥३॥
कर्म रुधर्म, ज्ञान, विज्ञान भक्ति न आन हृदय में आनौं।
बेद रमापति रामहिं आदि दै श्रीब्रजराजहि कोउ बखानौं॥

अति दुर्ल्लभ नित्य विहार हमारे श्रीहरिदास जू प्रगट बखानौ।
सरस सुसार विहार विहारिनिदास बिना है बिहार ना जानौ ॥४॥
जाके हृदय हरिदास हितानै ते जानौ विहारिनि के अनुरागी।
संसार की दृष्टि में दृष्टि न निष्ठा इष्ट आराधत हैं बड़भागी ॥
सदा थिर चित्त बसें बन नित्त प्रिया पिय हित्त रहैं लवलागी।
सरस विहारिनिदासहि देखत रहत प्रसन्न यहैं बड़भागी ॥५॥
श्रीहरिदास के वंस उजागर नागरि नेह नए नित साजै।
रसरीति सों प्रीति प्रतीति बड़ी श्रीविहारी विहारिनिदास निवाजै॥
तन कृति की वृति परी सहजै रहसै नव नित्य-विहार सो गाजै।
सरस सुसार बिहार बिचार कह्यौ धन नागरिदास विराजै ॥६॥
अति दुर्ल्लभ सार विहार कह्यौ जु लह्यौ नहिं नारद वेदन भेऊ
जा रस को बस नाहिं रमापति पावै नहीं सनकादिक तेऊ ॥
ता रस की अधिकारी न जानि विहारिनिदासि की दासि को लेऊ।
सरस परस को स्वाद कह्यो सुनि जय जय नागरिदास को सेऊ ॥७॥
लालच लोभ को छोभ चल्यो मन चंचल चित्त भयो मति बौरे।
देह के स्वारथ आरत ह्वै परमारथ प्रेम लह्यो नहिं ठौरे ॥
सरस सनेह को रंग बिसार बिचार ले श्रीगुरु हैं शिरमौरे।
विहारीबिहारिनिदास बिना नेकहु सुख संग सुहाइ न औरे ॥८॥
स्याम भजै भ्रम दूर भयो भैया! भय न रह्यो जबते चितये हरि।
काम, कुरोग; कुसंग, कुमंत्र, कुकाल, कलेस कछू न रहे अरि ॥
कुल कामिनि कंचन लागत कर्म कुभार भये सुगए भसमें जरि।
सरस लिए रसरासि प्रकास बिहारी बिहारिनि पूरि रहे भरि ॥९॥
काहू की आस न त्रास करै अपने व्रत को निरधारौ।
लोग लिवास लिए मन लाख कुलालच जनन यह काज विगारौ ॥
धृक जीवन है धर्म-धन आनत मानत धन्य किए सुख कारौ।
सरस सुसार बिहार निहार अनन्य जनन्य को पैड़ोइ न्यारौ ॥१०॥
और त्यों भय, भ्रम, भेद, विभेद, सदेह, सनेह, गए मन के।
बीज रु कूठि के ढ़ेर ढये सब प्रारब्ध मिटि गए तन के ॥
सरस परस को स्वाद कहैं पुनि गुन गान विहारी विहारिन के।

नागरिदास प्रसन्न भए सब साधन सिद्ध भए तिनके ॥ ११ ॥
को काजे कब कहाँ होयगो सुख सन्तोष पोष नहिं ग्राम।
छाड़ै श्याम गफलई जिनकी समझै विरद मनोहर नाम।
सरस परस पाए दिन फूलत श्रीवृन्दावन निज रस धाम॥
स्याम सरस आए को यह गुन जीवत जिन न लहौ विश्राम॥१२॥
पूरन प्रेम को नेम न जानिवो खान पान अनते वितयो।
झूठी आस उदास रहत मन कपट बचन के कूर गयो॥
सरस परस परसे को यह गुन तामौ तजि कंचन न भयो।
कह्यो सुन्यो समझयो कि तऱ्यो जो जिवत ही सुख न भयो॥१३॥
माखन आस कपास मथै सठ स्वाद के साधन जीभ लठी।
कंज करील सुवास कुवासक सेविन मान भए कसठी॥
सरस परस की संध यहै जुग है बड़ भाग अनन्य गठी।
विहारिनिदास बिना न विहार यहै असमंजस बात ठटी॥१४॥
करौ सु भली अबहूँ सुभली करिहैं सुभली न बुरी अरि हैं।
भली सुख संघ सो तौ इन मध्य भलै अब तौ व्रत ना टरि हैं॥
भलै रस रासि सरस सुवासि भलै गुन नाम हिए धरि हैं।
अपने मन नाहिं बिचार कछू करि हैं हरिदास भली करि हैं॥१५॥
बजाइ गजाइ अनन्य भए भय भ्रम नासि गए तिनही के।
घुस कूस करै मन माहिं डरै रस हौंस मरै मनसा मति फीके॥
नस्वर निन्दक बंधक बादक जानि सवै सुख ग्रोस-दुती के।
कहा ह्वै रह्यो मूक करै न द्वै टूक सरस मनोरथ तोल है जीके॥१६॥
दीन दुखी बपुरा भ्रम भूखेते देहि कहा मन माँगि लजैये।
एक गूदरी सेरक अन्न या देह कौ बाँधि दियो सु जहाँ तहँ है ये॥
सुकदेव रमापति कौ सुख दुर्लभ सुल्लभ पाय सौ क्यों न लड़ैये।
सरसहि देत अभय दिन दान दिये श्रीविहारिनिजू के अघैये॥१७॥
श्रीवृन्दावन कुंज भरे रस पुंज मनोहर दु ज नए सुखदानी।
करै कर केलि रहै रस झेलि निकट नवल नवेली सुजानी।
उपास बिहारिन दास सदा सुखरासि अनन्य विहार बखानी।
सरस परस प्रिया प्रीतम के पग पूरन आनँद सौं रति-मानी॥१८॥

माया महामद मोहि मोहि विषय लिये लोभ के लाट फिरै अरानी
कहुँ धीरज धर्म विवेक रह्यो नहिं मार किये सब कीच की घानी॥
जीव सुरंक कहा वपुरा सनकादिक नारद हू भए मानी।
सरस सुदास गरीब भलै लियो राखि कृपा करि कुंजकी रानी॥१६॥
स्वारथ को परमारथ खोवत रोवत पेटन को दई मारे।
भीख को भेख अनेक बनावत जाचत सूद्र महा मतवारे॥
भूख बड़ी भगत्योन सम्हारत आतुर ह्वै परदेश सिधारे।
सरस अनन्य निहाल भए जिन कोटि वैकुंठ लता पर वारे॥ २०॥

[कवित्त]

कुटिल गाफिल होत मनन इतै देत काहे अचेत भए जरत है भरम सौं।
और न कोउ सुहाउ प्रभु के सरन आउ औसर महा चुकाउ समझ लै मन सौं॥
काहे को मरत वहि श्रीवृन्दावन बसरहि सरस साहिब कहि लाड़िली लखनसौं।
तन धन सब गयो काम, क्रोध लोभ नयो चौंकपर्‍यो तब जब काम पर्‍योजम सौं॥२१॥
अबकै जनम जान्यो जनमौ न हुतौ केतिक जनम धरि धीर ऐसेही जरायो है।
यहै ओस तू अधिक जियो चाहत मानौ अबकै तू काल वेगिही दिखायो है॥
ऐसेझूठे प्रपंच में ऐसी बस्तु हाथ न पावै ताहि तू गमावै ऐसे कौने भरमायो है।
ऐसे सुखद समझि लेहि चित विन इतदेहि सरस सनेह स्याम संग सुखपायो है॥२२॥
ऐसो तन ऐसो मन है सोइ श्रीवृन्दावन भजन को करियत काहे तू अचेत है।
संसार- सागर तरकाहू के थरहि मर सांवरो साहिब कर क्योंन सुख लेत है॥
निलज उलूक अब हाथ मीड़ेंगो तू तब धोको काको सब झूठो संकेत है।
ऐसो राज ऐसो साज रस समाज आज करि किन लेहि काज ढील कित देत है॥२३॥
अब ही बनी है बात औसर समझ घात तऊ न खिसात वार सौक समझायो है।
आज काल जैहैं मरकाल व्याल हू ते डर भौंडे भजन कर कैसो संग पायो है॥
चित वित इत देह सुखहि समझि लेह सरस गुरु ग्रन्थ पंथ यों बतायो है।
चरन सरन भय हरन करन सुख तरन संसार को तू मान सब नायो है।॥२४॥

(सरस अनन्य निहाल भए जिन कोटि वैकुण्ठ लता पर वारे)

काहू धन मद, मान मद, काहू जोवन मद, काहू राज मद होत झूंठी बात कौ।
काहू गुन गान मद काहू जोग ध्यान मद दान अस्नान मद काहू रूप गात कौ॥
काहू जाति जीत मद काहु वेद रीति मद कुटुम समीत मद दीस पांच सात कौ।

सदा मनमोहन मनमोहिनी जू के मदमाते सरस सुरास पायो केकी कुंज घात को ।२५।

सहज बनी है तहाँ नहिं तकी हानि यह निज जिय जानि साँच ही सुभाव है।
एँचि खेंचि बनै न तू औगुन गुन गनैकर देखि जतन सौ बाद को खिजाब है ।।
वेद पोथी न लिखत सहज जहम मंत तहाँ न सुख कौ अन्त छिन छिन छाव है।
लोभ छांडि दै तू सुखहि समझि लै सरस परसवे को और ना उपाव है ॥२६॥

[राग-विभास]

लाडिलि लालन रंग भीने हो अंग अंग छवि वहु भाँति ।
साँवल गौर बदन अम्बुज पर विथुरी अलक अलि पाँति ॥
अरुन नैन अनियारे अंजन पर पीक पलक अरसाति ।
बचन रचन रुचि दसन दमक दुति अरुन अधर मुसकाति ॥
पुलकि पुलकि प्रीतम उर लागत प्रिया लटकि लपटाति ।
छके सुरति रस विवस विलोकत 'सरसदास सरस' उर साँति ।।२७।।

[पद]

सरस विहारिनि सरस बिहारी सरसदास सुखरास ।
सरस विहार सरस रँग भीने सरस परस्पर हास ।।
सरस ललित ए सरस मदन गति सरस अंग लपटानि।
सरस स्वांस सुर मंच सौ सरस मदन सुखदानि ।।
सरस प्रेम सुख सुख सदन में सरस लाड़िली-लाल ।
सरस सुरति रंग रस-रसे सरस कुंज में ख्याल ॥
सरस छवीले बदन विवि विगसत सरस सनेह ।
सरस रंग रस बस भए एक प्रान द्वै देह ।।
सरस वरस रस जुगल छबि सरस मगन मन मोद ।
सरस ललक लाड़त अति उपजत दुहुन कै कोद ॥
सरस कुंज सुख पुञ्ज में सरस जन्म कर लेख ।
सरस सिंगार बिहार में सरस चतुर मुख देख ।
सरस परस परसाद यह सरस संग सुख पाइ ।
सरस बिहार विलोकत दिन दिन सरसदास वलि जाइ ॥
सरस कहै सरसे रहै सरस संग जो होय ।
सरस कुँज में द्वै जवै ज्यों भावै त्यों जोय ।।
दरसन परसन प्रेम कौ कीजै तन मन लाय ।

चतुर सिरोमनि लाड़िली सरस संग सुख पाय ॥ २८ ॥

[पद]

लाल प्रिया को सिंगार बनावत ।
कोमल कर कुसुमन कच गूंथत मृगमद आड़ रचित सुख पावत ।
अंजन मन-रंजन नखवर करि चित्र बनाइ बनाइ रिझावत ॥
लेत बलाइ भाइ नव उपजत रीझि रसाल माल पहिरावत ॥
अति आतुर आशक्त दीन भए चितवत कुंवरि कुँवर मन भावत ।
नैनन में मुसक्यात जानि पिय प्रेम विवस हँसि कण्ठ लगावत ॥
रूप रङ्ग सीवाँ ग्रीवा भुज हँसत परस्पर मदन लड़ावत ।
'सरसदास' सुख निरखि निहाल भए गई निसा नवगुन उपजावत ॥२९॥

[पद]

जुगल मुख छवि बरनी न परैरी ।
उपजत मैन परस्पर वैनन नैनन में मुसक्यात हरैरी ।
अंस भुजा दीने भीने रंग रहसि बिहँसि हँसि अंक भरैरी ॥
विवस भए बिहरत पिय प्यारी 'सरसदास' उर संच धरैरी ॥३०॥

[राग-बिलावल]

रस भरे लाल लाड़िली आवत ।
कुंज सदन मन मुदन मुदित अंग सुरति रंग उपजावत ॥
घूमत नैन, वैन आलस जुत पद लट लटकत आवत ।
प्रेम उमग मन पुलक-पुलक तन कंठ सों कण्ठ लगावत ॥
मगन भए मुसक्यात परस्पर हर्षत रीझि रिझावत ।
'सरसदास' सुखरासि रसिकवर विचित्र विनोद बढ़ावत ॥३१॥

[राग-देवगंधार]

आज अतिराजत नागरि नाहु ।
नव-घन कुंज प्रति डोलत अंसन पर धेरे बाहु ॥
फूली लता परम हूँसि रसभरी गावत अधिक उछाहु ।
मंद-मंद गति अति छबि उपजत निरखि सखी बलि जाहु ॥
आनँद मगन भए लटकत नट पट भूसत तन जाहु ।
'सरसदास'सुखरासि लाड़िली लाल नसँग किलकाहु ॥३२॥

[राग-सारंग]

हौं बलि जाहु नवल पिय प्यारी ।

नव-निकुंज सुखपुंज महलमें दम्पति श्रीहरिदास दुलारी ॥
अति आसक्त रहसि हँसिहँसि उरलावत मिलि अंग२सुखसारी।
अति उज्वल रसविलसत विवि सुन्दर'सरसदास'या छविपर वारी३२

[पद]

श्रीविहारीप्यारी परहौं वारी।
सदा प्रसन्न-बदन विवि सुन्दर संतत सब सुखकारी॥
हँसत, लसत, बनबसत, कसत उर सुरति रंग छवि न्यारी।
'सरसदास' सुखरासि रहसिरस वरसत मिलि रँग भारी॥३३॥

[पद]

बदन-झलक मोहन बस कीने।
तामे मृदु मुसक्यात छवीली बिथुरी अलक नैन रँग भीने॥
रीझि रीझि वारत मन छवि,पर विबस भए अंकौ भरि लीने।
तन, मन मगन भए पिय प्यारी'सरसदास' सुखरासि नवीने ३४॥

[पद]

देखि वदन कुंज करत केलि।
कोमल-कर गेंदुक उछारत लटकत नवल नवेलि॥
मनहुँ मत गजरानी गजमिलि विहँसत भुजदंडन पेलि।
जुरि अँग-अंग अनंग अमित छवि रहे रसिक रस झेलि॥
विवस माधुरी पान कै वादी ललक नवेलि।
'सरसदास' सुख रासि प्रिया पिय कै अँग सँग मिलि खेलि॥३५॥

[पद]

वे वाके वे वाके नैनन प्रतिबिम्ब में सिंगार जनावत।
चतुर रूप गुन रासि सुघर दोउ अपने अपने कर रचि-रचि सखिहि दिखावत
इतहि सँभारि विलोकत उन तन चितै चितै चित चोप बढ़ावत।
'सरसदास' सुखरासि प्रिया पिय पुलक २ हिलि मिलि मधुरे सुर गावत॥

[पद]

अलवेली अलक झलक आनन अति अलक-लड़ी सुख देत।
अलवेली अंखियन पलक नहिं लागत अलवेली वतियन मुसक्यत मनहरि लेत
अलवेली चाल चलत अलबेली-अलबेलीताननि मान समेत।
'सरसदास' अलवेले लाल वारति मन छिन-छिन कहि न परत छवि जेत॥

[पद]

जोरी मत मगन सुखरासि।
आलस वलित ललित लोचन मिलि करत परस्पर हांसि ॥
विहरति मिले अंग सुखदायक ललना लाल हुलास ॥
आनँदनिधि गुननिधि निधिलावनि नित निरखि 'सरस' सुखदास ॥३८

[पद]

नवल-निकुँज नवल रगमगे दोउ नव-नव हास विलास बढ़ावत।
उठत तरंग अनंग नई छवि उपजत तान मधुर सुर गावत ॥
अति अनुपम प्यारी मुख निरखत पुलक-पुलक पिय कंठ लगावत।
'सरस' विहार जुगल रँग भीने लीने अंक निशंक लड़ावत ॥३९ ॥

[पद]

विहरत जमुना-जल सुखदाई।
गौर स्याम अँग अंग मनोहर चीर चिकुर छवि छाई ॥
कबहुँक रहसि विहँसि धावत हैं प्रीतम लेत मिलाई।
छिरकत छैल परस्पर छवि सो कर अंजुलि छटकाई ॥
कबहुँक जल समूह रस झेलत खेलत दै बुड़काई।
महामत जुगवर सुखदायक रहत कंठ लपटाई ॥
क्रीड़त कुँवरि कुँवर जल थल मिलि रंग अनंग बढ़ाई।
हाव भाव आलिंगन चुम्बन करत केलि सुखदाई ॥
भींजे वसन निवारि सहचरी नव तन चित्र बनाई।
रचे दुकूल फूल अति अँग अँग 'सरसदास' बलि जाई ॥४१॥

[राग-मल्हार]

पावस रस बस बिहरैं बिहारी देखि देखि मुख सुखकारी।
रति पति अतिगति उपजत अँग अँग अनंग रंग सुकुमारी ॥
सारी सुही फुही फबी छवि पिय पीवत सन तन मन हारी।
वर विनोद मन मोद दुहुँ कोद 'सरसदासि' अलि बलिहारी ॥४१॥

[पद]

रूपरासि बिहारी अति बनै।
नवलकिसोरी गोरी के संग अंग अनंगन में सनै ॥
प्यारी दमदमाति दामिनि उर स्याम सचिकन तन घनै।
गरजत गुन गम्भीर वर सरस 'सरसदास' सींचत मनै ॥४२॥

[हिंडोल के पद]

झूलत दोऊ नवल हिंडोलै।
विमल पुलिन कल कमल कुँज मधि चितवत नैन सलोलै॥
जोवन-जोर झकोर न देत आलिंगन करत कलोलै।
'सरसदासि' सुखरासि रहसि नथ सुनत मधुर मृदु बोलै॥ ४३॥

[पद]

झूलत फूलत सुरति हिंडोरै।
पुलक पुलक किलकत झिलिमिलि मन जोवन जोर झकोरै॥
छूटी लट पट शिथिल भए अंग अनंगन रोरै।
रहसत वहसत हँसत परस्पर उर कर चिबुक टटोरै॥
अतिरस भरे खरे डाँडी गहे चितवत विवि मुख ओरै।
'सरसदास' दरसत विलास नित अति चंञ्चल चित चोरै॥४४॥

[राग-कान्हरो]

कुंजनिकुंजनि डोलत लाल।
उमगि-उमगि मन मोद बढ़ावत लाड़िली सो कर ख्याल॥
द्रुमलता लपटात लटकत फूले कर परसत हँसत रसाल।
'सरसदास' सुखरासि प्रिया पिय प्रानन के प्रतिपाल॥४५॥

[राग-विहागरो]

सोंधे सहज सगवगी अलकैं।
विथुरी सुखद बदन पर सोभित आनंदित अँग झलकै॥
कौतुक रासि लाड़िली पिय के बढ़ी मदन मन ललकैं।
'सरस' सुख्याल निहाल लाल मुख निरखत लगत न पलकैं॥४६॥

[पद]

छबीले छविसौं चाँपत पाँइ।
द्वै लखर तमाल लाल की सोभा कही न जाइ॥
अति कोमल कर परस मनोहर राखत कंठ लगाइ।
वारति मन वलि जाइ निरखि मुख फूल्यौ अंगन माइ॥
आनँद मगन लाड़िली जीवन सुखनिधि मृदु मुसक्याइ।
लीनो अंक आपनौं वल्लभ राख्यौ उर लपटाइ॥
करत केलि सुखरासि परस्पर चोंप बढ़ी चित चाइ।

सुरति रंग विहरत मिलि अंग-अंग उपजत नव-नव भाइ।
ललिता ललित माधुरी गावत ललना लाल लड़ाइ।
'सरसदास' सुखरासि सहचरी देखत हियो सिराइ ॥४७॥

[पद]

ललना लाल कौतुक भूले।
सहचरी आनँद भरी लड़वति रूपरासि मिलि फूले ॥
सुरति विबस बोलत मृदु वैनन नैनन अति रति आनँद मूले।
रीझि रीझि रसमत्त मगन भए सरस रंग में भूले ॥४८॥

[राग-केदारो]

मदन कुंज सुख पुंज गुंज अलि द्वै जन खेल बढ़्यो सुखदाई।
भूषन बसन कसन न्यारे प्यारे मिलि करत केलि मनभाई ॥
अँग अँग संग रंग सुख उपजत मानो सुरंग ओढ़नी दुरंग ओढ़ाई।
करत विहार विहारी विहारिनि 'सरसदास' नैनन मुसक्याई ॥४९॥

[पद]

जोरी विचित्र विराजति रंगाने अंगन में नव-नव छवि छाई।
भूषन सुरंग रगमगे बागे लागे उर बिलसत सुखदाई ॥
मंद हँसन माधुरी बातन में मग्न भए सहचरि बलिजाई।
रूप रुचिर वर विहरत चोज मनोजन में अतिही सरसाई ॥

[पद]

राजत नव-निकुंज नव-जोरी।
सुन्दरस्याम रसीले अँग अँग नवल कुँवरि तन गोरी ॥
बदन माधुरी मदन सदन सुख सागर नागर कुँवर किशोरी।
'सरसदास' नैनन सचुपावत कौतुक निपट निवोरी ॥५१॥

॥ इति ॥
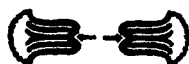
श्रीनरहरिदेवजी

छप्पै

जगन्नाथ अवतार प्रगट अवनीपर आपै;
सरसायो माधुर्य भक्तजन-हर त्रय तापै।
देश बुन्देलखंड गूढ़ो मधि ब्रह्म-वंशवर;
श्रीनरहरि हर-भार भूमि-हरि दिव्यकार्यकर।
श्रीसरसदेव प्रिय शिष्य संत हरि सेवक सेवा मन लयो।
जे जन लीन्हें चरन-शरण इन बहुरि जन्म भव नहि भयो॥

श्रीनरहरिदेवजी का जन्म सम्वत् १६४० में बुन्देलखंड के अन्तर्गत गूढ़ो नामक ग्राम में हुआ था। इनके माता का उत्तमा और पिता का नाम विष्णुदास था। ये गूढ़ो में एक प्रतिष्ठित एवं भगवद्भक्त ब्राह्मण थे। इनका परिचय श्रीकिशोरदासजी निर्मित निजमत-सिद्धान्त के आधार पर, संक्षिप्त रूप से उद्धृत करते हैं, इस प्रसंग से इनकी जन्मसिद्ध-शक्ति और चरमोत्कृष्ट भगवद्भक्ति का पता लगता है, इस ग्रन्थ में इन्हें साक्षात् श्रीजगन्नाथजी का अवतार लिखा है। वह प्रसंग इस प्रकार है--

बुन्देलखण्ड में स्थित गूढ़ो-नामक ग्राम के निकट श्रीसनकादिक भगवान् का एक प्रसिद्ध तपस्या-स्थान है। उस पवित्र स्थान में भगवान् सनकादिकों ने अनन्तकाल तक निवास करते हुये घोर तपस्या की थी। विष्णुदास सन्तान-रहित होने के कारण उदासीन रहते थे, एवं उस स्थान पर जाकर भजन एवं प्रार्थना किया करते थे। कुछ काल पर्यंत ये घर-बार की चिंता से पूर्णतः विरक्त होकर वहीं सदैव नियमित रूप से भजन अनुष्ठानादि करने लगे। भगवान ने इनके सच्चे हृदय से उत्पन्न सच्ची प्रार्थना को स्वीकार करली। अतएव एक रात्रि में इन्हें स्वप्न द्वारा भगवान् श्रीसनकादिक ने आज्ञा की कि 'तेरे घर में स्वयं श्रीजगन्नाथजी प्रगट होंगे और तुझे बाल्यकेलि का सुख देंगे। अब तुम घर जाओ।' इस महावाक्य को श्रवण कर ब्राह्मण-दम्पत्ति अति प्रसन्न हुए और सानन्द अपने घर वापिस आगये, एक वर्ष व्यतीत होने के उपरांत एक अति सुन्दर चित्ताकर्षक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ, उसका नाम नरहरि रखा गया। यह बालक दिन-प्रति-दिन समस्त ग्रामवासियों को अति प्रिय लगने लगा, मनमोहनी स्वरूप को देख-देख कर अत्यन्त लाड़-प्यार-पूर्वक स्नेह करने लगे। ये चार पांच वर्ष की अवस्था में ही अपनी चमत्कारपूर्ण चरित्रों से सब को मुग्ध करने लगे। इन्होंने इस अवस्था में ही मडजीभोज निवासी एक वणिक को अद्भुत रीति से कुष्ठ रोग से मुक्त कर दी। वह प्रसंग इस प्रकार है—

यह वनिक कोढ़ के भयंकर रोग से ग्रसित होगया। अनेक प्रकार अनेक वैद्य हकीमों से इलाज कराने पर भी कुछ लाभ नहीं हुआ। तब आस्तिक बनिया ने बिचारा कि "श्रीजगन्नाथजी बिना इस रोग को कोई अच्छा नहीं कर सकता। यदि वे भी अच्छा नहीं करेंगे तो हम वहीं शरीर को परि-त्याग कर देंगे।" यह निश्चय कर वह पुरुषोत्तम पुरी को गया और वहां एक स्थान पर पाँच दिन तक अनशन व्रत धारण कर ध्यान में बैठा रहा। एक दिन भगवान् ने उससे स्वप्न में कहा कि "बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत, गूढ़ो नामक ग्राम में मेरा ही स्वरूप 'नरहरि' नामक ब्राह्मण है, तुम जाकर इसके चरण-प्रच्छालन कर जल को पान करो इससे तुम आरोग्य को प्राप्त करोगे।" वह वणिक आज्ञानुसार प्रच्छालन जल का पान करते ही निरोग होगया।

एक नारायण नामक धनाढ्य कुलाल इनके पास आया करता था। वह अपार सम्पति लाकर इनके द्वारा साधु सेवा करवाया करता था। इनके दादा नन्द भी अतुल सम्पत्तिसाली थे। जिनका ओड़छे के राजा से लेन देन था उनके द्वारा भी इन्होंने अपार सम्पत्ति पाकर अत्यन्त उत्साह पूर्वक साधूसेवा करना प्रारम्भ कर दिया। इनकी दूर दूर तक प्रशंसा छागई। इस लिये सन्तों की भीड़ नित्य-प्रति ही वहां आने लगी। ये बड़े ही प्रेम से उनका आदर सत्कार करने लगे। एक बार मुरारीदास नामक महन्त ४०० सन्तों की जमात संग लेकर आये। उनकी पंगति के लिये अनेक प्रकार की सामिग्री तैयार होने लगी दस मन दाल बड़े के लिये भिजोई गई; जिसको पीसने में देर हो जाने के कारण सन्तों को कष्ट होने की सम्भावना थी। रसोइया ने आकर विनय की, तब ये अति असमंजस में पड़े। उसी समय साधु वेषधारी सनकादिक भगवान् आये और दाल पीसना स्वीकार कर, एक घड़ी में समस्त दाल पीस कर तैयार करदीनी। उसका बड़ा बना। पंगति पाते समय वैष्णवों ने कहा कि "बड़े में आज जैसा स्वाद है वैसा कभी न पाया।

इस प्रकार इनके चमत्कार-पूर्ण अनेक कार्यों को देखकर बुन्देलखण्ड एवं अन्य देश के राजा, प्रजा सभी दर्शनार्थ आने लगे। नित्य प्रति दर्शकों की अपार भीड़ रहने लगी। श्रीजगन्नाथजी के ही समान इनका भी शुभ दर्शन जानकर जनता के हृदय में इनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा बढ़ने लगी। सौ ब्राह्मण का अखण्ड नित्य वेदपाठ होने लगा। ये स्वयं व्यंजन बनाकर श्रीहरि अर्पण

के उपरान्त सन्तों को जिमाते तत्पश्चात् आप सीत प्रसादी और चरणामृत का पान करते। निजमत सिद्धान्तकार का कथन है कि " श्रीसरसदेवजी ने वहीं जाकर इन्हें शिष्य किया किन्तु श्रीसहचरिशरणजी लिखते हैं—

दोहा- रसिकन के मुख हम सुनो, नरहरि देव प्रवीन।
वृन्दावन बिच आयके सरस सरन तिन लीन ॥
हरि उपासना भेद मय, परम नरम रस रीति।
नरहरि अनुचर होन मिस कहियतु हैं करि प्रीति ॥

कुछ दिन के पश्चात् घरबार को परित्याग कर पर्णकुटी में निवास करने लगे। कृपा एवं वैराग्य उनको उस देश से श्रीवृंदाबन खैंच लाये यहां आकर उन्होंने विचार किया कि ऐसा गुरु करना चाहिये कि—

काम, क्रोध, मद, मोह लोभ जीत्यो जिन जीत्यो है अजीत मन जीत्यो काल व्यालको
सुमति पुनि ज्ञान विज्ञान को सु आप तन भाल पै तिलक जाके धारी उर मालको
स्यामास्याम सम्पति विलोकन जो आठौं जाम दासनि ले देत नित आनँद विशालको
नरहरि विचारि यों ऐसे गुरु होहुं कहुं ताहिके सरन जाहु काटे जग-जाल को ॥"

एक बुढ़िया ने इनको वृन्दावनवासी समस्त सन्तों का उपासना भेद सहित परिचय दिया। जब उसने श्रीसरसदासजी का नाम लिया तो सुनते ही इनका मन चुम्बकवत् उस के शब्दो में लगगया, और उसी समय इन्होंने श्रीसरस-दासजी का शिष्य होने के लिये निश्चय किया। सम्बत १६७४में विरक्तषेष धारण कर गुरु शरणागत हुये और श्री वृन्दावन बास करने लगे। कभी बुन्देलखण्ड में भी जाते वहां उन्हें जो अपार धन भेट पूजा में प्राप्त होता उसे बृन्दावन लाकर साधु सेवा में खर्च कर देते। श्रीसरसदेवजी के परम धाम प्रवास के पश्चात् सम्वत् १६८३ में श्री हरिदास गद्दी को सुशोभित कर १०१ वर्ष की अवस्था सम्वत् १७४१ में नित्य-निकुंज निवासी होगये। प्रसिद्ध महाकवि श्रीविहारीलालजी इन्हीं के शिष्य थे। इनके फुटकर पद पाये जाते हैं जो टट्टी स्थान के अष्टाचार्यों की वाणी में सम्मिलित हैं।

दोहा—नरहरि चाकी चाकी ज्ञान की मन मैदा कर पीस।
पाँचों इन्द्री बसकरै तुरत मिलै जगदीश ॥ १ ॥
नरहरि माल जनेउ न बनै करै वेरि को साथ।
जनेक कर्म जुकीजिये मला जपै जु हाथ ॥ २ ॥

नरहरि धागा सूत को गर्व करो मत कोय।
यद्यपि चंद्र कलंक है जगत उजेरो होय ॥ ३ ॥
नरहरि जासौं शंका करै छोड़े सकल उपाइ।
मनसा बाचा कर्मना मिलि हरि दरियाव में जाइ ॥ ४ ॥
नरहरि रज को ठीकरा पक्यो मृतक के संग।
ताहि छूत परसे नहीं अमरस सदा अभंग ॥ ५ ॥

[पद]

जाकौं मनमोहन दृष्टि परै।
सोतो भयो सावन को अन्धौ सूझत रंग हरे ॥
जड़ चैतन्य कछू नहिं समझत जित देखै तित स्याम खरे।
बिह्वल बिकल सम्हार न तन की घूमत नैना रूप भरे ॥
करनी अकरनी दोउ विधि भली विधि निषेध सब रहे धरे।
'नरहरिदास' जे भए बाबरे ते प्रेम प्रवाह परे ॥ १ ॥

[राग–बरारी]

सोवत निसि नहि जानी जात।
अलसाने जु सुहात प्रिया पिय उठि बैठे सैय्या परभात ॥
पसरी किरन अरुन अति राजत कुंज फूल कल कोमल पात।
कोमलभान उदित तन सोभा स्याम तने दोऊ लपटात ॥
भई प्रकास सकल द्रुमबेली बनसोभा सोभित सब गात।
चौंकि चकृत अति होत परस्पर फूले तन मन अंग न मात ॥
गावत सखी सुघर सुर मीठे रति जागे की जोहै बात ॥
'नरहरिदास' गोरी की छविपर कोटिमयंक भान दुरि जात ॥२॥

[राग देवगंधार]

प्रिया पिय सुरति–सेजउठि जागे।
घूमत नैन अरुन अलसाने मनहु समर सर भागे ॥
शिथिरे अंग छूटी सिर अलकैं वदन स्वेद कन लागे।
मानहु बिधि कुसुमन कर पूज्यों अंग अंग अनुरागे ॥
चितै परस्पर क्रीड़त दोऊ प्रेमकेलि रस पागे।
'नरहरिदास' अंग छवि निरखत गंड पीक सौं दागे ॥ ३ ॥

[राग-सारंग]

सखीरी! आज बनै पिय साँवरे!
रूप अनूप अधिक छवि राजत कुटिल केश मनो भाँवरे॥
टेढ़ीपाग ग्रीवा कटि टेढ़ी चितवनि की बलि जावरे।
'नरहरिदास' पिय की छवि निरखत प्यारी रूप समावरे॥ ४॥

[राग-नटी]

अरे कारे बदरा! तोमें स्याम हिरानै।
ताहीते तू अन्तर गर्वौं बिरहिनि पीर न जानै॥
परम दुकूल दामिनि अति चमकै निसि तम बसण तानै।
मंद-मंद मुरली धुनि बाजत गाजत मदन निसानै॥
रंग-रंग मिलि सुख उपजत हैं आन रंग क्यों बानै।
'नरहरिदास' जे अंतर कारे-कारे सो रति मानै॥ ५॥

[राग-विहागरो]

एकसखी राधा के धोखे गुहत स्याम की बेनी।
भूषन,बसन सम्हारति अंग-अंग चकृत भई मृगनैनी।
राधा हँसि मोहन तन चितई सखिन दई कर सैनी।
'नरहरिदास' पिय मन में ब्रीड़त लिये लाल कर लैनी॥ ६॥

[पद]

कुंजमहल के आँगन बाजत सुखद बधाई।
बीना, ताल मृदंग, सुर लागत परम सुहाई॥
फूली सखी सब मङ्गल गावत आनँद उर न समाई।
करि सिंगार दूलह दुलहिन बैठे उमंग बढ़ी अधिकाई॥
'नरहरिदास' निरखि तृन तोरत यह छवि बरनि न जाई॥ ७॥

॥ इति ॥

श्रीपीताम्बरदेवजी

छप्पय

चौबे-बंस-प्रशंस मध्य ज्यों उडुगण इन्दू ।
करवा कोपिन मध्य प्रेम अति सिद्धि--सिन्धू ॥
केलिमाल टीका विरचि सद्भाव प्रकासक ।
वाक्य–निपुणता हार्‍यो जासों जैसिंह शासक ॥
श्रीपिताम्बरदेव रसिक--मणि दत्तात्रे सम त्यागिवर ।
श्रीरसिकदेव-पदकमल प्रेम पुनि परस्यौ सकुटुम्ब त्यागि घर ॥

—विहारीशरण

इनका जन्म सम्वत् १७३४–३५ के लगभग नारनौल के पास सांभा–पुर नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता चौबेलाल एक धनाड्य ब्राह्मण कुल में रईस थे। ये शैव थे; किन्तु इनकी स्त्री श्रीकृष्ण–भक्ता थी, वह श्रीकृष्ण की सेवा करते समय, मन मन में वरदान भी माँगा करती थी कि "हे प्रभो! यदि हमको पुत्र दो तो, अपने ही पाद–पद्मों का भ्रमर देना।"

श्रीहरि–कृपा से पुत्र–रत्न उत्पन्न हुआ, जिसका नाम प्राणदास रक्खा गया। यह लड़का जन्म-सिद्ध था, वह प्रसंग इस प्रकार है–"किसी समय वहां एक सिद्ध फकीर आया, उसके निकट नरनारियों की भीड़ आने लगी, उनमें प्राणदास की माता भी पुत्र को लेकर आई। वह फकीर लड़के को देखते ही अंकमें उठा लिया उसके नेत्रों से अश्रुबुन्द टपकने लगे। कारण पूछने पर उसने कहा कि "पूर्व जन्म में हमारे ये सद्गुरू थे। अज्ञान–वस इनसे हमने तर्क किया जिससे यवन-कुल में जन्म हुआ, किन्तु पूर्व-जन्म–कृत समस्त वृतान्त हमें स्मरण हैं।

प्राणदास के पिता दिल्ली में एक कपड़े के व्योपारी थे। वहां ही श्रीरसिकदेवजी का एक बनिया शिष्य के साथ सतसंग होने पर; पूर्व–जन्म संस्कार से हृदय में ज्ञान–भक्ति उदय हो आई, उसी समय घरको परित्याग कर श्रीवृंदाबन चले आये और यहां आकर श्रीरसिकदेवजी के शिष्य होगये उस समय से इनका नाम श्रीपीताम्बरदेव पड़ा। जब यह समस्त वृतांत इनके पिता को विदित हुआ, तो वह बहुत ही क्रोधित हुये और वृंदाबन आकर इन्हें दिल्ली वापिस लेगये; किन्तु ये पुनः छिप कर वृंदाबन चले आये, तब चौबे ने जाकर महाराज जैसिंह से श्रीरसिकदेवजी की निंदा करतेहुए कहा कि–"रसिकदेव

ने हमारे लड़के को उड़ा लिया है।" राजा ने दीपसिंह के द्वारा पीताम्बरदेव को बुलवा कर कहा— "तुमने ब्राह्मण-कुल को क्यों परित्याग किया ? किसका उपदेश लिया ?" इन्हों ने गम्भीर-वाक्य से उत्तर दिया—"स्वर्ग नर्क अपवर्ग अब मुहि आस न त्रास; श्रीगुरु-चरन-सरोज-बल निधरक बढ़त हुलास।" यह उत्तर सुनकर राजा अति प्रसन्न हुआ और चौबे को आज्ञा दी कि-"इनके गुरू से क्षमा-प्रार्थना-पूर्वक इन्हें घर लेजाओ।" ये चौबे-वृन्द का हठ देखकर घर को चलेगये, वहां जाकर इन्हों ने ऐसी युक्ति की कि-उन्हे स्वतः पुनः वापिस नहीं लाने का प्रतिज्ञा-पत्र लिखदेना पड़ा। उस समय से वृन्दावन में आकर निर्द्वन्द निवास करने लगे।

एकवार इन्होने गुरु-आज्ञा लेकर तीर्थाटन के लिये वृन्दावन से प्रस्थान किया भ्रमण करते-हुये आबू पर्वत पर पहुंचे वहां नागार्जुन नामक प्रसिद्ध सिद्ध-महात्मा से इनकी भेंट हुई, जिससे इन्हें कितनीही सिद्धियां प्राप्त हुईं, पश्चात एक बूढ़े महात्मा ने कृपाकर इन्हें दर्शन दिये, और एकादसी के फलाहार के लिये अपनी सिद्धाई से वहीं अनेक भैंसों पर लदेहुये फलों की बोरियां मँगवा दीं विशेषता यह थी कि भैंसों के संग में कोई आदमी नहीं था। उसने इनके साथियों सहित भोजन कराकर पश्चात् आप पाया। इस प्रकार आबू में सातवर्ष तक रहकर अनेक सिद्ध महात्माओं का दर्शन किया। पश्चात् वहाँ से अजमेर आये, वहां ख्वाजा साहिब के कब्र पर जाकर बैठ गये। ख्वाजा भयंकर-रूप धारण कर आया और इनसे कहा कि-तुम कौन ? इन्होंने उत्तर दिया-"तुम्हारा जमाई !" उसने निकट आकर इनके तेज को देखकर कहा "तुम अवश्य मेरे जमाई हो। अब तुम अजमेर जाओ हिन्दू मुसलमान दोनोंही तुम्हारी प्रतिष्ठा करेंगे।" शहर में आनेपर समस्त जनता ने इनकी गुरू के समान पूजा की। जब इनकी इच्छा होती तभी ख्वाजा पर जा बैठते, यह दृश्य देखकर जब मुसलमान मारने दौड़ते तो उन्हें भयंकर रूप दिखलाई देता। इस प्रकार समस्त मुसलमानों ने इनसे क्षमा माँगी। इन के भारी सिद्धाई को श्रवण कर वहाँ का सूबा भी आकर इनके चरणों में नतमस्तक हुआ।

पश्चात् गुरूका आदेश पाकर वृन्दावन आगये और सिद्धता-रहित होने के लिये गुरूसे प्रार्थना की उन्होंने वैसाही कर दिया। पश्चात् पुनः भ्रमण के लिये प्रस्थान किये। जैपुर, मारवाड़ आदि में शिष्य करते हुये, डुंगरपुर पहुंचे, वहां ये वाम-मार्गियों के आचार्य्य से मिले। उसने अपना समस्त सिद्धान्त सुना कर

पश्चात् इनसे प्रश्न किया कि-"तुम कौन हो ? " इन्होंने कहा-"हम भी वाम-मार्गी हैं ? " उसने कहा कैसे ? इन्हों ने कहा-"सो दम्पति पति वाम हम ऐसे मारग वाम; सब को कारन सबनि पर स्वयं प्रकासक नाम । " इस प्रकार उसे परास्त कर बृन्दावन आगये और यहां आकर सूर्यघाट पर मंदिर निर्माण करवाकर निवास करने लगे।

पुनः किसी समय पुष्कर क्षेत्र में गये वहां ही नागवाड़ पर्वत के नीचे कुछ दिनतक निद्रादिकको जीतकर मंकण ऋषि के आश्रम पर भजन करने लगे। जब श्रीरसिकदेवजी के कुञ्ज-पधार ने का समय आया तो उन्होंने शिष्यों से कहा कि 'मंदिर का अधिकारी किसी योग्यको बनाना चाहिये, "क्योंकि कलियुग द्वारपर खड़ा है, इसलिये हमें इस के योग्य पीताम्बरदेव दीखते हैं उन्हें बुलाओ !" उनके आज्ञानुसार पुष्कर से बुलाकर अधिकारी बनाये गये । श्रीरसिकदेवजी के पश्चात् इन्होंनेही मंदिर के कार्य्य को सुव्यवस्थित रूपसे सँभाला। जब निकुंज पधार ने का समय आया तो शिष्य-समूह एकत्रित होकर कहने लगे-आप तो निकुंज पधारते हैं हमें क्या आज्ञा है ? इन्हों ने कहा—

"हिलिमिलि रहियो सकल तुम लहियो भजन विनोद अमायक;
चहियो युगल अनूप छबि गहियो यह ब्रत चारु सुभायक।
विदुष गुवर्द्धनदास पूरब दिसि बिच वास जिहि;
परम रसिक रस रास ताहि वरासन दीजियो।
यों कहि के सब सों बचनावलि प्रीतम के निज-धाम सिधारे;
पाय अली तनु आलिन सों मिलि लालन के अंगसंग सुखारे।
हास विलास भर्यो उर-सागर रूप अनूप महा मतवारे;
पीत सु अम्बर की कलकीरति को वरने कवि कोटिक हारे।"

१-रसकेपद २-सिंगारकेपद ३-केलिमालकीटीका ४-सिद्धान्तकीसाखी ५-सिंगारकीसाखी। इन्होंने निर्माण को हैं।

[राग-भैरव]

श्रीगुरु मेरे कल्प-तरोवर।
एक दिवस सन्मुख ह्वै मैं सठ माँग्यो दम्भ कछू पाऊं वर ॥
दयो भयो मैं लयो भागकर छांड़े नाहिन छूटे।
फेरि बीनती नाहिं करेंगो जो यह बन्धन खूटे ॥
मैं अजान बालक अहि चाह्यो तुम जननी क्यों दीनों ?

करि उपाय अब विष नहिं उपजै अपने कृत्य न चीन्हों ॥
मात, पिता, गुरु, बन्धु, प्रानपति, तुम हरि हरि के अंगी ।
'पीताम्बर' श्रीरसिकराय लखि, चरन-कमल निज संगी ॥१॥

[पद]

अब तो श्रीजी कृपा करो !
भ्रम्यो बहुत दुख पाय जगत में चरन न चित्त धरो ।
जानि अजान शरन मोहि दीन्हीं खोटो करो खरो ॥
अपने कृत्य को आप सम्हारो अब कित देखि डरो ?
जाऊं कहाँ सब नाम पूछि हैं कौन कहां ते आयो ?
मोहि कहत अति लाज लागि हैं जैहैं नाम लजायो ॥
सुनि हैं सकल लोग पुरवासी हाँसी सब को आवै ।
'पीताम्बर' श्रीरसिकराय को काहे को दुख पावै ?२॥

[पद]

श्रीगुरुदेव रसिक-शिरमौर ।
मंगल-मूरति हिय सुख पूरति दूर करत सब बाधा और ॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह दुख शरन आए कछु चलत न जोर ।
उलटि लजात संत पद परसत निसि भई श्रीगुरु कृपाते भोर ॥
योग, यज्ञ, साधन, व्रत, तीरथ, जप, तप कष्ट करावै ।
इन सगरेनि की फल की मूरति श्रीगुरु-कृपा मनावै ॥
आगम-निगम पुरातन तंत्र करि, ब्रह्मा, शिव, हरि गावै ।
श्रीगुरु 'पीताम्बर' को है नेति-नेति श्रुति ढोल बजावै ॥३॥

[पद]

मेरो मन श्रीगुरुदेव हर्‌यो ।
देखो कहा प्रताप आपको हरिहू शरन पर्‌यो ॥
गुरु के द्वार लकरिया बीनी, अरु सब टहल करी ।
भूख, प्यास, वर्षा, ग्रीसम, सहि विद्या सफल करी ॥
करी अवज्ञा हरि बलि मिलि के गुरु के चरन टरे ।
अधो लोक पाताल निन्द जग अजहूँ ना निकरे ॥
सबतें परे परम-गुरु मूरति, सूरति नरकी धारी ।
'पीतांबर' श्रीरसिकराय लखि वृन्दाविपिन विहारी ॥४॥

[पद]

श्रीगुरु नाम कृष्ण श्रीराधा।
लीला के हित प्रगट भए ह्वै आप सहचरी करन समाधा॥
आपहि विपिन लता द्रुमबेली मणि मण्डप बन छायो।
रचना कुंज-भवन बहु विधि सों अद्भुत सुख उपजायो॥
जोरी गोरी स्याम वपु एकै आय समान सखी।
एक-एक ते रूप आगरी गुण-क्रम विविध लखी॥
नित्यविहार निरन्तर विह्वल नित्य सहचरी देखौं।
श्रीगुरु रसिक कृपा 'पीताम्बर' अरु जिन करो परेखो॥५॥

[पद]

श्रीगुरु मोकों सरन लयो।
पत्र लिख्यो हरिके सन्मुख को यह तुम में पठयो॥
कही कृपाकरि जाउ धाम को काहे को भटके?
माल, मंत्र, छाप यह आज्ञा तोहि न कोउ हटके॥
चलों अजान पंथ ले आज्ञा संग रसिकवर दीनों।
भ्रम, श्रम कबहू नाहिं भयो मोहिं मन,बच अपनों कीनों॥
हरिपुर निडर गयो हौं नेरे हरिजू हँसि सुख पायो।
'पीताम्बर' श्रीरसिक स्वामिनी हरि हँसि कण्ठ लगायो॥६॥

[पद]

श्रीहरि गुरु चरन सु चिन्तमनी।
शंख, चक्र, रथ, गदा, पद्म, जव ध्वज, वेदी,ही ठनी॥
अष्टकोन, षट्कोन, त्रिकोन, अंकुश दरहि बनी।
वज्रपुरुष, जम्बूफल, रेखा, अम्बुज विच दुगनी॥
वेली फल, नदी, द्वै चन्दा, वलया, कुंडल, मत्स्य भनी।
छत्र, शक्तिऽरु, पताक, कलश, कल्पतरु, ताप-हनी॥
सेली सुनि स्वस्तिक रही, पद धनुष, देखि दिखई रजनी।
अपर चिन्ह बहु भाँति हस्त-द्युति,'पीताम्बर' पद्म सनी॥७॥

[राग-विभास]

निगम नेति कहि अगम गम ना तंत्र पुरानहि दूरि धामिनी।
ऋषिमुनि पंथ ग्रन्थ दुरि देखत कृपा रसिक सुख सहज स्वामिनी॥

जिनकी आज्ञा विपिन युगलवर नव-रस विलसत काम कामिनी।
नित्य-सिद्ध अविरुद्ध सबनि ते 'पीताम्बर' धरि भामिनी ॥ ८ ॥

[राग-विलावल]

गृह में स्वामिनि अब न रहौं।
आठ पहर चिन्ता चित चितवत स्वामी पल न लहौं ॥
सेवा सो अनुकूल सकल विधि और सब बिपति सहौं।
एते पै दुख देत दुष्टजन काकी सरन गहौं ?
देखत सुनत सबै विधि जानत कैसे के निवहौं ?
'पीताम्बर' श्रीरसिकराय बिन काहि पुकारि कहौं ? ९ ॥

[राग-काफी]

जगत-प्रवाह असह दुख सहियत ए वृन्दावन आइहौं।
दौरि पौरि शिरमौर लखी मैं भूठी निकट बुलाइगों ॥
कौन कौन की कौन डरावत इतन दरस दुखदाइ सों।
मानि निशंक भई तू मंगल मानि बधाइ त्यों ॥
हौं बोली बनरानी जानी यह स्वामी की जाइ लों।
सकल शिंगार दए देखत ही तब बात बतराइ यों ॥
मेरे पिय परम प्रान तुम अब मोहिं देहु दिखाइ ज्यों।
श्रीरसिक-समाज चलो 'पीताम्वर' इती ढीले ते लाई क्यों ?१०॥

[राग-विहागरो]

हमारे श्रीगुरु जुगल भए।
तनकरि रसिक बिहारी एके मन राधा मिलि गए ॥
गुरु तन हरि मन राधा सहचरि भोगी भोग नए।
'पीताम्वर' पर ओट ओटते एकत बचन लए ॥ ११ ॥

[राग-विहागरो]

मन तन छूटत का डरना ?
कहा हमारा मानोगेही फेरि न कछु करना ॥
उलटि पलटि अपनी मूरति को सहचरि तन धरना।
पारस परसि रसिक पद दरसत 'पीताम्वर' स्वामी सरना ॥ १२ ॥

[राग-भैरव]

गुरु-पद-कमल भ्रमर मन मेरो।

निकसत नाहि मनोरथ इत उत निशा-तिमिर-सम्पुट में घेरो ॥
दरसत सुख अनायास विकासत यह सुवास कीन्ही चित चेरो ।
'पीताम्बर' पद पीठ स्याम तन गौर रसिक अरुझेरो ॥१३॥

[राग-विलावल]

श्रीगुरु मोसों कहा करी ?
बालक,दीन, दुखी,सठ, पामर, ताके शिर क्यों शिला धरी ?
कित गई दया कृपा करुनानिधि दीन वन्धुता कित बिसरी ?
तुमहू दुखी होउगे स्वामी अन्तरयामी होइ हरि ॥
मैं अब कियो बिचार हिए में आपु आपदा लई परी ।
यातें अब दुख दूरि होयगो भुगत लियो अब पहर घरी ॥
आगे को भूलो मति कबहूँ भली भई यह टेक टरी ।
सुनो पुकारि कहत 'पीताम्बर' धरी रहेगी भक्ति डरी ॥१४॥

[पद]

मो मन ऐसी अटक परी ।
विपिन बिहार निहारत सहचरि मूरति हिए अरी ॥
जग के काज अकाज न सूझत प्रलय समान घरी।
'पीताम्बर' देखे विन तलफत ज्यों जल बिन मछरी ॥१५॥

[राग-विलावल]

अब हरि ! मोसों छल न करो ।
सूधीबात विचारि कृपानिधि स्वजन दुखी लखि लाज मरो ॥
बहुत गई अब भई कीजिए तुमको कहा छरो ?
कन अपनो 'पीताम्बर लीजे. दई दोष ते आप डरो ॥१६॥

[राग-रामकली]

हो हरि ! अब तुम क्यों न सुनो ?
अजामील,गीध,गज,गनिका, सुनि सहाय गुन गननि गनो ॥
अब वलहीन भए काहू कृत कै काहू तुम बाँधे ?
कै तुम सागर सैन मौन बस कै दैत्यनि आराधे ?
करो अकाज आपने जन को को करि है अब आशा ?
अब न चलोगे पंथ सन्त को मति करि है कौन प्रकाशा ?
सुनत बचन किन होत गुंग से देखत कित अँधराने ?
'पीताम्बर' तन लाज लागि हैं निबहो उघर निदाने ॥१७॥

[राग-गौरी]

अकथ कहानी तुम प्रिय ठानी।
कित वृन्दावन कित श्रीयमुना कित कुञ्ज रजधानी ?
कित वे सन्त समाज समय सुख श्रुति स्मृति सचिवानी ?
आनि परै अब कौन कुदेशनि जहाँ न सुकृत निसानी॥
करत हाँसि परहासि भक्त को नाहिन पति पहिचानी।
कर्म, धर्म नहि लेश देश में अहंकार की खानी॥
घूरत कूर करूर चखु भरि बोलनि वज्र समानी।
'पीताम्बर' बन बसो वेगि दै राधारमण रमानी॥ १८॥

[राग-गौरी]

झूठे हमहि करत हो स्याम।
हम नित वृन्दाविपिन बतावत द्रुम दीसत नहि धाम॥
दाझे पर लोन लगावत भ्रामक जगत हराम।
'पीताम्बर'बन बेहड़ डोलौ कहा अन्यो इत काम ? १९॥

[राग-ललित ख्याल]

जय राधा जय राधा जय राधा जय जय जय राधा।
गौरांगी नीलाम्बर भूषित भूषण ज्योति अगाधा॥
सहचरि संगी स्याम धामिनी पुरवनि मन की साधा।
श्रीरसिक-विहारनि कृपानिहारनि 'पीताम्बर' आराधा॥ २०॥

[राग-ललित]

भूलि मति वनहि तैं नेह कियो।
नैन न खोलत मुख न बोलत चलिबो छांड़ि दियो॥
श्रवन सुयश रसना रस पावत अधर सुधाहि पियो।
'पीताम्बर'वलिजाय निरखि सुख पतिनी को व्रत पति न लियो॥२१

[राग-ललित]

सुनो प्रियाजू ! कंत तुम्हारौ मेरे वेर पर्‍यो।
धन मगरूर गरूर धाम धन रूप सुजान वर्‍यो॥
सहों रहै नहि कहीं कौन सों मो देखत क्यों जात जर्‍यो ?
कहूँ कहा पीताम्बर रसिके रहि जैहैं यह मद न झर्‍यो॥ २२॥

[राग-सारंग]

आज हमारे चन्दन जात ।
प्रिया सैन सहचरि जुरि आई चित्र विचित्र बनावत गात ॥
पिय गति मति रति हरि लीनी कीन्ही अपनी घात ।
स्यामै वाम गौर तन करिके भूषन वसन बनी सब बात ॥
यह जानी में कोई पटरानी बड़ प्रताप लखि सह न सकात ।
लै बैठी ढिंग प्रिया आपनी फूले अंग न मात ॥
सबै बढ़ी गुन रूप आगरी अभिबन्दन करि बात ।
रसिक बनी बरतनी स्याम सुख'पीताम्बर' जुग नैन सिरात ॥२३॥

[राग-हिंडोरा]

सावन आयो हिंडोरे झूलें ।
कहत प्रिया सों स्याम निरन्तर रीझि रीझि मन फूलें ॥
सुनि सुकुँवारि निवारि शिंगार सवार बसन हिय हूलें ।
'पीताम्बर' पिय बोलि सहचरी रसिक सखी अनुकूलें ॥२४॥

[राग-विहागरो]

मन मेरे लपेटे लपेर्‌यो ।
रुचिर सवार सीस पर बाँध्यौ नगन जटित शिर पेच चतेर्‌यो ॥
आवरे वाररे पेच दए द्वै तापर कलँगी तुर्रा चपेर्‌यो ।
'पीताम्बर' दर्पन लै सन्मुख निरखत ही मेरो प्रान झपेर्‌यो ॥२५॥

[राग-विहागरो]

मुरली तेरी है जु बनी ।
गौरांगी सूधी सुर साँची तूही बजावै धनी ॥
कर पकरी कर तेज करी हरि यह लकरी जु ठनी ।
'पीताम्बर' पिय छिन नहिं न्यारी अधर सुधाहि सनी ॥२६॥

[राग-भैरौं]

मंगल-आरति करत किसोर ।
दीप दृगन करि चरन दण्डवत चित्र जावकी रहि मन ठौर ॥
मनिमय भूषन भूषित अंगन पट नीलाम्बर पिय तन गौर ।
जघन उदर हृद नाभि कचन कुच ढापि रही 'पीताम्बर' छोर ॥२७॥

[राग-भैरों]

अरी अरी माई ! यह रति अति सुखदाई पिय तन रस रँग भीना ।
कंचन की मूरति लिखि अपनी नील खम्भ जटि दीना ॥
सहचरि निपुन समाज जितै सुख चितै चित्र चित चीना ।
चरन रसिक वन्दनी प्यारी 'पीताम्बर' हरि लीना ॥ २८ ॥

[राग-मलार]

सुनि झूलि झूलि झूलन मेरा ।
नील कलेवर चम्पकवरनी उपमा मिलि तन हेरा ॥
ज्यों गरजै त्यों हरि रस वरषै और न कोई मेरा ।
रसिक विहार तवै यों कहिए 'पीताम्बर' वर तेरा ॥२६॥

[राग-केदारो]

शरद निशा री ! प्यारी पिय कीने ।
रूप उज्यारी नेक निहारी वाम श्याम गुन हरि लीने ॥
श्रीमुखकर अरविन्द मन्द दुति ज्यों अपने तन मन कीने ।
'पीताम्बर' श्रीरसिक स्वामिनी करि मिलाप अति सुखदीने ॥३०॥

[राग-वसन्त]

वनरा वन वनरी वसन्त ; सखी वरात पिय श्याम कन्त ।
अरुन साज वनराज धाम ; पीय फूल तन परिहरि वाम ॥
अब मौर शिर धारि मौरि ; द्रुम सु छत्रपति पत्र पौरि ।
फल प्रवाल तोरन बनाय ; छुवत पवन वस वरसि धाय ॥
पिय प्यारी बनत न सुवास ; सहचरि भ्रमरी आस पास ।
धुनि मृदंग सुर तान वीन ; गति अनेक उपजै नवीन ॥
गाय वसन्त रस अति अतोल ; व्याह भयो चतुरा अबोल ।
कस्तूरी केशरि कपूर ; गंध परस को छुवत धूर ॥
रिझयो बन वरख्यौ पराग ; अरन सेन परदा सुहाग ।
सुधि न रही तन को सम्हार ; सुख बसन्त बरख्यौ अपार ॥
मदनमोहिनी बन प्रवेश ; 'पीताम्बर' सोभित सुदेश ॥३१॥

[होरी-धमार]

हमारो ठाकुर खेलत होरी ।

ठकुरायनि संग ललिता-सहचरि रसिकविहारी ओरी ॥
रूप अबीर गुलाल वसन-द्युति मन-तरंग पिचकोरी ।
तन-सुगन्ध की झूके विहरत छींटत उरज-कमोरी ॥
मन-सिंगार जुग वरनत अद्भुत पिचक मुरलि धुनि चोरी ।
श्याम-अरगजा गौरव अंग-अंग दरसि सुख कोरी ॥
प्रानप्रिया को भरी सामरे चरन चरचि शिर मोरी ।
लेत बलाय निरखि मुख-शोभा डारत कर तृन तोरी ॥
चितै हंसी मुख देखि प्रियाजू भरे प्रानपति गोरी ॥३२॥

[राग-सारँग]

इहि विधि आरति पीव तिहारी प्रिया प्राणपति रसिकविहारी ।
राधा रसिक शिरोमनि सहचरि गोरे तन घनश्याम निहारी ॥
रहि गए चकित चकोर चन्द लखि अलि कमलन रति मेंन दिहारी
सोभा रस-सागर 'पीताम्बर' प्रिया मीन सखि कौतुकहारी ॥ ३३ ॥

[माँझ]

वारी जाऊँ रसिकविहारी ठाढ़े रहियो प्यारे ;
बात एक तुम सों मैं पूछूं बिन मद क्यों मतवारे ?
मतवारे बिन मद के पिए जीवन दरश निहारे ;
टोना काहु न कीना मोहन अंग न जात समारे :
काला अंग अरगजा लेपन केशरि-छींट सुहाई ;
तापर हार शिंगार बनाया मेरो चित्त चुराई ।
नूपुर रुनुक झुनक दीठुन के सुनि के सुधि बिसराई ;
पीताम्बर पहिराया किसने किंकिनि जात बनाई ॥३५॥
रसिकविहारी! कितै सीखी मारन दिए ललके ?
सजि के चला काम के ऊपर भाजि जायगा टलके ।
भौंह-कमान भाल-नाशिका छांड़त तेरी पलके ;
'पीताम्बर' चितचोर खड़ा है जानत है सब खलके ॥३६॥
चिबुक, ओठ, नासाहल, भृकुटी मस्तक मुकुट नचाया ;
हस्त दई मुरलीधर प्यारे मदन मधुर सुर गाया ।
प्रिया प्रिया यह रटंदा, सहज समाज बनाया ;

श्रीरसिकविहारी बड़े चतुर हैं. चितवत चित्त चुराया ॥३७॥
ऐसी तू चिपटी दिल दी सुइयां काली कमली कीती है,
हुण आशानूं जावन आवै; अंग अंग करि जीती है।
श्रीरसिकविहारी बोलनि वेषनि सारी निशि यों बीती है;
पीताम्बर की रूप माधुरी श्रीरसिक कृपा ते पीती है ॥३८॥
सहज चलन की किनासान् मंत्र हुण टोना;
उस दी सूरति मूरति कोई नाहीं हुआ न होना।
देखत फिरा वसी दी मूरति आँखों बिच चितौना।
पीताम्बर' के मुख पर वे सोहत हैं प्रेम दिठौना ॥३९॥
मोहि गरीब मारी मारी वे कान्हा हस्त लगा क्या तेरे;
तैं जान्यो मैं कछू ना कीना करिके कलेजे मेरे।
आँखो आगे टलदा नाहीं ठाढ़ा साँझ सवेरे;
पीताम्बर की वानि परी है जितवावे जित घेरे ॥ ४० ॥
प्रेम लपेटे वचन कहंदा श्रवन सुनत ना जीवै;
आँखो रूप न चाखा जावे मन रुचि पावै पीवै।
तन शिंगार ऐसा कछु कीता जीता सरबस हीवै;
पीताम्बर सो नाहिन जीता हारिहि जीत पवीवै ॥ ४१ ॥
श्रीहरिदास नाम निज अमृत सब मंत्रन को सारा;
आगम निगम पुरान पुकारे श्रीगुरु--रूप हमारा।
श्रीगुरु बृन्दाविपिन वसावैं दरसावैं पिय प्यारी;
वरसावैं छवि रूप लहरि की महलनि संग निहारी ॥ ४२ ॥
सरद निसा री प्रीतम प्यारी रूप उज्यारी आरी;
बोलत है नव लाल रँगीलो तन मन मोद बढ़ारी।
तेरे दरस-परस विन यह निशि विश्व अमावस कारी;
पीताम्बर कित जाय स्वामिनी चरण कमल लपटारी ॥ ४३ ॥
ऐसी तू साड़े लखना नू तू जाना काहू दाना;
तू तो ढोल वजंदा चोरा चसमो बीच छिपाना।
तेरे दिल विच दया दरद ना डारा फंद निमाना;
पीताम्बर ते राजस जग में गाया वेद पुराना ॥ ४४ ॥

जे सब जीव ईस सम औरे नीर सरस ही भावै;
कुंजविहारी मोको तोको रसिक विहारी करावै ।
तू सर्वज्ञ बड़ा अपने मन कर गहि पकरि नचावै;
पीताम्बर पिय रसिक स्वामिनी पग पर पगहि धरावै ॥४५॥
श्रीगुरु रसिकविहार विपुल सुख करत रहत दिनरैना;
सखी समागम जुग जिय आनत वानत वाम कामकी सैना।
साँवल अंग गौर नव योवन अति रस श्रवत कहत बनैना;
पीताम्बर दर्शत उर परसत तरसत नृपति टरैना ॥ ४६ ॥
श्रीगुरु चरन प्रिया तन गोरे श्याम मुकुर कर धारै;
मत न हाव वर करत डरत मन कोमलताहि समारै।
अँगुरिन कोटिक किरनि त्रसकारत नख-रवि मनि ससिवारे;
पीताम्बर गेहुक की शोभा सहचरि रसिक तिहारे ॥ ४७ ॥
जावक ने जावक जे शोभा चित्त चित्र से कीने;
गृह वन वेलि फूल फल रसके रसिक कुमरि लखि लीने ।
रहि गये चकित चकोर चन्द ज्यों इहिरति पति मन दीने;
पीताम्बर दप पाय रहे सुख रसिक सहचरी चीने ॥ ४८ ॥
खसम हमारे नंगे शिर दे हौं नंगे दी रंडी;
मस्तक तिलक गलेविच कंठी तन गूदर कर हंडी।
कटि कोपीन अँगोछा इकरस ग्रीषम वरषा ठंडी;
पीताम्बर वन देखि रसिक सँग छांड़ि जगत से भंडी ॥४९॥

केलिमाल की टीका के पद (छप्पै)

नमो नमो जय हंस, सनक, नारद पद वन्दू ।
श्रीनिम्बादित्य प्रकाश भाव रसिका आनन्दू ॥
परम्परा पन हंत मणि आशुधीर उद्योतकर ।
श्रीहरिदास प्रकाश हुव विपुल विहारनि रसिकवर ॥
श्रीनागरिदास प्रकाश सरस अद्भुत पद गायो ।
श्रीनरहरिदेव प्रकाश आप रसिक-रस पायो ॥ ५० ॥

[राग-कान्हरा]

नवनिकुञ्ज बिचि सेज सुख अति आनन्द उदार;
चाहत अपने श्रवन सुख प्रगट करत सुख सार ।

पद-नित्य सहज जोरी सुख सेज; प्रगट करत सहचरि को तेज।
गौरस्याम घनदामिनि जैसे; सहचरि के सुख प्रगट भई पुनि तैसे।
कहन लगी मुख सुख मृदु बैन; तहँ शोभा कछु कहत बनैन।
सहचरि के सुख को सुख हेत; संशय रस को उत्तर देत।
प्रथमहु सुख ऐसो ही भयो; सो रस अबहू नैननि लयो।
आगेहू रहिहैं रस ऐसे; कबहू न टरिहैं यह सुख जैसे।
सहचरि निरखे जो जो अंग; मनकी गति लखि होत अपंग।
अंग अंग उजराई छाई; मिले परस्पर अति सुखदाई।
सुघराई सींवा चतुराई; सुन्दरता उपमा न समाई।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा ऐसे; एक रूप वपु त्रय सम वैसे।
सहज जोरी को यही सुभाव; आदि मध्य अन्त ठहराव ॥ ५१ ॥

[दोहा]

रुचि सहचरि ताके तेज करि खेल परस्पर लाग;
राग अलौकिक उपजहीं; उलटि रसिक रस पाग।

[पद]

करि रुचि रूप परस्पर खेलत।
राग रागिनी अलौकिक उपजत नृत्य संगीत अलग ठान ठेलत।
मूरतिवन्त राग सुखसागर तान तरंग ताल दे पेलत ॥
श्रीहरिदासी कहति स्वामिनी रसिक रसन परस्पर झेलत ॥ ५२ ॥

[दोहा]

यह सुख ऐसे ही रहौ युगल परस्पर हेत;
पल छिन इत उत होउ जिनि मानि रहौं संकेत।

[पद]

ऐसे देखत सब दिन जाहु।
प्राणपल दिए सुख रस परस्पर सुख विलसहु बिबि नागरि नाहु ॥
पलक न टरिए यह रस अद्भुत प्रीतम कसि वाहुन सो वाहु।
श्रीहरिदासी कहति युगलवर मानि रहौ मन हिए उमाह ॥ ५३ ॥

[दोहा]

जोरी अद्भुत किन ठई मन रीझै लखि अंग ;
घन दामिनि अबिचलप्रभा घटत न बढ़त उमंग ।

[पद]

मोमन मोहत विवि सुकुमार ।
काहू प्रगट कियो सुख अद्भुत यह संशय सुख-सिन्धु अपार ॥
चितवत दृष्टि रहत ताही सँग शोभा अंग शिंगार ।
ज्यों घन दामिनि संग रहत रस रसिकराय विछुरत न लार ॥
और वरन समझत ना दोऊ गौर श्याम सहजै सुखसार ।
श्रीहरिदसी कहत रहो यों टरत न इत उत हियरे हार ॥ ५४ ॥

[चौबोला-दोहा]

प्रिया कहति सुनि सहचरी सावधान रस तोर ;
प्रीति रीति यश प्रगट करि, रसिक रसीलो दौर ।

[पद]

चलहु न सहचरि इत उत आव ।
आंखिन आगे रहो दिवशनिशि प्रगट करो सुख सहज सुभाव ॥
प्रीति तिहारी जानत भामिनि वचरस अमृत तृषितन प्याव ।
सुनि हरिदासी कहति स्वामिनी कुञ्जविहारी मङ्गल गाव ॥ ५५ ॥

[दोहा]

सहचरि के हिय की ललक झलकी विवि उर आय ;
कहत वचन मृदु भामते रसिक रमिले राय ।

[पद]

आंखिन मध्य भवन कर दोऊ ।
लखि सुकुमार वचन प्रशंसत मो उर सुख तोहू उर सोऊ ॥
हूँ तोसों यह कहत भामते मूंदि रहैं सुख लहै न कोऊ ।
विन निकसे कहुँ क्यों सचुपावत रीझि परस्पर यह रस भोऊ ॥
साँची कहत अहो बलि जाऊं लागों पायन रसिक समोऊ ।
श्रीहरिदास कहत लहत तुम आन रसिक रस लहै न कोऊ ॥ ५६ ॥

[दोहा]

रीझि परस्पर बूझहीं कहि सहचरि बलि जाव ;
हेत हमारो अधिक पिय धरो तास पद नाव ।

वन्दन प्रिया को पंकरस पिय-गज-नैन फसाव ;
बिबि कच संधिन मेरो ताको कहा दुराव ?

[पद]

प्रिया वदन अमृत को पंक ।
उभय नैन गज मस्त फवे पिय बिलसत नाहिं निशंक ॥
जैसे भ्रमत सम्पुटी मुद्दत मानत निज तन रंक ।
सहचरि श्रीहरिदास कहति सुख लिख्यो तिहारे अंक ॥ ५७ ॥

[दोहा]

पीत कमल में नीलदल श्याम भ्रमर रस पाग ;
जतन किए निकसत नहीं सहचरि को अनुराग ।
श्रवन महल में ध्वनि छाई दई न्याव यह कौन ;
निकट मवासी मुख वँधे किए सवे रस गौन ।

[पद]

नूपुर वाजत आवत जात ।
न्याव करन श्रीस्वामी सहचरि श्रवननि सुनत प्रानिनि को पात ।
निकट मवास सजत छिन छिन प्रति नव-नव रस रुचि घात ॥
श्रीहरिदासी कहत रहों यों और सुखन कर मात ॥ ५८ ॥

[दोहा]

सहचरि देखत दुहुन को पिंजरा पंछी तोल ;
भूख प्यास पोषत भले रटत प्रिया मृदुवोल ।

[पद]

सहचरि कौतुक देखि सिहानी ।
दृष्टि चेपुवर फंदा डार्‍यो मन-पिंजरा में आनी ॥
चुनो सुभाव भोग प्यास अँग श्रवत सो पानी ।
देखत रहत नैन वैन सो बोलत पिय मृदु-बानी ॥
यह शोभा सुखसिन्धु स्वामिनी लूटत निरअभिमानी ।
सुनि हरिदास कहत निज मन सो नव-रस वर्षत जानी ॥ ५९ ॥

॥ इति ॥

श्रीरासिकदेवजी

छप्पै

श्रीरसिकदेव रस भक्ति भाव जग में विस्तारयो;
दृढ़व्रत श्रीगुरुपाद प्रेम पूरण प्रतिपारयो।
विपिन-वास अति प्रेम संत-सेवा दृढ़ पालक;
अति प्रवीण रसधीर भक्त रसिकन मग चालक।
निर्मायक मन्दिर बृहद्, संस्थापक दृढ़ गद्दि निज;
जगमगात वैष्णव जगत, निज पथ पुनि वर वंश द्विज।

श्रीरसिकदेवजी श्रीरसिकविहारी-मन्दिर के संस्थापक हैं। ये स्वामी श्रीहरिदासजी के परम्परा में प्रधान गद्दी के आचार्य थे। इन्हों ने इस परम्परामें प्रसिद्ध मन्दिर निर्माण कराकर स्वामीजी के पश्चात् द्वितियवार पुनः जागृति-लहर उत्पन्न की—जिससे यह सम्प्रदाय संगठित होकर एक प्रभावपूर्ण रंग-रूप में प्रवेश की। ये एक महाकवियों के कार्य-साधन की भी पूर्ति कर, ब्रजभाषा-साहित्य-सागर में अनेक ग्रन्थ-रत्न निर्माण कर, भर दी। मिश्रबन्धु-विनोद में खोज द्वारा प्राप्त इनके द्वारा निर्मित बहुत से ग्रन्थों के नाम उद्धृत हैं, किन्तु हमें ग्यारह ग्रन्थ प्राप्त होसके हैं जो परिचय के अन्त में उद्धृत हैं। मिश्रबन्धुओं ने इन्हें भूल से राधावल्लभी भी लिख दिया है।

श्रीनरहरिदेवजी के विरक्त शिष्यों में से ये और केशवदास प्रधान थे। श्रीरसिकदेवजी का जन्म सम्वत् १६६२ में हुआ था और सम्वत् १६४१ से १७५८ तक गद्दी पर विराजमान रहे। ये श्रीगुरु-भक्ति-परीक्षा में सर्वोपरि उत्तीर्ण हुए थे। श्रीनरहरिदेवजी ने इन्हें इस परम्परा गद्दी का अधिकारी जानकर, केशवदास से अपमानित एवं तिरस्कारित करवा कर परीक्षा लेने की निश्चय की। इनके गुरु-भ्राता केशवदास भी सात्विक-प्रकृति के सन्त थे, उनका मित्र-शत्रु कोई नहीं था, किन्तु गुरु-आज्ञा मानकर इनके गुण में भी अवगुण देखने लगे। ये भी अपनी स्वभावानुसार केशवदास के अनुकूल रहते हुए उनके बारम्बार क्रोधित होने पर भी अपनी ही भूल स्वीकार करने लगे। अन्त में उस स्थान से अलग होने पर श्रीगुरु-सेवा से वंचित होना पड़ा। पश्चात् ये अपने चार गुरुभ्राताओं के संग मथुरा रहने लगे। वहां इन्होंने परस्पर परामर्श कर निश्चय की कि 'हम लोग भिक्षा मांग कर लावें और उसे किसी युक्ति द्वारा गुरु सेवा में ही वृन्दावन पहुँचा दिया करें एवं आप मधुकरी-भिक्षा से निर्वाह करें।' इस प्रकार निश्चय कर दिन में जो कुछ भिक्षा प्राप्त होते थे, उसे

संध्या को वृन्दावन में लाकर, छंगा-नामक सुनार द्वारा गुरूजी की सेवा में पहुँचा कर वापिस लौट जाया करते थे। छंगा की इस कपट सेवा को श्रीनरहरिदेवजी ताड़ गये और समझ गये कि कार्य रसिकदेव का ही है, पश्चात् केशवदास को मथुरा भेजकर वहाँ से भी भगा दिया। ये बुंदेलखण्ड चले गये और वहां भी इन्हें जो कुछ प्राप्त होते थे गुप्त-रीति से वृन्दावन ही भेज दिया करते थे। युगलदास-नामक एक शिष्य को श्रीगुरु-सेवा-भेजकर अपना सम्बन्ध गुप्त रखने के लिये कहा।

किसी समय श्रीनरहरिदेवजी बुंदेलखण्ड पधारे और फतेपुर-नामक ग्राममें ठहरे। वहाँ से निकटही पुरा-नामक ग्राम में श्रीरसिकदेव जी भी रहते थे। किसी समय रात्रि में ये 'हाय-हाय' पुकार उठे। सेवकों द्वारा कारण पूछने पर इन्होंने कहा कि 'मेरे गुरुमहाराज नरहरिदेवजी ने उष्ण पय पान कर लिये—इसलिये उसके मुख में छाले पड़ गये।' इसे जांच करने के लिये पाँच आदमी तत्काल ही वहां पहुँचे, तो इस बात को ठीक पाया। यद्यपि श्रीनरहरिदेवजी से उन व्यक्तियों ने इनका परिचय नहीं दिया तौ भी ये ताड़ गये कि मेरे अन्तर्दुखों को जानने की शक्ति सिवा रसिकदेव के और किसी में भी नहीं। तब इन्होंने बनावटी क्रोध से कहा कि तुम्हारे यहाँ रसिकदेव ही है उसे अपने यहां से शीघ्र भगा दो, पश्चात् वात्सल्य प्रेम से द्रवीभूत होकर सेवा में आने की आज्ञा दे दी। कुछ दिन सेवा में रहने के पश्चात् पुनः केशवदास के द्वारा भगा दिये गये, अति दुखित होकर गुरु-वियोग होने से विरह-अग्नि में जलने लगे, तब स्वयं श्रीविहारीजी को दया आई और इन्हें सेवा में रखने के लिये श्रीनरहरि-देवजी को आज्ञा हुई। इस प्रकार ये श्री गुरुभक्ति-परीक्षा में उत्तीर्ण होकर वृन्दावन-वास करने लगे। ज्येष्ठ-शुक्ल-द्वितीया को समस्त वृन्दावन वासियों की भंडारा हुई और उसी समय ये गद्दी के उत्तरा-धिकारी बनाये गये।

जब श्रीनरहरिदेवजी निकुंजधाम को पधारे तो ये सं० १७४१ गद्दी पर विराजमान हुये। गुरु-वियोग से इन्हें अपार दुख हुआ। श्रीगुरू चरण-पादुका पधार कर श्रीगुरू-तद्वत ही उसमें भाव रखते हुये नित्य-सेवा करने लगे, तथा मानसिक-सेवा एवं ध्यानादिक द्वारा श्रीप्रिया-प्रियतम के स्वरूप-सिंधु में निमग्न रहने लगे। सदैव रसिक-समाज में रस सिद्धान्त वर्णन करते हुये, निर्दूषित, निर्लेप, स्वच्छन्द प्रसन्न-चित्त रहने लगे। शत्रु मित्र में समान बुद्धि रखते हुए राजअंश

को परित्याग, अच्छे वसनादिकों से मन मोड़, यथा लाभ सन्तोष पूर्वक वृन्दावन–वास करने लगे।

एकबार श्रीरसिकविहारीजी ने इन्हें स्वप्न द्वारा आदेश किये कि— 'मैं तुम्हारे पूर्व-जन्म-वपु भोजराज कृत सेव्य, रसिकविहारी डूंगरपुर में हूं, तुम अपने शिष्यों को वहां जाने के लिये कहो, उनके संग आजाऊंगा।" साथ ही विहारीजी इनके पूर्व-जन्म-कृत समस्त एतद्विषयक वृतान्त कहे। वृन्दावन से प्रस्थान कर द्वारका जाना, वहां से चितौरगढ़, अकबर युद्ध के पश्चात् डूगरपुर प्रस्थान इत्यादि विहारीजी द्वारा इन्होंने श्रवण किया। भोर होते ही इन्होंने नागरीदास और सुदामादास नामक शिष्यों को वहां जाने की आज्ञा दी। वहां भी श्रीरसिकविहारीजी ने स्वप्न सुना कर राजा को सचेत कर दिया। राजा ने नागरीदास और सुदामादास का परिचय पाकर बहुत ही आदर सत्कार-पूर्वक उनके संग श्रीरसिकविहारीजी को कर दिया। विहारीजी श्रीवृन्दावन आये बहुत ही उत्साह–पूर्वक स्वागत हुआ पश्चात् विशाल मंदिर निर्माण हुआ। श्रीरसिकनदेवजी प्रथम कालीदह पर रहते थे वहां से मंदिर में आकर, प्रीति पूर्वक सेवा करने लगे।

"भूषन बसन तनु साजत सिंगार चारु रहत निहारि मुख शुषमा अपारसों;
हँसत हँसावत खिलावत मल्हावें नित करत बखान गुण आनँद उदार सो।
बोलत मिलत अँग अँगनि बढ़ावें रँग रसिकविहारी प्यारी जीवन विहार सो;
नरहरिदेव रखो अनुग अनुप रूप व्यंजन जिमावें नव नाना भाँति प्यार सो॥"

इन्होने अनेकों शिष्य किये, उनमें से बहुतो को शैशल्य-धर्म से मुक्त करते हुये विरक्त–बेष बनाकर भ्रम रहित किया एवं वृन्दावन वास कराया। बहुत से शिष्य जो वृन्दावन से बाहिर भ्रमण करते थे; उन्हें जोकुछ प्राप्त होता वे श्रीगुरु–चरण में अर्पण कर देते थे। आप उसे साधु-सेवा में खर्च कर देते।

जेगोपाल और अभयचन्द नामक वणिक, वृन्दावन–वास करते थे जो हित–कुल के शिष्य थे। ये श्रीरसिकविहारीजी के लिये प्रतिदिन अमनिया सामिग्री लाया करते थे। इन की श्रीरसिकदेवजी में अनन्य-श्रद्धा हो गई; इसलिये उन्हीं के शिष्य भी होगये। इन्हें उपासना को इस प्रकार परिवर्तन करते हुये देखकर, तत्कालीन, हितकुल–गोस्वामी श्रीरूपलालजी के हृदय में

अत्यन्त ईर्षा उत्पन्न हुई। उन्होंने आगरे से हरजी नामक बनिया को बुलवाकर कहा कि—"यह आश्चर्य की बात है, हितकुल के शिष्य बदल कर अन्य व्यक्तियों के शिष्य हो जाते हैं, यदि ऐसी ही व्यवस्था रही तो हमलोगों का वृन्दावन–वास, असम्भव है, इसलिये ऐसे ग्रन्थ निर्माण करो जिसमें, श्रीहित हरिबंशजी की विशेषता और स्वामी श्रीहरिदासजी की न्यूनता हो।" हरजी ने कहा कि–"आपको एक गद्दी का आचार्य होकर ऐसा करना उचित नहीं! "व्यासदास मुखते कही श्रीकबीर लघु चाल, ध्यान बिषे आये नहीं राधावल्लभलाल।" ईर्षा के बशीभूत होकर इन्होंने उसको एक बात भी नहीं मानी और रसिक–माल नामक ग्रन्थ निर्माण करवाकर; उसमें श्रीहितहरिवंशजी की विशेषता और स्वामी हरिदासजी की न्यूनता की गई। इस महान् आचार्य–अपराध के कारण, उसे शूल एवं बिस्फोटक का रोग होगया एक दिन रात्रि में स्वप्न देखता है कि–इष्टदेव श्रीराधावल्लभजी कह रहे हैं–"ऐ हरजी! यह स्वामि श्रीहरिदासजी को न्यून करने का फल है, अब तू श्रीरसिकदेवजी का प्रार्थना करते हुये क्षमा माँग तब इस रोग से मुक्त होगा।" उसने आज्ञानुसार जाकर अपराध क्षमा करवाई और भयंकर रोग से मुक्त होगया।

एक पटना-निवासी, रतिराम नामक सेठ इनके दर्शनार्थ श्रीवृन्दावन आया और गोविन्द-बाग में ठहरा, वह एक मालिन से आसक्त होगया, यह वृतान्त श्रीरसिकविहारीजी द्वारा श्रीरसिकदेवजी को विदित हो गया। श्रीरसिक-विहारीजी ने इनसे यह भी कहा–"वह तुम्हारे पास आकर एक मन पेड़ा और दो सहस्र रुपये भेंट करेगा उसे स्वीकार मत करना।" प्रातः काल वही दृश्य उपस्थित हुआ। इन्होंने उसको धिक्कारा पश्चात् ठाकुरजी से आज्ञा लेकर क्षमा किया और पेड़ा बंदरों को खवादिया। इस प्रकार अपने आदर्श-जीवन एवं भक्ति उपदेश से अनेक जीवों का कल्याण कर, सम्वत १७५८ में श्रीनिकुञ्ज को प्राप्त हो गये।

इन्होने ग्यारह ग्रंथ निर्माण की है जो भाव–पूर्ण सरस हैं। १भक्त–सिद्धान्त–मणि २–पूजा–विलास ३-सिद्धान्त के पद ४–रस के पद ५–रस–सिद्धान्त के साखी ६–कुंज–कौतुक ७–रससार ८–गुरु-मंगल–यश ९-बाल–लीला १०–ध्यान-लीला ११–वाराह सँहिता। उनमें से कुछ उद्धृत किये जाते हैं।

[राग—विहागरो]

भाग बड़ो बृन्दावन पायो।
जा रज को सुर, नर, मुनि कलपत विधि, शंकर शिर नायो॥
बहुतक युग या रज बिन बीते जन्म जन्म डहकायो।
सो रज अब कृपा करि दीनी अभय—निशान बजायो॥
आय मिल्यो परिवार आपने हरि हँसि कण्ठ लगायो।
स्यमा श्यामजू विहरत दोऊ सखी—समाज मिलायो॥
सोग सन्ताप करो मति कोई दाव भलो बनि आयो।
'श्रीरसिकविहारी' की गति याही धनि-धनि लोक कहायो॥१॥

[पद]

एजू! श्याम सलोने गात हो।
सखिन के मध्य रसिक कुंवरवर मंद—मंद मुसकात हो॥
वसन ढके अति अंग विराजत विधु वदरनि छुइ आत हो।
शोभित नैन अरुन ललचाने कहत कछू सकुचात हो॥
बदन सलोने द्दग अति पैने वेधि मरम को जात हो।
'रसिकविहारी' छवि पर वारी रूप न निरखि अघात हो॥२॥

[पद]

अरी! यह कौन सलोने रूप ?
हँसि-हँसि बातें कहत सखी! यह कुंवर कहां को भूप ?
श्याम अंग पीत—पट राजत माथे मुकट अनूप।
भृकुटी बिकट नैन रस बरषत बदन सुधानिधि ऊप॥
कुंडल किरन कुटिल अलकावलि रही कपोलनि झूप।
'श्रीरसिकविहारी' की छवि निरखत मदन-तेज-तन-तूप॥३॥

[राग—केदार]

सोहत नैन—कमल रतनारे।
रूप भरे मटकत खञ्जन से मानो बान अनियारे॥
माथे मुकट लटक ग्रीवा की चित ते टरत न टारे।
अलिगन जनु झुकि रहे बदन पर केश ते घुंघुर वारे॥
छूटे बंद झीने तन वागो मुकर रूप तन कारे।

ढरकि रही माला मोतिन की, छकित छैल मतवारे ॥
अंग—अंग की शोभा निरखत हरषत प्रान हमारे ।
'रसिकविहारी' की छवि निरखत कोटिक कविजन हारे ॥४॥

[पद]

सखी री ! मन के श्याम सुखदाई ।
प्रगट श्याम सो कौन मिले अब ? बिछुरि होत दुखदाई ॥
निशिदिन पलक एक नहि छोड़त पोषत मन के भाई ।
अन्तरगति विहरत दुराने भेटत कण्ठ लगाई ॥
सोवत गत संगही डोलत जितही जित मन जाई ।
इन्हें उन्हे यह भेद कहा है हृदय प्रेम अधिकाई ॥
विरह दुख होत नहिं जाते ये चतुरनि के राई ।
'श्रीरसिकविहारी' सो कहत बिहारिनि मिलिए बोल हराई ॥५॥

[राग—केदारा]

अरी ! मान न कीजै रमीजे श्याम सो ।
तुम तो हो लालन की अँखियाँ बँधे तिहारी दाम सो ॥
बिन आगस जिय रोष धरति हो निरखि आपनी वाम सो ।
'श्रीरसिकविहारी' जानि अपनपौ विहँसि मिली पिय धाम सो ॥६॥

[राग—सारंग]

कारन कौन—अबोले मोहन गहे कौन उर बात ?
निसदिन निरखत बदन तिहारो मिलत गात सो गात ॥
मधुकर मन यह छवि को कीनो वास जु लेत सकात ।
'श्रीरसिकबिहारी' बंक जिन राखो करुना में मन जात ॥७॥

[राग—विहागरो]

श्याम हौं तुमरे गरे परौं ।
जो वीती तुमही सो वीती मन माने सो करौ ॥
करी अनीति कछू मित नाहीं नखशिष देखि भरों ।
मो तन चितै आप तन चितवो अपनो विरद ढरो ॥
कीजै लाज शरण आये की जिन जिय दोष धरो ।
अपनी जाँघ उघारे नहिं सुख तुमही लाज मरो ॥

विनती करों काहि हौं मिलि के सब कोऊ कहत बुरो।
'रसिकदास' की आस करुनानिधि तुमही ढरो सो ढरो ॥८॥
कल नहिं परत श्याम बिन देखे रहे प्रान चकचूरि।
अठ नीठन अजीरन भई रूपकी औषधि लगत तन मूरि॥
वेधत नहीं ज्ञान गीता को सुनी कथा भरि पूरि।
'श्रीरसिकविहारी' की छवि ऊपर किये यतन सब दूरि॥ ९ ॥

[पद]

भैया रे! या तन ते हंस उड़ानो।
जा दिन तेरी कछू न चलेगी जम के हाथ बिकानो॥
अनरथ करि करि नर धन जोर्यौ सो धन भयौ बिरानो।
चलती बेर कछु संग न लीनौ शिर धुनि धुनि पछितानो॥
माता, पिता, सजन, सुत, बन्धू अपने करि जिन मानो।
ए तेरे कोउ काम न आवे, सबै बटाऊ जानो॥
हाथ पाँव धरि नैन नासिका वदन सूखि कुम्हिलानो।
जरि बरि छार भयो इक छिन में मिटि गयो ठीक ठिकानो॥
सुधिहू गंध बहुरि ना ताकी आई कित करि गयो पयानो।
'श्रीरसिकविहारी' के भजन बिन, दीपक सो निखतानौ॥ १० ॥

[दोहा]

रसिकनि मुख नहिं विछुरे ना दुरि बैठे कहुँ ओर।
ए तो मान विहार में मस्त नैन की कोर॥ १॥
रसिक रसीली बात सो कहति प्रिया मुख मोरि।
करै बीनती साँवरो नैननि में कर जोरि॥ २॥
सकल उदीपन मदन के होत राग अरु रंग।
रसिकविहारी की छवि निरखत तहां मुरली नहिं संग॥ ३॥
मेरे जिय में प्रिया बसे मैं पिय के मन माहिं।
ऐसी अधिकी कौन है जो युगल चित्त पगि जाहिं॥४॥११॥

युगल-ध्यान [छन्द]

जय जय श्रीहरिदास परम-गुरु बड़े दयाकर।
प्रगट करी रस-रीति मुदित ज्यों उदित दिवाकर॥ १॥

श्रीनरहरिदास पग वंदि भजन उच्चार करों जब।
प्रथम करों गुरु-ध्यान युगल को ध्यान करों तब ॥२॥
गौर-अंग मृदु-बचन रचत सुन्दर सुखदायक।
मंद हास मुख कमल नासिका शुक सम लायक ॥३॥
पतित पवित्र करैं जु धरैं नहिं कछू दोष जिय।
युगल रूप जगमगे प्रिया को प्रेम प्रगट हिय ॥४॥
गुरु-स्वरूप उर आनि लली के पुनि पग परसों।
प्रेम प्रीति की दानि हृदय मनमोहन दरसों ॥५॥
रसार्णव पटल गूढ़ शोभा ख्याकरि के गाऊं।
श्रीवृन्दाबन धाम ध्यान छविन को मूल बताऊं ॥६॥
कालिन्दी को वास देह धरि सदा रहे जहँ।
अनत गई जो धार सबै परकाश रूप तहँ ॥७॥
रासस्थल अति दिव्य गुप्र-यमुना घिर आई।
उज्वल नील गँभीर अभीरम उत्तम ठाँई ॥८॥
सीतल सुन्दर रम्य कमल-पत्रनि अति सोभा।
पवन रेन ले उड़े वास बस मन को लोभा ॥९॥
मत्त भृंग आनन्द करत मकरन्द पान मुख।
कौतूहल भल करें विहंगम निरखि लहरि सुख ॥१०॥
परसि जमुनि की धार मीन-गन कौतुक करहीं।
कुंकुम रस में पंक पाइ उर-प्रेम, जु ढरहीं ॥११॥
जल, थल, पंछी निकर सुसारस, हंस, कोक पिक।
करत केलि उच्चार मनोहर मृदु-बानी इक ॥१२॥
रुचिर सलित के तीर कुंज मञ्जुल सुखदाई।
कपोत, कोकिला, कीर, मोर-धुन परम सुहाई ॥१३॥
पत्र फूल फल रम्य मनोहर स्वच्छ विराजत।
सेवत मधुकर वृन्द वेन धुनि सुनत जु लाजत ॥१४॥
कोटि भानु नहिं प्रभा किरणिका अद्भुत कवनी।
झलकत सब प्रतिबिम्ब महाछबि पावत अवनी ॥१५॥
चतुर्जोजन वृन्दाबन विस्तार दिव्य बन्यो यों।

मध्य कल्पतरु ऐन सबै छवि छाय रही त्यों ॥१६॥
जोजन साख विस्तार कल्पतरु उतंग भारी।
गजमुक्तनि की कोर पत्र ते मृगमद सारी ॥१७॥
मणि, मानिक, हीरा, लाल, फूल, फल, लता जु दरसें।
पचरँग कुसुम पराग अमृत की फुही जु बरसें ॥१८॥
बकुल मनो कल कमल मलय के झुक चले तहँ।
अगर कपूर निस्तास वास वहु अधिक आइ जहँ ॥१९॥
तातर मणि-मंडप की सोभा महावनी अस।
जापर मानिक-ज्योति वृत्त-प्रतिबिम्ब झलक अस ॥२०॥
स्थान प्रिय गोविन्द चन्द जहँ सदा विराजत।
सर्व सुखन को मूल सूल जहँ चिन्तत नासत ॥२१॥
ता मंडप के मध्य रतन—सिंहासन उज्वल।
जहां वल्लभी-बृन्द छबीली सोभित मंजुल ॥२२॥
महारहस्य गुणधाम बृन्दावन कृष्ण-ध्यान मन।
मुरली युग कर धरें सुन्दर श्यामल किशोर तन ॥२३॥
कोटि शरद पूर्णेन्दु सुमुख पंकज लुनि आई।
अधर-बिम्ब के रंग मुकर चरनन छवि छाई ॥२४॥
मुकर निकर ज्यों रूप चिबुक मनि अञ्जन झाई।
ललित मधुर त्रिभंग सर्व-मोहन सुखदाई ॥२५॥
चिकनित कुंचित केश वास वस मन करि राखै।
अलिकुल जनु झुकि रहे कमल को कोसै चाखै ॥२६॥
सन्मुख दक्षिण भाग चूड़ की लटक बनी छवि।
तरुन मोर चन्द्रिका तापर बहुत रही फवि ॥२७॥
मन्दार, केतुकी, जाति, यूथ बहु सुमन की बानिक।
गुच्छ सुच्छ भल बने चूड़ मिलि सोभित मानिक ॥२८॥
अष्ट-रतन उज्ज्वल भ्राजे गण्ड मण्डल भल झलके।
मनि मानिक छवि निरखि मुकुट-दुति लगत न पलकें ॥२९॥
अधर सधर रस भरे ढरे जे उर आनन्द भरि।
कुंचित ओठ पुट करे वेनु को नाद करत हरि ॥३०॥

इषद् भृकुटि भंग रमनि–जन–गन–मन मोहै ।
मृगमद तिलक ललाट मध्य गोरोचन सोहै ॥३१॥
पूर्ण–इन्दु मद–मुदित नैन–कमल–दल ऐसे ।
चितवनि तिरछिहि पमे सो वह निकसति कैसे ॥३२॥
नाना रतन लसत श्रवननि मणि–मय कुंडल मण्डित ।
पसरी किरन प्रचण्ड सुरवि-शशि-गन–दुति खण्डित ॥३३॥
नाशा अग्रज मोती अधरन पर जो डोलै ।
रुचिर कौमुदी खुली नासिका सुख सम तोलै ॥३४॥
सुद्ध सुधानि वदन मन्द जब हँसत परस्पर ।
मानो दाड़िम बीज अवलि मिलि बनी दसन अरि ॥३५॥
व्रजक ग्रीव छवि–सीव जु कीने कोटि मदन वलि ।
कौस्तुभ-मणि अति दिपै वक्ष पर राजि रही भलि ॥३६॥
मुक्तमाल छवि–जाल हाल धसि अधिको आई ।
वग–पंगति जन तरल घनै में देत दिखाई ॥३७॥
नलिन सचि नव वाहु रुचिर दण्ड कर अम्बुज ।
अंगद वाजूवन्द विराजत कंकन दंभज ॥३८॥
गन्ध, चन्दन, कस्तूरि दिव्य तन लेपन करई ।
उदर नाभि गम्भीर त्रिवलि मन को अति हरई ॥३९॥
पीत बसन घनश्याम कोटि दामिनि की चमकनि ।
उड़ि–उड़ि लागे अंग महा छवि होत जु दमकनि ॥४०॥
कटि पर किंकिनि बनी ठनी जो बहुत रतन जरि ।
निरखत मन को हरैं जुरैं कहौ कौन कहै सरि ? ४१॥
जानु जंघ मणि–खम्भ रम्य को तुल्य देइ कवि ।
अरुन घटी कटि कसी जु आभा सवै रही दवि ॥४२॥
पद–कमलन मंजीर मधुर–धुनि सुनि सुख पावत ।
नख चंद इन पर ब्रह्म–जोति जो जग उपजावत ॥४३॥
हस्त–पाद–सरोज खोज ते सदा वसो हिय ।
बरणन मन में ध्यान बहुत आनन्द होत जिय ॥ ४४ ॥
ध्वज, जव, छत्र, चक्र, उर्ध्वरेख, स्वस्तिक पद्म ।

अष्टकोन, अंकुशकुल, संजांतूफल, दच्छिणविन्न ॥ ४५ ॥
संख, धनुष, आकाश, गोपद, त्रिकोण अति राजै।
अर्धचन्द्र, अमृत-कलश, बाम पद मीन विराजै ॥ ४६ ॥
सुन्दर रस मञ्जस गोरि त्रिभंग नवनागरी।
तरुनी वृन्द नायका कृष्ण अभेद आगरी ॥ ४७ ॥
स्वर्न मुकुर रूप राधा नील-कमल-दल-नैनी।
सीसफूल माँग मोतिन की रत्न जटित आभूषण वेनी ॥४८॥
अधर, दशन मृदुहास वदन ते झरत फूल से।
चिबुक बृन्द सुखकंज अलीसुत बसे कूल से ॥ ३९ ॥
खुटिला खुभी दवी छवि रवि की कज्जल रेख बनाई।
अलक छूटि नट नागिनि जनु भक्तन सुत आई ॥ ५० ॥
कण्ठ पोति मनि मोती लटकनि मटक वदन की।
झाई झुकि धर परत झरत छवि कोटि मदन की ॥ ५१ ॥
लसी कंचुकी अरुन कटि लहँगा झूमक सारी।
मणि मय हार उरज विच चौका चमकनि न्यारी ॥ ५२ ॥
भुज मृनाल सुविशाल छवि अंगद बाजू-बन्द।
रतन चौक कंकन चूरी अलिगनि पहुँची फन्द ॥ ५३ ॥
कटि सुन्दर छवि कन्दर मणि में मेखला राजै।
द्रनक झुनक चलत मंदगति जंघा अधिक विराजै ॥ ५४ ॥
चरणकंज छाजे सु-नूपुर धुनि अति मीठी।
कोटि चन्द दुतिमन्द, नखन छवि निरखि अनूठी ॥ ५५ ॥
प्रिया चरन मनहरन तहाँ के खोज कहो अब।
करे निरन्तर ध्यान दुख पुनि दूरि होत सब ॥ ५६ ॥
कल्पवृच्छ, अर्द्धसोम, छत्र, अंकुश, ध्वज, कुण्डल।
कमल, चक्र, अम्बर, जब, उर्ध्वरेखा, वायेंपद मण्डल ॥ ५७ ॥
दच्छि गदा, रथ, शंख, सेल, शक्ति, वंदी झकसोहै।
अमृत, कलश, डोरु पगतर मञ्जुल जोहै ॥ ५८ ॥
लच्छन पूरण सर्व सु युगल रूप मनमोहन।
करत निरन्तर ध्यान तास की डोलत गोहन ॥ ५९ ॥

इक चित इक मन पगे रँगे दोउ रहे प्रेम-रस ।
जहाँ युवतिन की भीर विराजत रहत चहूँ दिश ॥ ६० ॥
सन्मुख ललितादेवी कर कपूर ताम्बूल जु साजै ।
स्यामला सुगंध पात्र बायव कृष्ण मोहनी भ्राजै ॥ ६१ ॥
उतर श्रीमति धन्या सदा चँवर शिर ढोरत रहै ।
हरिप्रिया इशान-कोन अष्ट-रतन सेवा निवहै ॥ ६२ ॥
विशाखा पूर्व दिशिरत्न अलङ्कार सुख सेवी ।
सेव्या अगिनि कोन नाना पुष्प मालिनी देवी ॥ ६३ ॥
दक्षिण दिशि जो पद्मा राजै रस भोजन कर लीने ।
नैऋत भद्रा सदा विराजत दिव्य वसन ले झीने ॥ ६४ ॥
चन्द्रावली कर मुकुर चित्ररेखा अमुज धरे कर ।
रवाव मदनसुन्दरी चन्द्रा वीन ले सुघर ॥ ६५ ॥
श्रिया धवल धत्रकर गान मधुमती प्रवीन ।
ससि रेखा मृदंग कृष्ण प्रिया पादुका लीन ॥ ६६ ॥
षोड़स सखी शिरमौर तिनको भेद जानि सब
जो जौन यूथ को अंग ताहि मिलि भजन करें तब ॥ ६७ ॥
सन्मुख गोप-कन्या कृति-कन्या दक्षिन दिशि ।
देवकन्या पूर्व राजै मुनिकन्या उतर जिसि ॥ ६८ ॥
विविध भाँति सेवे सखी मुख्य दासि निरन्तर ।
जो ध्यावैं मन लाय तासु को रहै न अन्तर ॥ ६९ ॥
सुमन-वेलि रहि झेलि वह सुरतरु छवि वनी ।
ता मधि युगलकिशोर वास झुकि आवत घनी ॥ ७० ॥
तरु के पश्चिम भाग लता मालती शोभित ।
वाइव लतिका मालति सौरभ मनको लोभित ॥ ७१ ॥
मल्लिका उत्तर दिशि बहुत मधुर रस वरसें ।
अचरज नाना मधुप के इशान गंधको सरसे ॥ ७२ ॥
लवंगलता पूर्व—दिशि ताके छूटत झुकै ।
अगिनि केतुकी मालति मेल सरस के मूकै ॥ ७३ ॥
पद्मलता दक्षिण दिशि नाना प्रेम रसन की श्रैनी ।

नैॠत माधुरी कौतुक माड़े बहुत विपिन सुखदेनी ॥ ७४ ॥
नाना कुसुम पराग सन्मुख ब्रजमोहन के आवै।
शोभा बनी वहु भाँतिन को कवि सके बतावै ? ७५ ॥
वहु विधि वेद, पुरान प्रेम-तत्त्वनि जु गावै।
ध्यान धरें खोजें नित्यवृन्दावन को अन्त न पावै ॥ ७६ ॥
तरुनी रूप मनसासक्त चैतन्य आग्रत जानो।
वेद गुप्त जो जपे सो अनन्त कियो बखानो ॥ ७७ ॥
सीत उदम दुखन दीन निशिबासरि नहि तास।
इन्द्री मन को सुख नहिं नख-रवि-जोति प्रकाश ॥ ७८ ॥
महा गोपि ते गोपि रहसि एकान्त-रस।
बिन जाने रस-रीति तिनसों ना कहिए यश ॥ ७९ ॥
अंगन्यास यों ध्यान सु नीके चित धरई।
माया-बन्धन छाड़ि वास विपिन में करई ॥ ८० ॥
श्रीवृन्दावन-वास सुर नर मुनि नित चाहैं।
श्रुति धरे जो ध्यान विधि, शंकर अवगाहै ॥ ८१ ॥
श्रीहरिदास-कृपा विना क्यों सूझै वृज धूरि।
श्रीनरहरिदास बताई अपनी जीवन मूरि ॥ ८२ ॥
श्रीनरहरिदास प्रताप ते भाषा कृत सो कीनो।
'श्रीरसिकदास' को करि कृपा वास विपिन में दीनो ॥ ८३ ॥

॥ इति ॥

श्रीललितकिशोरीदेवजी

* छप्पै *

सेये संत विरक्त स्थान पुनि टट्टी को निर्माए ।
शाहमहम्मद प्रेम चरन-इन चित्र मंगाए ॥
नित्यविहारी सेव्य प्रीति निधिवन सों गाढ़े ।
ललित रूप-निधि पैठि ललित चारु पद काढ़े ॥
श्रीललितकिशोरीदेव भ्रमर जुग-रसिक-भूप के चरन कौं ।
देस भदावर त्यागि माथुरहिं विपिन वास मन करन कौं ॥

विहारीशरण

श्रीरसिकदेवजी के सैकड़ों विरक्त-शिष्य हुये, श्रीललितकिशोरीजी उनमें से एक थे। ये टट्टी-स्थानीय महात्माओं के सुगुणानुसार, बड़े भारी विरक्त एवं निस्पृह थे। इनकी जन्मभूमि आदि निरूपण करते हुये श्रीसहचरिशरणजी ने लिखा है—"देस जो भदावर को तामें चारु सरिता हैं चामिल है नाम ताको ताके तट ग्राम हैं, तासो हत कान्ति कहै वास द्विजराजन को माथुर कहावैं सोई महिमा की धाम है ; ताहि कुल माहि प्रगट भए सो गंगाराम अति अभिराम स्यामा स्याम ही सों काम है, धारी एक टंक बाँकी पद्धति अनन्यता को गुनहू अनेक प्यारे ललित ललाम है।" इनका जन्म सम्वत् १७३३ में हुआ था। नित्य-सिद्ध-वपु होने के कारण, बाल्यवस्था में ही हृदय में उत्कट-वैराग्य उत्पन्न हुआ। श्रीशुकदेवजी के समान अल्प-वयस में ही घर से निकल भागे। अनेक स्थानों पर सन्तों में जा जाकर इन्होंने सत्संग किया ; किन्तु इनकी भावनाकूल सरस-हृदय को पूर्ण-शान्ति कहीं भी नहीं मिली। भ्रमण करते हुये पुरुषोत्तमपुरी-पहुंचे ; वहां सत्संग-स्वाद अस्वादन करने लगे। एक दिन भक्तमाल की कथा में इन्होंने, स्वामी श्रीहरिदासजी का छप्पै सुना ! अकस्मात् हृदय में नित्य-सिद्ध-शरीर की स्मृति हो आई। उसी समय अत्यन्त उत्कंठित होकर उस कथा को श्रवण कर, हृदय में धारणा किये, पश्चात् तत्क्षण श्रीवृन्दावन के लिये प्रस्थान होगये। यहाँ वृन्दावन श्रीरसिकदेवजी का

दर्शन कर अति प्रसन्न हुये किसी शक्ति ने आकर्षित कर परस्पर पिता-पुत्र वत् स्नेह करा दिया। इन्होंने उसी समय अपना सद्गुरु मान कर शिष्य होने के लिये प्रार्थना की, श्रीरसिकदेवजी ने विधिवत् दीक्षा देकर शिष्य किया और ललितकिशोरी नाम रखा। हृदय में श्रीहरिदास एवं श्रीविहारी-नाम का महाव्रत धारण कर, गले में गूदड़ी, कर में खण्डित करवा, शिर पर ब्रजराज और युगल-मंत्र को जपते हुए मत्त डोलने लगे। गुरु-पद-पंकज में इनकी अत्यन्त प्रीति थी। इनके उत्कट-वैराग्य एवं सहज-वाक्य को भी उपदेशमय श्रवण कर, समक्ष में सभी नत-मस्तक होजाते थे।

श्रीराधावाग में निवास करते हुये श्रीविहारीजी की पुष्पमाला--सेवा करते थे। पश्चात् निधिवन में आगये ; वहां अपनी दिव्य-वाणी द्वारा कथोपदेश रूप में नित्यविहार--तत्त्व--वस्तु को प्रकाश करने लगे। नित्यविहार-केलि में निमग्न रहते हुये, खग, मृग, वन, धरनी, विटप, वेलि सब में सखी-भाव से ही स्नेह करते थे। इनके सेवक, शिष्य निधिवन में ही उत्सवादिक करने लगे। इनके इस प्रकार चमत्कार-पूर्ण बढ़ते हुये प्रभाव को पुजारी नहीं सहन कर सके, "हलधर भूधर को भए प्रथम परम दुख रूप ; जिन इनको उत्कर्ष लखि उज्वल अमल अनूप।" समस्त पुजारियों ने मिलकर इनको दुख देना प्रारम्भ किया, तब निधिवन को परित्याग कर, जमुना--पुलिन में एक पीपल के नीचे निवास किये। समस्त सेवक भी वहीं आकर उत्सव, सन्त-सेवादिक करने लगे।

एकबार श्रीवृन्दावन में जैपुर--नरेश जैसिंह पधारे, उनसे किसी ने श्रीललितकिशोरीजी की निन्दा की और कहा कि—'वह आचार-भ्रष्ट है। एकादशी आदि व्रत को भी नहीं मानता।" राजा ने परीक्षार्थ दूत भेजा, वह वहां का दृश्य देखने के लिये जा बैठा। उसी समय कोई सेवक दही का हंडी लाया एवं एक अन्य व्रजवासी रोटी भी लाया। रोटी को भोग लगाकर तो पा लिये और दहीं बाँट दिये। यह वृतांत उसने राजा से जाकर सुनाया, राजा ने आकर इनसे क्षमा माँगी।

किसी दिन और भी राजा ने देखा कि—एक महात्मा करवा में रज भर कर शरीर पर छोड़ रहे हैं, यह चरित्र देख कर मंत्रियों ने परिचय पूछा इन्होंने इनका परिचय देते हुये कहा—

"नित्यविहार सार सुख-धामा ; ललितकिशोरी इन कर नामा।

निरविरोध हरिदास-उपासी ; यथा-लाभ संतोष-बिलासी।
बृन्दावन विच विचरत कैसे ; वेदनि मध्य विदुष-मन जैसे।
इनके मद, मत्सर कछु नाहीं ; सन्त महन्त विलोकि सिहाहीं ।"

यह सुन कर राजा अति प्रसन्न हुआ और सादर दण्डवत् किया। जबतक बृन्दावन में रहा तबतक नित्य-नियम से दर्शन सेवा करता रहा।

एकबार गोकुलचन्द नामक चौवे ने आकर शिष्य होने के लिये प्रार्थना किया। इनके अस्वीकार करने पर भी श्रीरसिकदेवजी से अज्ञा लेकर आया और शिष्य होकर और भी बहुत से चौवे को शिष्य कराया। उसी समय अनेक कायस्थ भी आकर शिष्य हुये। निधिवन से आकर जिस स्थान पर वैठे वह टट्टियों से चारोतरफ घेरा गया, इसलिये उसी स्थान का नाम 'टट्टी--स्थान' पड़ा। सहचरीशरणजी लिखते हैं —

कोमल विमल कल पुलिन बिछाय राखी गिलम गलीचा कहा गावैं कवि जन हैं ;
परम-पवित्र पुनि मोहनी चुरावै चित चमकत चारु--कन मानों मनि-गन हैं ;
आसपास द्रुम अरु टाटिन की जाली लखि ललितकिशोरी मध्य सुषमा के घन हैं ;
आवत हैं नारी नर निरखि निहाल होत राखत प्रतीति पन सेवा मांहि मन है ॥"
"तहां बन्यो स्थान पुनि ललितकिशोरी संग राजत शिष्यविरक्तबहु बाढ़त छण-छण रंग।

श्रीराधा-अष्टमी (भाद्रशुक्ल अष्टमी) को स्वामीजी का प्रादुर्भाव हुआ था। गोकुलचन्द ने श्रीललितकिशोरीदेवजी से प्रार्थना की कि—"आज के दिन स्वामीजी का उत्सव मनाया जाय और यही सदा के लिये बँधान भी करदी जाय! वही उत्सव टट्टीस्थान में आजपर्यन्त धूमधाम से मनाया जाता है।

किसी समय श्रीराधारमणजी का पुजारी गर्मी के दिनों में रात्रि-समय मंदिर में जल रखना भूल गया। श्रीराधारमणजी ने इनसे स्वप्नावस्था में कहा कि—"मैं बहुत प्यास से ब्याकुल हूं" इन्होंने उसी समय यह बृत्तान्त पुजारीयों के पास शिष्य द्वारा भेजा, उसने जाकर इनका सन्देश पुजारी को सुनाया। पुजारी ने मंदिर में जाकर देखा, वास्तविक में जल नहीं रखा है। उसी समय जल रख कर, क्षमा प्रार्थना की। भोर होते ही इनके पास जाकर चरणों में मस्तक टेको और इनके भजन के प्रभाव पर मुग्ध हुआ।

भदावर--निवासी एक दूलहराय नामक कायस्थ आकर शिष्य हुआ

श्रौर इन्हीं से श्रीठाकुरजी की प्रतिमा भी लेगया एवं वहां मंदिर बनवाकर उसमें प्रतिष्ठा की, बहुत ही समारोह के साथ उत्सव किया। उसके कुछ ही काल व्यतीत होने पर—"महा यवनगण आयके मथुरा को कृतकाट ; भई अवाई विपिन की सबने पकरी वाट।" अर्थात् नादिरशाह ने मथुरा में कत्ल करवाई और फौज वृन्दावन में भी कत्ल करने के लिये आने लगी। तब सेवकों ने प्रार्थना की कि—"आप वृन्दावन से वाहर पधारिये, नहीं तो यवन-लोग क्या करेंगे निश्चय नहीं। आपके विद्यमान रहने से धर्म-प्रचार एवं परोप-कार हो रहा है। इनके बहुत ही अस्वीकार करनेपर भी शिष्यगण वाहिर लेगये वहाँ इन्होंने वटेश्वर भदावर इत्यादि स्थानों में जाकर, शिष्य सेवकों के गृह को पावन किया।

एकवार दिल्ली में महम्मदशाह वादशाह के हृदय में प्राचीन चित्र देखने की इच्छा हुई, उसने बहुत से चित्र मँगवाया। उनमें से एक चित्र में ठाकुरजी के निकट एक महात्मा, अकवर और तानसेन को वैठे देख कर, उसने पूछा कि—"यह कौन फकीर है ?" जैपुर के सरस वकील ने अकवर, तानसेन और स्वामी हरिदास के मिलन की समस्त वृत्तान्त वर्णन की। यह सुन कर वादशाह ने पूछा कि--"वर्तमान-काल में इनके वंश में कोई है ?' श्रीललित-किसोरीजी का नाम सुनकर, चित्र उतरवा कर मँगवाया और दर्शन दिया।

किसी समय--श्यामा श्याम युगलस्वरूप को सिंहासन पर विराजते हुये देखकर साष्टांग--दंडवत किये एवं परिक्रमा करनेलगे। युगल नामक—

"ताहीसमय आय काहू ने कही युगलजू की परनामा ; सुनि बोले श्रीललितकिसोरी येहैं युगल सरस अभिरामा। द्विज तो कहै युगल की वन्दन ललित कहैं ये युगल विराजत, वार तीनि यों भई परस्पर पुनि बोल्यो द्विज प्रेमहि साजत।" कि महाराज आप के सेवक का भी नाम युगल है। तब सचेत होकर इन्होंने उससे 'जै जै श्रीकुञ्जविहारीजी की" कहा।

कल्लाभट्ट नामक एक विहारीजी का अनन्य-सेवक भक्त -सेठ, मिष्टान अमनियां लाकर मंदिर के सन्मुख रखा और प्रणाम किया ; किन्तु इन्होंने भोग नही लगाया। उसे शर्म आई कि हमारे संगी निन्दा करेंगे कि स्वामीजी ने अमनियां को स्वीकार नहीं किया। इतनेही में क्या देखता है कि —

"हरे हरे दोनापर आई दृष्टि अमनियां भोग लगावा।
इकसंग श्यामाश्याम स्वामि ने लीन्ह ग्रास भट्टहि दरसावा॥"

इस प्रकार अनेक दिव्य-चरित्र हैं। इनके द्वारा निर्मित चार सौ के लगभग, दोहा और पदों की वाणी टट्टी-स्थानीय अष्टाचार्य के वाणी में सम्मिलित है। सम्वत् १८२३ में अनित्य-शरीर को परित्याग, निकुञ्ज को प्राप्त हुये। इनके पश्चात् इनके शिष्य श्रीललितमोहिनीदेवजी उस स्थान में विराजे। जिन्होंने टट्टीस्थान की विशेष उन्नति करके महन्ताई प्राप्त की। इनके वाणी में से कुछ पद एवं दोहे उद्धृत किये जाते हैं।

छिन-छिन बीतत जुग समैं तुम बिन नाहिन और;
कृपा करौ विचारि के परम-रसिक-शिरमौर॥ १॥
महा-अग्नि ज्वाला उठी फोटा सम हौ आइ;
रसिकविहारी ललितवर तुमही लेहु बचाइ॥ २॥
रसिक सिरोमनि कृपानिधि संतन कहौ सुनाइ;
विषय-दारु में जरत ही लीनी तपति बुझाइ॥ ३॥
वृन्दाबन में परि रहै अति चुपरी और चारि;
श्रीस्वामी के आसरे सोओ पाँव पसारि॥ ४॥
श्रीस्वामी सन्मुख भए महा अभय-पद देत;
अँग संग नित्यविहार में ताही छिन करि लेत॥ ५॥
जब समझै तब निकट है बिन समझे है दूरि;
ललित केलि रसरंग को सहज प्रेम भरि पूरि॥ ६॥
कुंजविहारिनि हित कियो राखी आवनि जानि;
हम तुम दोऊ एक हैं रहैं ललित रस मान॥ ७॥
कुंजविहारिनि हित कियो अब नहिं आवै जाय;
ललितकेलि अँग संग सदा निरखै नैन सिराय॥ ८॥
आवनि जावनि प्रेम सो भागमान लै जाय;
ललितकिसोरी संग सो पावै ताके भाय॥ ९॥
आवनि जावनि यों रही कियो विहारिनि हेत;
हम तुम तो उहांइ मिले ललित केलि संकेत॥ १०॥
बनी बनाई बनि रही ललितप्रिये सो नित्त;

रोम-रोम में रमि रही तन, मन, वचनन चित्त ॥ ११ ॥
श्रीवृन्दाबन वसि रंग सौं जमुना रसै अहार;
ललितप्रिये को पाइहै अद्भुत नित्यविहार ॥ १२ ॥
महाप्रेम सुख को चहै तौ गुरु सेव सुभाव;
इन सेवे ते पाइहैं कुंजविहारी राव ॥ १३ ॥
कुंजविहारिनि लाल भजि निर्भय ह्वै आनन्द;
सम-बुद्धि सबसों भाव करि वसि वृन्दाबनचंद ॥ १४ ॥
श्रीवृन्दाबनचंदजू महा—प्रेम सुखदानि;
अपनोई गुन देत हैं ललित रंगीली वानि ॥ १५ ॥
रँगनिधि प्रेम सनेह-निधि आनँद-निधि सुखरासि;
प्रीति चाह हित मिलन-निधि ललितप्रिये मृदुहासि ॥ १६ ॥
जोति फुहारौ विपिन कौ ब्रह्म-सुता परकाश;
ललित-केलि रस-रूप-निधि अद्भुत प्रेम विलास ॥ १७ ॥
सरस लाड़िली सरसवर सरस सुकेलि उदार;
जय जय श्रीहरिदास को अद्भुत नित्यविहार ॥ १८ ॥
मोहि रुचै सोई करैं कुंजविहारिनि वाल;
मेरे हित नित बिहरहीं कुंजबिहारीलाल ॥ १९ ॥
कोऊ काहू को रुचै मोहि रुचै प्रियालाल;
ललित-केलि तन, मन मिले कीने रसिक निहाल ॥ २० ॥
तन-रूपी तो महल हैं मन-रूपी प्रियालाल;
ललित-केलि विहरैं सदा कीने रसिक निहाल ॥ २१ ॥
प्रान हमारे लाड़िली देहि विपिन को आहि;
ललित-केलि निरखैं सदा छिन-छिन बाढ़ै चाहि ॥ २२ ॥
लाड़ ललित लाड़ै ललित ललित लड़ावन प्रेम;
ललितप्रिया आनंद भरि ललित-केलि को नेम ॥ २३ ॥
ललित-लता लपटी सहज महारंग के भाय;
मिलत मिलत आनंद अति तन, मन रहे समाय ॥ २४ ॥
गौर स्याम सुख-रासि के अतिही आनँद नित्त;
ललित-रंग में रंगि रहे एक प्रान द्वै मित्त ॥ २५ ॥

ललित-केलि रस रूप निधि निरखै सहज सुभाय ;
प्रेम-सरोवर छाड़िके को मान सरोवर जाय ॥ २६ ॥
गर्व-शिरोमनि लाड़िली दीन-शिरोमनि लाल ;
ललितप्रिये अँग संग सदा छिन-छिन करत निहाल ॥ २७ ॥
धन्य विहारनि धन्य विहारी धन ललिता रसरासि ;
धन्य कुंज सैय्या सुधनि धनि धनि भूमि-विलास ॥ २८ ॥
मिलत मिलत मिलिवो चहै मिलै मिलन की भूल ;
मिलै ललितवर रंग सो छिन-छिन बाढ़ति फूल ॥ २९ ॥
ललित केलि अद्भुत कही ललितै कियौ प्रकास ;
ललित प्रीति प्रतीति गहि ललित रसिक-रस-रास ॥ ३० ॥
ललित रँगीली प्रीति को को करि सकै बखान ;
रसिक-सिरोमनि—कृपा ते जानै सोई ज्ञान ॥ ३१ ॥
रसिक-सिरोमनि कृपा कौ जानौ यही उपाव ;
कुंजबिहारीलाल को उमगि—उमगि गुन गाव ॥ ३२ ॥
मिलत-मिलत में चाह अति ललित रँगीली प्रीति ;
कुंजबिहारीलाल की यह तो अद्भुत रीति ॥ ३३ ॥
कहा कहों यहि मिलन की जो मिलिबो जिय होय ;
तन मन सों प्रीतम मिले तऊ मिलन की खोय ॥ ३४ ॥
हमारी बात बनी भली भली लड़ैती प्रान;
ताही से सुख अति भयो मिली सो रसिक-निधान ॥ ३५ ॥
सुरति समानी रंग में रंग सुरति के माहि ;
ललित लाल आनंद अति फूले अंगन माहिं ॥ ३६ ॥
गौर-स्याम सुखरासि अति इनसे एही जनि ;
रूप बढ़ै इत चाह उत इन्हैं मिलन की बानि ॥ ३७ ॥
ए दोऊ अनुराग में अदल बदल ह्वै जाहिं ;
सखी लड़ावै भाव सों निरखत नैन सिराहि ॥ ३८ ॥
अद्भुत रस अद्भुत मिलन अद्भुत सुख को सार ;
अद्भुत प्रीति बढ़त महा अद्भुत नित्यविहार ॥ ३९ ॥

एक प्रान द्वै मित्त हैं अद्भुत रूप अपार;
विलसत तन, मन रंग सों महा प्रेम सुख सार ॥ ४० ॥
कुंजविहारिनि लाड़िली परम उदार कृपाल;
पोषति तोषति लाल को रसिक-सिरोमनि बाल ॥ ४१ ॥
भूल हमारे हाथही सबविधि करी बनाय;
समझि दई जब लाड़िली तब निज सुख रहे समाय ॥ ४२ ॥
अनंत जनम की भूल को छिन में डारै खोय;
कुंजविहारिनि लाड़िली तुम ते सब कछु होय ॥ ४३ ॥
जे हरि गुरु सो साँचे रहै तन की झूठो मानि;
रहे विपिन आनंद में तेई रसिक सुजानि ॥ ४४ ॥
साँचो श्रीवृन्दाविपिन साँचोई सुख देत;
जो साँचो तन मन भजे भूल न ताकी लेत ॥ ४५ ॥
वैकुंठ महावैकुंठ लों सब ही थाने जानि;
रजधानी वृन्दाविपिन अद्भुत रस की खानि ॥ ४६ ॥
यह अद्भुत रस खानि है श्रीवृन्दाबन-नित्त;
गौर-स्याम विहरैं जहां एक प्रान द्वै मित्त ॥ ४७ ॥
नित ही राधा-कृष्ण हैं नित ही विपिन-विलास;
कोटि—कोटि गोलोक नों एक पत्र परकास ॥ ४८ ॥
जो अनुरागी माध हैं साँचो हरि सो भाव;
तिनको बाधा कछु नहीं भावै सोधो गाव ॥ ४९ ॥
जो अनुरागी संत हैं तिनकी यहै सुरीति;
दुखी न काहू लहि सकै सब जीवन सों प्रीति ॥ ५० ॥
ज्ञानयोग वैराग्य ते मनुवा उज्वल होय;
जो अनुरागी हरि भजै परम-तत्त्व लहै सोय ॥ ५१ ॥
रोम-रोम आनंद भरि दुख को दूर निकार;
जो कछु करै सो हरि करै शिर को भार उतार ॥ ५२ ॥
भली-भली सब हरि करैं भूल अपनोपो लेह;
परम-प्रीति-रस रीति यह बन में बसौ कै गेह ॥ ५३ ॥

[पद]

लड़ैती जू ! सुनिए बात हमारी।
जैसे दई केलि सुखरासी अपनी जानि सम्हारी ॥
तैसीये देहु देह सौ भूल न यहि लेहु हिए में धारी।
कुँजविहारिनि रसिक-सिरोमनि 'ललित' महाहितकारी ॥ १ ॥

[पद]

मन ! ते भली कीनी धीर।
महामधुर-रस पान कीनो छाड़ि विषय या नीर ॥
गौर-स्याम हित चित दीनौ जानि निज यह पीर।
'ललित' केलि के रंग-रण में मँझ्यो सुभट सुधीर ॥ २ ॥

[राग-विभास]

प्रिये बिन शुद्ध-प्रेम नहिं पावै।
भूमण्डल वैकुंठ लोक लो ऊँच नीच कितौ किन धावै ॥
एतौ मिलै मिल्योही चाहै छिन-छिन प्रीतम रंग बढ़ावै।
कुंजविहारिनि 'ललित' लाड़िली तन, मन, वचननि हियो सिरावै

[राग-देवगंधार]

हमारे हरि हैं सदा सहाई।
जोइ जोइ रुचै करैं पुनि सोई पोषत मन भाई ॥
हरष-हरष अनुराग बढ़ावत जीवनि अति सुखदाई।
श्रीहरिदासी 'ललितकिशोरी' हँसि-हँसि कंठ लगाई ॥ ४ ॥

[राग विलावल]

श्रीप्रियालाल बिन सबही फीके।
अद्भुत रूप रंग रस अद्भुत लाड़ महल में नीके ॥
श्रीकुंजविहारनि प्राननि प्यारी करत मनोरथ सबही जीके।
'ललितकिशोरी' अति बड़भागी पाए रसिकसिरोमनि हीके ॥५॥

[पद]

बनराज हमारे प्यारे हैं।
नित्य सदा भूतल पर राजत महाप्रेम रसभारे हैं ॥
जो कछु रुचै करै ए सोई तन. मन अति हितकारे हैं।
श्रीकुंजविहारी की निज जीवन छिनहु होत न न्यारे हैं ॥ ६ ॥

[पद]

सोभानिधि वनराज की कापै बसाइ ?
महाप्रेम आन्द भरि छिन-छिन हुलसाइ ॥
प्रियालाल के रंग सो अतिही छवि पाइ।
'ललितकिशोरी' प्रान हैं सखियन सुखदाइ॥ ७ ॥

[राग-आसावरी]

साधो ! ऐसो महल हमारौ।
निर्गुन-सगुन वारि हैं जाकी कहै न वेद विचारौ ॥
अद्भुत-प्रेम रंग रस अद्भुत अद्भुत नित्यविहारौ।
'ललितप्रिये' सुखरासि रसिकवर करि राख्यो उर-हारौ ॥८॥

[पद]

विहारिनि संग निरंतर मेरे।
जाकी कृपालाल रहैं वंछित जीवत याही हेरै ॥
निकसि न सकत रूपसागर ते परे प्रेमरस फेरै।
ऐसी 'ललितकिसोरी' प्रीतम कहा जगत के डेरै ? ९ ॥

[पद]

अपने हाल मस्त सुखदाई।
अपने रंग रहत निसिवासर अपनेई प्रेम सहाई।
अपनी प्रियालाल हित अपने अपनी केलि मनभाई।
अपनी रसिकसखी हरिदासी अपनी रीझि रिझाई ॥१०॥

[राग-सारंग]

हरि को भजै सोई तौ नीकौ।
सोई जीतै माया-काल कौ लगै जगत सब फीकौ ॥
पति को सेवै सोई पतिभती यों अधिकार है जीकौ।
कुंजविहारिनि 'ललित' लाड़िली प्रानअधार हैं पीकौ ॥११॥

[राग-गौरी]

महासुख प्रिया-नाम-अधार।
अति आनंद रूपनिधि सकल सार कौ सार ॥
जाकी रसना भूलिहू निकसै हार प्रिया उर हार।
'ललित' रसिकवर की निज जीवन अद्भुत नित्यविहार ॥१२॥

[पद]

जय जय श्रीवृन्दावनचंद।
महारूप सुखरासि छबीले नितही विहरत आनँकंद॥
तामें बसि जे अनत देत चित तेई हैं मतिमंद।
रसिकसिरोमनि श्रीहरिदासी कीने सहज प्रेम के फंद॥१३॥

[राग–इमन]

एरी मेरौ वृन्दावन सुखधाम।
प्रियालाल को रंग लड़ावति सब–बिधि पूरन काम॥
महाप्रेम सोभा को सागर रंग–रंग अभिराम।
'ललित' रसिकवरजू की जीवन कुंज–केलि–विश्राम॥१४॥

[राग–विहागरो]

मेरी राधिके प्रवीन!
अपनेई हित में नित राखत छिन–छिन प्रीति नवीन॥
मिलत–मिलत आनँद अति बाढ़यो पाए जल ज्यों मीन।
'ललित' केलि प्रानिनि मिलि विहरत आप बरोबरि कीन॥१५॥

[पद]

रसिकवर! और कहा चहिए?
हित चित की तुम नीके जानत तुम्हरेइ संग रहिए॥
तुमही सो मिलि आनँद पावै तुम्हरोइ सुख लहिए।
कुंजविहारिनि ललित लाड़िली तन, मन कर गहिए॥१६॥

[पद]

मोहि भरोसो स्वामीजी को।
करि हैं अपनी आप बराबरि प्रानअधार प्रिये को॥
विषय, वासना जारि खेह करि उपजत है हित नीको।
रसिकविहारी विहरिनि तन, मन और लगै सब फीको॥१७॥

[राग–कानरौ]

रसिकवर हरि सुमिरै बड़भागी।
हरिही कहै सुनै और हरिही सो लौ लागी॥
हरिही को नित लाड़ लड़ावत हरिही के अनुरागी।
श्रीहरिदासी 'ललितकिसोरी' प्रेम परस्पर पागी॥ १८॥

श्रीललितमोहिनीदेवजी

* छप्पै *

श्रीललितमोहिनी ललित–सुयस को दंड विचारौ।
प्रीति–प्रतंचा–प्रवर सरस तुन्नीर निहारौ॥
विमल--मनोरथ--विशिष भरे ता विच अति रूरे।
खैंचि--खैंचि खर छिप्र करहु संयुत बल पूरे॥
श्रीगुरु महान सो सीखलै धनु–विद्या विद्यामनी।
कामादि निकर भट जीति के भजिय स्याम-स्यामा धनी॥

—श्रीसहचरिशरण।

श्रीललितमोहिनीदेवजी का जन्म सम्वत् १७८० में वैतवी - नदी के तट पर ओड़छा नगर में हुआ था। वृन्दाबन–निवासी प्रसिद्ध श्रीहरिरामव्यासजी के वंस में प्रगट हुये थे। ये अपने पूर्ब–पुण्य के प्रताप से घर एवं कुटुम्ब को परित्याग कर, ललितकिशोरीदेवजी के शिष्य होकर—

"परिहरि धन, दारादि, गृह, जाति. पांति. कुल-रीति। वृन्दावन–वासी भए करि विराग सों प्रीति॥" श्रीगुरु के आज्ञानुसार विरक्त–भेष धारण कर, ब्रज, वृन्दावन में भ्रमण करने लगे। श्रीयमुनाजी में नित्य–स्नान कर, युगल–स्वरूप ध्यान–नशा में निमग्न रहते हुये, कभी तटपर, कभी रम्य बिटपों की छाया में जाकर वैठते, कभी तत्क्षण अन्य-भाव-मय होकर भ्रमण की धुन में ही लग जाते। कभी खारन में जाकर ध्यानावस्थित होजाते; तव वे मूर्तिमान सन्तोष के सशरीर वैठे हुये से प्रतीत होते। जो कुछ समयानुसार प्राप्त होता उसे ही रुचि–पूर्वक भोजन कर, सुखी होते। इस प्रकार विनिंदकामृत को पान करते हुये, तृष्णाशमन को महाहितकारी समझ, श्रीयुगल-छवि में निमग्न होकर, उन्हीं का यश वर्णन करते हुये, उन्मत्त फिरने लगे। युगल माधुरी मत्त उन्मत्त--अवस्थामें बहुत दिन व्यतीत होजाने के पश्चात्, श्रीगुरु सेवा में ही समस्त देवों की प्रसन्नता समझ कर—

"प्रभु के ढिग जाय प्रनाम करि पद–पद्मनि की रज लै शिर धारी।
जनु सेवक–धर्म-धरै–तनु को पुर वैठि गयो अति आनंद-कारी॥

शिषअन्तर की अभिलाष लखी निज आनन तें गुरुदेव उचारी,
रहि पास हमार करो टहलें महली निरखो कलकेलि अपारी ।

इस प्रकार श्रीगुरुदेव ललितकिसोरीदेवजी की आज्ञा पाकर, तन, मन से अत्यन्त प्रीति-पूर्वक सेवा में प्रवृत होगये । कुछ-रात्रि शेष रहने पर उनसे प्रथमही उठ कर, नित्य-नैमित्तिक शारिरिक-क्रिया से निवृत करा कर, आसन पर विराजमान कराते, पश्चात् सुमधुर-वाक्य उच्चार करते—"वर विहंग बन बोलन लागे पागे प्रात प्रभाउ । सरस-भावना सिन्धु-मगन-मन तन यमुना अन्हवाउ ॥" इस प्रकार इन्होंने जब श्रीगुरुदेव की तन, मन, वचनादिक से अपार सेवा की तब—

"मन्त्र विबस जिमि देव पतिब्रता जिमि नाह वस ; ललितमोहिनी सेव ताके वस त्यों गुरु भए ॥" श्रीगुरु-शिष्य के साधु-सेवा, भजन, भावादिक कीर्ति को श्रवण कर दिव्य-वपु-धारी महात्मा भी इनके दर्शनार्थ आने लगे । कहते हैं कि—श्रीकबीर एवं श्रीनामदेव प्रभृति परमधाम-प्राप्त संत भी वहाँ आकर, इनके संत-सेवानन्द में सम्मिलित हुये । जब श्रीगुरुदेव निकुञ्ज-धाम को पधारे तो कुछ-काल पर्यन्त इन्होंने प्रगट-रूप में दर्शन किया ।

गोरेलाल का पुजारी, अल्पज्ञता-वस, अमनियाँ और प्रसाद का वर्तन एक स्थान में ही रखता था और किसी-किसी दिन भ्रम से प्रसाद को ही भोग लगा देता था । एक दिन ठाकुरजी ने इनसे यह वृतान्त वर्णन करते हुये, पुजारी को पूजा-विधि से भली प्रकार परिचित करा देने की आज्ञा दी । इन्होंने पुजारी को बुलाकर पूछा तो उसने भूल स्वीकार किया और भविष्य में ऐसी भूल नहीं करने की प्रतिज्ञा की ।

नजमखां नामक मुसलमान ने जब महम्मदशाह के आज्ञा से, भरतपुर के राजा को बहुत दिन लड़ाई के पश्चात् परास्त किया, उस समय मुगल सेना इच्छानुसार लूट-मार करने लगी । उसी लूट-खसोट में 'दीग' का किला लूटते समय एक मुसलमान जमीन खोदने लगा, खोदाई में अन्दर उसे एक घड़ा मिला । वह घड़ा को अपने निवासस्थान पर लेजाकर खोला तो उसमें श्रीराधिकाविहारीजी युगल स्वरूप निकले । दर्शन करते ही उसके हृदय में भक्ति उत्पन्न हुई, सादर स्वच्छ स्थान पर उन्हें विराजमान कराया । रात्रि में उसे स्वप्न हुआ कि-"मुझे वृन्दावन में ललितमोहिनीदेवजी के पास पहुंचा दे ।"

सुबह होते ही वह उन्हें कपड़े में लपेट, कन्धे पर रखकर, श्रीवृन्दाबन आया और टट्टीस्थान में श्रीललितमोहिनीदेवजी के निकट पहुंचा, युगल-प्रतिमा को उनके सन्मुख रख कर, दण्डवत् किया और समस्त वृत्तान्त कहा। ये सुन कर अति प्रसन्न हुए और कुछ धन देकर उसे विदा किये. पश्चात् ठाकुरजी अन्हवा कर विधि-पूर्वक अभिषेक किए गए एवं धूमधाम से उनकी प्रतिष्ठा हुई। उसी समय एक सोनेजू नामक पमार पजाबी ने रसोई दी और श्रीराधिकाविहारीजी का मन्दिर निर्माण करवाया।

इनके निकट बड़े-बड़े अमीर, एवं राज्याधिकारी प्रभृति आकर नत-मस्तक होते थे; किन्तु ये किसीसे कुछ लेने की इच्छा नहीं करते, अहर्निश स्वामी श्रीहरिदासजी और कुंजबिहारी के रंग में रंजित रहते थे।

'चीर चौर चन्दन कपूर चूर चोवा चारु विविध सुगंधनि सों सबको छकावे हैं;
ललित लवंग ऐला मेला देश देशनि के मेवा ले चढ़ावें चाव प्रेम को बढ़ावें हैं।
चांदी अरु कुंदन सो स्वेत पीत होत छिति औरहू अपार उपहार जन ल्यावे हैं;
मोहिनी अनन्त संत सेवा में लगावें चित्त सोहनी कराबें नित पासाना रखावें हैं॥

अनेक पंडित, विज्ञानी, कर्मकाण्डी, राजा और सेठ साहूकारों के घोड़ा हाथी पालकियों की सदा भीड़ रहती थी। यहां तक कि शेख़, सैयद, सुल्तान और बड़े- बड़े फौजी-हाकिम इनकी ख्याति श्रवन कर दर्शनार्थ आते थे और इनके भजन के प्रभाव को देखकर नत-मस्तक होते थे।

एक बार महाराजा रणजीतसिंह भी दर्शनार्थ इनके पास आये और सतसंग-लाभ उठाया। "नाम महाजी-सिन्धिया वृन्दावन बिच आय; श्रीगुपाल लीला करी परम प्रीति दरसाय॥" यहां उन्होंने रासलीला करवाई जिसमें दर्शनार्थ बड़े-बड़े सन्त--महन्त एकत्रित हुये। श्रीललितमोहिनीजी को लाने के लिये स्वयं सिंधिया ही गये। इनको पालकी पर वैठा कर पालकी में आपने कंधा लगाया तब स्वामीजी ने देखकर उनसे कहा-"छोड़ि के पालकी पालकी में चढ़ो प्रेम की लीक हो नीक आगे बढ़ो।" तब इनकी आज्ञानुसार महाजी सिन्धिया भी पालकी में वैठ गये। रास-समारोह में आने पर सुन्दर आसन पर वैठाये गये। वहां रसिकविहारीजी के महन्त श्रीगोवर्द्धनदेवजी को भी एक सर्दार सेवा में भेजकर बुलवाया, सबने मिलकर रास का आनन्द आस्वादन किया और अनिर्वचनीय रसानन्द में निमग्न हुये।

"महान प्रेम सो सुजान कृष्णलीला रुचिर राधिका समेत सब गोपिका बनीठनी;
मृदंग ताल बीन लै प्रवीन ते बजावहीं रसाल वेनु किन्नरी उपंग तान त्यों तनी।
सभाप्रभा अनेकधा विनोद भाँति २ की सुसिन्धियाहि की प्रतीति प्रीति रीति हू घनी;
कृपानिधान मोहिनी निहारि के प्रसन्न भा गिरा गम्भीर उच्चरी खरीमनो सुधासनी।

रासपंचाध्यायी लीला का दर्शन कर समस्त दर्शक अति प्रसन्न हुये। सिन्धिया ने रासविहारी की प्रेम--पूर्वक भेट पूजा की तत्पश्चात् स्वामीजी को सादर स्थान में पहुंचाया। ये सैकड़ों सन्तों की जमात लेकर प्रायः भ्रमण भी किया करते थे अनेक जनता को उपदेशामृत द्वारा कल्याण—मार्ग में प्रवृत किये। इनका विस्तार—पूर्वक चरित्र कवीन्द्र श्रीसहचरिशरणजी द्वारा निर्मित श्रीललितप्रकास नामक ग्रन्थ में है।

टट्टीस्थान श्रीललितकिसोरीदेवजी ने निर्माण किया; किन्तु उन्हें वहां महंताई की चद्दर, जिस प्रकार वैष्णवों में प्रथा है नहीं हुई। श्रीललितमोहिनी देवजी ने टट्टी--स्थान की विशेष उन्नति की और सर्व--प्रथम इन्हें ही स्थान में महंताई की चद्दर मिली और इन्हीं के नाम पर स्थान भी विख्यात हुआ। और अर्द्ध—नासिका से समस्त—नासिका पर्य्यन्त तिलक भी इन्होंने बढ़ाया। जिसके कारण ये वैष्णव निम्बार्क--सम्प्रदायान्तर्गत होते हुये भी "टट्टी स्थान के वैष्णव" के नाम से प्रसिद्ध हैं।

टट्टीस्थान की आचार्य-परम्परा

१— स्वामी श्रीहरिदासजी सं० १५६२ से १६३२ तक ये श्रीनिम्बार्कसम्प्रदायान्तर्गत श्रीआशुधीरदेवजी के शिष्य थे, इन्होंने करुआ, गूदरी इत्यादि प्रचलित की तिलक परिवर्तन नहीं किया।

२—श्रीविट्ठलविपुलदेवजी सं० १६३२ से १६३२ तक

३—श्रीविहारिनिदेवजी सं० १६३२ से १६५६ तक इन्होंने श्रीविहारीजी स्वामी श्रीहरिदासजी द्वारा प्रगट ठाकुर को जगन्नाथ नामक पंजाबी सारस्वत ब्राह्मण को देदिया जो इनका गृहस्थ शिष्य सेवकों में से था।

४—श्रीसरसदेवजी सं० १६५६ से १६८३ तक

५—श्रीनरहरिदेवजी सं० १६८३ से १७४१ तक प्रसिद्ध महाकवि सतसईकार श्रीविहारीलालजी इनके ही शिष्य थे।

६—श्रीरसिकदेवजी सं० १७४१ से १७५८ तक इन्होंने रसिकविहारीजी का मंदिर बनवाया।

७—श्रीललितकिसोरीदेवजी सं०१७५८ से १८२३ तक इन्होंने टट्टी-स्थान बनवाया।

८—श्रीललितमोहिनीदेवजी सं० १८२३ से १८५८ तक इन्होंने टट्टीस्थान में महन्ताई प्राप्त की और अर्द्ध--नासिका से पूर्ण-नासिका पर्य्यन्त तिलक बढ़ाया। श्रीभगवतरसिकजी इन्हीं के शिष्य थे।

९—श्रीचतुरदासजी सं० १८५८ से १८५९ तक

१०—श्रीठाकुरदासजी सं० १८५९ से १८६८ तक 'गुलजारचमन' कार शीतलदासजी इन्हीं के शिष्य थे।

११—श्रीराधिकादासजी सं०१८६८ से १८७८ तक।

१२—श्रीसखीशरणदेवजी १८७८ से १८९४ तक इन्होंने सरस मंजावली और ललितप्रकाश नामक ग्रन्थ निर्माण किया।

१३—श्रीराधाप्रसाददेवजी सं १८९४ से १९४४ तक।

१४—श्रीभगवानदासजी सं० १९४४

१५—श्रीरणछोरदासजी

१६—श्रीराधाचरणदासजी—वर्तमान

[राग—विलावल]

आज समाज सहज मन भायो।
कुँवरिकिसोरी गोरी भोरी निरखि हरषि हँसि कंठ लगायो॥
अपने-अपने मेल मिली सब तान तरंगनि रंग बढ़ायो।
श्रीहरिदासजू रसिकसिरोमनि तन, मन. वचनन हियो सिरायौ॥१॥

[पद]

आज बधाई श्रीवृन्दावन।
कुँजमहल श्रीविहारी विहारिनि केलि करत छिनही छिन॥
श्रीहरिदासी लाड़ लड़ावति इनही को ए हैं अति प्रिय धन।
'श्रीललितमोहिनी' की निज जीवन ए वे ए हैं एक प्रान तन॥२॥

[पद]

आयबो जायबो कहूँ नहिं हरि पोषत मनके भाई।

श्रीहरिदासी रंग महल में कीनी परम बधाई ॥
केलि करत एक रस सदा सखियन मिलि गुन गाई ।
'श्रीललितमोहिनी' यह सुख बिलसत छिन-छिन वलि वलि जाई ॥३

[पद]

बिहारी तेरे नैना रूप भरे ।
निरखि-निरखि प्यारी राधे को अनत न कहूँ टरै ॥
सुख को सार समूह किसोरी उमगि-उमगि अंको भरै ।
'श्रीललितमोहिनी' की निज जीवन उर सों उरज अरे ॥४॥

[पद]

हौंहूँ आई देखन स्याम ।
सुंदर-नैन-बिसाल साँवरो, सब विधि पूरन काम ॥
हा हा करत कितौ अनुरागी प्रानप्रिया सुखधाम ।
'श्रीललितमोहिनी' कौ सुख पूरन विहरैं आठौंजाम ॥५॥

[राग-बसंत]

प्रियालाल खेलत बसंत ।
झाँझ, मुरज, ढफ, बाँसुरी अरु वीना, मुहचंग लसंत ॥
बजत नचत नव-नव गति अद्भुत दोऊ मिलि हुलसंत ।
'ललितमोहिनी' को सुख बाढ्यो पूरन-रस विलसंत ॥६॥

[राग-धनाश्री]

होरी आई रंगभरी खेलत तन सुकुमार ।
बादर लाल गुलालन छाए बरषत धार फुहार ॥
उमगि-उमगि बरषत रँग-भारी छूटत कर पिचकार ।
'ललितमोहिनी' के सुख विहरैं ए उनके वे उनके हार ॥ ७ ॥

[राग-धनाश्री]

प्रान प्रिया सखी ! आज बनी ।
ओढ़ि नीलाम्बर-सारी विहरत प्रेम-पुंज-रस मांहि ठनी ॥
उमगि-उमगि मिलि गौर-स्याम सो औरे ठान ठनी ।
'ललितमोहिनी' लाड़ लड़ावत त्यों-त्यों बरषत प्रेम घनी ॥८ ॥

[राग–धनाश्री]

मत्त भए तन, मन न सम्हार ।
उपजत अति आनंद दुहूँ दिसि ए विनके वे उनके हार ॥
कोटि अनंग मदन–दल डार्यौ तौ लगि सब सुख वार ।
'ललितमोहिनी' के घर आनँद यह सुख सार विहार ॥ ६ ॥

[पद]

जय जय कुंजबिहारिनि प्यारी ।
जय जय कुंजमहल सुखदायक जय जय लालन कुंजबिहारी ॥
जय जय वृन्दाबन रससागर जय जय जमुना सिंधु–सुखारी ।
जय जय 'ललितमोहिनी' धनि–धनि सुखदायक सिरमौर हमारी ॥१०

[दोहा]

धरौ बुरौ धरवौ बुरौ आवै सोई पाव ;
श्रीकुंजविहारीलाल के उमगि–उमगि गुन गाव ॥ १ ॥
कहा त्रिलोकी जस किये कहा त्रिलोकी दान ?
कहा त्रिलोकी बस किए करी न भक्ति निदान ॥ २ ॥
ललित–सरोवर ललित–वन ललना लाल समेत ;
यही कुंज सैय्या सजी श्रीबृन्दावन हेत ॥ ३ ॥
गुरु जिन देखि हरि देखिए तिन्हें भाव सो देखि ;
वे ए, ए वे गुरु एक हैं श्री मुख कही विशेष ॥ ४ ॥
जिकर फिकर सब छांड़ि के ललित केलि गुन गाय ;
वृन्दाबन में परि रहौ नाहिन और उपाय ॥ ५ ॥
वृन्दाबन में परि रहौ देखि बिहारी—रूप ;
तासु बराबर को करे सब भूपन कौ भूप ॥ ६ ॥
हौं डूबन की बहु करौं हरि नहिं डूबन देइ ;
ज्यों ज्यों उभकौं कूप में त्यो त्यों कर गहि लेइ ॥ ७ ॥
नैन बिहारी रूप निरखि रसन बिहारी नाम ;
श्रवन विहारी सुजस सुनि निसिदिन आठौंजाम ॥ ८ ॥
कुंजविहारी भजन करि कुंजविहारी देखि ;
श्रीवृन्दावन बास करि जनम सफल करि लेखि ॥ ९ ॥

गुरु निर्मोही चाहिए शिष्य न छांड़ै नेह;
विलगायो विलगै नहीं एक प्रान द्वै देह ॥ १० ॥
ललित-सरोवर ललित वन ललित लाड़िली रूप;
ललित विराजैं बिपिन में ललित बिहारी भूप ॥ ११ ॥
निर्नय वस्तु अरु धर्म को ए दोऊ सिद्धान्त;
तर्कवाद भई नास सब वेद अंत वेदान्त ॥ १२ ॥
कृपा ने कृपा करी गयो मूड़ कौ भार;
श्रीवृन्दावन बसि रहों निरखौं नित्यबिहार ॥ १३ ॥
साधु साधु सब एक हैं ठाकुर ठाकुर एक;
संतन सों जो हित करै सोई जान विवेक ॥ १४ ॥
अबलियो अबलियो अबलियो ऐसी जिय जो सोय;
बृन्दावन के पेड़हू पल मत बिछुरौ कोय ॥ १५ ॥
भजन करो भोजन करौ गावो तान तरंग;
निसिदिन लौ लागी रहै रसिकविहारी संग ॥ १६ ॥
ना काहू सों रूसनो ना काहू सो रंग;
ललितमोहिनीदास की अद्भुत केलि अभंग ॥ १७ ॥
निंदा करै सो धोबी कहिए स्तुति करै सो भाट;
अस्तुति निंदा से अलग सोई भक्त निराट ॥ १८ ॥

॥ इति ॥

महाकवि श्रीकिशोरदासजी

छप्पै

श्रीनिजमतसिद्धांत नाम काव्यहि निर्माए;
गुप्त प्रगट आचार्य सुयश सब बहुविधि गाए।
श्रीपीतांबरदेव शरण सब शक्ति प्रदाता;
पाये कृपा अपार प्रगट नहिं कोऊ पाता।
दासकिसोर शसक्त अति काव्यकार कृति गान प्रति;
वृहद् ऐतिहासिक ग्रन्थ निर्माण इन बिन काहु गति।

महाकवि श्रीकिशोरदासजी की ही कृपा से टट्टीस्थानाधिपति आचार्य महानुभावों एवं तदानुयायी संत महंतों के जीवन-चरित्र मानव-समाज के समक्ष प्रगट हो सके। ये श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायांतर्गत अपने ढंग में रीति रिवाज, विचार-धारा काव्यशैली, आचार्य-प्रेम, छन्द-रचना, आविष्कार-कार्य में सर्वोपरि हो गये हैं। सम्प्रदायिकों का मत, प्राचीन काव्य एवं वाणीकर्ताओं के विचार, आचार्यपादों के चरित्र ऐतिहासिक रीति से खोज कर लिखने में कभी नहीं गया। इन्होंने सबसे भिन्न उचित एवं कर्तव्य रीति की गति ग्रहण की। आचार्य-चरित्र-मूल को सुदृढ़ कर दी। इनका हृदय धार्मिक-क्रांतिमय था। इनकी रचना में सम्प्रदाय समुन्नत के लिये प्रबल विचार-धारा प्रवाहित है, उमंग है, उल्लास है, और आचार्य-यश-विलीन के लिये शोक है। टट्टीस्थानीय निम्बार्कीय वैष्णव इनकी अमूल्य-कृति को ग्रहण कर सदैव ऋणी रहेंगे। यदि इनके समान दो-चार और उत्साही हो जाते तो आचार्य-यश-प्रकाश चरमोत्कृष्टता को प्राप्त कर साम्प्रदायिक-जगत को प्रकाशमय कर देते; किंतु शोक के साथ कहना पड़ता है कि 'इनके समान तो यही हुए।'

इनके द्वारा विरचित निजमतसिद्धांत एक बृहद् महाकाव्य है, इसकी रचना दोहे चौपाइयों में हुई है, और स्थानानुरूप बिच-बिच में विविध छंद भी वर्णित हैं। यह ग्रन्थ केवलमात्र आचार्य चरित्र ही नहीं है—यह भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, उपदेश नीति प्रभृति विषयों पर कथित श्रेयस्कर रत्नराशि का भण्डार है। इनकी रचना में पिङ्गल-विचार, अलंकारादि-व्यवहार, नवरसादि-रीति, ओज माधुर्यादि गुणों से गठित है। किसी प्रकार की कमी नहीं, इसकी रचनाशैली गोस्वामी तुलसीदासजी कृत रामायण के ढंग पर हुई है। इस ग्रन्थ की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ा है—जो विस्तार भय से यहां हो नहीं सकता।

ये श्री पीताम्बरदेवीजी के शिष्य थे। इनका जन्म जयपुर राज्य की प्राचीन राजधानी आमेर में हुआ था। माता का नाम खेमा और पिता का नाम घासीराम था। ये सारस्वत वंशावतंश द्विजवर थे। जब श्रीपीताम्बरदेवजी सर्वप्रथम सम्वत् १८८३में भ्रमणार्थ जयपुर गए तो शिष्य भी सर्वप्रथम वहीं से करना प्रारम्भ किया। उसी समय बाल्यावस्था में ही ये भी शिष्य हो गये। यह प्रसंग इन्होंने स्वनिर्मित निजमतसिद्धान्त में लिखा है—'सप्तादश इक्यानवे संवतसर सुख दीन; वैसाखी-तृतीया-शुकल मोहि शिष्य करि लीन।' इनकी माता वैराग्य-युक्त परम विदुषी स्त्री थीं। वे इनको प्राप्त,गुरूमन्त्र-दीक्षा, शिक्षादिकों को स्मरण कराती रही। जब पिता ने विवाह करने की आग्रह की तो ये छिप कर वृन्दावन चले गये। इनके पिता वृन्दावन में विद्यमान रहने का पता पाकर वहीं जा पहुँचे। पिता का आगमन सुनकर ये उस स्थान को परित्याग कर यमुनापुलिन में चले गये। पिता भी खोजते हुये वहीं पहुँचे। पिता ने वर्णाश्रम और गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता की प्रशंसा करते हुये घर वापिस चलने के लिये आग्रह की, ये पिता के आग्रह से तंग आकर शास्त्रार्थ करने पर उद्यत होगये, और निवृति-प्रवृति मार्ग पर उग्र रूप से विवाद हुये। अन्त में पिता को पराजित होना पड़ा। तब ये पीताम्बरदेवजी के निकट गये और प्रार्थना की कि आप इसे मेरे संग कर दो, यदि इसके हृदय में पूर्ण वैराग्य होगा तो पुनः वापिस आजायगा, नहीं तो आपके निकट रहने से लाभ ही क्या? श्रीपीताम्बरदेवजी ने इन्हें पिता के संग जाने की आज्ञा देदी। जयपुर में जाकर पिता ने विविधभाँति समझाया-बुझाया किन्तु उनके वाक्यों पर इन्हें किंचित् भी दृढ़ता नहीं हुई। ये लिखते हैं—'सतगुरू चरन-प्रताप-बल मो उर लग्यो न लेश; ज्यों नृपपत्नी नीच गृह करत न कबहुँ प्रवेश।' जब पिता को पूर्ण दृढ़ता पर विश्वास होगया तो उन्होंने वृन्दावन-वास एवं बिरक्त होकर भजन करने के लिये आज्ञा दे दी; उसी दिवश अकस्मात् श्रीपीताम्बरदेवजी भी वहां जा पहुँचे, पिता ने सदा के लिए लाकर इनके चरनों में भेट कर दी। उन्हीं दिवश श्रीगुरु-आज्ञा से तीर्थ-भ्रमण करने के लिये प्रस्थान होगये। लोहार्गल, पुष्कर होते हुये द्वारका पहुँचे। और भी तद्देशीय तीर्थों के दर्शन कर, पंजाब चले गये। वहां भी उस देश के समस्त तीर्थों में भ्रमण कर दर्शन की। पश्चात् मार्ग के अनेक तीर्थों में होते हुये श्रीवृन्दावन में आगये। इस यात्रा में इन्हें अनेक प्रकार के चमत्कार और अनुभव हुए। कई स्थानों पर तो ये प्राणांत होते-होते मुक्त हुए। यहां इन्हें श्रीरसिकविहारीजी की सेवा पूजा करने के लिये गुरुदेव की आज्ञा

हुई। इसी कालान्तर में इन्होंने "निजमतसिद्धांत" निर्माण किया। इसमें इन्होंने श्रीनिम्बार्काचार्य्य से लेकर द्वादश-आचार्यों का समय निरूपण किया है और देवाचार्य्य से लेकर स्वामी श्रीहरिदासजी तक ४१ आचार्यदेव का अपना परम्परा एवं समय भी भिन्न ही निरूपण किया है। टट्टी-स्थानीय-वैष्णवों की वास्तविक गुरु-परम्परा स्वामी श्रीहरिदासजी से ही सर्वमान्य और प्रसिद्ध है। इनके द्वारा निर्मित 'निजमत--सिद्धांत' सम्वत् १९७२ में प्रकाशित होकर टट्टी स्थान से अमूल्य वितरण हुआ था। इसके अलावा इनके द्वारा निर्मित सवैया पचीसी और फुटकर पद भी पाये जाते हैं। इन्होंने अपनी समस्त काव्यकाल निजमत-सिद्धांत के निर्माण में ही व्यतीत की है; इसलिये इन्होंने रस-बिहार सम्बन्धी पद बहुत ही थोड़ा कहा। सवैया-पचीसी और निजमत सिद्धांत में से कुछ दोहे चौपाई यहां उद्धृत किये जाते हैं।

दोहा—नित्यबिहार अपार रस श्रीहरिदास प्रभाव ;
रसिक संग करि ना लखो बृथा बिताई आव ॥

[सवैया--पचीसी]

पंकज सो मुख-मंजु माहा-मृदु-बैन बदे श्रुति के अनुसारी,
अंग सुठौन अनंग प्रभा दृग साखि सभासद आनँदकारी ;
सुंदर बाम रमै रति ज्यों हित कोटि पतिब्रत ते अधिकारी,
ऐसे भए तौ कहा हरिदास लखे नहिं नित्यकिशोर बिहारी ॥१॥
द्रव्य कुबेर गरीय सुमेर से सिंधु गँभीर क्षमी क्षित भारी,
पोन प्रचार सु चारु अनंग से सिंह बली हलमूसलधारी ;
निर्मल नीर से धीर महामति आरतिवन्तन के दुख टारी। ऐसे० ॥२॥
सुर सनीचर बीर बृतासुर धीर धरम से क्षीर-अहारी,
कीर कला बलवान बणासुर गंधर्व गान बिमान-प्रचारी ;
दान दधीच अमान यथा मन ध्यान सदा शिवकी समतारी। ऐसे० ॥३
बंश महामुनि हंस दिशा तिहुँ लोक प्रशंसित संश्रुत टारी,
बैद धनन्तर मन्त्रृत बेद प्रतन्त्रृत नेक न शंक बिडारी ;
कष्ट न पुष्ट सुदृष्ट करें जित होत अभिष्टन के अधिकारी। ऐसे० ॥४॥
नागर नाहु उजागर आरय सागर कोटि-कला-व्रत-धारी,
पंडित पार न मुंडित मौन मनी मन त्याग भए ब्रह्मचारी ;

तजे धन, धाम अकाम अनामै पौन समान भजें नर नारी। ऐसे० ॥५॥
सर्प शरीर कुरंग से नैननि कोकिल बैन कलानिधि नारी,
रोग न सोग संयोग सदा हद भोग बिभौ सत-इन्द्र अपारी;
अम्मृत पान बिमान रमैं दिन देव नरेशन में प्रणपारी। ऐसे० ॥६॥
मुनि कें उपदेश सुदेश भए यों बेष दिशा त्यों आसन मारी,
शीश जटा जुग कान फटा नख रोम अखंडित शंभु अकारी;
बाँह उठाय बिभूति रमाय समाधि लगाय सुपौन प्रचारी। ऐसे० ॥७॥
लुंचित-केश कलेश कलेवर काल करम्म किए अधिकारी,
रच्छक जीव अनिच्छक ईश्वर बासर जोजन अल्प-छुधारी;
इन्द्रिन जीत अतीत पराहद धाम सकामन तें मति टारी। ऐसे० ॥८॥
भर्म भरी बहु बात बनावत बैन बखानत ज्यों मन तारी,
लेत सभासद जीति अनीतिन नम्र बिनीति जती सत-चारी;
सात्विक-धर्म अकर्म न भावत आरय चाल चलैं बिधि-सारी। ऐसे० ॥६
मंडित धूर कमंडल खंडित पंडित पार लहै न अपारी,
करें निर्धार सु सार असार सँभार शरीर न धीरजधारी;
बृत्ति अकाश न आस न त्रास तजे घरबार महाअविकारी। ऐसे०॥१०
तजे कुल-धर्म सुकर्म भरे मृगचर्म चलें भू जीव निहारी,
पर्म प्रकाश उदास रहैं न कहैं मुख बैन चहैं न उदारी;
दृष्टि अभिष्ट अरिष्ट न मानत आनत पौन अकाश मझारी।ऐसे०॥११
दंड धरे कर माहिं प्रचंड सुबाण कृशान समान सँवारी,
मानत आन अमान नरेन्द्र महा दनु देव भरे कर भारी;
मत्त मतंग करिन्द्र तुरंग रहैं सुख संग अभंग सभारी। ऐसे० ॥१२॥
पर्म पुनीत महा कुल पाय लड़ाय लिए सुर मात पितारी,
स्मृत, बेद, पुराण पढ़े करि यज्ञ चढ़े वढ़ि इन्द्र सभारी;
आरति अम्मृत पान बिमान रमैं रस बाम सकाम अपारी।ऐसे०॥१३
सूरज कोटि प्रकाश से व्यापक श्रेय महा पुनि भारी,
पौन से पर्म बली बलि से दृढ़ अग्नि असंग अनंग प्रचारी;
नीरसे नम्र अनम्र सुमेरसे लक्ष्यसे लक्ष्य बिलक्षण धारी। ऐसे० ॥१४
त्रृधा-गुणवान समान सदा शिव मोह से मोही लोभ अहारी,

क्रोध से क्रूर कृपानिधि सन्त से साहस शूर से नेह सुखारी ;
त्रास से आतुर आस से धीर सरस्वति से सुठि बैन मझारी ।ऐसे०॥१५
आसन मारि उसास चढ़ावत बेधत छिद्र सुमेर प्रचारी,
नासिका दृष्टि अरिष्ट तजे मन प्रीति पपील गही गति न्यारी ;
पंकज अधं ते उर्ध किये मुख जीव लख्यौ निज रूप सुखारी ।ऐसे०॥१६
संयम नेम निषेद निरन्तर बेधत चक्र गही गति भारी,
सूरय, चन्द्र सुतन्त्र किए सुइड़ा, पिंगुला, सुषमना न टारी,
त्रिकुटी त्रैधार सुधारस भोजन मौज लखी दृग सुन्दर सारी ।ऐसे०॥१७
तमोगुण जीत अतीत भए रज की मन तें सब बात निवारी,
सात्विक ते भए सिद्ध सबै तिनकूं तजि निर्गुण की गति धारी ;
मायक दृष्टि अदृष्टि करी उतकृष्ट कृपा चित माहिं बिचारी ।ऐसे०॥१८
बक्ता शुक, शेष, महेश्वर से ज्यों सूत अभूत महाव्रतधारी,
श्रोता ऋषिराज परिच्छित से त्यौं नैमिष मध्य सबै द्विज भारी ;
नारद पर्बतसे उपदेशक गरुड़ समान चलें अनुसारी । ऐसे० ॥१९॥
प्राण से पोषक रोचक अन्न से द्रब्य से दीरघ शोभित भारी,
सोषक कुम्भज से शत सिन्धु अभ्यन्तर की गति लेत बिचारी ;
शुक्र कबीश्वर ब्यास फणी अणिमादिक सिद्धि प्रसिद्धि बिडारी ।ऐसे०॥
दिती सुत शुम्भ निशुम्भ जलन्धर से रिपु मारि लिये ज्यों कारी.
हते त्रिपुरारि तिहूँ पुर शृष्टि रची ब्रह्मा सत लोक मझारी ;
प्रियव्रत ज्यों एकादश अर्ब करयौ बड़ राज चढ़े रथ भारी ।ऐसे०॥२१
बिप्र शरीर से शुद्ध–महा–अबिरुद्ध यतीवत बात बिचारी,
युद्ध नरेश से नीति महा मन जीति लियो लघु-रीति न धारी ;
बैश्य बणिज्य गऊगण चारत धारत द्रव्य सबै प्रति पारी ।ऐसे०॥२२
भर्म न सर्म अकर्म तजे सब स्वान समान भजे नर नारी,
राग महा अनुराग कृया बिधि और निषेद दये मन जारी ;
बाल यती रति नाहिं त्रिया तन मान भिमान न आन कथारी ।ऐसे०॥२३
चन्द्र से शीतल चन्दन गन्ध प्रबन्ध नरेश से अन्ध बिचारी,
रक्षक भीषम द्रोण से दक्ष हठी दुरयोधन से अहंकारी ;
सत्य युधिष्ठिर भीम बली अर्जुन युध मध्य प्रसिद्ध प्रभारी ।ऐसे०॥२४

तीरथराज प्रयाग से पावन धार त्रिधा तम पातकटारी,
पुष्कर से गुरु रूप गराय सदा उत्कर्ष सबै भूत भारी ;
गया कुरुक्षेतर से जु कृतज्ञ बढ़ै क्रम कोटि अनन्त अपारी ।ऐसे०॥२५

दोहा—यह पचीस अद्भुत कबित, सरस सवैया सार ।
रसिक अनन्य बिवेक बल, करियो बिमल बिचार ॥

[दण्डक छन्द ॥ सर्वेश्वर—स्वरूप]

देव सच्चिदानन्द घन अगुण अद्वैत सत् ब्रह्मसाकार सुठि त्रिविधरूपम्
नित्य निर्जन्म निर्वाण निजमूल निरीह निर्मल प्रबल पुंस भूपम् ॥१॥
देव अक्षरातीत् आगम निगम अगम दुर्गम बदत नेति नव निराधारम्
आत्माराम विश्राम सुखधामवर बाम सहचरि रुचिर निर्विकारम् ॥२॥
देवप्रेम अहलाद रस स्वाद कामादिराति त्यक्त आसक्ति उज्वलविलासम्
भक्ति हित व्यक्त अनुरक्त वृन्दाविपिन भवन रति मार मद दवन हासम्
देव अखिल ऐश्वर्य अनुलेप आरतहरण विश्वपोषणभरण करणलीला
रसिक रंजन रवन चलन मृगपति ठवन हंस गजगति गवनकवन क्रीला
देव अमल कल कुञ्जदलमंजु कुसुमनितल्प कल्पकोटिकअल्पसमप्रभावम्
सकल सम्पति सहित चहत दम्पति ॥रस सुख बरषि तनु परश पावम्
देव बदल तनुमनउरझि सुरझि सकत न तनक कनक मर्कतिवनसुअधीरम्
लखत मुख रुख दृगन मन भवन रहत इम मीन सहचरियुगलप्रेमनीरम्
देव तुम परमपुरुष संग प्रिया आनन्दनी सहचरी सुघरवर तें प्रवीनम्
मूल त्रय डार विस्तार विन पार निर्धार कृतसार श्रुति भृत्य पीनम् ॥७॥
देव रहत चितचाव तुदभावविन दाव नहिंविदितभवनाव गुरुकर्णधारम्
तासु बल टलत कलि कलुष कोटिकअवल दासकैशोर करि जगतपारम्

[राग-केदारो । दीपकबिहार]

निरखि दम्पति परम प्रेम की यामिनी ।
सकल सम्पति भई उदित अह्लाद मणिदीप रचना करत कुंज वन कामिनी ॥
चलतरस सरित नवनलिन अति भ्रमत तरुवलित बल्ली कुसुमफलित अभिरामिनी।
तरुणतनु तूल बल तैल आतुरअमित अनल मनमदन लख बदन मिलि भामिमी॥
रवन मनभवन मिलि निरख हरषि हरत चली मिली रसरत्त मनोभव गजगामिनी।
राग रंगिनि रँगो दरशि दृग जगमगी दासकैशोर सब सुयश सुनि स्वामिनी ॥

[श्रीकृष्ण-लीला । दण्डक राग-पंचम]

देव जानि मुहि भृत्य नवप्रत्य तै कृत्य करि चरण आसृत्य रहु सुखद दिष्टा ।
धृत्य रसनृत्य मनहर्त्य सुखभर्त्य नित वृत्य दे राधिका चरण इष्टा ॥
देव नित्य नवरूप नृजन्म लावण्य गुण लहत क्यों पार अतिशय अपारं ।
कृष्ण अति धृष्ण नित प्रसन्न युत रष्ण गुण तृष्ण अनुकूल नमि लहत सारं ॥
देव तासु रत धर्म आसक्त कृत कौतुकी सत्व सुध धरत अवतार लीला ।
मच्छ कच्छप बराह नरसिंह द्विज द्वोय श्रीराम बलदेव क्रीला ॥
देव बुद्धि कल्कि व्यास पृथु हरि हंस मन्वंतरं यज्ञ ऋषिभं स्वरूपं ।
अश्व ध्रुव तार दीनों धन्वंतर सु नारायणं दत्त कपिलं अनूपं ॥
देव सनक सनकादि भव आदि आराधि अवतार आकृति सुठि कृष्णधारी ।
कुंज सुखपुंज नवकंजवत मंजु सहचरि सुघर रमत भामिनि बिहारी ॥
देव अखिलआनन्द हद प्रिया अह्लादिनी प्रेमप्रण प्रथित प्रीतमप्रशंसी ।
सत्य चिच्छक्ति सब व्यक्त अव्यक्त रति आदि आरतहरण मानि अंसी ॥
देव श्याम सबवाम वनधाम अभिराम मुख निरखि हर्षत तृषित कर्षशोभा ।
धरत कर अंस कलहंसवत केलि कल युगल मिलि अचल झलमलत गोभा ॥
देव कहत तब बात विधि गात सकुचात मति भात रसघात शिर नात श्याम ।
गुरुचरण शरण तजि वर्ण आसर्म नमि दासकैशोर तव यश सकामं ॥

[राग-केदारो]

वदत वर वैन कर सैन दीपक निरषि ।
नटत पट ओट करि झटकि कर पिय फिरि
वरषि रस कहत हरि मैन महत परषि ॥
परम सुकुमारि रिझवारि जिन डारि कर धारि
मनुहारि भरि वारि निजजन करषि ।
दासकैशोर मिलि चलि अली दीप वन
सुनत सहचरि वचन रचन रचि हिय हरषि ॥

[प्रियापद-चिन्ह । चौपाई]

बल्ली वलय पुष्पध्वजधरनी ; पद्म ऊर्ध्व रेखा मनहरनी ।
अंकुश अर्द्ध इंदुयव सोहैं ; बाम मनुज स्यन्दन मन मोहैं ।
शक्ति गदा कुण्डल कलवेदी ; पर्वत मत्स शंख रसभेदी ।

सो पद सखी सुखद सहरावै ; शत सहस्र लक्ष्मी नहिं पावै ।
सब ऋतु रहत सुखद कर जोरें ; नव नव भाव महारस बोरें ।
कबहुँक पावसऋतु रसछावै ; कबहुँक शरद रास उपजावै ।
कबहुँक हेम निरखि पियप्यारी ; कबहुँक शिशिर केलि विस्तारी ।
कबहुँक विपिन बसन्त सुहावै ; कबहुँक ग्रीषमऋतु छविछावै ।
दोहा--कबहुँक मानिनि ह्वै प्रिया प्रीतम सखी मनाय ;
रूठत रसवूठत अमित घूटत हंसि सनराय ।
कबहुँक रमकि हिंडोरे भूलें ; कबहुँक फूलडोल चढ़ि फूलें ।
कबहुँक चन्दनचरचित अंगा ; कबहुँक जलमधिरमत उतंगा ।
कबहुँक खेलत अद्भुत होरी ; कबहुँक बात कहत अतिभोरी ।
कबहुँक दीपदान छवि छावै ; करि प्रकाश प्रिय बदन दिखावै ।
कबहुँक बांधत युगकर राखी ; कभूं पवित्रा मन अभिलाखी ।
कबहुँक प्रात समय मन भावै ; कबहुँक दिवस पहर चढ़ि आवै ।
कबहुँक दिवसकालमध्याना ; कबहुँक त्रितिय पहर विधि जाना ।
कबहुँक सायंकल सुहावै ; कबहुँक प्रेम पहर निशि जावै ।
दोहा--अर्द्ध रैन त्रयपहर निशि पुनि प्रभात आनन्द ;
सब सहचरि सम्पति बनत रमत युगल रसकन्द ।
प्रिया रूप सब सुख कौ मूला ; प्रीतम रहत परम अनुकूला ।
ललिता आदि सखी बनराई ; दम्पति हित की करत उपाई ।
विचरत युगल विपिनकीअवनी ; नगमणिजटित महामृदुकवनी ।
त्रय प्रतिबिम्ब परत तामांही ; सहचरि प्रिया लाल गलबांही ।
ता आवरण चहुँदिशि सिंधा ; ब्रह्म शेष अद्भुत रस बंधा ।
सो आनन्द समुद्र अपारा ; कोटि रसिकजन करत विचारा ।
युग प्रतिबिम्ब सिंधु मधि झलकै ; तातैं विन्दु परत तब छलकै ।
ता समुद्र चहुँ दिश आवरणा ; श्रीगोविन्द तहाँ मनहरणा ।
दोहा—वन-वीथिन गिरि सरित सर नन्दराय वृषभान ;
कीरति यश मति धेनु धन , गोपी गोप प्रधान ।

———

श्रीभगवतरसिकजी

* छप्पै *

श्रीस्वामीहरिदास रसिक--नृप को जो मारग।
ताहि धारि नित कुंज-केलि करि भो भव मारग॥
जग वैभव सुख मोरि कियो करवा सों नातो।
स्यामा-स्याम लड़ाइ फिरै ब्रज--वीथिन मातो॥
विरचे अनन्य--निश्चय--रहस, अष्टयाम पद सामयिक।
श्रीललितमोहिनीदास के कृपापात्र भगवतरसिक॥

—श्रीवियोगीहरि

श्रीभगवतरसिकजी का जन्म सम्वत् १७६५ के लगभग है। इनका जन्मस्थान, माता पिता का नाम एवं वर्ण आदि आवश्यकीय विषय, स्थानीय किसी ग्रंन्थमें उल्लिखित नहीं हैं। टट्टीस्थान के वृद्ध महात्माओं के यहां अनुसन्धान करने पर भी अभाग्य-वश कुछ ज्ञातव्य बातें उपलब्ध नहीं होसकीं। श्रीसहचरिशरणजी ने श्रीललितमोहिनीदेवजी के अनेक शिष्यों का 'ललितप्रकाश' में वर्णन किया हैं; किन्तु श्रीभगवतरसिकजी का नाम भी नहीं आया है।

ये श्रीललितमोहिनीदासजी के शिष्य थे जो सम्वत् १८२३ से १८५८ तक टट्टीस्थान की गद्दी पर विराजमान रहे। इनका उत्सव-समय स्पष्ट करते हुए श्रीसहचरिशरणजी लिखते हैं—

"ललितमोहनी प्रभामोहनी आश्विन सुदि दशमी को।
कियोप्रकाश सरद जनु चन्द्रम बर्षायो अमीको॥
सम्वत सत्रह सौ सु असी कौ अति प्रमोद को दानी।
शरद–माघ–वदि इकदशमीको सबहीने यह जानी॥
फागुन–वदि–नौमी को प्रमुदित रंग महल को गमने।
वर्ष अठारह—सौ—अट्ठावन निरखत राधारमने।"

ये बड़े ही निस्पृह, त्यागी, परम्परा-प्राप्त स्वरूपानुकूल विरक्त और अहर्निश भजन मेंही समय व्यतीत करने वाले महात्मा थे। यहां तक कि समस्त समय भजन ध्यान में ही व्यतीतार्थ टट्टी–स्थान का अधिकार भी नहीं

लिया और सदा भजन ध्यान की संलग्नता में ही मस्त रहे। ये काव्य-कला के पूर्ण-ज्ञाता थे; किन्तु अहर्निश भजन में लगे रहने के कारण ही कुल १२५ पद, छप्पै, कवित्त, ८३ कुण्डलिया, ५२ दोहे और एक ध्यान-मंजरी की ही रचना करके गीतगोविन्दकारवत नाम पाया। इन्होंने शृंगार-वर्णन के सिवाय वैराग्य और सिद्धान्त का भी विशद् वर्णन किया है। इनकी एक-एक कुंडलिया अपूर्व हैं और वे अनेक २ भावों से विभूषित हैं। इनकी कविता निष्पक्षपात, सच्चात्याग, प्रत्यक्षानुभूति, अनन्यता और ललित भावों से ओत प्रोत हैं। इनके द्वारा विरचित 'अनन्यनिश्चयात्मक ग्रंथ' टट्टी-स्थान के भूत-पूर्व महन्त श्रीभगवानदासजी, सेवक लाला केदारनाथ वैश्य मुहल्ला गणेशगंज लखनऊ द्वारा सम्वत् १९७१ में छपवाकर वितरण करवाये थे। जिसमें श्रीसहचरिशरणजी कृत सरस मंझावली और रसखान के सवैये भी सम्मिलित हैं। इनकी वाणी में से कुछ दिये जाते हैं।

[छप्पै]

जहाँ रसस्वादी मिलैतहाँसन्मान न होई: जहां होइसन्मान तहांमन मिलै न कोई।
मन मिलाप तहं होइ जहां इष्टता न पावै: जहांइष्टता मिलै तहां दारिद्र सतावै॥
जेतिक हरि के धाम तहं काम. क्रोध क्रीड़ा करैं।
'भगवत' यहि कलि काल में, कहो रसिक कहँ निस्तरैं॥१॥

[राग सारंग]

जगत में पैसन ही की माँड़।
पैसन विना गुरू को चेला खसमें छांडै राँड़॥
जप, तप, योग, विराग, ज्ञानकी पैसन मारी गाँड़।
धीरज, धर्म, विवेक, शौचता दई पंडितन छाड़॥
सन्त-महन्त गाम के आमिल करत प्रजा को दाँड़।
'भगवतरसिक'संग बिन सबकी कीन्ही कलियुग भाँड़॥ २॥

[पद]

वेषधारी हरि के उर सालै।
लोभी, दम्भी, कपटी से सिस्नोदर को पालै॥
गुरू भए घर घर में डोलै नाम धनी को वेंचै।
परमारथ स्वप्ने नहिं जानै पैसनही को खैंचै॥

कबहुँक वक्ता ह्वै बन बैठें कथा भागवत गावें।
अर्थ अनर्थ कछू नहिं भाषैं पैसन ही को धावें॥
कबहुँक हरि-मन्दिर को सेवैं करैं निरन्तर बासा।
भाव, भक्ति को लेश न जानें पैसन ही की आसा॥
नाचैं, गावें, चित्र बनावें करैं काव्य चटकीली।
सांचविना हरि हाथ न आवै सब रहनी है ढीली॥
बिन विवेक वैराग, भक्ति बिन सत्य न एकौ मानौ।
'भगवत' विमुख कपट चतुराई सो पाखंडै जानौ॥ ३॥

[पद]

लोभ है सर्व पाप को मूल।
जैसे फल पीछे को लागै पहिले लागै फूल॥
अपने सुत के काज केकयी दियौ राम बनवास।
भर्ता मरो भरत दुख पायौ सह्यौ जगत उपहास।
वासुदेव तजि अर्क उपासे सत्राजित मनि लीनी।
बन्धु सहितभयौ निधन आपुनौ निन्दा सबही कीनी॥
'भगवतरसिक' संग जो चाहै प्रथमें लोभै त्यागै।
देह, गेह, सुत, संम्पति,दारा सब हरि सों अनुरागे॥ ४॥

[पद]

साँचे प्रिय हरि के ए प्रानी।
लोभ रहित छल रहित दयानिधि सबही के सुखदानी॥
निस्प्रेही गुरु-भजन-परायन सो सिख पार उतारै।
ज्यों नारदऋषि व्यास उबारै बूड़त भव-जल धारै॥
श्रीशुकदेव भागवत गाथा पारीछितै सुनायौ।
सात दिवस में कलिमल खोयौ हरि को वेगि मिलायो॥
पूजा करि श्रुतिदेव-ब्राह्मण वासुदेव बस कीने।
चक्षु-द्वार ह्वै हृदय लै आयो बहुरि जान नहिं दीने॥
नाचि गाइ गोपिन वस कीन्हे नागर नंदकिसोर।
लोक, वेद, कुल-कानि न मानी डारी ज्यों तृन तोर॥
अनिरुध कुंवर कृष्ण के नाती चित्रा चित्र बनायो।

तादृश भई तासुमय ऊषा निश्चय निज-पद पायो ॥
कविता करि जयदेव कवीश्वर कियो गीतगोविंद ।
ताकी साखि प्रगट सब जग में ज्यों राकापति इंद ॥
'भगवतरसिक' साधु की संगति जो कदाचि बनि आवै ।
जीवनमुक्त होइ तात्तण में फेरि न भव-जल आवै ॥ ५ ॥

[पद]

इतने गुन जामें सो संत ।
"श्रीभागवत मध्य जस गावत श्रीमुख कमलाकंत ॥
हरि को भजन, साधु की सेवा, सर्व-भूत पर दाया ।
हिंसा, लोभ, दंभ छल त्यागै, विष सम देखै माया ॥
सहनसील; आसय उदार अति, धीरज सहित विवेकी ।
सत्य-बचन सबको सुखदायक, गहि अनन्य-व्रत एकी ॥
इन्द्रीजीत, अभिमान न जाके करै जगत को पावन ।
'भगवतरसिक' तासु की संगति तीनहु ताप नसावन ॥" ॥६॥

[छप्पै]

तात रिषभ सो होइ मातमंदालस मानो; पुत्र कपिल सोमिलै मित्रप्रह्लादहिजानो
भ्राता विदुरदयाल योषिता द्रुपददुलारी; गुरु नारद सोमिलै अकिंचन परउपकारी
भर्ता नृप अंबरीष सो राजा प्रथु सो जो मिलै ।
'भगवत' भवनिधि उद्धरै चिदानंद-रस में भिलै ॥ ७ ॥

[राग--काफी]

बलि जैहौं रसिकाचारज !
नितविहार उद्धार कियो जिन मथि निज हृदय-सिंधुवर वारज ॥
भ्रम, तम, श्रम सब हरे हमारे कर गहि सकल सम्हारे कारज ।
'भगवतरसिक' प्रशंसित कीने स्यामा-स्याम सहायक आरज ॥८॥

[राग काफी]

जावक जुत जुग चरन लली के ।
अद्भुत अमल अनूप दिवाकर मोहन-मानस-कंजकली के ॥
मंजुल, मृदुल, मनोहरसुखनिधि सुभग सिंगार निकुंजगली के ।
सुरतरु कामधेनु चिंतामनि 'भगवतरसिक' अनन्य अली के ॥ ९॥

[राग–गौरी]

नमो–नमो वृन्दाबनचंद

नित्य, अनंत, अनादि एकरस पिय प्यारी विहरत स्वच्छंद ॥

सत, चित, आनँद–रूप–मय खग, मृग, द्रुम, वेलीवर वृन्द ।

'भगवतरसिक' निरंतर सेवत मधुप भए पीवत मकरंद ॥१०॥

[राग--इमन]

जय जय रसिक रवनी रवन ।

रूप, गुन, लावन्य, प्रभुता प्रेम–पूरन–भवन ।

विपति जन की भानवे को तुम बिना कहु कवन ?

हरहु मन की मलीनता व्यापै न माया–पवन ॥

विषय–रस–इन्द्री–अजीरन अति करावहु बवन ।

खोलिए हिय के नयन दरसै सुखद वन अवन ॥

चतुरचिंतामनि दयानिधि दुसह दारिद–दवन ।

मेटिए 'भगवत' व्यथा हँसि भेंटिए तजि मवन ॥ ११ ॥

[राग--आसावरी]

जयति नवनागरी रूपगुनआगरी सर्वसुखसागरी कुँवरि राधा ।

जयति हरिभामिनी स्यामघनदामिनी केलिकलकामिनी छविअगाधा ॥

जयति मनमोहनी करौ दृगवोहनी दरस दै सोहनी हरौ बाधा ।

जयति रसमूररी सुरभिसुरभूररी 'भगवतरसिक' प्रान साधा ॥ १२ ॥

[राग–आसावरी]

मेरी महारानी श्रीराधारानी ।

जा के बल में सब सों तोरी लोक, वेद, कुलकानी ॥

प्रानजीवनधन लालविहारी को वारि पियत नित पानी ।

'भगवतरसिक' सहायक सब दिन सर्वोपरि सुखदानी ॥ १३ ॥

[कबित्त]

मोतिनसँभारी माँग सोहत सुहागभरी मोहतविहारी मनमधुप पर्योफंद,
दीपतिउज्यारी तैसे नीलपटझीनीसारी मेचककचकारी चंद्रिकालसैअमंद;
मृगमदवेंदीभाल रुचिकैबनाई बाल कजरारे नैन ज्यों खंजन नाचैसुछंद,
'भगवत'चकोरनैन देखिदेखिपावैचैन प्यारीतेरोआनन सहसकला कोचंद

[पद]

लखी जिन लाल की मुसक्यान !
तिनहि बिसरी वेदविधि, जप, योग, संजम, ध्यान ॥
नेम, व्रत, आचार, पूजा, पाठ, गीता-ज्ञान।
'रसिकभगवत' दृग दई असि ऐंचि के मुख-म्यान ॥ १५ ॥

[पद]

हमारो वृन्दाबन उर और।
माया, काल तहां नहिं व्यापै जहां रसिक-सिरमौर ॥
छूटि जात सत, असत वासना मन की दौरादौर।
'भगवतरसिक' बतायो श्रीगुरु अमल अलौकिक-ठौर ॥१६॥

[चर्चरी]

कंबु कंठ मंजुदाम गौरअंग छविसुधाम कुंदन ते सरस मृदुल मोहन मन भायो !
नाल सहित कंजपान देतसदाअभय-दान तजिकेअभिमान शाहअकबर सिरनायो ॥
चरन कमल कामधेनु सकल-कामना सुदेन दरसे दृग होत चैन आपदा भगायो।
करुवा गूदरापास वृन्दावनकरैंबास जयजयहरिदास'रसिकभगवत' अपनायो ॥१७

[अष्टपदी]

प्रथम महातम प्रकृति ज्ञान-रवि तहां प्रकासै।
दूजे ब्रह्म-प्रकास कोटि सूरज सम भासै ॥
तीजे पंकज नाभि रमा वैकुंठ-निवासी।
चौथे दसरथ-सुवन राम गोपुर के बासी ॥
पाँचे ब्रज के गोपनंद आदिक सब गोपी।
छठवें सखीसमाज करैं लीला-रस ओपी ॥
'भगवत' सतयें आवरन करहिं केलि राधारवन ;
सर्वोपरि सर्वेस-गुरु रसिकराय मंगलभवन ॥ १८ ॥

[अरिल्ल]

नर्क, स्वर्ग, अपवर्ग आस नहिं त्रास है; जहं राखौ तहँ रहौं मानि सुखरास है।
देव दया करि दान न भूलौं केलिकौ; 'भगवत' वलित तमालविलोकौं वेलिकौ ॥
दुख सुख भुगते देह नहीं कछु शंक है; निंदास्तुति करो राव क्या रंक है।
परमारथ व्यवहार बनौ कै ना बनौ; अंजनह्वै मम नैन'रसिकभगवत'सनौ ॥१९॥

[श्रीकृष्ण-ध्यान]

स्यामचरनतरवसीअरुनतासहज सुभायक;एड़िनजावकचित्ररँगे नखअतिसुखदायक
छला किटिकिरेदार चरन अँगुरिन दससोहै;जवूनद नग जड़े मृदुल उपमाको कोहै
पादपीठ दुहूँ फूलमध्यनायक तहं हीरा; जगमग जोति विसाल हरै नैननकी पीरा
पायजेव दुहुँ पाय नूपुरन मनिगन जाला; मुक्तनलारे लगे मंजुमृदु शब्द रसाला
अघन जानुते उतरिपायजामातहंआयो; मोहरन मुक्तामंजुजँजीरन अतिछवि छायो
तापर बूटा वेलि कसीदा रंग उमंग कौ ; नेफा नारौ ललित फुंदना पीत रंग कौ
दावन घेर घुमंड अपूरवताकी लावनि;अद्भुतअमल अनूप श्रीशंकर मन भावनि
कुसमी रंग संजाफ किनारी मुक्तन भारी; तापर बूटा वेलि स्वर्न सूतन की जारी
मनिमयचित्र विचित्र तासु छवि सोहतचीना;रंग विरंगी तनीवनीवर ग्रंथ नवीना
तापरचोली चारुकिवारी वंद फुंद गुठिया; पिछवाईगिरवान वसंतीरंग छविमुठिया
तापर चित्र विचित्र कसीदा जरतारी को; सियनेरत्न जराव जहां तहांवरतारी को
वाहें चूरीदार साँकरी कर कुचिआई ; मुहरन मुक्ता लगे जँजीरन अति छवि छाई
कश्मीर श्रीखंड स्यामअँग लेपनकीन्हों ; अंवर अतर लगाय गुलावी को पुटदीन्हों
प्रथुनितंवकटिछोनफटिकमनि किंकिनिजाला; तामधि लारेलालवाजने शब्दरसाला
तापरनाभिगँभीर वासुपरत्रिवलीनीको; तहँकछुतोंद दिखायविहारनिजोवनिजीको
तापर उन्नत उर रसाल आयत उर राजै; तापर चौकी चारु विहारनिनाम विराजै
पुष्पराजमनि कंठ लसै वरमुक्तन सेली; सव्य असव्य रसाल चांद्रमाला अलवेली
पीन अंस भुजदंड जानुलों जात विशाला.तिन वाजू वँधे जराऊ युग छविजाला
पहुँचनपहूँची पीतमनिनयुत टोडर गजरा;जगमग२ होत चुभ्यौचितटरत न नजरा
करपृष्ठन करफूलजड़ाऊ जामगति अति,देखत वनै न कहत वावरी होत सबै मति
दस अंगुरिन वर मुंदरी भाँतिनभाँतिविराजै;पोरनछुलारसालदिपतनखसहितसमाजै
करतल मेंहदी अरुन रंग चित्राम वनायो; बूटावेल सम्हारि साथियन चित्त छुरायो
तिनमधिमुरलीवसैजटितमनि परमरसाला ; सप्तस्वरनसों भरीरागरागिन छविजाला
कटि प्रदेशपटवँध्यौस्वर्नसूतनसोंभरियां ; कोरकिनारीकिरनललितपल्लेमनहरियां
चिवुक चखौड़ा चारुचुभ्यौ,चामीकरबुंदा; तापरदोनी ओप झलमलै जोतिअमंदा।
अधरदसन अतिअरुन दीप्तमुखपानखानकी;मंद मधुरमुस्क्यानहरनमनप्रियामानकी
नासावेसर वरबुलाक मंजुल रसवरषत; थिरकनफरकन पुटनदेखि मननैन करषत
चंचल नैनविसाल अरुन अंजन जुतफूले; अनियारे अनुकूल देखि प्यारी दृगभूले

भृकुटी विकट बिसाल आड़ तामधि रोरीकी; तापर बेंदी दई प्रसादी जनु गोरीकी
जापर वृत्त विलोकि जरोउ पचरंग भरियां; चन्दनखौर ललाट,करीवरचित्रलहरियां
कलितकपोलनकरीचित्ररचनाविचित्रवर; अलकावलिरहिभूमिसरससौरभभीजीभर
बड़े २ मोती लसैकान कुंडल फँदवारे; तापर मोराकृत जराव छविसों मतवारे।
सीस सचिक्कन केस मंजु बाँध्यौ कसिजूरा;तापर गोल अमोललसैमनि अद्भुतचूरा
तापर बाँधी पाग जरकसी छवि मरोरकी; बाँकी खिरकिनदार पीनरस रंग जोरकी
अग्रभाग सिरपेच जराऊतापर कलँगी;तुर्रा पच्छिम भाग सर्व उपमा ते अलगी।
दै गलबाहीं रहे परस्पर चिबुक टटोहैं; फूलन की बनमाल एक पहिरें जन दो हैं।
जहांजो झाँकीलेय तहांह्वै दीखेसन्मुख; नागर परमविचित्रदेतसखियन सर्वससुख
रीझि बलैया लेहिं दुहुंकर अँगुरी फोरैं; राईनोन उतारि 'रसिकभगवत' तृन तोरैं
दंपति वदनविलोकिवारि तापर जलपीवैं; प्रान निछावरि करैंकहैं जोरी चिरजीवै।
आसपास सहचरी सुघर रँगभीनी सोरा; गौर स्याम अभिराम रूपगुनवैसकिसोरा
वसु गोरी वसु स्याम तनसुखीह्वै दुहूं ओरैं; गोरी सेवे स्याम स्यामगोरीचितचोरैं
छत्र चवँरविंजनादिवसनभूषनशृंगार सवि; भोजनपानी पानआरसीमुखदेखनछवि
वीनावेनु रवाव पीकदानीसुख सजा; सतरंज चौपर खेल खिलावैं विगलित लजा
अपनी २ टहल करैं सब न्यारी न्यारी; इहि विधि आठोंजाम लड़ावैं प्रीतमप्यारी

[राग-ललित]

तीरथराज निधिवन जान।
सीतल-सुद्ध-स्वरूप दंपति नहिन उपमा आन ॥
गौर-स्याम सरीर-गंगा जमुन जलचर-नैन।
नाभि ललना लालकी परसत अखेवट-ऐन ॥
करज कुसमनि पूजि पिय माधो पयोधर पान।
मकर मकरध्वज मनोरथ सफल सबविधि कीन ॥
दान दै दसनावली द्विज जानि सुरभि कपोल।
मेखला मंजीर मुनि जय धुनि जघन गति लोल ॥
'रसिकभगवत' सरस्वती सेवत सहित अनुराग।
मुक्त कवरी कंचुकी नीवी नितंब सुभाग ॥
भँवर भूलनि में तरैं बूढ़े बदन अंभोज।
कूल भुज अनुकूल वलय तरंग संगम ओज ॥

न्हाय सुकर बनाय सुचि शृंगार भूषन चीर।
मोद मंगल नित नए सरसत न परसत पीर ।।
व्योम, भूमि, पताल में नहि रमापति की ठौर।
वर विहारिनि कृपा उर पै ए नु साधन और ।२१॥

[माँझ]

उन्मीलत लोचन जंभाति लालन प्यारी गलबांहीं,
छुटी अलक स्वेदकन मुखपर लसत कपोलनि छांहीं;
अलट पलट गए वसन अंग सब नखछद उरजन मांहीं,
'भगवत' समर में भट दोऊ लरत मुरैं मुख नाहीं ॥१॥
डगमगात पग धरत धरनि पर बोल अटपटे बोलैं,
प्यारी ओढ़ि पीतपट लीन्हों लालन नील निचोलैं;
नीवी-बंधन करत लाड़िली लाल लंक गति लोलैं,
'भगवत' हँसत देत मुख अंचल नैनन चैन न डोलैं ॥२॥२२॥

[राग-रामकली]

मेरे प्रानधन स्वामिनि स्याम-राधे।
एक-रस-रूप सम-बैस वारिज-वदन छके रहें प्रेम यह नेम साधे ।।
करत केलि विपरीत परस्पर बिछुर नहिं जात कहुं पलक आधे।
नैन की सैनवर बैन 'भगवतरसिक' देत सुख लेत सहचरि अगाधे ॥२३॥

[राग-विलावल]

द्वै दामिनि के बीच में घन एक विराजै; रूपअनूपम अद्‌भुत माधुरी छविछाजै।
इंद्रधनुष नहिं देखिये वगपाँतिन भ्राजै; मंद-मंद मृदुघोर सों सुर शब्दन गाजै ॥
उमड़ि घुमड़िवरषाकरैमिलि स्यातिसमाजै; 'भगवत' प्रानपपीहरा पोषतसुख साजै

[राग-देवगंधार]

सखी ! यह सुनौ अलौकिक बात
स्याम-तमाल असकंधन फूले विवि जलजात ।।
तिनके दलन अग्र उडुपति तिनहिं लजात
तिनपर व्याल सुवन बरही-सुत खेलत हिलि मिलिगात ॥
तिनके कोश अरुनता अविचल वारौं अरुन प्रभात।
तिनके-मूल मराल-मंडली उछरि-उछरि किलकात ॥

तिनके निकट निवास श्रुतिन को कलरव सुनत सिहात।
'भगवतरसिक' कहत नहिं आवै निरखत नैन सिरात ॥२५॥

[पद राग–आसावरी]

अलौकिक-बृत्त विलोकौ आज।
फूलौ फरौ हरौ नवरंग मंजुल मृदुल समाज ॥
थर पर कमल कमल पर कदली कदलीऊपर सुरूँ।
सुरूँ ऊपर सुभग मनोहर नारकेल रस--पुरूँ ॥
नारिकेल पर फूल रविमुखी पाँच फूल ता माहीं।
जया,कुंद,तिल, महुवा,अंबुज उपमा को कछु नाहीं ॥
आलवालरसिया'भगवत' भुज देखत भावुक-नैना।
सेवत सींचत रहत रैन दिन विमल-बारि उर-ऐना ॥२६॥

[राग–आसावरी]

लाड़िली अलबेली अलबेले पिय जीवन-प्रान।
वदन-मयंक अमी-रस बरषत गावत मोहनि तान ॥
नवलकमल-कर वीन वजावत अति गुन, रूप-निधान।
मृदु-मुसक्याइ लाल-तन चितवत गहि 'भगवत' को पान ॥२७॥

[राग–टोड़ी]

सब सुख-सदन वदन तुव राधे !
उपमा कमल ससी नहिं पावत भीत मान अपराधे ॥
मृदु-मुसक्यान हरत मन नैनन वंक विलोकनि ही दृग आधे।
लेत बलाय दुहूँ कर 'भगवत' रसिकशिरोमनि गुनन अगाधे ॥२८॥

[राग–टोड़ी]

तुव मुख-नैन- कमल अलि मेरे।
पलक न लगत पलक बिनु देखे अरबरात अति फिरत न फेरे ॥
पान करत मकरंद-रूप-रस भूलि नहीं फिर इत उत हेरे।
'भगवतरसिक' भए मतवारे घूमत रहत छके मद तेरे ॥२९॥

[राग–टोड़ी]

तुव-मुख-चन्द, चकोर ए नैना।
अति आरत अनुरागी लंपट भूल गई मति पलहु लगै ना ॥

अरवरात मिलिवे को निसिदिन मिलैइ रहत मनु कबहुँ मिलै ना।
'भगवतरसिक' रसिक की बातैं, रसिक बिना कोउ समझि सकै ना॥

[राग-झंझोटी]

राधा वदनवर जल-जात।
चिकुर नभ सीमंतवर कवि पाति कल जल-जात॥
रूप-सर ते प्रगट वर सोहत नैन जल-जात।
हास-रस बचनावली वरषत मधुर जल-जात॥
कंठ कलित त्रिरेख देखत लजतवर जल-जात।
वितन वेदन हरन को हरि वैदवर जल-जात॥
वारिए छवि पर धरनि त्रैलोक्य-मनि जल-जात।
'रसिकभगवत' स्वामिनीवर दानतरु जल-जात॥३१॥

[राग-सारंग]

हमारी जीवन जुगलकिसोर।
कुंजबिहारिनि कुंजबिहारी नित-नव-जोवन जोर॥
भूलि न जाऊं पलक कहुँ इत उत रहों निरंतर पासा।
दंपति संपति दिन दुलराऊं और न दूजी आसा॥
रूपमाधुरी दृगन पियाऊं श्रवन रसीली-वानी।
अंग संग उद्गार नासिका तीनौ ताप सिरानी॥
असन करौं उच्छिष्ट दुहुन कौ भूषन बसन उतारे।
'भगवतरसिक' मनाय लाड़िली करौं लाल दृग तारे॥३२॥

[राग-कान्हरो]

अहो! मेरे लाल प्रिया की भामती यह कौतुक देखौ आइ हो!
हेली! प्रेम रंग भींजे दोऊ कछु सोभा वरनि न जाइ हो!
अहो हेली! वृन्दाविपिन सुहावनौ अरु रवितनया के तीर हो!
हेली! रसिकराय रससों भरे इन पलटि पहिरि लिए चीर हो!
अहो हेली! स्यामप्रिया भई मानिनी गोरेलाल मनावनहार हो!
हेली! मान न छाड़ै माननी ए तो रिझवत बहुत प्रकार हो!
अहो हेली! पांयन परि विनती करैं अरु कहत रसीले-बैन हो!
हेली! पीठ फेरि मुख मोरहीं ए तो करत न सूधे नैन हो!

अहो हेली ! नाचत गावत प्रेम सो अरु बेणु बजावै रसाल हो !
हेली ! राधे कहि-कहि बोलहीं सुनि बिहँसि उठी तत्काल हो !
अहो हेली ! वदन चूमि भेंटे तबै अरु लीने कंठ सप्रीति हो !
हेली ! पकी-नई काची करैं अरु यह रसिकन की रीति हो !
अहो हेली ! मीन चाल हठ उलटही खेल सदा रसरीति हो !
हेली ! 'भगवतरसिक' खेलावहीं नहिं जानत हारा जीति हो ! ॥३३॥

[राग-सोरठ]

प्यारीजू ! की सहज अटपटी बोलनि ।
हो पिय ! तुम उर बसी कौन तिय ? पहिरे नील-निचोलनि ॥
हमहूँ ते गुन-रूप-आगरी पाई कहां बिन मोलनि ?
बड़े-बड़े नैन अरुन कजरारे बिथुरी अलक कपोलनि ॥
श्रम-जल-बूंद मनोहर मुखपर लसत उरज नखछोलनि ।
उमँगि-उमँगि सन्मुख आवत मन भावत करत कलोलनि ॥
रति के चिन्ह देखियत अँग-अँग रंजित अधर तमोलनि ।
'भगवतरसिक' कहौ तुम साँची नाहिं करौं अनबोलनि ॥३४॥

[राग-सोरठ]

भूली भाव भाँवती भोरे ।
बैठी मुरकि पीठ दै पिय उर मान आन तनु गोरे ॥
भौंह मरोर मौनमुख नीचे नैन-नेह सो ढोरें ।
नख छिति लिखत अछित ललिता के लाल कहैं कर जोरें ॥
"कियो कहा अपराध सखी ! मैं ? रहौं निकट नित तोरे ।
कौन सुभाव परो प्यारी को ? रस में बेरस घोरें ॥
करि उपाय समझाय स्वामिनी रहै न धीरज मोरे ।"
'भगवतरसिक' बलैया लै लै फिर फिर नाह निहोरे ॥२५॥

[राग-सोरठ]

बंदित प्रिया-पद-जलजात ।
प्रेम-रस बस स्यामसुंदर धरि हृदय जलजात ॥
करत तन आधीनता परसत दृगन जलजात ।
'रसिकभगवत' चूमि तल मंजुल सुमुख जलजात ॥३६॥

[राग–विहागरो]

हमारे नैनन नित सुख देत।
कुंजविहारिनि कुंजविहारी चितवनि चित चुरि लेत॥
सुरति समर में जुरे सुभट दोउ सुमन–तल्प–सुख–खेत।
'भगवतरसिक' किसोर किसोरी रँगे रंग झषखेत॥३७॥

[राग–राछरो]

प्यारी राधे! सावन मनभावन भयो चलि सूरति–हिंडोरा झूलि॥
प्यारी राधे! माथे मुकुट सुहावनो अरु नचत शिखर चढ़ि मोर॥
प्यारी राधे! घन गरजत मुरली वजै अरु दामिनि मुरि मुसक्यानि॥
प्यारी राधे! वचन रचन कलकोकिला अरु मुक्तावलि वगपाँति॥
प्यारी राधे! स्याम–घटा तन अति वन्यो अरु इंद्रधनुष वनमाल॥
प्यारी राधे! छूटे कच टूटे धुरा अरु दादुर मृदु–मंजीर॥
प्यारी राधे! अरुनवसन वादर कसे अरु अनुकूली वरमाँझ॥
प्यारी राधे! हरित–भूमि हरषी हृषी अरु इंद्रवधू अवतंस॥
प्यारी राधे! नवल–नेह उलही लता अरु किसलयदल पदपान॥
प्यारी राधे! संतत आस विलास की अरु चलत पवन झकझोर॥
प्यारी राधे! प्रेम पुलक रस वरषहीं अरु सरसत सरित अनंग॥
प्यारी राधे! 'भगवत' उर–सरवर भरयो अरु फूले दृग–जलजात॥३८॥

[राग–मलार]

ललना लाल हिंडोरे झूलैं।
श्रावन में मनभावन मन की मन भावन करि फूलैं॥
नीरद नवल नाहु उर ऊपर दामिनि भामिनि भूलैं।
'भगवतरसिक' झुलावत गावत गहि डाँडी भुजमूलैं॥३९॥

[राग–वसंत]

नवल दोऊ आज वसंत से फूले।
गोरी किसोरी के अंस दिए भुज स्याम छिपे भुजमूले॥
सहज सिंगार अनंग के अंगनि सोहत पीत–दुकूले।
रंग में रंग बढ़ावति लाड़िली लाल हिंडोरे भूले॥
यह सुख नित्य दिखावत नागरी नाहु भए अनुकूले।
'भगवतरसिक' विलोकत यह छवि नैन कुरंग से भूले॥४०॥

[राग-बसंत]

यह छवि देखिए नित नैन।
नवल नागर नागरी पर वारिए रति मैन ॥
अधर अमि पीवत पिवावत तृपति नहिं दिनरैन।
प्रान पोषत परस्पर कहि-कहि रसीले-बैन ॥
सहज सरद बसंत संतत सहचरी उर-ऐन।
ललित वलित विचित्र द्रुम वेली सरस सुखदैन ॥
प्रेम प्रीति प्रतीति छिन-छिन वढ़त तन चैन।
'रसिकभगवत' माधुरी मुसक्यानि मन हरि लैन।४१॥

[मंज]

नित्यविहार स्याम स्यामा को कहि प्रत्यच्छ दरसायो।
रसिक-अनन्य स्वाद-भेदी हित अगदराज वरषायो ॥
अमल अनूप परम-उज्ज्वल-रस उर अंतर सरसायो।
भगवतरसिक अनन्य आभरन नहिं नीरस परसायो ॥१॥
यह रस-रीति प्रियाप्रीतम की दिव्य स्वातिजल जैसे।
विषई, ज्ञानी, भक्त, उपासक प्रापत सब को कैसे ?
कदली, कमल, पपीहा, सीपी पात्र-भेद गुन तैसे।
'भगवत' बीज विषमता नाहीं भूमि भाग्यफल ऐसे ॥४२॥

[पद]

अपूरब पर्यो ग्रहन को योग।
चंदा झपटि राहु को पकरत करत आपनो भोग ॥
जानत नहीं ज्योतिषी देखत नित्य-उपासक लोग।
'भगवतरसिक' प्रेम के जापक चाहत नहीं वियोग ॥४३॥

[पद]

परस्पर दोउ चकोर दोउ चंदा।
दोउ चातक दोउ स्वाति दोऊ घन दोउ दामिनी अमंदा ॥
दोउ अरविंद दोऊ अलि लंपट दोउ लोहा दोउ चुंवक।
दोउ आसक महबूब दोउ मिलि जुरे जुराफा अंबक ॥
दोउ मुदार दोउ मोर दोउ मृग दोउ रागरस भीने।

दोउ मनि बिसद दोउ वर पन्नग दोउ वारि दोउ मीने ॥
'भगवतरसिक' विहारनि प्यारी रसिकविहारी प्यारे ।
दोउ मुख देखि जियत अधरामृत पियत होत नहिं न्यारे ॥४४॥

[पद]

यह दिव्य-प्रसाद प्रिया पिय को ।
दरसतही मन मोद बढ़ावत परसतपाप हरत हिय को ॥
पावत परम प्रेम उपजावत भुलवत भाव पुरुष तिय को ।
'भगवतरसिक' भावतोभूषन तिहिछिन होत जुगल जियको ॥४५॥

[छप्पै]

प्रथमसुनै भागौतभक्तमुखभगवतवानी; द्वितिय आराधैभक्तिव्यासनवभाँतिवखानी
तृतीय करै गुरु समझि दच्छ मर्वज्ञ रसीलो; चौथेहोइ विरक्त वसै वनराज जसीलौ
पाँचै भूलै देह निज छठें भावना रास की ।
सातें पावै रीतिरस श्रीस्वामीहरिदास की ॥४६॥

कुंजन तेउठि प्रात गात जमुनामें धोवै; निधिबन करि दंडोत विहारीको मुखजोवै
करैभावना वैठि स्वच्छथलरहित उपाधा; घरघरलेइ प्रसाद लगैजब भोजन स्वाधा
संग कर 'भगवतरसिक' कर करुवा गूदरि गरे ।
वृन्दावन विहरत फिरै जुगलरूप नैनन धरे ॥४७॥

[ज्यष्ट-पदी]

प्रथम दरस गोविंद रूप के प्रानपियारे; दूजे मोहनमदन सनातन सुचि उर धारे
तीजे गोपीनाथ मधु हँसि कंठ लगाए; चौथे राधारमन भट्टगोपाल लड़ाए ॥
पाँचे हितहरिवंश सुवल्लभ-राधा; छठए जुगलकिसोर व्यास सुख दियो अगाधा ।
सातेंश्रीहरिदासकेकुंजविहारी हैंतहाँभगवतरसिकअनन्यमिलिवासकरहुनिधिवनजहां

[छप्पै]

विवितनुव्यापकविपुल प्रेमवसकीनेदंपति; सेवनसहचरिरूपसहजनैनन निज संपति
मीनकेत ऐश्वर्य सुमनसर सारंग चारी; जक्तपूज्य हेरम्य सर्वसुख मंगलकारी
आचारज 'भगवतरसिक' कहे गूढ़गुन धाम के ।
विस्वविदित आनंद में पाँच रूप रति काम के ॥४९॥

[सोरठ]

जीव ईश मिलि दोय नाम, रूप, गुन परिहरै;

रसिक कहावै सोय ज्यों जल थोरै शर्करा।
दिया कहै सबकोय तेल-तूल पावक मिलै;
तमहि नसावै सोय वस्तु मिलै 'भगवतरसिक' ॥५०॥

[कुंडलिया]

दुखियाद्विजविद्याविनाराजाविन दलसोय; रूपविना गनिकादुखी योगीयोगन होय
योगीयोग न होय साधु हरिभजन नजानैं; भाँड़,कलावत,भाँट सभानट लज्जामानै
भगवतरसिक अनन्य विना नहिं कोउ सुखिया।
असन, वसन, परिवार पुत्र विन सब जग दुखिया ॥५१॥

साँचे श्रीराधारमन झूठौ सब संसार; बाजीगर को पेखनो मिटत न लागै वार।
मिटत न लागै वार भूत की संपति जैसे; मिहिरी, नाती पूत धुंवा को धौरर तैसे
भगवत ते नर अधम लोभवस घर घर नाचे।
झूठे गढ़ै सुनार मैन के बोलै साँचे ॥ ५२ ॥

कपटीज्ञानीकंस से वगुला कैसोध्यान; वेषवनायो पूतना जिमिअसिमखमलम्यान
जिमिअसिमखमलम्यान दसनकुंजरकेऐसे; स्वारथ साधनऔरदिखावत औरहिजैसे
ऐसिन को संग तजौ भक्त भगवत जिनि दपटी।
लोभी करै अनर्थ अर्थ जानै नहिं कपटी ॥ ५३ ॥

कपटीसंग न कीजिये यदपि विष्णुसोहोइ;वामन ह्वै वलि कोछल्योयहजानैसंवकोइ
यहजानै सबकोइ वहुरिवपु धारि मोहिनी;असुरन सुरापिवाइसुरनदई सुधादोहिनी
वृन्दा धर्म घटाइ मृत्यु जालंधर लपटी।
भगवत वनिता विप्र भयो परमेश्वर कपटी ॥५४॥

जाको राखे साँवरो ताहि न नखै कोइ; अंवरीष प्रहलाद ध्रुव कुंतीनंदन जोय।
कुंतीनंदन जोय विभीषन जगपति ऐसे; दुर्वासा, असुरेश, सुरुचि दुर्योधन जैसे ॥
दुर्जन रावन ग्राह देहि दुख लागै न ताको।
'भगवतरसिक' नरेश वाँह गहि राखै जाको ॥५५॥

जाकोआदर हरिकरै तासु अनादर कौन; जासु अनादर हरिकरै ताको आदरकौन?
ताकोआदर कौन इन्द्र अद्यापि जु देखौ; गोवर्द्धन गिरिराज भयौ सबपूज्यविशेखौ
भगवतरसिक अनन्यपाणि गहि लीनो ताकौ।
सुरजन सब अनुकूल करैं दुर्जन कह ताको ? ५६ ॥

नित्यविहारी की कला प्रथमपुरुषअवतार; तासुअंसमायाभई जाकोसकल पसार
जाकोसकल पसार महातत्व उपज्यो जाते; अहंकार उत्पति भईश्रुतिकहै जुताते।
अहंकार त्रैरूप भयो शिव, विधि असुरारी।
'भगवत' सब को तत्त्व बीज श्रीनित्यविहारी ॥ ५७ ॥

देखैजीव जहाज चढ़ि दुरबीन धरि नैन; ऐसेहि वस्तु विचारवर लखैआप उरऐन
लखै आप उर ऐन उपासक तौन कहावै; रहैगुनन के बीच गुनन आसक्त न आवै
'भगवतरसिक' अनन्य सभाते आवें लेखे।
प्रकृति-पुरुष ते परे परम उज्ज्वलरस देखे ॥ ५८ ॥

मंगलमूरति लाड़िली मंगलमूरति लाल;मंगलमूरति सहचरी मंगलमय सवकाल
मंगलमयसबकाल अमंगल मूलनसावन; मंगलमोदविनोदमहलमंगल मनभावन
मंगल भगवतरसिक सुजस सर्वोपरि मंगल।
कहें सुनें अनुमोद करें पावें वर मंगल ॥ ५९ ॥

वरअनन्यरसिकाभरनरसिकनको अवतंस;विषयवारिनिरवारिपयप्रगटकियोहितहंस
प्रगटकियोहितहंसउपासक सुनिसुखपावै; नागररसिकअनन्य स्वादभेदीमिलि गावै
भगवत यह रस रीति भावना करें निरंतर।
नीरस नरन बिहाय अवुध मत सरी विदुषवर ॥ ६० ॥

सुचितासीलसनेहगतिचितवनहासविलासकचगृथनिसीमंतसुभभालतिलकसुखरास
भालतिलक सुखरासिद्दगनअंजनअतिसोहै;बीरीवदनसुदेसचिबुक मुसिकनिमनमोहै
जावक मेहदी अंगराग 'भगवत' नित रुचिता।
ए सोरह सिंगार मुख्य ता में वरशुचिता ॥ ६१ ॥

नूपुर विछिया किंकनी नीवीबंधन सोय; मुदरी कंकन वलय बाजूबंद भुजदोय।
बाजूबंद भुजदोय कंठश्री दुलरी राजै; नासाबेसरि सुभग श्रवन ताटंक विराजै।
'भगवत' बैना भाल माँग मोती गो ऊपर।
द्वादश भूषन अंग नित्य प्यारी पग नूपुर ॥ ६२ ॥

अतरौटो अतलस लसै लाहीअँगिया अंग;तनुसुखकारीसोहनो ललित लालके रंग
ललित लालके रंगलाड़िली वसनविहारी; पगियापटुका झंगापायजामा छुविभारी
'भगवतरसिक' अनन्य लखें भावुक रसमोटा।
कसन वसन अभिराम स्याम स्यामा अतरौटा ॥ ६३ ॥

बाजे बजत विहार में सहज सुहाए अंग; बीना,वेनु,मृदंग, डफ,झाँझ,रवाव,उपंग
झाँझ,रवाव उपंग, सरससुरमंडल देखौ; सारंगी सुखरासि मँजीरा मृदुल विसेखौ
राग-रागनी उपज सप्त-सुर सहित-समाजै ।
'भगवतरसिक' अनन्य भेद जानत कोउ वाजै ॥ ६४ ॥

परदा फाटे कपट के झपटिलाड़िलीलाल; प्रगटभए मम मानसरस्यामलगौरमराल
स्यामल गौर मराल इन्द्रजाली नट जैसे; दृष्टिबंध करि दुरैं सिद्धलोंकाजन तैसे
'भगवतरसिक' अनन्य हरे तन मन के दरदा ।
ढरे निरंतर आइ स्याम-स्यामा तजि परदा ॥ ६५ ॥

स्यामास्याम रसायनी मिले अनन्य उदार; निजरसरीति दृगनदई भई मयूर मुदार
भई मयूर मुदारकनकतनुमर्कतमनिलों; अँगर जर्यौजरावआभरन दामिनिघनलों
मन मखतूल पुहाय परम-उज्ज्वल अभिरामा ।
पहिरे 'भगवतरसिक' सहचरी संतत स्यामा ॥ ६६ ॥

सोरा सखी विहारमें विपुलवर अंग; समय साधि सेवा करैं पिय प्यारी के संग ।
पियप्यारीके संगरहैं वर अंगनमांहीं;ज्यों दिनकर की किरनि छोड़िदिनकरनहिंजाहीं
'भगवतरसिक' अनन्य एकरस-वैस किसोरा ।
रुष लै सुख संचरैं सहचरी संतत सोरा ॥ ६७ ॥

पियप्यारी परप्रेमनिधि प्रगटे मदनमयंक;वढ़त परस्पर एकसे जिमि एकादश अंक
जिमिएकादशअंक दुगुनदशगुनकरि देखौ;आदिमध्यअवसान एकरसरसिकविशेखौ
दयति दहाई वीच सींच सुख सर्वसकारी ।
सरसावत उर हाव, भाव भगवत पिय प्यारी ॥ ६८ ॥

जो जानै मानै सोई मानै क्यों विनजान; पीर प्रसूती की कहा जानै वाँझ अजान
जानै वाँझअजान नपुंसकरतिसुख नाहीं; ऐसेहि नीरसपुरुष कहा समझै रसमाहीं
'भगवत' नित्यविहार रसिक अनुभव उरआनै ।
गूढ़ वात नभ जाति, जाति वरही जो जानै ॥ ६९ ॥

जैसे वाँदो वृक्षमें अमरवेलि मौहार ; इनको वीज न पाइए ऐसेहि नित्यविहार ।
ऐसेहि नित्यविहार मेघकी जड़ नभ नाही; गोरोचन मृगजात सवहि में नाही ॥
फनिमनि विरले होइ करी शिरमुक्ता ऐसे ।
भगवतरसिक अनन्य अनुभवी द्रष्टा जैसे ॥ ७० ॥

आचारजललितासखी रसिकहमारीछाप; नित्यकिसोर उपासना युगलमंत्रको जाप
युगलमंत्र को जाप वेद रसिकन की वानी; श्रीवृन्दावनधाम इष्ट स्यामा महरानी
प्रेमदेवता मिले बिना सिधि होइ न कारज।
'भगवत' सबसुखदानि प्रगट भए रसिकाचारज ॥ ७१ ॥

नहिंहिन्दू नहिंतुरक हम नहिंजैनी अंगरेज;सुमनसम्हारत रहतनितकुंजबिहारीसेज
कुंजबिहारी सेजछांड़ि मगदच्छिण डेरो; रहैं विलोकत केलिनाम'भगवतअलि'मेरो
श्रीललितासखि पाय कृपा सेवत सुखस्यामहिं।
नहिं काहू सों द्रोह मोह काहू सों है नहिं ॥ ७२ ॥

संप्रदाय नवधाभगति वेदसुरसरीनीर;ललितासखी उपासना ज्यों सिंहिनिको छीर
ज्यों सिंहनि के छीर करै कुंदन के वासन; कै बच्चा के पेट और घट करै विनासन
'भगवत' नित्यविहार परे सबही को परदा।
रहैं निरंतर पास रसिकवर सखी-संप्रदा ॥ ७३ ॥

जैसे मिले कुधातु के लगे कंचनै दाग; दूरि करै सबकालिमा जबही मिलै सुहाग
जबहीमिलै सुहागरीति ललिताकीजानौं;ज्यों जलखाँड़समाइफिरै करकट उतरानौ
'भगवतरसिक' अनन्य महल में राजत ऐसे।
ज्यों दृग अंजन बसै बरौनी बाहिर तैसे ॥ ७४ ॥

वेगमअगमनिगमकहैंसुगमलाड़िलीलाल;नित्यअनंतअनादिके'भगवतरसिक'दलाल
भगवतरसिकदलाल मिलैइनसोंसोपावै; जप,तप,योग,समाधि,ध्यानहरिहाथनआवै
करि उपाय पचिमरे तरे भवसागर सम दम।
मिलहिं न स्यामास्याम कहहिं कवि कोविद वेगम ॥७५॥

चसमानित्यविहारको दियोविहारिनिमोहि; भई प्रीतिपरतीति उरअंतरलीनोजोहि
अंतरलीनो जोहिनिरंतरनिजधन पायो; शुकनारदसनकादि नेति निगमागम गायो
'भगवत' यह रसरीति प्रगट परिपूरन ससमा।
प्रेमपीयूष न अवै भावरूपी विनु चसमा ॥७६॥

निद्रामैथुनभखनभयसहजसबहिसुधिहोइअनुभवभगवतभजनकोभागवानलहिकोय
भागवानलहि कोइ होइ जो भगवतअंगी;भगवतविमुख न लहै वेषधारी भवसंगी
भगवतरसिक विलोकि केलि कुंजन के छिद्रा।
सुरति-रंग रगमगे स्याम-स्यामा तजि निद्रा ॥७७॥

कामीकेंप्रियकामिनीलोभीकेप्रियदाम; ऐसेहि'भगवतरसिक'केप्रिय श्रीस्यामास्याम
प्रिय श्रीस्यामास्याम भए नैनको कजरा;केलिविलोकत रहैं और नहिं आवै नजरा

ते आवन के सूर कहूँ विरले निष्कामी।
कहन सुनन के वहुत जगत में भक्त-सकामी ॥७८॥

देखेहाटवजार सबजहँतहँ पोतिविकाय;लियेजवाहिर जौहरी विन गाहक फिरजाय।
विन गाहक फिरिजाय वलाहकउषर वरसे; छप्पनभोग वनाय कहावनचरको परसे

ऐसेहि कर्मठलोग धर्मरति वरन विशेखे।
'भगवतरसिक' अनन्य स्वादभेदी कहुँ देखे ॥७९॥

सेवी नित्यविहारके रसिक अनन्यनरेश; विधिविषेध छितिछाँड़िके मढ़ेप्रेमनभदेश
मढ़े प्रेम नभ देश दिवाकर रूप विराजै; परस न पावैकोइ दरस करि कर्मठ लाजै

भगवत कोक विसोक कमल फूले रसभेवी।
तस्कर लुके उलूक मंदमति विषयन सेवी ॥८०॥

डोलैअपनी गैलगहि छाँड़िपराईदीन; नागररसिक अनन्य जग ज्यों यमुनाकेमीन
ज्योंजमुना के मीनलीन यमुनाजल माहीं; गंगाआदि नदीशऔर जलपरसन नाहीं

'भगवत' नित्यविहार वारता अनुभव खोलैं।
गौर-स्याम-छवि छकै नैन कहुँ नेक न डोलैं ॥८१॥

नागर रसिक अनन्यसँग वरवृन्दावन जान; गानविहारीको दरस वानीयमुनापान
वानीयमुनापानपुलिनपुलकावलितनमें; अनुभवरासविलासविहारिनिप्रगटत मनमें

भगवत नित्यविहार प्रेम उमगन रस-सागर।
कुंज-कुटी अभिराम भावना निरखै नागर ॥८२॥

अनुभव विन जगआँधरौ वस्तुन दीखेकोइ;मुकुरदिखाएहोतकहआननजात न जोइ
आनन जातनजोइअर्थ वानीको कहिवौ; सुने न होइ प्रतीति विनादेखे उर दहिवौ

वहुविधि मर्दन करै नहीं चैतन्य होइ शव।
'भगवत' रसकी बात कहा जानै विनु अनुभव ॥८३॥

वानीवीजक वस्तुको वीजक वस्तु न कोइ;वीजक वस्तु वतावहीं लहै जासुकी होइ
लहै जासुकी होइ और कीऔर न पावै; गावै सब संसार हाथ बिरलेको आवै ॥

ऐसेहि नित्यविहार स्याम-स्यामा सुखदानी।
'भगवत' रसिक अनन्य गूढ़ गुण गावत वानी ॥८४॥

काहू दई न लई कोई विद्यमान दरसाय; ज्योंमनियारो उरग मनिलैआवै लैजाय
लैआवै लैजाय वस्तु रसिकन की ऐसे; निसिदिन देखतरहै कृपण निजसंपति जैसे

'भगवतरसिक' अनन्य स्याम-स्यामा अवगाहू ।
रही दृगन भरिपूर भेद जानौ नहिं काहू ॥८५॥

चंदा के संग चांदनी सूरज के संग घाम;ईश्वर के संगईशता अनुभव आठोंयाम
अनुभव आठोंयामसकलसोभा संगसंपति; सबसुखसंगसंतोषउपासकके संगदंपति

'भगवतरसिक' चकोर कमोदिनि लहत अनंदा ।
नीरस चकई कमल देखि दुख पावत चंदा ॥८६॥

भगवतरसिकअनन्यमन गौरस्यामरंगरात;अमरकोशकेधूमलौमृगमद छोड़ न जात
मृगमद छोड़नजातगही ज्योंहारिल लकड़ी; चुंवकलोहनतजैदारुपावकजिमिपकड़ी

गुन-बयारि तनु लगै डिगै नहीं मनसा नगवत ।
संतत स्यामा-स्याम धाम कीनौ उर 'भगवत' ॥८७॥

भगवत स्यामास्याम को पावकरूपविहार; नहि समर्थखगराज की करैचकोर अहार
करैचकोर अहार किलकिला जलचर पावै; साहसीकमृगराज दसन ते आमिषलावै

ऐसेहि रसिकअनन्य और नर नागर खगवत ।
सेघ पराई तजौ भजौ वित माफिक 'भगवत' ॥८८॥

नैनन देखौं औरनहिं श्रवनसुनौं नहिंऔर;घ्रान न सूंघौं औरकछु रसनाकहौं नऔर
रसना कहौं न और त्वचा परसौंनहिं औरे; कुंजविहारी केलिमेलि इंद्रिन सबठौरे

'भगवतरसिक' अनन्य कोक उपदेशौं सैननि ।
बैनन मैन जगाय रैन दिन देखौं नैननि ॥८९॥

पारससो धनपरिहर्‍यो सेवकअकबरसाहि; श्रीस्वामीहरिदास समऔरबतावोंकाहि
और बतावौं काहिअवधि वैराग्य ज्ञानकी; भक्तिसुमूरतिवंत प्रेमनिधिदसाध्यानकी

नित्यविहार अधार प्रगट सेवा नहिं आरस ।
'भगवत' रसिक नरेश मिले गुरु पूरे पारस ॥९०॥

रुचिलै सुचिसेवाकरै सेवक कहिए सोय; तन,मन,धन अर्पनकरै रहै अपनपौखोय
रहै अपनपो खोय द्रवै तब हरि गुरुदेवा; अनमाँग्योसब मिले गूढ़गुण जानै भेवा

संचित क्रिया प्रारब्ध, कर्म दुख जाइ सर्वमुचि ।
'भगवतरसिक' कहाय क्रिया त्यागै अपनी रुचि ॥९१॥

कर्ताकृत जानै नहीं माने निज करतूत; ते प्रानी दुखपावही लग्यो अविद्या भूत।
लग्यो अविद्या भूत कहै द्विज रक्षा करिहौं; अर्जुन मेरो नाम नहीं पावकमेंजरिहौं
करगहि स्याम बचाय बतायो जो शिशुहर्ता।
'भगवतरसिक' नरेश सकल कर्तन को कर्ता॥९२॥

चलनी में गैया दुहैं दोष दई को देहिं; हरि गुरु कह्यो न मानहीं कियोआपनोलेहिं
कियो आपनोलेहिं नहीं यह ईश्वर इच्छा; देश, काल, प्रारब्ध, देव कोउ करहिं न रक्षा
मूरख मरकट मूठ कीर हठि तजै न नलिनी।
कहि 'भगवत' कह करै भाग भौंढ़े को चलनी॥९३॥

अनहोनी नहिं होइकछु होनी मिटै नकोय; देखौसीता दसरथै अतिसमर्थ तहँदोय
अतिसमर्थ तहँ दोय रामभर्ता वशिष्ट गुरु; यदुवंशिनको नास भयोदेखतपरमेश्वर
पारिच्छत उर ब्याल मृतक पहिरायो मोनी।
'भगवत' इच्छा जानि नहीं यामें अनहोनी॥९४॥

देही को देखै नहीं जो देखै सोदेह; तीनि भाँति ह्वै जात सो विष्टा, कृमि कै खेह
विष्टा, कृमिकै खेहु गेहमलमूत्र, जानकौ; तोल नहीं तरवारमोल सबकरतम्यानकौ
सारासार विचार नहीं श्रुति स्मृति तेही।
तिनहिं न 'भगवत' मिलै देह मानइ जे देही॥९५॥

जाति जातिमेंजातसब सबहीजातिकुजाति; रसिकअनन्यअजातकीकहौंकौनसीजाति
कहौं कौनसी जातिसजाति मिलै सुजानै; विमुख विजाती देह खेहकीजाति वखानै
निज स्वरूप नहिं लखै विवादी बात बात में।
'भगवत' भक्त न तेय जक्त सब जाति जाति में॥९६॥

जासों सपरस चाहियेतासों अपरसनित्त; जासों अपरस चाहिए तासोंत्रिभुकोचित्त
तासों त्रिभुकौचित्त भईविपरीतबुद्धिअब; असनबसनआचार कनककामिनिराचेसब
'भगवतरसिक' अनन्य करै स्पर्धा तासों।
पतित होइ गिरि परै परमपदहू ते जासों॥९७॥

परमेश्वर परतीतिनहिं पैसनकी परतीति; बिनुभगवतभवनिधिपरैगेहीकहाअतीति
गेही कहाअतीति स्याम सर्वसु धन भूले;कनक कामिनी देखि रहै निसिवासरफूले
दिन द्वै प्रभुता पाय कहैं हमहीं सर्वेश्वर।
महा मोह मद पिए जिए कैसे परमेश्वर॥९८॥

पैसा पापी साधु को परसि लगावै पाप; विमुख करै गुरु इष्ट ते उपजावै संताप
उपजावै संताप ज्ञान वैराग्यबिगारै; काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मत्सर, शृंगारै
सब द्रोहिन में सिरे–भक्त–द्रोही नहिं ऐसा।
'भगवतरसिक' अनन्य भूल जिन परसो पैसा ॥९९॥

विष्ठा को शूकर लरै भिरै वचन को स्वान; ऐसो लोभी दाम को कामी जुवतीज्वान
कामी जुवती ज्वान जगत में गुरु पदजाको; परै पड़ेपरधूरि विमुख ह्वै जोरै ताको ॥
परमारथ को पीठ दीठि व्योहार–प्रतिष्ठा।
'भगवत' तजि भजै बड़ाई शूकर विष्ठा ॥१००॥

आवैजो सो चून कौ जहँ जैये तहँ चून; दियो चून चस्मा चखनि भक्तिभाव भयोनून
भक्ति भाव भयो नून साधु कौ रूप न सूझै; रहे मान मद बूड़ और कीऔरेबूझै
हरि गुरु साधु विहाय आपनी प्रभुता गावै।
'भगवत' स्यामा–स्याम कहो उर कैसे आवै ? १०१॥

चरचाको सबजग फिरै वस्तु न चरचै कोइ; हारिजीतिअटकै सबैतनुधनजोवन जोइ
तनु धन जोवन जोइ भए गुरुमानी डोलैं; परकी सुनैं न बात आपनी गढ़ि२ छोलैं
'भगवतरसिक' अनन्य कियो नहिं तिनसों परचा।
लरैं वृषभ लों दौरि पौरि पर तजैं न चरचा ॥१०२॥

गेहो संग्रह परिहरैं संग्रह करै बिरक्त; हरि गुरु द्रोही जानिए आज्ञाते वितिरक्त।
आज्ञा ते वितिरक्तहोय यमदूतहवाले; अष्टाविंसति निरय अधोमुख करि तहँघालै
'भगवतरसिक' अनन्य भजौ तुम स्याम सनेही।
संग दुहुन कौ तजौ वृत्ति विनु विरक्त गेही ॥१०३॥

माया को सबजग भजै माधव भजै न कोय; जो कदापि माधव भजै मायाचेरीहोय
माया चेरी होय रहे चरनन लपटानी; ज्यों मलयजके संग सहज सौरभ सुखदानी
'भगवतरसिक' अनन्य होय सतगुरु की दाया।
माधौ सों मन लगै मोह मद छूटै माया ॥१०४॥

आसा जिज्ञासानहीं नहिंआसाउपदेश; नामरूप रसना चखनि यह समझै को देश।
यह समझै को देस सहजसबसोंनहिं बोलै; बोलै समयोपायग्रंथि संशय की खोलै।
'भगवतरसिक' अनन्य भानु लौं करै प्रकासा।
हरै तिमिर–अज्ञान ज्ञान दै पुजवै आसा ॥ १० ॥

जाको जैसी लखिपरी तैसी गावै सोय ; बीथी भगवत मिलनकी निश्चय एक न होय
निश्चय एक न होय कहैं सब पृथक हमारी ; श्रुति स्मृति भागौत साखि गीता दे भारी
भूपति सवन समान लखै निज परजा ताको ।
जाको जैसो भाव सु पोषै तैसो ताको ॥ १०६ ॥

हाथी देख्यो आँधरन निजमन कै अनुमान; कान पूँछ पद पीठ गहि करयो सवन परमान
करयो सवन परमान बिटौरा सूप पेटतर; झगरें सन्त महन्त निगम आगम पुरानवर
'भगवत रसिक' अनन्य दृष्टिवर कीजै साथी ।
जिन देख्यो गुन रूप अंग हिय मे हरि-हाथी॥१०७॥

ईश्वर बाजीगर रच्यो जग जेवरी कौ साँप;जीव जमूरा मेलि गल सुरनरमुनि सबकाँप
सुर नरमुनि सबकांप विषयिन व्यापी माया;फनकाढ़ै फुसकरै जहरजन लगै न काया
'भगवतरसिक' समर्थ गुरु जिहि युक्ति जनाई ।
जानि भयो तिहि तुल्य भूलि नहिं जाय सुभाई ॥१०८॥

आसा जाकी जहं बसी तहँताही को वास;गेही होय विरक्त कै कै स्वामी कै दास
कैस्वामी कैदास महातमसब कहिवेकौ;भगवतरसिक अनन्य वचन युग२गहिवेकौ
तजै निवृति प्रवृति रहै नित तिन के पासा ।
नित्यविहार अखंड मिलन की जिनको आसा ॥१०९॥

कौवा धोयेहंस नहिं होय न वक्कुर श्वान;रासभ ते हय होय नहिं जोधोवें भगवान
जो धोवें भगवानसाखि देखौदुर्योधन;हरिआए वनिदूत गये फिरि भयो न बोधन
भगवतरसिक अनन्य होय नहिं बाम्हन नौवा ।
गुण सुभाव नहिं मिटै हंस संगति करि कौवा ॥११०॥

काटै कूकर बावरो जाको लागै भूत ; करै अमल तहँ आपनो दावि परायो पूत ।
दावि परायो पूत प्रेमकी यह गतिजानौ; जियते ईश्वरहोय साखि ब्रजवधू वखानौ
भगवतरसिक अनन्य होय अद्भुत रस चाटै ।
स्यामास्याम विहारनित्य तिहि काल न काटै ॥ १११॥

सांचोनहिंनिजधर्मकोउकासौं करियेप्रीति;व्यभिचारी सबदेखियेआवतनहिंपरतीति
आवतनहिंपरतीति दीजियेकाकोनिजधन;मनमाफिक नहिं मिलैखोजिदेखेवस्तीवन
भगवतरसिक अनन्य संग की सहै न आंचौ ।
कुकर हाड़ चबाय सिंह मारै गज सांचौ ॥ ११२ ॥

———

श्रीसीतलदासजी

छप्पै—श्रीठाकुरदास मंहत स्थान गद्दीश्वर टट्टी,
तिनके शिष्य ए रसिक बिहारी सो अति सट्टी।
आनँद अरु गुलजारचमन बिरच्यो रस-पूरे,
मानों घायल-करन-अस्त्र आशिक को रूरे।
श्रीसीतलदास सीतल भए रारस मंज रसमय बिरचि;
अवगाह्यौ श्रीस्वामी-रस-पथ कुंजबिहारी छाप खचि। वि०शा०

महंत श्रीसीतलदासजी, महंत श्रीठाकुरदासजीके शिष्य थे; जो श्रीनिम्बार्क सम्प्रदायान्तर्गत स्वामी श्रीहरिदासजी के परम्परा में टट्टी-स्थान के गद्दी पर सम्बत् १८५६ से १८६८ तक विराजमान थे। इनके जन्मस्थान एवं जन्म सम्बन्धी नाम अज्ञात हैं। इसका कारण, प्राचीनकाल के प्रथानुसार इन्होंने आत्म-सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा है और विरक्त-वैष्णवों में जन्म-सम्बन्धी समस्त संस्कार परिवर्तन होजाने के कारण इसे विशेष महत्व नहीं दिया गया है। वैष्णवी-दीक्षा होजाने और विरक्त-वेष ग्रहण करने के पश्चात् पुनर्जन्म मान लेते हैं, प्रायः देखा गया है कि कितने ही सन्त महानुभाव बाल्य-काल से ही बृज में निवास करने वाले का वेष-भाषा तो परिवर्तन हो-ही जाता है; जन्म-जात विषय बिलकुल विस्मरण-सा हो जाता है, जिज्ञासा करने पर वे इस विषय में कुछ भी नहीं कह सकते। श्रीसीतलदासजी ब्राह्मण-कुलोत्पन्न थे। इन्होंने बाल्यकाल में ही श्रीवृन्दावन में आकर वैष्णवी-दीक्षा ग्रहण की। इनके शिष्य श्रीधीरमदासजी चरखारी गये वहाँ के तत्कालीन राजा उनके शिष्य हो गये। वहाँ सीतलदासजी के नाम से एक मंदिर भी निर्माण हुआ और वृन्दावन विट्ठलपुरा में भी इन्होंने मंदिर बनवाया; इसलिये वैष्णवों ने इन्हें महन्त-पदाभूषण से अलंकृत किया।

इनके द्वारा निर्मित १-गुलजारचमन २-आनन्दचमन और ३-बिहार-चमन नामक ग्रन्थ उपलब्ध हैं जो टट्टीस्थान के भूतपूर्व-महन्त श्रीभगवान-दासजी महाराज ने सुकदेवप्रसाद शर्मा मथुरा-निवासी के द्वारा प्रकाशित करवा कर अमूल्य वितरण करवाये थे। इसमें कुल २५८ छंद हैं कुछ फुटकर छन्द भी प्राप्त हैं। इनकी रचना खड़ी बोली में हुई है, जिसमें फारसी और

संस्कृत भाषा के शब्द भी मिश्रित हैं। तीनों चमनों में विशेषकर टट्टी-स्थान के इष्ट उपास्यदेव श्रीविहारीजी के नखशिष का वर्णन है। इसके छन्द बहुत से लौकिक रस-प्रधान समझते हैं; किन्तु उनकी भूल है "जाकी रही भावना जैसी; प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।" वाणी एवं काव्यकर्ता सुकवियोंकी कविता कामधेनु हैं। इनके छन्दों के उत्कृष्टता को स्पष्ट करते हुये मिश्रबन्धु विनोदकार लिखते हैं—"सीतल के चमन वास्तव में भाषा-साहित्योद्यान के अलंकार हैं। इनके सब छंद प्रेम से परिपूर्ण हैं। इसमें मुख्यतया नखशिष से कहा गया है और पोशाकों एवं पगड़ियों का विस्तार-पूर्वक वर्णन है। इनकी पूरी रचना में एक छन्द भी शिथिल या नीरस नहीं है और वह बड़ी ही ज़ोरदार एवं चित्ताकर्षिणी हैं। इनके सब छन्द खड़ी बोली में हैं। खड़ी बोली के कवियों में सीतल का नंबर प्रथम जान पड़ता है, क्योंकि इनके पहले का और कोई खड़ी बोली का पद्य-ग्रंथ अबतक दृष्टिगोचर नहीं हुआ, केवल किसी-किसी कवि के दो-एक ऐसे छन्द मिलते हैं। खड़ी बोली में अद्यावधि जितने कवियों ने रचनाएँ की हैं वे इनकी रचना के सामने आदरणीय नहीं हैं। जो लोग खड़ी बोली पर यह दोष आरोपित करते हैं कि इसमें उत्तम कविता नहीं हो सकती, उनको सीतल की रचना देख कर अपना दुराग्रह अवश्यमेव छोड़ देना चाहिए। बात यह है कि उत्तम कवि किसी भी भाषा में मनमोहिनी कविता कर सकता है; उसकेवास्ते किसीभी भाषा एवं किसी बिषयका अवलम्बन नहीं।

सीतल की कविता में शब्द वैचित्र्य का भी बल है। इन महाशय की रचना देखने से जान पड़ता है कि ये भाषा के विद्वान् होने के अतिरिक्त फ़ारसी तथा संस्कृत के भी पूर्ण-ज्ञाता थे और ज्योतिष का भी अभ्यास रखते थे। इन्होंने बड़ी ही उड़ती हुई भाषा में रचना की है और उर्दू के कवियों की भाँति बड़े-बड़े तलाज़िमें बाँधे हैं। इनकी रचना में हर स्थान पर लालबिहारी में ईश्वरीय-भाव स्थापन से ईश्वर में कुछ लघुता आ सकती है, परन्तु कष्ठ-कल्पना से हक़ीक़ी अर्थ अवश्य हो सकता है। इनकी रचना में स्वछन्द उमंग, उपमा, रूपक और अनूठापन की खूब बहार है और ख़यालात की बलंद--परवाज़ी तथा बारीकियाँ अच्छी हैं। इनकी गणना हम पद्माकर की श्रेणी में करते हैं।" इनके द्वारा विरचित गुलज़ार, आनन्द और बिहार तीनों चमन उद्धृत किए जाते हैं—

गुलज़ार-चमन

समझत ही सब दुख करै ग़म से पावै विश्राम अमन,
फिर इश्क़ मजाज़ हक़ीक़ी का दिल सेती परदा होय दमन ;
सुर, नर, किन्नर की कौन गिनै देखें प्रसन्न ह्वै रमारमन,
इस हुस्न-बग़ीचे का बूटा है शीतल का गुलज़ारचमन ॥ १ ॥

वरणन कर चरण बिहारी के जे घर उपमा की भीरों के,
अँगुली दल-दाड़िम सुमन-कली नख-प्रभा-पुञ्ज छवि नीरों के ;
दिल बिस्मिल पड़े तड़फते हैं अबतक चम्पक-दल चीरों के,
दमके दिनकर के आले से नग हीरेनुमा जँजीरों के ॥ २ ॥

पङ्कज पर बिजली लिपट रही दिज देखें धरत न धीरें हैं,
नौरतन जड़ाऊ की बेलें बिध रची तामरस तीरें हैं ;
कुन्दन की ओप दमक ऐसी मनमथ के मन को चीरें हैं,
या लाल बिहारी के पङ्कज-पद हीरेनुमा जँजीरें हैं ॥ ३ ॥

माणिक के चौके चुन्नी के छवि छद गुलाब के मात पड़े,
कै ललित नगीने मिरज़ाँ के लगते हैं ये उपमान कड़े ;
दिनकर की किरणें मन्द लगें लखि जिनको उड़ुगण जात गड़े,
नख लाल बिहारी के पङ्कज-दल उदें शरद के शशी चड़े ॥ ४ ॥

हैं कोमल अरुण गुलाब-सुमन लखि जिन्हें देख ललचाय सदाँ,
नख नग से दमकें जड़े हुए मुक्ताहल की छवि छाय सदाँ ;
कविता कहि कैसे वरण सकै उपमा सब देखि लजाय सदाँ,
वे वारिज-चरण बिहारी के शीतल पर रहौ सहाय सदाँ ॥ ५ ॥

सेवें सनकादि, पन्नगारि, अज, ईश, हिये व्रत, धारी के,
हैं कोमल अरुण गुलाब सुमन छवि राजत शोभा भारी के ;
मेरे उर बीच समाय रहे वे कुञ्ज-केलि-सञ्चारी के,
अघ-हरन कलुष के नाश करन वारिज-पद लालबिहारी के ॥ ६ ॥

नख शरद-चन्द्र घन-तिमिर-हरण अँगुरी चम्पक-दल धारें-सी,
कै पंचबाण के तरकस की ये पांचौं कला सुधारें-सी ;
दाड़िम-दल सुमन-कली सुन्दर उपमा कवि सहज बिचारें-सी,
गुल मदनबाण आनन्दमई बिधि-घर पर वन्दनवारें-सी ॥ ७ ॥

पङ्कज पर बीरबधू बैठी उपमा लखि होजा कुन्द कहीं,
कै शरद-कमल पर दल-विद्रुम देख छुटैं दुख द्वंन्द कहीं ;
पङ्कज-दल ऊपर चुन्नी-सी बरणें मति रहु मुख मुन्द कहीं,
कुन्दन पर माणिक जड़े हुए जानी मिहँदी के बुन्द कहीं ॥ ८ ॥

नख-शरद-चन्द्र मिहँदी कोरें कुन्दन के बाग सुहाये-से,
अघ-हरण तिमिर के नाश करन मेरे उर बीच समाये-से ;
नौरतन जड़ी जञ्जीर झलक एड़ी गुलाब-दल छाये-से,
मखमल जरदोजी काम कोश छवि-चरण चूमने आये-से ॥ ९ ॥

माणिक के चौके जड़े हुए विद्रुम-रँग जरद जमी-से हैं,
छवि छद गुलाब के मात पड़े उर कण्टक दरद कशी-से हैं ;
तारागण मोती अस्त बेध जग राखें ललित अमी-से हैं,
नख लालबिहारी के शीतल क्या पूरण-शरद शशी-से हैं ॥ १० ॥

माणिक, मोती, नभ-तारागण दरशन कर फेर न भासे हैं,
चम्पक-दल मंगल चढ़े हुए या दल-गुलाब के खासे हैं ;
दिनकर की किरणें मन्द लगें दुति हीरे-ओप दुजा-से हैं,
नख लालबिहारी के शीतल क्या बाँके चन्द्रकला-से हैं ॥ ११ ॥

लखि ललित पींडुरी परम नरम चम्पक गुलाब-दल भासी है,
या शमे कफूरी का ज्वाला दीपक की शिखा सुधासी है ;
नरगिस गुलदस्ते जड़े हुए उन्नत गुलशन के बासी है,
बिजली के पुञ्ज शरद सुन्दर या सूधी चन्द्रकला-सी है ॥ १२ ॥

घन-जघन अनोखे जानी के बरणन मुझसे नहिं होते हैं,
या साफ आइने चीनी से रम्भा लखि झमझम रोते हैं ;
मखमल मखतूल मुसज्जर या खासे सब खाते गोते हैं,
या अमरबेलि दो बीच चमन के बीज-दरद का बोते हैं ॥ १३ ॥

कै जान बाल की गिरह पड़ी खोले से होवे अमर कहीं,
कैसी कल कञ्चनकी दिलवर तनुधारी बैठा समर कहीं;
कै लीक भावई की सोहै नभ में निश्चय का भ्रमर कहीं,
उसको दो दीन दरश होवै जो देखै तेरी कमर कहीं ॥ १४ ॥

कुन्दन की कलियां रतन जड़ी रेशम से मिली विराजै हैं,
लटकन के मोती लहरदार घुँघुरू के गुच्छे साजै हैं;
अलबेली कटि पर बँधी हुई लखि मैन-मनोरथ लाजै हैं,
यह क्षुद्रघंटिका जानी की सुन मदन-दुंदुभी बाजै हैं ॥१५॥

तन ललित तरंगन की भोंरी जल-केलि नैन सरस-सी है,
कै नभ में यन्त्र कटोरी-सी यह सुधा-बुन्द बरसी-सी है;
बांबी रोमावलि पन्नग की उपमा नहिं और लसी-सी है,
जानी की नाभि कहा वरणौं कविता की होत हँसी-सी है ॥ १६ ॥

मृदु-माखन कुन्दन वरक़ कहां जिसकी उपमा तू ल्यावेगा,
फिर कदली-दल सा वरण-वरण हक नाहक लोग हँसावेगा;
मख़मल की गिल्म मनोभव में देखे मुनि-मन ललचावेगा,
चौकोर चन्द्रमा किया हुआ फिर उदर देख नहिं भावेगा ॥ १७ ॥

मंजन करते में लखा कभी केशर-दल कुन्दन-साभा-सा,
हिमकर-सा बदन वरणते हैं लगता है निशिपति आभा-सा ;
दरशत ही सब दुख दूर करै परसत गुलाब-दल जाभा-सा,
तन लालबिहारी का चमकै चीरै चम्पक का गाभा-सा ॥ १८ ॥

कुन्दन की घटित ओप दिलवर नौख़ाना चुन्नी चमकन दे,
मखतूल श्याम के वरण वरण छवि-जोति जगमगी झमकन दे;
नग लाल, जवाहर जड़े हुए दिल चमकचोंध में रमकन दे,
गल बीच बिहारीलाला के जुगनू का चौका दमकन दे ॥ १९ ॥

चौकोर चन्द्रमा बीच किधों यह इन्दु-बधू की धार धसी,
प्यारे कुन्दन की पाटी पै चुन्नीगण-चौकी-चारु बसी ;
चम्पक-दल मंगल चढ़े हुए सुनते ही दिलवर भौंह कसी,
कै लालबिहारी के उर में क्या सुरख़-बिद्रुमी-माल बसी ॥ २० ॥

गरदन सरोज की कली भली या शंखनाल सुखदाई है,
या शमे कफूरी का आभा छवि जगमगान दरशाई है;
उपमा को ढूंढ़ रहै कविता यह बड़े यतन कर पाई है,
क्या मैन-भूप की ये शीतल यह मीनेदार सुराई है ॥ २१ ॥

जिन्नत गुलदस्तों के ऊपर बरणन नजरों की ठहरों का,
बिजली सी झलक तलै चन्दा रस रूप सुधा की छहरों का;
जगमगन पीक की लीक अरुण नग भ्रमें लाल रँग बहरों का,
कण्ठी कुन्दन नग जड़ी हुई गुच्छा रेशम की लहरों का ॥ २२ ॥

तन शरद काल के सरवर में युग कमल नाल की शोभा है,
या पारिजात की दो डालें शृंगारदान की गोभा है;
चम्पक दल बेल बनाई सी जिन देखी जाने जोभा है,
भुज लाल बिहारी की शीतल लख चञ्चरीक मन लोभा है ॥ २३ ॥

शीतल कुछ तुझे नजर आया तज यार दुःख अब द्वन्द कहीं,
बारिज की ललित पालकी में जानी यह बैठा चन्द कहीं;
रेशम की घुण्डी तारागण मत कर दीजो दिल बन्द कहीं,
मालूम हुआ यह देखा है दिलबर का बाजूबन्द कहीं ॥ २४ ॥

जो शशी नवग्रह एक रास आवें तौ उपमा बनै कहीं,
तिसपर भी ऐसी जिलौ नहीं बैठै तारागण घने कहीं;
रेशम मुक्केश के गुच्छों की लहरों को कविता भनें कहीं,
बांधा है बाजूबन्द यार मनि जा दिल को करि मनें कहीं ॥ २५ ॥

बरणन जो करों कहीं दीखै उपमा सम और न होती से,
नग लाल जवाहर जड़े हुए जगमगैं दिवाकर जोती से;
कै कोमल अरुण सुधार धरैं ये सहज निशाकर गोती से,
नख लाल बिहारीके चमकें छबि कमल दलन पर मोती से ॥ २६ ॥

नग चुन्नी चौके जड़े हुए चम्पक-दल मंगल बैठे बन,
या पंचबाण ने तीरों की नोंकों पर राखे आछे मन;
नख लालबिहारी के शीतल क्या शरद-चन्दमा के से कन,
या बिमल-कञ्ज की कलियों पर जानी चढ़ि आये तारागन ॥२७॥

या पंचबाण की पंच-कला कै पारिजात की कलियां हैं,
कै अरुण-कली-दल-दाड़िम की तिनकी उपमा दलमलियां हैं;
कञ्चन-सरोज के दल पांचौ कै मांचे की सी ढलियां है,
इस लालबिहारी की शीतल अँगुली चम्पे की कलियां हैं ॥ २८ ॥

कुछ गुस्से-सेती भरा हुआ अरु बँधन अजायब मूठी की,
नाखून हिनाई के भीजे उपमा जहरीली-बूटी की;
चम्पक-दल बिजली चढ़ी हुई फिर नग जगमगत अनूठी की,
दिल भीतर फसी निकलती है छवि हीरेनुमा अँगूठी की ॥ २९ ॥

गिरदाव चन्द्र का गोल किया या मैन-भूप की केली है,
या कमल-कर्णिका-गिर्द-पुंज यह भी उपमा सब पेली है;
दिल समझ-समझ चुप होता है कविता का दिलवर बेली है,
मो मन-मतंग के फँसने को जानी की सुघर-हथेली है ॥ ३० ॥

चम्पक-दल-कली अँगुलियों की यह भी उपमा सब जीरन की,
नख चमकें ललित सितारे से छवि हीन जलज अरु हीरन की;
मिहँदी के रँगे हुए पोरे दुति-पंचबाण के तीरन की,
झमकावै खड़ा हुआ पहुँची ले तेरी ज़रब जँजीरन की ॥ ३१ ॥

ऊदे अरु सुरख चमेली की लागी चम्पे की चाह कहीं,
छवि सूधी गूँधी हुई दिलवर मिलती है इसकी थाह कहीं;
जानी कर छरी छरहरी ले निकला था वह इस राह कहीं,
मालूम हुआ वह थी प्यारे मुझ जिगर लपेटी आह कहीं ॥ ३२ ॥

क्या कमल नाल में बिजली की जानी उपमा से अड़े कहीं,
कुन्दन के शेरदहाँ सुन्दर ऊपर जालिम नग जड़े कहीं;
मालूम हुआ दिल मेरे में वे महा तौक़ हो पड़े कहीं,
इस लालबिहारी के शीतल देखे हैं तैनें कड़े कहीं ॥ ३३ ॥

चम्पक-दल, सोन जुही नरगिस छवि सबके दिल को दर्दनुमा,
अलबेली बँधन छबीले की लखि हो जा रतिपति गरदनुमा;
तुर्रे की लहर क़हर ऐसी उपमा कतरन को करदनुमा,
यह लालबिहारी हाय आज सज आया फेंटा ज़रदनुमा ॥ ३४ ॥

जब से वह फेंटा गुलेनार रँगमगा सहज सज आया-सा,
उपमा की मुझे तलाश रही उपमान न दिल में भाया-सा ;
महिसुत से सरस अरुण जेते लखि दाड़िम-सुमन लजाया-सा,
शीतल जिन देखा सो जाने मरगजा सुरख बल खाया-सा ॥ ३५ ॥

ऊदी अलबेली अतर मली छवि देखत नयन समाय गई,
जानी बुढ़हान पुरी देखी आशिक के दिल को भाय गई ;
घायल-सा पड़ा ससकता हूँ अब तक मुख से नहिं हाय गई,
इस लालबिहारी की शीतल बेतरह बैंजनी खाय गई ॥ ३६ ॥

अलबेली-बँधन छबीले की दिल देखैं लेत न ताबी है,
इक पेचा पेच हजार करैं समझे से बड़ी खराबी है ;
तिसपर कशमीरी अतर मला मुख जगमगान महताबी है,
कहु किसके दिलवर कतल करनको शिर पर सजी गुलाबी है ॥३७

ये सहज रँग जी लेवैगा जो तुमने यह छवि साजी है,
दिल चाहै दिलवर सो करिये हम धरी शीश पर बाजी है ;
हम में तो एती ताब न थी लाचार तुम्हारी राजी है,
ये ज़ख्म कलह के मिटे नहीं फिर तू सज आया प्याजी है ॥ ३८ ॥

क्या छवि-सिकन्दरी पन्ने की जो लख पावै रँग-भरा कहीं,
तोते की गरदन गर्द करी शशि-पूत बराबर करा कहीं ;
यूसुफ़ हज़ार जो हो आवै दल बांध हुस्न का पड़ा कहीं,
क्या ताकत उनको ताव रहै जो देखैं फेंटा हरा कहीं ॥ ३९ ॥

ककरेजी-चीरा अतर-मला बांकों से बांकी हाय चहन,
गुंचा शिर पटकि पुकार करैं लखि जानी तेरा मीम-दहन ;
दिल टुकड़े टुकड़े हुआ फिरै जबसे देखी शमशेर-गहन,
बेदरद कलेजा चूर करै फिर हँसकर तेरी 'अर्जी' कहन ॥ ४० ॥

रंगरेज काम में जाम कहर भर डोबी रंग-बिलासी है,
चुनि चार चतुर चतुराई से फिरि अतर लपेटी खासी है ;
ये पड़े पेच दरपेच यार यह रूप बधिक की फांसी है,
यह लाल बिहारी हाय ! आज शिर सजि आया अब्बासी है ॥४१॥

गरदने मयूरने खम खाया उपमा अरु नहीं समानी की,
दे नील कसूंभी डोब दिया चुनि चारु चतुर अभिमानी की ;
फिर अतर लपेटी नागिन-सी जहरीली बारह-बानी-की,
आशिक का सीना चाटगई बेतरह-बैजनी जानी की ॥ ४२ ॥

चुनरी सुरंग रँग चीरेकी उपमा कौ कविता हिले-हुवे,
दिलमें से लहर उठाते हैं उपमा के गुच्छे पिले-हुवे ;
सुन लालबिहारी बानी से कहते हैं सज्जन मिले-हुवे,
मुख शरद-चन्द्रपर अरुण-घटा तिसमें तारागण खिले-हुवे ॥ ४३ ॥

पचरंग बांधनू बँधा हुआ सुन्दर-रस-रूप छहरिया है,
कुछ इन्द्रधनुषा सा उदै हुआ नौरतन प्रभा रँग-भरिया है ;
आरी-सी धारैं कहर करैं प्यारे रस-रूप-ठहरिया है,
कहु अब क्या बाकी ताब रहै जानी नें सजा लहरिया है ॥ ४४ ॥

चीरा सफेद बिन कहतेही बाँधा को कहना माने हैं,
तिस पर मोतीगण गुच्छे से कुछ जरीतार उरझाने हैं ;
ज्यों सूरज-किरण निकल आईं तरागण भोर दिखाने हैं,
क्या पूरण-शशि पर शरद-जलद जिन देखा सोई जाने हैं ॥ ४५ ॥

कुछ हमको तो यह खबर न थी यों छवि काढ़ेगा पली-हुई,
अब लग उर पड़ी ससकती है मनमथ की बरछी हिली-हुई ;
इक पेचा सजा अनोखे ने उपमा सब देखी दली-हुई,
मुख-शरद-चन्द्र पर आज बँधी कंजई अतर से मली हुई ॥ ४६ ॥

खुशबोई उठी अँग सेती महिकान चहूँदिश छाय गई,
मजमुआ अतर कुछ फितने का लगते ही हिये समाय गई ;
अलबेली बँधन छबीले की रसमसी चित्त को ताय गई,
यह हाय अगरई जानी की दिल-बीच दरद दरशाय गई ॥ ४७ ॥

दो तरफ़ किनारी लगी-हुई छवि बिजली कैसा रेला है,
क्या काम तिल्लई चिल्ले पर बूटे पर खैंचा बेला है ;
इक छड़ी फूलकी लिये हुए गुलशन में खड़ा अकेला है,
यह लालबिहारी शरद-चन्द्र-शिर सजा दक्खिनी-सेला है ॥४८॥

मरकत के तार सिवार किधौं छवि के अपार घन-धार उये,
कै मुख-मयंक सों लिपट रहे पन्नग के छौना सुधा चुये;
लहराते हुए सहज देखे मकरन्द सने सुकुमार सुये,
छहराते छोहभरे छलकें छरहरे चीकने छवा छुये ॥४९॥

कारे सटकारे लहरदार छविदार फनी के जाये-से,
अरगजे अतर से मले-हुये मुख-शशी संग लपटाये-से;
मखतूल नीलमणि चारु-चौंर उपमा को फिरें लजाये-से,
कच कुंचित लालविहारी के लहरात लहर-बल-खाये-से ॥५०॥

कारी सटकारी लहरदार दिल देखत लगदी अच्छी है,
दिया तेल फुलेल अतर आला खुशबोई दे विच मच्ची है;
ये निकसे श्रोन वांबई से उपमा सब इनकी कच्ची है,
जुल्फें इस लालविहारी की क्या सिर्फ़ नाग-दी बच्ची है ॥५१॥

पंकज पर भौंरे मधुमाते शशि पर अहि-पति की भौंरें हैं,
मखतूल नील-मणि चारु-चौंर उपमा नहिं आवत नीरैं हैं;
कै वरक़ तिल्लई पर शीतल ये खैंच दई तहरीरें हैं,
या लालविहारी के मुख पर क्या क़हर जुल्फ़ जंजीरें हैं ॥५२॥

क्या शरद-चन्द्र के पीछै आ नागिन ने लीनी ओटी है,
रेशम के गुच्छे ज़रीतार फिर अतर लपेटी मोटी है;
मखतूल नील-मणि चंचरीक उपमा सब लोटक-पोटी है,
इस लालबिहारी की शीतल क्या चित्त चुरावन-चोटी है ॥५३॥

न्हा-धो कर लम्बे साफ़ किए उपमा को पन्नग केते हैं,
चेहरे पै दोनो ओर खिले छवि ज़ेब अजायब देते हैं;
चोवा चहकारे अतर मले छरहरे चीकने जेते हैं,
इस लालविहारी के शीतल क्या खिले-बाल जी लेते हैं ॥५४॥

छवि शरद-कञ्ज पर पुण्य-पुञ्ज मकरन्द मधुव्रत पिए-हुए,
मखतूल नीलमणि केकी की गरदन पर दावा दिए-हुए;
लहराती चोवा चारु चुनी ज़ालिम-कपोल को छिए-हुए,
मुख शरद-सुधाकर में वैठी अहि-बाल-कुण्डली किये-हुए ॥५५॥

कारी सटकारी लहरदार छबिदार अतर सों पाली हैं,
मखतूल नीलमणि चञ्चरीक उपमा के जी में साली हैं;
कर साफ़ अतर से मुखड़े पर बेतरह पेचवां डाली हैं,
इस लालबिहारी की जुल्फें मति छेड़ नागनी-काली हैं ॥५६॥

बँबई कानों से कढ़ी-हुईं देखत ही चित में पैठीं हैं,
मोती से निकलीं उलझ रहीं चुन्नी ले मुख में ऐठीं हैं;
नीलम के तार सिवार किधों छवि चञ्चरीक की भैठीं हैं,
जुल्फें इस लालविहारी की मणिदार नागिनी बैठीं हैं ॥५७॥

मखतूल नीलमणि चञ्चरीक सब की उपमा को पेलें हैं,
मुख-शरद्-चन्द्र से लगी हुई क्या सुम्बुल-की-सी बेलें हैं ;
लहराती हुई नज़र आईं दिल में ज़हरों की रेलें हैं,
रुखसार हेम के थालों पर दो चढ़ी नागनी खेलें हैं ॥५८॥

मञ्जन करने को यमुना पर जानी उठ-धाया भोर कहीं,
मुख शरद्-कञ्ज-सा खिला हुआ छूटीं जुल्फें दोओर कहीं;
दे पेच निचोड़ी लहर भरीं टपकैं मुक्ताहल कोर कहीं,
ज्यों चन्द्र नाग नें चूस गई मधु चुवा पूंछ की ओर कहीं ॥५९॥

खुलते में कभी नहीं देखी इनकी तू ने छहरान कहीं,
पगड़ी के पेच पिटारी में मूंदीं ज़ालिम ज़हरान कहीं;
फुंकारें कभी निकलते-ही दिल में उपजै थहरान कहीं,
नागिन फिर पानी क्या माँगै देखै इनकी लहरान कहीं ॥६०॥

मुख-शरद्-चन्द्र पर सम्बुल का गुच्छा खुशबोई बसा-हुआ,
या अमल कमल पर ऐ दिलवर गण-चञ्चरीक का धसा-हुआ;
जानी यह किससे जाय कहें तुझ जुल्फ़-जाल का फँसा-हुआ;
रस्मी से डरे अरे ज़ालिम जो स्याह-साँप का डसा-हुआ ॥६१॥

जल-हुस्न के गहरे ताल कमल खिलरहत कि लपट सुधारत यों,
महकत खुशबू की लहर उठत अरु प्रेम-पंथ गल डारत यों;
ये लहलहात लग लच लों कम्पत झमकि-झमकि झझकारत यों,
यह मुख पर जुल्फें क्यों ज़ालिम मधुभरे भँवर गुञ्जारत यों ॥३२॥

ज्यों चित में पार निकल जावे ये नावक-का-सा तीर कहीं,
फिर अतर लपेटी लहर-भरी-छवि जादू-का-सा बीर कहीं;
कैसा हीं चतुर चलाक चित्त रहता है कोई धीर कहीं,
जिसकी गर्दन में पड़े जाय यह जानी-जुल्फ़-जँजीर कहीं ॥६३॥

लहराता हुआ कतरना-सा या पञ्चबाण का कुर्रा है,
दिल के पत्ती को ऐ जालिम यह मीर-शिकारी जुर्रा है;
जगमगे जरी के फूल लगे या सब उपमा का गुर्रा है,
इस लालबिहारी के शिर पर क्या मदनबाण का तुर्रा है ॥६४॥

नग अरुण बीच में जड़ा हुआ उपमा को मंगल भटकै है,
गिरदाब चन्द्रमा चौंकि पड़ै फिर समझ-समझ शिर पटकै है.
नौरतन जड़ाऊ काम हुआ अब लग सोने में खटकै है,
इस लालबिहारी के शिर पर इक्के का मोती लटकै है॥६५॥

है सुन्दर सहज सुघर अलबेला चलत अटपटी बान करै,
पलकों के तीर शान धर के कसि भौंहें खैंचि कमान करै;
तुर्रे के तार छुटे मुख पर उपमा कवि कौन बखान करै,
लखि लालबिहारी के मुख पर दिन की किरणें कुरबान करै ॥६६॥

बरणन करने को क्या बरणों बरणों जो जेती बानी है,
ग्रह तीन उच्च के पड़े हुए जानी यह यूसुफ़ सानी है;
शशि भवन जीव सफ़री सुर गुरु कन्या बुध ज्योति सगानी है,
इस लालबिहारी जानी की क्या अर्द्ध-चन्द्र पेशानी है ॥ ६७ ॥

चुन अर्द्ध-चन्द्रमा चूर किया देखा यह बांका त्यौर कहीं,
हीरे से जड़े हुए मोती सूझै है दिल कर गौर कहीं ;
दो धनुष दोज की कला उई फिर है उपमा को ठौर कहीं,
इस लालबिहारी की शीतल दर्शे अलबेली-खौर कहीं ॥ ६८ ॥

मुख पै रोरी का बिन्दु दिया लखि तरुण सारथी निन्दु हुआ,
कै प्रगटी भाल नाग-मणि बाहर सहज प्रभा का सिन्धु हुआ ;
जो सहस धार हो शीतल कै यह शरद-सुधा का सिन्धु चुआ,
कै मीन रथी ने ये शीतल अलि सहित आय अरबिन्द चुआ ॥६९॥

नग–अरुण झलक छवि कुन्दन की लख लौटे महिसुत पड़ा-हुआ,
गिरदाब लहर सों लखि हिमकर क्या कढ़ै ज़िमी से अड़ा–हुआ ;
जगमगन प्रभा–नौरतनन की है इन्द्रधनुष–सा कड़ा–हुआ,
मालूम हुआ जी लेवेगा जानी का बेंदा जड़ा–हुआ ॥ ७० ॥

तुर्रे की हलन तरुन–किरणें आनन–शशिअमित–विशाला है,
मंगल–सा बिन्दु–सुरंग दिए बुध हरित–मणी जग–जाला है ;
केशर गुरु लटकन कवी हुआ तिल–श्याम लसत शनि-शाला है,
जुल्फैं अगुशिखी रूप–थरहन लाला नवग्रह की माला है ॥७१॥

वारिज पर मधुकर–छौनों की छवि ह्याँ भी उपमा निन्दी है,
या भौंह बनाते क़लम विन्दु विधि करते गिरी सुहिन्दी है ;
या कमल–कली पर नीलम की जगमगन रूप रस–रिन्दी है,
या लालविहारी के मुखपर क्या सहज स्याह सी विन्दी है ॥ ७२ ॥

कै दो शृंगार की वेल चढ़ी हिमकर ने लई निसा के हैं,
महताब जवाहर, नीलम की बांधी कारीगर ताके हैं ;
वारिज से भौंरे लगे–हुए जिन देखी भौंह अदां के हैं,
कै दो शमशेर फिराई है या दृग–चकेत की बाँके हैं ॥ ७३ ॥

जानी भौंहौं की तानों से हमको मत खैंचो आरों पर,
दर्शन अलवेले बांके का चलना खन्जर की धारों पर ;
यह वार तुम्हारे होते हैं दिलवर–दिल-शेर हजारों पर,
कट जा मन सुफल मनोरथ है काशीकरवट के आरों पर ॥ ७४ ॥

नासा चम्पे की कली भली शशि ईश धनुष ललचावक है,
दृग दो नटवों का बांस गड़ा तिस बीच कला की धावक है;
या खूवी की मर्याद बँधी दिलदार चित्त में चावक है,
जानी यह मुझै नजर आया या सर–कटाक्ष की नावक है ॥ ७५ ॥

चम्कदल सुर–गुरु उदै हुआ यह भी उपमा चित खटकन है,
कै शरद–चन्द्र पर तारागण जानी मिहदी की भटकन है ;
वरणन जो करों कहीं दीखै मुख सुधा–विन्दु–सी गटकन है,
वरमा–सा दिल में फिरा करै तेरा–सा तेरा–लटकन है ॥ ७६ ॥

जैसी तेगे की लहर उठी तैसी इक्के की धार धसी,
पन्ने के तले सुराही का मोती जो बुध से लगा शसी ;
नौरतन चोक बाजू सुन्दर अरु कण्ठ आय उरबशी बसी,
कहु दिल सें कौन निकालेगा जानी यह नग जगमगन फसी ॥ ७७ ॥

जो दर्शन करै नवग्रह का प्यारे यह चित की लगन कहां,
नौरतन धुकधुकी जड़ी हुई बिन गले परे यह ठगन कहां ;
रेशम के गुच्छे लगे हुए उपमा कै ऐसी खगन कहां,
तेरी सौं हाय अरे तुझ बिन जानी यह नग जगमगन कहां ॥ ७८ ॥

अलवेली लाल-पाग के ऊपर शोभा पड़ी सरसती है,
रँगमगे नैन-अलसान-भरे छवि अद्भुत खुली दरशती है ;
श्रमकण सों बिन्दु ओस-के-से लट-नागिन छुटी परसती है,
मुख लालबिहारी से शीतल क्या विहँसन सुधा बरसतीहै ॥ ७९ ॥

चौके की चमकन चटकदार छवि देत चुनी अवरेषा क्या,
इस अधर-सुधा की लहर उठै कहि शील पियूष विशेषा क्या ;
मुख-चन्द्र विहारी लखा नहीं फिर आय जक्त में देखा क्या,
इस बिहँसन दशन चँचलाई की शरद-चन्द्र में लेखा क्या ॥ ८० ॥

मुख-चन्द्र बिहारी तेरे की सम कोई चन्द्र बतावैगा,
यह जानि परी दिल बीच सदा वह कभी न उपमा पावैगा ;
यह तीखे, तरल, तेज, अनियारे कुटिल-कटाक्ष लगावैगा,
यह बिहँसन हँसन चंचलाई कहु कहां कलानिधि पावैगा ॥ ८१ ॥

गुस्सा करते में लखा कभी सन्मुख नहिं होय प्रभाकर-सा,
हँसते में झड़े चमेली-सी अरु शरद-चन्द्र की आकर-सा ;
दर्पन मैं दर्श मलीन हुआ नित सोचा करै सुधाकर-सा,
मुख लालबिहारी तेरे का है शरद-चन्द्रमा चाकर-सा ॥ ८२ ॥

जानी तेरा मुख-चन्द्र लखे लेता है हिमकर ताब कहीं,
दिल में आदर्श मलीन हुआ फिरता है कञ्ज खराब कहीं ?
क्या ताक़त पड़ी फिरश्तों की जा आगै करै जवाब कहीं,
जब बेनक़ाब हो तू दिलवर अरु रोशद हो महताब कहीं ॥ ८३ ॥

दा हाथी लड़ैं हथेली पै ए भी बातैं मैं मानूंगा,
पञ्चानन-से-ती जोर करे रुस्तम की कला बखानूंगा ;
जो जिमीं जमाँ को एक करैं अफलातूनी पहिचानूंगा,
तुझ भौंह-मोड़ ते खड़ा रहै जानी मैं जबही जानूंगा ॥ ८४ ॥

मुख का वरणन क्या करहि सकै कुछ है उपमा का घेरा-सा,
करि दूर नकाब जहर की वो आँखों में पड़े अँधेरा-सा ;
मैं भी यह वहुत तलाश किया जालिम मन मिला न मेरा-सा,
मुख लालबिहारी तेरे का है शरद-चन्द्रमा चेरा-सा ॥ ८५ ॥

क्यों आशिक़ हो दम भरता है बैठा रहु अपनी आन लिये,
चुप होकर दरद जाम पीजा दुनियाँ में रहु कुल-कान लिये ;
आता है अभी इसी रस्ते अलबेला दिलवर पान लिये,
मिज़गानी तीर खिचे जिस्के अरु अबरू कड़ी-कमान लिये ॥८६॥

मण्डित प्रसून छवि दुगुण बढ़ी कर छरी-छरहरी लिये-हुवे,
निश जागै नैन-खुमार-भरे अलसान-सुधा-रस पिये-हुवे ;
खञ्जन, सरोज, मृग, चंचरीक उपमा सब घायल किये-हुवे,
दृग खञ्जर लिये नज़र आया सुरमे के दाएँ दिये-हुवे ॥८७॥

ज़ालिम बरमी अरु नीमे की दरशे तन ज़रा चसकने दे,
कर महर नज़र की अय दिलवर तू हाय रक़ीब कसकने दे ;
या चरण-कञ्ज लहलहे युगल पलकों से हमें मसकने दे,
क़ातिल जो बिस्मिल किया मुझे टुक खञ्जर-तले ससकने दे ॥८८॥

युग-पलक झलक सों जाल-रंध्र बरुनी रेशम के झाले-से,
चितचोर तरल तीखी चितवन सो अंकुश बलित समाले-से ;
दृग-चाह-डोर की लहर लगी नेही खग-पति का डाले-से,
मुख-शशी पींजरे में लीये दृग-तीक्षण-खञ्जन पाले-से ॥८९॥

झलकें झिलमिले झुके झूमें झपकारे सुघर नवीने हैं,
चपलौहें चटक चोंच चितवन खञ्जन के कसकत सीने हैं ;
लखि शरद-कमल-दल मलिन हुए मृग बनोबास-सा लीने हैं,
दृग लालबिहरी के शीतल युग-मीन महा बड़मीने हैं ॥९०॥

गुण-वारे अरुण-जाल-डोरे दृग-भरे-हुए बेपीरी के,
पङ्कज पर दिनकर की किरणें छीटे मनमथ की बीरी के ;
कै हैं गुलाब में उदे हुए अंकुश केशर-कशमीरी के,
खञ्जन के गले में पड़े हुए गुच्छे दाड़िम-दल-चीरी के ॥९१॥

पट लगे लाज तिय मन्दिर के खुलते ही दिल में ललके हैं,
कै बारिज पान य सरवर के खिल रहे रस-भरे-दल के हैं ;
मुख-रूप स्वाति की बूँद पिये दोउ सीप पलन बल झलके हैं,
या लालबिहारी की शीतल रस-भरी छबीली-पलकें हैं ॥९२॥

क्या शरद्-चन्द्र में खञ्जन से मोती का चारा चरे-हुए,
सफरी, सरोज, मृग, चञ्चरीक सब शीस हाथ पर धरे-हुए ;
जिनके दर्शन कर चित्त बीच जिन्नत के नर्गिस हरे हुए,
दृग लालबिहारी के शीतल जगमगन झमक-रस भरे-हुए ॥९३॥

लहलहे अनोंखे लहरदार जानी ये कंज लगंजन—से,
अलसाते हुए झलकते हैं ये शीतल के मनरंजन-से ;
दरशत ही आनँद-कन्द लसें अरु त्रिबिध-ताप के भंजन-से,
दृग लालबिहारी के दोनों क्या शरद्-चन्द्र में खंजन-से ॥९४॥

मुख सरस-सुधाकर में खेलें शशिकर के छौना भोरे-से,
मुसक्याते-हुए लखे जब से जिय-जलज फिरै चित-चोरे-से ;
कै बीज-बीजुरी के झलकें झिलमिले झमक-रस-बोरे-से,
दन्दां छद लालबिहारी के बिम्बाधर सुधा-झकोरे-से ॥९५॥

लागै ज्यों तीर तुफ़ंग कहीं नावक का गह्वर भर पीवै,
खंजर जमधर का ज़ख्म लगे तो टांके कारीगर सीवै ;
अहिपति का काटा मेरु चढ़े भोंहैं ज़हर लहर पीवै,
शीतल का और इलाज नहीं लटकन का मारा क्या जीवै ॥९६॥

सब यन्त्र मन्त्र बेताब रहैं जब चढ़ै ज़ुल्फ़ का ज़हर कहीं,
फिर लगै सुधा-रस फीका-सा जब सुनी लटपटी-बहर कहीं ;
सुरख़ो आलूदे होंठ लबे क्या पड़ा इलाही क़हर कहीं,
ज़ख़मी हो फिर न सम्हाल सकै लागै जब लटकन-लहर कहीं ॥९७॥

केशर कुसुम्भ गुलाब-सुमन विद्रुम तकि हिये हलाक किये,
गौहर बिम्बा बदनाम किये माणिक के दामन पाक किये;
हंसों के चरबण चोंच चुनी लख ललित—ललाई ताक किये,
अबतक लाला दल फिरते हैं यह रविश गरेवाँ चाक किये ॥९८॥

प्यारे के सुरख-अधर देखे गुंचे की उड़ गई धड़ी धड़ी,
नग मीना जटित अरे ज़ालिम यह फूलों की-सी छड़ी छड़ी;
मुसकान बिहारी की शीतल कहिं अम्मृत-की-सी झड़ी झड़ी,
झमकाहट-दशन-अनोखे का मुक्ताहल-की-सी लड़ी लड़ी ॥९९॥

लट-ललित लहर खाती देखी छबि ऐसी फेर न हेरी में,
सुरमे से जड़े हुए लोचन यह चितवन लखी अनेरी में;
मुख-राका-चन्द्र बिहारी के पै कोटि ऊपमा फेरी में,
यूसफ का ग़र्रा डूब गया इस चाह ज़नख़दां तेरी में ॥१००॥

नीमा प्रीतम कै सुरख़ खुला गल भीतर रुचक चसा-हुआ,
गोया अरुण बादली फोड़ यार शशि जामें दीखै धसा-हुआ;
जागा है पुरुष-मार-खूनी अलसानी-छवि रसमसा-हुआ,
तन बदन दमकता प्यारे का ज्यों हेम-कसौटी कसा-हुआ ॥१०१॥

कारे सटकारे लहरदार सोंधें भीने सगबगे हुए,
फिर विथुरित-कुसुम-मल्लिका के ज्यों तम से तारे लगे हुए ;
मुख-चन्द्र दशन मुक्ताहल-से मुसक्यान-जाल से ढके हुए,
जानी हमको दिखलावेगा फिर भी वे नग जगमगे-हुए ॥१०२॥

अज, विष्णु, ईश वो रूप तुही नभ-तारा चारु सुधाकर है.
अम्बा तारा लों शक्ति सुधा स्वाहा ओम् प्रबल प्रभाकर है ;
हम अंसा-अंस समझते हैं सब बाक-जाल से पा क र है,
सुन लालविहारी ललित ललन हम तो तेरे ही चाकर हैं ॥१०३॥

कोई शक्ति-रूप भजि बाम हुए, कोई स्मृति सासना ग्रसे-हुए,
कोइ महाविष्णु के जापक हैं उर माल छाप भुज लसे हुए ;
कोइ निर्गुण ब्रह्म समझते हैं जे महासुषमना बसे हुए,
जानी हम हाय ! कहाँ जावें?तुझ जुल्फ़-जाल के फँसे-हुए ॥१०४॥

तुझ चरण-कमल की शरण हुवे तेरे ही गुण कूं गुनते हैं,
तुझ बिन यह जगत सुजान जीव हम पड़े शीश कूं धुनते हैं ;
निर्गुण सर्गुण की लहर उठें ताना बाना-सा बुनते हैं,
जानी हम तुमको समझ लिया सब तज हरिभजि ये सुनते हैं ॥१०५॥

कारण कारज ले न्याय कहै ज्योतिष-मत रवि, गुरु, शशी कहा ,
ज़ाहिद ने हक्क् हुस्न यूसफ़ अरहंत जैन छबि बशी कहा ;
रत राज रूप रत प्रेम ईश जानी-छबि-शोभा लसी कहा,
लाला हम तुमको समझ लिया जो ब्रह्म-तत्व त्वं असी कहा ॥१०६॥

उर अवा अनल में आँच दिया तुझ बिरह रंग से पीसा है,
भरि खून जिगर को अय ज़ालिम गुलज़ार रंग दुति दीसा है ;
मजनू फ़रहाद माधवानल इन सब मिल तुझे असीसा है,
हग ठोकर ज़रब न मार यार दिल निपट करकरा शीसा है ॥१०७॥

इक रोज़ बिहारीलाला से यह सहज किसी ने पूछा है,
ज़ीग़े के ऊपर तारागण दुति उदै मलिन छबि सूछा है ;
यह कहौ कहां पाया तुम ? उपमा को दिन मन तूछा है,
शीतल ने मुझे बँधाय दिया यह अश्क गौहरी गूछा है ॥१०८॥

तीखी चितवन के ज़ख्म लगे मेरे दिल बीच अमाने के,
यूनाँ तक मालिज मिलै नहीं मुझ लख्ते जिगर चुचाने के ;
बरुणी की सुई लाल डोरे दे टांके सलज लजाने के,
कुछ मरहम की दरकार नहीं सुन अफ़लातून जमाने के ॥१०९॥

हम दर्दमन्द मुश्ताक़ रहे तुझ बिन उर दूजा दुरा नहीं,
तीखी चितवन का ज़ख्म लगा दिल में सो अब तक पुरा नहीं ;
तुझ हुस्न-बलख़ में अय दिलवर कुछ हमलोगों का कुरा नहीं,
बिहँसन के बीच बिकाते हैं शीतल इन मोलों बुरा नहीं ॥११०॥

जिसतें नित मोती झड़ते हैं ज्यों लिखी कंज की आकर है,
लब से जो कभी निकल आवे शरमिन्दा होय विभाकर है ;
छाती से लगे शरम खाकर बिन दामों बिजली चाकर है,
जो जाने दरदमन्द होवे बेदरद दरद से पाक र है ॥१११॥

तन चम्पक रंग गुलाब-कली उपमा के बीच अरेरा है,
रद कुन्द अधर-दल-दाड़िम से दृग-कञ्जन तोर तरेरा है;
सब अंग सुमन की आभा से शोभा का सिन्धु दरेरा है,
कहु लालबिहारी यह तेरा दिल कारण कौन करेरा है? ११२॥

कानों में हलते हुए जलज लखि इनकी उपमा तरन कहै,
कहि दिल क्योंकर बेताब न हो? जब यह छवि जी में अरन कहै;
इतने पर बचन सुधा बोरे-से भोरे-मुख मन हरन कहै,
लोचन बिन गिरा गिरा बिन लोचन क्योंकर शीतल बरन कहै ११३

रँगमगा छबीला चौक भरा केशर के नीर चुचाता-सा,
मुख ऊपर उमड़ गुलाल रहा छबि मन्द ठवन अलसाता-सा;
कर में चन्दन का बारि-यन्त्र लखि मेरी तरफ़ लजाता-सा,
शीतल जिन देखा सो जाने वो मधुर मन्द मुसकाता-सा ॥११४॥

मोती की लड़ियां देखी है देखे हैं गुंचे बेली के,
मरते हैं मान पड़े दिल में उर चारु चाँदनी चेली के;
हीरे हहराय गये चित में फिर मोलों रहे न धेली के,
जानी वे कैसे झड़ते हैं हँसने में फूल चमेली के? ११५॥

शीतल तुझ आंखों से आंसू क्या बिरह-सिन्धु के सोते हैं?
जिसमें पड़ थाह न लाय सकै मजनू को अबतक गोते हैं;
फ़रहाद किनारे लगे-हुए भरि हाय सरद फिर रोते हैं,
सुन लालबिहारी दरद बीच घायल ऐसे ही होते हैं॥११६॥

जानी के झुमकन कानों में लखते मोती बेताब हुआ,
ज़ुल्फ़ों में आय फँसा जब से सम्बुल दर बदर ख़राब हुआ;
मुख-शरद-चन्द्र जब से देखा नित छीन पीन महताब हुआ,
इस लालविहारी के आरिज़ सुन हाय आइना आब हुआ॥११७॥

सब सैर चमन की करते हैं क्यों हमें बाग़वाँ अड़ते हैं?
मालूम हुआ हमको दिलबर इनकी आँखों में गड़ते हैं;
तुझ रुख़सारों का रंग लखे गुंचे के पत्ते झड़ते हैं,
कर चाक गरेबाँ सीने पर ख़ारों के तेशे जड़ते हैं॥ ११८॥

जिसकी दीवारें सोने की ऊपर बूटे-नग जड़े रतन,
नरगिस-बादाम-अरग़वाँ के गुललाला और गुलाब-सुमन ;
बहुतेरे जिन्नत पारिजात गुल लाय-लाय कर बड़े जतन,
बिन लालबिहारी कौन लखै यह शीतल का शृंगार चमन ? ११९॥

तुझ जुल्फ़-पेच बिन आठ पेच काली-नागिन के पड़ते हैं,
मन, चित्त बंध संशृती-भर्म संकल्प-सभा में गड़ते हैं ;
फिर छुटें नहीं मुख-चन्द्र बिना जी जतन सैकड़ों घड़ते हैं,
यह समझ चित्त दिलजानी की जुल्फ़ों में दिलको जड़ते हैं ॥१२०।

है इश्क़-पेच दिलजानी का जो इस के आगे मर्द रहै,
बीमारी पहिले करि पैदा जो 'आह' जिगर की सर्द रहै ;
कुछ ऐसा समझ अरे शीतल जो दिल के शिर में दर्द रहै,
लग नक्श ख़ाक पा जानी की सुनते ही संदल गर्द रहै ॥१२१॥

॥ आनन्द चमन ॥

मोहन, मुकुन्द, मधुसूदनजू, हरि, श्रीब्रजराज-दुलारो कहु,
घनश्याम, छबीलो सुघर-पुञ्ज नेही नैनन को तारो कहु ;
बनमाली, कालीदमन सदाँ जग जीवन रूप-उँजारो कहु,
शीतल भव-बाधा सहज तरै नित मोरचन्द्रिका वारो कहु ॥ १ ॥

चम्पक-बरणी मन-हरणी कहु रस-सुधा-सिन्धु में सानी कहु,
बाधा हरि राधा नाम कियो कीरति कुँवारि जगजानी कहु ;
शोभा की सीमा रूप अवधि गुण-गरभ-गहेली बानी कहु,
शीतल भव-बाधा सहज तरै ब्रजरानी कहु ब्रजरानी कहु । २ ॥

समझै है चतुर सुजान कोई यह है जैसा सुखकन्द चमन,
जो इश्क़ पेच में खुला नहीं समझैगा क्या दिलबन्द चमन :
है ध्यान, धारणा, ध्येय जुदा कीना ब्रजरानी फन्द चमन,
सुन लालबिहारी ललित ललन यह है दूजा आनन्द चमन ॥ ३ ॥

जानी अनन्त पर शरद-चन्द्र यह सुधा-सिन्धु का सोता है,
छवि ललित बाँम गंडाच्छ मिलै यह बानी बीज-उदोता है;
दिलवर यह बारक लाख जपै तब मंत्र- शारदा सोता है,
समझै सब आगम निगम भेद लखि मूक बाकपति होता है ॥४॥

कहते हैं जिसको ब्रह्म-तत्व अरु अज, अनीह, अविनाशी है
तीनों गुण पाँचौ तत्त्व परे सब बिश्व-रूप का बाशी है;
सुन लालबिहारी ललित ललन यह बात चित्तमें भाशी है,
मुख-शरद् चन्द्र बिश्वेस्वर-सा जानी बिहँसन ही काशी है ॥५॥

सब छाँड़ चरण की शरण सदाँ तेरेही दर पर अड़े-हुए,
टलते हैं भला कभी ज़ालिम जे सर्व चमन में गड़े-हुए;
गुल लाला गुंचे फूल गये कर चाक गरेवाँ झड़े हुए,
मरने जीने से खारिज हो तड़फें नित बिस्मिल पड़े-हुए ॥६॥

कोइ शक्ति रूप-सा कहते हैं कोइ निर्गुण बारह बानी का,
कोइ काल, कर्म, गुण सून्य जीव कर्ता पानी-से प्रानी का;
फिर हंस सुपेद हरे तोते मोरों पर चित्र जहानी का,
चुप होकर चरण चूम लेना कहना क्या अकथ कहानी का ॥७॥

पूरणमाशी के शरद-चन्द्र को लखें सुधा-रस मत्ता-सा,
मुख ते नक़ाब को खोल दिया जगमगै प्रताप चकत्ता-सा;
मुसकान निकल कर खाय गई चित सुधा लपेटा कत्ता-सा,
भरि नज़र न देख सुधाकर को छुट परै छपाकर ऋत्ता-सा ॥८॥

श्रम सीकर लालबिहारी के देखे उपमा में दंगल-सा,
कुछ हीरे हरे हुए चित में मोती के जी पें मंगल-सा;
अलसाता हुआ नज़र आया अलबेला रूप अखंडल-सा,
कै शरद-चन्द्र पर उदै हुआ जानी तारागण मंडल-सा ॥९॥

मुख-शरद-चन्द्र पर श्रम सीकर जगमगे नखतगण जोती-से,
कै दल-गुलाब पर शबनम के हैं कणिका रूप उदोती-से.
हीरे की कनियाँ मन्द लगें हैं सुधा - किरण के गोती से,
आया है मदन आरती को धर हेम थार पर मोती-से ॥१०॥

मुख-शरद्-चन्द्र पर ठहर गया जानी कें बुन्द--पसीने का,
या कुन्दन, कमल कली ऊपर झमकाहट रक्खा मीने का ;
रहता है कोई होश कहीं हो गिदर बूअली सीने का,
या लाल बदख्शां पर खेंचा चौका इलमास नगीने का ॥११॥

कर छुऐं गुलाब दिखाता है जो चौसर गूंथा बेली का,
गल बीच चम्पई रंग हुआ मुसकान कुन्दरद केली का ;
दृग-स्याह मरीच लपेटेही रँग हुआ सोसनी सेली का,
जानी यह तद्गुण भूषण हैं पचरंगा-हार चमेली का ॥१२॥

लोटै गोदी में बिजली--सा चख-चंचल सुरमा पड़ै चुआ,
अलसान-सुधा-रस भींज रहा ज्यों उदय शरदका शशी उआ ;
हँसि ललक झलक छवि छलक उठी मैं चरणकमल को नेंक छुआ,
यह लालबिहारी मचल गया तड़फे ज़रतारी गेंद हुआ ॥१३॥

सुन शीतल सुघर अरे मेरी ज़ालिम हीरा चौकोर कहां ?
दृग--मृग के सभी बरणते हैं वह तीखी ललित मरोर कहां ?
कुन्दन की बीन बनाई जो वह मधुर--यन्त्र सुर- घोर कहां ?
महबूब मोम-दिल होय नहीं गेंदे में अतर हिलोर कहां ?१४॥

जिन तेरी तरफ़ सहज देखा सो आह नक्श दीवार रहा,
मुख-चन्द्र बिहारी तेरे की उपमा का मुझे विचार रहा ;
खूबी सी दौलत मिली तुझे पर तेरा दिल न उदार रहा,
तू ईसा हुआ ज़माने का यह दरदमन्द बीमार रहा ॥१५॥

श्रृँगार रूप-रस भरे हुए हैं सुधा-किरण के गोती ये,
बांधे सीने में मूरति-सी दरशावै रूप उदोती ये ;
परखे मुक्ताहल दृष्टी से झमकाहट जगमग जोती ये,
काढ़े हैं सुधा-सिन्धु में से मै शब्द-ब्रह्म के मोती ये ॥१६॥

दिलवर अब क्यों पछिताता है ? तुझ ज़ुल्फ़ जाल से सैद गया,
अब किसको दरद दिखाता है ? वह दरद बूझता बैद गया ;
जानी इस परदे अदम बीच बाक़ैद गया बे क़ैद गया,
खूबी इस जाम जहानी की ले गया जहां जमशैद गया ॥१७॥

जानी के शरद-चन्द्र-मुख से मुसक्यान सुधा की सीर हुई,
वह दशन-झलक जी लेती है क्या जादू की सी बीर हुई,
क्या मुझे उकसने देती है गरदन पर जुल्फ जँजीर हुई,
बिन मारे घायल करती है जानी की चितवन तीर हुई ॥१८॥

तेरी जुल्फों का पेच लखै नागिन का सीना फाटै ही,
कुंडल मोती मुख बीच लिये अहि-बाल ओस कों चाटै ही ;
खा रही लहर जो सम्बुल की उपमा को फिर-फिर डाटै ही,
लहराती लखें मरें जीवें लहरें लेवें बिन काटे ही ॥१९॥

मजनू, फ़रहाद माधवानल ये थे महरम इस वस्ती के,
लैलै शीरीं में लीन हुए उर काम-कन्दला-किस्ती के ;
यह इश्क-चन्द्रिका छाय रही अबतक वायस इस मस्ती के,
जानी ढूंढ़े ही मिलते हैं गाहक इस हुस्न-परस्ती के ॥२०॥

जानी तू खरीदार मेरा जो सुधा-सिन्धु मय सोती के,
यह सुयश स्वाति की बूंद हुआ प्यारे रस-रूप उदोती के ;
तुझ दशन हँसन ने सजल किया मुसकाहट जगमग जोती के,
रहती है सदाँ तलाश मुझे जो हैं गाहक इस मोती के ॥ २१ ॥

सुन लालबिहारी ललित ललन यह गति बिरले ने जानी है,
तुझ आह दरद के श्वाले का कहना कुछ अकह कहानी है ;
सुरतरु की क़लमें मन्द हुईं लिखना भी बारहबानी है,
समझे से सीना जला करे चलिबे तू कैसा जानी है ? ॥ २२ ॥

सुन लालबिहारी ललित ललन बिन दरद आदमी मानै क्या ?
दिलवर अलबेला मिला नहीं दिल की सूरत पहिचानै क्या ?
जो समझा सो खामोस हुआ फिर-फिर छानेका छानै क्या ?
सूरत अहवाल अगर मेरा तू भी समझे तो जाने क्या ? २३ ॥

हैं नैन करद से अनियारे जिन दरद हजारों गरद करे,
दिल फ़रद शरद बेताव हुआ महताब ताब सों जरद करे ;
खंजन के गंजन रसरंजन अंजन दे कंजन शरद करे,
कहि इनका कौन इलाज करे ? जो तैं घायल बेदरद करे ॥ २४॥

काहे हमको दिखलाते हो जानी अबरू ख़मदार बहुत ?
वे दिन दिलवर क्यों भूल गये ? करते थे हमसे प्यार बहुत ;
'अब परे सरक जा कहते हो' होजा मत मुझसे यार बहुत ,
इन दिनों बग़ल में रहती है ज़ालिम तेरे तलवार बहुत ॥ २५ ॥

हम दरदमन्द मुस्ताक़ रहे घूमे दृग दोनों चावक के ,
सुध आए दिलवर हा तेरी मारे मनमथ सर सावक के ;
तलफै तुझ शरद-सुधा-घन बिन ये प्राण-पपीहा पावस के ,
रहता है तू इन दिनों कहां ? वे हाय ! कलानिधि मावस के ॥२६॥

उठ भोर प्राणपति छवि सेती अलसान भरा दरसाव कहीं ,
रँगमगे नैन की नोंकों से तीरों का दिल तरसाव कहीं ;
तलफें ये प्राण पपीहा लों नित सुधा-जलद बरसाव कहीं ,
इन नैन-चकोर हमारे को मुख-शरद-चन्द्र सरसाव कहीं ॥२७॥

थी शरदचन्द्र की जोन्ह खिली सोवै था सब गुण जटा-हुआ ,
चोवा की चमक अधर बिहँसन,रस-भीजा दाड़िम फटा-हुआ ;
इतने में ग्रसन-समे बेला लखि ख्याल बड़ा अटपटा हुआ ;
अवनी से नभ नभ से अवनी उछलै अगु नटका बटा-हुआ ॥२८॥

थी शरदचन्द्र की जोन्ह खिली दुति मुख-मयंक के सहने की ,
सोवै था भरा खुमारी में चमकै थी छवि सब गहने की ;
मैं चरण चापने को बैठा क्या कहौं आपने लहने की ,
फिर-फिर या दिल में कसक उठे चल परे सरक जा कहने की ॥२६॥

सर भरी गुलाब-जल-यन्त्र झलक थी शरदचन्द्र की जोन्ह खिली ,
मज्जन कर पैरन लगा जभी चमकै तन-चम्पकदार दली ;
लग बूंदें बदन फुहारे की उपमा कवि शीतल वरण भली ,
कै क्षीरसिन्धु में झिलमिलाय मुक्ता-फल कुन्दन-बेलि फली ॥३०॥

छवि हँसन दशन की हूल लगी शरमा कर मुक्ता-माल खसी ,
तड़के ही उतर पलँग सेती चुनने को लागा भौंह कसी ;
वह आलस-भरा लखा जबसे उपमा शीतल उर आय वसी ,
अवनी पर उतरा नभ सेती तारागण बीनें शरद-शसी ॥ ३२ ॥

जानी इन गुल रुख़सारों पर शबनम का जड़ा पसीना है,
या लाल बदख़शां पर दिलवर इलमासी जड़ा नगीना है;
समझे यह रम्ज़ वही जालिम जो इश्क़ दरद में बीना है,
हिमकर पर अफ़शां जड़े हुए या किया जौहरी मीना है ॥ ३२ ॥

दृग लालबिहारी के देखे उपमा नहिं पाई हिरनों पर,
मुसकाते मुख से बचन कढ़े कुरबान सुधा-जल-किरनों पर;
यमुना में पैरन लगा जभी वारी सफ़री इन तिरनों पर,
मुखपर सीकर के बिन्दु लगे अफ़शां दिनकर की किरनों पर॥३३॥

दिल चाक घूम इस दामन की होता है छवि लख बांके की,
चितवन के भाले पर दिलवर कुछ ताब नहीं है टांके की;
इतने पर सँभल उठा फिर भी दुति देखी दुशमन ज़ाके की,
तकते ही सीना खाय गई अबरू शमशेर झमांके की ॥ ३४ ॥

जानी के मुख पर जड़े-हुए ज्यों तारे सुधाउदोती-से,
दिनकर पर ज़री तार डारे या उये सुधाकर गोती-से;
या शरद्-गगन पर तेज पुंज जगमगे निशाकर जोती-से,
श्रम शीकर लालबिहारी के क्या हेम-थार पर मोती से ॥ ३५ ॥

दिल चला चूम नख-चन्द्र-चरण पहुँचा दामन के फेरों तक,
इक छोरे पटके सों लट का छाती जा लागा देरों तक;
कंठी कुन्दन नग जड़ी देखि उलझा मोती के घेरों तक,
मिज़गां के भाले बेध गए जाता अबरू शमशेरों तक ॥ ३६ ॥

हम खूब तरह से जाने हैं जैसा आनन्द का कन्द किया,
सब रूप, शील, गुण, तेज-पुंज तेरे ही भीतर बन्द किया;
तुझ हुस्न प्रभा की बाक़ी ले फिर बिधि ने यही प्रबन्ध किया,
चम्पक दल, सोन, जुही, नरगिस, चामीकर, चपला चन्द किया॥३७॥

जानी तुव अंगो से महकी खुशबोई गई हज़ारों पर,
कुछ कमल, गुलाब, सुमन दिलवर पहुँची चम्पे कचनारों पर;
रायबेल, मोतियारु, मरुवा, चन्दन के कुहसारों पर,
अरग़वाँ, सुनरगिस, जिन्नत के केशर, मृगमद, घनसारों पर ॥३८ ॥

रँग ललित ज़ाफ़रां फेंटे की ऊपर रस भरी गुलाब-कली,
जानी सुगन्ध से भरे हुए तिस ऊपर गूंजें मंजु-अली;
मुख-शरद-चन्द्र पर क्यों दिलवर अलबेली अलक गुलाब मली,
रँग चुवन ललित-छबि क्या वरणों ज्यों नागिन के नकसीर चली ॥३९॥

नीमे की लहर क़हर तुकमे में सहज जगमगन हीरे की,
कंचन-सरोज की कलियां-सी कंठी के ज़रब जँजीरे की;
मुसक्यान जवाहर हँसन लसन छबि दसन-अरुणाई बीरे की,
क्या दिल से ज़िकर निकलती है इस रंग-ज़ाफ़रां-चीरे की ॥ ४० ॥

जो खरज, ऋषभ सुर लखा नहीं तो क्या कर कुन्दन बीन लिये ?
जो रास अंस गति भेद नहीं तो, फिरै मेष क्या मीन लिये ?
जो शब्द-रूप कुछ लखा नहीं तो है क्या पुस्तक-पीन लिये ?
जो दिल दिलवर से लगा नहीं तो क्या करवा कोपीन लिये ?४१ ॥

जानी तुझ नीमे के ऊपर तड़पै बिजली-सी पड़ी-हुई,
ढिग शरद-चन्द्र के तारागण कुन्दन माणिक से मढ़ी-हुई;
सुरपति में तारा-पाँती-सी है यह भी उपमा अड़ी हुई,
इस लालबिहारी के उर में सोहै कंठी नग जड़ी हुई ॥ ४२ ॥

दृग लालबिहारी के देखे जाते हैं मृग सँग कोर लगे,
जुल्फ़ों को अहिपति समझ यार ये भ्रम के मारे मोर लगे;
तन कमल-गुलाब-कली समझा देखे से भौंरे भोर लगे,
मुख-शरद-सुधाकर जानी का फिरते हैं संग चकोर लगे ॥ ४३ ॥

रद देखे लालबिहारी के अनवेधे मोती मड़क गये,
कै षटदश कला छिपा करके इनहूँ के किरचे कड़क गये;
मुसकाते भरे लखे जबते रस भींजे दाड़िम दड़क गये,
शरमिन्दी कली चमेली की तड़िता के सीने तड़क गये ॥ ४४ ॥

प्यारे के सुरख़-अधर देखे गुंचे की उड़ गईं धड़ियां सी,
कै मुख-मयंक में छिपी हुई जगमगें सुधा की झड़ियाँ सी;
कै मैन सुनार कलित कुन्दन छबि ललित चुन्नियाँ जड़ियाँ सी,
कै जलज जौहरी लिये हुये छबि दशन जलज की लड़ियाँ सी ॥४५॥

चौसर चुन चारु चमेली के जो बन कारीगर बीने हैं,
शीतल बिजली के बीज धरे रस बोरे सुधा नबीने हैं;
हैं गौहर सिलक सुधार धरे छवि जरीतार की छीने हैं,
रद लालबिहारी जानी के क्या हीरेनुमा नगीने हैं ॥ ४६ ॥

मुझ आहदरद के श्वाले के आगे क्या बिजली कड़क सकै,
मजनूं, फरहाद, माधवानल, बिस्मिल हो दम-भर भड़क सकै;
हालत हरदम बेताबी की लखि ताब दरद की मड़क सकै,
फरियाद हमारी सुन दिलवर क्या बज्र इन्द्र का तड़क सकै ॥४७॥

क्या शरद-चन्द्र पै सुधा-बिन्दु रस-रूप रँगीली-छहरें ये,
चम्पक-दल सुरगुरु उदै हुआ उपमा आपुस में थहरें ये;
मुसक्याते-हुए तड़पता है जानी बिजली की कहरें ये,
निकलेंगी दिल से क्यों ज़ालिम तेरे लटकन की लहरें ये ॥४८॥

क्या शरद—कोकनद उदै हुए लगते हैं दिलको प्यारे-से,
रसमसे रैन के जगे-हुए कुछ सहज रंग रतनारे-से;
जिस दिलपर खैंचे सो जानें जानी मनमथ के आरे-से,
दृग लालबिहारी के दोनों क्या ख़ंजर-साफ़-दुधारे-से ॥४६॥

ऊदे चीरे की लहर फँसी भौंहैं कमान-सी कड़ी लिये,
लब लाल दशन मुकताफल-से ज़ालिम मिस्सो की धड़ी लिये;
वरणन मुझपै क्यों होती है कहता हौं उपमा अड़ी लिये,
अलसाता हुआ नजर आया जानी मीने की छड़ी लिये ॥५०॥

क़द सरवे चमन छबीले का यह प्रेम सुधारस सींचा है,
नैना-नरगिस अब हरी जड़ै गुललाला अधरन जी चाहे;
चम्पक-वेली-सी बाँह सजन शोभा का सिन्धु उलीचा है,
यह लालबिहारी आज यार जानी जगमगन नगीचा है ॥५१॥

ज़ानी फ़िर तू ने लखा नहीं हमको चितवन मनहरनी-से,
जुल्फों को अहिपति मति वरणे उपमा इनकों दे भरनी-से!
तुव ललित-माधुरी-मूरति क्या यह शोक-सिन्धुकी तरनी-से
गजगति उतार मति कर रेज़े ज़ालिम दिल नज़र कतरनी से ॥५२॥

अँगुली पाँचों में खाय पेच तलवे के नीचे रवाँ हुआ,
चपि चाइचूर हो जल्दी से एड़ी जुल्फें अरु छवां हुआ;
जगमगन जड़ाव जँजीरों में मिहँदी रँग-भीजा भवां हुआ,
तुझ चरण-शरण में आय लगा जानी मन मेरा झवां हुआ ॥५३॥

जिन तेरी तरफ़ सहज देखा अनियारी चितवन ढविही में,
फिर रहे नैन ये दुनियाँ के बाक़ी आते हैं कबिही में;
भौंहों की जुड़न तड़प-दृग की वेदरदी बाँकी-छविही में,
अपना तौ काम तमाम हुआ जानी इस जुम्बिश लबही में ॥५४॥

फ़रियाद हमारी कौन सुनै ? दिलजान विकरमाजीत नहीं,
जो कामकन्दला दरदमन्द माधोनल-की-सी प्रीति नहीं;
अटका जो भौंरा बेली से जब सूख गई तब रीति नहीं,
जानी तू दरद-जौंहरी है यह समझ नेह की नीति नहीं ॥५५॥

कोइ आखोंने भी मार लिया उसको नरगिसी कहानी है,
कोइ जुल्फों के भी पेच तजे नागिन की कला बखानी है;
कोइ हँसने के भी बीच रहा झमकानि-रूप सुखदानी है,
आखिर को निश्चै हुआ नहीं तेरा-सा तूही जानी है ॥५६॥

जानी जब लाल बदख्शाँ पै लटकन का मोती सार रहा,
हँसने में झुकन,चमक,तड़पन, दिल के भी दिल पर ख्वार रहा;
सुन लीजो बड़ी रसायन है यह वार जिगर के पार रहा,
प्यारे तुझ अधर-नगीनों में सीमाबक़ाय मुन्नार रहा ॥५७॥

पंकज से बिजली लिपट रही नौरतन-जड़ाऊ जड़िया हैं,
मोती की कोरें गुही हुई बांधी उड़गन की लड़ियाँ हैं;
नीची ऊँची इक लहर रही दिल पर उपमा बे कड़िया हैं,
पैरों में लालबिहारी के जैसी कुछ बाँके पड़िया हैं ॥ ५८ ॥

कुछ बिजली-के-से गिरद-पुञ्ज मेरे ही गले-पड़ाऊ हैं,
कुन्दन के शेरदहाँ सुन्दर चुन्नी दृग जान अड़ाऊ हैं;
हीरे, पन्ने की लहर भरी छवि मीनेदार तड़ाऊ हैं,
चल देख देखना बाँकी है जानी के कड़े जड़ाऊ हैं ॥ ५९ ॥

हीरों में नीलम जड़े-हुए बरणन मिस्सी की रेखों का,
लखि लाल बदख्शां पर जानी दुतिहँसन-जलज अवरेखों का;
सम्पुट जड़ाव का बन्द किया है दूर समझना लेखों का,
हँसने पर बिजली मायल है झमकाहट कुन्दन-मेखों का ॥ ६० ॥

सुन लालबिहारी ललित ललन यह देखा बड़ा तमाशा है,
शशि पर तोता दो खञ्जन हैं तिस ऊपर धनुष प्रकाशा है;
तारागण सूरज उदै हुए जिसमें जहान की आशा है,
टुक नज़र इधर को होते ही दिल के पच्छी को लाशा है ॥ ६१ ॥

जानी यह चमन हमेशह का है मेरे दिल से हिला-हुआ,
गुललाले पर नाफ़रमा है बेली का गुंचा खिला हुआ;
तिस भीतर नरगिस श्वाले दो सम्बुल का गुच्छा जिला-हुआ,
दो लाल बदख्शां की रौसें दिलजान बनफ्शा खिला-हुआ ॥ ६२ ॥

जब तेरे रुख की हवा चली तब से असमानी चङ्ग हुआ,
ठड्डा अरु कांपै सिरीपेट यह भेद रूप सब अंग हुआ;
नीचे ऊंचे अरु गोते हैं कन्नी का मुड़ना तंग हुआ,
रिश्ते से बँधा-हुआ जानी दिल मेरा तुझे पतंग हुआ ॥ ६३ ॥

हरदम परदम कुछ दम पर दम तेरा ही सुमिरण करते हैं,
इकीस-हज़ार छै-सै स्वासों से रात और दिन भरते हैं;
जानी मालूम तुझे क्या है ? ज्यों विरह -सिन्धु को तरते हैं,
गिरदाब बड़ा, जी छोटा-सा हम इसी फिकर में मरते हैं ॥ ६४ ॥

ख़म खाते तौ ख़म खाय गया यह निरट अदां से सोहा है,
गुस्से से भरे हुए उस दिन तुम पढ़ा अजायब दोहा है;
देकर दुशनाम हँसा ज़ालिम क्या दिल मेरे को मोहा है,
जानी अबरू शमशेरों का बेतरह ख़ाम यह लोहा है ॥ ६५ ॥

छवि-बल के तले फ़िरिश्ता भी तू अभी जहां को जान गया,
मुख-चन्द्र-किशोर अलक लटकन अरु ऊपर से दै पान गया;
लब लख जानी के रंग भरे लालों का सहज गुमान गया,
मैं बहुत छिपाया जानी से वह बात नेह की जान गया ॥ ६६ ॥

जानी श्रम-कण से भरा हुआ उमड़ा ज्यों रंग बहारों से,
कुछ शम्स-किरण से सुरख़ हुआ चेहरा मिल गया अनारों से;
सरसीरुह शीतल खूब बना मोतिन के हुश्न हज़ारों से,
निस्फुल निहार में छिपा हुआ है शरद्-चन्द्रमा तारों से ॥ ६७ ॥

रंग जरद ज़ाफ़रां चीरे की दिलजान चुनावट चोली है,
अबरू अबीर सों मिली हुई यह भी उपमा अनतोली है;
दिलजान कुमकुमे हाथों में अरु हँस हँस कर यह बोली है,
मुद्दत में आज नजर आया अब कहां जायगा होली है ? ॥६८ ॥

यह अजब लहर है दरशन की देखै जो कोई आन लियें,
मुसक्याता पान चबाता-सा अबरू खमदार कमान लियें;
मिज़गां के हैं बर शान धरै क्या अर्जुन-के-से बान लियें,
होली में मुझे नज़र आया जानी झोली पकवान लियें ॥ ६९ ॥

क्यों जान सहज में चीरै है ? काशी करवट के-आरों से,
फलता है सुफल मनोरथ अब कट जा इन साफ दुधारों से;
इन सेती बचा न छोड़ोंगा तुझको मिज़गां के ख़ारों से,
बिस्मिल हो जल्दी तड़प ज़रा मेरी अबरू ख़मदारों से ॥ ७० ॥

जो तैं देखा सो अब न और है आठों पहर गुमान लिये,
खञ्जन से नन बचन मीठे चपलाहट वर सरसान लिये;
तू क्यों गलियों में फिरता है ?जाता रहु अपनी जान लिये,
जानी को जिस दम देखैगा हाथों में तीर कमान लिये ॥ ७१ ॥

सुन शीतल सुघर अरे मेरी जेते जहान में आब पड़े,
वे शब्द-ब्रह्म के सोते हैं सब अलफ़ रूप गिरदाब पड़े;
मिल एक दोय अरु तीन बहुत हरफों के लुगत सबाब पड़े,
होते हैं फिर मिट जाते हैं ग्रन्थों के वृन्द हुबाब पड़े ॥ ७२ ॥

कुछ कैसी हवा चलाते हौ ?हरदम चुंगल नामरदी-का,
हिम सोकर लहर कटार नोंक अरु मज़ा भरा बेदरदी-का;
खिल रहे बसन्त मधुप-गुञ्जें तुझ याद माह फरवरदी का,
हाथों से जानी जाता है तुझ बिन यह मौसम सरदी का ॥ ७३ ॥

तुझ चरण-कमल की अँगुली के नख पञ्च-कला को धरते हैं,
इच्छा नभ काल चिनमई तक फिर शुद्ध-रूप अनुसरते हैं;
तेरे ही पाँच परत वे हैं अपनी आज्ञा को भरते हैं,
मुख़त्यार जान मन तेरे ही सब अपना कारज करते हैं॥ ७४ ॥

इच्छा जो छिन में गुम्मज़ की तसबीर करोर बनावै है,
नभ-तत्व, देव, इन्द्रीगण को असमानी मज़ा दिखावै है;
माज़ी मुस्तक़बिल हाल करै यह भेद न कोई पावै है,
चिनमई जाव अरु माया को बाँधै फिर शुद्ध छुड़ावै है॥ ७५ ॥

समझै न वूझली सीना-सा जो मेरी तेरी घातें हैं,
दिन को खुरशैद नज़र आवै फिर वेई अँधेरी रातें हैं;
सब यार कोइ-कोइ दिन का है आशिक की दोई जातें हैं,
नीचे ऊँचे हो मिलते हैं जानी से हरदम बातें हैं॥ ७६ ॥

सुन लालबिहारी ललित ललन फूलों की गेंदें खेलैगा,
सनमुख यह देह निशाना है दिल जान कहाँ तक पेलैगा?
आंखों से आंखें भिड़ी रहें इस रूप रंग को झेलैगा,
यह मज़ा उसी को मिलता है जो खाक शीस में मेलैगा॥ ७७ ॥

अरबिन्द चरण पर चम्पकली-दल चारु-चन्द्रमा चमकें हैं,
कुन्दन-ज़ञ्जीरों में हीरे माणिक के चौके झमकें हैं;
बिन देखे सूझै क्यों? दिलवर! जो इश्क़ पेच की रमकें हैं,
इस लालबिहारी के नूपुर क्या दामिन-की-सी दमकें हैं॥ ७८ ॥

धाधा किट धाकिट थिरर थिरर थुं थुं थहरट की लाजन है,
त्यों झुन झुनकारें झुनक झुनक कुछ तिहरट-की-सी गाजन है;
सातौ सुर तीनों ग्राम मिली क्या मदन-दुन्दुभी साजन है,
आवाज़ तुम्हारी कान बसी जैसी नूपुर की बाजन है॥ ७९ ॥

मुख-शरद-चन्द्र मकरन्द भरा अरु हँसन प्राण हरलेती है,
पानों की लहरें चोंप चुनी समझै जी को दुख देती हैं;
फूले कदम्ब अरु मालतीन प्यारे यमुना की रेतीं है,
दरशन कर लालबिहरी के संसार बासना केती है? ८० ॥

चम्पक-दल कुन्दन-कलियों पर जानी-दृग-सुरगुरु उदै हुए,
सूरज की किरणें मन्द लगें इलमासी चौके जड़े-हुए;
छवि छद गुलाब के मात पड़े दिलवर विद्रुम-दल कढ़े-हुए,
नख लालबिहारी के पंकज-दल शरद-चन्द्रमा चढ़े-हुए॥ ८१ ॥

मुख लालबिहारी का देखें छवि शरद-कञ्ज बे आब हुआ,
छोटा मोटा हो श्याम, स्वेत अरु छीन, पीन महताब हुआ;
तुझ हुस्न-प्रभा के श्राले से जानी रूपा सीमाब हुआ,
झमकाहट बदन-अनौखे का लखि वर्क़ तिल्लई आब हुआ ॥८२॥

मोती-गण गूंथी गोल सुघर छबि जाल रेशमी मेलनि पर,
ऊंची नीची हो प्राण हरै दुति-रूप-सुधा-रस झेलनि पर;
बिन देखे समझे नहीं यार चित पार होगई हेलनि पर,
इस लालबिहारी जानी की कुर्बान गेंद की खेलनि पर॥ ८३ ॥

आंखों से देखै सौसन-सी तन लगि चम्पक बे-आब हुई,
नख-चरण-चन्द्रमा की किरणें लखि जरीतार बेताब हुई;
मुख-शरद-चन्द्र पर नजर गई जानी हरदम महताब हुई,
बेतरह जान को लेती है हाथों में गेंद गुलाब हुई॥ ८४ ॥

रँग-भरा, छबीला, नोंकदार गज-दशन उदै रँग-रट्टू की,
दन्डी से मछली मिली-हुई रेशम जरतारी-पट्टू की;
खैंचन अरु भौंह कसी सह्यरन, फेंकन धरनी पर बट्टू की,
सब सुर तमाम कर चित्त धरी गूंजन इस बंगी लट्टू की॥ ८५ ॥

है गोल छबीली सुघर-पुञ्ज अलि-गुञ्ज रसीलो-घेरन पर,
रेशम की डोरी लगी-हुई जानी अशमानी-हेरन पर;
ये खेल खिलौने रसदौने अनहौने टौने-टेरन पर,
बेतरह चित्त फिर जाता है जानी चकई की फेरन पर॥ ८६ ॥

बेतरह तीलियां साफ़ करी अरु सुरख हरित रँग जालों के,
रँग भरी पेचवां लगी हुई जलदान तिल्लई चालों के;
सुरखी अरु बूंद कुहुक फटकनि जी लै है मारे हालों के,
इस लालबिहारी जानी के बेतरह पींजरे-लालों के॥ ८७ ॥

चोंचों से चोंचें जोड़ दई बेतरह रोस के रवा हुए,
काढ़े पर लुंचित लोम शीश ये हालाहल के हवा हुए;
सीने को ढाल बनाते हैं ये लाल तुम्हारे लवा हुए,
क्या फिर पीछे पग देते हैं रण-पक्ष-राज के छवा हुए ॥ ८८ ॥

गुलसोसन, नरगिस,इश्क़पेच, मोतिया, मोगरा सींचे की,
चम्पक, गुलाब-दल, मदनबाण शोभा के सिन्धु उलीचे की;
पन्ना सिकन्दरी मायल है जो देखै आभा नीचे की,
जिन देखी सोई जानै है जानी के सैर बग़ीचे की ॥ ८९ ॥

सन्तरा, जँम्भीरी, नीबू तक अरु अनन्नास इकसार किये,
दाड़िम, बादाम, सेव, खिन्नी, आडू, सफ्तालू यार किये;
सब तरु हलाय फल ज़िमींदोज जानी नव-ललित-बहार किये,
खाये बख्शे ते औरों को हम-से-ती सजन उधार किये ॥ ९० ॥

तुझ अधर-अरुण-नग जगमग-छवि मकरन्द करदिया मीना-सा,
पानों की सुरखी क़हर करै रखते हैं विद्रुम कीना-सा;
गौहर विम्बा बेआब हुए अरु जपा-पुहुप-दल छीना-सा,
मुसक्याता हुआ लखै तुझको टल जाय बूअली सीना-सा ॥ ९१ ॥

जानी जब से इन गलियों में लब तेरा सुघर हकीम हुआ,
मरने से बचे तलफ छूटी शाफ़ी हरएक सक़ीम हुआ;
तेरे क़ामत को देख सजन झुकि अलफ़ सरनिगूं मीम हुआ,
मालूम हुआ दिल मेरे पर ज़ालिम तू दुरे यतीम हुआ ॥ ९२ ॥

नग-अधर-अरुण रसरंग- भरे मकरन्द रहा छवि-मीना की,
पानों की सुरखी क़हर करै लहरें ज्यों लाल-नगीना की;
जाना यह परख जवाहर की ह्यां पहुँचे सुरति प्रबीना की,
या अकल होश दीमाग ज़हन चुप रहे बूअली सीना की ॥ ९३

ललिता के ललित-ललित पुनि ताके कलित बलित रँग बोरे-से,
घूंघट-पट खुलत पलक पलवें मनु जाल-फन्द मृग छोरे-से;
कहि शाह सिचानक जरवारे ढरवारे मदन झकोरे-से,
ठहराते जेब छोभ छहराते लगे दुचोवट कोरे --से ॥ ९४ ॥

ज़रबीले-नैना अजब ज़ोर झमकारें झमकि-झमकि झपटैं,
चटकीले चटक खटक दिल अन्दर दिल कपटी न क़लम कपटैं ;
भनि अतकशाह दहके दहकीले दन्दां गिरी करत दपटैं,
ललकें लखि-लखि लखि ललकें मन यह ललक दामिनीकी लपटैं ६५

बिरहीन ज़ोर बरजोर मुसाफ़िर निरखि-निरखि धर पटकत हैं,
इतने पर दया नहीं बेदरदी दाहि-दाहि दिल खटकत हैं ;
भनि अतकशाह रसभरे भभक अति मुदित मोद मन भटकत है,
चमकें चित-चतुर चारु चंचल चकचौंध चहचहे चटकत है ॥९६॥

सरसात पात अरु खिले-कमल छवि छलक छलक मद-मस्ते-से,
भौंरा रस आसपास अटकैं युग रहें क़ैद हो फ़स्ते-से ;
भनि अतकशाह अटके अंजन गुण-खंजन छुधित तरस्ते-से,
अनियारे ऐन वारि डारों सब हैं दराज़ दृग हँस्ते-से ॥ ९७ ॥

जानी तुर्रे की हलन अजब किरणें जी भीतर अड़ती हैं,
रबि-रूप-प्रभा से मिली हुई चौगुनी चुन्नियां जड़ती हैं ;
चौंधैं सब चित से निकल गईं जब झमक तिल्लई गड़ती हैं,
तारों की छुटन छुटन मुख पर दिनकरी पियूषें झड़ती हैं ॥ ९८ ॥

है सुरख़,ज़रद अरु हरित,श्याम,सित बांधी लहर ज़ंजीरे की,
तीनों गुण सहित बिकार रहित बूंदें ज्यों कनियां-हीरे की ;
उस अरुण घटा में छटा सहित मुख-सुरख़ अरुणाई-बीरे की,
जानी कहु कैसे भूलैगी ? यह ज़रब बांधनू चीरे की ॥ ९९ ॥

उस करम रूप को भूल गया जब से दिलको आराम हुआ,
दरशन तेरा दिलजान सही दिल को जमशेदी जाम हुआ ;
देखे सब लोक अलोक पन्थ यह जिकर सुबह अरु शाम हुआ,
मुख-शरदचन्द्र दिलजानी का लखि मेरा पूरण काम हुआ ॥१००॥

जानेको जगह नहीं जग में यह निगह चित्त को घेरै जब,
अलबेला कुंवर छैल दिलवर चित चारु पीतपट फेरै जब ;
मुरलीधर, मदन, मुकुन्द, हरी तेरी रसना यह टेरै जब,
मन काम वासना पूरण है हँसने में फूल बखेरै जब ॥१०१॥

जानी तुभ झलक-दशन-कौंधें लखि-लखि हीरे हहराते हैं,
मोती छाती में छेद करें वा अदब खड़े थहराते हैं;
चुन्नी की चोप चटक दिल में बिजली-कण छबि छहराते हैं,
दिलवर तेरी यह हँसन लसन शशि-किरण-पुञ्ज लहराते हैं॥१०२॥

वरणन जो करों कहीं दीखै थकते हैं पर ह्याँ बानी के,
जो परा--शक्ति अहलादा है अरु चिदा चिन्मई शानी के;
नख--चन्द्र--समूह स्वेत--किरणें कटते हैं तम अज्ञानी के,
गोलोक-बासिनी-प्राण सखी! पद लच्च चक्र-रथ रानी के॥१०३॥

माया अरु बधू बीज जाके हैं कामराज रजधानी के,
कर्पूर बाग भव षोड़श पद अध ऊरध कला बखानी के;
वह राधा सुरा सुधा जानो अधिकारी जैसे पानी के,
वरणन कर शीतल चित्त सोध पद लच्च चक्र रथ रानी के॥१०४॥

हंसों की चौंच सु चुन्नी में अरु चखन-चकोर समाय रही,
बिद्रुम बँधूप दल बिम्बी में बन्दन के फूप सुजाय रही;
जानी दिल के अनुराग बीच किंशुक के बाग बनाय रही,
दिलवर पैरों के तलवों की सुरखी सब बीच समाय रही॥१०५॥

कोमल अरुणारे सरस-पुञ्ज गुञ्जत अलि सुभग सुधारे हैं,
शरणागत-वत्सल जग जाने ये दीनबन्धु उजियारे हैं;
अघहरण कली के नाशकरन मनहरण सन्तजन प्यारे हैं,
सुन लालविहारी चतुर छैल अलवेले चरण तुम्हारे हैं॥१०६॥

पंकज से बिजली लिपट रही शोभित शोभा की भीरें हैं,
नौरतन जड़ाऊ वेल खिची मनमथ के मनको चीरें हैं;
नीचे मुक्ताहल लगे-हुए उपमा की लगी बहीरें हैं,
शिशुमार चक्र के तले कहीं उड़गण की जटित जँजीरें हैं॥१०७॥

कुछ ललित शारदा बीणा से बाजे सुरपति के यार कहीं,
कै मदन-मन्त्र पढ़ि कोक-कला बोले हैं बारम्बार कहीं;
जानी ये बीज बशीकर के मनहरण सुधा--रस--धार कहीं,
तुभ चरण धरण में झनक मनक बोली घुंघुरू झनकार कहीं॥१०८॥

जरदोजी बूटा बेल खिंची गुल किरण चित्त में आय अड़ी,
मोती की झालर गिरदनुमा ज्यों तारागण की गुही लड़ी ;
मखमल से गोटा लगा-हुआ बिच-बिच चुन्नी की चोंप जड़ी,
देखे से दिल बेताब हुआ जानी की क्रौस जड़ाव जड़ी ॥१०९॥
दल शरद-कञ्ज के पाँच खिले दिलवर दाड़िमकी कलियाँ-सी,
कै पंचबाण के तरकश की पांचों कोरें रसरलियाँ--सी ;
कै पंच शक्ति कञ्जासन ते ये कढ़ी रमा की अलियां--सी,
अँगुली पांचों रसभीने की ये मदनबाण की कलियां-सी ॥११०॥
पंकज पर बीर--बधू बैठी मिट जाय देख दुख द्वन्द कहीं,
कुन्दन पर माणिक जड़े हुए यह उपमा लागे कुन्द कहीं ;
भू-तनय रमा के घर आये सुन बैठ रहे मुख मुन्द कहीं,
शमशाद वेख़से गुल आनो जानी मिहँदी के बुन्द कहीं ॥१११॥
समझै दोनों दुख दूर करै जानी का यह सुखकन्द चमन,
रसगुण शशि छन्द बनाय रचा यह प्यारे का आनन्द चमन ;
समझै न वूअली सीना-सा समझैगा क्या दिल-बन्द चमन,
इस लालबिहारी जानीका सुख रूप हुआ दुख कन्द चमन ॥११२॥

विहार-चमन

हीरे से दशन हँसन माणिक विद्रुम अधरों से अड़ते हैं,
मुख सम्पुट जड़ा जड़ाव लहर चुन्नी के चौके जड़ते हैं ;
मुसक्यान बिहारी की शीतल बेली के गुँचे गड़ते हैं,
लब लाल बदख्शां से जानी हँसने में मोती झड़ते हैं ॥ १ ॥
नख चमकें ललित सितारे से पहुँची लखि छबि से छाय गया,
दुति हीरेनुमा अँगूठी की नग जी के बीच समाय गया,
मिहँदी के रँगे हुए पोरे दिलदार अचानक आय गया ;
जानी का हाथ नजर आया दिल हाथों हाथ बिकाय गया ॥ २ ॥
कुन्दन माणिक से जड़ी हुई यह रची वूअली सीने की,
नीलम माणिक पुखराज लगे लहरें इलमास नगीने की ;
सुरपुर से सुरपति चाहे है देखों मैं जाय प्रवीने की,
अलसाता हुआ नजर आया है छड़ी हाथ में मीने की ॥ ३ ॥

सूरज की किरणें उदै हुई आई सब फैल दरीचे में,
गुल नौ बहार लहलहे हुए जे प्रेम सुधा-रस सीचे में ;
सब्जे का रंग जवाहर-सा जब नजर पड़ गई नीचे में,
अलसाता-हुआ नजर आया जानी जगमगन बग़ीचे में ॥ ४ ॥

तुझ तन सुगन्ध से घायल हो केतकी केवड़े पट्ट हुए,
खारों के तेशे सीने पर जड़ते गुलाब रंग घट्ट हुए ;
कचनार चम्पई मृग-मद से घनसार अरग़वां ठट्ट हुए,
बेहोश मद्द छके गुञ्जें हैं जानी भौंरों के गट्ट हुए ॥ ५ ॥

जिस-दिन-तू गली हमारी में जानी भूले से पाय दिया,
मधु भरे मधुव्रत गुँज उठे खुशबू से आँगन छाय दिया ;
कशमीर पानरी खस गुलगूँ मजमुआ अतर बरषाय दिया,
अवलग सुगन्ध नहिं जाती है मानौ गुलाब छिड़काय दिया ॥ ६ ॥

काटे से मरा न ऐ ज़ालिम ! नहिं हम घायल की पीर गई,
सब मन्त्र, तन्त्र अरु यन्त्र जड़ी जानी इसके नहिं तीर गई ;
गाड़रू हज़ारों फिरते हैं। लाखों ज़हरों की भीर गई,
जानी की जुल्फ़ नागिनी है दिल दरद मन्द को चीर गई ॥ ७ ॥

जानी के कोर किनारी की चौफेर गिरद जगमगी-हुई,
तिनमें मोती गण गुच्छ गुहे दूजी उपमा रँगमगी-हुई ;
संजाफ़ लगी दरियाई की सौंधे भीनी सगबगी-हुई,
चपलाहट पर कुरबान गई दामन पर बिजली लगी-हुई ॥ ८ ॥

कहते हैं लोग जुन्हाई-सी मुस्कान चन्द्रिका छाई है,
मुख-शरद-चन्द्र से छूट चली जानी त्रैलोक लुनाई है ;
हरदम बेताब कोई होलो जिन पाई है तिन पाई है,
इस लालबिहारी की बिहँसन भीतर कुछ ग़जब इलाही है ॥ ९ ॥

बेतरह जान मन बाँधा है शिर ऊपर फेंटा काही-सा,
ज़ीरो की लहर कहर मोती नौरतन जड़ाऊ माही-सा ;
मुसक्याता करणफूल धरना हरना चित-मदन दुहाई-सा,
जानी सुरमे की स्याही में है गा कुछ ग़ज़ब इलाही-सा ॥ १० ॥

कुछ ज़रीतार का गुच्छा-सा हीरों का हार समान लिये,
मोती की लड़ियाँ फीकी हैं चुन्नी चित में कुर्बान लिये ;
आता है अभी इसी रस्ते वह अर्जुन के से यूबान लिये,
कहता है मैं भी देखूंगा जावैगा घर मुसकान लिये ॥ ११ ॥

जानी तेरी सौं बहुत मिले जिन्ने यह इलमे सैफ़ पढ़ा,
आतश तुझ यार बिछुड़ने की हालत पर सब ने हैफ़ पढ़ा ;
लोटै है हरदम बिजली-सा श्वाला भों चम्पा दैफ़ पढ़ा,
दबता है कोई ज़ाहिद ने सौ बार अलफ़ तर कैफ़ पढ़ा ॥ १२ ॥

क़ानों पर गुललाले के गुल ना फ़रमां बिन्दु सुहाया है,
नरगिसी कटोरी आंखों पर अरग़वां अंग छवि छाया है ;
जिन्नत गुलदस्ता खड़ा हुआ जिसकी जहान पर छाया है,
जानी इस सैर बग़ीचे की तू आज इसी ढब आया है ॥ १३ ॥

फूलेंगे चारों ओर चमन अरु मदन पञ्च-सर साजेंगे,
शीतल सुगन्ध छवि मारुत की राका शशि उड़गण लाजेंगे ;
वागै सुधंग नभ-मण्डल में रम्भा के रणित बिराजेंगे,
पग धरन लटक मुसक्यान मन्द जानी के नूपुर बाजेंगे ॥ १४ ॥

हीरे की कनियां जड़ी-हुई छवि जोति जवाहर जैसे हैं,
बूटे में नक्शा दिल जाने वरणन क्या कीजे कैसे हैं ;
आावज आह से मिली हुई क्या सहज बजावन तैसे हैं,
इसके आगे फिर तूही है जानी के नूपुर ऐसे हैं ॥ १५ ॥

जो शब्द-ब्रह्म के सिन्धु-स्रोत नित-ही-प्रति बाजें रनक मनक,
कुछ षड़ज ऋषभ से मिले हुए सातों सुर भीतर गनक मनक ;
रम्भा अरु सची लटक तड़फन पावै न आन भर छनक मनक,
प्यारे इसरार इलाही है जानी नूपुर की झनक मनक ॥ १६ ॥

मजमुआ अतर से भरा हुआ जानी भौंरों का नायब-सा
लगते ही कभी वूअली हो सब होश अक़ल का ग़ायब-सा ;
नौरतन जड़ाऊ गोल गिरद वरणन करि देखा साहब-सा,
झमकाहट दिल को साफ़ करे तेरा शिरपेच अजायब-सा ॥१७॥

इलमासी चौके जड़े-हुए दिलवर हीरों के गोत कहीं,
नग हरित मणी पुखराज अरुण दुति कोटि चन्द्र छवि होत कहीं
गिरदाव जवाहर जड़े-हुए देखे हैं भला उदोत कहीं;
तू आफ़ताब में ज़रा होय दिखलादे जगमग जोत कहीं ॥१८॥

जिस को दुखभञ्जन कहते हैं अरु आठ मेल का रञ्जन है,
विन इत्ता कोश भिन्न निर्गुण अरु मायातीत निरञ्जन हैं;
समझै न वूअली सीना-सा प्यारे यह बड़ा तुकञ्जन है,
मेरी आँखों में पैठ देखि जानी तेरा ही अञ्जन है ॥१९॥

यूसफ़ी सितारे पांच चढ़े अरु सब से ऊंची आन चढ़ी,
अबरू कशीश ख़मदार हुई जैसी कमान मुलतान चढ़ी;
जुल्फ़ों की लहर अतर भीनी नागिन-की-सी लहरान चढ़ी,
बेतरह जान को लेती है जानी की चित मुसकान चढ़ी ॥२०॥

चीरा गुलाब के अतर मला कर में हीरे का छल्ला-सा,
माथे पर बेंदी स्याह शुभग आंखों में सुरमा घुल्ला-सा;
पानों की लहर क़हर विहँसन अँग-अँग चम्पादल मल्ला-सा,
मालूम नहीं यह है किस पर ज़ालिम महबूबी हल्ला-सा ॥२१॥

चन्दाको बिजली लिपट रही क्या बिजली चन्दा घेरी-सी,
या शिव के शीश तरंग गंग छबि है अनियार हनेरी-सी;
हरतार मुक़ेसी की प्यारे हैं सूरज-किरणें चेरी-सी,
क्या साफ़ जान कूं खाती है टोपी पै धनुष रुपेरी-सी ॥२२॥

ता सीप समुन्दर का मोती जानी के लटकन पड़ा-हुआ,
सुमेरगढ़ पर्वत का सोना खासे कारीगर गड़ा-हुआ;
सुरख़, सब्ज़ अरु नील सुनैरी ऊदी चुन्नी जड़ा-हुआ,
लटकै था पड़ा अधर नथ में जानी के लटकन कड़ा-हुआ ॥२३॥

सुन शीतल सुघर अरे मेरी तेरा भी धीरज रहा नहीं,
दिल इश्क़ बिरह के नेज़े ने चितवन का तेज़ा सहा नहीं;
अलसाता हुआ न देखा तैं जीवन का लाहा लहा नहीं,
फिर क्या उपमा तू देवैगा चल परे सरक जा कहा नहीं ॥२४॥

श्रीसहचरिशरणदेवजी

छप्पै--

कुंजकेलि माधुर्यसिन्धु पूरण अवगाह्यो ।
गादी को अधिकार संतव्रत अगम निवाह्यो ॥
मंजावलि रचि सरस रहसि पद्धति विस्तारी ।
भई न है नहिं व्है हैं रचना अस रसवारी ॥
जन रसिक-मंडली आभरन सेये श्रीस्यामा शरन ।
पट्ट शिष्य राधिकादासके प्रेमपुंज सहचरिशरन ॥ वियोगीहरि

श्रीशहचरिशरणदेवजी टट्टी-स्थानाधिपति श्रीराधिकादासजी के शिष्य एवं- प्रसिद्ध श्रीललितमोहिनीदेवजी के परशिष्य थे। इनका जन्म सम्बत् १८२९—३० में हुआ था। १८४१ में इन्होंने शरणागति--दीक्षा ग्रहण की। ये अपने गुरू श्रीराधिकादासजी के गद्दी पर विराजने से प्रथम उनके संग ही बुन्देलखण्ड में भ्रमण करते थे। जब श्रीवृन्दाबन में इनके गुरुभ्राता महन्त श्रीठाकुरदासजी निकुञ्ज पधारे तो श्रीराधिकादासजी को श्रीवृन्दाबन आने के लिये उनके पास पत्र गया। तब श्रीराधिकादासजी, श्रीसहचरिशरणजी को पायोनियरगढ़ में ही रहने के लिये आज्ञा देकर चले आये; जिसके विषय में इन्होंने लिखा है :—

"सुठि स्थान माहिं मोहि राख्यो; साधौ याहि वैन मृदु भाख्यो ।
दासगरीब, गुपाल, दामोदर; रहे पास अनुकूल प्रमुदकर ॥"

अतएव श्रीराधिकादासजो, श्रीसम्पतिशरण और श्रीदम्पतिशरण नामक शिष्यों को, जिसपर विशेष कृपादृष्टि थी; संग में लेकर श्रीवृन्दावन आगये। श्रीराधिकादासजी बृन्दावन में सम्बत् १८६८ से १८७८ तक टट्टीस्थान की गद्दी पर विराजने, के पश्चात् निकुञ्ज को पधारे तो दम्पति और सम्पति शरण ने श्रीसहचरिशरणजी को वृन्दावन आने के लिये पत्र दिया जिसमें उन्होंने अपने महान्-शोक को भी प्रगट किया था। श्रीसहचरिशरणजी को विशेषतः उनके अपार दुःख पर अत्यन्त शोक हुआ। उसी क्षण बृन्दावन के लिये प्रस्थान होगये। इन्होंने उस पत्र के विषय में इस प्रकार लिखा है—

विरह निकेत पुनिपत्रिका लिखीजु जिनि दीन्हीं सो हमारे पास आतुर पठाय के;
बाँचत हो गुरुके वियोग शोक भूलि गयो संपति औ दंपति को दुख रह्यो छायके।
आयो मै उताल दोउ दौरि के रसालमिले कीन्हो है प्रणाम नवनेह उफनाय के;
बाबाजू के चरित्र विचित्र बहु भाँति कह्यो सुनिके सुहायो मन राख्यो है बसाय के॥

श्रीवृन्दावनवासी सन्तमहन्तादिक आदि वैष्णवों ने इन्हें जोग्य देखकर टट्टीस्थान के आचार्य-गद्दीपर प्रतिष्ठित किया। जिसके विषय में इन्होंने स्वयं लिखा है—

सन्त महन्त कृपा करिके गहिवाँही। मोहिं न दीन्हों जान राखि लीन्हों वन माहीं॥
ममअवगुनतजिअमितवरासनपरवैठाऱ्यो। जिमिसुकलापीपच्छपातहरिशिरपरधाऱ्यो॥

ये १६ वर्ष तक टट्टीस्थान की गद्दी को सुशोभित करके सम्वत् १८२४ में निकुञ्ज को पधारे। इन्होंने दो ग्रंथ निर्माण किये हैं; जो टट्टीस्थान से प्रकाशित भी हो चुके हैं; वे 'ललितप्रकाश' और 'सरसमञ्जावली' हैं। ललितप्रकाश में स्वामी श्रीहरिदासजी से लेकर श्रीललितमोहिनीदासजी पर्यन्त आचार्यों का संक्षिप्त-चरित्र विविध प्रकार के ललित--छन्दों में वर्णन हैं। यह ग्रन्थ स्वपूर्वाचार्यगौरवाभिमान से परिपूर्ण है। इसमें टट्टी-स्थान के आचार्यपादों के सिद्धान्त, अकथनीय--आत्मशक्ति, उनके द्वारा धर्म-प्रचार, बड़ेबड़े बादशाह एवं शासकों के प्रति चमत्कार प्रदर्शन, एवं उपासना-महत्व प्रभृति का बहुत ही विशद्रूप से ललित-छन्दों में वर्णन है। इस ग्रन्थ की रचना श्रीकिशोरदासजी द्वारा निर्मित निजमतसिद्धान्त के आधार पर हुई है। रीति और भाषा महाकवि केशवदास निर्मित श्रीरामचन्द्रिका के समान है। इस ग्रन्थ के पठनपाठन से आचार्यचरणाश्रितों को भजनानंद के संग ही काव्यानंद का विलक्षण ढंग से आस्वादन अनुभव होता है। यह ग्रन्थ स्थानीय साहित्य-सिन्धु के उत्थान में एक शसक्त--सामिग्री है। जो वैष्णव साहित्य के गौरव की विशेषता वर्द्धक है। यह ग्रन्थ वृन्दावनस्थ टट्टी-स्थान में १००० प्रति छपा हुआ रक्खा हैं। इस ग्रंथ की एक-एक प्रति प्रत्येक हिन्दी साहित्य के विद्वान्, समालोचक, एवं वैष्णवों की सेवा में जाना अत्यावश्यक है।

सरसमंजावली में १४० मांझ हैं। इसकी कविता बहुत ही अच्छी है। इसके विषय में श्रीवियोगीहरिजी का मत है- "इसकी रचना बड़ी ही उच्च कोटि की है। काव्य-चमत्कार के साथ साथही इसमें प्रेम-माधुरी और रसिकवारुणी की एक निराली- छटा और मादकता है। इसकी भाषा भी एक अनूठे ढंग की है। व्रजभाषा, खड़ीबोली, पंजाबी और फारसी का उसमें बड़ा ही मधुर मिश्रण हुआ है। कोई कोई छन्द तो 'तीर, तलवार और तमंचा' का काम कर जाता है। हमारी राय में तो सहृदयजन सरसमंजावली को न केवल कंठाभरन या हृदयाभरन ही बनायें, वरन उसे रसिक-समाज की गीता मानकर उसका नित्य—पारायण किया करें।" आगे सरसमंजावली उद्धृत की जाती है।

सरसमंजावली

चरण-चन्द्र-नख-चारु हरैं तम ताब शिताब नशा हैं,
राखैं रहैं सहाय हमेशा रसराहैं बरवा हैं;
सहचरिशरण कृपाल देहु तुम तनु तमाल छबि छाहैं,
अतिशय अति अरज़ी मरज़ी कर नज़र नेहदी चाहैं॥ १॥

जनु अनुराग बुलबुलैं लालन बाग़ बहार सरा हैं,
शिखि शिखिपिच्छ मौलि मनरंजन यार मुदार शिला हैं;
आशिक़ रसिक श्याम घन चातक चारु करत चरचा हैं,
सहचरिशरण अचाहैं चाहैं नज़र नेहदी चाहैं॥ २॥

दामन गहे रहैं जामेका इती अरज़ मुदकंदे,
दरश दिया करि महर किया करि महिरवान हरफंदे;
छबि चिराग़ रोशन चित चहिए सहचरिशरण अमंदे
ऐ ग़रीबपरवर! ग़रीब हम इन क़दमों के बंदे॥ ३॥

अरिल्ल--कुँजबिहारीलाल मजे जनि कीजिए,
भव-भय भंजन भीर सुदारू दीजिए;
चरणकमल की सौंह और नहिं ठौर है,
सहचरि शरण ग़रीब करौ किन ग़ौर है;
श्याम कठोर न होहु हमारी बार को,
नेक दया उर ल्याय उदय करि प्यार को;
सहचरिशरण अनाथ अकेलो जानिकें,
कियो चहत खल ख्वार बचावो आनिकें।

[मंज]

प्रणतपाल प्रण यहहि प्रणत कोउ लगहि पगहि नहिं नक्खैं,
साफ़ गुनाह माफ करि केते नज़र महिरदी रक्खैं;
यदपि बेवकूफ जन तदपि सुखद अलेख न लक्खैं,
सहचरिशरण दिलावर दिलवर तिसकी छबि चखचक्खैं॥ ६॥

अरे कोउ तौ कहो श्याम सों दरद हिकायत मेरी,
आवै इधर उधर के टेरे दारू देहि सबेरी;
तरफरात जल बिन मछरी जिमि दुस्सह दशा घनेरी,
सहचरिशरण बचै सो कीजे नीच मीच इत हेरी ॥ ७ ॥

हरदम यादि किया करि हरि की दरद निदान हरैगा,
मेरा कहा न खाली ऐ दिल ! आनन्दकन्द ढरैगा;
ऐसा नहीं जहां बिच कोई लंगरलोग लरैगा,
सहचरिशरण शेरदा बच्चा क्या गजराज करैगा ॥ ८ ॥

मीठा मंजु पिलाया प्याला ऐसा मुरशिद मेरा,
रसिक राजदा मैं गुलाम जिमि कामी कामिनि चेरा;
आशिकानदा रंग संग उर व्रज वृन्दावन हेरा,
सहचरिशरण मोहिनी मोहन दिया हिया बिच डेरा ॥ ९ ॥

फक्कर की टक्कर अब सबसे हला भला न हमारी,
दफ़तर फारि खुशामदहू का डारि दिया डर भारी;
बे परवाह भये दुनियां से महिर फ़क़ीरां धारी,
रसिक सहचरीशरण हमन से मनमोहन से यारी ॥ १० ॥

बेचगून अरु बे नमून कोउ पाय अफ़ीमै भीमैं,
सहचरिशरण खुशी किनि कोऊ गाया करौ रहीमैं;
श्यामल श्यामा मिला हमन को रूप- सुधा सुख-सीमैं,
वर शरवत मिश्रीदा प्याला पिया पियें क्या नीमैं ॥ ११ ॥

प्याय प्याय अब क्यों न पिवावै? छवि शराब नहिं थोरौ,
हा हहरात चितै रुख रूखौ हँसि हिय से हिय जोरौ;
सहचरिशरण सनेही सोहन करि सनेह जिन तोरौ,
राखैं तोहि सलामत श्यामा आशिक़ान रस बोरौ ॥ १२ ॥

ऐसो करो न सुरझै कबहूँ रूप-जाल उरझेरो,
दोजख इरम उरे दोउ तजिकै बसै इश्क़ मन मेरो;
मनमोहनी अदा से मोहन दस्त शीश पर फेरो,
रसिक सहचरीशरण तुम्हारा नेह नैन भर हेरो ॥ १३ ॥

तनु-घन सरस उसीर अतप्पर छबि-छप्परहि छवा दे,
मधुर मुहब्बत वर सरसी तट सुखमय हवा दवा दे ;
मंद-हँसनि अरबिन्द बदन की मृदु-गुलक़ंद खवा दे,
सहचरिशरण शिताब ताब दलि अब जिन करहि अवा दे ॥१४

निरदय हृदय न होहु मनोहर सदय रहौ मन-भावन,
नवल मोहिलो मोहि तजै जिन तोहि सौंह प्रिय पावन ;
रसिक सहचरीशरण श्याम-घन रस बरषावन सावन,
दरश देहु वर बदन-चन्द्रमा चख-चकोर बिलसावन ॥ १५ ॥

मेरा कहा मान मनमोहन मिलन मज़ा किन चक्खौ ?
एता जुलम न ज़ालिम अच्छा अनख मैंड अवनक्खौ ;
सहचरिशरण अंक भरि २ तुम यार प्यार से लक्खौ,
खंजनाची खैर करै वर आशिक़ान रस रक्खौ ॥ १६ ॥

हुकुम हुवा है आशिक़ान प्रति सुख देगा सुखसोहन,
निज मुख से तारीफ करी तब रसिकरिझोहन जोहन ;
पहिर महिर मोहनी सिरोपा महिर किया करि मोहन,
सहचरिशरण साहिबी तेरी सदा रहै गहि गोहन ॥ १७ ॥

उर अनुराग दोस्तां गुलशन चारु बहार चहा करि,
दिलाराम दिलदार प्यार करि सरस कलाम कहा करि ;
सहचरिशरण दुआगो आशिक़ आशिर्बाद लहा करि,
सुखद किशोरी गोरी को तू मरजीदार रहा करि ॥ १८ ॥

बेगुनाह बांके करि नैना क्या मग यही दिखाया?
अपने को दीदार न दैना क्या अब सबक़ लिखाया ?
वर गोरे मुखेवाली ने क्या लैना जीव सिखाया,
सहचरिशरण कमलनैना क्या करना जुलम चिखाया ॥१९॥

रिस रसरङ्ग उभय मिलि झलकत मटकायल मुख आंखें,
शोकरहित माशूक साहिबां अनखदार चव दाखें ;
यक सु अदा विच अदा अनेकनि जनु पैवन्दी शाखें,
सहचरिशरण तमाशबीनवर आशिक़ मृषा न भाखैं ॥ २० ॥

जिन चश्मों से मिला मोहिं तू जवांमर्द मन क़ायम,
लाकलाम त्योंहीं सुमिलाकरि यहै तलब दिल दायम;
सहचरिशरण मुहब्बत मोहन मंजुल मौज मुलायम,
दरद जुदाई दवा दिया करि इसी वास्ते आयम ॥ २१ ॥

आंखैं सफल करौ अभिलाखैं लाखैं रंग बसेरो,
अलिगण उर बिनोद उपजावत हास बिलास उजेरो;
रसनिधि सौहन रसिक-रिझौहन रूप अनूप घनेरो,
सहचरिशरण मांह नक्सब के आहि निरखि मुख तेरो ॥ २२ ॥

नासावर मुक्ता बिशाल जनु जानि सुराही राखैं,
मुख-छबि अधिक बारुणी भरि-भरि पल-प्याले बिच नाखैं;
सहचरिशरण सुझूमत घूमत करत पान अभिलाखैं,
ऐ महबूबां श्याम सुखूबां कृत मतवाली आंखें ॥ २३ ॥

ताकी दशा महामतवाली रसिक-मंडली भावै,
मांकन्दन मकरन्दी-अलि जित अमल अन्त नहिं आवै;
सहचरिशरण चखन बिच लाली रूप रंग बरषावै,
सरस मसालेदार यार वर-छबि-सबज़ी जिहि प्यावै ॥ २४ ॥

लग्यो जिगर मज़बूत अजब यह ग़ज़ब चल्यो किहु करते,
पल पल पीर दिलौं बिच ज्यादै घाव नदारद नरते;
सखीशरण कहि कमादार बहु अवशि विलोकिय मरते,
आशिक़ सकल शुमार होरहे इश्क सुरंगी शरते ॥ २५ ॥

शार सुरंगवर खैंचि करेजे मारा कहु सतिया है,
नटनागरदी ज़ालिम जुलफें उर वर बांध लिया है;
सहचरिशरण मधुर मुख बिहँसनि जादू डारि दिया है,
चश्म स्याह बीमार भरे-से मुहि बीमार किया है ॥ २६ ॥

तीरन्दाज अजब ज़ालिम शर खर कटाक्त नहिं डग्गौ,
ग्रह जब्बर जिमि लगै लगै तिमि दर वर दिल बिच खग्गौ;
खाय खवाय खुराक मज़ा मुद मधुर मज़ाक़न ठग्गौ,
सहचरिशरण रसिकवर बल्लभ रसमत्तन मन पग्गौ ॥ २७ ॥

त्रिबिध रंग रंगित अँग लालन चश्म शिलीमुख सच्चे,
छबि श्यामा खरसान अजूबा खरकर दाखर जच्चे ;
पंचवान देवान जिते जिन सुभट जीभ यश नच्चे,
घालत लगत इश्क़ दिल शालत शर घूमत रस रच्चे ॥ २८ ॥

बांकी पाग चन्द्रिका तापर तुर्रा रुरकि रहा है,
वर शिरपेच माल उर बांकी पटकी चटक अहा है ;
बांके नैन मैनशर बांके बैन बिनोद महा है,
बांके की बांकी झांकी करि बांकी रही कहा है ? ॥ २९ ॥

पट निशान कटि छुद्रघंटिका नवल नौबतें बाजीं,
झलमलानि तनु झिलम टोप शिर मोरमुकुट छबि छाजीं ;
खोलि खज़ाना दिया मौज का फूलन फौजैं ताजीं,
सिलह लिए मुद मंजु मजेजै आजु कौन पै साजीं ? ३० ॥

मन्द-हँसनि शमशेर-मार वर इश्क़ बलाय मरोरें,
रसिक आशिक़ाँ दिल तमाम गहि सबज़ रङ्ग बिच बोरैं ;
झमक सहचरीशरण बेदरदा जुल्फ जाल झकझोरैं,
व्रज वृन्दावनदे मतवाले प्रिय मुख—चन्द्रचकोर ॥ ३१ ॥

तनु, मन, प्राण जमा जेतीवर करि नीलाम लिया है,
इश्क़ा हौलदिलीदा अन्त न क्या पढ़ि मंत्र दिया है ;
जैसा हाल भया मजनूंदा तैसा किलकि किया है,
श्यामलाल तेरी बलाय-छबि धन मुश्ताक़ जिया है ॥ ३२ ॥

समझि लिया महबूब खूब तुम कहत बात इतराते,
ऐंडाइल अलबेले अञ्जन वर गुमरख हरषाते ;
रसिक सहचरीशरण श्याम रस बश योवन उमदाते,
आशिक़ान की तरफ़ नज़र करि नवदुलहिनि मदमाते ॥ ३३ ॥

गज मोतिन की मंगुल माला शीश ज़रकसी चीरा,
चन्द्र चारु बारौं पुनि तापर कलित कलङ्गी हीरा ;
नगवर जड़े कड़े कर सुन्दर खड़े फटे पट पीरा,
सहचरिशरण लिया बिन मोलन मृदु-बोलनि मुखबीरा ॥ ३४ ॥

जरीदार पगरी उदार उर मुक्तमाल थहरति है,
जरद लपेटा फेंटा कटि सों गुरुगर्बीली गति है;
सहचरिशरण मयङ्क बदन की मदनमोहनी अति है,
छबिसागर की छवि को बरणै कवि की क्या कुदरति है ? ३५॥

इन्द्रधनुष-बनमाल पीतपट दमकि दामिनी भावै,
कोटि काम अभिराम श्यामघन बंशी घोर सुनावै;
सुखसागर सुअंगना ते भरि अधिक रंग बरषावै,
रसिक सहचरीशरण सालिबन आशिक्रान सरसावै ॥ ३६ ॥

तकि उमदी पोशाक अनोखी तोरि तिनूका नाखैं,
मोरमुकुटदी लटकनदी तट मटक चाल चित राखैं;
सुन्दरवर मुखचन्द्र—शरद की रूपमाधुरी चाखैं,
सहचरिशरण मस्त ह्वै लागीं इन आंखिन सों आखैं ॥ ३७ ॥

कटि किङ्किणि शिर मोरमुकुटवर उर वनमाल परी है,
करि मुसक्यान चकाचौंधी चित चितवनि रंग भरी है;
सहचरिशरण सु बिश्वबिमोहनि मुरली अधर धरी है,
ललित त्रिभंगी सजल मेघ तनु मूरति मंजु खरी है॥ ३८ ॥

मुख मृदु मंजु महा खूबी यह गर्ब गुलाब हरौगे,
चश्म चारु नरगिस अलिमस्तां उर संकोच भरौगे;
छल्लेदार युगल जुलफें छवि सम्बुल छैल छरौगे,
सहचरिशरण संग लै गुलशन सैर शिताब करौगे ॥ ३९ ॥

चमन चारु छवि द्विज अनेक जनु कटि कीङ्किणी धरौगे.
नैन कलीन विलोकनि बांकी बचन प्रसून झरौगे ;
फत हजारहा इन्तजार जहँ अति अनुराग ढरौगे,
सहचरिशरण सङ्ग लै गुलशन सैर शिताब करौगे ॥ ४० ॥

अलकावृत मखतूल मूलछबि ते भुज-मूलन परसैं,
बांकी भौंह विलोचन बांके रूप रंग रस बरसैं;
अधर-बिंब बिंबित नकमोती नित-नौती दुति दरसैं,
सहचरिशरण पियूष भूख में मुख मयूष सुख सरसैं ॥ ४१ ॥

मलयज तिलक ललाट पटल-पट अटल सनेह सटक सो,
मदन विजय जनु करत पुरटमय कटि किंकिणी कटक सो ;
सहचरिशरण तरणि-तनया-तट नटवर मुकुट लटक सो,
चित चुरली मुरली-धुनि गावत आवत चटक मटक सो ॥४२॥

भृकुटि कृपाण काटि सब डारे जग दुजायगी परदे,
किया हुस्न चकचौंध बीच मन भूलि गये घर घरदे ;
दीन कुफ़र बदबोय करम कुल इश्क दिलां डर दरदे,
ऐ लालन बलिहार हार उर हार हार दे करदे ॥ ४३ ॥

नहिं उतरैगौ मैर उतारें नितप्रति अधिक भरैंगी,
लहरियात अति बाँकी एतो मन्त्रादिकन चरैंगी ;
निरखत कहा तोहि डसिहैं जब सुधि बुधि सकल हरैंगी,
रसिक सहचरीशरण नागिनैं जुलफें जुलुम करैंगी ॥ ४४ ॥

नृत्य करत मन हरत अमित गति हरषत हार हियाकरि ।
जनु अनंग अङ्गज पियलोचन रंगरलीन कियाकरि ;
सहचरिशरण उदार-शिरोमणि सुखसहबाश दियाकरि,
तरुणि तिलक तालीम दई तैं हँसि तसलीम लियाकरि ॥४५ ॥

नटवर वेष वधूवर कीन्हों चन्दन-खौर सम्हारी,
सहचरिशरण कलानिधि गबरू क्या सेली मतवारी ;
छविकर छरी लिये फूलौंदी दिये ताज जरतारी,
लटकत चलत मदनमद मटकत निरखि लाल बलिहारी ॥४६॥

धरि गज गाह सडा के मस्ती जीन जेब जुसजाये,
गुण अनुराग छवीली गल बिच कल हमेल पहिराये ;
सहचरिशरण बाम दृग बाजी लगन-लगाम लगाये,
पिय हिय हरण मार चढ़ि आया खुगी कटाक्ष कराये ॥ ४७ ॥

दृग-जलजात रसीले हँसि हँसि ललचत नहिं मन काके,
उर चटपटी लगावत क्षण-क्षण वैन मैनमय ताके ;
बरबस प्राण हरत निरखो री ! मुखबिलास-मधु छाके,
सहचरिशरण दौरि कोउ रोकौ डारत फन्द प्रभा के ॥ ४८ ॥

अधिक सलोना टोना करिकै बेणु बजाय गयो री !
हुतौ कौन को, कौन कहै किन, कैसे गाय गयो री ?
सहचरिशरण रंग भरि अँखियां चाग़न चाय गयो री !
मदनमई मैं भई बिलोकत मुख मटकाय गयो री ! ॥४९॥

गुलरुख सरस रहम करि हम तन बचन दुरुस्त कहैगा,
छकि छकाय सुख छबि शराब गुण गाहक बाँह गहैगा ;
सहचरिशरण रसिक आशिक़ यक सादर ताहि चहैगा,
जिनि अकुलाय बिहारी बिन मन ! आकर पास रहैगा ॥५०॥

नाभि भौं हरैं मन बताइकै टकटोवत न टरत है,
दावैं कहा कोक से कहिकै ? कुच कंचुकी हरत है ;
मुकुर हमारे इमि सुनाइ मुहि मुकर कपोल धरत है,
सहचरिशरण छैल यह लंगर ऐसे काम करत है ॥५१॥

गहैं पाणि से पाणि कौन बिधि छिगुरी छोर न छ्यावै,
प्रिय छबि छका न चितवै कितहूँ नहि खातिर तर ल्यावै ;
सहचरिशरण आशिकां प्यासे मुख माधुरी न प्यावै,
ताहि न काहि कहैं घनश्यामल मोर शिखा जिमि ज्यावै ॥५२॥

बेदरदी सुदफा करियगा हँसि दीदार दिया कर,
रस बरषाइ सदा इतराइल खुश दिल अदा किया कर ;
सुदिन आज माशूकी दावन तिसका मज़ा लिया कर,
सहचरिशरण रसिक आशिक़दा जीय जिवाय जिया कर ॥५३॥

हारि हकीम लिया है रस्ता समझ बिना को बोलै ?
खान-पान दी जिकर कहा है आशिक़ आंखि न खोलैं ;
ताकी दवा एकही दारद रूप अनूप कलोलै,
सहचरिशरण मुये को जैसे जीवन-मूल अमोलै ॥५४॥

रबि-तनया तट वर-बंशीबट हँसि दीदार दिया था,
ऋजु मुख मंजु बचन कहि सादर आशिक़ संग लिया था ;
कितहि रवाना हुवा वहै दिन छल दलि दस्त छिया था,
यार व यार मिलत नहिं काहे काहे क़ौल किया था ? ५५॥

मुलाक़ात कल विमल बिलासिनि रिस आवेश मढी–सी,
श्यामैं करत सलाम लेत न कलह सलाह रढी–सी ;
सहचरिशरण रसिकवर पैनी क़हर कृपाण कढी–सी,
उर अनुरागी आशिक़ान लखि मान–कमान चढी-सी ॥५६॥

रूप-सुधारस प्रमुद प्यावदा जिमि जलदा झर भारे,
प्यासहि प्यास पुकारत आशिक़ सहचरिशरण कहा रे !
ज़ालिम इल्म किया कुछ कामिल मोहन प्याऊवारे,
हम तमाम गोरी से गुज़रे तेरे गुण अनियारे ॥ ५७ ॥

यह निदान जानत सुजान उर राधा रंग चैन का,
अधिक प्रकाशित चिराग़ान कल कानन कुंज ऐन का ;
सहचरिशरण रसिक आशिक़ जन सुरमा-सुखद नैन का,
रूप अनूप तामरस मेचक मारत मान मैन का ॥५८॥

परिमल विमल महा मतवाली इश्क़ा मद जनमन में,
गृह दिमाग महबूब हो रहे आशिक़ दिलां चमन में ;
सहचरिशरण माहियां जल जिमि·मृदु मकरंद लसन में,
छवि स्वामी हरिदास रसिक बिच जनु गुलाब गुलशन में ॥५९॥

रज्जु असक्ति इश्क़दा मंदर कमठ भावदा होवै,
साबित इश्क़ दिलों से मिलिकै रसनिधि रसिक बिलोवै ;
आबदार अनमोले अच्छे रतनावलि युग जोवै,
सहचरिशरण सु फैजबख़्श वह जाहिदाद मद खोवै ।६०॥

खाली है न खुशाली से मन उर अनुराग अली का,
विमल महलदा रंग लालची भावुक भक्ति भली का ;
सहचरिशरण रसिक रसमाता कुंजर कुजगली का,
आया नहीं न आवै छल बिच आशिक़ छैल छली का ।६१॥

हरदम कदम कलमना महरम मन अनुभवी अनंदा,
जिहिं अंगूर–सुता शरमिंदी सुरख शराब खुरिदा ;
भाव–लहर दरयाव–दिलौं बिच ठयो ठाव मुख–चंदा,
सहचरिशरण उपासक आशिक़ आशिक़ रसिक चुनिंदा ॥६२॥

इश्क दिलों से निरविलीक ह्वै लीक निदान खचा ले,
सहचरिशरण सुजान सु नाजुक नाजुक रंग रचा ले;
हरिबिध बन्यो सरस वर बानिक आनँद आजु मचा ले,
चातक चाहि शिखी सम नैना छवि घनश्याम नचा ले ॥६३॥

मनमोहन महबूबी खूबी मुलक अमोलक ताके,
बनी ठनी रस अनी सनी सुख घनी मनोहरता के;
शहचरिशरण शाह जग ज़ाहिर इश्क जवाहिर जाके,
बखत बलंद तख़त पर बैठा नीति निशान बजा के ॥६४॥

हासिल होय रसायन रस की रहित अहित रस्तों से,
मिलती रहैं सदा खुशन्यामत महिरमई तश्तों से;
सहचरिशरण शिताबी दोस्त दस्त लेहि दस्तों से,
छबिशराब से झिला रहै यह मिला रहै मस्तों से ॥६५॥

वे दरेग वे परद गरद बिन मिलना महिर दिलों से,
युगलकिशोर जोम जिनके जिय मोहबति मोम-दिलों से;
सहचरिशरण फराग़त रहना शाकत संगदिलों से,
ऐ दीदम जु सुनीदम रच्चे सच्चे इश्क़ दिलों से ॥६६॥

हो हुशियार होशदार तू खल-मति ढोल मढाया,
चटकदार छबिदार न छूटै ऐसा रंग चढ़ाया;
सहचरिशरण रूप दी दौलत अति आनंद बढ़ाया,
इश्क़ किताब शिताब यार मुहि उर धरि प्यार पढ़ाया ॥६७॥

इश्क़ी इश्क़ उपासक सच्चा युगल यार छवि छक्का,
ऐंडदार दरगाही बंदा मस्त कबूतर लक्का;
निंदक से खुश हुआ दिलंदर निंदा फिरि फिरि बक्का,
ज्यों स्वसुरारि गारि जग प्यारी सखीशरण परिपक्का ॥ ६८ ॥

जिय-जहान सों तरक जिनों का ग़रक़ महान बिचारा,
इश्क़ेलम सुकलन्दर अन्दर है मुद-मन्दिर प्यारा;
शीशमहल मालूम समा जिम जोति जेब जग सारा,
सहचरिशरण क़दमबोसी कुन खुशं दिल होय तिहारा ॥ ६९ ॥

रूप न जानै रसिक श्यामदा सरस कला मन मानै,
निरस कलाम कृशानु दाह कर ज्ञानी मन अभिमानै;
कर-कमलों से परशि हमन को बरषि रंग उर आनै,
सहचरिशरण शिताब दिखावो बदन-चन्द सुखदानै ॥ ७० ॥

अब तकरार करौ मति यारौ लगी लगन चित चंगी,
जीवन प्राण युगल जोरी के जगत जाहिरा अंगी;
मतलब नहीं फिरिश्तों से हग इश्क़ दिलां दे संगी,
सहचरिशरण रसिकसुलतांवर महिरवान रसरंगी ॥ ७१ ॥

उर अनुराग रसिक आंखौं बिच वर गोरी छवि छाजै,
घनश्यामल मिलि अजब त्रिबेणी बेणी तिलक विराजै;
गुप्त कुशल आशिक़दा दम दम सहचरिशरण समाजै,
बिमल विनोद बिलोकि जिनौं को भुक्ति मौज मन लाजै ॥ ७२ ॥

दौलतखाना रूपरंगदा अदामजादी दोऊ,
परा शोर दरबार दोस्तां क्या गरूर करि कोऊ?
सहचरिशरण अजबदी दारू श्यामल श्यामा सोऊ,
लगे हमन को अखिल अलोने निरखि सलोने दोऊ ॥ ७३ ॥

उस सूरतिदे तलबदार हम कहि दे दगा सुना दे,
आहू चश्म अहो घनआनन्द टुक दीदार करा दे;
मिलै हमन को यार सिहरदे कार वान जिनि लादे,
सहचरिशरण अमल-छवि लेना रसिकराय शहजादे ॥ ७४ ॥

अटकि रह्यो अटपटी पाग मन मुखसुखमा सुखसागर,
बिमल गण्ड मण्डल पर झलकत कुण्डल अलक उजागर;
बर गुञ्जरत मलिंद माल उर नवकिशोर गुणआगर,
मृदु-मंजीर झमाझम बाजत झमकि चलत नटनागर ॥ ७५ ॥

मृदु-पद-पङ्कज गुल्फ अनूपम अलक़ लङ्क रसना की,
उर भुजदण्ड बसन भूषण तनु चिबुक चमक चहुँघा की;
भृकुटि कमा सुखमा सुमुखादिक हग बादामनुमा की,
दर दिवार मुश्ताक़ हुए सखि! अय किशोर लखि झांकी ॥ ७६ ॥

बेद किताब लोक दा रस्ता ऐसा कौन चलावै ?
आशिक़ान माशूक़ मालमद बरबश लूट करावै,
सहचरिशरण जबरदस्तों से भागिनि कोऊ पावै,
वृन्दावनदा बासिंदा निजगुण दौरा दौरावै ॥ ७७ ॥

रूप सुहुस्न रसिक अलमस्तीवर कुंजर करि हांसी,
लखि आलान युगल जुल्फैं जनु जित सुप्रचेता पांसी ;
सहचरिशरण श्याम गुलखन्दा खम अबरूय कमांसी,
खूबी खूब लताफल लागत ग़ज़ब निगाहैं गांसी ॥ ७८ ॥

लटकारी लटकारी नाहक नागिन आन खगैंगी,
मनमोहन की दीठ मोहनी रसनिध ठीक ठगैंगी ;
सहचरिशरण सु क्यों न कहा तुम उर बिरहागि जगैंगी,
अय मालूम न मोहि परी तब इश्क़ बलाय लगैंगी ॥ ७९ ॥

अमल चढ़ी भृकुटीवर फरकैं फरकैं दृग-रतनारे,
मृदु मुसक्यान बँकीली बांकी बैन बिनोद सुधारे ;
मोरमुकुटदी लटक बंक छवि जुल्फ-जाल अतिकारे,
सहचरिशरण त्रिभंगी रङ्गी उर उरझे मतवारे ॥ ८० ॥

उच्चे कुच लसैं बिच कंचुकि तापर अंचल फेरो,
चाल मटक्केदार हरै मन बदुरारो मुख तेरो ;
जुलफि करादी जाली आली मृग मोहन उरझेरो,
सहचरिशरण अदा दिखलावै लावै रङ्ग अनेरो ॥ ८१ ॥

किया प्राण कुरबान जानि जिय अति अनुराग बड़ा है,
ऐ दिलवर ! दिलवरी करौ चलि दिल दीदार गड़ा है ;
सहचरिशरण सदन दर कदका रस मस्तान अड़ा है,
तेरी कसम चश्म तेरे लखि तेरा जान खड़ा है ॥ ८२ ॥

ठनि बनि ठनगन ठानत रसिया कधीं कधीं रसरासे,
कधीं कधीं रुख रूखा करि करि अधर दशन धरि त्रासे;
कधीं कधीं कहि गल्ल सहल्ला ऐ आशिक़ ! तुम खासे,
दिल मुश्ताक़ हुआ है ये रे ! तेरे देखि तमासे ॥ ८३ ॥

अलमस्तोंदा कंठ विभूषण दिनदानन्द म ानै,
जगमगात युग युगल जेब से रसिक-जौंहरी जानै ;
सहचरिशरण हुआ जग जाहिर साइर शाह प्रमानै,
ललित ललाम कलाम हमारा ऐसा कौन बखानै ? ८४ ॥

मय अमलादि पिया न पिया सुख प्रेम पियूष पिया रे !
नाम अनेक लिया न लिया रति श्यामा श्याम लिया रे ;
आन सुदान दिया न दिया वर आनन्द हुलसि दिया रे,
जग यज्ञादि किया न किया हिय पर उपकार किया रे ? ८५ ॥

बदबेदरदां बेतबीत से दिलदा दरद न कहना,
दुसह दवा से सुख सरोज को रुज हररोज बिसहना ;
बीछी के जु खार से खारहि काढ़त बड़ा अलहना,
सहचरिशरण इलाज इलाही रूप रङ्ग में रहना ॥ ८६ ॥

जबलग मुख भोजन है ताके तबलग मधुर बिशेखो,
भोजन-रहित होत वह तबहीं अधिक विरसता रेखो ;
मिथुन बदन अकुलीन कहत कवि ताडानादि गुण लेखो,
सहचरिशरण भूलि जिनि भूलौ खल मृदङ्ग इव देखो ॥ ८८ ॥

प्रफुलित अंग मिलावत चोंचनि मृदु कूजनि जनु टोना,
ओघ निकुंज घैसुवनि सीखैं रसखिल कोटि सलोना ;
श्याम बिहंग बिहङ्गिनि गोरी जिमि उरझो गुणगौना,
सहचरिशरण अचागर नागर वर खिलवार खिलोना ॥८८॥

यमुनातट बंशीबट नटवर राधा रसिक रिझांवदा,
विविमुख-चन्द्र-चकोर-चारु-चख जय जम जीव जिवांवदा ;
अंस अंस भुज मेलि युगल छवि छकि छकि छाक छकांवदा,
सहचरिशरण उपासक आशिक़ यही ख्याल मन भांवदा ॥८९॥

सुभग सौरभानन्द नासिका प्रभा-नीर-निधि बोरैं,
इश्क़-महल मिहरावैंसीवर भ्रूकुटि भेद भरि भोरैं ;
मदन मदा उमदा उर चन्दन बदन-चन्द्र चित चोरैं,
सहचरिशरण रसिक आशिक़ तनु झुकिझपाक दृगजोरैं ॥९०॥

लीला ललित विलोकनि तबकी दृग ध्रुव धाम धसी है,
मृदु मधु मंजु बहै बोलनि श्रुति विमल बिलास लसी है;
आशिकान उर आनि अमानी वह मुसक्यान बसी है,
जनु अरबिंद मध्यवर भ्राजत सुखमय सुभग शसी है॥६१॥

किस ज़ालिमदा इल्म लिया यह छलिया छैल छलैगा,
बिशद रंग वर पहलवान छबि मान-मनोज मलैगा :
इश्क़ दिलौंदी गोल गुमानी बिकट कटाक्ष घलैगा,
सहचरिशरण रसिक हँसि आगे चंचल चाल चलैगा॥६२॥

भ्रमत भँवर कल कमल भ्रमावत कर चूरा चमकावै,
वर दुलहेदा रूप झलाझल तनु दुकूल दमकावै;
सहचरिशरण रसिक मुक्ताहल झुकि झूमक झमकावै,
इश्क़ तमाशेदार कथा कहि दृगन रंग रमकावै॥६३॥

किया बिभञ्जन मद सारसगण लखिलखि लटक ललाकी,
ग़लित ग़रूरी कल अलकैं तकि छल्लेदार छला की;
अगणित नटवर लेत बलैयां नागर नवल कला की,
वारिद-वृन्द न पावत समता अमिता झलक झला की॥६४॥

होंना नहीं बिदरदां लाज़िम आशिक़ तरफ तिहारे,
इश्क़ क़दरदां वरईषद हँसि नज़र दुरुस्त निहारे;
सहचरिशरण रसिक मुद मुर्दा जस-खुशबोय बिहारे,
रसमस्ती करदां लखि तिनकी अलि अँग अंग चिहारे॥६५॥

बाग़ तड़ाग नबर 'नेहावलि डगर मांदगी डूबी,
उर अनुराग खजाना जाना मनमोहन महबूबी;
दृग रतनारे दा गुणगल्लैं सुहबत नाल अजूबी,
सहचरिशरण हरीफ़ रसिकवर रसरस्ता बिच खूबी॥६६॥

[अरिल्ल]

श्याम सुबेद बेद को सार है, आशिक़ तिलक इश्क़ करतार है;
आनँदकन्द तीन गुण ते परें, प्रीति प्रतीति रसिक तासों करें॥९७॥

मंज—क्या लगते हौ दौरि-दौरि तुम मनमोहन के रूपै ?
बिन देखे फिर कल न परैगी सुंदर बदन अनूपै ;
सहचरिशरण रसिक आसिक दृग पगि जैहैं रस तूपै,
वह बेदरद न दरद जानि है शरद-चंद्र ब्रजभूपै ॥९८॥

हुकुम हुवा है मोहन को यह वे शिर होय सु आवै,
सुंदर मति मैदान इश्कदा ढोल अमोल बजावै ;
सहचरिशरण रसिक आशिक नट सुरति वरत चढ़िधावै,
दुहरी तिहरी लेहि कुलाटैं दरश इनायत पावै ॥९९॥

कनकजटित केकी कल कुंडल भव भुजंग विष-भंजन,
मनमोहन वर बाज भौंह नख ब्रज नख गाली गंजन ;
रतन अमोल अमल दृग आयत बिपतिदलन मनरंजन,
सहचरिशरण त्रिताप तिमिर-हर बदन-चन्द मति-मंजन ॥१००॥

उर में घाव रूप सों सेंकै हितकी सेज बिछावै,
दृग-डोरे सुइयां वर बरुनीं टांके ठीक लगावै ;
मधुर सचिक्कन अंग-अंग छवि हलुवा सरस खवावै,
श्याम तबीब इलाज करै जब तब घायल सचुपावै ॥१०१॥

रतनारे अनियारे प्यारे जनु मनसिज के भाले,
घने घाव घाले बहु बांके आशिकान घर घाले ;
सहचरिशरण रसिक उर अंतर नष्ट शाल जिमि शाले,
मनमोहन बिश्वासी के दृग लखि लोने रस आले ॥१०२॥

निरखि दयानिधि ! निपट गरीबी बेदरदी न जगा दे,
रवादार जिनि होहु पार करि जर फकरी तगादे ;
सहचरिशरण रसिक आशिक तब भव नदिया न दगा दे,
ऐ मलाहवर महिर दुरस्ती निज किश्तियें लगा दे ॥१०३॥

रूप नीर-निधि अंग-अंग प्रति प्रीतम प्राणपिया तैं,
आशिक रसिक बिलोचन प्यासे छबि छिटकान दिया तैं;
नवलनेहवर मंत्र मेलि शिरमन मालिक सुलिया तैं,
सहचरिशरण श्याम लोभिन पर बाढ़ा सरस किया तैं ॥१०४॥

मनमोहन मुख लगी खगी उर ज़िकिर जूह धरिवे को,
हाय ! बलाय कहां ते आई ? इश्क़-भूमि भरिवे को ;
सहचरिशरण रसिक आशिक़ अति जहमत पन करिवे को,
बंशी सरल सरसवर बंशी मीन-प्राण हरिवे को ॥१०५॥

रूप अनूप सदन हँसि खोले अलकफन्द अलबेले,
तिन बिच बंद हुते जनु जादू बील भाव ते मेले ;
सहचरिशरण रसिक आशिक़ शिर अधिक रंग सों खेले,
सुख सरसाय बसाय इश्क़-पुर उर शेतान उशेले ॥१०६॥

ठहरि दरश देता :नहिं कबहूँ गुण-गँभीर गरबीले,
ठगि-ठगि लेत ठगन मन मेलत मृग शावक दृगवीले ;
अलक बाल मृदु मत्त बँधे गज आशिक़वर अरवीले,
सहचरिशरण रसिक रसिया के कल छल छन्द छवीले ॥१०७॥

रस रविजात न्हाइ बिमल छबि फवित शृँगार शृँगारे,
अंकुश भौंह सैन करि साकर डीलदार कलकारे ;
सरस रँगीली टक्कर तिनकी दिगदंतिन मदहारे,
क्या गुनाह आशिक़ तन पेलत ? पील नैन मतवारे ॥१०८॥

[दोहा]

यह मंजावलि मंजुवर इश्क़ शिलीमुख ग्राम ।
रसिकन हृदय प्रवेश करि राजत अति अभिराम ॥१०९॥

[मंजु]

बरबरछी मुसक्यानि हनी उर नैन-कटारी तापै,
अति भरि बांह तानि बेदरदां करद चलाई जापै ;
घायल किए रसिक आशिक़-जन वलि तव बीर कलापै,
इश्क़-तमंचा कराबीन छबि लिया श्याम कहु कापै ?११०॥

बिन हथियार करत उर घायल समर बावरे भैना,
अति इरषैल मदन पुनि तापर दई बांक करि सैना ;
इक वंदूक चढ़ी जिमि बाजी तासौं कोउ बचै ना,
सहचरिशरण रसिक आशिक़ कों इमि महबब बदै ना ॥१११॥

तेरा जहाँ कहाय हाय ! अब उर बिरहागि दहावै,
रे बेदरद ! दरद यह केता दर बरदस्त गहावै ?
सहचरिशरण रसिक चय चातक तू घनश्याम कहावै,
रूप रंग रस बरषि स्वाति सुख प्यासहि क्यों न बहावै ?॥११२॥

जग तारीफ करैगा दायम देगा नहिं करताले,
वरबिनोद मंदिर देखन बिच खूटि जाहिंगे ताले ;
मुख-चंद्रम दीदार मिलैगा जबर होहिंगे ताले,
सहचरिशरण रसिक आशिक़ जन तिनका सरस मताले ॥११३॥

मनहिं किया है जेरदस्त जिन शोभा साधु सभा-की,
सहचरिशरण कुटिल भवमोचन महिर सबल रसिका की ;
यदपि सुखाकसार दुनिया बिच लगत न आफत जाकी,
जिमि आईन आबखाने मधि झलक जात नहिं ताकी ॥११४॥

फिरत कहा दर बदर मुलकहा गिरि गुहादि दुखदैनी,
सहसधार अरु पंचागिनि पुनि तपचरिया अति पैनी ;
सहचरिशरण कलाम आश्क़िां न्हान किया कर वैनी,
इश्क़ रंग बिन मिलै न मोहन बिन मोहन सुखसैनी ॥११५॥

मद गजेन्द्र जिमि छक्यो रहै नित नव रंग लाग लगी है,
रूपराशि महबूब खूबसो मन-मन सात पगी है ;
सहचरिशरण राज रस रस्तां ताते मति न डगी है,
रसिक आशिकन की निज जाके उर वर कृपा खगी है ॥११६॥

मृदु-पद-पंकज पर अलि-आवलि नाभी-सर तिमि देखौ,
कण्ठ विभूषण मणिमय माला सहचरिशरण बिशेखौ ;
मुख-चन्द्रम चकोर वर माथे बरहि चन्द्र-छवि रेखौ,
उत महबूब सुअङ्ग इतै नित आशिक़ान दृग देखौ । ११७ ॥

सरस रङ्ग दरियाव महासुख मछरी हुवा चाहिये,
बदन-चन्द्रमा छवि-चकोरवर आशिक हुवा चाहिये ;
सहचरिशरण रसिक जल दातुन चातिक हुवा चाहिये,
मनमोहन दा हुस्न-बाग बिच बुल-बुल हुवा चाहिये ॥ ११८ ॥

दुख जिन देहु गरीबों के हिय हासिल मुराद होगा,
लेते रहो मिहिर सन्तों की हासिल मुराद होगा;
उर बिश्वास राखि मुरशिद का हासिल मुराद होगा,
सहचरिशरण याद कर हरि को हासिल मुराद होगा ॥ ११६ ॥

मादर पिदर बिरादर नादर बिना काम कै मानै,
सुख से गुजर होत कै दुख से दिल उनही का जानै;
कै जानै खुद बखुद पीर तू सहचरिशरण बखानै,
क्या बलाय तेरे चश्मों में ? आशिक़ किए दिवानै ॥ १२० ॥

सुख संतोष सु है फकीर कोउ बे दिल कधी न जातैं,
चुप हो रहा सकल आलम से आशिक़ान से बातैं;
ऐ नटनागर ऐ बांकेवर जिकिर लगी दिन-रातैं,
सहचरिशरण सुइश्क बोस्तां चंचरीक जन तातैं ॥ १२१ ॥

स्वाति-बूंद बरषत वर-बारिद श्रीगुरु-मन्त्र सुनावै,
सकुच मीन पुनि परश होत जिहि रसिक दया दुलरावै;
सहचरिशरण परत मुक्ताहल विशद मोद उपजावै,
छबिकर छीप हृदय नर-नागर निरखि नीर-निधि भावै ॥ १२२॥

जाना सकल जहान ख्वाब जिन नहिं विकार कछु तनमें,
श्रुति सुखसार बिहार बिहारी नक्श हो रहा मन में;
आफ़ताब जनु तेज मध्यवर अस कोइ बिरला जन में,
आशिक़ रसिक निगाह खाक ते होत कीमिया छन में ॥ १२३ ॥

[सोरठा]

मोहन छबि चक्कान, मनहु अजब सबजी सरस ।
भूलो भव मक्कान, जाहि दई हरिदासजू ॥ १२४ ॥

[मंज]

सहचरिशरण किताबों में इक हुमा बिहंग कहा है,
आशिक़ रसिक जहाँ बिच त्योहीं तिनते लेहु लहा है;
जा शिर परत छांहवर ताकी साबित होत महा है;
ए अनुकम्पा करत निकरपति नहिं सन्देह रहा है ॥ १२५ ॥

अरिल्ल—बेदरदाँ उस्ताद महा खिलवार है,
तापर जादूगरां दगादातार है,
मोहन के अस नैन प्रगट छबि देखिए,
आलि शरण उपमान दुरद बर लेखिए ॥ १२६ ॥

मोतिन की बरमाल श्याम उर में बसी,
देव धुनी की धार मनहु यमुना धसी ;
नाभि चहूँ चहुँपास रोमराजी प्रभा,
मानहु कमल समीप आइ अलि की सभा ॥ १२७ ॥

मंज—चखन रूप चकचौंधी में चित मारी लात खरी है,
अकसमात यह अलक आइकै मन-जञ्जीर परी है ;
मृदु-मुसक्यान मूढ़ उर घाली मोहन मोह भरी है,
सहचरिशरण रसिक आशिक ने क्या तकसीर करी है ॥१२८॥

बार-बार मैं बेशुमार मैं बारहि बार करें हैं,
सहचरिशरण औगुणी औगुण हर काहू न हरे हैं ;
आधि ब्याधि अपराधनि हनिए हरि अरिता नियरे हैं,
नैन बान बरुनीवर करवत चारु चलाइ खरे हैं ॥ १२९ ॥

कहि-कहि वचन विहँसि माथे पर करको कबै धरोगे ?
करुणाकर चितचोर कहावत चित को कबै हरोगे ?
हरषि हमारी आंखिन में सुख सुखमा कबै भरोगे ?
सहचरिशरण रसिक आशिक मुहि मोहन कबै करोगे ? १३० ॥

नाभी-भमर चारु-छवि लहरैं गरज मुरलिका भावै,
बङ्कबिहारी नाम सलोनो नेह-नदी चलि आवै ;
रूप-कहर दरियाव परे दृग पैरि पार नहिं पावै,
मन-मलाह की क्या कुदरत है पकरि बाहिरै लावै ॥ १३१ ॥

सरल सुभाव, शील, संतोषी, जीव दया चितचारी,
काम, क्रोध,लोभादि बिदा करि समुझि बूझि अनतारी ;
ज्ञान, भक्ति, बैराग, बिमलता दशधा पर अनुसारी,
सहचरिशरण राखि उर सद्गुण जिमि सुबास फुलवारी ।'१३२॥

धीरज, धर्म, विवेक, क्षमा युत भजन यजन दुखहारी,
तजि अनीति मन सेइ संतजन मानि दीनता भारी ;
मीठे बचन बोलि शुभ सांचे कै चुप आनन्दकारी,
कीरति बिजय-बिभूति मिलै श्रीहरि गुरु कृपा अपारी ॥ १३३ ॥

पाहि पाहि उर अन्तर्यामी हरण अमङ्गल ही के,
सहचरिशरण बिनय सुन कीजै बारिधि कृपा-अमी के ;
दुस्तर दुसह दुखद अविचारू बिफल होहिं खल जी के,
जिमि शिशुपाल कुचाली जी के परे मनोरथ फीके ॥ १३४ ॥

क्षितिपति लेत मोल पशु पक्षिन इहि बिधि कबै लहौगे ?
रवि-दुहिता सुर-सरित भूमि जिमि रस उर कबै बहौगे ?
पकरत भृङ्ग कीट को जैसे तैसे कबै गहौगे ?
सहचरिशरण मराल मानसर-मन इमि कबै रहौगे ? १३५ ॥

रूप अनूपम सरस मसाले रिस मिरचैं गुणखानी,
मृदु-मुसक्यान मिलीवर शक्कर छबि श्यामा पय छानी ;
सहचरिशरण मदन यह कीन्ही रसिकन को सुखदानी,
प्रभा श्याम की सिद्धबुटीमय छकनि छकत मनमानी ॥ १३६ ॥

वरमहान रँगरेज रसिकमणि नमनि रँगाई दैनी,
गहिरे बोर लगावै मन पट आवै रङ्ग रमैनी ;
अनमिट चटक निपट जनु मटकनि पर परमा मृगनैनी,
सहचरिशरण सरस वृन्दावन गौर श्याम रङ्गरैनी ॥१३७॥

सटकारी लटकारी कारी चिकन चारु चितहरनी,
बदन अनूप रूप धन विचरत गरब गारुरू-चरनी ;
नवल अलक नागिनि अलबेली अदुष बिदुष वरबरनी,
सहचरिशरण रसिक सब सांची निजमनडसत निडरनी ॥१३८॥

मृदुलतल्प सुख सैन बदन-बिधु मदन-सदन छबिछाई,
मिथुन जीभ नोंकैं नवनागिनि अलक भौंह बिच आई ;
सहचरिशरण रसिक आशिक यह मनहु सपक्षव काई,
बंदनीयवर-वृन्द ग्रसत मद हँसत उपम समुदाई ॥ १३९ ॥

अति अभिराम रोमराजी ऋजु राजी श्याम सुरीतैं,
मुख मुसक्यानि सिरोही सांची दृग बिबितुरी खुरीतैं ;
आशिक रसिक बचै अब कैसे ? नटवर कला-छुरीते,
सहचरिशरण बांक बांकी गति मदनानन्द पुरी ते ॥ १४० ॥

सहचरिशरण बसन सुखमामय आनँद भूषण जाके,
रूप अनूपम अंगराग लखि ललितलता बनिताके ;
बिकसनि हँसनि सुमन-गुच्छा-मुख अलि-ईक्षण मधु छाके,
परशत रसिक श्याम कर-पल्लव फल-उरोजवर ढांके ॥१४१॥

मृदु मुसक्यान भौंह करि बांकी कछु कटारि सुख सारी,
नवल नागरी वर सिंदूर कल कन्दुक पिय हिय मारी ;
सहचरिशरण अनूप रूप छबि सुखनिधि सनधि बिचारी,
जनु अनुरागमई कृत मुद्रा आशिक्र उर करधारी ॥१४२॥

अरिल्ल—फूल बिमल हरिदास रसिक रसमूल है,
आलिशरण अलिशरण कृपा अनुकूल है ;
पान करत उर भरत प्रेम स्वच्छंद को,
बंश प्रशंसित सुलभ दुलभ मतिमन्द को ॥१४३॥

मंज—मैन सैन कौतूहल को निल सुरति-समर रँगरेलैं,
प्रमुद गयंद रूप हद हौदा चढ़ि चलिदान दलेलैं ;
तनु छबि छटा अनेक नीलमणि जलज-हार हँसि मेलैं,
आलिशरण आली आली जय पल पल्ले बिच झेलैं ॥१४४॥

अदय हृदय कल किलौ मदन मद मनमोहन मन फूले,
खण्डित गंड अधर छबि मंडित पंडित सुरति अतूले ;
अविचल अचल मोरचा दीन्हे कुच-मण्डल भय भूले,
समर बीर मंजीर धीर चढ़ि कृत हल्ला भुज-मूले ॥१४५॥

मीन पीन सरसी अथाह रस सुमति सुराहन थक्के,
इश्क़-सिपाही माहिर बहादुर युगल मजलसी पक्के ;
रसिक आशिक़ों के बरदोस्त फासिकानि दिय धक्के,
आनँद अति गद्दी-नशीन मन अस अनन्य जन तक्के ॥१४६॥

[मूल युग्म चंद्रोदय]

पीन-पयोधर अति उतंगवर परबत-शिखर सुहाती,
बाहु मृणाल बिशाल बिलोचन दुखमोचन रसमाती ;
सुखमासुखद सकल सीमन्तिनि तिनके हृदय बस्यौते,
मान मन्दमति चाहत अबलगि तहतैं नाहिं नश्यौते ॥१४७॥
मुकुलित प्रमुद कुमुद कलकलिका छकि निकसी अलिसैनी,
सुकर पसारि कृपाण म्यान ते खैंचत निशिपति पैनी ;
सहचरिशरण आमरख लाली नायकानि अनुकूली,
अजहूँलौ किनि भागि अभागी तकि तोपर प्रतिकूली ॥१४८॥
प्रावृट प्रगट सरस रसबर्षत सुरति शूर रँगरासी,
आगम आमनायको आनँद बिहँग प्रेम तरु बासी ;
रसिक शिरोमणि जय हरिदासी उर पाथोधि बिलासी,
सहचरिशरण श्याम श्यामा भज जनमनमंजु बिकासी ॥१४९॥

[मंजावलि-फल-स्तुति]

॥ कबित्त ॥

मृदु मकरन्द राग आनँद पराग मित्र बिमल बिराग-रति परिमल धीर है,
अरथ अमोल मुकताली त्यों कलोल भाव सुबरण-घाट सो अतोल छबि-नीर है;
रसिक रसाल मन-मधुप मरालन की मीनधी बिशालन की तामें अति भीर है,
सरसमंजावली को कियो है तिलक मंजु मानहु कञ्जावली को मानस गँभीर है ॥

॥ श्रीसरसमंजावली संपूर्ण ॥
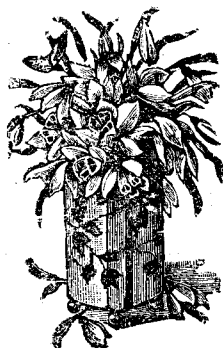
श्रीस्वभूदेवाचार्यजी

* छप्पै *

श्रीस्वभूदेव आगार-भक्ति सद्-सदन-प्रकासी ।
रिद्धि सुसिद्ध प्रदायक, भव-भय अघ-तम-नासी ॥
कलित जुगल-छवि-सलिल मीन सुसर्वस दम्पति ।
श्रीहरिव्यासदेव पद-पद्म प्रीति इन सेवित सम्पति ॥
आचार्यपाद 'द्वारा' प्रथम संस्थापन करि जक्त मधि ।
बीधार्मिन धर्मी किए बहु अति उत्कट सब शक्ति सधि ॥

विहारीशरण

श्रीहरिव्यासदेवजी-महाराज के द्वारा-संस्थापक, मुख्य द्वादश शिष्यों में श्रीस्वभूदेवाचार्य सब से बड़े थे। इनका जन्म, पञ्जावप्रान्तार्गत बूड़िया नामक ग्राम में हुआ था; जो यमुना-तट पर जगाद्री के निकट एक पवित्र वस्ती है। यह स्थान विशेषतः 'श्रीस्वभूरामजी की वनी' के नाम से ही प्रसिद्ध है। वहाँ इनकी समाधि अद्यावधि अमिट-कीर्ति को स्मरण करा रही है। उस देश की जनता इस समाधि में वहुत ही भाव-पूर्वक श्रद्धा रखते हुए सेवा पूजा करती है और मनोइच्छा पूर्त्यर्थ मानता मनाती है। उन्हें समय-समय पर इच्छित-फल प्राप्त भी होते रहते हैं।

ये पवित्र ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे। इनके विषय में श्रीहरिव्यासदेवजी से सम्बन्ध होने का, परम्परा-प्राप्त, यह प्रसङ्ग प्रसिद्ध है कि-'इनके पिता के कोई पुत्र न होने के कारण चिन्तित रहते थे। एकवार वे पुत्र प्राप्ति की कामना से ही सूर्य्यग्रहण के सुअवसर पर कुरुक्षेत्र पधारे। इनके सौभाग्य-वस श्रीहरिव्यासदेवाचार्य्यजी भी शिष्य-मण्डली सहित वहीं विराजमान थे। इनके माता पिता, आचार्य्यवर्य्य का दर्शन कर, अति प्रसन्न हुए। आचार्यपाद का प्रभावपूर्ण यश को वे प्रथम से ही श्रवण कर रखे थे; इसलिये उन्हें इच्छित-फल प्राप्ति की पूर्ण-आशा हुई। श्रीचरणों में दण्डवत् करने के पश्चात् पुत्र-प्राप्ति के लिये प्रेम-पूर्वक प्रार्थना की। उनके आल्हादमय दीन-विनय से प्रसन्न होकर, श्रीमहाराज ने उनकी अभिष्ट-सिद्धि की पूर्ति करते हुए आशीर्वादात्मक-

वाक्य प्रदान की कि—तुम्हें एक प्रतापी पुत्र-रत्न उत्पन्न होगा और वही नैष्ठिक-ब्रह्मचर्य्य का पालन करता हुआ मेरे पश्चात् इस अनादि-सम्प्रदाय का प्रचारक होगा। इच्छित-वरदान को प्राप्त कर, वे अति प्रसन्न हुए और पर्व-स्नान कर, अपने निवास-स्थान को वापिस लौट गये। श्रीआचार्य्य-आज्ञानुसार कुछ समय के उपरान्त पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ। माता पिता ने अति स्नेह पूर्वक पालन-पोषण किया। जब आठ वर्ष की अवस्था हुई तो इन्हें लेकर मथुरा में श्रीहरिव्यासदेवाचार्य्यजी के निकट उपस्थित हुए।

श्रीआचार्यवर्य की आज्ञा से वहीं उपनयनादि संस्कार-सम्पन्न होने के पश्चात् पिता ने श्रीहरिव्यासदेवजी महाराज से विधि-पूर्वक वैष्णवी-दीक्षा से दीक्षित कराया। कुछ काल पर्यन्त श्रीआचार्यवर्य के निकट आश्रम पर ही रहते हुये इन्होंने साम्प्रदायिक-रीति के अनुसार समस्त कर्म धर्मादिक शिक्षा ग्रहण की। आचार्यवर्य ने अपनी गद्दी के उत्तराधिकारी जान कर, अति प्रेम-पूर्वक इन्हें कर्मादिक आवश्यकीय शिक्षा से पारंगत किये। तदोपरांत माता पिता के संग अपनी जन्मभूमि बूड़िया आगये। यहाँ पढ़ने के लिये किसी विद्यालय में प्रवेश हुये; किन्तु इनका मन पढ़ने से उपराम हो गया। दीक्षा के प्रभाव से एवं गुरु आज्ञानुसार मन भगवान के सेवार्चन में सदा निमग्न रहने लगा। किसी संत के आगमन का समाचार श्रवण करते ही शीघ्र आकर आदर-पूर्वक दंडवत करते एवं सेवा-स्वागत में लग जाते। इस प्रकार इनका समस्त समय ऐसे ही सत्कार्यों में व्यतीत होने लगा। अध्यापक एवं माता पिता ने पढ़ने के लिये ताड़ना की; इससे व्याकुल होकर इन्होंने भगवान से प्रार्थना की। श्रीसर्वेश्वरजी ने विनय स्वीकार करली, अल्प-काल में ही समस्त व्याकरण शास्त्र कण्ठस्थ कर व्याख्या सहित अध्यापक एवं पिता को सुना दिये। इस प्रतिभा से सब को पूर्ण-विश्वास हो गया कि-भगवान् की इन पर पूर्ण-कृपा है और समस्त स्वजन इन पर अति प्रसन्न हुये।

इनके दिव्य-जीवन के अनेक चमत्कार-पूर्ण प्रसंग प्रसिद्ध हैं; जिनमें से कुछ यहाँ उद्धृत करना परमावश्यक है। दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् नित्य-सिद्ध-वपु के प्रभाव स्पष्ट होने लगे और इन्होंने अपने दिव्य-जीवन में प्रवेश किया। एक समय का प्रसंग है कि-उस देश के यावनीय-सूबेदारी में कोई भी सनातन-धर्मी व्यक्ति अपने इष्ट सम्बन्धी ध्वनि स्पष्ट उच्चस्वर से उच्चारण

नहीं कर सकता था। श्रीस्वभूरामदेवजी श्रीगुरु के निकट से आने के पश्चात् भगवन्नामादिक उच्च-स्वर से उच्चारण प्रारम्भ कर दिये; इससे यवन-शासकों के कान खड़े हो गये। उन्होंने अपराधी बना कर इन्हें दण्ड देना अपना नैतिक-धर्म समझा। सूबा ने रात्रि के समय विचार किया कि इसका कुत्सित वेश बनाकर ग्राम की सीमा से बाहिर कर देना उचित-दण्ड है। उसके इस आन्तरिक दुर्व्यवहार के निश्चय को अन्तर्यामी श्रीस्वभूरामदेवजी जान गये। सुबह सूर्योदय होने पर स्वयं उस शासक के निकट गये और उसके मन्तव्यानुसार व्यवहरित करने के लिये आग्रह किये। वह इनके लोकोत्तर-मुख-प्रभाव को स्पष्ट देखकर, अवाक् हो गया, जब उसने कोई उत्तर नहीं दिया तब आपने उसे कुछ उपदेश देना आवश्यक समझ कर कहा —"अविरोध-धर्म प्रभु को प्रिय है, इसका जो विरोधी बनता है वह सकुटुम्ब नष्ट हो जाता है; शासक होकर समदर्शी-रूप से शासन करना तुम्हारा परम कर्तव्य है।" उस दिन से उसने किसी भी साधु सन्त से ईर्ष्या करना परित्याग दिया। एक बार किसी नैमित्तिक कार्य-विशेष में कुछ पक्वान्न तैयार हुये। श्रीठाकुरजी को भोग लगने के पश्चात् भोजनार्थी बहुत ही विशेष हो गये, आपने अपने अद्भुत-प्रभाव से ही सैकड़ों जनता की पूर्ण-तृप्ति करा दी। इस प्रकार इनके अपार-आत्मशक्ति-पूर्ण-अनेक सत्कार्य हैं; जिनका संग्रह करना संक्षिप्त परिचय में अनावश्यक है।

कुछ समय पश्चात् इनके माता पिता पुनः मथुरा पधारे। वे मथुरा में ध्रुवटीला पर आचार्यवर्य के दर्शनार्थ गये। वहाँ श्रीस्वभूरामदेवजी ने आग्रह पूर्वक विरक्त-वेष ग्रहण किया और नैष्ठिक-ब्रह्मचर्य पालन करते हुए, वेद शास्त्रादि अध्ययन करने लगे। आचार्यवर्य ने भी वृद्धावस्था सन्निकट देखकर परम्परा-आगत सेवा-पूजा का भार इन्हें अर्पण कर दिया। तत्पश्चात् ये अहर्निश मथुरा में ही स्थायी-रूप से निवास करने लगे। पुत्र को अपने से विलग होते देख कर माता पिता को अत्यन्त दुःख हुआ, उन्होंने एक और पुत्र प्राप्ति के लिये आशीर्वाद-भिक्षा मांगी। आचार्यपाद की कृपा से एक और पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ, जिसका नाम 'माधवप्रसाद' रखा गया।

उस समय श्रीस्वभूदेवजी की जन्मभूमि बूड़िया के आसपास तिरखू जगाद्री आदि में गोरखनाथ-मतावलम्बी नाथों का प्राबल्य था वे वैष्णव-साधु एवं अन्य मतावलम्बियों को विशेष कष्ट दिया करते थे। अपने देश की

दुखद व्यवस्था को इन्होंने अपने देशवासियों से सुना। उन्होंने वहाँ चल कर वैष्णवों को इस कष्ट से मुक्त करने की प्रार्थना भी की। इन्होंने श्रीहरिव्यास देवजी महाराज से आज्ञा लेकर वहां प्रस्थान किया और 'बनो' नामक स्थान में आश्रम बना कर निवाश करने लगे। अपार जनसमूह इनके पास आने तथा वैष्णवी-दीक्षा से दीक्षित होने लगा। सूबा शासक प्रभृति अधिकारीगण भी इनके प्रभाव से प्रभावित हुये। इनकी प्रतिभा-पूर्ण-प्रतिष्ठा से कनफटे नाथ और दशनामी गुसांइयों को अत्यन्त ईर्ष्या हुई। वे अनेक प्रकार से विरोध रूप में उपद्रव करना प्रारम्भ कर दिये। अपनी आत्म-शक्ति भी पूर्ण रूप व्यवहरित कर भय दिखाने का असफल-प्रयत्न करने लगे।

एक रात्रि में शयन करते समय नाथों ने इनकी कुटी में आग लगा दी और वाहिर हल्ला मचाया, तव इन्होंने कुटी से वाहिर होकर, श्रीसुदर्शनचक्र का आवाहन किया। उन पर प्रलयान्तकारी अग्नि-वर्षा होने लगी और इनकी कुटी की अग्नि शान्त हो गई। इस अद्भुत-प्रभाव से नाथ वहुत ही घवड़ाये और क्षमा-प्रार्थना करने लगे एवं भयंकर अग्नि से रक्षा के लिये याचना की। किसी समय का वृतान्त है, कि—ये एक समय तिरखू में पधारे इनके संग एक शिष्य और एक गौ थी। वहाँ एक गद्दी के मालिक गोरखपंथी साधू थे। उनकी गद्दी से दूसरी तरफ इन्होंने अपना आसन लगा दिया। नाथों ने किसी युक्ति द्वारा इन्हें उठाना चाहा और इनसे एक ने जाकर कहा कि—"आप यहाँ से चले जाओ रात्रि में शेर आता है।" इन्होंने उत्तर दिया "एक रात्रि तो अवश्य निवास करेंगे आता है तो आने दो हमें उससे भय नहीं" नाथों ने मुखिया नाथ से जाकर अर्ज कर दी, उसने इन्हें डराने के लिये योगवल से रात्रि मे शेर का रूप धारण कर, इनके निकट भयंकर-शब्द किया। ये उसकी धूर्तता को जान गये और कहा कि-"तुम शेर नहीं गधा हो" इनके इस प्रकार कहते ही, वह गधा के आकृति में आगया। भोर होते ही उसके शिष्य सेवादि मुद्रा दर्शन करने के लिये एकत्रित हुए, जब वहाँ नाथजी का दर्शन नहीं कर पाये, तो उनके निकटस्थ शिष्यों द्वारा विदित हुआ कि—नाथजी अर्द्धरात्रि के समय पल्लोपार वैष्णव-साधु के निकट गये तब से पुनः लौट कर नहीं आये! यह श्रवण कर जनता इनके समीप आकर उपस्थित हुई और नाथजी का पता पूछा। इन्होंने उसका अनुसन्धान बताते हुए कहा कि—

"वो गधा खड़ा है वह तुम्हारा नाथ है या गधा, पहिचान लो"। गधे के कर्ण मुद्रा को देखकर सब इनके अद्भुत-प्रभाव को पहिचान गये और उनकी प्रार्थना पर उसे असली रूप में कर दिया। वह नाथ शर्मित होकर कहीं चला गया और वे सब इनके शिष्य होगये। निकटस्थ पाँच ग्राम की जनता ने इनकी शिष्यता ग्रहण की। तिरखू गद्दी पर इनके शिष्य श्रीकर्णहरदेवाचार्यजी विराजमान हुए अभीतक यह गद्दी विद्यमान है।

एकवार तीर्थ-यात्रा के समय मार्ग में खानपुर नामक एक स्थान आया वहाँ एक रमणीक वाटिका में आप ठहरे। वहाँ की जनता ने आप से प्रार्थना की कि—"यहाँ मत रहिये इस स्थान पर भयानक प्रेत है।" इन्होंने कहा कि—"प्रभु उसे शान्त करेगा।" रात्रि में प्रेत ने उपद्रव करना प्रारम्भ किया। इन्होंने उसे प्रयोग द्वारा शान्त कर वैष्णव बना दिया, उस दिन से वह अनिष्ट के बदले उपकार करने लगा। वह स्थान उस दिन से धार्मिक-स्थान होगया, आज पर्य्यन्त "श्रीस्वभूराम की धर्मशाला" के नाम से विख्यात है। उस स्थान की पूजा होती है और दीपक धरे जाते हैं।

इन्होंने आजन्म पर्य्यन्त "बनी" में निवास करते हुए, श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय का उस देश में बहुत ही प्रचार किया। इनके अनेक शिष्य सेवकादिकों ने आसपास में बहुत से मठ-मन्दिर बनवाये। अगणित जनता उपदेशा-मृत से तृप्त होकर अनित्य-संसार में अमरपद प्राप्त किया। इन्होंने वि० सं० १५४५ में १२५ वर्ष की दीर्घायु भोग कर, अन्त में श्रीनित्यधाम को प्राप्त किया। नाभाजी ने अपने भक्तमाल में इनका छप्पै उल्लेख नहीं किया है, किन्तु इनके शिष्य श्रीकर्णहरदेवाचार्य का है, वह छप्पै यह है —

> बूड़िये विदित कन्हर कृपाल आत्माराम आगमदर्शी;
> कृष्णभक्ति को थम्भ ब्रह्मकुल परम उजागर।
> क्षमाशील, गम्भीर, सर्व-लक्षन को आगर;
> सर्व हरिजन जानि हृदय अनुराग प्रकासै।
> असन, वसन, सनमान करत अति उज्वल आसै;
> स्वभूराम-प्रसाद ते कृपा-दृष्टि सब पर बसी।

श्रीस्वभूरामदेवजी के 'द्वारा' के हिन्दुस्तान में सहस्रों स्थान हैं और लाखों

जगद्गुरु श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य श्रीस्वभूदेवाचार्य-पाद-
पीठाधीश्वर श्रीनिम्बार्क-धर्म-रक्षक स्तम्भ, विद्यावारिधि,
व्याख्यान वाचस्पति महन्त गोस्वामि श्रीहरि-
प्रियाशरणदेवाचार्यजी महाराज, कोयला-
देवा (छपरा) स्थलाधिपति, जन्म
सन् १८८१ गोलोकवास सन्
१९३० आश्विन शुक्ल
त्रयोदशी बुधवार ।

आपका सच्चरित्र अनुकरणीय है। आपने कोयलादेवा मठ में श्री
निम्बार्क विद्यालय स्थापित कर संप्रदाय एवं संस्कृत-भाषा
की अच्छी सेवा की है।

श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य-पादपीठाधीश्वर श्रीमत्स्वभूदेवाचार्य चरणा-श्रिताश्रित गोस्वामी महन्त श्रीब्रजमोहन शरणदेवाचार्य जी महाराज श्रीराधाकान्त–मठ, मथुरा (यू० पी०)
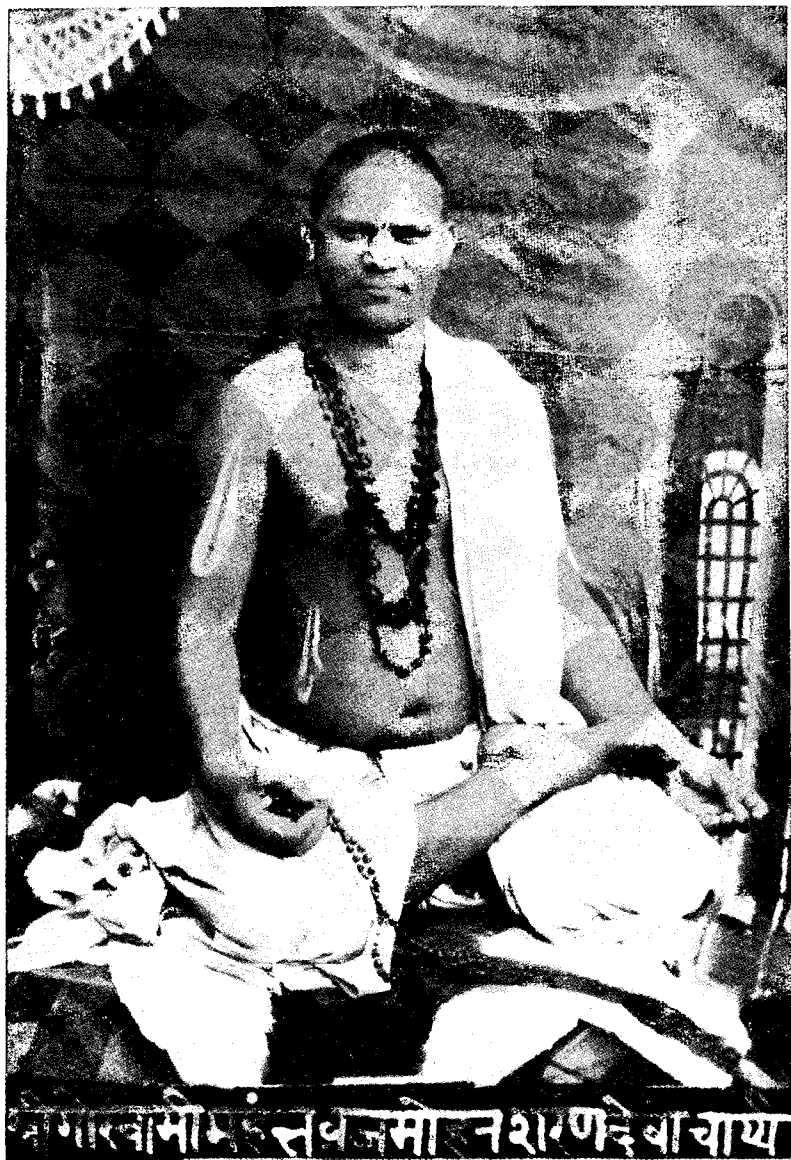
आप गोस्वामी महन्त श्रीहरिप्रियाशरणदेवाचार्यजी महाराज के सुयोग्य शिष्य हैं। श्रीमहाराज के गोलोक--गमन के पश्चात् कोयलादेवा--मठ के गद्याधीश हैं। आजकल आप राधाकान्त–मठ, मथुरा में विरा-जमान हैं। श्री निम्बार्क--महासभा के सम्मानित उपसभापति हैं।

विरक्त तथा गृहस्थ वैष्णव आज पर्यन्त हैं। इनके ही शिष्य प्रशिष्यों के शाखा में प्रसिद्ध ब्रज के भक्त श्रीचतुरचिन्तामणिदेवाचार्य (श्रीनागाजी) हुए; जिनका अपार प्रभाव ब्रज में आज पर्यन्त दिखाई पड़ता है। श्रीपुरुषोत्तम प्रसादजी तथा श्रीअनन्तरामजी निखिल-शास्त्र-निष्णान्त धुरन्धर विद्वान् हुए जिन्होंने पञ्जाब-प्रान्त के दक्षिणी-भाग में अन्य-धर्मावलम्बी एवं पाखण्डी मण्डल को पराजय कर, इस सम्प्रदाय की विजय-पताका फहरा दी। उदाहरण स्वरूप इस देश में आज भी हजारों की संख्या में बृहद् स्थान विद्यमान हैं।

श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजी के लघु-भ्राता श्रीमाधवदेवजी ने भी इनसे दीक्षा ग्रहण कर, सम्प्रदाय का विशेष-रूप से प्रचार किया। इनके वंशज आज पर्यन्त शिष्य करते हैं. और ये " स्वभूरामदेवजी के गोस्वामी " के नाम से प्रसिद्ध हैं। आप जहाँ-जहाँ भ्रमण करते थे, वहीं शिष्य सेवकों ने स्थान-स्थान पर चरणपादुका, समाधि तथा मन्दिर बनवाये; जो आज पर्यन्त विद्यमान हैं, उस देश की जनता नया अन्न, फल, दूध आदि वस्तु भेट चढ़ाती है और उन्हें समयानुसार इच्छित-फल भी प्राप्त होते रहते हैं। अपनी सत्यता को प्रमाणित करने के लिये " श्रीस्वभूरामजी जानें " इस प्रकार सपथ भी लेते हैं। इस आचार्यपाद के संक्षिप्त-परिचय को श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी के परिचय के समीप ही स्थान देते, किन्तु हमें इतने छप जाने के पश्चात् कईएक वैष्णवों द्वारा पता लगा कि—"श्रीसोभूसागर" नामक ग्रन्थ हरियाना देश में विद्यमान है और उन्होंने यह भी आग्रह किया कि आप श्रीनिम्बार्कमाधुरी में उन्हें स्थान दें। मुझे भी श्रीसोभूसागर प्राप्त होने की पूर्ण आशा है इसलिये आचार्य पाद का परिचय इस ग्रन्थ में सम्मिलित कर दिया गया। इस परिचय में पं० श्रीकिशोरदासजी महाराज द्वारा लिखित आचार्यपरम्परापरिचय और पं० श्री वल्देवदासजी भादसों-निवासी (नाभा स्टेट) द्वारा, मेरे पास प्रेषित परिचय से विशेष सहायता मिली है। इसलिये मैं उक्त पं० द्वय का आभारी हूं। पं० श्रीवल्देवदासजी ने बूड़िया और जगादरी इलाके में स्वयं भ्रमण कर, तद्देशीय जनता में प्रचलित-चरित्र को सपरिश्रम लिपिबद्ध कर मुझे स्वयं देने की कृपा की थी। इनके द्वारा निर्मित 'श्रीसोभूसागर' पूर्ण-रूपसे उपलब्ध होने पर अलग प्रकाशित होगा।

महाकवि श्रीकेशवदासजी

छप्पै
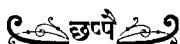
श्रीआचार्य-पद काव्यकार माधि परम आराधा ;
भेद भव्य साहित्य-सुखद प्रद प्रेम आगाधा ।
सकल सद्‌गुणालंकृत व्है श्रीदम्पति-लीला गाए ;
भूरि अवनि मय मानव मध्य सुयश आभि छाए ।
श्रीकेशव-काव्य अपार निधि मीन-कविन-मन वासघर ;
भेद लक्षणावृत्ति प्रगट कारि हर-संशय सव समनकर ।

विहारीशरण

महाकवि श्रीकेशवदासजी का जन्म १६ वीं सदी में सनाढ्य ब्राह्मणों के मिश्र-कुल में हुआ था। माननीय मिश्रबन्धुओं का अनुमान है कि विक्रम सं० १६०८ में केशवदास का जन्म हुआ होगा। इनके पिता का नाम काशीनाथ और पितामह का कृष्णदत्त था। इनके कुल में बड़े से छोटे पर्य्यन्त सभी प्रतिभाशाली विद्वान् होते थे। यहाँ तक कि,नौकर-चाकर भी संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे और संस्कृत में ही बातचीत करते थे। ओड़छा-नरेश इन्द्रजीतसिंह इनका बहुत ही आदर करते थे। वे इन पर गुरुवत् श्रद्धा-भक्ति रखते थे। ओछड़ा में ही इनका जन्म होने के कारण प्रेम का वाल्यकाल से ही सम्बन्ध था, और आजन्म-पर्य्यन्त रहा। इन्द्रजीतसिंह ही इनके आश्रयदाता थे। इन्द्रजीतसिंह के पूर्वज बड़े बहादुर थे, वे दिल्ली के मुग़ल वादशाह को भी पराजित कर नीचा दिखाते थे। इन्द्रजीतसिंह के वड़े भाई रामसिंह को अकवर वैठने केलिये आसन देता था और अन्य राजाओं को खड़े रहना पड़ता था। केशवदास की इन्द्रजीतसिंह बहुत प्रतिष्ठा करते थे। गुरु, मित्र, मंत्री, कवि, मुसाहव, ये राजा के सर्वस्व थे। रायप्रवीन नामक एक स्त्री-कवि राजा की अत्यन्त प्रेमिका थी, वह एक उत्कृष्ट कवि का सा हृदय और मस्तिष्क वाली थी। इसलिये केशवदास उसे विशेष आदर से मानते थे। जब अकवर वादशाह ने प्रवीणराय के रूप-गुण की प्रशंसा श्रवण कर, दरवार में हाज़िर होने का हुक्म दिया और ये हाज़िर नहीं हुई तो वादशाह ने राजा पर एक करोड़

रुपये जुरमाना किया। इस पर श्रीकेशवदास आगरे में जाकर, "दियो करतार दुओ करतारी" वाला सवैया बनाकर जुरमाना माफ करा दिया ; किन्तु राय-प्रवीन को दरबार में हाज़िर होना ही पड़ा। उसने एक दोहा बनाकर अकबर को लज्जित किया वह यह है—"विनती रायप्रवीन की सुनिये साह सुजान ; जूठी पतरी खात हैं बारी, वायस, स्वान।" अपने ढंग का अनूठा इस प्रतिभा-पूर्ण माकूल जवाब से हारकर, इसे राजा के यहाँ वापिस करना पड़ा। रायप्रवीन की इसी प्रतिभा पर केशवदास अत्यन्त मुग्ध थे और उसकी बड़ी इज्जत करते थे। केशवदास, रायप्रवीन में किस प्रकार भाव रख कर, स्नेह करते थे; यह इन दोहों से स्पष्ट है—"रतनाकर लालित सदा परमानन्दहि लीन ; अमल कमल कमनीय कर रमा कि रायप्रवीन । १ । रायप्रवीन कि सारदा सुचि रुचि रंजित अङ्ग ; वीना-पुस्तक-धारिणी राजहंस सुत संग। २। वृषभवाहिनी अङ्ग सुत वासुकि लसत प्रवीन; सिव सँग सोहति सर्वदा सिवा कि रायप्रवीन। ३। रमा सारदा पार्वती की उपमा दे डालना पूज्यों के लिये ही सम्भव हैं, अन्य के लिये नहीं! महाराज वीरवल ने केशवदास के प्रतिभा-पूर्ण एक कविता पर प्रसन्न होकर ६ लाख रुपये दिये थे। वह छन्द यह है—

"केशवदास के भाल लिख्यो विधि रङ्क को अङ्क वनाय सँवाऱ्यो,
धोये धुवे नहिं छूटो छुटै कहुँ तीरथ जाइ के नीर पर वाऱ्यो;
ह्वै गयौ रङ्क ते राय तवै जब वीर वली नृप नाथ निहाऱ्यों,
भूलि गयो जग की रचना चतुरानन वाइ रह्यो मुख चाऱ्यो।

इनकी गूढ़ कविता सर्व साधारण के समझ से परे है, इसीलिये प्रसिद्ध कविवर देव ने इन्हें "कठिन काव्य का प्रेत" कहा है। इनकी कविता के विषय में एक यह भी दोहा प्रसिद्ध है कि—"कवि का दीन न चहै विदाई ; पूछ केशव की कविताई।" हिन्दी काव्य-जगत में इस महाकवि का स्थान श्रीसूर और श्रीतुलसी के पश्चात् ही है। यह इस दोहार्द्ध से स्पष्ट है। सूर सूर, तुलसी ससि उडुगन केशवदास ;" जिसने गुरु-मुख से पूर्ण दशाङ्ग साहित्य अध्ययन नहीं किया उसेकेशवदास की कविता समझना समझाना असम्भव है। केशवदास संस्कृत-भाषा के भी प्रकाण्ड विद्वान् थे, इनके पूर्वज संस्कृत-कविता का ही पठन पाठन और निर्माण करना महत्वपूर्ण समझते थे। अकस्मात् केशवदास का ही झुकाव भाषा-काव्य की ओर होगया था। कविप्रिया और

रसिकप्रिया संस्कृत-प्रामाणिक रीति-ग्रन्थों के ही आधार पर निर्माण किये हैं।

ये श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय में प्रचलित आचार्य एवं रसिकों के वाणी, काव्य और रस-सिद्धान्तानुगामी थे। पौराणिकता से विशेष साम्प्रदायिकता द्वारा श्रीराधाकृष्ण-विहार-दिव्य-रसाभाष विशेष-रूप में प्रदर्शित हुआ है। श्रीराधाकृष्ण-विहार-दिव्य-रस के सर्वप्रथम-प्रचारक श्रीनिम्बार्क-सम्प्रादाय ही है; यह आधुनिक विद्वानों ने भी स्वीकार की है। श्रीनिम्बार्काचार्य्य विरचित इस श्लोक से यह सिद्धान्त स्पष्ट है।

अङ्गेतु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम्;
सखीसहस्रै परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्ट कामदाम।

प्रसिद्ध कवि जयदेव इसी सम्प्रदाय के अनुगामी थे। प्राचीन असम्प्रदायिक-कवि भी श्रीराधाकृष्ण के दिव्य-रसाश्रय से काव्य रचने वाले साम्प्रदायिक-साहित्य के अनुगामी अवश्य कहे जा सकते हैं। महाकवि विहारीलालजी के काव्याश्रय से अनेक कवियों ने अपनी काव्य रचना की है; जो श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय के ही अनुगामी वैष्णव-कवि थे। श्रीश्रीभट्टजी, श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी और स्वामी श्रीहरिदासजी आदि बहुत से रसिकाचार्यपाद श्रीकेशवदासजी से प्रथम ही हो चुके थे; उन्होंने उनके हीं दिव्यरसकाव्य एवं वाणियों का आश्रय लेकर, और अपनी उपासना समझ कर, एवं इसी सन्प्रदाय के रसिकों की वाणी एवं साहित्य के आधार पर, काव्यांगपूर्ण उपासना-ग्रंथ श्रीरसिकप्रिया निर्माण की है। "कविप्रिया" जो अलङ्कार-प्रधान-ग्रंथ है; यह प्रवीणराय के अनुरोध से लिखा गया था और श्रीरामचन्द्रिका गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी के आग्रह से। उपास्यदेव के लीलारस-आस्वादन के लिये केवल रसिकप्रिया ही लिखे हैं।

श्रीनरहरिदासजी, जो श्रीवृन्दावनस्थ टट्टीस्थान के महन्त और एक प्रसिद्ध सिद्ध-महात्मा थे; उनसे इनकी बड़ी प्रीति थी। ये ओरछे के पास ही गूढ़ो में रहते थे, बाद में वृन्दावन आगये थे। इन्द्रजीतसिंह इन पर श्रद्धा-भक्ति रखते थे और नित्य दर्शन के लिये जाया करते थे। केशवदासजी भी इनके पास जाया करते थे। श्रीनरहरिदासजी ने यहीं सतसईकार श्रीविहारी-लालजी को बाल्यावस्था में विद्याध्ययन के लिये अर्पण किया था। पं० श्री-लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी साहित्याचार्य्य साहित्यरत्न ने भी विहारीदर्शन में लिखा है "—यहीं श्रीनरहरिदासजी ने महाकवि केशवदासजी से विहारी-

लालजी को ध्यान से पढ़ाने का अनुरोध किया। श्रीकेशवदासजी विहारीलालजी की प्रखर-बुद्धि देखकर, उन्हें पुत्रवत् स्नेह से पढ़ाने लगे।"

इन्होंने सर्वप्रथम गणपतिजी की वन्दना मंगलआशीर्वाद के लिये की है; इसी प्रकार साम्प्रदायिक अनेक वैष्णव-कवियों ने भी मंगल-याचना के लिये की है; यह समस्त वैष्णवों में प्रचलित ही है। यदि कोई कवि अपने काव्यारम्भ में वन्दना भी नहीं करते हैं तो उनके हृदय के भाव उनके-ग्रन्थ से प्रकट होजाते हैं; यह श्रीरसिकप्रिया के पाठकों को स्पष्ट ही है। कोई-कोई इन्हें अभक्त और अवैष्णव कवि कहते हैं; किन्तु अभक्त कवि की कविता, इस प्रकार दिव्य, सरस और श्रीराधाकृष्ण-विहार-वर्णन; जिसे श्रवणमात्र से ही हृदय में भक्ति-श्रोत प्रवाहित होने लगती है, नहीं कर सकता। बड़े २ महाकवि भी प्रायः इस पथ से फिसल गये हैं। अपनी कविताकी नायिका-नायक एवं भेद लक्षणावृत्ति को आधार देने के लिये भी लौकिक-रस व्यवहार किया जासकता है, जैसा कि अनेक कवियों ने किया भी है; किन्तु ये अलग रहे।

कविप्रिया और रसिकप्रिया निर्माण के कारण ही, केशवदास की गिनती आचार्यों की श्रेणी में की जाती है। इनके रचे हुए आठ ग्रन्थ कहे जाते हैं; किन्तु उनमें से तीन बहुत प्रसिद्ध हैं—रसिकप्रिया, कविप्रिया और रामचन्द्रिका। रामचन्द्रिका इन्होंने गोस्वामी तुलसीदासजी के कहने से लिखा है। अलंकार-प्रधान-ग्रंथ कविप्रिया प्रवीणराय के आग्रह से लिखा गया था। जो काव्यकला में इनकी शिष्या थी। रसिकप्रिया शृङ्गार-प्रधान-ग्रंथ है और इसी में इनके उपास्य-इष्टदेव श्रीराधाकृष्ण के विहार वर्णन हैं। इसमें काव्याङ्ग भेद और नायक-नायिका भेद से दिव्य-रसों का वर्णन है। इनकी कविता कोई-कोई इतनी गूढ़ाशय से भरी हैं, कि अन्य कवियों की कविता के समान सुनते ही समझ में नहीं आजातीं, उसके लिये पूर्ण-विचार की आवश्यकता पड़ती है। जितना विचारिये उतने ही अच्छे भाव प्रगट होते हैं और मधुर मिठास आस्वादन होती हैं। केशवदास के निवास-स्थान को माननीय मिश्रबन्धु देखने भी गये थे, यह उन्होंने लिखा है। अन्त में जाँच से विदित हुआ कि- वहां एक इमली के वृक्ष के सिवाय कुछ नहीं है। महाकवि केशवदास के जबतक ग्रंथ रहेंगे उनकी कीर्ति भी अमर रहेगी। "कीर्ति यस्य स जीवति" इनके द्वारा निर्मित रसिकप्रिया में से कुछ कवित्त और सवैये उद्धृत किये जाते हैं।

[छप्पै]

श्रीवृषभानुकुमारि हेतु शृंगार रूप भय ;
बास हास रस हरे मात बन्धन करुणामय ।
केशी प्रति अति रौद्र वीर मारो वत्सासुर ;
भय दावानल पान पियो बीभत्स बकी उर ।
अति अद्भुत वंच विरंचि मति शाँत संत ते शोच चित ;
कहि केशव से बहु रसिकजन नवरस में ब्रजराज नित ॥ १ ॥

[सवैया-कवित्त]

बन में बृषभानकुमारि मुरारि रमे रुचिसों रस-रूप पिये,
कल कूजत पूजत काम-कला विपरीत रची रति-केलि हिये ;
मणि सोहत श्याम जराइ जरी अति चौकी चलै चल चार हिये,
मखतूल के झूल झुलावत केशव भानु मनों शनि अङ्क लिये ॥२॥

केशव एक समै हरि-राधिका आसन एक लसे रङ्ग भीने,
आनँद सों तिय आनन की द्युति देखत दर्पण में दृग दीने ;
भाल के लाल में बाल विलोकतही भरि लालन लोचन लीने,
शासन पीय सवासिन सीय हुताशन में जनु आसन कीने ॥३॥

कीट ज्यों काट त्यों कानन कानसों मानहि में कहि आवत ऊनो,
ताहि चले सुनि के चुप ह्वै गये नीकही केशव एकहि दूनो ;
नेक अटेपट फूटत आँखि सु देखत हैं छवि को ब्रज सूनो,
काहे को काहू को कीजै परेखो सु जीजेरे जीव कि नाक दै चूनो ॥४॥

और कै हास विलास न भावत साधुन को यह सिद्ध सुभावै,
बात वहै जु सदा निबहै हरि कोऊ कहूँ कछु शोधि न पावै ;
आसन बास सुवासन भूषण केशव क्यों हूँ यहौ बनि आवै,
मो बिन पान न खात जु कान्ह सु बैर किधौं यह प्रीति कहावै ?॥५॥

केशव सूधी विलोचन सूधी विलोकन को अवलोकै सदाई,
सूधि यों बात सुनै समझै कहि आवत सूधि यों बात सदाई ;
सूधी सु हाँसी सुधाकर सों मुख सोध लई वसुधा की सुधाई,
सूधे स्वभाव सबै सजनी वश कैसे किए अति टेढ़े कन्हाई ?६॥

मेरे तो नाहिंने चंचल-लोचन नाहिंने केशव बानि सुहाई,
जानों न भूषण भेद के भाव न भूल हूँ नैनहि भौंह चढ़ाई ;
भोरेहू ना चितयो हरि ओर त्यों घैर करै इहि भांति लुगाई,
रंचक तो चतुराई न चित्तहि कान्ह भए बस काहे ते माई !७।

हरि से हितूसों भ्रम भूलहू न कीजे मान हातो करि हियहू सों होत हित हानिये,
लोक में अलोक आन नीकहू लगावत हैं सीताजू को दूत गीत कैसे उर आनिये?
आँखिन जो देखियत सोई सांची केशवराय कानन की सुनि सांची कबहूं न मानिये,
गोकुल की कुलटा ये योंही उलटावत हैं आजलों तो वैसेहो हैं कालिह कहा जानिये

चित चोप चितैबे की तैसी एहै अरु तैसीये भांति डरात घने,
अरु तैसेइ कोमल बोल गोपाल के मोहत है तिहि भाँति मने ;
गुन तैसेइ हाँस विलास सबै हुते तैसेइ केशव को न गने,
सखि ! तू कहौआन वधू के अधीन हैं सापरतीक किधौं सपने ? ९॥
वहि अंतरगूढ़ अगूढ़ निरन्तर काम-कला कुल को न गने,
कहि केशव हास-बिलास सबै प्रति-द्यौस बढ़े रस-रीति सने ;
जिनको जिय मेरेई जीव जिये सखि! काय मनो बच प्रीति घने,
तिनसों कहें आन वधू के अधीन हैं सापरतीक किधौं सपने ॥१०॥

रुचि पङ्कज चन्दन कंचन चम्पक रंच न रोचनहू कि रची,
कहिए किहिं कारन को इते लायक का परभामिन भौंह नची ;
अनुमानत हौं अँखियां लखि लाल ये नाहिंने राति के रोस रची,
तन तेरे वियोग तपो तरुनी तिहि मानहुँ मो हिय माहँ तची ॥११॥

कान रङ्ग रङ्गे नैन तिनहू के डोलैं संग नासा अंग रसना के रसही समाने हौ,
और गूड़ कहा कहौं मूढ़ हौं जू जानि जाहु प्रौढ़ रूढ़ केशोदास नीके कर जाने हौ ;
तन आन मन आन कपट-निधान कान्ह साँची कहो मेरी आन काहेको डराने हौ?
वेतोहैं विकानी हाथ मेरे हौं तिहारे हाथ तुम ब्रजनाथ हाथ कौनके बिकाने हौ ?१२

नेह भरे लै-लै भाजत भाजन को न गने दधि दूध मिठाए,
गारी दए ते हसें बरजें घर आवत हैं जनु बोल पठाए ;
लाज कि और कहा कहि केशव जे सुनिए गुन ते सब ठाए,
मामी पिए इनकी मेरी माइको हे हरि! आठहू गाँठ हठाए ॥१३॥

हँसत कहत बात फूल से झरत जात गूढ़ भूर हाव-भाव कोक कैसी कारिका,
पन्नगी नगी कुमारि आसुरी सुरी निहारि डारों वारि किन्नरी नरी गमारि-नारिका ;
तापै हों कहा ह्वै जाऊं बलि जाऊं केशवराइ रचि विधि एक ब्रजलोचन की तारिका,
भौंर से भ्रमत अभिलाष लाख भांति दिव्य चंपैकैसी कली वृषभानुकीकुमारिका

बोलिबो बोलन को सुनिबो अविलोकन को अविलोक न जोते,
नाचिबो गाइबो बीन बजाइबो रीझ रिझाइबो जानत तो ते ;
राग विरागन के परिरंभन हासविलास न ते रति को ते,
जौ मिलतौ हरि मित्रहुसों सखि! ऐसे चरित्र जो चित्र में होते ॥१५॥
जात नहीं कदली कि गली न भली विधि हो बदली मुख लावै,
चाहै न चम्पकली कि थली मलिनी नलिनी कि दिशान सिधावै ;
जो कोउ केशव नाग लवंग-लता-लवली अवली न चरावै,
खारक दाख खवाइ मरो किन ऊँटहि ऊँट कटारहि भावै ॥१६॥
मोहिबो मोहन की गति को गतिही पढ़ै बंन कहाँ धौं पढ़ैगी,
ओप उरोजन की उपजै दिन काइ मढ़ै अँगिया न मढ़ैगी ;
नैनन की गति गूढ़ चलाचल केशवदास अकाश चढ़ैगी,
माइ कहाँ यह माइगि दीपति जो दिन दो इहि भांति बढ़ैगी ?१७॥
केशव फूलि नचैं भृकुटी कटि लूटि नितंब लई बहु काली,
बैनन शोच सकोच सु नैनन छूटि गई गति की चलि चाली ;
द्यौसक धीर धरो न धरो अवलै मिलिवै तुमको वनमाली,
वाको अयान निकासन को उर आए हैं यौवन के अवताली । १८ ॥

चंचल न हूजो नथ अंचल नखैं चौहाथ सौवै नेक सारिकाऊ शुकतौ सुवायो जू,
मंद करो दीप-द्युति चन्दमुख देखियत दौर के दुराइ आऊ द्वार तो दिखायो जू ;
मृगज मराल वाल बाहिरै विडारदेऊँ भायो तुम्हैं केशव सु मोहूं मन भायो जू,
छल के निवास ऐसे वचन विलास सुनि सौगुनो सुरतहूं तैं श्याम सुख पायो जू।

बोलि न हों वे बुलाय रहे हरि पांय परे अरु ओलियो ओडी,
केशव भेटबे को भरि अंक छुड़ाइ रहे जक हौं नहीं छोडो ;
सीधे चितैबे कों केतौ कियौ शिर चाप उठाइ अँगूठन ठोडी,
मैं भर चित्त तऊँ चितयो न रही गढ नैनन लाज-निगोडी । २० ॥

पांइ परै मनुहार करै पलका पर पांय धरे भय-भीने,
सोइ गई कहि केशव कैसहूँ कोर ककोरहूँ सोंह न कीने ;
साहस कै मुख सों मुख छ्वै छिनमें हरि मान महासुख लीने,
एक उसांस ही के उससै सिगरेइ सुगन्ध बिदा करि दीने । २१ ॥

सुखदै सखीन बीच दैकै सोंहैं खायकै खवाइ कछू स्वायवश कीनी बरबसु है,
कोमलमृणालका-सी मल्लिका की माखिका सी बालिकाजु डारी माड मानसकै पशु है;
जानै ना विभात भयो केशव सुने की बात देखौ आनि गात जात भयो कैधों असु है,
चित्र-सी जु राखी वह चित्रणी विचित्र गति देखोधौं नए रसिक यामें कौन रसुहै?२२

चंद कैसो भाग भाल भृकुटी कमान ऐसी मैन कैसे पैने-शर नैनन विलासु है,
नासिका-सरोज-गंध वाहसे सुगंध वाह दारयों से दशन कैसो बीजुरी सोहास है;
भाई ऐसी ग्रीवा भुज पान सों उदर अरु पंकज सों पांइ गति हंस ऐसी जासु है,
देखी है गुपाल एक गोपिका मैं देवता-सी सोनो-सो-शरीर सब सोंधे कैसी वासु है२३

कान्ह भले जु भले ढँग लागे भले ह्वै नैनन के रँग रागे,
जानत हौं सबही तुम जानत आपसे केशव लालच लागे ;
जाहु नहीं अहो जाहु चले हरि जात जहीं दिनहीं बनबागे,
देख कहा रहै धोखे परे उभटोगे जु देखबो देखहु आगे । २४ ॥

आजु मैं देखि है गोपसुता इक होइ न ऐसि अहीर की जाई,
देखत हीं रहिए द्युति देह कि देखतैं और न देखि सुहाई ;
एकहि बंक विलोकन ऊपर वारौं विलोक त्रिलोक-निकाई,
केशवदास कलानिधि सो वरु बूझिहै काम कि मेरो कन्हाई ।२५॥

केशोदास सा-विलास मंदहास युत अविलोकन अलापन को आनँद अपार है,
बहिरति सात अरु अंतरित सात सुन रति विपरीतनि को विविध विचार है ;
छूटि जात लाज तहां भूषण सुदेश केश टूटि जात हार सब मिटन शृंगार है,
कूजि-कूजि उठै रति कूजति न सुनि खग मोई तो सुरत सखी और बिवहार है २६॥

प्रथम सकल शुचि मज्जन अमल वास जावक सुदेश केश पाश को सम्हारिबो,
अँगराग भूषण विविध मुख वास राग कज्जल कलित लोल लोचन बिहारिबो
बोलनि हँसनि मृदु चलनि चितौनि चारु पल-पल प्रति पतिव्रत परिपारिबो,
केशोदास साविलास करहु कुंवरि राधे इहि विधि सोरह-शृंगारनि शृंगारिबो।२७

तात कैसो गात सब बल बलवीर कैसो मात कैसो मुंह महामोह मन भायो है,
थल सो अचल शील अनिल-से चल चित्त जल सो अमल तेज तेज कैसो गायो है;
केशौदास बसत अकाश के प्रकाश घोष घट–घट घर-घर घेरैं घनो छायो है,
रति-की-सी रतिनाथ रूप रतिनाथ कैसो कहो कैसो राइ झूठ कौन यह पायोहै?२८

कान्ह भले जु भले समुझायहौ मोह-समुद्र को ज्यों उमड्यो है,
केशव आपने माणिक सो मन हाथ पराये दे कौनौ लह्यो है;
नैनन हीं मिलबो करिए सब बैनन को मिलबो ता रह्यो है,
जाय कह्यो तुम जैसे सखीन सों ऐहो गुपाल में ऐसो कह्यो है।२९॥

देखी है गोपाल एक गोपिका अनूप रूप सोनित सलोनी वास सोधे ते सुहाई है,
शोभा ही सुहाई अवतारु घनश्याम कीधों कीधों यह दामिनी ये कामिनी ह्वैआईहै
देवी कोउ दानवान मान हान होइ ऐसी भान बनि हाव-भाव भारती पठाई है,
केशोदास सब सुखसाधन की सिद्ध यह मेरेजान मैंनहीं सो मैंनकी-की जाई है ३०

है गति मन्द मनोहर केशव आनदकन्द हिए उमहे हैं,
भौंह विलासन कोमल हासनि अंग सुवासनि गाढ़े गहे हैं;
भौंह विलोकनि कौ अवलोकि सुमारुह्यो नन्दकुमारु रहे हैं,
एक तौ काम के बान कहावत फूलनि की विधि भूल गहे हैं।३१॥

तो हित गाइ बजावत नाचत बार अनेक शृंगार बनायो,
जीही मैं आनको आनिबो छांडिबो तेरो तऊ न भयो मनभायो;
भावै सो तैं करि वाको हे भामिनी!भाग बड़े बस चौकडि पायो,
कान्ह ज्यों सूधे जू चाहत नाहि न चाहति है अब पांइ लगायो।३२॥

आजु बिराजति है कहि केशव श्रीवृषभानु-कुमारि कन्हाई,
बानी बिरंचि वही क्रम काम रची जो बरी सो बधू न बनाई;
अंग बिलोकि त्रिलोक में ऐसी को नारि निहारिन नार नवाई,
मूरतिवन्त शृंगार समीप शृंगार किए जानो सुन्दरताई॥३३॥

आवत देखि लए उठि आगेहु आपहि केशव आसन दीनो;
आपुहि पांइँ पखारि भले जलपान को भाजनु लाइ नवीनो,
वीरी बनाइ कैआगे धरी सो जबै हरि को वरबीजन लीनो;
बाँह गही हरि ऐसो कह्यो हँसि ए तौ इतो अपराध न कीनो।३४॥

चितवो चितवाए हँसाए हँसो औ बुलाए से बोलो रहै मति मौने,
सोह अनेकनि आवहु अंक करौं रति को प्रति रैन को रौने ;
कोइ खवाए ते खाऔ विराजनु आइहौ केशव आजुहि गौने,
मोहन के मन मोहन को सखि! तोहि नई सिखई सिख कौने ? ३५॥

हितको इत देखो जु देखो सबै हितु बात सुनो जो सुनी निबही है,
यहतौ कछु और वहै सब है और सोह करो जू करोजु तुही है ;
समुझाइ कह्यौ समुझाइकै केशव झूठी सबै हमसोंजु कही है,
मान किए अपमान करै जो हँसो अबके हँसिवै को रही है ॥३६॥

बैठी हुती ब्रजनारिन में बनि श्रीवृषभानकुमारि सभागी,
खेलत हीं सखी चौपर चारु भई तिहिं खेल खरी अनुरागी ;
पीछे ते केशव बोलि उठे सुनि के चित चातुरी आतुरी जागी,
जानै न काहू कवै हरि के सुर मारग ही सरसी दृग लागी ॥३७॥

कहि केशव श्रीवृषभानुकुमारि शृंगार शृंगार सबै सरसै,
सविलास चितै हरि नायक त्यों रतिनायक शायक से बरसै ;
कबहूँ मुख देखति दर्पण लै उपमा मुखकी सुखमा परसै,
जनु आनन्दकन्द सुपूरणचन्द दुर्‍यो रवि-मण्डल में दरसै ॥३८॥

पहिले तजि आरस आरसी देखि घरीक घसै घनसार हिलै,
पुनि पोंछि गुलाब तिलौंछि फुलेल अंगोछेमें आछै अंगौछन कै;
कहि केशव मेद जवाद सों मांजि इते पर आंजे में अञ्जन दै,
बहुरे दुरि देखों तौ देखों कहा सखि! लाजते लोचन लागे रहैं ॥३९॥

भाल गुही गुन लाल लटैं लपटी लर-मोतिन की सुखदैनी,
ताहि विलोकत आरसी लैकर आरस सोइक सारस-नैनी ;
केशव कान्ह दुरे दरसी परसी उपमा मति को अति पैनी,
सूरज-मण्डल में शशि-मण्डल मध्य धसी जनु ताहि त्रिबेनी ॥४०॥

इक तो उर और उरोज अनूपम तैसे मनोहर हारमहा री !
चित्त चलै तरुनीनहु को अरु नैन कि केशव बात कहा री ;
हित की हितसों कहिही बनि आवत कौ लगि होहुँरी कौतुकहारी,
अञ्चरु दै नंदलाल विलोकत री ! दधि नोखि बिलोवनहारी ॥४१॥

लोचन ऐंचि लिये इत को मन की गति यद्यपि नेह नहीं है,
आनन आइ गए श्रम-सी-कर रोम उठे उर कंप गही है ;
तासों कहा कहिए ? कहि केशव! लाज-समुद्र में बूडि रही है
चित्रहु में हरि-मित्रहि देखति यों सकुची जनु बांह गही है ॥४२॥

केशोदास नेह दशा दीपक संयोग कैसे ज्योति ही के ध्यान तप तेजहि नशाइहै
आंखिन सों बाँधे अन्य काहूकी न भागीभूख पानीकीकहानी रानीप्यासक्यों बुझाइहै
एरी मेरी इंदुमुखी इंदीवर नैन लिखे इंदिरा के मंदिर क्यों संपति सिधाइहै,
ऐसे दिन ऐसे ही गवाँवत गवाँर कहा चित्र देखे मित्र के मिले को सुख पाइहै ।

रूठवे को तूठवे को मृदुमुसक्याइके विलोकिबे को भेद कछु कह्यो न परतु है,
केशोदास बोले बिना बोलन के सुने बिना हिलन मिलन बिना मोह क्यों सरतु है
कौलग अलोनो रूप ध्याय-ध्याय राखों नैन नीर विना मीन कैसे धीरज धरतु है
चित्रनी विचित्र किन नींकेई चितैये मन चित्र चितएते चित्त चौगुनों जरतु है ।

अन्तरिच्छ गच्छनी नियच्छन सुलच्छनी निअच्छीअच्छीअच्छनीनिछविछमनीय है
किन्नरी नरी सुनारि पन्नगी नगी कुमारि आसुरी सुरीन हूं निहारि नमनीय है
भोगिन को भामिनी औ देह धरे दामिनीयों काम कामनीयों कहा ऐसी कमनीय है
चित्रहू में चित्तहि चुराए लेत कोऊ यह राम कैसी रमनी रमा सी रमनीय है

नख पद पदवी को पावे पद द्रौपदी न एकौ बिसे उरबसी उर में न आनिबी,
लोम-सी पुलोम जान तिल-सी तिलोत्तमा न मैलहू समान मन मैनका न मानिबी
जानिए न कौन जाति अवहीं जगाएं जात जानु जानि हौंगो जाहिकेहूँ पहिंचानिबी
बातकी-सी बानी माँह भावसो भवानी माँह केशोदास रति में रतीकज्योति जानिबी

सौंहैं दिवाय दिवाय सखी इक बारक कानन आन बसाए,
जानैं को केशव कानन ते कित ह्वै हरि नैननि माँझ सिधाए ;
लाज के साज धरेई रहे तब नैनन लै मनहीं सो मिलाए,
कैसी करौं अब क्यों निकसों री हरेइ हरे हिय में हरि आए ॥४७॥

निपट कपट हरि प्रेम को प्रकट कर बीसो बिसे बशी कर कैसे उर आनिए ?
काम को प्रहरषन कामना को बरषन कान्ह को सकरषन सब जग जानिए ;
किधौं केशौराइ मनमोहिनी को भूषन है, किधौं ब्रजबालनि को दूषन बखानिए,
सुनत हीं छूटयो धाम बन-बन डोलै श्याम राधे तेरो नाम के उचाट मंत्र मानिए

चोरि-चोरि चित चितवत मुंह मोरि-मोरि काहे ते हँसत हिए हरष बढ़ायो है,
केशोराय-की सों तू जम्हाति कहा बार-बार बिसिखा हमेरी बरि आरजोर आयो है
ऐंड़सो ऐंड़ात अति अंचल उठात उर उघरि-उघरि जात गात छबि छायो है,
फूल-फूल मेंटति रहति उर फूलि फूलि भूलि-भूलि कहत कछू तैं आज पायो है

मेरो मुंह चूमै तेरी पूरी साध चूमबे की चाटैं ओस आँशू क्योंरी रात प्यासडाढ़े हैं
छोटे-छोटे कर कहा छुवत छबीली छाती छ्वावो जाके छ्वायबे के अभिलाष बाढ़े है;
खेलन जो आइहौ तौ खेलो जैसे खेलियत केशोराय कोसों तैं ये खेल कौन काढ़े हैं
फूल-फूल भेंटति है मोहिं कहा मेरी भटू भेंटे किन जाय जे वे भेंटबे को ठाढ़े हैं।

छोर-छोर बाँधे पाग आरस-सों आरसी लै अनत ही आन भाँति देखत अनैसे हौ
तोरि-तोरि डारत तिनूका कहौ कौन पर,कौन के परत पाँय?बावरे ज्यों ऐसे हौ;
कबहूं चुटक देत चटकी खुजावौ कान मटकीयों डाउजुरी ज्यों जम्हात जैसे हो,
बार-बार कौन पर देत मणिमाला मोहिं?गावत कछूक कछू आजु कान्ह कैसे हो

दूर ते देखबे को ह्वै दीन मनाइ हुती लिखहू लिख चीठी,
देखे मिलौ मन हौंहु मिली मिल खेलबे हूँ को मिली मति मीठी;
ऐसे में और चलाइहै केशव कैसहूँ कान्ह कुमारि दै दीठी,
लागै न बार मृणाल के तार ज्यों टूटैगी लाल हमैं तुम्हें ईठी ॥५२॥

छुवो जनि हाथ सों हाथ किए पलही-पल बाढ़त प्रेम-कला,
न जानिए जी में कहा बसि जाय चलै पुनि केशव कौन चला;
भले ही भले निबहै जो भली यह देखिबे-ही-को हलाहु भला,
बिलौमन तो मिलबौय कहूँ मिलबौ न अलौकिक नन्दलाला ॥५३॥

धाइ नहीं घर दाइ परी जुरि आइ खिलाइ कि आंख बहाऊँ,
पौर पै आवै रतौंधी इतै पर ऊंचो सुनै सुमहा दुख पाऊं;
कान्ह न वेर हुया उनयां इन आलिन को लग हौं बहराऊं,
ए सब मो संग सोवन आवैं कै मैं इनके संग सोवन जाऊं ॥५४॥

आपनोई भाइके ये सोहत सरीक सेवे केशोदास सदा ज्यों चलत चित्त लीने हैं,
आपही अटाउके ये खेत नाउ मेरो वे तौ बापुरे मिलाप के सताप कर हीने हैं;
प्रियाको सुनाय के कहत ऐसी घनश्याम सुबलको लैलै नाम काम भय भीने हैं,
साथ लै सखान अब जैबो बनछांडो हम खेलबेको संग सखाशाखा मृग कीने हैं

केशोदास घर-घर नाचत फिरत गोप एक रहे छकते मरेई गुनियत है,
वारुणी के बश बलदाऊ भए सखा सब संगको लै जैए दुख शीश धुनियत है ;
मोहिंतो गयेई बनै देह दीपमाला पाय गायन संवारबे को चित्त चुनियत है,
जो न बसौ लोल नैन ले रुवा मरहिं सब खरक खरेई आज सुनै सुनियत है॥५६॥

पन्थ न थकित पल मनोरथ रथन के केशोदास जगमग जैसे गाय गीत मैं,
पवन बिचार चक्र चक्र मन चित्त चढ़ि भूतल अकाश भ्रमै घाम जल शीत मैं ;
कौलौं राखों थिर वपु बापी कूप सर सम हरि बिन कीने बहु वासर बितीत मैं,
ज्ञानगिरि फोरतोर लाज तरु जाय मिलौ आपहि ते आपगाज्यों आप निधिप्रीत मैं;

वेष कै कुमारि काको ब्रजकी कुमारि कानि मांझ सांझ केशोदास त्रास पग पेलिकै,
कामको लता-सी चल प्रेम पास-सी अमल राधिका को बुद्धिबल कण्ठ भुज मेलिकै;
दौरि-दौरि दुरि-दुरि पूरि-पूरि अभिलाष लाख भांति के अनूप रूप बहु केलिकै
जनी के अजिर आज रजनी मैं सजनी री सांची कीन्ही श्यामचोरिमिहिचनिखेलिकै

जानि आगि लागो वृषभानके निकट भौन दौरि ब्रजवासी चढ़े चहुँदिशि धाइकै
जहाँ तहाँ शोर भारी भीर नरनारिन की सबही को छूटिगई लाज यहि भाइकै ;
ऐसे में कुँवर काहु सारी शुक बाहिर कै राधिका जगाई और युवती जगाइकै,
लोचन विशाल चारु चिबुक कपोल चूमि चंपेकैसीमाला लाल लीन्ही उरनाइकै

न्योते कै बुलाईदूती बेटी वृषभानुजू की जैबे को यशोदारानी आनी है शृँगारि कै
भोजन के भवन विलोकिबेको पान खात ऊपर अकेली गई आनँद विचारकै ;
देखति-देखति हरि भावते को भागी देखि दौरि गही ब्यालऐमी बेनीडारडारिकै,
भेंटि भरि अंक मनभायो करि छांड्यो मुख केशरिसों माडिलीनीबेशरिउतारिकै

दै दधि कालिह गई कहि दैन पसारहु ओलि भरो पुनि फेटी,
छाँड़ो नहीं मग छाँड़ोजु पाए छुड़ावै विलोकनि लाज-लपेटी ;
बात सम्हारि कहौ सुनिहै कोउ जानत हौ यह कौन-कि बेटी,
जानत हैं वृषभानु कि है पर तोहिं न जानत कौन कि चेटी ॥६१॥

हरि-राधिका मानसरोवर के तट ठाढ़ेरी ! हाथ हों हाथ छिए.
प्रिय के शिर पाग प्रिया मुकता छर राजत माल दुहून हिए ;
कटि केशव काछनी स्वेत कसे सबही तन चंदन चित्र किए,
निकसे जनु छीर समुद्र ही ते सँग श्रीपति मानहुँ श्रीहि लिए ॥६२॥

बैन सुनाय बुलाय लई बन भौन भुलाइ के भाँति भली को,
फूल गयो मन फूलो विलोकत केशव कानन रास-थली को ;
अधरारस प्याइ कियो परिरंभन चुम्बन कै मुख कामकली को,
हेलहि श्रीहरि नागरि आजु हर्‍यो मन श्रीवृषभानुलली को ॥६३॥

पायन को परिबो अपमान अनेक सो केशव मान मनैबो,
सीखो तो मोर खवाइबो खैबो विशेष चहूँदिशि चौंकि चितैबो ;
चील कुचीलनि ऊपर पौढ़िबो पातन के खरकैं भज-ऐबो,
आंखिन मूंदिकै सीखत राधिका कुञ्जन-ते-प्रति-कुञ्जन जैबो॥६४॥

कोमल विमल मन विमला-सी सखी साथ कमला ज्यों लीने हाथ कमलसनाल के
नूपुर की ध्वनि सुनि भोरे कलहंसन के चौंकि-चौंकि परैं चारु चेटुवा मराल के ;
कचनके भार कुच भारनि सकुच भार लचकि-लचकि जात कटि-तट बाल के,
हरैं-हरैं बोलत विलोकत हरई हरैं-हरैं-हरैं चलत हरत मन लाल के ॥६५॥

चपला पट मोरकिरीट लसै मघवा-धनु शोभ बढ़ावत हैं,
मृदु गावत आवत बेणु बजावत मित्र मयूर नचावत हैं ;
उठि देखि भटू भरि लोचन चातक चित्त की ताप बुझावत हैं,
घनश्याम घने घन वेष धरे जु बने बनते ब्रज आवत हैं ॥६६॥

कटि के तट हार लपेट लियो कलकिङ्किणि लै उरमें उरमाई,
कर नूपुर सों पग पौंचि बनी अँगिया सुधि अंचलकीबिरमाई;
करि अंजन अंजित चारु कपोल करी युत जावक नैन निकाई,
सुनि आवत श्रीब्रजभूषण भषन-भूषित ही उठि देखन धाई ॥६७॥

नँदनंदन खेलत हैं बन गात बनी छबि चंदन के जल की,
वृषभानुसुताहि विलोकतही रुचि चित्त में विभ्रमकी झलकी ;
गिरिजात न जानत पान न खात बिरी कर-पंकज के दल की,
विहँसी सब गोपसुता हरि लोचन मूँदि सुरोचि दृगंचल की ॥६८॥

तन आपने भावे शृङ्गार नहीं ये शृङ्गारशृङ्गार शृङ्गारै वृथाहीं,
ब्रजभूषण नैनहि भूख हैं जाकि सु तोपै शृङ्गार उतारे न जाहीं ;
सब होत सुगन्ध नहीं तौ सुगन्ध सुगन्धमैंजातिसुगन्धवृथाहीं,
सखि!तोहिं तैं है सबभूषण भूषित भूषण तौ तुव भूषित नाहीं ॥६६

बैठि हुती वृषभानुकुमारि सखीन कि मण्डलि मंडि प्रवीनी,
लै कुम्हिलानो-सो कञ्ज परी इक पांयन आइ गुवारि नवीनी ;
चन्दन-सों छिरकी वह-वाकहँ पान दए करुणा-रस भीनी,
चंदनचित्र कपोलन लोपि कै अञ्जन आंजि बिदा करि दीनी ॥७०॥
सखि ! मोहन गोपसभा महँ गोविंद बैठे हुते द्युति को धरि कै,
जनु केशव पूरणचन्द लसै चितचोर चकोरन को हरि कै ;
तिनको उलटो करि आन दियो किहुँ नीरजनीर नए भरि कै,
कहि काहेतैं नेकुनिहार मनो हरि फेर दियो कलिका करि कै ॥७१॥
सुधि भूलि गई भुलए किधौं काहुकि भूलेइ डोलत बाट न पाई,
भीत भए किधौं केशव काहुसौं भेंट भई कोई भामिनि भाई ;
आवत हैं मग आइ गयो किधौं आवहिंगे सजनी सुखदाई,
आए न नन्दकुमार बिचारि सु कौन बिचार अबार लगाई ॥७२॥

कविप्रिया

भूषण सकल घनसारही कै घनश्याम कुसुम-कलित केस रही छवि छाई-सी,
मोतिन की लरी शिर कण्ठ कण्ठमालहार और रूप ज्योतिजात हेरत हेराई-सी ;
चंदन चढ़ाए चारु सुन्दर शरीर सब राखी शुभ शोभा सब बसन बसाई-सी,
शारदासी देखियतु देखो जाइ केशवराय ठाढ़ी वह कुवँरि जुन्हाई में अन्हाई-सी॥७३
प्रथम सकल शुचि मजन अमल वास जावक सुदेश केश-पाश को सुधारिबौ,
अंगराग भूषण विविध मुख बास राग कजल-कलित लोल लोचन निहारिबो ;
बोलनि हँसनि मृदु चातुरी चलनि चारु पल पल प्रति पतिव्रत प्रतिपारिबो,
केशवदास सविलास करहु कुवँरि राधे इहि विधि सोरहौ सिंगारनि सिंगारिबो ॥७४
मणिमय आलबाल थलज जलज रविमंडलमें जैसे मति मोहै कवितानि की,
जैसे सविशेष परिवेषमें अशेषरेख शोभित सुवेष सोमसीमा सुखदानि की ;
जैसे बंकलोचन कलित कर-कंकणनि बलित ललित द्युति प्रकट प्रभानि की,
केशौदास तैसे राजै रासमें रसिकराइ आसपास मंडली विराजै गोपिकानि की ॥७५

भोर जगी वृषभानुसुता अलसी बिलसी निशि कुंजविहारी,
केशव पोंछति अंचलछोरनि पीक सुलीक गई मिटिकारी ;
बंकलगे कुचबीच नखक्षत देखिभई दृग दूनी लजारी,
मानौ वियोगवराह हन्यो युग शैलकी संधिमें इंगवैडारी ॥७६॥

भौंर ज्यों भवँत लोल ललना लतानि प्रति खंजन से थल मीन मानों जहांजल है,
सपनेहूं होत कहूं आपनो न आपने ये भूलिये न बैंन ऐन आक कैसो फल है ;
गहिए धौं कौन गुन देखतही रहिए री! कहिए कछू न रूप मोह को महल है,
चपला-सी चमकनि सोहै चारु चोहूंदिशि कान्हको सनेह चलदल कैसो दल है॥७७

केकिन की केका सुनि काको न मथत मन मनमथ मनोरथ रथपथ सोहिए,
कोकिलाको काकिलनि कलित ललित-बाग देखतही अनुराग उर अवरोहिए ;
कोकनकी कारिका कहत शुक सारिकानि केशौदास नारिका कुमारिका हुं मोहिए,
हंसमाला बोलतही मानकी उतारि माला बोलै नंदलालसों न ऐसी बाल कोहिए

जादिन ते वृषभानलली ही अली मिलए मुरलीधर तेहीं;
साधन साधि अगाधि सबै बुधि शोधि जे दूत अभूतन मेहीं ;
ता दिनतें दिनमान दुहूँन की केशव आवति बात कहेहीं,
पीछे अकाश प्रकाशै शशी चढ़ि प्रेमसमुद्र बढ़ै पहिलेहीं ।७९॥

जो हौं कहूं रहिए तो प्रभुता प्रकट होत चलन कहों तो हित हानि नाहीं सहनों,
भावै सो करहु तो उदास भाव प्राणनाथ साथ लै चलहु कैसे लोकलाज बहनों ;
केशोराय-की-सौं तुम सुनहु छबीलेलाल चलेही बनत जोपै नाहीं राज रहनों,
तैसिए सिखावो सीख तुमहीं सुजान पिय तुमहीं चलत मोहिं जैसो कछू कहनों

मोकों सबै ब्रजकी युवती हरि गौरि समान सुहागिनि जानैं,
ऐसी को गोपी गोपाल तुम्हैं बिन गोकुल में बसिबो उर आनैं ;
मूरति मेरी अदीठ कै ईठ चलौ कि रहौ जु कछू मन मानैं,
प्रेमनि छेमनि आदिदै केशव कोऊ न मोहिं कहूँ पहिचानैं ।८१॥

कछु बात सुनै सपनेहूँ वियोग की होन चहै दुइ टूक हियो,
मिलि खेलिए जा सहुबालक तैं कहि तासों अबोलो क्योंजातकियो;
कहिए कह केशव नैनन सों बिन काजहि पावकपुंज पियो,
सखि!तूं बरजै अरु लोग हँसैं सब काहे को प्रेमको नेम लियो॥८२॥

आन तिहारी न आन कहौं तनमें कछु आन न आनहीं कैसो,
केशव कान्ह सुजान स्वरूप न जाय कह्यो मन जानतु जैसो ;
लोचन शोभहि पीवत जात समात सिहात अघात न तैसो,
ज्यों न रहात बिहात तुम्हैं बलिजात सुबात कहौ नेक वैसो ॥८३॥

कारे सटकारे केश लोनी कछु होनी बैस सोने तें सलोनी द्युति देखियत तन की,
आछेआछे लोचनचितौनि औ चलनि आछी मुखमुख कविता विमोहै मति मन की;
केशौदास कैहूँ भाग पाइए जो बाग गहि सासनि उसासैं साध पूजैं रति-रन की,
वेटी काहू गोप की विलोकी प्यारे नंदलाल नाहीं लोल लोचनि बड़े वा बड़ेपन की

मदन बदन लेति लाजको सदन देखि यदपि जगत जीव मोहिबे को है छमी,
कोटि-कोटि चन्द्रमा सँवारि वारि-वारि डारों जाकेकाज ब्रजराज आजुलों हैं संयमी
केशौदास सविलास तेरे मुखकी सुवास सखी सुनि आरसही सारसनि सों रमी,
मित्र देव खिति दुर्ग दंड दल कोश कुल बल जाके ताके कहो कौन बात की कमी ॥८५॥

दक्षिणपवन दक्ष यक्षनीरवनि लगि लोलन करतु लौंग लवली लताको फरु,
केशौदास केसर कुसुमके सरसकन तनु तनु तिनहूं को सहि न सकति भरु ;
क्योंहूं क्योंहूं होत हठि साहस विलास सब चम्पक चमेली मिलि मालती सुवास हरु,
शीतल सुगन्ध मन्द गति नन्दनन्दकी सौं पावत कहां ते तेज तोरिबेको मानतरु

घनन की घोर सुनि मोरनि के शोर सुनि सुनि-सुनि केशव अलाप आलीजन को,
दामिनी दमक देखि दीप की दिपति देखि देखि शुभसेज देखि सदन सुवन को ;
कुंकुम की वास घनसार की सुवास भई फूलनि की वास मन फूलिकै मिलन को,
हँसिहँसि मिले दोऊ अनहीं मनाए मान छूटि गयो येही बेर राधिकारमन को ८७

मदनमोहन को है रूपको रूपक कैसो मदनबदन ऐसो जाहि जग मोहिए,
मदनबदन कैसो शोभाको सदन श्याम जैसो है कमल रुचि लोचननि जोहिए ,
कैसो है कमल जैसो आनँदको कन्द शुभ कैसो है सुकन्द चन्द उपमा न टोहिए,
कैसो है सुचन्द वह केशव कुँवरकान्ह सुनो प्राणप्यारी जैसो तेरो मुख सोहिए

राधिका रूपनिधान के पानिन आनि मनो छिति की छबि छाई,
दीह अदीह न सूक्षम थूल गही दृग गोरी की दौरि गोराई ;
मिहँदी मय-बिन्दु घने तिन में मनमोहन के मन मोहिनी लाई,
इन्द्रवधू अरविन्द के मन्दिर इन्दिरा को मनु देखन आई ॥८९॥

केशव कुँवर देखी राधिका कुँवरि आजु सोवत सुभाय सेज जननी जनक की,
बेनी में बनाय गुही काहू अली भांति भली कुन्दन की कली तन तनक तनक की ;
पीठि में तिनकी प्रतिमूरति बिलोकियत पूरत नयन युग सूरति बनक की,
हरि मन मथिबेको मानो मनमथ लिखे रूपे के रुचिर अंक पट्टिका कनक की॥९०

श्रीप्राणनाथजी

—: छप्पय :—

सिद्धि सुशक्ति अपार अभय पद प्रेम प्रदायक;
दीन्ही शक्ति अशेष छत्र नृप भूपति नायक ।
श्रीस्वामी हरिदास शिष्यपर परम प्रतापी;
तारे जीव अनेक जक्त जकरे त्रैतापी ।
प्राणनाथ प्रभु प्रगट भू प्रद प्रेमभक्ति श्रीजुगलरति ।
माने सदउपदेश इन जन व्है अभेद वहु धर्मि मति ॥

श्रीप्राणनाथजी ने श्रीनिम्बार्क सम्प्रदायान्तर्गत स्वामी श्रीहरिदासजी के के परम्परा में एक भिन्न सम्प्रदाय स्थापित की । इनका जन्म सं० १६७५ में और परमधाम-गमन संवत् १७५१ में हुआ था । प्रसिद्ध महाराजा छत्रसाल पन्नानरेश इन्हीं के शिष्य थे । मिश्रबन्धुविनोद में भी लिखा है—'ये महाराज पन्ना में थे और इन्हीं ने पन्ना के महाराज को हीरा की खानि बताई । पन्ना में इनकी अब तक पूजा होती है । ये बड़े ही अच्छे साधु थे । इन्होंने बुन्देलखण्ड में जातीयता जागृत की थी ।' वैसे इस सम्प्रदाय में कईएक गद्दियां हैं जैसे पन्ना, सूरत और जामनगर; किन्तु विशेष कर पन्ना (बुन्देलखण्ड) में ही रहते थे । इनमें से कईएक सेवा सखी सम्प्रदाय भिन्न वहिर्गत है ! इनमें नाद और बिन्दु दो शाखायें हैं ।

इनके द्वारा निर्मित १४ ग्रंथ कहे जाते हैं । मिश्रबन्धुविनोद में ७ ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं—(१) कयामतनामा (२) राजविनोद (३) ब्रह्मवाणी (महावाणी) (४) कीर्तन (५) प्रगटवानी (६) बीस गरोहों का वाव (७) पदावली (प्र० त्रै० रि०) महावाणी इस सम्प्रदाय का धर्मग्रंथ है, इसमें १८००० अठ्ठारह सहस्र चौपाई हैं । यह ग्रंथ हस्तलिखित है । इसमें पूर्ण ब्रह्म श्रीकृष्ण का स्वरूप और निजधाम का सविस्तर वर्णन है । प्रणामी वैष्णव इसके अल्प अंश भी प्रकाशित करने के विरुद्ध हैं । जिनानंद संप्रदाय के आचार्य स्वामी श्रीगोपालदासजी गद्याधीश के आज्ञानुसार

कल्याण अंक ४ वर्ष १२ कार्तिक १९९४ पृष्ठ ८९७ में इनकी संक्षिप्त जीवनी श्रीकृष्णप्रियाचार्य-लिखित प्रकाशित हुई थी, वह इनके परिचय के लिये उद्धृत करते हैं—

"इस रत्नगर्भा वसुन्धरा में यों तो साधना की चरम सीमा पर पहुंचे हुए अनेकों तरनतारन संत-महात्मा अवतीर्ण हुए हैं तथापि सद्गुरु स्वामी श्रीप्राणनाथजी महाराज में बहुत सी लोकोत्तर विशेषताएँ पायी गईं हैं। आपका जन्म नवानगर—निवासी श्रीकेशवरायजी के घर में उनकी हरिभक्ति-परायणा धर्मपत्नी श्रीधन्यावतीदेवी के गर्भ से हुआ था। आपके जन्म की विलक्षण कथा इस प्रकार है। संवत् १६७४ की अगहन-वदी-तेरस को आपकी माता प्रातःकाल नहा-धोकर भगवान् श्रीसूर्यनारायण को नमस्कार कर रही थीं। इतने में उन्होंने देखा कि सूर्यमण्डल से उसका अनति-उष्ण बिम्ब सन्मुख आ रहा है ! थोड़ी देर में वह बिम्ब मुख द्वारा उनके उदर में प्रवेश कर गया और वे मूर्छित होगयीं, जब होश आया तब उन्होंने सारा वृतान्त अपने पतिदेव से कहा। वे भी बड़े भगवद्भक्त थे। उन्होंने कहा—'यह श्रीभगवान् की अलौकिक लीला है !' तदन्तर वह बिम्ब गर्भ रूप में परिणत होगया और सम्वत् १६७५ की आश्विन कृष्णा चौदस रविवार को जब कि धन्यावतीदेवी नित्य-नियमानुसार अपने इष्टदेव का पूजन अर्चन करके ध्यान में बैठी थीं, उनके आगे एक अत्यन्त सुन्दर सुकुमार बालक आविर्भूत होगया ! उधर उन्होंने अपने उदर पर हाथ फेरा तो वह फूल के समान हलका मालुम हुआ ! बस' वे इस दैवी लीला को समझ गयीं तथा यह संवाद बड़े वेग के साथ घर-घर फैल गया सब के आनंद का ठिकाना न रहा। इसी से कुछ लोग इन्हें सूर्य्य का अवतार कहते हैं। तत्पश्चात् समय आने पर माता-पिता ने इस अलौकिक बालक का नाम श्रीमिहिरराज रखा। यही श्रीमिहिरराज आगे चलकर 'श्रीप्राणनाथ प्रभु', श्रीजी साहब', 'मरु', 'श्रीइन्द्रावती' और श्रीइन्दिरा' आदि नामों से सुविख्यात् हुए।

श्रीप्राणनाथजी महाराज जब बारह वर्ष के हुए तभी से आपने परम तप करना आरम्भ कर दिया। उसे हम कसनी कहते हैं। विद्याएँ तो सब आपकी चेरी थीं; फ़िर भी लोक लीला के संरक्षणार्थ आपने शास्त्रों का विधि-वत् अध्ययन किया। तत्पश्चात् जब जगदुद्धार का अवसर आया तब आप

४० वर्ष की अवस्था में मध्यभारत के अनेक स्थानों में घूम--घूमकर सदुपदेश देने लगे। संवत् १७३९ में आप सूरत पधारे, जहाँ पर वैष्णव वेदांतियों तथा अन्य प्रसिद्ध पण्डितों के साथ वेदान्त और श्रीकृष्ण के निजस्वरूप पर आपका बड़ाभारी शास्त्रार्थ हुआ था। अन्त में लोकोत्तर प्रतिभा के कारण विजय आपकी रही और वहां के सभी विद्वानों ने आपको भद्रासन पर बैठा-कर अभिषेक किया, आरती उतारी। तदनन्तर सर्वसम्मति से आपका नाम श्रीमहामति रखा गया। उसी समय से आप निजानंदीय नादशाखा के प्रवर्तक होकर उसके आचार्य माने जाने लगे। आपके संप्रदाय में जो मुख्य आचार्य होता है, वह भी इसी स्थान पर बैठाया जाता है तथा इस स्थल को इस मत के लोग तीर्थ मान कर इसे 'मंगलपुरी' नाम से पुकारते हैं।

संवत् १७४० में सूरत से चलकर आप पन्ना नगरी में पहुंचे तथा वहां की किलकिला नदी के अमराई घाट पर उतरे। आपके साथ उस समय १७०० के लगभग साधु-साध्वी थे। वहां पहुंचते ही किलकिला नदी-तट के निवासियों ने आपसे प्रार्थना की कि 'महाराज! इस नदी का पानी बड़ा विषैला है। इसे पीने पर मनुष्य की कौन कहै पशु-पत्ती भी नहीं बचते हैं।' यह सुनकर संत-मण्डली के कुछ लोगों ने श्रीप्राणनाथ प्रभु के चरण-कमलों को धोकर उस चरणोदक को नदी में डाल दिया। फिर सब लोग सहसा कूदकर उस नदी में जल-क्रीड़ा करने लगे। श्रीप्राणनाथ प्रभु भी खूब नहलाए गए। तब से उस नदी का जल सब के पीने योग्य हो गया। इस घटना की खबर छत्रसाल—नरेश को लगी। उन्होंने अपने एक सम्मानित व्यक्ति को भेजकर पत्र द्वारा यह प्रार्थना की कि 'मुझको अफगानखाँ के तीन हज़ार सैनिकों ने घेर रखा है, इसलिए मेरा तो वहाँ आना असक्य है, कृपा-पूर्वक आप ही अपनी थोड़ी बहुत संत--मण्डली के साथ मेरे यहां पधारिए।' श्रीप्राणनाथ महाराज ने छत्रशाल नरेश की इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और आप मऊ पधारे। राजा ने आप से उपदेश-दीक्षा लेली। इसके बाद आपने राजा को संकट में पड़ा देखकर अपने हाथों से उनके सिर पर पगड़ी बाँधी और हाथ में तलवार देकर कहा—'जाइए आपकी फतह होगी।' राजा के पास केवल बाईस घुड़सवार थे किन्तु वे उन्हीं को साथ लेकर

पड़वारी नामक स्थान में पड़ी हुई शत्रु-सेना पर सिंह की भाँति टूट पड़े। फिर कौन इनका सामना करता है। श्रीप्राणनाथ-प्रभु के आशीर्वाद—बल से राजा ने सब को मार भगाया। इसके अतिरिक्त और भी कई सूवों पर राजा की विजय होगई तथा अपने सौभाग्यवस उन्होंने श्रीप्राणनाथ प्रभु के अन्य अनेक चमत्कार देखे, जिनका स्थानाभाव के कारण यहाँ उल्लेख नहीं हो सकता।

श्रीप्राणनाथ प्रभु जब ७०-७१ वर्ष के थे, तब आप एकवार बुंदेल-खण्ड के विजावर नगर में पधारे थे। वहां आपने अपने योगवल से सुंदर दिव्य किशोर स्वरूप धारणकर, दिव्य किरीट-कुंडल-अंगदादि पूर्णिमा की रात्रि में रासलीला की और उसके दर्शन द्वारा अपने रसिक भक्तों का रंजन किया था! इसी प्रकार और भी अनेकों दिव्य स्वरूप धारण करके आपने समय-समय पर अपने भक्तों को दर्शन दिए। आपके भक्तों में अनेक सम्प्रदायों के लोग थे। अतः जो भक्त जिस सम्प्रदाय का होता था, उसकी इच्छा के अनुसार आप उसको उसी संप्रदाय के आचार्य रूप में दर्शन देते थे। किसी सम्प्रदाय से आपका विरोध नहीं था। यहाँ तक कि आपने अनेक वार ईसा, मूसा, दाउद, मुहम्मद इत्यादि आचार्यों के रूप में भी अपने तत्संप्रदाया-नुगामी भक्तों को दर्शन दिए थे।

आपका हृदय नवनीत के समान कोमल था। आपके समय में जो गरीब आर्य प्रजा पर अथवा सती देवियों पर विधर्मियों का असह्य आक्रमण होता था, उसको देख-सुनकर, आप अत्यन्त आनंदमय होते हुए भी दुख सागर में डूबे रहते थे। एक वार भगवान् श्रीकृष्ण के आवेशने आपके हृदय में ऐसा जोश पैदा कर दिया कि आप बिना देखे-पढ़े कुरान के तीसों सिपारों के गुह्यार्थों को सरल चौपाई में गाने लगे। उन्हें सुनते ही भक्तों ने लिखना शुरू कर दिया। जब यह ग्रंथ तैयार होगया और कुरान के ग्रंथों से उसका मिलान कराया गया तो वह ठीक-ठीक अनुवाद निकला! उस ग्रन्थ का नाम 'सनंध' रखा गया और उसके प्रताप से आपके कितने ही भक्तों ने स्थान-स्थान पर विधर्मियों को पराजित किया। एक समय प्रभु ने स्वयं भी १२ भक्तों को साथ लेकर तत्कालीन यवन-सम्राट औरङ्गजेव से टक्कर ली! कुरान के जो अर्थ किये उस पर औरँङ्गजेव कायल हुआ किन्तु जब आपकी

भक्त-मण्डली ने मुसलमानों को यह उपदेश कि 'तुम लोग कुरान के अर्थ को हम से समझ कर मांस भक्षण तथा गोहत्या का परित्याग कर दो और साधु-ब्राह्मण आदि को कष्ट न दो।' तब औरङ्गजेब के काजियों को यह बुरा लगा। उन्होंने श्रीप्राणनाथ महाप्रभु के १२ शिष्यों को कारागार में डालने की आज्ञा दे दी। किन्तु प्रभु ने अपने योगबल से ऐसा नहीं होने दिया तथा विधर्मियों को तख्त से उलटवा दिया! आप स्वयं लिखते हैं कि—'तखत बैठे शाह कहावते, देखो क्यों डारै उलटाय।' इस प्रकार अनेकों चमत्कार दिखलाकर श्रीप्राणनाथ प्रभु ने लोकोद्धार का कार्य किया। सं० १७४० से ४१ तक आप केवल प्रतिदिन एक मुट्ठी चना चबा कर रहे। उस समय आपकी विचित्र दशा थी—रातदिन आप भगवान् श्रीकृष्ण को अपने अनन्य प्रेमास्पद के रूप में याद करके रोया करते थे सोते तो आप कभी थे ही नहीं। कहा जाता है कि भगवान् भी आपकी चुनी हुई भक्त-मंडली के साथ समय-समय पर खेला करते थे। श्रीप्राणनाथ प्रभु पूर्णानंद श्रीकृष्णचंद्र के साक्षात्कार जन्य प्रेमावेश में मग्न रहते हुए जो-जो शब्दोच्चार करते थे, भक्तजन लिपिबद्ध करते जाते थे। उस शब्द-समूह को आज हमलोग 'महावाणी' अथवा 'श्रीमुखवाणी' कह कर पूजते हैं। श्रीकृष्ण साक्षात्कार के फलस्वरूप श्रीप्राणनाथ प्रभु के हृदय में जो प्रेमसागर उमड़ा था, उसको आपने 'प्रेम', 'इश्क', 'शराब' 'तारतमज्ञान', 'भक्ति' इत्यादि नामों से पुकारा है। आपने श्रीकृष्णलीला के व्यावहारिकी, प्रातिभासिकी, वास्तवी—ये तीन भेद मानकर क्रमशः इनकी श्रेष्ठता बतायी है। नित्य-ब्रज-लीला और नित्य रास-लीला को आप क्रमशः व्यावहारिकी तथा प्रातिभासिकी लीला बतलाते थे। एवं दिव्य ब्रह्मपुर की वास्तवी लीला को ब्रह्मानंद मानकर उसकी उपसाना करते थे। श्रीस्यामाजू ठकुराइन (श्रीरासेश्वरी राधाजी) पर आपका अनन्य प्रेम था।

सं० १७५१ में परमहंस श्रीप्राणनाथ प्रभु नित्य धाम को पधार गए। कुछ लोग तो आपको पूर्णानंद अक्षरातीत का अवतार मानते हैं और कुछ भगवान् श्रीसूर्यनारायण का। आप पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की प्रमोदाशक्ति के स्वरूप गिने जाते हैं। स्वामी श्रीप्राणनाथजी परमहंसों की उच्च स्थिति को प्राप्त थे तथापि आपने वर्णाश्रम धर्म का जीवनभर पालन किया। आपने

अपने शिष्यों को श्रीकृष्ण की पराभक्ति करने को कहा परन्तु वर्णव्यवस्था तोड़ने की सख्त मनाई की। हाँ, श्रीकृष्ण के प्रेम में पागल हुए पुरुषों को तो बात दूसरी है। आपके संप्रदाय को 'निजानंदीय', 'मिहिरराजपंथी' 'श्रीकृष्ण-प्रणामी' इत्यादि नामों से पुकारा जाता है। इसके मुख्य दो ही स्थान हैं—एक पन्ना में, दूसरी सूरत में। प्रभु के परमधाम पधारने पर इसकी एक शाखा नवानगर में स्थापित हुई थी परन्तु आजकल वह भिन्नतापर है। वह प्रायः श्रीप्राणनाथजी के गुरू को मानती है जिनका नाम श्रीदेवचंद्रजी है। मारवाड़ में अमरकोट स्थान में 'मत्तू' नामक एक पुष्करणा ब्राह्मण के घर श्रीकुँवरबाई के उदर से सं० १५३८ आश्विन शुक्ला १४ सोमवार को प्रगट हुए थे आप हरिव्यासीस्वामीश्रीहरिदास संप्रदाय के शिष्य थे। आप चालीसवर्ष की उम्र तक श्रीबांकेविहारीजी के किरीट तथा मुरली की सेवा करते थे। पश्चात् आपको श्रीनित्य वृन्दावनविहारी सर्वेश्वर रासेश्वर प्रभु ने साक्षात् दर्शन दिए तब इन्होंने निजानंद नामक संप्रदाय की स्थापना की। इस संप्रदाय में स्वलीलाद्वैत माना जाता है। श्रीस्यामास्याम-युगलमूर्ति की उपासना है।"*

मिश्रबन्धुविनोद में इनके द्वारा निर्मित एक कवित्त उद्धृत है वह यह है—

चंद्बिन रजनी सरोज बिन सरवर,
तेज बिन तुरँग मतंग बिन मद को ;
बिन सुत सदन नितंबिनी सुपति बिन,
धन बिन धरम नृपति बिन पद को।
बिन हरि भजन जगत सो है जन कौन,
नोन बिन भोजन बिटप बिना छद को ;
प्राननाथ! सरस सभा न सोहै कवि बिनु,
विद्या बिनु बातन नगर बिना नद को॥

---

* संत अंक में प्रकाशित श्रीप्राणनाथजी के चरित्र में कुछ भूलें देखकर श्रीनिजानंद संप्रदाय के आचार्य स्वामी श्रीगोपालदासजी की आज्ञा से ब्रह्मचारी जी ने यह लेख लिखकर भेजा है। इसके लिये श्रीआचार्यजी और ब्रह्मचारीजी को धन्यवाद! —संपादक कल्याण

श्रीमुकुन्ददासजी

* छप्पै *

विविध छंद रचि भव्य भावमय हरि विभूति को;
दरसाए निजधर्म विविध बहु भक्ति रीति को।
प्राणनाथ प्रिय शिष्य देव श्रीमुकुंद प्रतापी;
तारे जीव अनेक जक्त जकरे त्रैतापी।
निजानंद निज धर्म को करि प्रचार इस भूमि पर;
श्रीनिंबार्क-मग अनुसर्‍यो श्रीस्वामी हरिदास कर।

श्रीप्राणनाथजी के सहस्रों शिष्य हुए हैं जिनमें से सैकड़ों ने कविता की है। समय के प्रभाव से बहुत से तो नष्ट हो गये क्योंकि खोजकर एकत्र संग्रह करने की कोशिश इस सम्प्रदाय में किसी ने नहीं की। जो कुछ बचे हुए हैं वे भक्ति एवं वेदान्त के विविध विषय एवं अंगों से पूर्ण हैं इससे इस सम्प्रदाय की प्रतिभा एवं उपासना तथा सिद्धांत के गम्भीरता का परिचय मिलता है। प्राणनाथजी के शिष्यों में से एक श्रीमुकुंददासजी हैं इनके जन्म परलोक-गमन एवं घर सम्बन्धी विशेष परिचय नहीं मिलता, किन्तु गुरु सम्बन्ध ही अनिवार्य है। इनका निकुंज सम्बन्धी द्वितीय नाम नवरंगा सखी भी है; इनकी बनाई एक बृहद् वाणी उपलब्ध है; जिसमें २५००० हजार चौपाई हैं। चौपाई छन्द लिखने की इस सम्प्रदाय में परम्पर ही है उदाहरण में ईश्वर विभूति वर्णन के गंभीरता को अवलोकन करिए—

पद—

देखो परमहंस ब्रह्म सृष्टि' एक रहस अनूपम दृष्टि।
एक–एक में पंच-पंच है पंच-पंच में एके,
  त्तर अत्तर उत्तम में देखो त्रिधा ओंकार एलेखो।
अंतसकरन ओंकार स्वभावे चतुर्व्यूह विधि जैसी,
  अध्यात्मा कू आदि दे के कहूँ जैसी की तैसी।

श्रीरसरंगजी

श्रीरसरंगजी जाति के मुसलमान थे और झाँसी के रहने वाले थे। श्रीरसखान और रहीम के समान पूर्व-जन्म-संस्कार से इनके भी हृदय में भगवद्भक्ति उदय हुई इसलिये वृन्दावन आगये। यहां टट्टी स्थान के प्रसिद्ध महात्मा श्रीललितमोहनदेवजी के शिष्य हो गये। इनका कविता-काल मिश्रबन्धुविनोद में सं० १७८० लिखा है; किन्तु अशुद्ध विदित होता है, क्योंकि श्रीललितमोहिनी-देवजी का गद्दी-काल सं० १८२३ से १८५८ है इसी के मध्य इनका भी कविता-काल समझना चाहिये। इनके द्वारा रचित एक पद स्वामी श्रीहरिदासजी के रस-तत्व-महत्त्व का टट्टी स्थान से प्रकाशित गुलजारचमन में छपा है उसी पद के संग ही एक दोहे में अपना परिचय दिया है वह दोहा यह है—

ललितमोहिनी दृय ते दरसायो रस-रङ्ग;
रसरँग बाँकी छवि लखी झाँकी नव-नव रङ्ग।

ये मुसलमान होते हुए भी श्रीकृष्णतत्व के अनेक रूपों में से अपने उपास्य स्वरूप तत्त्व और धाम-तत्त्व से पूर्ण परिचित थे। इन्होंने वैष्णव सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का पूर्ण अध्ययन किया था और अन्य समस्त धर्मों का भी। इस पुस्तक के उदाहरण में प्रकाशित एक पद से एतद्विषयक इनकी बढ़ी हुई बेहद अनुभव के पराकाष्टा का परिचय मिलता है। इससे विदित होता है कि ये गुरु के पूर्ण कृपापात्र थे। इनके द्वारा विरचित सैकड़ों वाणी को संग्रह है किन्तु वृन्दावन में अनुपलब्ध है, छत्तरपुर दरबार के पुस्तकालय में विद्यमान है। इनकी रचना की भाषा ब्रज—भाषा है तथा खड़ी बोली भी मिश्रित है। ये बड़े अच्छे कवि थे ऐसे चोट के मारे हुये कवियों का प्रेमी होना स्वाभाविक ही है। इनकी कविता में प्रेम-कसक भी हृदय के आह के संग विकसित है। इनका बनाया एक पद उद्धृत करते हैं—

तेरे महबूब बाँके ने चसम की चोट मारी है;
खड़ा है सामने ही में जरा नहिं पलक टारी है।
जिलाया उसीने मुझको जिनो यह गाँस मारी है;
तड़पता कधी ना जीता बिछोहा दर्द भारी है॥१॥

पद—चौदह तबक़ हैं या विराट में तामें तीनों देवा;
जेते जीव जहान तिते सब करत इन्हीं की सेवा।
ता आगे सुख और बताऊँ जहाँ मियाँ को डेरा;
आलमीन अल्लह जहँ बैठा सब का करै निबेरा।
ता आगे सुख और बताऊँ जहाँ रमापति राजै;
बेद कितेब कहैं ह्याँ ही लौं आगे फिर जिय लाजै।
ताके आगे ज्योति निरञ्जन इन सबही को मूल;
सप्त-शून्य फिर और बताऊँ मेटों सब को शूल।
ऊपर अक्षर ब्रह्म अपारा जाकर सकल पसारा;
सो तौ है आभास धाम का जानत जानन-हारा।
सो तौ हैं गोलोक अनेकन राम कृष्ण जहँ दोऊ;
करि सतसंग जाय कोइ बिरला बड़ी पहुँच जो होऊ।
क्षर अक्षर निःअक्षर छाँड़ै तजै अक्षरातीत;
आगे हंस हिडम्बर बैठ्यौ सत्त सुकृत को जीत।
ताके आगे और पुरुष है वाका रूप अगाधा;
याको कोई जानत नाहीं ना काहू आराधा।
ताके आगे और पुरुष है गहे आपनी टेक;
इन सबहिन को करै सकेला रहै अकेला एक।
हद बेहद देहद के आगे एतौ सब कहि आये;
कोटिन ब्रह्म प्रेम कोटिन पर जहँ कोउ गए न आए।
ताके आगे रासबिलासी रूप रंग अनियारा;
रहै पास नाइब नहिं जानै यह तौ अचरज भारा।
व्हां तौ देखौ रूप सुभानी व्हां तौ अजब तमासा;
सखी-समूह रहैं बीचहि में जाय न कोऊ पासा।
पक्षी मधुकर शब्द न पहुँचै जहँ नहिं शोर सराबा;
बाजे जिते तहाँ नहिं बाजै ताल मृदंग रबाबा।
सो तौ निधिवनराज बिराजै रंगमहल ता माहीं;
श्रीस्वामीहरिदास बतायौ कोऊ पहुँचत नाहीं।
साँची शरण लेय स्वामी की सोतौ पहुँचन पावै;
नातर रहै बीचही हिलग्यो कोटि कल्प नहिं जावै।

श्रीविद्यापति ठाकुर

—: छप्पय :—

भव्य भावमय रसागार पद रचि सुखकारी;
बरन्यो विविध-विहार रीति रस प्रीतम प्यारी।
मैथिल देश प्रचार धार भाषा निज कीन्हे;
अमर काव्य अभिकार जन्म जस जीवन लीन्हे।
श्रीविद्यापति विद्वान् प्रतापी परम परात्पर प्रेमधर;
आश्रय रस निम्बार्कदेव पुनि मैथिल कोकिल नेमधर।

महामहोपाध्याय श्रीविद्यापति ठाकुर का जन्म मिथिला देश के बिसपी ग्राम में हुआ था। ये मैथिलब्राह्मण वंशावतंश थे। इनके पिता का नाम गणपति ठाकुर था, पितामह का नाम जयदत्त, और प्रपितामह का धीरेश्वर ठाकुर। इनका जन्म समय ठीक-ठीक उपलब्ध नहीं है किन्तु राजाशिवसिंहदेवजी से इन्हें बिसपी ग्राम प्राप्त हुआ था, उसका दानपत्र इनके वंशजों के पास है; जिसमें लक्ष्मणसेन-प्रचारित सन् २९३ लिखा है। जो संवत्१४५५ विक्रमीय पड़ता है। इससे अनुमानतः ३०-४० वर्ष प्रथम इनका जन्म सम्भव हो सकता है। विद्यापति-पदावली में राजा शिवसिंह के सिंहासनारुढ़ के समय का एक पद भी है, उसमें सम्वत् दिया हुआ है वह पद यह है—

३ ९ २ ४ २ ३ १
'अनल रन्ध्र कर लक्खन नरवर सक समुद्द कर अगनि ससि।
चैतकारि चठि जेठा मिलिओ वार वेहप्पय जाउ लसी॥'

इससे केवल इतना पता ज्ञात होता है, कि लक्ष्मणसेन-सन् २९३ में राजा शिवसिंह गद्दी पर आरूढ़ हुए, जिसका संवत् वि॰ १४५९ होता है। ये शिवसिंह के दरबार में राज्य-प्रतिष्ठा-प्राप्त कवि थे। इनके काव्य-प्रतिभा पर ही बिसपी ग्राम दान में मिला था। राजा शिवसिंह और लखिमा-रानी इनके शिष्य थे अथवा इनके सरस शिक्षा से रस के पूर्ण ज्ञाता थे, तभी इन्होंने जहां कहीं पदों में विशेष रस का समावेश आया है, वहां ये कहते हैं यह रस शिवसिंह या लखिमा-रानी जानती हैं।

विद्यापति को कितनेलोग चण्डीदास के अनुयायी मानते हैं और कितने महाकवि जयदेवजी के। इनकी पदावली देखने से विदित होता है श्रीराधाकृष्ण के ही भक्त थे दूसरे के नहीं। शिव पार्वती के कुछ पद देश कालानुसार कहे। श्रीजयदेवजी के रसविशेष से इनके रस खूब ही मिलते हैं। कइएक स्थान पर तो इन्होंने गीतगोविंद का स्पष्ट भावापहरण करके तथा शब्द समूह भी रखदिए हैं। जो कुछ हो गीतगोविन्द के ही अधार पर इन्होंने पदावली निर्माण की है। श्रीजयदेवजी श्रीनिम्बार्क-संप्रदायानुयायी थे यह अकाट्य सिद्ध हो चुका है। इसलिये ये इस संप्रदाय के अनुयायी अवश्य हुए। मैथिल के विद्वान् पंडित श्रीभागीरथजी झा न्याय वेदान्ताचार्य वृन्दावन पधारे थे उन्होंने कहा था कि-"श्रीविद्यापतिजी अवश्य निम्बार्कीय थे क्योंकि इनके वंशधर अभी तक निम्बार्कीय तिलक करते हैं और उनके यहां जो श्रीमद्भागवत पूजा में है उस पर प्रथम मंगलाचरण में 'श्रीनिम्बार्काय' लिखा है।" श्रीनिम्बार्क सम्प्रदायके प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टजी बंगाल एवं मैथिल देश में तीन वार पधार कर शास्त्रार्थ में दिग्विजय किये थे। तीसरी वार चैतन्य महाप्रभुसे सम्पर्क हुआ। ये आचार्य महाप्रभु पूर्णयोग-सिद्ध होनेके कारण दीर्घजीवी थे। इनका जीवनकाल दोसौ वर्ष माना जाता है जो एक अष्टांग सिद्ध योगी के लिये पूर्ण सम्भव है इनके संग हजारों शिष्य रहते थे श्रीनाभा-कृत निष्पक्ष भक्तमाल में लिखा है, दिल्ली के बादशाह के फ़ौज को मथुरा में धर्मध्वंस करते देखकर उसको भी नीचा दिखाकर पराजय किए थे, इसलिये बंगाल विहार में इन आचार्यों का सहस्रों अनुयायी हो जाना बहुत ही सम्भव है। आज तक बंगाल विहार में सैकड़ों निम्बार्क संप्रदाय के वृहद्स्थान हैं। इन्हीं श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टजी के ही शिष्य श्रीश्रीभट्टजी व्रजभाषा के आदि वाणीकार भी, जिनका प्रादुर्भाव एवं परमधाम-गमन १३ वीं सताब्दी के मध्य से लेकर १४वीं सताब्दी के मध्य तक है, इन्होंने तेरहवीं के अन्त में आदि वाणी युगलसत की रचना की थी, जिनका संवत् आचार्य होने के कारण निम्बार्कीय वैष्णवों में प्रसिद्ध है, ये भी केशवकाश्मीरिजी के संग दिग्विजय में हजारों शिष्यों के संग जाया करते थे। इनकी वाणी देखने तथा प्रेरणा से विद्यापति के हृदय में हिन्दी भाषा में रचना करने की चाह हुई हो सम्भव है, युगलसत के भाव इनके पदावली के अनेक पदों में स्पष्ट झलकते हैं।

विद्यापतिजी संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। संस्कृत में पाँच ग्रंथ बनाए हैं; जिनकी मिथिला में अच्छी ख्याति है। ये अपने पदावली के ही कारण मिथिला-कोकिल प्रसिद्ध हुए। इनके पद मिथिला में उत्सवतिथियों पर गाए जाते हैं और बंगाल में भी बहुत ही प्रसिद्ध हैं। बंगाली तो इनको बंगाल के कवि कहते हैं। बंगाली और विहारी दोनों का ही इनके पदों पर पूर्ण अनुराग है। दोनों ही पूज्य समझते हैं। ये अमर कवि हैं। इन्होंने भावों को प्रदर्शित करने में बड़ी विलक्षणता और सूक्ष्मदर्शिता से काम लिया है। इनके पद अधिकतर शृङ्गार रस के ही हैं। इन्होंने स्वकीया परकीया दोनों रसों का अवलंबन लिया है। राधाकृष्ण-सम्वाद में माधुर्य्य मनोमुग्धकारी है। इनमें श्रीराधाकृष्ण और गोपियों का संवाद है। भाषा विहारी है और कुछ संस्कृत और बंगला के शब्द भी आगए हैं।

इनकी पदावली बाबू नगेन्द्रनाथ गुप्त ने सन् १९१७ में सम्पादित कर इण्डियन प्रेस में मुद्रित करवाई थी इसमें८११पद राधाकृष्ण के,४४ शिव पार्वती और ३१ बिबिध विषयों के वर्णित हैं। २० पद कूट के भी वर्णित हैं। इन्होंने पारिजातहरण और रुक्मिणीपरिणय नामक दो नाटक भी बनाए हैं। नेपाल में कीर्तिलता नामक अपभ्रंस पुस्तक भी उपलब्ध है। इनके पदावली में से कुछ पद उद्धृत किए जाते हैं।

[बन्दना-पद]

देख-देख राधा रूप अपार।
अपरुब के विहि आनि-आनि मिलाओल खितितल लावनि सार।
अंगहि अंग अनंग मुरछायत हेरए पड़ई अथीर;
मनमथ कोटि मथन करु ये जेन से हेरि महिमह गीर।
कत-कत लखिमी चरनतल नेउछत रंगिनि हेरि बिभोर;
करु अभिलाष मनहि पदपंकज अहोनिशि कोरि अगोरि।

[सखी। पद]

कि आरे नवजौवन अभिरामा।
जत देखल तत कहहि न पारिअ छओ अनूपम एकठामा।
हरिन इंदु अरबिंद करिणि हिम पिक वूझ अनुमानी;
नयन वयन परिमल गति तनु रुचि अओ अति सुललित वानी।

कुचयुग पर चिकुर फुजि परसल ता अरुझायल हारा;
जनि सुमेरु ऊपर मिलि ऊगल चाँदविहुन सवे तारा।
लोल कपोल ललितमाल कुंडल अधरबिम्ब अधजाई;
भौंह भ्रमर नासा पुट सुंदर से देखि कीर लजाई।
भनइ 'विद्यापति' से वर नागरि आन न पावए कोई;
कंस दलन नारायन सुंदर तसु रंगिनी पए होई।

[सखी। पद]

माधव ! कि कहब सुंदरि रूपे।

कतेक जतन विहि आनि समारल देखलि नयन सरूपे।
पल्लवराज चरणजुग शोभित गति गजराजक भाने;
कनक केदलि पर सिंह समारल तापर मेरु समाने।
मेरु उपर दुइ कमल फुलाएल नाल विना रुचि पाई;
मनिमय हार धार वहु सुरसरि तँइ नहि कमल सुखाई।
अधरबिम्ब सन दसन दाड़िम बिजुरबि शशि उगथिक पासे;
राहु दूरि बस नियरो न आवथि तँइ नहि करथि गरासे।
सारँग नयन वचन पुनि सारँग सारङ्ग तसु समधाने;
सारँग ऊपर उगल दश सारँग केलि करथि मधुपाने।
भनहि 'विद्यापति' सुन वरजौवति एहन जगत नहिं आने;
राजा शिवसिंह रूपनारायन लखिमादेइ पतिभाने।

[सखी। पद]

सुधामुखि के विहि निरमिल बाला ?
अपरुब-रूप मनोभव-मंगल त्रिभुवन-विजयी-माला।
सुंदर-वदन चारु-अरु लोचन काजरे रंजित भेला;
कनक कमल माझे काल भुजंगिनि शिरियुत खंजन खेला।
नाभि विवर सजे लोम लतावलि भुजगि निशास पियासा;
नाशा खगपति चंचु भरम भए कुचगिरि संधि निवासा।
तिन वान मदन तेजल तिन भुवने अवधि रहल दउ वाने;
विधि वड़ दारुन वधइते रसिकजन सौंपल तोहर नयाने।

भनइ 'विद्यापनि' सुन वरयुवति इह रसकेओ पय जाने ;
राजा शिवसिंह रूपनारायन लखिमादेवि रमाने ।

[माधव । पद]

गेलि कामिनि गजहु गामिनि विहँसि पलटि निहारि ;
इन्द्रजालक कुसुमसायक कुहुकि भेलि वरनारि ।
जोरि भुज जुग मोरि वेढ़ल ततहि बयन सुछन्द ;
दाम चम्पके काम पूजल जैसे सारद-चन्द ।
उरहि अंचल झाँपि चंचल आध पयोधर हेरु ;
पवन परभवे सरद घन जनि वेकत कयल सुमेरु ।
पुनहि दरसने जीवन जुड़ायव टूटब बिरहक ओर ;
चपने जावक हृदय पावक दहइ सब अँग मोर ।
भनइ 'विद्यापति' सुन यदुपति चित थिर नहिं होय ;
से जे रमनि परम गुन-मनि पुन कि मिलव तोय ।

[श्रीजी । पद]

एक दिन हेरि-हेरि हँसि-हँसि जाय ; अरु दिन नाम धय मुरलि बजाय ।
आजु अति नियरे करल परिहास ; न जानिय गोकुल ककर वास ।
साजनि ओ नागर सामराज ; मूल विनु परधने माँग वेयाज ।
परिचय नहिं देखि आन काज ; न करय सम्भ्रम न करय लाज ।
अपना निहारि निहरि तनु मोर ; देइ आलिंगन भए विभोर ।
खने-खने बैदगधि कल अनुपाम ; अधिक उदार देखिय परिनाम ।
'विद्यापति' कह आरति आरे ; बुझइ न बुझइ इह रस भारे ।

(सखी । पद)

आज पेखल नन्दकिसोर !
केलि बिलास सबहु अब तेजल अहनिशि रहत विभोर ।
पवधरि चकित विलोकि विपिन तटे पलटि आओलि मुखमोर ;
तव धरि मदनमोहन तरु कानने लुटइ धीरज पुनि छोरि ।
पुनि फिरि सोइ नयने यदि हेरबि पोआवे चेतन नाह ;
भुजंगनि दंशि पुनहि यदि दंशय तवहि समय विष याह ।
अब शुभ रख धनि मनिमय भूषन भूषित तनु अनुपाम ;
अभिसरु वल्लभ हृदय विराजह जनि मनि कांचन दाम ।

(सखी । पद)

तुहु मनमोहन कि कहब तोय ; मुगुधिनि रमनि तुय लागिरोय ।
निसिदिसि जागि जपय तुय नाम ; थर-थर काँप पड़य सोइ ठाम ।
यामिनि आध अधिक जब होय ; विगलित लाज उठय तब रोय ।
सखिगण यत परवोधय ताय ; तापिनि तापे ततहि नहि भाय ।
कहब कविशेखर ताक उपाय ; रचइते तवहि रजनि बहि जाय ॥

(माधव । पद)

सहज प्रसनमुख, दरस हृदय सुख, लोचन तरल तरङ्ग ।
अकाश पताल बस, सेओ कैसे भेल अस, चांद सरोरुह संग ।
विधि निरमलि रामा, दोसरि लाछि समा, भलतुलापल निरमान ।
कुचमंडल सिरि, हेरि कनकगिरि, लाजे दिगंतर गेल ।
केओ अइसन कह, सेओ न जुगुति सह अचल सचल कहसे भेल ।
माझ खीन तनु, भरे भाँगि जाए जनु, विधि अनुसए भेल साजि ।
नील पटोर आनि, अति से सुदृढ़ जानि, जतने सिरिजू रोम राजि ।
भन कवि 'विद्यापति' कामे रमनि रति, कउतुक बुझ रसमंत ।
सिरि-शिवसिंहराउ, पूरब सुकृतपाउ, लखिमादेवि रानिकंत ॥

(सखी । पद)

माधव ! परिहरि दृढ़ परिरम्भा ।
माँगि जाएत मन जीवसये मदन विठपि आरम्भा ।
सैसव अछल से डरे पलायल जौवन नूतन वासी ;
कामिनि कोमल पाहुन पचसर भए जनु जाह उदासी ।
तोहर चतुरपन जखने धरति मन रस वूझति अब सेखि ;
एखने अलपबुधि न बुझ अधिक सुधि केलि करब जिव राखि ।
तोहे जे नागर मानओ धनि जिब सनि कोमल काँच सरीरा ;
ते परि करब केलि जे पुनु होअ मेलि मूल राख बनिजारा ।
हमरि अइसनि मति मन दए सुन दुति दुरकर सबे अनुतापे ;
जओ अति कोमल तैअओ न ढरि पल कबहु भमत भरे कापे ।
सहजहि तनु खिनि माझ वेबि सनि सिरिसि कुसुम सम काया ;
तोहे मधुरिपुपति कैसे कए धरति रति अपरुब मनमथ माया ।

[सखी । पद]

पहिलहि राधा माधव भेट ; चकितहि चाहि वयन कर हेट ।
अनुनय काकु करतहि कान्ह ; नवीन रमनि धनि रस नहि जान ।
हेरिहरि नागर पुलक भेल ; काँपि उठि तनु सेद वहि गेल ।
अथिर माधव धरु राहिक हाथ ; करे कर बाँधि धर धनि माथ ।
भनइ 'विद्यापति' नहिं मन आन ; राजासिवसिंह लखिमा रमान ॥

[श्रीजी । पद]

माधव ! ए बेरि दुरहु दुर सेवा ।
दिन दस धैरज कर यदुनंदन हमे तप बरि-बर देवा ।
कोरि कुसुम मधु वेकत न रहते हठ जनु करिअ मुरारि ;
तुअ इह दाप सहए के पारत हम कोमल तनु नारि ।
आइति हठ जजो कर वह माधव ! तञों आइति नहिं मोरी ;
काँचि वदरि उपभोगे न आओत उहे कीफल तोरी ।
एतिखने अमिअ वचन उपभोगह आरति अनदिने देवा ;
लखिमिनाथ भन सुन यदुनन्दन कलियुगे निते मोरि सेवा ।

[सखी । पद]

उठ-उठ माधव कि सुतसि मंद ; गहन लाग देख पुनिमक चंद .
हार रोमावलि जमुना गंग ; त्रिवलि तरंगिनि विप्र अनंग ।
सिंदुर तिलक तरनि समभास ; धूसर मुख-सखि नहि परगास ।
एहन समय पूजह पचवान ; होअओ उगरास देह रतिदान ।
पिक मधुकर पुर कहइते वूल ; अलपेओ अवसर दान अतूल ।
'विद्यापति' कवि एहो रस भान ; रायसिवसिंह सब रसकनिधान ॥

(सखो । पद)

माधव ! प्रथम नेहे से भीति ।
गये अपनहि सेअ विलोकिय करिय तैसनि रीति ।
अति भयाउनि आतर जउनि कइसे कए आउति पार ;
सुरत रस सुचेतन वाल भुतापति सबे असार ।
एत सुनि मने विमुख सुमुखी तोह मने नहिं लाज ;
कतए देखल मधु अपने जा मधुकर समाज ।

श्रीदेवजी

* छप्पै *

ह्वै आश्रय सद्काव्य सरस जस श्रीपति गाये ;
सर्व भाव गुण धारि सुकवि कृत रीति दृढ़ाये।
कारि निर्मित वहु ग्रंथ भर्यो साहित्य-नीरानिधि;
व्रजरस–रासिक सप्रेम लहे सानंद स्वाद-विधि।
श्रीदेव दत्त कवि भुवि प्रगट सदा अमर सद्काव्यकर ;
श्रीनिम्बार्क--पदपद्म पाय जग अपर अभिष्ट न आसधर।

महाकवि देवदत्त, इटावाके निवासी कान्यकुब्ज-ब्राह्मण थे, और पंसारीटोला वलालपुराके रहनेवाले थे। ये तरुणावस्थामें–ही गृह–जंजाल को परित्यागकर विरक्त-वैष्णव हो गये थे। स्वनिर्मित–ग्रंथ भावविलासमें इन्होंने अपना जन्म–काल संवत् १७३० लिखा है। ये १६ वर्षकी अवस्था में ही कविता करने लग गये थे; जैसा–कि उक्त ग्रंथसे पता चलता है— "सुभ सत्रहसौ छियालिस, चढ़त सोरहीं वर्ष; कढ़ी देव मुख देवता भावविलास सहर्ष।" इन्होंने सुखसागरतरंग-नामक ग्रंथ पिहानीके अकवरअलीखांको समर्पित किया था। उनका आदिम–काल संवत् १८२४ था; इसलिये इनकी आयु ८४ वर्षसे ऊपर होती है। एक दो लेखकोंने इन्हें श्रीहितहरिवंशजीका शिष्य लिखकर समय निरूपण करनेमें भारी भूल किये हैं, श्रीहितहरिवंशजीका जन्म संवत् १५५५ में हुआ था, यह जगत्--प्रसिद्ध है और इनका १७३० में।

इन्हें कइएक सुप्रसिद्ध लेखकोंने श्रीनिम्बार्क-संप्रदायानुयायी स्वीकार किये हैं। श्रीनिम्बार्क–सम्प्रदायकी उपासना और श्रीदेवके काव्यान्तर्गत प्रतिपादित उपासना–सिद्धान्तके मिलान करनेसे-भी प्रतीत होता है कि— ये इस सम्प्रदायके-ही अनुगामी थे। श्रीदेवजीके परमाराध्य इष्टदेव श्रीराधा-कृष्ण युगलकिशोरही हैं; इन्होंने वंदन करते समय उपास्यदेवको स्पष्ट उल्लेख किया है—"श्रीराधाकृष्णकिसोर जुग पद वंदौ जगवंद; मूरति

रति सिंगारकी शुद्धसच्चिदानंद । श्रीराधे ब्रजदेवि जय सुंदरनंदकिसोर ; दुरित हरौ चितके चितै नैसुकदै दृगकोर ।" इस सम्प्रदायमें यही इष्टदेव उहास्य-तत्त्व-रूपसे ग्रहीत हैं। वाणीकार आचार्य और समस्त रसिक महानुभावोंके वाणियोंमें दिव्य-रस श्रीराधाकृष्ण-विहारका-ही वर्णन है। श्रीमहावाणीकार श्रीहरिव्यासदेवाचार्यने वंदना की है—'श्रीराधाकृष्ण स्वरूपांवै कृष्णं राधास्वरूपिणम् ; कलात्मानं निकुंजस्थं गुरुरूपं सदा भजे ।" इत्यादि यह भगवान श्रीसनकादिककी निवृत्ति-सम्प्रदाय है, इसमें विरक्तों की ही प्रधानता है, और उपासनाके दोनों-ही भाव प्रसिद्ध हैं, सखी एवं दास्य, जिसप्रकार देवजीने निम्न दोहेमें प्रगट की है—'एक भक्ति गोपीन की प्रेम-भाव संसार ; दूजी भक्ति विरक्तजन दास्यत-भाव विचार ।' इनके द्वारा श्रीराधाकृष्ण-स्वरूप-तत्त्व-वर्णनभी आचार्यपादोंकी वाणियोंसे खूब मिलता है—

"स्यामस्वरूप घटा ज्यों अनूपम नील पटा तन राधेके भूमै ।
राधेके अंगके रँग रँग्यो पट बीजुरी ज्यों घनसों तन-भूमै ॥
हैं प्रतिमूरति दोऊ दुहूकी विधो प्रतिविम्ब वही घट दूमै ।
एकही देव दुदेह दुदेहरे देव दुधा एक देह दुहू मैं ॥"

श्रीजुगलसतक अन्तर्गत, ब्रजभाषामें आदिवाणीके रचियता श्रीश्रीभट्टजी स्वरूपतत्त्व वर्णन करते हुये एवं श्रीराधाकृष्णमें अभेद दिखाते हुये लिखते हैं—

'प्यारी तन स्याम स्यामा तन प्यारो ।
प्रतिबिंबित तन अरस परस दोउ एक पलक दिखियत नहिं न्यारो।
ज्यों दर्पनमें नयन-नयनमें नयन सहित दर्पन दिखवारो ।
श्रीभट जोटि की अति छवि ऊपर तन, मन, धन न्योछावर डारो ॥'

इसीप्रकार इनके शिष्य श्रीहरिव्यासदेवजीके पदोंमें भी स्पष्ट उल्लिखित है, जिनका कविता-काल चौदहवीं-सताब्दी है ।

'एक स्वरूप सदा द्वै नाम ।
आनँदके अहलादिनि स्यामा अहलादिनिके आनँद स्याम ।
सदा सर्वदा जुगल एक तन एक जुगल तन विलसत धाम ;
श्रीहरिप्रिया निरन्तर नितप्रति कामरूप अद्भुत अभिराम ।'

इन्होंने सर्व-प्रथम सोलह-वर्षकी अवस्था होनेपर-ही सं० १७४६ में भावविलास-ग्रंथ रचनाकर, औरँगजेबके बड़े पुत्र काव्य-प्रेमी आजमशाह को सुनाया। इसके पश्चात् अष्टयाम निर्माण की। ये दोनों ग्रंथ काव्य-जगत एवं शृंगार-रसमें अपूर्व हैं। देवजीको, भवानीदत्तवैश्य, कुशलसिंह, राजा उद्योतसिंह, भोगीलाल पिहानीवाले, अकबरअलीखाँ आदिने सादर अपने २ यहाँ कुछ-कुछ दिनतक आग्रहपूर्वक रखा। इनमेंसे भोगीलालसे प्रेम-सम्बन्ध विशेष था, इनके इच्छानुसार व्यवहार करनेवाले वही थे। इन्होंने, विरक्त होनेके पश्चात् भारतवर्षके समस्त प्रान्तोंमें भ्रमण किया। भ्रमणसे इन्हें अनुभवभी खूबही प्राप्त हुआ। इस अनुभवके-ही फल-स्वरूप, इन्होंने 'जातिविलास' और 'रसविलास'—नामक ग्रन्थकी रचना की। इनमें जातियों, देशों, और वधूओंका अच्छा वर्णन है। ये जिन-जिनके यहाँ रहे। उनके अनुकूल व्यवहारके अभावसे दुखित हुये और मनमें इन्हें अत्यन्त वैराग्य हुआ और संसारसे विरक्ति-सी हो गई, पुनः किसीके यहाँभी नहीं रहनेकी प्रतिज्ञा करली। इस अवस्थामें ये शान्त-रसमें ग्रंथ रचना करनेलगे, इसमें-भी इन्होंने खूबही ख्याति प्राप्त की। देवमाया प्रपंच नाटक, वैराग्यशतक, तत्वदर्सनपच्चीसी, जगद्दर्शनपच्चीसी, ब्रह्मदर्शनपच्चीसी नीतिशतक आदि शान्तरस-प्रधान ग्रंथ हैं। इस रसमें-भी इनकी रचना अति उत्कृष्ट हुई है। भिन्न २ मतसे इनके बनाये हुए ग्रंथ ७२ या ५२ माने जाते हैं। अबतक उनमें-से, इनके निम्नलिखित २८ ग्रन्थोंका पता प्राप्त हो सका है। १—भावविलास २—अष्टयाम ३—भवानीविलास ४—कुशल-विलास ५—जातिविलास ६—राधिकाविलास ७—पावसविलास ८—वृक्ष विलास ९—रसविलास (सं० १७८३) १०—प्रेमचन्द्रिका ११—शब्द-रसायन १२—सुंदरीसिन्दूर (संग्रह) १३—सुजानविनोद १४—प्रेमतरंग १५—रागरत्नाकर १६—देवचरित्र १७—काव्यरसायन १८—सुखसागरतरंग (संग्रह) १९—देवमाया प्रपंचनाटक २०—ब्रह्मदर्शनपच्चीसी २१—आत्म-दर्शनपच्चीसी २२—जगद्दर्शनपच्चीसी २३—नीतिशतक २४—नखशिख २५—रसानन्दलहरी २६—प्रेमदीपिका २७—सुमिलविनोद २८—शिवाष्टक ज्ञात हो चुके हैं।

इनकी कवितामें ओज, प्रसाद, माधुर्य, आचार्यता, भाषा-सौष्ठव

तथा भाव-गांभीर्य प्रधान गुण हैं। इनकी कविताको पूर्णभाव खोज निकालना अति कठिन है। उक्तियाँ भी अति अपूर्व हैं। स्वर्गीय श्रीवालदत्तजो मिश्र इनको सर्वश्रेष्ठ कवि मानते थे। सुखसागरतरंगकी भूमिकामें इन्होंने लिखा है—

"सूर सूर तुलसी सुधाकर नक्षत्र केशव शेष कविराजन को जुगुनू जनाय कै;
दोउ परिपूरन भगति दरसायो अब काव्य रीति मोसन सुनहुं मनलाय कै।
देव नभमंडल समान है कविन मध्य जामें भानु सितभानु तारागन आय कै;
उदय होत अथवत चारो ओर भ्रमत पै जाकी ओर छोर नहिं परत लखाय कै।"

देवजी ब्रजभाषा-साहित्यके उत्कृष्ट महाकवियोंमें-से हैं। इनके काव्य-गुणके विषयमें माननीय मिश्रबन्धु लिखते हैं-'देवजी की बहुज्ञता बहुत बढ़ी चढ़ी थी। इनकी रचनाके मुख्य गुणोंमें भाषासौंदर्य, उत्कृष्ट छन्दों का प्राचुर्य, प्राकृतिक दृश्यों का विवरण, वैभव, आचार्यत्व, ऊँचे खयाल, हृदय पर चोट करनेवाले उच्च प्रेमके कथन,उपमा, रूपकादिकादिका अच्छा अवलोकन, चोजोंका निकालना आदि कहे जा सकते हैं।" देवजीके छन्द गूढ़ोक्ति, अर्थ-गाँभीर्यके कारण दुर्बोध हैं; किन्तु शब्दों पर विचार-पूर्वक ख्याल देनेसे मनोहर अर्थ निकलते हैं। इनके छन्दों में शृंगारका बाहुल्य है कितनेही छन्द दिव्य श्रीराधाकृष्ण विहार-रस और प्राकृत नायक-नायिकाके लिये व्यवहरित हो सकते हैं। अर्थगाँभीर्य एवं शृंगार-रसाधिक्यके कारण ही इनके ग्रन्थों का अधिक प्रचार नहीं हैं। देवजी की कविता पंडित-प्रिय, सत्कविता का उदाहरण एवं प्राचीन साहित्य-संसारके उज्ज्वल रत्नोंमें-से हैं। इनके अभीतक छ-सात ग्रन्थ ही मुद्रित हो सके हैं। कुछ छन्द उद्धृत किये जाते हैं—

बटु ह्वै नटु ह्वै कै रिझावैं जिन्हैं हरि, देव कहैं बतियां तुतरी,
विधि ईस के सीस बसी बहु बारन कोरि कला रजसिन्धु तरी;
जगमोहनि राधे तू पाईं परों वृषभानके भौन अभै उतरी,
गुन बाँधे नचावति तीनिहुँलोक लिए कर ज्यों कर की पुतरी ॥१॥

तीर धरयो जु गहीर गुहा गिरि धीर धर्यो सु अधीर महा है,
पूँछती पीर भरे दृग नीर, त्यों एकै समीर करैं औ सराहैं;
छोर भिजै यक पोंछती चीर लै, राधे रहैं तिरछी करि छाहैं,
भेटती भीर अहीरन की बर बीरज की बलबीर की बाहैं ॥२॥

वार वड़े उमड़े सव जैवे को, हौं न तुम्हैं पठवों वलिहारी ,
मेरेतो जीवन देव यही धनु, या ब्रज पाई मैं भीख तिहारी ;
जानै न रीति अथाइन की, नित गाइन मैं वन भूमि निहारी ,
याहि कोऊ पहिचानै कहा, कछु जानै कहा मेरो कुञ्जविहारी ॥३॥

जादव वृद्ध जौ लेन पठाए ततौ धनु गोधनु लै सबु जैयै ,
या लरिकाहि कहा करिहै नृप गोप-समूह सवै संग ह्वैयै ;
तौ ही लौं जीवनु मो ब्रज, लौ लगि खेलतु साथ लिए वलभैये ,
सर्वसु कंसु हरौ न अभै किन आँखिनु ओट करौ न कन्हैयै ॥४॥

पायन नूपुर मंजु वजें, कटि किंकिनि मैं धुनि की मधुराई ;
साँवरे अंग लसै पटपीत, हिये हुलसै वनमाल सुहाई ;
माथे कीरीट, वड़े दृग चंचल, मंद हँसी मुखचंद जुन्हाई ,
जै जग-मंदिर दीपक सुन्दर श्रीवृज-दूलह देव-सहाई ॥ ५ ॥

राखी न कलप तीनों काल विकलप मेटि,कीनोंसंकलप,पैन दीनो जाचकनि जोखि
नाग,नर देव महिमा गनतनंदनजूकी, माँगतजु आयो,सो न आँगनते गयो रोखि
दए सव सुख, गएवंदी न विमुख देव-पितर अनंदी भए नंदीमुख-मख पोखि
घरनि-घरनि सुर-घरनि सराहैं सवै धरनि मैं धन्य नँदघरनि तिहारी कोखि॥६

वेदनहूं गने गुन गनै अनगने भेद, भेद विन जाको गुन निरगुनहू यहै ;
केतिक विरंच्यो महा सुखन को संच्यो जहाँ, वंच्यौ ब्रजभूप सोई परब्रह्मभूप है
सोई सुनिसुनि अवराधा अव राधा जस जानत न देव कोई कहा धौं अनूप है
तेज है कि तप है कि सील है कि सम्पति है राग है कि रंग है कि रस है किरूपहै

भूलिहूं कढ़ेजो कटुवोल,तौ कढ़ाऊँ जीभ,छार डारौं आंखिनकी आँसू झलकनिपै
कौन कहै कैसी सौति सो तौ ठकुरायनिलिखी है ब्रज-बालनके भाल पलकनिपै
ह्वै रहौं नजीकी पै न जीकी दुचिताई गहौं पीकी प्रानप्यारी लहौं नीकी ललकनिपै
दूजौ नहिंदेव, देवपूजौं राधिकाकेपद पलक न लाऊँ धार लाऊँ पलकनि पै ॥८

कुविजा कितेव दुविजा के रहे आप देव अंस अवतारी अव तारी जिन गनिका ;
आरति न राखत निवारत नरकहीते, तारत तिलोक चरनोदककी कनिका ।
उनके गुनानुवाद तुमसो सुने हैं ऊधो गोपिनको सूधो मत प्रेमकी जवनिका ;
कुंजन में टेरिहैं जू श्यामको सुमिरि नीके हाथ लै न फेरिहैं सुमिरिनीके मनिका

जाकेमद मार्यौसोउमार्योनाकहूंहै कोई बूड्यो उछल्योना तर्योसोभासिंधु सामुहै
पीवतही जाहि कोईमर्यो,सो अमरभयो वैरान्यौ जगतजान्यौ मान्यौ सुखधामुहै
चखचखक भरि चाखतहि जाहि फिरि चाख्यो ना पीयूष कछु ऐसो अभिरामु है;
दंपति सरूप ब्रज औतर्यौ अनूपसोई देवकियो देखि प्रेमरस प्रेम नामुहै ।।१०

एकै अभिलाष लाख-लाख भाँति लेखियत देखियत दूसरो न देव चराचर मैं;
जासों मनु राचै तासों तनुमनु राचै रुचि भरिके उघरि आँचै साँचेकरि करमैं
पाँचनके आगे आँचलागे तेन लौटिजाय साँच देइ प्यारेकी सती लौ वैठि सरमैं
प्रेमसो कहत कोई ठाकुर न ऐंठौ सुनि वैठौ गड़ि गहिरे तौ पैठौ प्रेम-घर मैं

पीर सही घरही में रही कवि देव कियो नहिं दूतिन को दुख,
काहु की बात कही न सुनी मनु मारि विसारि दियो सिगरो सुख;
भीर मैं भूलि कहूँ सखि मैं जबते ब्रजराज कि ओर कियो रुख,
मोहिं भटू तबते निसि-दौस चितौत ही जात चबाइन के मुख ॥१२॥

देव मैं सीस बसायौ सनेह कै भाल मृगम्मद-बिन्दु के भाख्यो,
कंचुकी मैं चुपर्यो करि चोवा लगाय लियो उरसों अभिलाख्यो;
लै मखतूल गुहे गहने रस मूरतिवंत सिंगार कै चाख्यो,
साँवरे लाल को साँवरों रूप मैं नैननि को कजरा करि राख्यो ॥१३॥

देखे न परत देव देखिवे की परी वानि देखि-देखि दूनी दिख-साध उपजति है
सरद उदित इन्दु बिंदु-सो लगत लखे मुदित मुखारविन्दु इन्दिरा लजति है।
अद्भुत ऊख-सी पियूष-सी मधुरवानि सुनि--सुनि स्रवनन भूख--सी भजतिहै
मंत्री कह्यो मैन परतंत्री कह्यो वैनन को विना तार तंत्रीजीभ जंत्री-सी वजतिहै॥

कोऊ कहौ कुलटा कुलीन-अकुलीन कहौ कोऊ कहौ रंकिनि कलंकिनि कुनारीहौं
कैसो परलोक नरलोक वर लोकनमें लीन्हीं मैं अलीक लोक-लीकन तेन्यारी हौं
तन जाहि, मनजाहि देव गुरुजन जाहि जीव किन जाहि टेक टरति न टारी हौं;
वृन्दावनवारी वनवारी की मुकुटवारी पीतपटवारी वहि मूरति पै वारी हौं ।।१५

काहू कि कोई कहावति हौं नहिं जाति न पाँति न जाते खसौंगी,
मेरिये हास करौ किन लोग हौं को कवि देवजू काहि हसौंगी,
गोकुलचन्द की चेरी चकोरी ह्वै मंद हँसी मृदु-फंद फँसौंगी,
मेरी न वात वकौ वलि कोई हौं बावरी ह्वै ब्रज-वीच वसौंगी ॥१६॥

श्याम स्वरूप घटाज्यों अनूपम नील-पटा तन राधेके झूमै ;
राधे के अंग के रँग रँग्यो पट वीजुरी ज्यों घन सो तन-भूमै ;
हैं प्रतिमूरति दोऊ दुहू की विधो प्रतिबिंब वही घट दूमै,
एकहि देव दुदेह दुदेहरे देव दुधा यक देह दुहू मै ॥ १७ ॥

जागत-जागत खीन भई अब लागत संग सखीन की भारो,
खेलिवोऊ हँसिवोऊ कहा सुख सों बसिवो विसेबीस बिसारो ;
तो सुधि दौस गँवावति देवजू जामिनि जाम मनौ जुगचारो,
नीरज-नैन निहारिये नैनन धीरज राखत ध्यान तिहारो ॥ १८ ॥

पहिले सतराय रिसाय सखी जदुरायपै पाय गहाइए तौ,
फिरि भेटि तहाँ भरि अङ्क निसंक वड़े खिन लौं उर लाइए तौ ;
अपनो दुख औरन को उपहास सबै कवि देव बताइए तौ,
घनश्यामहिं नेकहुँ एक घरी को इहाँ लगि जोकरि पाइएतो ॥१९॥

लाल बुलाईहौ को हैं वे लाल न जानती हौ तौ सुखी रहिबो करि,
री सुख काहे को देखे बिना दिख साधन ही जियरा न परो जरि ;
देव तौ जानि अजान क्यों होति यही सुनि आँसुन नैन लए भरि,
साँचे बुलाई बुलावन आई हहा कहि मोहिं कहा करिहैं हरि ॥ २० ॥

जिन जान्यो वेद तेतौ वादकै विदित होंहिं जिन जान्योलोक तेऊ लीकपै लरिमरौ
जिन जान्यो तपु तीनों तापनसों तपौ जिन पंचागिनि साध्यो ते समाधिनपरिमरौ
जिनजान्यौ जोग तेऊ जोगी जुगजुग जियौ जिनजान्यौ जोति तेऊ जोतिजैजरिमरौ
हौंतौ देव नन्दकेकुमार तेरी चेरी भई मेरो उपहास क्योंन कोटिन करिमरौ ॥ २१

वैठी सीस-मंदिरमें सुन्दरि सवारहीकी मूंदिके केवार देव छबिसों छकतिहै,
पीत-पट लकुट मुकुट बनमाल धरि भेष करि पी को प्रतिबिंब में तकति है।
होति न निसंक उर अंक भरि भेटिवे को भुजन पसारति समेटति जकति है ;
चौकति चकति उचकति चितवति चहूँ झूमि झलचाति मुख चूमि न सकति है

प्रेम-गुन बाँधि चित चंग सो चढ़ायो उन सुनि सुनि बंसी धुनि चंग मुहचंग को
मधुर मृदंग सुर उरझि उतंग भई रंग परवीन ऐसी बाजनि अभंग को।
बधिक विहंग बधू व्याध ज्यौं कुरंग नारि हनी है कुरंगनैनो पारधी अनंग की
सङ्ग-सङ्ग डालत सखीन के उमङ्ग भरी अंग-अंग उठै री तरंग स्याम-रंग की ॥

ना खिन टरत टारे, आँखि न लगत पल आँखिन लगेरी स्यामसुंदर सलोनसे,
देखि देखि गातन अघात न अनूप रस भरि–भरि रूप लेत आनँद अचौनसे।
एरी कहि कोही हौं कहाँ हौं कहा कहति हौं कैसे बन-कुंज देव देखियत भौनसे
राधेहौ सदन वैठी कहतीहौ कान्ह कान्ह हा हा कछु कान्ह वे कहाँहैं कोहैं कौनसे

कान्हमई बृषभानु–सुता भई प्रीति नई उनई जिय जैसी,
जानै को देव विकानी-सी डोलै लगै गुरुलोगन देखे अनैसी;
ज्यौं-ज्यौं सखी वहरावति वातन त्यौं–त्यौं वकै वह बावरी-ऐसी,
राधिका प्यारी हमारी सौं तू कहि कालिह की बेनु वजाई मैं कैसी ॥५२

उठी अकुलाय सुनी जव नेक कला परवीन लला ब्रजराज,
विसारि दई कवि देव तुम्हें अवलोकतही अब लोक की लाज;
इते पर और चबाव चल्यौ बरजैं घर जे गुरुलोग समाज,
कहाँ लगि लाल कछु कहिए इतनी सहिए सव रावरे काज ॥२६॥

जागतहू सपने न तजौं अपनेई अयानपने को अँध्यारो,
क्योंहूँ छिपात छिनौ न दिनौ–निसि देह दिपै दुति देव उज्यारो;
नैननते निचुरयो परै नेह रुखाईके वैनन को न पत्यारो,
दूरि रह्यो कित जीवनमूरि जु पूरि रह्यो प्रतिविंव ज्यों प्यारो ॥२७॥

अरि के वह आज अकेले गई खरि कै हरि के गुन रूप लुही,
उनहूँ अपनो पहिराय हरा मुसक्याय कै गाय के गाय दुही;
कवि देव कहौ किन कोई कछू तव ते उनके अनुराग छुही,
सव ही सों यहै कहै वाल–वधू यह देखुरी माल गुपाल गुही ॥२८॥

चित दै चितऊँ जित ओर सखी तित नंदकिसोर कि ओर ठई,
दसहू दिसि दूसरो देखति ना छवि मोहन की छिति माहँ छई;
कवि देव कहाँलौ कछू कहिए, प्रतिमूरति हौं उनहीं की भई,
ब्रजवासिन को ब्रज जानि परै न भयो ब्रज री ब्रजराजमई ॥२९॥

श्रीरसिकगोविन्द

—: छप्पै :—

अलंकार आचार्यराज रस सरिता सागर ;
वरन्यो विविध प्रकार भेदमय लीला नागर ।
श्रीनिम्बार्क पद पाय गुरू सर्वेश्वर शरनै ;
जिनकी भक्तिप्रताप तेज कवि असको वरनै ।
अन्य सुकवि रसरीति भेद लघु दीर्घ सुग्रंथ अपूर्ण की ;
रसिक ! रसिकगोविन्दजी सुगुण निरूपण पूर्ण की ॥

हमने श्रीगोविंददेवका चरित्र जो अन्यत्र इसी ग्रंथ पृष्ट १६६ में प्रकाशित है, उसमें भूलसे लिखदिया है कि—"गोविन्ददेवजीका-ही उपनाम रसिकगोविंद था, वह ठीक नहीं। वहां ऊपर श्रीराधाचरणगोस्वामीका छप्पै दिया है किन्तु रसिकगोविंदजीके समयसे मेल नहीं खाता। उस परिचयमें श्रीगोविंद-देवका कविता-काल सं० १६७० के लगभग लिखा है वह-भी अशुद्ध है। गोविंददेवजीका गोलोकवास सं० १८१४ में हुआ था यह उनके चरणपादुकापर सलेमाबादमें लिखा है। रसिकगोविंदजी परशुरामपुरी (सलेमाबाद) गद्दीके आचार्य श्रीसर्वेश्वरसरनदेवजीके शिष्य थे; जो उसगद्दीके ७ वीं पीढ़ीमें हुये थे। इनका प्रमाणिक परिचय हिन्दी साहित्यका इतिहास-लेखक श्रीराम-चन्द्रजी शुक्ल ने इस प्रकार लिखा है—

"ये निम्बार्क संप्रदायके आचार्य श्रीहरिव्यासदेवकी गद्दीके शिष्य थे और वृन्दावनमें रहते थे। श्रीहरिव्यासदेवजीकी शिष्यपरम्परामें सर्वेश्वर-शरणदेवजी बड़े भारी भक्त हुए हैं। रसिकगोविन्दजी उन्हींके शिष्य थे। ये जयपुर (राजपूताना) के रहनेवाले और नाटाणी जातिके थे। इनके पिता का नाम शालिग्राम, माताका नाम गुमाना, चाचाका मोतीराम और बड़े भाईका बालमकुंद था। इनका कविताकाल संवत् १८५० से १८९० तक अर्थात् विक्रमकी उन्नीसवीं सताब्दीके मध्यसे लेकर अंत तक स्थिर होता है।

अबतक इनके ९ ग्रन्थोंका पता चला है, सम्भवतः और भी होंगे। नौ ग्रन्थ ये हैं—

(१) रामायणसूचनिका—३३ दोहोंमें अक्षरक्रमसे रामायणकी कथा संक्षेपमें कही गई है। यह संवत् १८४८ के पहलेकी रचना है। इसके ढंगका पता इन दोहोंसे लग सकता है-"चकित भूप बानी सुनत गुरुवसिष्ठ समुझाय दिए पुत्र तब, ताड़का मगमें मारी जाय छाँड़त सर मारीच उड़्यो, पुनि प्रभु हत्यो सुबाहु मुनि मख पूरन, सुमन सुर बरषत अधिक उछाह।"

(२) रसिकगोविदानंदघन—यह सात-आठ-सौ पृष्ठोंका बड़ाभारी रीति-ग्रन्थ है, जिसमें रस, नायक-नायिका भेद, अलंकार, गुण दोष आदिका विस्तृत वर्णन है। इसे इनका प्रधान ग्रंथ समझना चाहिए। इसका निर्माण काल वसन्तपंचमी संवत् १८५८ है। यह चार प्रबन्धोंमें विभक्त है। इसमें बड़ी भारी विशेषता यह है कि लक्षण गद्यमें हैं। और रसों अलंकारों आदिके स्वरूप गद्यमें समझानेका प्रयत्न किया गया है। संस्कृतके बड़े-बड़े आचार्य्यों के मतोंका उल्लेखभी स्थान-स्थान पर है। जैसे रसका निरूपण इसप्रकार है—

"अन्य-ज्ञानरहित जो आनन्द सो रस। प्रश्न-अन्य-ज्ञानरहित आनन्द तो निद्राहू है। उत्तर-निद्रा जड़ है यह चेतन। भरत आचार्य्य सूत्र-कर्ताको मत विभाव, अनुभाव, संचारी-भावके जोग ते रसकी सिद्धि। अथ काव्यप्रकाशको मत कारण कारज सहायक हैं जे लोकमें इनहीको नाट्यमें, काव्यमें, विभाव संज्ञा है। अथ टीकाकर्ताको मत तथा साहित्यदर्पणको मत सत्त्व, विशुद्ध, अखंड, स्वप्रकाश, आनंद, चित्, अन्यज्ञान रहित संग, ब्रह्म-स्वाद, सहोदर रस।"

इसके आगे अभिनवगुप्ताचार्य्यका मत कुछ विस्तारसे दिया है। सारांश यह कि यह ग्रन्थ आचार्य्यत्वकी दृष्टिसे लिखा गया है और इसमें संदेह नहीं कि और ग्रन्थोंकी अपेक्षा इसमें विवेचनभी अधिक है और छूटी हुई बातोंका समावेश भी। दोषोंका वर्णन, जो हिन्दीके लक्षण-ग्रन्थोंमें बहुत कम पाया जाता है, इन्होंने काव्यप्रकाशके अनुसार विस्तारसे किया है। रसों, अलंकारों आदिके उदाहरण कुछतो अपने हैं, पर बहुतसे दूसरे कवियों के। उदाहरणोंके चूननेमें इन्होंने बड़ी सहृदयताका परिचय दिया है। संस्कृतके उदाहरणोंके अनुवाद बहुत सुंदर करके रखे हैं। साहित्यदर्पणके मुग्धाके उदा-

हरण (दत्ते सालसमंथरं......इत्यादि) को देखिये हिन्दीमें ये किस सुंदरतासे लाए हैं—

आलससो मंद-मंद धरापै धरति पाय, भीतरते बाहिर न आवै चित चाय कै
रोकति हगनि छिन-छिन प्रति लाज साज, बहुत हँसीकी दीनी बानि बिसराय कै
बोलति बचन मृदु मधुर बनाय, उर अंतरके भावकी गंभीरता जनाय कै
बात सखी सुंदर गोबिंदकी कहात तिन्हैं, सुंदरि बिलोकै बंक भृकुटी नचाय कै

(३) लछिमन चंद्रिका—'रसिकगोविंदानंदघन' में आये लक्षणोंका संक्षिप्त संग्रह जो संवत् १८८६ में लछिमन कान्यकुब्जके अनुरोधसे कविने किया था।

(४) अष्टदेशभाषा-इसमें ब्रज, खड़ीबोली, पंजाबी, पूरबी आदि आठ बोलियोंमें राधाकृष्णकी शृंगार लीला कही गई है।

(५) पिंगल।

(६) समयप्रबंध-राधाकृष्णकी ऋतुचर्य्या ८५ पद्योंमें वर्णित है।

(७) कलिजुगरासो-इसमें सोलह कवित्तोंमें कलिकालकी बुराइयों का वर्णन है। प्रत्येक कवित्तके अन्तमें "कीजिए सहायजू कृपाल श्रीगोविंदराय, कठिन कराल कलिकाल चलि आयो है।" यह पद आता है। निर्माणकाल संवत् १८६५ है।

(८) रसिकगोविंद-चंद्रलोक या भाषाभूषणके ढंगकी अलंकारकी एक छोटी पुस्तक जिसमें लक्षण और उदाहरण एकही दोहेमें हैं। रचनाकाल सं० १८९० है।

(९) युगलरसमाधुरी-रोला-छंदमें राधाकृष्ण-विहार और वृन्दावन का बहुतही सरस और मधुर-भाषामें वर्णन है जिससे इनकी सहृदयता और निपुणता टपकती है।"

इनके द्वारा विरचित युगलरसमाधुरी अन्यत्र इसी ग्रंथ पृष्ट १६६-६७ में श्रीगोविंददेवजीके चरित्रमें प्रकाशित है वह इन्हींका बनाया है गोविंददेवजीका नहीं। यहां गोविंददेवजी द्वारा निर्मित जयति-चतुर्दश-नामक ग्रन्थमें-से कुछ पद उद्धृत करते हैं—

[श्रीराधारमण-जयति]

जयति राधारमन सुखभवन दुखदमन अगम ऐश्वर्य सकलेश स्वामी;
जयति ब्रजराज सुत महाअद्भुतगते जयति परब्रह्म सब अंतर्यजामी।

जयति अघमार जय वकीसंहार जय कंसमलदलन भुवभार-हारी ;
जय यशोदासुवन सच्चिदानंदघन गोप गोपेश नगराजधारी ।
जयति सुरराज-मद-दूर वंशीधर जयति गोविन्द आनंदकन्दं ;
जयति जय मोहिताजं महाराजराजं सकलगुन-निकर जक्तवंदं ।
जयति घनस्याम अभिराम छविधाम मोहित अमित काम जय महोदारं ;
जयति पटपीतधर मुकुटधर मालधर जयति कटि किंकिणी कटकधारं ।
जयति केयूरधर मुद्रिकाकस्यलव जयति जय मकर कुंडलधरन जय ;
जयति मोतीवरन दिब्य-धोतीधरन हरन-मन-भक्त-नूपुर-चरन जय ।
जयति ब्रजपति-सदन-दीप जय मदन--मन-चोर कैसोर वलजोर-वीरं ;
जयति रसिकेश शिव, शेष-पूजित चरन जयति जय कोटि-सागर गंभीरं ।
जयति जय रास सुविलास वृन्दाविपिन करन जय जयति गोवच्छ चारी ;
जयति अप्रमेय जय जयति परतैं परे सब गुणातीत नवनित विहारी ।
जयति वृषभानु, कीरति-सदन सदा प्रिय जयति व्रज ईश दगजोति रूपं ;
जय जशोदा-नयन-पूतरी जयति जय जयति कंदर्प अगमित अनूपं ।
जयति श्रीराधिकाप्राणनाथ प्रभो जयति जय राधिका मनोहारी ;
जयति जय राधिका संग सब दिन जयति जयति जय राधिका सुखसंचारी ।
जयति जय श्रीराधिका-केलि-लंपट जयति राधिकानाथ जय सुखनिधानं ;
जयति राधाधवं जय सघन जन भवं भक्तजन-अघ-दवं अति सुजानं ।
जयति मोहनमहल-बासि सुखरासि अविनासि जनक्यासि हरप्रेम भींजै ;
प्रनम 'गोविंद' सुर मोर उर सर्वदा प्रानप्यारी सहित वास कीजै ॥ ६ ॥

[श्रीगुरु-परंपरा-जयति]

जयति हंस सनकादि नारद मुनि निंब-आदित्य जय श्रीनिवासं ;
जयति श्रीविश्व पुरुषोत्तम विलासजू जयति आचार्यवर स्वप्रकाशं ।
जयति श्रीमाधवं जयति बलभद्र जय पद्म आचार्यवर श्यामनामं ;
जयति गोपाल जय कृपाचारज जयति देवआचार्य जनपूर कामं ।
जयति सुंदर जयति पद्मनाभ प्रभो जयति उपइन्द्रभट भक्तपालं ;
जयति भट रामचंद्र भट वामन जु जय जयति श्रीकृष्ण भट अतिदयालं
जयति जय भट्ट पद्माकरं जयति श्रीश्रवण भूरी जु भट कृपासद्म ;
जयति भट माधवं स्यामभटजू जयति दिए भगतन जुगल पादपद्म ।
जयति गोपाल वलभद्रभट जयति जय गोपीनाथं जयति प्रेमसिंधो ;

जयति भटकेशवं भट्टगंगल जयति सर्वदिगजीत अविरोध-वंधो ।
जयति कश्मिरिकेशव सुभट जक्तगुरु जीति सब भुव भक्ति प्रचुर कीनी;
कृष्णचैतन्य नित्यानंदादिक त्रिगुण बहु शिष्य करि अमित हरिमूर्ति दीनी

जयति श्रीभट्ट रसिकेश महाप्रेमघन पापनासन प्रगट जास नामों ;
तास पदपद्म रज कृपालवलेशते अमित जन पाइयो युगल धामों ।
जयति हरिव्यास देव्यादि सुरनर सकल दास करि परमपद सबनिदीनो
जयति श्रीपरशुराम प्रभो सकलगुरु जीव बहुतकन को हित सु कीनो ।
जयति हरिवंशदेवेश दिगजित विभो संत आचरन सबहिन सिखायो ;
जयति सुरराज नरराज नारायनं तास जस अमल सब जक्त छायो ;
जयति वनराज श्रीजुसकल शिष्ट गुरु हंसकुलकमल दिनपति स्वरूपं ।
भणित 'गोविंद' सुर चतुर जुग माहिं ये सकल जग जुरु सदा भक्तभूपं

[श्रीराधिकास्वामिनी–जयति]

जयति श्रीराधिका कृष्णसुखसाधिका भक्तदुखबाधिका महाभामा ;
जयति पियमोहिनी सकलअँगसोहिनी कृष्णछविजोहिनी प्रियास्यामा ।
जयति नवनागरी रूपगुनआगरी कृष्णसुखसागरी महोदारा ;
जयति श्रीस्वामिनी महाअभिरामिनी देहदुतिदामिनी छविअपारा ।
जयति आल्हादिनी प्रानप्रियावादिनी प्रेमउत्पादिनी कृष्णमित्रा ;
जयति पियबसकरी भरीरतिरंगरस सहचरी अमितरानी विचित्रा ।
जयति नवनायिका कृष्णरसदायिका प्रानपियगायिका अतिनवीना ;
जयति नवभामिनी महाकलकामिनी ब्रजेश्वरिनामिनी पियअधीना ।
जयति अतिअद्भुता सदापियसंयुता सर्वसुरनरनुता महादेव्या ;
जय रसीलीश्वरी जय छवीलीश्वरी जय रँगीलीश्वरी सर्वसेव्या ।
जयति श्रुतिसंस्तुता जयति कीरतिसुता कृष्णनितहीस्तुता महारम्या ;
कृष्णसहचारिनी कृष्णप्रियकारिनी कृष्णमनहारिनी प्रेमगम्या ।
जयति मृदुहासिनी मानितविलासिनी केलिपरकाशिनी कृष्णसंगी ;
जयति ललनावरा जय परातेपरा धरापियहिय नवरंगरंगी ।
जयति वृषभानुनंदिनी जगवन्दिनी कृष्णहियचन्दिनी रंगसेवी ;
प्रनत 'गोविंद' नंदनंद सुखकन्द सर्वेश निजदास हरिप्रिया देवी ॥

श्रीआनंदघनजी

* छप्पै *

दिल्लीस्वर नृप निमित एक धुरपद नहिं गायो ;
मैं निज प्यारी कहे सभा को रीझि रिझायो ।
कुपित होय नृप दिय निकासि वृन्दावन आए ;
परम सुजान सुजान छाप पद कवित बनाए ।
नादिरशाही व्रजरज मिले किए न नेक उच्चाट मन ;
हरिभक्ति वेलि सींचन करी घन आनन्द आनन्दघन ।

—श्रीवियोगीहरि

रस-प्रेम-मूर्ति आनंदघनजीका जन्म सं० १७८६ के लगभग हुआ था और संवत् १७९६ में नादिरशाही-कत्लमें मारे गये । घनानंद और आनंदघन दोनोंही इनके नाम हैं किन्तु कवितामें ये विशेषतः आनंदघनही लिखते थे। ये कायस्थ कुलोत्पन्न थे और दिल्लीके बादशाह मुहम्मदशाहके प्रधान मीरमुन्शी थे । इनके विषयमें एक आख्यायिका प्रसिद्ध है जिससे प्रथम इनके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न होने और समस्त वैभव परित्यागकर व्रजवास करनेका पता चलता है । कहते हैं, एक सुजान-नामक वेश्यापर इनका अत्यंत स्नेह था, अहर्निश उसके आज्ञानुसार कार्य करनेमें तत्पर रहते थे। किसी दिन इर्ष्यावस किसी व्यक्तिने इन्हें अपमानित करवानेके लिये युक्ति सोचकर बादशाहसे चुगली की कि मुन्शीसाहब गाना बहुत अच्छा जानते हैं। इन्हें गानेके लिये बादशाहका हुक्म हुआ किन्तु इन्होंने टालमटोल करते हुए इन्कार करदिया । तब कुचक्रियोंको अच्छा मौका मिला और वे कहे कि हुजूर की आज्ञासे नही गाएँगे यदि सुजान कहे तो गा सकते हैं । बादशाहका ऐसा ही हुक्म हुआ सुजानकी आज्ञा पाकर इन्होंने बादशाहके तरफ पीठ और उसके तरफ मुख करके गाने लगे । उस गानेमें ऐसी समा बाँधी कि समस्त दरबार इनपर अति प्रसन्न हुआ । बादशाहभी बहुतही खुसी हुए किन्तु अपने तरफ़ पीठ करनेकी वेदवी पर साथही क्रोधित भी । ये दिल्लीसे निकाल दिये गए चलते समय सुजानसेभी साथ चलनेके लिये कहा पर उसने इन्कार

करदिया। उसी समय इनके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न होगया और वृन्दाबन-वास के लिये निश्चयकर प्रस्थान होगए। बृन्दावनमें श्रीनिम्बार्कसंप्रदायमें दीक्षित होकर भजन करने लगे। मिश्रबंधुविनोदकार इस प्रसंगको अत्युक्ति समझते हैं, वे लिखते हैं—"घनआनन्दको लोग वैसिक समझते हैं। यह विचार इनकी स्फुट-विचार देखनेसे उठता है परन्तु जान पड़ता है कि उमर ढलने पर इनके चित्तमें ग्लानि होकर हृदयमें निर्वेद उत्पन्न हुआ, जिससे यह श्रीवृन्दावनधाम जाकर निम्बार्क संप्रदायमें दीक्षित होकर ब्रजवास करने लगे। यह भाव इनकी इस रचनासे दृढ़ होता है—

गुरनि बतायो राधामोहनहू गाए सदा सुखद सुहायो वृन्दावन गाढ़े गहिरे;
अद्भुत अभूत महिमंडन परेते परे जीवनको लाहु हा हा क्यों न ताहि लहिरे।
आनँदको घन छायो रहत निरंतरही सरस सुदेससों पपीहा पन वहिरे;
जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी पावन-पुलिनपै पतित परि रहिरे ॥१
उधौ विधि दुरित भई है भागकीरति लही रति जसोदा सुत पावन परसकी;
गुलमलता ह्वै सीस धरचो चाहैं धूरि जाकी कहिए कहा निकाई महिमा सरसकी
झूम्योई रहत सदा आनँदको घन जहाँ चातकी भई है मति माधुरी वरसकी;
आँखिन लगीहै प्रीति पूरन पगी है अति आरति जगी है ब्रजभूमिके दरसकी ॥"

इन कवित्तोंसे इनको ब्रजभूमि, वृन्दावनके प्रति क्याही सुदृढ़ लग्न झलकती है। संवत् १७९६ में नादिरशाहकी फौज दिल्लीमें कत्ल करके मथुरा पहुंची वहांभी भारी मारकाट एवं लूटपाट हुई। इसी अवसरपर किसी वद-मासने सियाहियोंसे कह दिया कि बृन्दावनमें बादशाहके मीरमुंशी रहते हैं उनके पास बहुत धन है, वह साधुका भेष बनाए रहता है उसे लूटो। सिपाहियोंने वहां जाकर इन्हें घेर लिया और कहा—'जर जर जर अर्थात् धन धन धन दो'। इन्होने तीन मुट्ठी ब्रजरज उठाकर फेंक दी कि यहाँ धन कहाँ मेरा तो यह रज ही धन है। दिल्लगी समझकर क्रूर विधर्मियोंने इनका एक हाथ काट डाला किन्तु कुछ न पाकर चल दिए। यहाँ रीवाँनरेश महाराज रघुराजसिंहजीने इनकी एक आत्मशक्ति पूर्ण एवं नासवान शरीरसे वैराग्यजनक प्रसंग लिखा है—'कि जब सिपाहियोंने तलवार मारी तो उलटे टकरायकर उनपर ही जा पड़ा इनका कुछ भी नहीं हुआ, तब इन्होंने इस शरीरांतके लिये अच्छा अवसर देखकर ठाकुरजीसे प्रार्थना की कि इसे विशेष दिन रखनेकी आवश्यकता नहीं! और सिपाहियोंसे पुनः मारने को कहा, उन्होंने दुबारा मारकर एक हाथ काट

डाला। इन्होंने मरते समय अपने खूनसे तकियापर एक कवित्त लिख दिया था, वह यह है—

बहुत दिनानि की अवधि आसपास परे खरे अरवरनि भरेहि उठिजान को
कहि कहि आवत छबीले मनभावन को,गहि गहि राखतिही दै दै सनमान को
झूठी बतियानिकी पत्यानीते उदासह्वै के अब ना घिरत घनआनँद निदान को;
अधर लगे हैं आनि करिके पयान प्राण चाहत चलन ए संदेशो लै सुजान को।

वैष्णव-भक्त एवं रसिक-कवियोने जो रचनायें की हैं, वास्तविकमें उनकी कविता नहीं हैं, वे हैं अपने उपास्यदेवके नाम,रूप,लीला, धामका पद्यों द्वारा विकास, अथवा प्रेमके उत्कर्षताके चरमावस्थाका राग-रागिनी अथवा विविध छन्दोंमें अंकित। १६वीं १७वीं सताब्दीमें इन भक्ति-काव्य-रचियताओं की काव्य-धारा इतनी जोरसे प्रवाहित हुई कि, अधिकांश कवि-समाज उसीमें गोता लगाने लगा। इन्हींमें रचना-शैलीका एक क्रम रीति-युक्त प्रबंध काव्यके सीमित अवस्थामें भी थी, वे हैं नायक-नायिका-भेद, रस, भाव एवं अलंकार लक्षण-युक्त रचनायें। भक्त-कवियोंने विशेषतः इस बंधनमें अपनी रचनाएँ नहीं की, इन्होंने भक्ति एवं शृङ्गारकी रचना हृदयके आल्हाद, प्रेमकी कसक में की है। हिन्दी-साहित्यका-इतिहासकारने ऐसे रसिक, प्रेमी पद्य रचयिताओंमें घनानन्दको सर्व-श्रेष्ठ माने हैं। इतिहासकार श्रीरामचन्द्रशुक्लजीने घनानन्दजीका काव्यालोचन करते हुए लिखा है—"इनकी-सी विशुद्ध और सरस ब्रजभाषा लिखनेमें और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। विशुद्ध ब्रजभाषा इनकी और रसखानकी ही है। सूर और बिहारीकी भाषामें भी पूरबी शब्द और प्रयोग मिलते हैं। विशुद्धताके साथ प्रौढ़ता और माधुर्यभी अपूर्वही है। विप्रलम्भ शृङ्गारही इन्होंने अधिकतर लिया है। ये वियोग-शृङ्गारके प्रधान मुक्तक-कवि हैं "प्रेमकी पीर" ही लेकर इनकी वाणीका प्रादुर्भाव हुआ। इनके भावोंमें स्वाभाविक कोमलता और मृदुलता है उद्वेग और भड़क नही। इनका विरह प्रशांत समीरके रूपमें है; अंधड़ और तूफानके रूपमें नहीं। यही इनकी विरह-वेदनाकी विशेषता है, यही इनके गूढ़ और गंभीर प्रेमका लक्षण है। सच्चे गंभीर भावुक होनेके कारण इन्होंने बिहारी आदिके समान विरह-तापकी अत्युक्तिका खेलवाड़ कहीं नही किया है। प्रेम-मार्गका ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबाँदानीका ऐसा दावा रखनेवाला ब्रजभाषा

का दूसरा कवि नहीं हुआ। अतः अपने संबंधमें इनकी निम्नलिखित उक्ति गर्वोक्ति नहीं, साधारण सूचनामात्र है।

नेही महा व्रजभाषा प्रवीन औ सुंदरताईके भेदको जानै ;
आगे वियोगकी रीतिमें कोबिद भावना, भेद स्वरूपको ठानै ।
चाहके रंगमें भींज्यो हियो बिछुरे मिलै प्रीतम शांति न मानै ;
भाषा प्रवीन सुछंद सदा रहैं सो घनजूके कवित्त बखानै ।

इतिहासकारके कथनानुसार सवैयें छंदोंमें इन्होंने जैसी अपनी हृदयकी अल्हादमय प्रेमकी कसक दिखलाईहै, वैसी अन्यत्र प्राप्त होना असंभव है। वियोग श्रृङ्गार भी इनका अपने ढंगका एकही है। ऐसा विरही कवि दूसरा नहीं दिखाई पड़ता। जिनके हृदयमें अल्प भी रस और प्रेमका संचार है, वे इनकी कविताके मर्मको समझ सकते हैं। इनके सवैये—कवित्तोंमें स्थान-स्थानपर 'सुजान' का संवोधन है—जो कृष्ण भगवान्के लिये आया है और श्रृंगारमें नायकके लिये।

इनके द्वारा निर्मित निम्न ग्रंथोंका पता लगता है—१–सुजानसागर, २–विरहलीला, ३-कोकसार, ४–रसकेलिवल्ली और ५-कृपाकांड। सुजानसागर ४८३ छंदोंका एक संग्रह है। यह बाबू जगन्नाथदासजी रत्नाकर-द्वारा अमरसिंहके हरिप्रकाश-प्रेससे प्रकाशित हुआ था। इनकी विरहलीला सं० १९६५ में श्रीकाशीप्रसादजी जायसवाल-द्वारा संपादित होकर काशीनागरी-प्रचारिणी-सभासे प्रकाशित हुई थी। श्रीराधाकृष्ण-भक्ति-संबंधी एक वृहद्वाणी छतरपुरके राज-पुस्तकालयमें है—जिसमें ६ प्रियाप्रसाद, ७-व्रजव्यवहार, ८-वियोगवेली, ९-कृपाकंदनिवंध १०–गिरिगाथा, ११–भावनाप्रकाश, १२–गोकुलविनोद, १३–धामचमत्कार, १४–कृष्णकौमुदी, १५–नाममाधुरी, १६-वृन्दावनमुद्रा, १७–प्रेमपत्रिका, १८ रसवंत इत्यादि संग्रहीत हैं। सुजानसागरमें-से कुछ कवित्त, सवैये उद्धृत किये जाते हैं—

[कवित्त-सवैये]

प्रेम सदा अति ऊँची लहै सु कहै इहि भाँति की बात छकी ;
सुनिकैं सबके मन लालच दौरै पै बौरे लखैं सब बुद्धि चकी ।
जगकी कविताईके धोखें रहैं ह्याँ प्रवीननिकी मति जाति जकी ;
समुझै कविता घनआनँदकी हिय आँखिन नेह की पीर तकी ।

लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाय भरी, लसति ललित लोल चख तिरछानि में; छबि को सदन गोरो वदन रुचिर भाल, रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि में। दसन दमक फैलि हियें मोती माल होत, पिय सों लड़कि प्रेमपगी बतरानि में; आनँद की निधि जगमगति छवीली बाल, अङ्गनि अनङ्ग रङ्ग ढुरि मुरिजानि में।

छबि को सदन मोद मंडित बदनचंद, तृषित चषनि लाल कबधौं दिखायहौ; चटकीलौ भेष करें मटकीली भाँति सौंही, मुरली अधर धरें लटकत आयहौ। लोचन दुराय कछु मृदु मुसिक्याय नेहभीनी बतियानि लड़काय बतरायहौ; बिरह जरत जिय जानि आनि प्रान प्यारे कृपानिधि आनँदको घन बरसायहौ।

वह मुसकानि वह मृदु बतरानि, वहै लड़काली बानि आनि उर में अरति है; वहै गति लैनि औ बजावनि ललित बैन, वहै हँसिदैन हियरातें न टरति है। वहै चतुराईसों चिताई चाहिबेकी छबि वहै छैलताई न छिनक बिसरति है; आनँदनिधान प्रानप्रीतन सुजानजूकी सुधि सब भाँतिनसौं बेसुधि करति है।

जासों प्रीति ताहि निठुराईसों निपट नेह कैसें करि जिय की जरन सो जताइये; म्हा निरदई दई कैसें कै जिवाऊँ जीव बेदन की बढ़वारि कहालौं दुराइये। दुख के वखान करिबे कों रसना कैं होति अैयै कहूँ वाकौ मुख देखन न पाइये। रैन दिन चैन को न लेस कहूँ पैयै भाग आपनेही ऐसे दोष काहिधौं लगाइये।

भोर तें साँझलों कानन ओर निहारति बावरी नैकु न हारति;
साँझ तें भोरलों तारनि ताकिबो तारन सौं इक तार न टारति।
जौ कहूँ भांवतो दीठि परै घनआनँद आंसुनि औसर गारति;
मोहन सोहन जोहन की लगियै रहै आँखिनके मन आरति।

भये अति निठुर मिटाय पहिचान डारी याही दुख हमैं जक लगी हाय हाय है; तुम तौ निपट निरदई गई भूलि सुधि हमैं सूल सलनि सो केहूँ न भुलायहै। मीठे मीठे बोल बोलि ठगी पहिलें तौ तब

अब जिय जारत कहो धौं कौन न्याय है; सुनी है कै नाहीं यह प्रगट कहावति जू काहू कलपायहै सु कैसें कल पाय है।

हीन भये जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समाने;
नीरस नेही कों लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्राने।
प्रीति की रीति सु क्यों समझै जड़ मीत के पानै परै कौ प्रमानै;
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवन जानही जानै।

मीत सुजान अनीति करो जिन हाहा न हूजिये मोहि अमोही;
दीठि कों और कहूँ नहिं ठौर फिरी दृग रावरे रूप की दोही।
एक बिसास की टेक गहें लगि आस रहे बसि प्रान बटोही;
हौ घनआनँद जीवनमूल दई कित प्यासनि मारत मोही।

पहिले घनआनँद सींचि सुजान कही बतियाँ अति प्यारपगी;
अब लाय वियोग की लाय बलाय बढ़ाय बिसास दगानि दगी।
अँखियाँ दुखियानि कुबानि परी न कहूँ लगैं कौन घरी सु लगी;
मति दौरि थकी न लहै ठिक ठौर अमोही के मोह मिठास ठगी।

क्यों हँसि हेरि हर्यो हियरा अरु क्यों हित कै चित चाह बढ़ाई;
काहे कों बोलि सुधासने बैननि चैननि मैननि सैन चढ़ाई।
सो सुधि मो हिय में घनआनँद सालति कैहूँ कढ़ै न कढ़ाई;
मीत सुजात अनीति की पाटी इते पै न जानिये कौन पढ़ाई।

प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान कहौ कैसें रहैं प्रान जो अनखि अरसायहौ; तुम तो उदार दीन हीन आनि पर्यो द्वार सुनियै पुकार याहि कौलों तरसाइहौ। चातक है रावरो अनोखो मोहि आवरो सुजान रूप बावरो बदन दरसायहौ; बिरह नसाय दया हियमें बसाय आय हाय कब आनँद को घन बरसायहौ।

तब तौ छबि पीवत जीवत हे अब सोचनि लोचन जात जरे;
हित पोस के तोषतु प्रान पले बिललात महा दुख दोष भरे।
घनआनँद मीत सुजान बिना सबही सुख साज समाज टरे;
तब हार पहार से लागत हे अब आनि कै बीच पहार परे।

पहिलें अपनाय सुजान सनेह सों क्यों फिर नेह को तोरिये जू;
निरधार अधार दै धार मँझार दई गहि बाँह न बोरिये जू।
घनआनँद आपने चातक कों गुन बाँधिलै मोह न छोरिये जू;
रस प्यायकैं ज्याय बढ़ायकैं आस बिसासमें यों विष घोरिये जू।

रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारिये;
त्यों इन आँखिनि बानि अनोखी अघानि कहूँ नहीं आन तिहारिये।
एकही जीव हुतौ सुतौ वार्यो सुजान सकोच औ सोच सहारिये;
रोकी रहै न दहै घनआनँद बावरी रीझ के हाथनि हारिये।

आसही अकास मधि अवधि गुनै बढ़ाय चोपनि चढ़ाय दीनौ कीनौ खेल सो यहै; निपट कठोर एहो ऐंचत न आप ओर लाड़िले सुजान सों दुहेली दसा को कहै। अचरजमई मोहि भई घनआनँद यों हाथ साथ लाग्यो पै समीप न कहूँ लहै; बिरह-समीर की झकोरनि अधीर नेह नीर भाज्यो जीव तऊ गुड़ी लों उड़यो रहै।

घनआनँद जीवनमूल सुजान की कौंधन हूँ न कहूँ दरसैं;
सुन जानिये धौं कित छाय रहे दृग चातिक प्रान तपे तरसैं।
बिन पावस तो इन्हें थ्यावस हो न सु क्योंकरि ये अब सो परसैं;
बदरा बरसै रितु में घिरिकै तिनही अँखियाँ उघरी बरसैं।

केतो घट सोधौं पै न पाऊँ कहाँ आहि सो धौं को धौं जीव जारै अटपटी गति दाह की; धूम कों न धरै गात सीरो परै ज्यों ज्यों जरै ढरै नैन नीर बीर हरै मति आह की। जतन बुझैहै सब जाकी झर आगें अब कबहूँ न दबै भरी भभक उमाह की; जबतें निहारे घनआनँद सुजान प्यारे तबतें अनोखी आगि लागि रही चाह की।

आँखैं जो क देखैं तो कहा हैं कछु देखति ये ऐसी दुखहाइनि की दसा आय देखिये; प्रानन के प्यारे जान रूप उँजियारे बिना तिहारे मिलन इन्हैं कौन लेखे लेखिये। नीरन्यारे मीन औ चकोर चंदहीन हूँ तैं अतिही अधीन दीन गति मति पेखिये; हौ जू घनआनँद दुरारे रसभरे भारे चातिक विचारे सों न चूकनि परेखिये।

जहाँ तैं पधारै मेरे नैननि हीं पाँव धारे वारै ये बिचारे प्रान पैंड़ पैंड़ पैं मनौ; आतुर न होहु हाहा नेक फैंट छोरि बैठो मोहि वा बिसासी को है ब्योरो बूझिबो घनौ। हाय निरदई कों हमारी सुधि कैसें आई कौनबिधि दीनी पाती दीन जानिकै भनौ; झूठ की सचाई छाक्यो त्यों हित कचाई पाक्यो ताके गुन गन घनआनँद कहा गनौ।

आसा गुन बाँधिकैं भरोसो सिल धरि छाती पूरे पन सिंधु में न बूड़त सकायहौं; दुख दव हिय जारि अंतर उदेग आँच निरंतर रोम रोम त्रासनि तचायहौं। लाख लाख भाँतिन की दुसह दसानि जानि साहस सहारि सिर आरे लौं चलायहौं; ऐसें घनआनँद गही है टेक मन माहिं एरे निरदई तोहिं दया उपजायहौं।

अंतर आँच उसास तचै अति अंग उसीजै उदेग की आवस;
ज्यो कहलाय मसूसनि ऊमस क्योंहूँ कहूँ सु धरे नहिं थ्यावस।
नैन उघारि हियें बरसै घनआनँद छाई अनोखिये पावस;
जीवन मूरति जान को आनन है बिन हेरें सदाई अमावस।
जान के रूप लुभायकै नैननि वेचि करी अधबीच ही लौंड़ी;
फैलि गई घर बाहिर बात सु नीकें भई इन काज कनौंड़ी।
क्योंकरि थाह लहै घनआनँद चाह-नदी तट ही अति औंड़ी;
हाय दई न बिसासी सुनै कछु है जग बाजति नेह की डौंड़ी।
लै ही रहे हो सदा मन और को दैबो न जानत जान दुलारे;
देख्यो न हैं सपनेहूँ कहूँ दुख त्यागे सकोच औ सोच सुखारे।
कैसो सँजोग वियोग धौं आहि फिरौ घनआनँद ह्वै मतवारे;
मो गति बूझि परै तबहीं जब होहु घरीकहूँ आप तें न्यारे।
खोयदई बुधि सोयगई सुधि रोय हँसै उनमाद जग्यो है;
मौन गहै चकि चाकि रहै चलि बात कहै तेन दाह दग्यो है।
जानिपरै नहिं जान तुम्हैं लखि ताहि कहा कछु आहि खग्यो है;
सोचनिहीं पचिये घनआनँद हेत पग्यो किधौं प्रेत लग्यो है।

घेरि घबरानी उबरानिही रहित घनआनँद आरत राती साधनि मरनि हैं; जीवनअधार जान रूप के अधार बिन ब्याकुल बिकार भरी

खरी सु जरति हैं। अतन जतन तें अनखि अरसानी बीर परी पीर भीर क्योंहूँ धीर न धरति हैं; देखिये दसा असाध अँखियाँ निपेटिनि की भसमी बिथा पैं नित लंघन करति हैं।

बिकच (?) नलिन लखैं सकुचि मलिन होति ऐसी कछू आँखिनि अनोखी उरझनि है; सौरभ समीर आयें बहकि डहकि जाय राग भरे हिय में बिराग मुरझनि है। जहाँ जान प्यारी रूप गुन को दीप न लहै तहाँ मेरे ज्यो परै बिषाद गुरझनि है; हाय अटपटी दसा निपट चपेटै टीसौ क्योंहूँ घनआनँद न सूझै सुरझनि है।

तब ह्वै सहाय हाय कैसें धौं सुहाई ऐसी सब सुख संग लै बियोग दुख दै चले; सींचे रस रंग अंग अंगनि अनंग सौंपि अंतर में बिषम बिषाद बेलि बै चले। क्यों धौं ये निगोड़े प्रान जान घनआनँद के गौहन न लागे जब वे करि बिचै चले; अतिही अधीर भई पीर भीर घेरि लई हेली मनभावन अकेली मोहिं कैचले।

रोम रोम रसना ह्वै लहै जो गिरा के गुन तऊ जान प्यारी निवरैं न मैन आरतैं; ऐसे दिनदीन दीन की दया न आई दई तोहि बिष भोयो बिषम बियोग सर मार तैं। दरस सुरस प्यास भाँवरे भरत रहौं फेरिये निरास मोहिं क्यों धौं यों बछार ?, तैं; जीवन अधार घनआनँद उदार महा कैसें अनसुनी करी चातक पुकार तैं।

चातिक चुहल चहुँओर चाहै स्वातिही कों सूरे पन पूरे जिन्हें बिष सम अमी है; प्रफुलित होत भान के उदोत कंज पुंज ता बिन बिचारनि हीं जोति जाल तमी है। चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै आनँदघन प्रीति रीति बिषम सु रोम रोम रमी है; मोहि तुम एक तुम्हें मो सम अनेक आहिं कहा कछु चंदहिं चकोरन की कमी।

जीवन हौ जिय की सब जानत जान कहा कहि बात जतैये ;
जो कछु है सुख संपति सौंज सु नैसिक की हँसि दैन में पैये।
आनँद के घन लागै अचंभो पपीहा पुकार तें क्यों अरसैये ;
प्रीति पगी अखियानि दिखाय कै हाय अनीति सु दीठि छिपैये।

महाकवि श्रीबिहारीलालजी

* छप्पै *

रससिँगार आगार अलंकारन सु अलंकृत ;
धुनि व्यंजना अनूप लच्छना—लच्छित।
एक-एक पर बहुर मुहुर जयसिंह नृप दीनी ;
कृष्णकेलि-रस सरस बढ़त हिय भाव-नवीनी।
सोइ दिव्य दोहा सु सतसई भई न ऐसी होय अनु ;
भाषा कवि नृप चक्रराट् बिहारीलाल जयदेव जनु।

—गो० श्रीराधाचरणजी

जगत्-प्रसिद्ध सतसई-रचयिता महाकवि श्रीबिहारीलालजीका जीवन-चरित्र हिंदी-भाषाके अनेक कवि एवं विद्वानोंने संक्षिप्त-रूपमें लिखनेका प्रयास किया है, सतसईके सैकड़ों टीकाओंमें एवं स्वतंत्र भी। इन्होंने बिहारीलालजीके जीवन-चरित्र विषयक स्फुट वाक्यों, जनश्रुतियों, प्रचलित आख्यायिकायों और जहाँ-तहाँ बिखरी हुई अनेक सामग्रियोंका आधार लिया है। इनमें सबसे विशेष प्राचीन ग्रंथ, जिसका रचना काल संवत् १७२१ चैत्रशुक्ल सप्तमी सोमवार है और प्रामाणिक ढंगसे लिखा गया है तथा स्वर्गीय बाबू श्रीजगन्नाथदासजी रत्नाकर कृत निबंध, जिन्होंने बहुतही खोजके साथ एवं अत्यन्त प्रामाणिक रीतिसे नागरी-प्रचारिणी-पत्रिकामें प्रकाशित करवाया था और समस्त प्राचीन अर्वाचीन लेख-निबंधोंका अवलंबन लेकर, श्रीबिहारीलालजीका जीवन-चरित्र बिहारी-दर्शनके निर्माता पं० श्रीलोकनाथजी द्विवेदी सिलाकारी साहित्याचार्य, साहित्यरत्नने बिहारी-दर्शनके कवि-परिचय प्रकरणमें लिखा है, उसीके आधार पर यह परिचय मैं संक्षिप्त रूपसे लिखता हूँ—

महाकवि श्रीबिहारीलालजीका जन्म संवत् १६५२ में ग्वालियर नगरके अंतर्गत हुआ था। इन्होंने स्वरचित निम्नलिखित दोहामें स्पष्ट उल्लेख किया है—

"संवत् जुग २ सर५ रस६ सहित, भूमि रीति गिन लीन्ह ;
कातिक सुदि बुध अष्टमी, जन्म हमहिं विधि दीन्ह ॥"

इनके पिताका नाम श्रीकेशवरायजी था, ये अच्छे सुकवि और महात्मा-पुरुष थे। इनको प्रणाम करते हुए हिंदीके सुप्रसिद्ध कवि आचार्य कुलपति मिश्रजीने (श्रीबिहारीलालजीके भानजा थे) स्वमिर्मित संग्रामसारके आरंभमें लिखा है—"कविवर मातामह सुमिरि केशव केशवराय; करौं कथा भारत्थकी भाषा छंद बनाय।" श्रीबिहारीलालजो धौम्यगोत्रीय श्रोत्रिय माथुर चौबे थे। माथुर चतुर्वेदियोंमें पांडेय, पाठक, तिवारी, ककोर एवं घरवारी आदि चौंसठ उपाधियाँ हैं, इनमें से बिहारीलालजी घरवरी थे।

इनके पिता इन्हें और अपने अन्य पुत्र-पुत्रीको साथ लेकर ग्वालियरसे ओरछे चले आये। उस समय वहाँ गद्दी पर रामशाहजी थे, जो संवत् १६४६ में महाराज मधुकरशाहके पश्चात् गद्यारुढ़ हुए थे। और अपनी अवस्था उतरती होनेके कारण राज्य-भार अपने प्रिय भ्राता इन्द्रजीतसिंहको सौंपा था। ये राज्य-कार्य-कुशल होते हुए संगीत एवं काव्यके बड़े प्रेमी थे। इन्हींके यहाँ आचार्य केशवदासजी रहते थे। बिहारीलालजीके पिता केशवरायजी भी अच्छे कवि थे, इसलिये केशवदासजीसे स्नेह होना स्वाभाविक था। श्रीकेशवदासजीने बालक बिहारीलालकी प्रखर-बुद्धि देखकर साहित्य पढ़ाया था। वहीं दशान नदीके तटपर स्थिति 'गूढ़ौ' ग्राममें, श्रीनिम्बार्क सम्प्रदायांतर्गत स्वामी श्रीहरिदासजीके गद्दीके महात्मा (पीछे महंत हो गए) श्रीनरहरिदासजीके केशवरायजी शिष्य हुए और श्रीबिहारीलालजीको भी मंत्रोपदेश कराया। यह प्रसंग 'बिहारी-दर्शन' में इस प्रकार लिखा है—

"वहाँ उस समय दशान नदीके किनारे 'गुढ़ौ' ग्राममें एक सुप्रसिद्ध महात्मा रहते थे, जिनका नाम श्रीनरहरिदासजी था। बिहारीलालजीके पिता इन महात्माके पास बहुधा आया-जाया करते थे। श्रीस्वामी हरिदासजीके संप्रदायके यह महात्मा महंत हो गए थे। इस संप्रदायके ग्रंथ 'निजमतसिद्धांत' से निम्नलिखित बातोंका पता चलता है—

"श्रीनरहरिदेव अथवा नरहरिदासजी उक्त संप्रदायके एक बड़े प्रसिद्ध महात्मा थे। संवत् १६८३ से संवत् १७४१ तक निधिवनकी गद्दीपर रहे। उनके पिताका नाम विष्णुदास और माताका उत्तमा था। वह बुँदेलखंडमें दसान-नदीके किनारे गुढ़ौ ग्राममें रहते थे। उनका जन्म संवत् १६४० में हुआ,

और वह बाल्यावस्थासे-ही साधु संतोंकी सेवा करने लगे, और सिद्ध तथा महात्मा प्रसिद्ध हो गए। संवत् १६६५-६६ में सरसदेवजी जो वृन्दावनमें निधिवनके महंत थे, देशाटन करते हुए बुँदेलखंड गए और नरहरिदासजीको अपना शिष्य कर आए। संवत् १६७५ में नरहरिदासजी अपने गुरूके पास वृन्दावन चले आए। संवत् १६८३ में वह अपने गुरूकी गद्दी पर बैठे और संवत् १७४१ तक १०१ वर्षकी आयु तक विद्यमान रहे।" (देखो निजमतसिद्धांत)

ऐसा जान पड़ता है, इसके बाद बिहारीलालजीके पिता केशवरायजी इन महात्माके शिष्य होगए, एवं बिहारीलालजीको भी इन्हींसे मंत्रोपदेश कराया। नरहरिदासजी प्रसिद्ध महात्मा तो थे ही, इससे महाराज इन्द्रजीत और महाकवि केशवदासजी भी उनके दर्शनोंको आते थे। नरहरिदासजीके पितासे ओरछेके राजाका व्यवहार 'निजमतसिद्धांत'-नामक ग्रंथसेभी विदित होता है। यहीं श्रीनरहरिदासजीने महाकवि केशवदासजीसे बिहारीलालको ध्यानसे पढ़ानेका अनुरोध किया। केशवदासजी बिहारीलालजीकी प्रखर-बुद्धि देख, उन्हें पुत्रवत् स्नेहसे पढ़ाने लगे।

जब संवत् १६६४ के पूर्वही महाराज इन्द्रजीतसिंहका अखाड़ा अस्तव्यस्त होगया, तब केशवरायजीके हृदयमें बहुत वैराग्य हुआ और सकुटुंब वृन्दावन-वास करनेके लिये चले आए। यहाँ आकर श्रीसरसदेवजीसे मिले, क्योंकि इनसे 'गुढ़ौ' में ही परिचय हो चुका था, इन्होंने सादर लिया। पश्चात् ये श्रीसरसदेवजीके शिष्य होकर प्रसिद्ध महात्मा श्रीनागरीदासजीके आश्रममें रहने लगे। यहीं श्रीबिहारीलालजी विद्याध्ययन करने लगे और पिता अपने द्वादश वर्षकी पुत्रीके विवाहकी चिंतामें लगे।

स्वामी श्रीहरिदासजीके परंपराके महंत सदैवसे काव्य एवं संगीत-कलामें कौशल होते आए हैं। इनके पास राजा बादशाह एवं गुणीजनोंका भी जमघट दर्शनोर्थ सदा रहते आया है। स्वामी श्रीहरिदासजी एवं अकबर बादशाहका प्रसंग प्रसिद्ध ही है। नागरीदासजीभी ऐसेही प्रसिद्ध महात्मा थे। बिहारीलालजीने इन्हीं के पास पढ़कर, संगीत एवं काव्याभ्यासमें पूर्ण निपुणता प्राप्त की। इसी अवसर पर इनकी बहिनका भी प्रणय होगया, यह प्रसंग 'बिहारी-दर्शन' में इस प्रकार है —

"श्रीसरसदेवजीका ब्रजमंडलमें बहुत महत्व था। उन्हें ब्रजके सब लोग मानते थे। माथुर-वंशके तो प्रायः सभीलोग इसी संप्रदायमें दीक्षित; अतएव उन्हें मानते और सदा उनके दर्शनोंको आते थे। उसी समय ब्रजमें हरिकृष्ण-मिश्र नामक एक माथुर चौबे थे, जो महंतजीके यहाँ आते थे। उनके परशुराम-नामक पुत्र था। वह बड़ाही विद्वान् था। श्रीसरसदेवजीकी अनुमतिसे बिहारी-लालजीकी बहिनका विवाह उक्त परशुराम मिश्रसे होगया। हिंदीके प्रसिद्ध विद्वान् कवि और आचार्य कुलपतिमिश्र इन्हीं परशुरामके पुत्र और बिहारीलालके भानजे थे। ....पिताने कन्याके विवाहके उपरांत बिहारी-लालजीका विवाह भी मथुरामें एक धनाढ्य माथुर चौबेके यहाँ उसकी रूपवती कन्यासे कर दिया। ....संतानोंके विवाहके बाद बिहारीलालजीके पिता केशवरायजी वैरागी होगये। उस समय बिहारीलालजी सपत्नीक उनके पास नहीं रह सकते थे, क्योंकि वह आश्रममें रहते थे; इससे बिहारीलालजी मथुरामें, अपनी ससुरालमें रहने लगे। पर वह महात्मा नागरीदासजीके यहाँ, उनके दर्शन करने एवं संगीत-साहित्य सुनने-सुनाने, सदैव आया जाया करते थे।

इसी समय संवत् १६७५ में, श्रीनरहरिदासजी भी बुँदेलखंडसे श्रीवृन्दावन-धाम चले आए, और श्रीनागरीदासजीके स्थानपर ही ठहरे। बिहारीलालजी अब अपने गुरु श्रीनरहरिदासजीके पास नियमसे आने लगे। उनका माहात्म्य तो पहलेसे ही प्रसिद्ध था। अब वृन्दावन आनेपर उनकी ख्याति और भी बढ़ी। बड़े-बड़े विद्वान् और कुलीन एवं धनी लोग उनके पास आने लगे। बादशाह जहाँगीर गद्दीपर था; और शाहजहाँ यद्यपि युवराज था, पर बादशाहने उसे सुल्तानका ख़िताब (पद) दे दिया था। उस समय तक मुसलमान बादशाह हिंदुओंके संत-महंतोंके पास बड़ी श्रद्धासे जाते और उनके दर्शन करके उनके उपदेश एवं आशीर्वादसे लाभ उठानेकी अभिलाषा रखते थे। 'तुजके-जहाँगीरी' में जहाँगीर बादशाहके संवत् १६७५ में वृन्दावन जाना और चिद्रूप-नामक महात्माका दर्शन-करना लिखा है। इस यात्रामें बादशाह जहाँगीरके साथ सुल्तान शाहजहाँभी था। सुल्तान शाहजहाँ श्रीनागरीदासजीकी टट्टीमें उनके दर्शनोंको गया, और उसने वहाँ श्रीनरहरिदास-जीसे भी भेंट की। इस समय बिहारीलालजी भी महात्मा नरहरिदासजीके

दर्शनोंको गए थे। इस समय तक बिहारीलालजीकी कीर्ति फैल गई थी। वह संगीत और काव्य एवं संस्कृत तथा हिंदीके मर्मज्ञ विद्वान् समझे जाने लगे थे। 'विहारी-विहार' में लिखा है—

विद्या-काव्य अनेक विधि पढ़ी परम सचुपाय।
स्वामीकी आसीससों भए सब पूरन काम;
गान ताल सब सीखियो जपत रहे हरि नाम।
निज भाषा अरु संस्कृत पढ़ि लीन्ही बहु भाँति;
सुखी भए माता पिता, सखा, मित्र अरु जाति।
एक समय सरताजजू साहजहाँ सुलतान;
आए इहि स्थानमें कीन्हों बहु सनमान।
राग-रागनी सुनि लिए पंच सब्द परकार;
तव कविताकी कह दई स्वामी गुन-आगार।
हम उनकी कविता करी भए प्रसन्न बड़ भाव;
चलत कही हमसों तबहि अर्गलपुरमें आव।"

इसप्रकार बिहारीलालजी शाहजहाँ बादशाहके दरबारमें आगरे पहुँच गए। शाहजहाँने अपने यहाँ इन्हें सादर रक्खा। बादशाह फ़ारसी, संस्कृत एवं हिंदीके ज्ञाता एवं बड़ाही कविता-प्रेमी था। पंडितराज जगन्नाथ-त्रिशूली, महाकवि रायसुंदर, कविश्रेष्ठ आचार्य कुलपति मिश्र और कविवर दूलह इत्यादि अनेक महाकवि और आचार्य शाहजहाँके सादर-स्नेहमें आकर आगरे रहते थे, तथा दरबारकी शोभा-वृद्धि करते थे। यहीं बिहारीलालजीने उर्दू का भी अध्ययन अच्छे रूप में किया और फारसी भी। आगरेमें ही सुखपूर्वक रहने लगे। जब बादशाहके घर पुत्रोत्पत्ति हुई तो वहाँ हिंदुस्तानके बड़े बड़े ५२ राजा एकत्र हुए थे। बादशाहने खुशीमें बिहारीलालजीको सम्मानपूर्वक धन, मणि और आभूषणादि देकर संतुष्ट किया। इस अवसरपर बादशाहका कृपापात्र जानकर राजाओंने भी इन्हें दान-सम्मानसे संतुष्ट किया और वर्षाशन-बँधान कर दिए। इसी समय ये प्रसिद्ध कवि और दानी खानखाना नवाब अब्दुल-रहीमसे मिले और उनसे निम्न दोहों द्वारा अपना परिचय दिये—

"जनमु ग्वालियर जानिये खंड बुँदेलैंवालु;
तरुनाई आई सुघर बसि मथुरा ससुरालु।
श्रीनरहरि नरनाहको दीन्हीं बाँहँ गहाय;
सुगुन आगरैं आगरैं रहत आय सुखपाय।"

पश्चात् बिहारीलालजीने रहीमकी भी प्रशंसा करते हुए यह दोहा कहा--

"गंग गोंछ मोछैं जमुन अधरन सरसुति रागु;
प्रगट खानखानानकैं कामद-वदन प्रयागु।"

इसपर प्रसन्न होकर एवं इनके विद्या, सांगीत एवं कविता-कला कौशलताका पूर्ण परिचय पाकर रहीमने कई हज़ार स्वर्ण-मुद्राएँ भेट की।

संवत् १६७८ के लगभग सुलतान-पदमें कुछ गड़बड़ी देखकर शाहजहाँने जहाँगीरके खिलाफ़ बग़ावत कर दी, और उसे आगरा छोड़ना पड़ा। इस अवसरपर बिहारीलालजी कभी आगरा और कभी मथुरा रहने लगे और अपना वर्षासन लेनेके लिये जोधपुर, बूँदी आदि उन ५२ नृपतियोंके यहाँ बराबर आते-जाते रहे और इसी समयमें इन्होंने संवत् १६७८ से १६९१ तक महान् अध्ययनकर ब्रजभाषाका साहित्य ढाँचा स्थिर करनेमें लगाया। उस समय जोधपुरकी गद्दीपर महाराज जसवंतसिंहजी विराजमान थे। वे साहित्य-मर्मज्ञ और सुकवि थे। कहते हैं कि प्रसिद्ध अलंकार ग्रंथ भाषाभूषण महाराजके नामसे बिहारीलालजीका ही बनाया हुआ है। बिहारी-दर्शनमें भी लिखा है--

"कुछ लोगोंका यह भी अनुमान है कि जसवंतसिंहका 'भाषा-भूषण'-नामक सुप्रसिद्ध एवं आचार्यत्व प्रगट करनेवाला विशद्-ग्रंथ महाकवि बिहारीलालजीका ही रचा हुआ है। यद्यपि भाषाभूषणके दोहे बड़ेही उच्चकोटिके तथा रचना-लाघवके आदर्श कहे जासकते हैं, एवं उनकी भाषा बहुत ही सुघरी हुई है, तथापि उसमें वैसी टकसाली भाषा नहीं है, जैसी सतसईमें है। इससे यह विदित होता है कि बिहारीलालजीने यदि भाषा-भूषणकी रचना की हो तो उसका समय सतसईके पूर्वका मानना संगत प्रतीत होता है। सुननेमें आया है कि जोधपुरमें 'दूहा-संग्रह'-नामक १५--१६ सौ दोहोंका एक ग्रंथ है, जिसमें बिहारी-सतसईके भी कुछ दोहे हैं। इससे बिहारीलालजीका जोधपुरमें कुछ समय तक रहना एवं उनका 'भाषा-भूषण' लिखना बहुत संभव प्रतीत होता है।

हो सकता है, उक्त 'दूहा-संग्रह' सर्वथा बिहारीलालजीकी-ही कृति हो, क्योंकि 'बिहारी-सतसई' पर देवकीनंदनकी वर्णार्थ-प्रकाशिका टीकामें बिहारीके स्वीकृत चौदह-सौ दोहोंका संग्रह है। वर्णार्थ-प्रकाशिका—टीकामें लिखा है—

'चौदहसौ दोहा किए तिहिं तिय परम प्रवीन'

संवत् १६९१-९२ के लगभग बिहारीलालजी अपना वर्षासन लेनेके लिए आगरे गए। वहाँ महाराज जयसिंह एक नई रानी विवाह कर लाये थे, उसपर इतने मुग्ध थे कि राज-काजकी सुधि भी विस्मरण होगए। इस बातका मुख्य महारानी चौहानी रानीको बड़ाही दुःख था, जो करौलीके सरदार श्यामदास चौहानकी पुत्री थीं। क्योंकि राज्य-हानि तो हो ही रहा था और सौतिया-डाहभी था। राजाने बिहारीलालजीकी खबर नहीं ली, तब ये ब्रह्मपुरीमें ठहर गए। उस अवसरपर कर्मचारियोंने चौहानी-रानीसे परामर्शकर एक सभा की और उसमें बिहारीलालजीको भी बुलाया; ये गए, उन्होंने सादर लिया और राजाके वर्तमान समस्त व्यवस्था वर्णनकर, जिसप्रकार कार्य हो, उपाय करनेकी प्रार्थना की, तब इन्होंने यह दोहा लिखकर दासीके द्वारा महाराजके पास महलमें पहुँचाया—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल ;
अली कलीहीसौं बँध्यौ आगैं कौन हवाल ?

जब महाराजके पास बिहारीलालजीका आगमन-सूचना और यह अन्योक्ति-गर्भित दोहा पहुँचा, तो उन्होंने इसे ध्यानपूर्वक पढ़ा और इसे अपने ऊपरही समझकर समस्त विलास-मद उतर गया और पूर्ववत् कार्यमें तत्पर होगए। इस समय बिहारीलालजीको बड़ा आदर हुआ। राजाने दोहेपर एक पसर स्वर्ण-मुद्राएँ भेट कीं। और इनके काव्यकी प्रशंसा करते हुए कुछ दिन आगरेमें-ही रहने एवं उत्तम दोहे रचनेकी आग्रह की और यह भी कहा कि एक प्रति दोहेपर एक मुद्रा भेट की जायगी। चौहानी-रानी भी इनपर बहुतही प्रसन्न हुईं और इन्हें बुलवाकर अपार पारितोषिक तथा 'कालीपहाड़ी' ग्राम पुरस्कारमें दी। इनका चित्रभी बनवाया, वह वहाँ अभी तक विद्यमान है। बिहारीलालजी वहीं रहते हुए सतसई निर्माण करने लगे। जब महाराजकुमार रामसिंहजीका जन्म हुआ, तो दरबार हुआ और भारी उत्सव मनाया गया।

इस अवसरपर बिहारीलालजीको भी बहुत पुरस्कार प्राप्त हुए। उस समय इन्होंने यह दोहा कहा—

चलत पाय निगुनी-गुनी धन-मनि मुक्ता-माल ;
भेंट भए जयसाहसों भाग चाहियतु भाल।

जब महाराज जयसिंहको दक्खिनकी लड़ाई लक्खीजादोके संग हुई और उसे परास्तकर विजय प्राप्त कर लौटे तो इन्होंने यह दोहा कहा था—

रहति न रन जयसाहि-मुख लखि लाखनुकी फौज ;
जाँचि निराखरऊ चलैं लै लाखनकी मौज।

इस दोहेसे विदित होता है कि विजयकी प्रसन्नतामें महाराज जयसिंहने खूब दान-पुण्य किया था, इस अवसरपर ये भी बहुत-से पुरस्कार अवश्य प्राप्त किये होंगे। ऐसे-ही समय-समयपर दोहे निर्माण करते हुए सतसईकी भी रचना करते रहे और प्रति दोहा पर एक मोहर मिलता रहा। जब संवत् १७०० के लगभग कुमार रामसिंहका विद्यारंभ हुआ, तो ये उनके शिक्षक नियत हुए। इन्होंने कुमारको पढ़नेके लिये एक दोहोंका संग्रह बना दिए, जिसमें ५०० दोहे तो इन्हींके निर्माण किये हुए थे और शेष अन्य कवियोंके। इसमें सतसईके सिवाय पाँच दोहे और हैं, जिनमेंसे तीन ये हैं--

श्रीरानी चौहानिको करतव देखि रसाल ;
फूलति है मनमें सिया पहिरि फूलकी माल।
दान ग्यान हरि ध्यान कौं सावधान सब ठौर ;
श्रीरानी चौहानि हैं रानिनुकी सिरमौर।
नित असीस हौं देतहौं उर मनाय जगदीस ;
रामकुँवर जयसिंहको जीयो कोटि वरीस।

निम्न दोहासे विदित होता है कि इन्होंने महाराज जयसिंहजीके कहनेसे सतसई निर्माण किया था।

हुकुम पाइ जयसाहिको हरि·राधिका-प्रसाद ;
करी विहारी सतसई भरी अनेक सवाद।

जब बलखकी चढ़ाईमें महाराज जयसिंह औरंगज़ेबके साथ गए थे और वहाँसे बड़ी चतुरता एवं वीरताके साथ बादशाही सेनाको पठानों एवं बर्फ़से

बचाकर लाये थे, इसलिये आगरेमें इनका बड़ा सन्मान हुआ और आगरेमें भी उत्सव समारोहके साथ मनाया गया। इस समय तक 'बिहारी-सतसई' संग्रहीत होकर पूर्ति होगई थी। पुनः बिहारीलालजीने निम्नलिखित तीन दोहे और बनाकर सतसईमें जोड़ दिए —

सामा सेन सयानकी सबै साहिके साथ;
बाहुबली जयसाहिजू फतै तिहारै हाथ।
यौं दल काढ़े बलखतै तैं जयसाह भुवाल;
उदर अघासुरके परे ज्यों हरि गाय-गुवाल।
घर-घर तुरकिनि हिंदुनी देति असीस सराहि;
पतिनु राखि चादर-चुरी तैं राखी जयसाहि।

इसप्रकार सतसई पूर्ण हो ही गया था, इसी उत्साहके अवसरपर इन्होंने महाराज जयसिंहको समर्पितकर दिया। महाराजने खूब सम्मान की एवं पुरस्कार दी।

'बिहारी-दर्शन' में लिखा है—'बिहारीलालजी आगरेमें रहते हुए बादशाह शाहजहाँके दरबारमें जाते थे। वहीं इन्होंने पंडितराज जगन्नाथ-त्रिशूलीसे अपने भानजे कुलपतिमिश्रको पढ़ानेके लिए कहा, जिसे पंडितराजने सहर्ष स्वीकार कर लिया, और भले प्रकार कुलपतिमिश्रको पढ़ाया। सतसई समाप्त होने तक बिहारीलालजीकी स्त्रीका देहांत हो चुका था, अतएव इन्होंने अपने गोद लिये हुए पुत्र निरंजनकृष्ण (जो कृष्णलालभी कहलाते हैं) को जयसिंह तथा रामसिंहके पास छोड़ा, और आप विरक्त होकर श्रीवृन्दावनधाम, अपने दीक्षा-गुरु श्रीनरहरिदासजीके पास, चले आए। बिहारीलालजीको सतसई रचनेके उपरांत कवितासे भी विरक्ति होगई थी। 'बिहारी-विहार' में लिखा है--

डोरी लागी प्रेमकी वृन्दावन के माँहिं;
आए स्वामी स्थानमें सुख-युत जनम सिराहिं।
कवितासों मन हटि गयो लग्यो कान्हसों ध्यान;
लालबिहारी ह्वै गए दास बिहारी मान।

इस प्रकार परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णका भजन करते हुए बिहारीलालजी संवत् १७२१ में परमधामको सिधारे।

इसप्रकार बाल्यावस्थासे ही धुरंधर विद्वान् प्रकांड पंडित और बड़े-बड़े प्रसिद्ध महात्माओंका सत्संग प्राप्तकर, संस्कृत, फारसी, हिंदी, प्राकृत एवं उर्दू आदि भाषाओंका पूर्ण अध्ययनकर, साहित्य एवं संगीतमें पूर्णता प्राप्तकर, सम्राट, महाराजा, राजा, राव, उमराव, मंत्री, सरदार, विद्वान् एवं महात्मा लोगोंसे अश्रुत-पूर्व सत्कार्य और पुरस्कार प्राप्तकर महाकवि श्रीबिहारीलालजीने अपनी जीवन-लीला संवरण की। विहारीलाल प्रेमी, उदार एवं आत्माभिमानी कवि थे। उनमें जातीय प्रेम भी था। वह हिंदुत्वके अभिमानी थे। उन्होंने जीवन-भर किसीकी अनुचित प्रशंसा नहीं की। उनका जातीय प्रेम इसीसे प्रगट है कि उन्होंने अपने महान् संरक्षक मिर्जाराजा जयशाहकी उस विजयपर उनकी कुछभी प्रशंसा नहीं की, जो उन्हें औरंगज़ेबकी ओरसे शिवाजीसे लड़ने पर प्राप्त हुई थी।"

इनकी एकमात्र रचना 'बिहारी-सतसई' है। इस ग्रंथकी जितनी ख्याति और प्रतिष्ठा शृंगारिक साहित्य-संसारमें हुई, उतनी और को मिलना असंभव है। इसके एक-एक दोहे एक-एक रत्न हैं। इस ग्रंथपर सैकड़ों टीका-टिप्पणिएँ हो चुकी हैं। अंग्रेज़ी और संस्कृतमें भी। संस्कृतमें टीका होनेका सौभाग्य अन्य हिंदी-ग्रंथोंका बहुत कम पाया जाता है। बिहारीलालजीने केवल सतसईकी रचनाकर बड़े साहित्य-भंडार भरनेवालोंको पीछे कर दिये। इनकी रचना मुक्तकमें हैं। गागरमें सागर भरे हैं। दोहे रसके भंडार हैं। रचनामें शृंगारके भाव-अनुभाव एवं हाव सुव्यवस्थित रूपमें सुसज्जित हैं। दोहोंमें नायका भेद, नखशिष, षटऋतु, अलंकार, उदाहरण क्रमागत नहीं हैं, किन्तु पूर्णरूपसे समावेश हैं। इसका काव्य विशुद्ध है। वर्णन एवं शब्द-शैली सुसंगठित हैं। भाषा चलती एवं साहित्यक है। रचनाप्रासाद, माधुर्य आदि काव्योंके सर्व-सद्गुणालंकृत हैं। विशेष वर्णन क्या हो? सतसई साहित्य-नभमें अपार-तेज-युक्त मार्तण्डवत् प्रदीप्त है। इनके सतसईमें-से कुछ दोहे उद्धृत किए जाते हैं—

मेरी भव-बाधा हरो राधा नागरि सोय;
जा तनकी झाँई परै स्याम हरित-द्युति होय।

लाज गहो, बेकाज कत घेर रहे ? घर जाँहिं ;
गोरस चाहत फिरत हो, गोरस चाहत नाँहिं ।
नभ लाली लाली निसा, चटकाली धुनि कीन ;
रति पाली आली अनत, आए बनमाली न ।
सदन-सदन के फिरन की सद न छुटै यदुराय ;
रुचै तितै बिहरत फिरौ, कत बिहरत उर आय ।
लाल तिहारे बिरह की अगिनि अनूप अपार ;
सरसैं बरसैं नीर हू, झरहू मिटै न झार ।
चिरजीवौ जोरी जुरै क्यों न सनेह गँभीर ;
को घटि ये वृषभानुजा वे हलधर के बीर ।
तौ लगि या मन-सदन में हरि आविहिं किहि बाट ;
निपट बिकट जब लगि जुटे खुलहिं न कपट-कपाट ।
गिरि तैं ऊँचे रसिक मन, बूड़े जहाँ हजार ;
वहै सदा पसु नरन को प्रेम पयोधि पगार ।
ध्यान आनि ढिग प्रानपति,मुदित रहित दिन-राति ;
पल कंपति, पुलकति पलक, पलक पसीजति जाति ।
जो न जुगति पिय-मिलनकी धूरि मुकति मुँह दीन ;
जो लहिए सँग सजन, तो धरक नरक हू कीन ।
कहा भयौ जो बीछुरे, मो मन तो मन साथ ;
उड़ी जाति कितऊ गुड़ी, तऊ उड़ायक हाथ ।
लई सौंहँ सी सुनन की, तजि मुरली धुनि-आन ;
किए रहति है रात-दिन, कानन लागे कान ।
प्रेम अडोल डुलै नहीं, मुख बोले अनखाय ;
चित उनकी मूरति बसी, चितवन माँहिं लखाय ।
मोहनि मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ ;
बसत सुचित अंतर, तऊ प्रतिबिंबित जग होइ ।
कीन्हें हू कोटिक जतन, अब गहि काढ़े कौन ;
भो मन मोहन-रूप मिलि पानी में को लौन ।

समै-समै सुंदर सबै रूप कुरूप न कोय ;
मन की रुचि जेती जितै, तितै तिती छबि होय ।
सब ही तन समुहाति छन चलति सबन दै पीठि ;
वाही तन ठहराति यह किबुलनुमा लौं दीठि ।
बहके, सब जिय की कहत, ठौर-कुठौर लखें न ;
छिन औरे छिन और से, ये छबि-छाके नैन ।
कितीं न गोकुल कुल बधू काहि न किन सिख दीन ;
कौनें तजीं न कुल गलीं, ह्वै मुरली-सुर लीन ।
गोपिन संगति शरद की रमत रसिक रस रास ;
लहाछेह अति गतिन की सबन लखे सब पास ।
तो ही को छुटि मान गो देखत ही ब्रजराज ;
रही घरकि लौं मान सी, मान किए की लाज ।
सतर भौंहँ रूखे बचन, करति कठिन मन नीठि ;
कहा करौं ह्वै जाति हरि, हेरि हँसौ ही डीठि ।
सखी सिखावति मान बिधि, सैननि बरजति बाल ;
हरुवे कह मो हिय बसत सदा बिहारीलाल ।
स्याम सुरति कर राधिका, तकति तरनिजा-तीर ;
अँसुवन करति तरौंस कौ, खिनकु खरौहौं नीर ।
जहाँ-जहाँ ठाढ़ौ लख्यौ स्याम सुभग सिरमौर ;
उनहूँ बिन छिन गहि रहत दृगन अजौं वह ठौर ।
तज तीरथ हरि-राधिका-तन-दुति कर अनुराग ;
जेहि ब्रज केलि निकुंज मग पग पग होत प्रयाग ।
कहा लड़ैते दृग करे, परे लाल बेहाल ;
कहुँ मुरली, कहुँ पीत-पट, कहूँ लकुट-बन-माल ।
फिरि-फिरि बूझति, कहु कहा कह्यौ साँवरे गात ;
कहा करत देखे कहाँ, अली चली क्यों बात ।

श्रीकुलपतिमिश्र

माथुर-वंश प्रशंस प्रगट जावत् जाहिर जग ;
अलंकार रस रसिकराज काव्यन गाहक मग।
लालबिहारी बहिन पुत्रमणि निजकुल भूषण ;
वरण्यो प्रेम प्रताप कवित बहु रचि निर्दूषण।

वास आगरे नगर मध्य पुनि जैपुर नृपश्रय रामसिंह ;
कृष्ण भक्त रस सरसधर श्रीनिम्बार्क पद आस जिह।

सुप्रसिद्ध कवि-श्रेष्ठ आचार्य कुलपतिमिश्र माथुर-चतुर्वेदी-ब्राह्मण थे। इनका जन्म आगरेमें हुआ था। इनके पिताका नाम श्रीपरशुराममिश्र था। ये विश्व-प्रसिद्ध सतसई-रचयिता श्रीबिहारीलालजीके भानजे थे, और उन्हींके शिक्षा--दीक्षासे संबंध रखनेवाले वैष्णव थे। इनका अधिकांश रहना जयपुरमें रहता था एवं मथुरा, वृन्दावन भी आया-जाया करते थे। ये जयपुरमें प्रसिद्ध महाराजा जयसिंहजीके पुत्र रामसिंहजीके आश्रयमें रहते थे। मिश्रबंधुविनोद'में इनका जन्म अनुमानतः १६७७ लिखा है। इन्होंने संवत् १७२७ में 'रस रहस्य' नामक ग्रंथ बनाया। उस ग्रंथकी रचना उक्त सालके वृहस्पतिवार कार्तिक कृष्णा-एकादशीको समाप्त हुई। इसे इन्होंने संस्कृतके समस्त अलंकार ग्रंथोंका अध्ययन करनेके पश्चात् बनाया। ५० वर्षके अवस्थामें इस ग्रंथकी रचना हुई होगी, तो जन्म-संवत्-अनुमान ठीक हो सकता है। इनके परमधाम-प्रयाणका कुछ भी पता नहीं चलता।

ये संस्कृतके प्रकांड विद्वान् थे। इन्होंने अपने 'रस-रहस्य' में मम्मटके काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पणका आधार लिया है। मम्मटाचार्य १२ वीं शताब्दीमें हुए हैं, इन्होंने काव्यप्रकाशमें ६७ अलंकारोंका निरूपण किया है। 'रस रहस्य' काव्यप्रकाशका छायानुवाद ही कहा जासकता है। लक्षण, उदाहरण काव्यप्रकाशके ही आधारपर हैं; किंतु अलंकारोंके लिये अपने आश्रयदाता

रामसिंहजीके प्रशंसाके पद स्वनिर्मित रख दिये हैं। इनकी रचनामें पूर्ण-पांडित्य है। इनकी कविता प्रौढ़ है, और अनेक कवियोंके रचनासे कठिन भी । ये आचार्य-पदपर सफलतापूर्वक अग्रसर होसके हैं । इनकी रचनामें अधिकांश ब्रजभाषा है, और कोई-कोई छंद प्राकृतभाषा एवं उर्दू मिलित वर्णमें भी हैं।

इनके बनाए हुए छैः ग्रंथ और भी उपलब्ध हुएहैं। १—द्रोणपर्व सं० १७३७, २-मुक्तितरंगिणी सं० १७४३, ३—नखशिख, ४—संग्रामसार, ५ गुणरहस्य सं० १७२४ और ६—दुर्भागचंद्रिका। 'रस रहस्य' पं० बलदेवप्रसादजी मिश्रद्वारा संपादित इंडियन-प्रेसमें प्रकाशित हो चुकी है । उसीमें से कुछ छंद उद्धृत करते हैं--

[कवित्त-सवैये]

हूँ मैं मुश्तकक़ तेरी सूरतका नूर देखि दिल भरि पूरि रहै कहने जवाब से; मेहरका तालिब फकीर है मेहरबान चातक ज्यों जीवता है स्वाति वारे आब से। तूतो है अयानी यह खूबी का खजाना तिसै खोल क्यों न दीजै सरे कीजिए सबाब से; देर की न ताब जान होती है कबाब बोल हयातीकाआब बोलो मुख महताब से।

देह धरी परकाजहिको जग माँझ है तोसी तूही सब लायक;
दौरि थकी अँग स्वेद भयो समुझी सखि ह्वाँ न मिले सुखदायक।
मोहूँ सों प्यार जनायो भली विधि जानीजू जानी हितूनकी नायक;
साँच कि मूरति सीलकि सूरति मंद किये जिन काम के सायक।

ऐसिय कुंज बने छवि पुंज रहैं अलि गुंजति यों सुख लीजै;
नैन विसाल हिये बनमाल विलोकत रूपसुधा भरि पीजै।
जामिन जाम की कौन कहै जुग जात न जानिए ज्यों छिन छीजै;
आनँद यों उमग्योई रहै पिय मोहन को मुख देखिबो कीजै।

मथुरा को चलै अक्रूरु कहै सुधि संग लई है जशोमति नंद की;
भौतेही ठौर तमासौ नयो जु विचक्षणहू मनकी गति मंद की।
मोहन अस बलदेव लखै पुर छाय रही छवि आनँदकंद की;
फूली विलोकति हैं निरखैं विनि वारिज की अवली छवि चंद की।

सो गुनवंत हितू है वहै करतूत उजागर सोई कहावै ;
सो सरदार सभाग वहै सिगरो ब्रज वाही की कीरति गावै।
जारत चंद समीरहू तीर है वेधत है इनपै ते बचावै ;
सो सुखदायक जो बिरहानल ताप तपै हियराहि सिरावै।

जो वह वारिद सों कहि आगि कहै शशि भानु हैं जोर जरावै ;
बाकी बड़ाई न वामें कछू गति औरों मनोनिय केति सुभावै।
सोवत ही सपने में लखै धन चौंकी जगी अति ही अकुलावै ;
तारसी धार अपार लगै ए बचावति क्यों न सखीन सुनावै।

जो गुन होय गनेश समान रु शेष समान जो जीभ धरै ;
कवि तो बरनै जस जामक कौ करुना करि भारति भाय भरै।
राम विलोकत ही जग के उर ताप हरै सुख सों विहरै ;
लखि वारिद बुंद के लागत ही जर मूल ते आक जवास जरै।

औरो विलोचन पावनिकुंजए औरै कछू छवि है मुख की ;
तनकी द्युति औरै भाँति बनी गति औरै विलोकनि के रुख की।
औरहि भाँति रहै मन स्याम कौ दानि है औरही से सुख की ;
नहियां बिचिकी रचना यह हाय करी जिनि सृष्टि मिली दुख की।

ऊँचे अलोल भरे जिनके निरखे ते धरा मनमें नहिं आवै ;
साज की जेब लखै चकचौंध रहै सुरतान न चित्त चलावै।
काज के चोंप के पाय समीर न जोउ मनोरथ पै चढ़ि पावै ;
रामनरिंद के दान हयंदनु की गति तो जो छिपावै तो पावै।

बिथरैं मनि मानिक मो मन में चमकें तिनहूँ जुगुनू गति पाई ;
साध बढ़ै धन से तिनमें चपला तरवारि जुही विसराई।
चौकी सी चंदमुखी चहुँ ओर फिरै तनु कुंदवधू छवि छाई ;
पहले ही भए रिपु के पुर उज्जर पाछे ते कीनी है राम चढ़ाई।

फूली समात नहीं तनमें मनमें पुनि काहुको नेक न लावै ;
आरसीमें निरखे मुखको पुनि नीकेही भूषन साज बनावै।

ही हुलसै बिलसै रु हँसै तक वाकी चितौनी के चित्त चुरावै ;
भीत भयौ मनमोहनजू तब मैं भयो बालक और सुभावै।

आनन उजास वंक भौंहन विलास चारु लोचन ये पानिप सों भरे-भरे रंग हैं; सहस सुवास बन्यो भूषन विलास तैसी देह की गुराई वो लुनाई लिए संग हैं। सरस सिंगार छवि उपजी अपार हिए सोहत है हार कुच-भार तिहै ढंग हैं; रैन उजियारी में बनी है ऐसी प्यारी आज कान्ह वस कीयो वलकत सब अंग हैं।

(दोहा)

स्वपनो है संसार यह रहत न जाने कोय ;
मिलि पिय मन भाँवरि करों कालि कहाधों होय।

शब्द मूल द्वै अर्थ रति उभय मूल इक भाँति ;
तीन भेद पिछले गिनें होत अठारह काँति।

मैं न कही तोसों अलि वादी करत है नेह ;
चित न चैन वैनी रहो अब भूल्यो सुख गेह।

मधुर मधुर बातें कहत क्यों गहि बैठे मौन ;
मुख की छवि औरे भई लखी रावरी गौन।

आज पिया या कुंज की छवि निरखी नहिं जाय ;
लखिये तौ रति कामकी मूरति प्रगट लखाय।

धन जोवन तन सकल सुख रहत न जाने कोय ;
कर लीजे अब रही घरि जो कछु करनो होय।

यह वृन्दावन अति सुखद वंशीवट सुखधाम ;
लाल दुपहरी रहु यहाँ चलिये वीते घाम।

सीखे खेल नयो कियो वहन वसंत समाज ;
लाल तिहारी छविहि लखि को न खुसी है आज।

श्रीकृष्ण कवि

* छप्पै *

श्रीसतसई सुदोहा रचना गूढ़ गुढ़ासय ;
कीन्हों कवित प्रत्येक अर्थ प्रति दोहा भासय ।
पुत्र बिहारीलाल कीन्ह कृति पिता प्रकाशित;
कृष्णकवि असनाम इन आयामलमंत्री आश्रित ।
नगर आगरे मध्य वास व्रज रस रसिकन के सँग रस्यो ;
राजा सो सनमान पाय पुनि परम पुनित जैपुर बस्यो ।

इन कविवरका जन्म मथुरामें हुआ था। मिश्रबंधु-विनोदमें लिखा है कि, ये प्रसिद्ध सतसईकार महाकवि श्रीबिहारीलालजीके पुत्र थे; किन्तु बिहारीलालजी घरवारी थे। कई विद्वान् लेखकोंका मत है कि ये गोद लिये हुए पुत्र हैं, इनके वंशज माथुर ब्राह्मण भी अपनेको काकोर-कुलोत्पन्न मानते हैं। श्रीकृष्ण कविने स्वयं लिखा भी है—

'माथुर-विप्र काकोर-कुल कह्यो कृष्ण कवि नावँ ;
सेवक हौं सब कविन को बसत मधुपुरी गावँ ।

इनके आश्रयदाता महाराज सवाई जयसिंह और उनके मंत्री आयामल्ल थे। महाराज जयसिंहसे आयामल्लका ही इनपर विशेष स्नेह था। मंत्रीजीके ही आज्ञासे इन्होंने 'बिहारी-सतसई' पर सर्वप्रथम अतिउत्तम सवैये-कवित्तोंमें टीका लिखी। इन्होंने सतसईके टीकांतमें आयामलकी प्रशंसामें निम्न-दोहा लिखा है—

प्रगट सवाई भूपके मंत्रीमनि सुखसार ;
सागर गुन सतशीलको नागर परम उदार ।
आयामल्ल अखंड तप जग सोहत जस ताहि ;
राजा कीनो करि कृपा महाराज जयसाहि ।

इसप्रकार और भी वंशपरंपरा एवं प्रशंसाके दोहे अपनी टीका सतसईके अंतमें कहा है। आयामल्लके ही अनुरोधसे टीकाको उत्तम बनानेमें इन्होंने कसर नहीं रक्खी। प्रत्येक दोहेपर एक सवैया या घनाक्षरी कवित्तोंमें टीका की। दोहोंके ऊपर अक्षर-नाम तथा लघु-गुरु मात्राएँ भी वार्तिकमें उल्लिखित हैं— जो कि सुटीकाओंके प्रधान अंग हैं। इन्होंने अपने विषयमें विशेष परिचय नहीं दिया, यहाँतक कि इतनी उत्कृष्ट टीका करते हुए समय तक भी नहीं लिखा। याज्ञिकत्रयके यहाँ सतसईकी टीका है—उसमें इनके टीका-निर्माण-कालका समय दिया हुआ है, वह 'मिश्रबंधु-विनोद' में इस प्रकार उद्धृत है—

'सत सत्रह द्वै आगरे असी बरस रविवार ;
कार्तिक-बदि-चौदस भए कबित सकल रससार।'

इससे निर्माणकाल १७८२ ठहरता है। महाराज जयसिंहका राजत्वकाल संवत् १७५५ से १७९९ तक है। इन्होंने अपनी टीकामें महाराज जयसिंहके वर्तमानकालकी क्रियाका व्यवहार किया है, और उनके मंत्री आयामल्लके आज्ञानुसार ग्रंथ बनाना स्वीकार करते हैं—

'एक दिना कविसों नृपति कही कही को जात ;
दोहा दोहा प्रति कहो कवित बुद्धि अवदात।'

इस प्रकार इस दोहेसे निश्चय होजाता है, कि यह टीका जयसिंहजीके राजत्व काल की ही बनी हुई है। बिहारीलालजीने जो सतसईमें महाराज जयसिंहके प्रशंसाके दोहे रक्खे हैं, उनके टीकामें इन्होंने जजियाकर छूटने, और कईएक घटनाओंका उल्लेख किया है। जजिया छूटनेका समय संवत् १७८० के लगभग है, और १७८७—८८ के पश्चात्की मुख्य-मुख्य घटनाएँ भी उल्लिखित नहीं हैं—इससे अनुमानतः सिद्ध होजाता है, कि यह टीका १७८५ से १७८८-८९ के लगभग बनी होगी। इनके टीकासे विदित होता है, ये कि काव्यगुणके पूर्ण-ज्ञाता थे; क्योंकि वार्तिकमें इन्होंने काव्यांगोंका पूर्ण-उल्लेख किया है। इनकी रचना टीका होनेपर भी स्वतंत्र रूपको लेकर अति सरस और मधुर हैं। भाषामें सरलता और चलतापन है। अनुप्रास, यमकादिके तरफ़ न झुकते हुए प्रसाद गुण बहुत अच्छा है। इन्होंने अपनी टीकामें विशेष रूपमें विषय समावेस कर अति उत्तम बनाया है। इनमें टीका अभ्यासके सिवाय स्वतंत्र आस्वादन

होता है। वास्तवमें ये बड़े ही सहृदय एवं काव्य-कला-कौशल-पूर्ण-कवि थे। इनका व्रजभाषापर पूर्ण अधिकार था। इन्होंने अपने सवैये-कवित्तोंमें अपने उपास्यदेवके भावसे श्रीराधाकृष्ण-संबंधी-वर्णन बहुत ही सँभालकर रस परिस्फुट किया है, क्योंकि ये महारस शृंगार प्रेम-माधुर्योपासक निम्बार्क-संप्रदायांतर्गत स्वामी श्रीहरिदासजीके परंपराके शिष्य थे। टीकामेंसे कुछ सवैये-कवित्त उद्धृत किये जाते हैं—

[सवैये-कवित्त]

नई लगी लगन रसिक मनमोहनसों उर अभिलाषनकी उमँग भरति है ; कुल की सम्हारकी सुरति आये शीरी होत अतिही बिकल जिय कल न धरति है। देखिबेकौं ढरति डरति मनही मनमें भरत उसास पै प्रकाश न करति है ; चाह कुलकाने बीच फिरकीलों बालबधू इतउत ऐंची ऐंची फिरिबो करति है।

जैसी जहाँ चाहियत तैसी तहाँ बनी बिधिहूँ पै धुनि आखर के न्याय बनिआई है ; सुखद सुहाई कापै बरनि बताई जाति रतिहूँ ने जाकी तिलु समता न पाई है। बाल छबि छाई तामें और अधिकाई दई दई या लुनाई माँझ कितनी मिठाई है ; सुंदर कन्हाई हौं तौ निरखि बिकाई वह रूपकी निकाई मानो देहधरि आई है।

एक पलौ न लगैं पलकैं ललकैं लखिबे किहि लागी चटी ;
नीरभरी निशि द्यौस रहैं न मिटैं तऊ भूरि तृषा उपटी।
आठहू याम तपैं तरफैं उपचारहू सों न घटैं न घटी ;
यह रीति लगी नहिं आँखिन को कोऊ पावक ब्याधि प्रलै प्रकटी।

खोयपरै मनमोहनहूं बहु भाँति हिये रसभाय भरे तौ ;
प्रीतिकी चोप चढ़ाय अलीन कही समझाय बिनै करि केतौ।
लोचन तेरे नऊ न चले अनखाय नचे अतिरोष रचे तौ ;
नेक चितै मृगनैन कितेते धरयो भरि मान इते तन एतौ।

आली बियोग भयो बनमाली को ब्याकुल बाल खरी अकुलाई ;
पाहन की पुतरी ह्वै परी उपचार बिचार कछू न बसाई।

ऐसे में वाहि दई सुधिदै सुध धाय पिया दुखराशि जगाई ;
वा निरदैसों कहा कहिये जिन प्रेम मरूरकी पीर न पाई ।

कान्ह कही अतिही हठकै तब राधिका के जिय में यह आई ;
ग्रीव नवाय दुराय कपोल किये नत नैन कछू मुसकाई ।
बीरी बनाय लई करकंज खवैबेको मंजुभुजा उकसाई ;
यों हितकी सरसाई बिलोकि भई मनमोहनके मनभाई ।

आज दुहूँको बिलास अली मैं दुरै दरश्यो कहते नहिं आवत ;
नंदलला अतिही हठकै वृषभानुकुमारि को पान खवावत ।
ओठनसों बिय अंगुलि छ्वै मुसकाय कै नैनसों नैन मिलावत ;
नासिका मोरि मरोरिकै भौंह करै तिय नाहिं त्यों त्यों सुख पावत ।

हरि खेलत फाग बधूगण में घस बासव केसरिरंग सनै ;
इत चाहभरी वृषभानुसुता उमँग्यो हरिके उत मोद मनै ।
जब नैनन में तकि डारयो लला अपने करसों बहराय घनै ;
अति बाढ़त है जऊ पीर तऊ वह काढ़त पै न गुलाल बनै ।

छबिसों कबि शीश किरीट बन्यो सुबिशाल हिये बनमाल लसै ;
करकंजहि मंजु रली मुरली कछनी कटि चारु प्रभाव बसै ।
कबि कृष्ण कहैं लखि सुंदर मूरति यों अभिलाष हिये सरसै ;
वह नंदकिशोर बिहार सदा यह बानिक मो हिय माँझ बसै ।

आज लख्यो व्रजराजकुमार सुदेश शृँगार बने सिगरे हैं ;
रूप की रीझ कही न परै अवलोक बिलोचन मोद भरे हैं ।
कृष्ण कहैं शिर सोहत मोर किरीट चँदा छबि पुंज धरे हैं ;
अक्स मनो शशिशेखर सों हर शेखर चंद अनेक करे हैं ।

घनश्यामने आपने शीशपै राखी बनाय कै चायनसों धरिहैं ;
जिन याको तू जी में गुमान करै अबतो सब जोम लखी परिहैं ।
कहि काहेको मोरकी चंद्रिका ऐंड़ि ढिठाई के ढार रही ढरिहैं ;
वृषभानुकुमारि के मान समै तरवार तरे लुठिबौ करिहैं ।

श्रीतानसेन

* छप्पै *

तानसेन प्रिय तान सुनत सचराचर मोहत ;
सुनत गान नर देव-जगत गँधर्व मग जोहत ।
पलटै विश्व विधान बिधि अग्नि जलै वारिद झरै ;
राग रागिनी सेव्य सबै इन आज्ञावत् कारज करै ।
श्रीस्वामी हरिदास शिष्य अरु अकबर प्रिय सब विश्व वद ;
ध्यावत सदा सकार ब्रह्म जस जगमें गावत भक्ति-प्रद ।

तानसेनजीका जन्म ग्वालियरके अंतर्गत कवि मकरंद पाँड़े गौड़ ब्राह्मणके यहाँ हुआ था। कहते हैं कि ये बाल्यावस्थामें किसी गुप्त-स्थानसे शेर एवं प्रत्येक जानवरोंकी बोलीमें कौतूहल-वश लोगोंको डराया करते थे; किसी समय कइएक साधु उस मार्गसे निकले, उन्होंने बोली श्रवणकर, जाकर देखा तो एक छोटा बालक पाया। वे उसके कर्तव्यपर आश्चर्यकर, होनहार समझकर, विद्या-शिक्षाके निमित्त वृन्दावन लाये। संस्कारवश गान-विद्यामें अत्यंत प्रीति थी, उसे स्वामी श्रीहरिदासजीसे सीखने लगे, और उन्हींसे मंत्र-दीक्षा लेकर शिष्य भी होगये। अल्प-दिवसमें-ही काव्य एवं गान विद्यामें निपुण होगए। पुनः ये कुछ दिन पश्चात् ग्वालियर गए, और वहाँ शेख मुहम्मद-गौससे भी कुछ गान-विद्या प्राप्त की, ये तंत्र-विद्यामें भी प्रवीण थे। मुसलमानोंने आचार्यदृष्टिसे शेख-साहिबको-ही इस विद्याका प्रवर्तक अपने इतिहासोंमें लिखा है। कहते हैं, कि शेखने विद्या सिखाते समय इनकी जीभमें अपनी जीभ लगा दी, उसी समयसे ये मुसलमान होगये। इनका पहला नाम त्रिलोचन था। ये अपने पितामहके संग ग्वालियर दरबारमें भी जाया करते थे, उस समय महाराज रामनिरंजन गद्दीपर थे; उन्होंने-ही इनके गानेपर प्रसन्न होकर तानसेनकी उपाधि दी थी—उसी समयसे इनका नाम तानसेन पड़ा। इन्होंने कुछ दिनतक बैजूबाबरेसे भी गान शिक्षा प्राप्त की थी। ग्वालियरसे दौलतख़ाँ शेरख़ाँ बादशाहके यहाँ गये, और वहाँ थोड़े दिन रहनेके पश्चात् बांधव-

नरेश रामसिंह-वघेलाके यहाँ चले गये, वहाँसे इनकी बहुत प्रसिद्धी होगई। अकबर बादशाहने इन्हें बुलाकर गाना सुना और मुग्ध होकर, अपने ही दरबारमें रख लिया। प्रायः इनकी सूरदासजीसे भी मिलन हुआ करती थी। एक समय इन्होंने सूरदासजीके प्रशंसामें यह दोहा कहा--

'किधौं सूरको सर लग्यो किधौं सूरकी पीर ;
किधौं सूरको पद लग्यो तन-मन धुनत शरीर।'

इसपर सूरदासजीने प्रसन्न होकर इनकी भी निम्न-दोहा बनाकर प्रशंसा की—

'विधना यह जिय जानिके शेषहि दिए न कान ;
धरा, मेरु सब डोलते तानसेनकी गान।'

इससे इनकी कविता-शक्ति भलीभाँति विदित होती है।

एकबार अकबर बादशाहने तानसेन द्वारा गान-विद्या एवं आत्म-शक्ति-संपन्न-महात्मापनेमें स्वामी श्रीहरिदासजीकी प्रशंसा सुनी और इनसेआग्रह किया कि स्वामीजीका गाना सुनाओ। तानसेनने आग्रह मानकर बादशाहको वृन्दावन लाए। स्वामीजी सदा भावमें निमग्न रहते थे। बादशाह और रंक दोनों उनके लिये तद्वत् थे। तानसेनने स्वामीजीसे गाना गवानेका उपाय सोचकर, उनके सामने पद गाने लगे और जान-बूझकर कुछ भूल गाया—इसपर स्वामीजीसे नहीं रहा गया, उन्होंने उसी पदको शुद्धकर पुनरावृत्ति की—ऐसी युक्तिकर बादशाहको इन्होंने स्वामीजीके मुखारविंदसे गाना सुनाया। बादशाहने कुछ देना चाहा; किंतु स्वामीजीने अस्वीकार कर दिया। कहते हैं, इसी समय स्वामीजीने बादशाहको दिव्य वृन्दावन दिखाया था। वहाँसे बादशाह श्रीरूप एवं सनातन गोस्वामी प्रभृति महात्माओंका दर्शनकर दिल्ली लौट गया। मुसलमान होनेपर भी तानसेन स्वामीजीको गुरू मानते थे।

इनके बनाये हुए तीन ग्रंथ कहे जाते हैं—१-'संगीतसार' (१६१७), २-रागमाला' (१६१७), और ३-'श्रीगणेशस्तोत्र'। वेंकटेश्वर प्रेस बंबईसे प्रकाशित रागरत्नाकरमें इनकी रागमाला प्रकाशित है। इनका विस्तृत-चरित्र श्रीनिम्बार्क संप्रदायांतर्गत स्वामी हरिदासजीकी परंपरा-गद्दी टट्टीस्थान वृन्दावनसे प्रकाशित 'निजमतसिद्धांत'—नामक ग्रंथमें छंदोवद्ध है—जो बहुत-ही ललितरूपमें वर्णन है। इनके द्वारा निर्मित रागमाला और कुछ गाना उद्धृत करते हैं—

[रागिनी—गौरी चौताल]

बंसीधर पीनाकधर गिरिधर गंगाधर नरहरी नरोत्तम हो हरिहर ;
खेड़ाधर बरखाधर धरनीधर शेषधर गले रुद्रमालाधर हो शिवशंकर ।
चक्रधर त्रिशूलधर वरुधर शंखधर चंदन विभूतिधर परमेश्वर ;
तानसेन को दीजे कृपा श्रो जगदोद्धर होश्रो तुमही विद्याधर ।

[राग—ललित चौताल]

भले जी भले श्राये हो मन भाये लाल रैन क्युं न दुलाए ;
सब रस दे श्राये श्रधर श्रंजन धुमावे कहा ना तुम जाए ठगाए ।
तुम नहीं जानत हमही जानत धाड़ो छेल बिछुश्राँ बनाय लाए ;
तानसेन कहे प्रभु श्ररुन उदय श्राए, कहाँ तुम रैन गुमाए ?

[रागमाला]

दोहा— भैरों शिवछवि शिर जटा श्वेत वसन त्रयनैन ;
मुंडनकी माला गरे सिंह रूप सुख दैन ;

शिव मूरति भैरोंको भाव बन्यो त्रयनैन सुमुंडकि माल गरे ;
पट श्वेत सबै तनुमें पहरे हिरदै भगवान्को ध्यान धरे ।
तिरसूल बिराजत है करमें सब भामिनिकी मति लेत हरे ;
मुख छार लगी द्युति दूनी भई चित चाहनमें छवि जात छरे ।

भैरवी— शिव पूजत कैलाशपर दोउ करनमें ताल ;
श्वेत चीर श्रँगिया श्ररुण रूप भैरवी बाल ।

बंगाली— भस्म-पिटारी कर गहे हाथ लिये तिरसूल ;
बंगाली व्याकुल भई गई सबै सुधि भूल ।

वैरारी— कदम-पुष्प कानन धरे कर कंचन शृंगार ;
शीश केश सोहत छुटे श्वेत वसन वैरार ।

मधुमाधवी-कंचन तनु लोचन कमल नागरि महाश्रनूप ;
पियपै बैठी हँसत है मधुमाधवी स्वरूप ।

सिंधवी-- कानफूल दुपहारिया पहिरे वस्तर लाल ;
क्रोधवंत तिरशूल कर रूप सिंधवी बाल ।

[मालकोश]

मालकोस नीले वसन श्वेत छरी लिय हाथ ;
मुतियन की माला गरे सकल सखी हैं साथ ।

कौसकको अपमान भलो तनु गौर विराजत है पटनीले ;
माल गरे कर श्वेत-छरी रस प्रेम छक्यो छबि छैल छबीले।
कामिनिके मन मोहत है सबकै मनभावत रूप-रसीले ;
भोर भये उठि बैठ्योही भावत नागर नायक रंगरँगीले।

टोड़ी-- टोडी कर वेणी गहे गावत पियके हेत ;
चंचल छबि मृगमोहनी पहरे बस्तर श्वेत।

गौरी— गौरी छबि अति साँवरी अंधकूप धरि कान ;
तृषावंत नित कामिको गावत मीठी तान।

गुनकली—छुटे केश शिर गुनकली बैठी पियके पास ;
नीची ग्रीवा करि रही अतिही चित्त उदास।

खंभायत—खंभायत गोरेवदन गावत कोकिलबैन ;
अति आतुर चातुर खरी कामवती दिनरैन।

कुकुवि-- कुकुवि नायका निशि समै जागी पियके संग ;
रति मानैके चहन अति अंग-अंग भे रंग।

[हिंडोल]

पीतवसन हिंडोलके है जु हिंडोले माँहिं ;
सखी झुलावैं चावसों गाय-गाय मुसकाँहिं।
कीन्हे बनाव महाछवि सुंदर भावते बैठ्यो हिंडोलहिं डोलै ;
झूल झुलावत औरनहूँ सब गावत हैं सखियाँ मुख खोलै।
गोरे जो गात दिपात भरी द्युति दामिनिसी मानौ पीत पटोलै ;
केलि करै अबला अलवेली अलोल सबै रस काम किलोलै।

रामकली—रामकली नीले-वसन कंचन सी सब देह ;
प्रियवाणी गावत उठी पियके परम सनेह।

पटमंजरी—विरहभरी पटमंजरी मन मैली तनु छीन ;
सखी सीख अति देत है भई प्रेम आधीन।

देवशाखि--पियके करपर कर धरे अति व्याकुल मनकाम ;
तनु दुर्बल देवसाखि है महाविरहनी नाम।

ललित-- ललित गरे माला पुहुप सुंदर तरुणी जानि;
गोरी छबि बस्तर-अरुण वदन मदनकी खानि।

बिलावल—कामदेवको ध्यान धरि पटते पटसंगीत;
करत श्रृँगार बिलावली नीलेवस्तर प्रीत।

[दीपक]

दीपक गजकी पीठपर बैठ्यो बागे लाल;
मुक्तमाल पहरे गरे चहूँओर रसबाल।

दीपकको परताप बड़ो चढ़ि बैठ्यो गयंदकी पीठ विराजै;
अंबररातो शरीर सबै मुकतानकी माल गरे छबिछाजै।
संग सखी सब सोहतहैं तिनमाहिं जो आय गयंदसो गाजै;
साँवरोरूप अनूप महाद्युति देखत दुःख दिगंतर भाजै।

देशी— देशीके वस्तर हरे कामसताई नार;
पतिको टेर जगावती मिस करि बारंबार।

नट— अरुन-वरन सगरे वसन नटवासी नरनारि;
ग्रीवा पकरे करनसों पिय तनु रही निहारि।

कान्हरो--शीशपत्र गजदंतको कर नाँगीतरवारि;
मोरकंठके वरन है रूप कान्हरो नारि।

केदारो-- शीश जटा सब तनु लटा गरे जनेऊ नाग;
केदारो इह रूप है धरै ध्यान वैराग।

कामोद-- कामवंत कामोदनी पीतवसन वनदास;
चहूँओर पियको तकत अतिही चित्त उदास।

[श्रीराग]

श्रीयरागके करकमल पुहुपरूप पट लाल;
बरस अठारहको तरुन गावत कंठरसाल।

वर्ष अठारहको तरुनौ मुख देखतही सबके मन भावै;
वाम सबै वश की अपने गुण गायकै भावते भेद बतावै।
रातो जो बागो विराजतहै करवारिज फूल लिये मुसकावै;
पुष्पके रूप स्वरूप बन्यो सबहीमें भलो श्रीराग कहावै।

धनाश्री— धनासरी रोवत खरी हिरदै विरह अपार ;
जब तनु पीरो ह्वै रह्यो निपट विरहनी नार ।
आसावरी – चंदनटीको भाल पर गरे नागको हार ;
छवि अति सुदर साँवरी आसावरी कुँवारि ।
मारू— मारूके माला गरे पिये प्रेम मधुमात ;
तरुणी सुंदर साँवरी बैठी अति अरसात ।
वसंत — मोरपंख शिरपर धरे वसन जु पीत वसंत ;
कानन मौर जु अंबके चहुँदिशि भौंर भ्रमंत ।
मालसरी—मालसरी दुर्बलवदन सखी हाथपर हाथ ;
अंबतरे बैठी रहत बिछुरे पियको साथ ;

[मेघ]

श्यामवसन है मेघको गहै हाथ तरवारि ;
अति आतुर चातुर खरो गावत सुरति विचार ।
मेघमलार महाद्युति सुंदर इंद्रहिकी छवि आप बनो ;
पहरे पटश्याम गहे तरवाहि जु ग्रंथनमें इहिभाँति भनो ।
जैसो जहाँ चहिये सोइ अंग सु तैसिय भाँति ते ठीक ठनो ;
कामको आतुर है अतिही तियके रतिको चित चाव वनो ।
भोपाली—भोपाली विरहनि बड़ी केशरि गेरे चीर ;
भयो विरहकी ज्वालतैं पियरो सबै सरीर ।
गूझरी — विरह सताई गूजरी रोवत छूटे केश ;
कामदेव कानन लग्यो इहै दियो उपदेश ।
देशकार— देशकार कंचन वरन खेलत पियके संग ;
हिय हुलास जो कामकी चढ़यो चौगुनो रंग ।
मलार — वीन गहे गावत बहुत रोवत है जलधार ;
तनु दुर्बल विरहा दही विरहिनि नारि मलार ।
टंक — सेज विछाई कमलदल लेटि रही मन मारि ;
लेत उसास जु सीयसे टंक वियोगिनि नारि ।

श्रीरसखान

* छप्पै *

अलीखान पाठान सुता सह ब्रज रखवारे;
*शेषनवी **रसखान** मीर अहमद हरिप्यारे।*
निर्मलदास कवीर ताजखाँ बेगमवारी;
तानसेन कृष्णदास बीजापुर—नृपतिदुलारी।
पीरजादी वीवीरास्तो पदरज नित सिर धारिए;
इन मुसलमान हरिजन पै कोटिन हिंदून वारिए।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

इन मुसलमान भक्तों-मेंसे श्रीरसखानका जन्म दिल्लीमें हुआ था। ये एक बड़े पाठान सरदार थे। इन्होंने प्रेमवाटिकामें अपनेको बादशाही-वंशका कहा है—जैसाकि उक्त दोहे से प्रगट है—'देखि गदर हित साहिबी दिल्ली नगर समान; छिनहिं बादशा-वंशकी ठसक छाड़ि रसखान।' इन्हें बहुत लोग सैयदइब्राहीम पिहानवाले भी समझते हैं, किन्तु वे नहीं हैं, यदि होते तो—वैसा परिचय अवश्य देते। उपरोक्तदोहेके अनुसार बादशाही वंशका पाठान होना ही ठीक है। इन्होंने प्रेमवाटिकाका निर्माण-काल एक दोहेमें इसप्रकार दिया है, यह बहुत पुष्ट प्रमाण है—"विधुसागर रस इंदु शुभ बरस सरस रसखानि, प्रेमवाटिका रचि रुचिर चिर हिय हरख बखान।" इससे प्रेमवाटिका का निर्माणका समय सं० १६७१ ठहरता है। इस सम्वत्से तीस-पैंतीस बर्ष के लगभग इनका जन्म समय मान लेना ही युक्तियुक्त है। क्योंकि ये युवा-वस्थामें ही खराब चाल-चलनमें फंसे थे, और इसी समय इनके मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। कोई कोई १६४० भी इनका जन्म-सम्वत् कहते हैं, और मरण सम्वत् १६८५। कविताकौमुदीकारका यही मत है। इन्होंने अपना विरक्त होकर ब्रजवासका परिचय, कब और किसप्रकार कृष्णभक्त हुये, और कहां रहे, कुछ भी अपने दोहे सवैयोंमें नहीं दिया है। २५२ वैष्णवोंके वार्ताके आधारपर कवि-परिचय लेखकोंमें इन्हें गो० श्रीविट्ठलनाथजीका शिष्य होना, लिखनेकी परंपरा चल

पड़ी है, किन्तु इनके जन्म-मरण और कविताकालका सम्वत् एवं गोस्वामी विट्ठलनाथजीका गोलोक-गमन-सम्वत् मिलान करनेसे गोस्वामीजीके शिष्य ये नहीं ठहरते। क्योंकि सं० १६७१ में इन्होंने प्रेमवाटिका की रचना की, अथवा १६४० में इनका जन्म हुआ, और गोस्वामी विट्ठलनाथजीका गोलोक-वास सं० १६४३ में ही होगया था—इसलिये अति बाल्यावस्थामें शिष्य होना ठीक नहीं जँचता, क्योंकि तीस बत्तीस वर्षकी अवस्थामें तो इन्हें वैराग्य हुआ होगा यदि इनके कविताकालसे मान लिया जाय कि, अंतिम समयसे अंतिम समय आकर शिष्य हुये तो ३१-३२ वर्ष पीछे कविता करना क्यों प्रारम्भ की, इतने दिन तक कवित्व-शक्ति नहीं थी? कहते हैं कि, इनमें तो दिल्ली परित्यागकर वृन्दाबन आते ही कवित्व-शक्ति विकसित हुई, और भक्ति स्फूर्तिकी अविरल-धारा प्रवाहित होने लगी। सम्भव है, विट्ठलनाथका शिष्य कोई अन्य रसखान हो सकता है, किन्तु इस ग्रंथमें प्रकाशित सवैये-कवित्तोंके रचयिता रसखान तो वृन्दावन-वासी ही रसखान थे।

वैराग्य उत्पन्न, और दिल्ली परित्याग करनेकी, इनके विषयमें दो आख्यायिकाएँ प्रसिद्ध हैं। एक २५२ वैष्णवोंकी वार्ताके आधारपर श्रीनाथ जी का चित्र देखना, और गोवर्द्धन आकर गोस्वामी विट्ठलनाथजीका शिष्य हो जाना। दूसरी कहीं श्रीमद्भागवतकी कथा श्रवणकर, भक्ति उदय होना, और वृन्दावन आकर आजन्म निवास करतेहुये, बिहारीजीका दर्शन करना, एवं रसिकोंका शरणागत हो जाना। यही वार्ताके विषयमें उदयनारायण तिवारी एम० ए० साहित्यरत्न द्वारा सम्पादित, और तरुण-भारत ग्रंथावली प्रयाग द्वारा प्रकाशित, रासपंचाध्यायी और भ्रमरगीतके भूमिकामें लिखा है- "दो-सौ-बावन-वैष्णवोंकी वार्ता की ऐतिहासिक प्रमाणिकतापर, डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा एम० ए० का एक बहुत ही सारगर्भित लेख, 'हिंदुस्तानी' पत्रिकामें अप्रेल सं० १६३२ में प्रकाशित हुआ है। उसका शीर्षक है--'क्या 'दोसौ बावन वैष्णवोंकी वार्ता' गोकुलनाथ कृत है?" इस लेखमें डाक्टरसाहब लिखते हैं—' अब मैं एक ऐसा प्रमाण देना चाहता हूं, जो व्यापक रूपसे समस्त ग्रंथ पर लागू होता है, और जिससे स्पष्ट रीतिसे यह सिद्ध हो जाता है कि, ८४ वार्ता तथा २५२ बार्ता

के रचयिता दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे, २५२ वार्ता निश्चित रूपसे सत्रहवीं सताब्दी के बाद की रचना है। 'व्रजभाषाका विकास' शीर्षक खोज ग्रंथकी सामग्री जमा करते समय मैंने चौरासी तथा दोसौ बावन वार्ताओंके व्याकरणके ढाँचों का भी अध्ययन किया था। इस अध्ययनसे मुझे यह बात आश्चर्यजनक मालुम हुई कि, दोनों वार्ताओंके व्याकरणके अनेक रूपोंमें बहुत अन्तर है।"

इसके बाद व्याकरणके रूपों तथा वाक्योंकी तुलना करतेहुये वर्माजी इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं, कि दोसौ बावन — वार्ता गोकुलनाथ-कृत नहीं हो सकती। कदाचित् चौरासी वार्ताके अनुकरणमें सत्रहवीं शताब्दीके बाद किसी वैष्णव भक्तने इसकी रचना की होगी।

वार्ताकी प्रमाणिकतापर दूसरे ढंगसे विचार करतेहुये हिन्दीके विद्वान् आलोचक तथा इतिहास लेखक पंडित रामचंद्र शुक्ल भी इसी निष्कर्षपर पहुँचे हैं। आप अपने हिन्दी-साहित्यके इतिहासमें लिखते हैं— 'गोस्वामीजीका नन्ददासजीसे कोई सम्बन्ध न था, यह बात पूर्णतया सिद्ध हो चुकी है। अतः उक्त वार्ताकी बातोंको, जो वास्तवमें भक्तोंका गौरव प्रचलित करने और वल्लभाचार्यकी गद्दीकी महिमा प्रगट करनेके लिये पीछेसे लिखी गई है, प्रमाण कोटिमें नहीं ले सकते।"

उपरोक्त वार्ताके विषयमें लिखा जा चुका। अब यह बात स्पष्ट हो जाती है, कि केवल सांप्रदायिक गौरवको स्थापित करनेके लिए पीछेसे वार्ता लिखी गईं हैं। वार्तामें तुलसीदाससे नंददासजीके भाई होनेका सम्बन्ध जोड़ा गया है, पर वास्तवमें नंददासजीका तुलसीदासजीके साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। ऐसा जान पड़ता है, कि गोस्वामी तुलसीदासजीकी अत्यधिक प्रतिष्ठा संवृद्धि होते देखकर पीछेसे किसी वैष्णव-भक्तने उनका नंददासजीके साथ इस प्रकारका संबंध जोड़ दिया है।"

हमें भ यहाँ वार्ताकी प्रमाणिकतामें शंका करनी थी— उक्त विषय, अन्य साहित्य-महारथियोंके द्वारा ही हो चुकी। ऐसेही रसखानजीकी श्रीविट्ठलनाथजी के साथ कोई संबंध नहीं था, रसखानकी प्रसिद्धि देखकर अपने सम्प्रदायमें सम्मिलित करना ही दोसौ-बावन-वैष्णवोंकी-वार्ता-कारका ध्येय था।

दूसरे आख्यायिका उनके वृन्दावनवासका वियोगीहरिजीने ब्रजमाधुरी-सारमें इसप्रकार लिखा है—"ये जिस स्त्रीपर आसक्त थे--वह बड़ी अभिमानिनी और रूपगर्विता थी, वह सदा इनके प्रेमका अनादर किया करती थी। एक दिन ये श्रीमद्भागवत्के फारसी उल्थेको पढ़ रहे थे, उसमें गोपियों के विरहका प्रसंग आया, उसे पढ़कर इनके मनमें यह समाया, कि जिस नन्दके फरजंदपर हज़ारों हसीन गोपियां मर रही हैं—उसीसे इश्क क्यों न करना चाहिए। बस इसी भक्ति-भावनामें मस्त होकर उस स्त्रीको छोड़ दिया और वृन्दावन चले आये। इस प्रसंगके संबंधमें अपनी प्रेमवाटिकामें ये लिखते हैं।

"तोरि मानिनीते हियो फोरि मोहिनी मान ;
प्रेमदेवकी छबिहिं लखि भए मियाँ रसखान।"

जो हो इसमें सन्देह नहीं कि ये प्रेमका पूरा लुत्फ उठा चुके थे। इश्क-मजाज़ीको इश्क-हकीकी की तरफ मोड़ दिया था। संसारी-प्रेमको दिव्य-प्रेममें परिणित कर दिया, फिर क्या सच्चे रसखानि हो गये।" यही प्रसंग ठीक भी है इनके दोहासे भी प्रगट होता है। ईश्वरी प्रतापनारायणरायजी पड़ोनानरेशने अपने सर्वप्राचीन उल्था भक्तमालमें भी वृन्दावन आनाही लिखा है, उसमें इनके माला-निष्ठाका भी एक प्रसंग उद्धृत है, वे लिखते हैं, कि इनसे कोई पूछता था कि 'इतने विशेष माला क्यों पहिरते हैं?' ये उत्तर देते थेकि-"इसे जो पहिरता है, वह पापसे मुक्त हो जाता है, हम बहुत पापी हैं--इसलिये विशेष माला पहिरते हैं।" इसीप्रकार और कई साहित्य-लेखकोंने इन्हें वृन्दावन आकर यहीं निवास करना ही लिखा है। यहां ये निम्बार्क—सम्प्रदायके रसिकोंमें रहे और उन्हींसे शिक्षा-दीक्षा प्राप्तकर शृंगाररसके भावोंमें निमग्न रहने लगे। विहारीजीके दर्शनोंमें इनकी अत्यन्त प्रीति थी, और उन्हींके स्वरूपसागरमें गोता लगाते थे। अपने सवैयोंमें भी इन्होंने विशेषकर रसमाधुरीको ही उल्लेख किया है, इन्हें यहांके रसिकोंकी वाणियें अति प्रिय थीं, उपासना दृष्टिसे उनके भाव लेकर रचना भी किया करते थे। श्रीनिम्बार्क-संप्रदायाचार्य रसवाणी प्रवर्तक श्रीभट्टजी लिखते हैं—"प्यारीजूके चरण पलोटत मोहन।" इसपर रसखानजी लिखते हैं—"ब्रह्ममें ढूंढ़ि पुरानन पाठसु वेद-रिचा पढ़ि चौगुन चायन ; जानु नहों वहि कैसिहि चालजु कैसहि रूपजु कैसनुभायन। हेरत-हेरत हार परयो

रसखानि बतायो न लोग लुगायन; देख्यो तहां दुरि कुंज कुटीर सुबैठ्यो पलोटन राधिका पायन।" इसीप्रकार श्रीराधा—गोपी एवं श्रीकृष्णके संवाद एवं रसश्र-विलसनके माधुरीसे परिपूर्ण है।

ये अत्यन्त प्रेमीकवि थे, इनका लौकिक-प्रेम परिवर्तन होकर, दुर्लभ भगवद्भक्ति में परिणित होगया। इनकी कविता प्रसाद गुणसे परिपूर्ण है, शब्दाडम्बर से दूर रहते हुये एक-एक पदमें अनेक एवं सुन्दर भावोंको बहुतही विलक्षण रूपसे समावेश किया है। इन्होंने शुद्ध व्रजभाषामें कविता की है। घनानन्द और इनकी कवितामें जैसी व्रजभाषा की शुद्धता है-वैसा अन्य कवियोंकी कवितामें प्राप्त होना असम्भव है। सवैये कंठ करनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके पास इनके एक-दो सवैये जरूर प्राप्त होंगे। इनके द्वारा निर्मित 'सुजानरसखान' और प्रेमवाटिका', निम्बार्क-संप्रदायानुयायी पं० श्रीकिशोरी-लालजी गोस्वामी प्रकाशित किये थे। टट्टीस्थानसे भी इनके सवैये प्रकाशित हुये थे। कुछ सवैये उद्धृत किये जाते हैं—

[सवैये]

शेष, महेश गणेश, दिनेश, सुरेशहु जाहि निरंतर ध्यावैं;
जाहि अनादि, अनंत, अखंड, अछेद, अभेद सुवेद बतावैं।
नारदले शुक व्यास रटैं पचिहारि तऊ पुनि पार न पावैं;
ताहि अहीर कि छोहरियां छछिया भरि छाछपै नाच नचावैं।१
गुंजगरे शिर मोरपखा अरु चाल गयंदकि मोमन भावैं;
श्याम सुनंदकुमार सबै व्रजमंडलमें ब्रजराज कहावैं।
साज जमाज सबै शिरताज सुलाज कि बात कही नहि आवैं;
ताहि अहीरकि छोहरिया छछिया भर छाछपै नाच नचावैं।२
आज गई हुतिभोरहि हों रसखानि रई कहँ नंदके छौना;
जासु जियो युगलाख करोर यशोमति को सुख जात कहौना।
तेल लगाय लगाय सुअंजन भौंह बनाय बनाय डिठौना;
डार हमेल निहारति आनन वारति ज्यों चुचकारति छौना।३
धूरिभरे अति सोहत श्याम जुतैसि बनी शिर सुन्दर चोटी;
खेलत खात फिरैं अँगना पग पैजनियां कटि पीरि कछोटी।

वा छविकों रसखानि विलोकत वारत कामकलानिधि कोटी ;
काग सुभाग कहा कहिये हरि हाथ सौ लैगयो माखनरोटी ।४
एकहि एक अनेक रहे सब दीखि सखा सँग लीन कन्हाई ;
आवत ही कहँ लाग कहों अब यों न सहें अतिकी अधिकाई ।
खाय दही मटकी पटकी नहि छोड़त चीर दिवाय दुहाई ;
सोंह यशोमति दै रसखानि सुभाग मरूकर छूट न पाई ।५
लोक कि लाज तजी तबही जब देख सखी ब्रजचंद सलोना ;
खंजन मीन सरोजन की छवि गंजन नैन लला दिन होना ।
को रसखानि निहारि सकै जु सँमार कियो वह रूप सटोना ;
भौंह कमान सुजोहन कों शर वेधत प्राण न नंद कौ छोना ।६
सोहत है चँदवा शिरमोर सुतैसिहि सुंदर पाग कसी है ;
तैसिहि गोरज भाल विराजत तैसि हिये बनमाल लसी है ।
वौरि भई रसखानि विलोकत मूंद सुनैनन नारि हँसी है ;
खोलरि घूँघट खोलूँ कहा वहि मूरत नैनन मांझि बसी है ।७
भौंहभरी वरुनी सुलखी अतिकै अधरान रँग्यो रँगरातौ ;
कुंडल लोल कपोल महाछवि कुंजनते निकस्यो मुसक्यातौ ।
खोयगयो रसखानि लखैं मन भूलिगई तनुकी सुधिसातौ ;
फूटिगयो दधिको शिर भाजन टूटथोहु नैनन लाज सुनातौ ।८
जादिन ते निरख्यो नंदनंदन कान तजी घर-बंधन छूटथो ;
चारु विलोकन कीन सुमार सँमार गई मनमारन लूट्यो ।
सागर को सरिता जिमि धावत रोकरही कुलको पुल टूट्यो ;
मत्त भयो मन संग फिरै रसखानि स्वरूप-सुधारस घूट्यो ।९
बांकि विलोकन रंगभरी रसखानि खरी मुसिक्यान सुहाई ;
बोलन बैन अमीरस दैन महा रसऐन सुने सुखदाई ।
कुंजन में पुरवीथिन में पिय गोहन लाग फिरौंरि हिमाई ;
बाँसुरी-टेर सुनाय अरी अपनाय लई ब्रजराज कन्हाई ।१०
देखन को सखि नैन गये सुसने रज आवत गाइन पाछें ;
कान भये इन बातन के सुन वैन अमीनिधि बोलत आछें ;

पै सजनी न सँभार परै वह बांकि विलोकन कोर कटाछैं;
भूमि भयो न हियो यह आलि जहां पिय खेलत काछनि काछैं।११

खंजन नैन फँदे छबि पिंजर नाहिं रहैं थिर कैसहु माई;
छूटगई कुलकान सखी रसखानि लखी मुसिकान सुहाई।
चित्र लखीसी भई सब देह न बैन कढ़ैं मुख दीन दुहाई;
कैसि करौं जित जाउँ तितैं सब बोल उठैं यह बावरि आई।१२

बंक विलोचन हैं दुखमोचन दीरघ लोचन रंग भरे हैं;
घूमत बारुणि पान किये जिमि झूमत आनन रंग ढरे हैं।
गंडन पै झलकैं छबि कुंडल नागरि नैन विलोकि अरे हैं;
बालनिके रसखानि हरे मन ईषद हांसि कि फाँसि परे हैं।१३

अति लोक कि लाज समूह सु घेरिजु राख थकी सब संकटसों;
पलमें कुलकान कि मेड नखी नहि रोकि रुकी पलकैं पटसों।
रसखानि सुकेति उचाट रही उचटी न सकुचकि ओचटसों;
अति कोटि करी हटकी न रही अटकी अँखियां लटकी पटसों।१४

आज सखी नँदनंद लखे वह ठाढ़ सु कुंजन की परछांहीं;
नैन विशाल कि जोहन को शर वेधि गयो हियरा जियमांहीं।
घायल घूम घुमार गिरी रसखानि सँभार रह्यो तनु नांहीं;
तापर वा मुसक्यान कि डोंडि बजी ब्रज में अबला कित जाहीं।१५

जादिन ते मुसिक्यान चुभी उर ता दिन ते जु भयो ब्रजवारी;
कुंडल लोल कपोल महा छबि कुंजन तें निकस्यो सुखकारी।
हों सखि आवतहीं वगरै पग पैंड तजी रिझई वनवारी;
सो रसखानि परी मुसिक्यान जु कौन गनें कुलकान बिचारी।१६

है किन लाल सलोन सखी यह जाकि बड़ी अखियाँ अनियारी;
जोहन बंकि विशाल सुवानन बेधत है हिय तीच्छण भारी।
है रसखानि सँभार न चोट सु कोटि उपाय करौ सुखकारी;
भाल लिखो विधि नेह सु बंधन खोल सकै अस को हितकारी।१७

मैन मनोहर वेणु बजै सु सजै तनु सोहत पीतपटा है;
यों दमकैं चमकैं झमकैं द्युति दामिनि की मनु श्यामघटा है।

है रसखानि महामाधुरी मुसिक्यान करै कुलकानकटा है ;
ये सजनी ब्रजराजकुमार अटा चढ़ि फेरत लालपटा है ।१८

नैन लखो जब कुंजन ते बनिकें निकस्यो मटको मटक्योरी ;
सोहत केश हरा टटको शिर तैसुहि क्रीट लसै लटक्योरी ।
को रसखानि रहै अटक्यो हटक्यो ब्रजलोग परे भटक्योरी ;
रूप अनूपम वा नटको हियरे अटक्यो अटक्यो अटक्योरी ।१९

एक दिना मुरली-धुनिमें रसखानि लियो उन नाम हमारौ ;
ता दिन ते यह बैरिनि सासु सुभाकन देत नहीं निजद्वारौ ।
होत चबाव बलाय सों आलिहि जो मिलि भेंटिये नंददुलारौ ;
डीठ परेहि लगो चटकौ खटकौ हियरे पियरेपटवारौ ।२०

कानन दै अँगुरी रहिहों जबही मुरली-धुनि मन्द बजैहैं ;
मोहन तातन सों रसखानि अटा चढ़ि गोधन हेरत गैहैं ।
टेर कहों सिगरे ब्रजलोगन काहि सु चौंक कितौ समझैहैं ,
माइरि वा मुख की मुसिक्यान सँमारन जैहि न जैहि न जैहैं ।२१

नैनन बंक बिशाल सुवानन झेल सकै वहि कौन नवेली ;
बेधत हैं हिय तीक्षण कोर सुमार गिरी तह के तक हेली ।
छोड़ि नहीं क्षणहूँ रसखानि सु लागि फिरै द्रुमसों जिमि वेली;
सोर परी छबि की ब्रजमण्डल कुण्डल गण्डन कुन्तल केली ।२२

सुन्दर श्याम सजे तनु मोहन जोहन में चिर चोरत हैं जू ;
बांकि विलोचनक अवलोकन नीक अनी दृग जोरत हैं जू ।
त्यों रसखानि मनोहर रूप सु मारग ते मन मोरत हैं जू ;
काज समाज सबै कुल लाज लला ब्रजराज जु तोरत हैं जू ।२३

मकराकृतकुण्डल गुंज कि माल सु लाल लसैं पग पांवरियां ;
बछरान चरावन के मिस भावत दै गयो भावति भांवरियां ।
रसखानि विलोकतही सिगरी भइ बावरियां ब्रजडागरियां ;
सजनी सब गोरस या ब्रजमें बिखरा यहु नन्द कि सांवरियां ।२४

कानन कुण्डल मोरपखा शिर कण्ठ सु माल विराजत है जू ;
है मुरली करमें मुसिक्यान सु रंग महाछवि छाजत है जू ।

पीतपटा रखखानि लखै शत दामिनिकी द्युति लाजत है जू ;
वांसुरिकी धुनि कान परें कुलकान हियो तजि भाजत है जू ।२५
बजी सुबजी रसखानि बजी सुनिकें अब गोकुल बाल नजी है ;
नजीह कदाचित काननको अब कान परी वह तान अजी है ।
अजीह बचाव उपाव नही अबलां पर मैनन सेन सजी है ;
सजीह हमार कहा वश है जब वैरिनि बांसुरि फेरि बजी है ।२६
आज अली यक गोपलली भइ बावरि नेक न अंग सँभारै ,
मात अघात न देवन पूजत सासु सयानि सयानि पुकारै ।
यों रसखानि फिरो सिगरो ब्रजआन कुआन उपाव विचारै ;
कोउ न कान्हरके करते वहि बैरिनि बांसुरिया गहि डारै ।२७
कौन ठगौरि करी हरि आज बजाय सुबांरिसुया रसभीनी ;
कान परी जिनके जिनके तिनही तिन लाज बिदा कर दीनी ।
घूम खड़ी सुखड़ी नँद-द्वार नवीन कहा कहुँ बाल प्रवीनी ;
या ब्रजमण्डलमें रसखानि सुकौन भटू जु लटू नहिं कीनी ।२८
ए सजनी वहि नन्दकुमार सु या बन धेनु चराय गयो है ;
मोहनि-वानन गोधन गायन वेणु बजाय रिझाय गयो है ।
ताहि घरी कछु टोन करयो रसखानि हिये सुसमाय गयो है ;
कोउ न काहु कि कानि करै सिगरौ ब्रज वीर बिकाय गयो है ।२९
मोहनकी मुरली सुनके वहि बावरि आन अटा चढ़ि झांकी ;
गोपबड़ेन की डीठ बचाय सुडीठहि डीठ जुरी चहुँ घांकी ।
देखत मोल विकीं अँखिया कर लाज करै अरु कान कहा की ;
कौन छुटाय सकै अटकी रसखानि दुहूँ कि विलोकनि बांकी ।३०
वेणु बजावत गोधन गावत बालन के सँगमें इत आयो ;
वांसुरिके बिच मेरु इनाम सुसाथिनके मिस टेर सुनायो ।
ए सजनी सुनि सासुके त्रास न नन्द सुपास उशास न आयो ;
कैसि करों रसखान तहीं हित चैन नहीं चित चोर चुरायो ।३१
नेक स्वभाव चितै चित चोरत लाल निहार सुवंशि बजाई ;
वादिन ते मुहि लागि ठगौरि नु लोग कहै लखि बावरि आई ।

यों रसखानि घिरो सिगरो ब्रज जानत है जियको जियराई ;
कोउ जु चाहु भलौ अपनौ अब नेह न काहु सुकीजियो माई ।३२
जब कान्ह भये वश बाँसुरिके अब कौन सखी हमको चहिहै ;
वह राति दिना सँग लागि रहै यह सौत कौ शासनको सहिहै ।
जिन मोहि लियो मनमोहनकौं रसखानि सुक्यों न हमैं दहिहै ;
मिलि आव सबै कहिं भाग चलौ अबतौ ब्रजमें बँसुरी रहिहै ।३३
सुनरी पिय मोहन की बतियां अति ढीठ भये नहिं कान करै ;
निशवासर औसर देत नहीं छणही-छण द्वार सु आन अरै ।
तिनसो मति नागरि डौंड़ि बजी ब्रजमण्डल में यह कौन भरै ;
अब रूप किशोर परी रसखानि कहां लगि राखिय लाज घरै ।३४
आवहु तो नियरे रसखानि कहा कहुँ तू न गई वहि ठैया ;
या ब्रजकी बनिता जहँ देख सुवारहिं प्राणन लेहिं बलैया ।
कोउ न काहु कि कान करें कछु चेटकसौ जु करयो यदुरैया ;
गायव तान जगायव नेह रिझायव प्राण चरायव गैयां ।३५
हेरत बारहि-बार उतै यह बावरिबाल कहा सु करैगी ;
जो कहुँ देख परयो रसखानि सु क्योंहु न वीररि धीर धरैगी ।
मानहि काहु कि कान नहीं जब रूप ठगी हरि रङ्ग ठगैगी ;
याहि कहां सिख मान भटू यह हेरन तेरिहि पैंड परैगी ।३६
रङ्ग भरयो मुसिक्यात लला निकस्यो कल कुञ्जन ते सुखदाई ;
मैं तबही निकरी घरते तक नैन बिशाल कि चोट चलाई ।
घूम गिरी धरणी हिरणी रसखानि सुवान लगे जिय माई ;
टूटि गयो घरको सब बंधन छूटि गई कुललाज बड़ाई ।३७
आज सखी ! इक गोपकुमार सु रास रच्यो इक गोपके द्वारें ;
सुन्दर बानिक सो रसखानि बन्यो वहि छोहर भाग हमारें ।
ए विधि नो जु हमें हँसती अब नेक कहूँ उत को पग धारें ;
ताहि वदौं फिर आव घरै विनही तनु औ मन जोवन वारें ।३८
वहि गोधन गावत गोधन में जब ते यह मारग ह्वै निकस्यो ;
तब ते कुलकान कितीह करों नहिं मानत पापि हियो हुलस्यो ।

अबतौ जु भई सु भई कहि होतहि लोग अजान हँस्यो सुहँस्यो ;
यह पीर न जानत जानत सो जिहिके हियमें रसखानि बस्यो ।३६
आज रि नन्दलला निकस्यो तुलसी वनते मृदुही मुसिक्यातो ;
देखत नैन बनै कहिते कछु सो सुख जो मन में न समातो ।
हौं रसखानि विलोकनको कुलकान सु काज कियो हिय हातो ;
आय गई अलबेलि अचानक ए भटु लाज कि काज कहातो ।४०
समभी न कछू अजहू हरिसों ब्रज नैन नचाय नचाय हँसै ;
नित सासु कि गौरि उशासनसों दिनही दिन या तनु कांति नसै ।
चहुँओर बबा किहि सोर सुने दिन में रहि आवत रीस कसै ;
अब काहि कहौं रसखानि विलोकि हियो हुलसै हुलसै हुलसै ।४१
बांकि कटाक्ष चितै बसिगो बहु ता बरजो हित के हितकारी ;
आपनही ठिटकी रसखानि सिखावन दै दिन हौं पचि हारी ।
कौन सि सीख सिखी सजनी अजहूँ तजि दे बलिजाँउ तिहारी ;
नन्दन नन्दके फन्द कहूँ पर जैहि अनोखि निहारनहारी ।४२
नवरंग अनंग भरी छवि सौं वह मूरति आंखि गड़ीहि रहै ;
बतियां मनकी मनही सु रही घतियां उर बीच अड़ीहि रहै ।
तब हौं रसिखानि सुजान अली नलिनी जल बूंद पड़ीहि रहै ;
जिय की नहि जानत हौं सजनी रजनी असुआन पड़ीहि रहै ।४३
आवत हैं बनते मनमोहन गोहन संग लसें ब्रजग्वाला ;
वेणु बजावत गावत गीत अमीत इतै करिगो कछु ख्याला ।
हेरत टेर थकी चहुँओर सु भाँकि भरोखन ते ब्रजबाला ;
देख सु आननको रसखानि तज्यो सब द्योस जुताप कसाला ।४४
वंशि बजावत आन कढ्योरि गली सुछली कछु जादु सुडारैं ;
नेक चितै तिरछी कर भौंह चल्यो गयो मोहन मूठिसि मारैं ।
वाहि घरीहि परी वहि सेज सुबोल न डोलहि आननवारैं ;
जो यह जीह तो जीह सबै नहिं पीह सबै विष नन्द सुद्वारैं ।४५

श्रीकृष्णदासजी

छप्पय

श्रीललिता पद-पद्म भक्ति दृढ़ हियमें धार्‌यो,
सरस छंदमें सुयश गाय रसिकन प्रतिपार्‌यो।
श्रीमाधुर्य मनु धरि वपु काव्य रूप प्रगटायो,
गोपेश्वर संज्ञा प्रधान रस झर वरसायो।
कृष्णदास मनो नित्यबिहारी जस गावन हित प्रगट जग,
भये पार भव-उदधि नर इन लीन्हें पावन-शरण-मग।

मिर्जापुरमें गंगा-तटपर एक वृहद् प्राचीन मन्दिर है। यह श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायके किसी विरक्त वैष्णव-महात्मा द्वारा बनवाया हुआ है। श्रीकृष्णदासजी इसी प्रसिद्ध-स्थानके महांत थे। इसी स्थानमें दिग्विजयी महंत श्रीबाल-कृष्णदासजी शास्त्री, और लाखों श्लोकोंके रचयिता पं० महंत श्रीगिरधारीदासजी प्रभृति बड़े-बड़े जगत्प्रसिद्ध विद्वान हो गये हैं। यह स्थान विद्वान महंतोंके लिये प्रसिद्ध ही है। श्रीकृष्णदासजीने माधुर्यलहरीमें अपना परिचय इसप्रकार दिया है। इससे विशेष उपलब्ध नहीं होता—

बिंध्य निकट तट सुर्धुनी गिरिजापत्तन ग्राम;
हरिभक्तनके आश्रय कृष्णदास विश्राम।
ग्रंथमाधुर्यसुलहरि अस कहिये जाको नाम;
कृष्णदास सुख श्रीकृपा प्रगट भयो ता ठाम।
अष्टादशसह संवत् अरु पुनि बावन संग;
भाद्र-मास सुखसिंधु श्रीजन्मारंभ तरंग।
तिरपन संबत्‌को अमल अति वैसाख सुमास;
लहरिमाधुरी सुख लह्यो संपूरन मन आस।

इसप्रकार माधुर्यलहरीको इन्होंने संवत् १८५२ से आरंभकर संवत् १८५३ वैसाखमें, इस वृहद् ग्रंथको विविध छंदोंमें निर्माणकर पूर्ण की। इसमें

नित्यविहारी श्रीराधाकृष्णका विहार बड़ी ही चित्ताकर्षक, प्रसाद माधुर्य-गुण मंडित–भाषामें वर्णन की गई है। ये पूर्ण-भक्ति-सिद्ध महात्मा थे। इनको श्रीललिताजीने साक्षात् दर्शन दी थी—यह इनकी वाणीसे स्पष्टतः झलकती है। इस वाणीमें नित्यविहार-उपासना-दृढ़ता एवं अनिर्वचनीय माधुर्य ऐश्वर्य सामञ्जस्य-पूर्ण वर्णनकी विसद पराकाष्ठा है। ये नित्यविहार धाम, लीलाके पूर्ण भावुक थे।

इन्होंने श्रीवृन्दावनमें भी एक स्थान बनवाया है, इसमें श्रीललिताजी की प्रधान सेवा है। यह स्थान अद्यावधि पर्यंत 'मिर्जापुरवाली कुंज' के नामसे विख्यात् है। माधुर्यलहरीकी एक प्रति छतरपुरमें एवं वृन्दावनमें भी दो-चार प्रति विद्यमान हैं। यह ग्रंथ श्रीनिंबार्क सम्प्रदायके रसिक-वैष्णवोंमें एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। इस ग्रंथमें वृन्दावनस्थ रासलीलानुकरणी एक लीला प्रदर्शन भी करते हैं—जिससे श्रोतागण विरह-प्रेमार्णवमें निमग्न होकर तन्मय हो जाते हैं, और सजल नेत्रोंके समक्ष अविरल-प्रेमभक्ति फलस्वरूप श्रीसर्वेश्वर रूप-छटा-लीला भाव मूर्तिमान प्रत्यक्ष अनुभूति होते हैं। श्रीराधाकृष्णके वियोग और मिलनकी अद्भुत-रस-सागर उमड़पड़ता है, लीलाके प्रारम्भसे अन्ततकका आनंदावेश दुर्लभ होता है। वास्तवमें जो इनकी वाणीमें निमग्न होकर रसास्वादन करता है—वही इस मर्मको समझ सकता है। माधुर्यलहरीमें से कुछ छंद उद्धृत करते हैं।

[गीतिका-छन्द]

श्रीस्वामिनी पद-कमल-नख-मणि चारु चंद मयूषता ;
ब्रह्मांड अमित प्रकाश प्रसर प्रमोद पूर पीयूषिता।
अनगम्य अकथ अनंत अनवधि अप्रेमय मही मनं ;
कुरुपान चित चकोर इवि रस कृष्णदास हठी मनं।

गौरश्याम-स्वरूप-सागर अमिय पूर अखिंडतं ;
ततसीक एणु प्रमाण आनँद अमित अंड विमंडितं।
छबि अंग-अंग तरंग उमगत शब्द बोलनि नेह की ;
अंगजा आवत हिये भरि करत बरषा मेह की।

तिन द्वार पसरैं जगतमें जन रसिक उर सीपी परैं ;
नाम जीवन-मुक्त याते सकल श्रुति निरनय करैं।
नरदेह दुर्ल्लभ जानि निश्चय संग तिनको कीजिये ;
भक्ति प्रीति प्रतीति अपनी कृपा उनसो लीजिये।

नेम, प्रेम, विवेक, श्रद्धा, जतन-डोरे गाँथिये ;
उर धारि सो मनि गारुड़ीह्वै, मोह-उरगै नाथिये।
इह भांति दम्पति-सिन्धु निज मन-मीनकरि रस पीजिये ;
असत संग वियोग पावत प्रान परिहरि दीजिये।

जिते साधन विविध विधके कष्ट धरि हिय साधिये ;
ब्रह्म, शंकर, देवपति-पद असुर नर सुख लाधिये।
नहिं मिटत गर्भ-निवास त्रास विमोह फाँसी सो फँसे ;
रसिकजनकी कृपा विन तित लोक बसि पुनि २ खसे।

अब सुनो नित्य-विहार-रूपक जो यथा जेहि भांति है ;
मन कहौं बारअपार तोसौं अन्यथा नहिं शाँति है।
प्रिया-प्रियतम अंग एकै द्विधा कांति बखानिये ;
निज रूपहीते प्रेम अतिसय लोकहू परिमानिये।

युगल तन जो माधुरी सो सखी ललिता गावहीं ;
रसिकजन करि पान श्रवनन अवधि सुखको पावहीं।
सखिनके सर्वस्व स्यामा-स्याम जिय-आधार जो ;
प्रथम तिनको रूप वरनें पीय मुदवर सार सो।

थल कमलके पुष्प लै कछु एक ठौरी कीजिये ;
हिय-कटोरा अंग सुछम झाँपि तापै दीजिये।
वासमय जो दुति उदय सो भरि देखि नैनन भींजिये ;
श्रीकिशोरी-देह-सुषमा जानि उर धरि लीजिये।

कंज-लोचन पदम-मुख कर-चरन-कमल बतावहीं ;
सुनत ही दुख होत अतिचित मोह वस ते गावहीं।
मंडुक सेवित सरकमल सो होय नामहु पंकजं ;
कंटकादिक दोष अलिगन निसि म सेवित संकजं।

सब जगत जो आल्हादकारी ससि विमुख अतिक्रूरहूँ।
नीर सोखि सुखाय नासत जानि सठ-मति सूरहूँ।
बंदनादि प्रकरण वर्जित दोष कितने पाइये ;
श्रीप्रिया श्रीचरनादि सम कहि कहो कैसे गाइये ।

आनंद-थल पर मोद-सरवर नीर-पूरित सुख सदा ;
पर बीज रूप हुलास उपज्यो पद्म पद्माकर मुदा।
यहि रीतिको उतपति जाकी ताहि सम जो कीजिये ;
काँच चिंतामनि बराबरि किये सो जस लीजिये।

ये अङ्ग अनुपम सर्व-सुख-प्रद इन कृपा ते जानिये ;
रसिक जनके संग मिलिके रीति सो पहिचानिये।
पूज्यता महिमा सुगरिमा बंदनादिक जो भनै ;
कहै जे सुख लहै ते उहि पै हीं समुझै बनै ।

रोम प्रति ब्रह्माँड कोटिन बसत जाके नित्य हैं ;
ब्रह्माँड प्रति जे ईश लोकप जासु त्रास चकित हैं ;
दुर्धर्ष दुर्गम दुराराध्य परात्पर श्रीकृष्ण जो ;
माननी के मान समये चरन बंदत हेत सो -

इन चरनकी रज चाह दिन-दिन करत छिनर चित्तमैं ;
पायवो सो अतिहि दुर्लभ भ्रमत जगपति कित्त मैं।
सील करुनासिंधु आरत-बन्धु दुखित सहाय है ;
दृढ़ आस उरधरि कृष्णदास निवास लाड़िली पाय है।

युगल नित्यविहारकी यश गाय हिय उमगावहीं ;
अभिलाष मन में अति बढ़ी अब रास झाँकी पावहीं।
रसिकराय प्रवीन प्यारो जानि जिय सुखदैन को ;
कही मृदु मुसकाय बानी नैनहू करि सैन को ।

उरे आवो नेक ललिता सुनो जो हम भाषहीं ;
निकट आई जानिके निज हस्त काँधे राखहीं ।
लै सहारो भूमि उतरे सहचरी अँग-अँग धरे ;
दै दाहिनी गतिवर सिंहासन आय सन्मुख भे खरे।

मुरलिका निज धारि अधरन सप्त सुर-पूरे कहैं ;
ग्राम तीनो मूर्च्छना गति तान मान अलाप है ।
राग-रागिनि अंग छंद प्रबंध भेद अलेष हैं ;
सकल मूरतिवंत प्रगटे सहचरिनके वेष हैं ।

रास-रीति विहार कीजे लाल जिय ऐसी धरी ;
लाड़िली जो देहि मन तौ होय अब सुखकी घरी ।
राह पहले नृत्यकी दर्साय सुख उपजाइये ;
मान प्यारी हेत हितकरि प्रगट प्रीति लखाइये ।

वाद्य एकै सुरसजै पद पटकि नूपुर धुनि करी ;
मदनमोहन झटकि भुजलै लटकि बाँकी गति भरी ।
सीस पांडुर छत्र वगलन दोउ चामर घूमही ;
नृत्य आगे करत प्यारो दिये तन मन रूप ही ।

सुहाग स्यामाको अटल लखि सहचरी मन फूलहीं ;
भाग्य अपनो अति सराहत कहत को हम तूलहीं ।
गई ललिता लाड़िलीपै जोरि कर बिनती करैं ;
बार-बार निहोरि लै मन देखि रुष पायन परैं ।

आज रासविलासको सुख दीजिये मन भीजिये ;
सदा मोहि सनमान दीन्हों राखि अबहू लीजिये ।
मंद हँसि लखि ओर सखियन दई करूना-दृष्टि है ;
धन्य हैं हम धन्य आज सुकरत फूलन-वृष्टि है ।

ललिता विसाखा दोउ काँधे भुजा दै प्यारी चली ;
सखी-मंडल संग चहुँदिसि सकल सुखसागर अली ।
प्रिया-प्रियतम लखि परस्पर दीठि क्योंहूँ ना मुरै ;
अभिलाष व्यापक पाय पूछत ज्यों अधिक चित चाहैं फुरै ।

लगी गावन तबै ललिता युगल-नित्यविहार को ;
मिले कंठ लगाय हँसि हँसि लहत को न सँभार को ।
भुज परस्पर राखि काँधे फिरत मंडल पग धरैं ;
छूटि सन्मुख होत ठाढ़े तान मानन गति भरैं ।

पगपटक औ झटक भुजकी लटकि झुकनि विलासकी ;
नैन-अटकनि भृकुटि-मटकनि पलक सिकुर सनासकी।
दुरनि, डोलनि, मुरनि, हेरनि, मंद बोलनि हासकी ;
हाव, भावनि चाव चोपनि बिछुरि मिलन हुलासकी।

लाल अधरन धरी मुरली प्रिया करवर वीन है ;
तान तरल तरंग उपजत होत लीन प्रवीन है।
होड़ होड़न दून खैचत सुनत सहचरि मुद लहैं ;
जोर अपनी और चाहत नाम लै जय जय कहैं।

नृत्य भेद अलेष प्रगटत उघट जे सांगीत की ;
करत कौतुक विविध विधि नहिं शंक नीति अनीति की।
हार कंकण किंकिणी मंजीर धुनि रणकार है ;
वाद्य भेद प्रबंध बाजत गान सुर झनकार हैं।

गिरत भूषण वसन छूटत माल टूटत अंग ते ;
दोउ नृत्यत नेह-जंत्रित प्रेम-तंत्र उमंगते।
आनिकानि सयानि हानि विजानि सत्र विलगानि है ;
देह घूमत अंग झूमत स्वेद-कण झलकानि है।

सिथिलता सब अंग छाई हिय उचंगन बंग है ;
लखि परस्पर रूप सागर मिलत उभय अभंग है।
बिबि-सिंधु उमड़े रूपके मिलि छवि-तरंग प्रसार है ;
भई वेलाकूल सहचरि रुके हिय आगार है।

नील, पीत दुकूल लै लै बिंदु श्रमके पोंछहीं ;
मंदचितवनि, हँसनि, बोलनि, धीर धन, मन मोचहीं।
बहत त्रिविध समीर सुंदर परसि अति सुख पावहीं ;
दिये गलबाहीं फिरैं सँग सहचरी गुन गावहीं।

कहत प्यारौ 'लखौ प्यारी विपिनवृन्दा छवि घनी ;
कुसुम फूले विविध विधिके लता सोभित अति तनी।
चलो वृन्दाविपिनमें अब कीजिये वनकेलि है ;
रासको श्रम मिटे जाते सघन कुंजन मेलि है।'

पाँवड़ेनकी करी रचना सुनि सखी मनभाँवती ;
'अहो री ! अब पेखिहैं वनकेलि चित्तरुहावती।
लाड़िली भुजबाम ललिता कंध अपने लै रही ;
सो विसाखा कंध ऊपर भुजा अपनी दै रही ।

लालहू भुज-दच्छ चम्पकलता काँधे देवहीं ;
आपनी भुज-दच्छ चन्द्रावली तैसे सेवहीं।
रंगदेवी आदि दै वे चारि अष्टनमें कही ;
वाहु पंजर दै परस्पर सुघर छाये हैं सही ।

औरहू वहु यूथ-पालक सहचरी चहुँओर हैं ;
प्राणजीवन एक जिनके सदा युगलकिशोर हैं ।
रासमंडल उतरि सीढ़ी पुष्प-क्यारी देखते ;
आय पहुंचे सघन-वनमें हिये हरष विशेष ते।

सहचरी नवकुसुम गुच्छा तोरि दम्पति देवहीं ;
'अहो सुंदर पुष्प ये' सनमान दै हँसि लेवहीं ।
सुनो वन जो भयो कौतुक अपर अति सुख-रूप है ;
जाहि सुमिरे मिटत दुस्सह गर्भ-दुख-दृढ़-कूप है ।

सुख लेत देत विहार करते सघनबन पहुँचते जहां ;
'प्यारी कही पिय ढूढ़िये हम लुकत हैं मन रुचितहां ।'
छिन एकमें निज संग देखैं लालतो स्यामा नहीं ;
विहर दुस्सह भयो अति 'अब कीजिये कैसी कही ।'

लगे खोजन कुंज-कुंजन चटपटी अटपट भई ;
छिन-छिन नहीं जो मिलत प्यारी तनदसा लटपटभई ।
भुज दोउ उन्नत करि पुकारैं कंठ गद्-गद् दृग भरैं ;
'कहाँ राधे प्रानजीवनि' शब्द ऊँचे सुर करैं ।

'प्रानजीय-अधार मेरी तुम विना वन, कुंज ये ।
लतावेली, पुष्प, गंध, समीर, दुख-तम-पुंज ये ।,
द्विजभ्रमरवानी करत पीड़क सखी सिखि माला वनें ;
विरह व्याकुल लता प्रिय अब सहत कहते ना वनै ।

ललिता विसाखा आदि दै सब सुनि अति धावहीं ;
'अहो री ! यह गिरा कैसी ?' दौरि पिय पै आवहीं।
कुसुम,पल्लव तोरि रुचिवर सेज तहां सुवावहीं ;
'प्रानप्रीतम किंकरी हम कहो सो करि आवहीं ?'
चितै ललिता ओर बोले 'कहां प्यारी सो कहो ?
हाथ तुमरे है सबै सम दुक्ख तुमहू तो लहौ ।
उन विना नहिं प्रान धारन करि सकौं ललिता भनौं ;
आनिये जस लीजिये तुम विरह-निधि-नौका-बनौ।'
पीयकी यह दसा देखी सुनै सम उर दुख भर्यौ ;
कछु वार अचेत ह्वै पुनि समुझि मन धीरज धर्यौ।
ललिते 'कहै हे प्राननाथ ! प्रबीन प्यारी प्रान हौ ;
कुंज अन्तर परयौ वे तौ हैं निकट अति जान हौ।
स्वामिनी मेरी परम निज दयासील वखानिये ;
जाति हौं लै आय अवही मेलिहौं परमानिये ।'
ललिता चली अतिविकल ह्वैके युगलसुख जलमीन है ;
खोजती बन, कुंज, उपवन लता गह्वर दीन है ।
सक्ति भरि सब खोजि थाकी चिन्हहू नहिं पावहीं ;
लाल चिंता ते विकल अब लाज अतिसे भावहीं।
'कहौरी ! करिये कहा ? नहिं भई कौनो ओर को ;
मिलि हैं जबै इच्छा करैं सुधि लेहु श्यामकिशोर की।'
आय प्रीतमके निकट भरि दुख सब कहि गावहीं ;
'पात-पात बनाय ढूढ़्यो प्रिया तो नहिं पावहीं ।
का जानिये छिपि कहां बैठी आप जतन विचारिये ;'
सहचरिनकी सुनी बानी कहैं 'ये चित धारिये ।
एक ओरी जात हैं हम खोजिवे लै सहचरी ;
तथा तुमहू दिसा औरों ढूढ़िये वहु गुनकरी ।'
लालहू अति खोजि थाके कियो एक विचार है;
रासको आरंभ करिये मिलैं यह उपचार है ।

रासहू बहुभाँति कीन्हो भयो नहिं अगमन है ;
हर्ष मनको गयो सबको दुख वृद्धि न समन है ।
विरह-वस अस कहन लागे 'मोहि सब दुख हेत है ;
त्यागि ललिताहू गई कहुँ करत नाही चेत है ।'

विरह-वानी सुनी ललिता दूर ते मन दुख भयो ;
'विना देखे जात हौं तो आयकै मैं का कियो ।'
पद्मआसन बैठि कीन्ही ध्यान प्यारी को हिये ;
सुनी वानी नैन खोले निकट ही दर्शन दिये ।

देखि अति आँनद पायो कियो दंड प्रनाम है ;
जोरि कर अस्तुति करी मुख लिये मंगल नाम है ।
'स्वामिनी ! विशलेषते पिय विरह-सागरमें परे ;
सकल सुखको साज तुम्हरो देखि छिन-छिन दुख भरे।

बृन्दाविपिन औ सखी सवरी भ्रमर पक्षीगन सबै ;
विना प्यारी चरन-पंकज दुख दहै ये अति अबै ।'
'ललिता कही सो सुनी वानी मानिये प्रियवल्लभा ;
कहैं श्रीमुख 'सुनौ ललिते ! बात तौ अब दुर्ल्लभा ।'

प्रानप्रीतम सो कहौ तुम जाय जो मैं भाखऊं ;
विरह-सागरमें परी पिय दरस जिय अभिलाषऊँ।
दसा जो तुम कही उनकी इतै तासो चौगुनी ;
जानराय सुजान प्यारो बात बातन सौगुनी ।'

आय ललिता लालपै वृतान्त तैसे सब कह्यो ;
सुनत प्यारीको विरह पिय चित्त दूनो दुख सह्यो ।
'एक चिंता प्रथमहीं मोहि दूसरी अब यह भई ;
ललिते ! विचारो चित्त अपने चेतना तन ते गई ।

जौ नहीं सुधि लेत हैं तौ कहा वस मेरो अबै ;
देखिये जो नैन तैसो जायके कहिये सबै ।'
गई ललिता लाड़िलीपै चातुरी-वर-धाम है ;
'कहौ अति समझाय जैसे होत दीसै काम है ।'

चितै ललिता प्यारी कही 'यहै सब साँची अहो ;
चेतना मोहि होय प्यारो लखे तुम ऐसी कहो ,
आय प्रीतम सो कही 'अब आपही साहस करो ;
युगलरूप-उपासकनके ध्यान यह मनमें धरो ।'

कही प्यारे 'अहो ललिता ! बने तुमते बात है ;
लखैं प्यारी नैन ए तब चेतना बस गात है,
गई ललिता जहाँ प्यारी तहां कछु देख्यो नहीं ;
'हा कष्ट ! उर ताड़न कियो अब दई यह कैसी भई ।'

दुख-सागर मगन ह्वैके लालके ढिग आवहीं ;
आय देखे ठौर याहू पीय चिन्ह न पावहीं ।
भयो दोऊ ओरको दुख सकी नाहिं सम्हारि के ;
'हा प्रिये ! हा प्रानप्रीतम !' उठी रोय पुकारि के ।

लगी खोजन कुंज-कुञ्जन दुख-पुंज अपार है ;
जाय पाये सखीगनमें युगल-प्रान-अधार है ।
करैं केलि अनेक विधिकी परस्पर आनँद भरैं ;
देखि ललिता ठगी-सी ह्वै खरी अचरज बहु करैं ।

'मोहि भ्रम कै खेल इनको समुझि नाहिन सो परै ;
करों दंड-प्रणाम अबतौ सकल स्यामाके करै ।'
कियो जिय उनमान प्यारी 'चित्त ललिता को भ्रमै ;
कीजिये अब बोध इनको खेद जामें सब समै ।'

दई करुना-दृष्टि जबही गही ललिता भूमि है ;
कियो दंड-प्रनाम उठि पुनि परी चरनन भूमि है ।
लियो गहि विहँसि स्यामा 'लह्यो ललिता खेद है ;
कहेंगे हम और समये खेलको तो भेद है ।'

अब चलौ नीर-विहार करिये बहुत श्रम सबही लह्यो ;
लाल, प्यारी 'सकलसुख निज जनन देवैं अस कह्यो ।'
मनि-जटित रम्य विमान तबहीं आय दृग आगे भयो ;
चढ़े अति सुख पाय तापै चितकी गति सो गयो ।

ग्वाल-कवि

छप्पय

वंदी-विप्र-सुवंश जन्म मथुरापुरी पावन;
विपिनराज बसि कीन्ह भक्ति श्रीयुगल रिझावन।
पूर्वजन्म-कृत पुन्य प्रगट फल विसद सुलीन्हीं ;
कविता शक्ति अपार कृपा करि देवी दीन्हीं।
सुकवि ग्वाल निज वंश कुल धर्म सुवैष्णव प्रगट है ;
कीन्हें जस बिस्तार पुनि श्रय श्रीनिम्बार्क-पद-कमलद्वै।

श्रीग्वाल-कविकी जन्मभूमि मथुरा थी, विशेषकर वृन्दावन रहते थे। इनके पिताका नाम सेवाराम था। ये ईश्वरी-कृपा-प्राप्त सिद्ध कवि थे। इनके उपास्यदेव रसिकशेखर माधुर्य-मूर्ति श्रीराधाकृष्ण हैं। रसिकोंके युगल-उपासनामें भी प्रायः विशेषता श्रीराधाजीकी ही रहती है। इन्होंने यमुनालहरीके आदिमें अपने उपास्यदेव, निवास स्थान, और पिता प्रभृतिका परिचय इस प्रकार दिया है –

"श्रीवृषभानुकुमारिका त्रिभुवन तारन नाम ;
शीश नवावत ग्वालकवि सिद्ध कीजिये काम।
वासी वृन्दाविपनके श्रीमथुरा सुखवास ;
श्रीजगदंब दई हमें कविता-विमल-विकास।
विदित बिप्र वंदी विसद वरने व्यास पुरान ;
ता कुल सेवारामको सुत कविग्वाल सुजान।

कहते हैं कि, ये बाल्यावस्थामें गो चरानेवाले ग्वारिया थे। इन्होंने विद्यालयमें जाकर एक अक्षर भी विद्याध्ययन नहीं किया था। एकदिन बनमें गौ चराते समय अकस्मात् श्रीदेवीजीने कृपाकर दर्शन दी। इन्हें वरदान माँगने की आज्ञा हुई, तब इन्होंने विद्या माँगी। देवीजी 'तथास्तु' कहकर, अन्तर्ध्यान हो गईं। उसी दिनसे अल्प अध्ययनमें ही विद्याका विकास बड़े

वेगसे होने लगा; चन्द दिवशमें ये महाकवि और पण्डित होगए। इन्होंने अपनी वन्दनामेंभी इस प्रसंगको स्वीकार किया है।' श्रीजगदम्ब दई हमें कविता विमल बिकास।' कुछ दिनोंमें ही इनके द्वारा कविताकी अखण्ड-धारा प्रवाहित होने लगी, और कईएक ग्रन्थोंकी रचना की।

सर्वप्रथम इन्होंने यमुनालहरीकी रचना की, यह पद्माकर-कृत गङ्गा लहरीके मेल की है। इसमें १०८ कवित्तों-द्वारा यमुनाजीकी स्तुति की गई है। कवि जमुनाजीकी महिमा ऐश्वर्य-माधुर्यसे पूर्ण बड़ी ही रोचक भाषामें वर्णन की है। अन्तमें सम्वत् इसप्रकार दिया है—

संबत् निधि, ऋषि, सिद्धि, ससि कार्तिक-मास सुजान ;
पूरनमासी परम प्रिय राधा-हरिको ध्यान।
भयो प्रगट ताही सु दिन जमुनालहरी-ग्रंथ ;
पढ़ै सुनै आनँद मिलै जानि परै सुर-पंथ।

इसके सिवाय इनके द्वारा निर्मित निम्न ग्रन्थ हैं-१-नखशिष,(१८८४) २-गोपीपचीसी, ३-दूषण दर्पण, १८९१) ४-भक्ति भाव, ५-शृङ्गार-दोहा, ६-शृङ्गार कवित्त, ७ रसरंग, (१९०४) ८-अलंकार, ९- हमीरहठ, (१८८१) १०-कवि-हृदय-विनोद, ११-रसिकानंद, १०-राधा माधवमिलन-राधाष्टक। इन्होंने अपनी कविता-कालमें देशाटन भी खूब किया—जिससे कई भाषाओं के पंडित हो गए, कविहृदयविनोदसे यह स्पष्ट विदित होता है। इसकी कविता बहुत ही सरस भावमय और चमत्कार-पूर्ण हैं। यह ग्रंथ इनकी समय समयपर रचना की हुई अनेक कविताओंका संग्रह है। इसमें ठेठ हिंदी गुजराती, पञ्जाबीमें भी कवित्त सवैये वर्णन हैं—जिसमें फ़ारसी अरबीके भी शब्द आ गये हैं। इन्होंने भाषाका प्रयोग व्यवस्थाके साथ किया है। यमुनालहरीमें षटऋतुओंका भी वर्णन किया गया है, ये उसकालके प्रचलित प्रथा रसोद्दीपनके रीतिपर वर्णन हैं। इनके कविताके अध्यनसे निश्चय हो जाता है कि, वाग्विदग्धतामें एक प्रवीण और महाकवि थे। इनके द्वारा निर्मित श्रीयमुनालहरी ये है—

❀ यमुना-लहरी ❀

[कवित्त]

शोभाके सदन लखि होत है अदमसम पदम पदमपर परम लताके हद ; देखैं नख दामिनी घनै दुरी अकामिनी ह्वै यामिनी जुन्हैयाकी जरैं जलूस ताके मद । ग्वालकवि ललित छलान तैं कलित कल बलित सुगंधन तैं वेश मुदताके नद ; बंदन अखंड भुजदंड युग जोरे करौं वरद उमंड मारतंड तनयाके पद ।१

जितजित जाती यमुनाजू तुव धारैं जुरि तित तितही मैं श्याम ताकी बहु कुंज होत । जितजित प्रबल प्रबाहनके शोर सुनै पाप तित तितके पटासे खाइ लुंज होत । ग्वालकवि तेरे तोय ऊपर बिमान आय-जाय इंद्रासन अनंदनको गुंज होत ; तेरी एक बिंदुके किनूकासों हज़ार चारुताकी कोर-कोरपै कन्हैयनके पुंज होत ।२

योगी एक यमुना तिहारो जित नाम लेत तितमैं लसीले यश देशनमें चिरजात । आय-आय बिबिध बिमाननपै बैठे वेष धन्य-धन्य भाषैं देव वीथिनमें घिरिजात । ग्वालकवि रवि औ रथीश शीश नाये लखैं होत न अथैयन अथैयनके गिरिजात ; कहर कलेशको कटासे करिजात टरे पापनके पुंजपै पटासे फेर फिरि जात ।३

कैधों द्युति द्रौपदी की दमकत दीपन में कैधों नीलगिरि जन्य पांति परमा की है ; कैधों तमोगुणकी जुरी है जोर राशि कैधौं फूले नील कंजनकी अवली रमाकी है । ग्वालकवि कालिका कृपालिकाकी लेटन को कैधौं घटाघोर भूमि उतरी सुधाकी है ; कैधौं शेष श्यामकी करीहै घनश्याम सेज कैधौं तेज तरल तरंग यमुना की है ।४

कैधौं लाजवर्त्तकी शिला है सुमिला है भली कैधौं श्याम पाटकी बिछात छबि जाकी हैं ; कैधौं भ्रमरावलि भ्रमत भूरि भायनसों कैधौं राहु किरिण अछेद फबि जाकी हैं । ग्वालकवि कैधों केश कालीके बिराट रूप कैधौं रोमराजी बरणत कवि जाकी हैं ;कैधों नंदनंदन अनंत बपु धारे तंत कैधौं तेज तरल तरंग रविजाकी हैं ।५

तरल तिहारी रबितनया तरंगैं तेज शोर घनघोरन घटासे करिबो करैं ; अविधि सुरापी दीह पापिनके तुंग तारि अखिल विमानन बटासे करिबो करैं। ग्वालकवि कौन कइनावत कहौं मैं अब देवनके पुंज पलटासे करिबो करैं ; शहर यमेशके पटासे दै कटासी करि कहर कलेशैं चौपटासे करिबो करैं।६

कीन्हीं सतसंगत न पंगत जिंवाई कूभू रंगत अदेहकी भुलायो देह साजतैं ; एक दिन तरुणी पराई मिलिबेके हेत भाष्यों रविजातें मिलौं रजनी समाजतैं। ग्वालकवि त्योंही भुज चारको प्रचार होय आये घिरि देवता विमानन बिराजतैं ; चित्रह्वै बिचित्र चित्रगुप्त कहैं हाय हाय बाज हम आये ऐसे लिखिबेके काजतैं।७

दानिनमें दानीदीह करण महीप भयो ध्यानिनमैं ध्यानी महादेव पनपाको है ; जैसे सत्यबादिन मैं राजाहरिचंद चंद तैसे उपकार मैं दधीचि तेज ताको है। ग्वालकवि जैसे धर्म्मधारिनमैं धर्म्म अंश ज्ञानिनमैं ज्ञानी शुकदेव सिद्धि शाको है ; बीरनमें बीर बजरंगकी प्रशंसा होत नीरनमें नीरवर भानुतनयाको है।८

मूल करनीको धरनीपै नरदेह लैबो देहनको मूल फेर पालन सुनीको है ; देह पालिबेको मूल भोजन सु पूरण है भोजनको मूल होनो बरषा घनीको है। ग्वालकवि मूल बरषाको है यजन जप, यजन सु मूल वेद भेद बहु नीको है ; वेदनको मूल ज्ञान ज्ञान मूल तरिबो त्यों तरिबेको मूल नाम भानुनंदनीको है।९

भरिबो चहै तौ शील नैनन भराइ लैरे ढरिबो चहै तौ लोभ ढारि फिर बाको ढपि ; हरिबो चहै तौ चित हरिले सुजाननके धरिबो चहै तो ध्यान धरि फिर जाको छपि। ग्वालकवि टरिबो चहै तौ टरि कूरन तैं डरिबो चहै तौ डरि परधनताको थपि ; लरिबो चहै तौ तू लरै न क्यों कुढंगन तैं तरिबो चहै तौ तू दिनेश तनयाको जपि।१०

जानै यमुनाके तमुना केहू न रहै ताके साके होत प्रबल प्रभाके पुंज आन में ; चूर होत पीर औ अधीर फिर धूर होत पूर होत धीर बोर होत हरषान में ;ग्वालकवि भानुके समान तेज भानु होत कीरति सुथान

होत अरिहू सभानमें। गान होत लोकन बखान होत जननमें मान होत जगमें प्रमान देवतान में।११

करौ तुम यमुना नहैयनके एकै रूप केते रूप रावरे भये जलूस जाल हैं; केतीवर बाँसुरी कियो है आय बासुरी सु ऐसेतौ अवासुरी लख्यो न कोऊ काल हैं। ग्वालकवि बसन तनौं मैं पीत बसन जुकेती मंद हँसन लसनपन पाल हैं; केती वनमाल केती कौस्तुभकी माल शुभ्र कुंडल बिसाल बने केते नंदलाल हैं।१२

भानुतनयाके तीर-तीर ते हजार कोस कीनी जिमीदारन सुखेती रूंदि रेलारेल; धान बढ़ि आये कढ़ि आये बालभेष भले मढ़ि आये अन्न एक एकतैं सुमेला मेल। ग्वालकवि परसि पुनीत पानी तेरो पौन लागी जाय तिनमें झकोरैं झोर झेला झेल; चारभुज चंद्रिका चमंकै हार-हार माहिं बारिनमें बिबुध विमाननकी ठेला ठेल।

भानुनंदनीके तट नीके रजराशिनमें दासिनकैं तरवा तरेमें परौं झौर झौर; कूर अकुलीलनके भीलनके पाछे-पाछे आछे जे कुली ननके पुञ्ज गहौं दौर दौर। ग्वाल कवि पतो करि देख्यौ पै न देख्यो कछु लेख्यो होनहार जो लिख्यो है विधि और और; मुकति बिचारी में जुवारी क्यों न मारी माय मारीसा लतारी फिरों ख्वारी भई ठौर ठौर ॥ १४ ॥

श्यामरंग रंगतैं श्यामें रंग होत सुने यमुना जरूरही जुरी है जोर जंगीतू। देत है अन्हैयन उढ़ाय पीत अम्बरन लकुट बिशाल देत सुंदर मुरंगी तू॥ ग्वाल कवि गोरी गिरिजा-सी पटरानी देत देत मोरचंद्रिका चमंकित कलंगी तू; संगी करै ग्वालन उमंगी मतिचंगी करै करि बहुरंगी फेर करत त्रिभंगी तू।१५

रावरी तरंगनको यमुना प्रसंग पाय अंग अंग धोये तऊ करै अलसाइबो; पापिनके कुलमें प्रतापी महापापी भयो तापी तीन तापको न जानै हुलसाइबो। ग्वालकवि ताहीको तिहारे पितु आये लेन फेर पति आये मति मोद सरसाइबो; भानु चाहैं भानुलोक भीतर बसाइबेको कान्ह चाहैं कान्हलोक भीतर बसाइबो।१६

माली एक बागमें खुशाली युत सोवे तहाँ फूलन बहाली मूल नीरन छकाछकी ; आई अंध धुंधही अंध्यारी करि आंधी तहां एक तरु दीरघ गिरेते भये धकाधकी । ग्वालकवि त्योंही वह जागिकै बुलाये पार यमुना सकैगो इमि कहिकै तकातकी ; माथे भई चंद्रिका लकुट निज हाथे भई साथे भई गोपिका दिखैयन चकाचकी ।१८

जान चतुरान सुजान आन मेरी यह करियो इतेमें तू करैया है उमंगको ; रेतन की राशिजो करै तौ करि नीकी भाँति यमुनाके जलको औ थलके प्रसंगको । ग्वालकवि सुमन लताजो करै तौहू तहां मीन ग्राह जो करै सुवाही जल संगको ; मनुज करै तौ है सलाह यह तोको थीर करियो मलाह ताकी तरल तरंगको ।१८

गेहमें लगे हैं तिय नेह में पगे हैं पूरलोभमें जगे हैं औ अदेह तेह समुना ; कुटिल कुढंगनमें कूरनके संगनमें छके रतिरङ्गनमें नंगनतैं कमुना । ग्वालकवि भनत गरूर भरे अतिपूर जानिये जरूर जिन्हैं काहूकी जु गमुना ; लहर करेते हरिलोकमें लहरि करैं लहर तिहारी के लखैया मातुयमुना ।१६

मारतंडतनया तिहारे सुने कौतुकमें सौतुक गोविंदकर केतनको मैयातूं ; तेज करै आनन सुजाननमें आनकरै मान करै जगमें प्रमानन सरैयातूँ । ग्वालकवि आनंदकी छकनि छकैया फेरि कठिन कलेशनके भेषनके हरैयातूं ; शहर यमेशको'जरैया यमदूतनको कहर कुढंगनको कतल करैयातूँ ।२०

जीति होत रणमें सुनीति युत मेधा होत प्रीति होत मीतमें अनीति भीत गमुना ; भाल होत उदित बिशाल होत तेज ताको शाल होत शत्रुन दुशालनतैं कमुना । ग्वालकवि कीरति प्रचार होत एकतार पारावार पारहोत वेशुमार समुना ; दान होत दीरघ दिमाक होत जग बीच ज्ञान होत हियरामें ध्यान होत यमुना ।२१

कैधौं अंधकारनके अखिल अगार चारु कैधौं रसराजकी मयूखैं मंजुताकी हैं; कैधौं श्याम बिरह वियोगिनके नैनऐन कज्जल कलित जल धारैं धार ताकी हैं। ग्वालकवि कैधौं चतुराननके लेखिवेको

फूट्यो मसि भाजन अनूप छबि बाँकीहैं ; कैधौं जल स्वच्छमैं प्रतच्छ नभभांई किधौं तरल तरंगैं मारतंडतनयाकी हैं । २२

गोरिनमैं गनिका गरूरदार गनिकाकी गोरेगरैं गजरा गुलाबी हित मैं छई ; ताके एक तनया कृशित तन ताको रहै वहम बिलन्द वाहि देखि चिंतता ठई । ग्वालकवि भाषी रवितनयाको नीको राखि कहत इतैकै चकाचौंधी चित्तमैं भई ; ह्वै गई गोबिंद मोरचंद्रिका बिराजी शीश भाजी फिरै छोहरी अमाजी कितमैं गई । २३

कठिन कलेशनके भेष नख कोरिवेको फोरिवेको पापके पहाड़ अति भारा ये; दीह दाह दारिदके दलन बिथोरिबेको जोरिवेको आननमैं तेजके अंगारा ये । ग्वालकवि आनँद विशालनमें बोरिबेको भूमि झकझोरिबे को अधरम थारा ये । मर्म यमराजके जके जरूर तोरिबेको जगी धर्म्म घोरिबेको यमुनाकी धारा ये । २४

काहू साहूकारको चुरायो धन चोर एक शोर भयो शहर गयो दई किते किते ; बहुत दिनोंमें गयो बन्धिकै नृपति आगे पूंछ्यो तैं लयोहै कह्यो हमुना हितै हितै । ग्वालकवि भाष्यो रबिजानै जो लयो मैं माल हाल भयो औरै इमि कहत तितै तितै ; श्याम रंग ह्वैकै भुजचार भई आयुधलै चौंक्यो आमखास रह्यो हाकिम चितै चितै । २५

देवमारतंडकी तनूजा तीर तेरे एक कौतुक लख्यो मैं अति अद्भुत कहौं कैसे ; बढ़ई बिचारो छील छीलकै बनावै बेश चित्रकारी चित्रै भाव चित्त निज गोकेसे । ग्वालकवि तेरे तोय ऊपर तरावै ताहि धावै लेन देवता बिमाननतैं लोकेसे ; नाव होत गोविंद लकुट पतवार होत भुजा चार चम्पू होत चित्रकार चौंकेसे ।

गोरी गरबीली जाको गवन गयंदको सो गरे मुकुताहलको उजरा निराला वह ; कज्जल कलित दृग ललित लुनाई भरे वलित गरोजनतैं मृगमद आला वह । ग्वालकवि रबिजा तिहारे तीर न्हाई आई धाई लेन देवनकी अवली बिशाला वह ; शीश दीप मृगये पहुँचि पहिलेई गये पाछे श्याम रूपह्वै सिधारी नवबाला वह । २७

आयो तट नीके रबितनया तिहारे वह वायस पियासो पय पियत अकूत है ; त्योंही भुज चारह्वै बिमान चढ़ि धाय चल्यो अघमग पातको परयो महान भूतहै । ग्वालकवि तापै आय छायापरी ताकी जोर बनिकै बिहारी की करत करतूतहै ; एक कहैं भूत है अभूत कहैं कोऊ एक सूत कह्योसो बिषै सिधारयो नंदपूत है । २८

यमुनाके बासमैं लखैं तरंग तासमैं जु महत मवासमें करै गोविंद जासमैं । सौरभित वासमैं भुलावै रंग रासमैं सु औ गुलाब-पासमैं धरे गुलाब पासमैं । ग्वालकवि छकित गिलासमैं सुधासमैं सो हाँसमैं विकासमैं रहे न होश वा शमैं; बदन प्रकाशमैं सुरोनके हुलासमैं त्यों राखत बिलासमैं सुरोंके आमखासमैं । २९

बैठयों तटनीके यह भाषत तिलकिया जो येरें राहगीर पास आय जल छूजा तैं ; अचवन किये महामहिमा महीमैं होत जो ना फल होत और देवनकी पूजातैं । ग्वालकवि कौतुक विशाल देखि हालाहाल रसिक बिहारी भयो जात अब दूजातैं ; कीरति अखण्ड होत तुजक प्रचण्ड होत होत है अदण्ड मारतण्डकी तनूजातैं । ३०

कौतुक विशाल एक आयो देखि दूरहीतैं लाग्यो बात कहन विवेकता घुटीभई ; टहलैहो बागमें बहारन बिलोकिबेको आई पौन यमुनाकी ओरतैं जुटीभई । ग्वालकवि द्वारि दरीन मैं दुरयो मैं जाय छाई रेणु अखिल न ठौरही छुटी भई ; माली भयो मोहन लता जे पटरानी भई मोर भये मुकुट लवंग लकुटी भई । ३१

रेवतीरमन कीने बसन विचित्र बेश राधिकारमण कीन्हें वपुष विशालह्वै ; चंदमें प्रसिद्धरूप रावरो दिखाई देत लीन्हें चन्द्रधरह तमोगुण खुशाल ह्वै । ग्वालकवि कमला कियेहैं करकंज नील नीलमणि भूषण बनाये जगजाल ह्वै ; मारतण्ड तनया तिहारो शुभ श्यामरंग होयरह्यो लोकनको मंडन बिसाल ह्वै । ३२

धारे अंग अखिल कपाली महाकाली आप कीन्ही काय वैसी फणधारी नै खुशाल ह्वै ; तालमैं सिवाल भयो तरुमैं तमाल भयो तीरन मैं भाल भयो शत्रु ता मैं साल ह्वै । ग्वालकवि गोरिनने अंजन

अँजाये नैन कीन्ही मसि लिखिबेको बेद बिधि हालह्वै ; मारतण्ड-तनया तिहारो शुभ श्यामरंग होयरह्यो लोकनको मण्डन विशालह्वै।३३

सालमैं सलावै शत्रुपुंजनको शोर सुने मित्रन मिलावै मति मंजुल खुशालमैं ; हालमैं न आवै तन ताको किये त्रासन तैं करत कुटुम्बनको अधिक निहालमैं। लालमैं लशावै बहुभूषण शरीर ताकै भाषै कवि ग्वाल मन करैं प्रणपालमैं ; भाल मैं बिराजै मोरचंद्रिका विशाल बेश न्हान करै यमुना जे तेरे जल-जालमैं। ३४

रबिजा कहेते रण जीतै जोम जोरि जोरि यमुना कहेते यमुनाके होत हेर विन ; भानु होत कीरति प्रभानुके परमपुंज भानुतनयाके कहते ही फेर फेर विन। ग्वालकवि मंजु मारतण्डनंदनीके कहे महिमा महीमें होत दाननके ढेर विन ; दरिजात दारिद दिनेशतनुजाके कहे कहत कलिन्दीके कन्हैया होत देर विन।३५

आदिमैं रमाके रसरूप दैनहारी तुही मध्य कुबिजाके करै कीरति प्रचारी तूं ; अन्त विधि जाके जग जाहिर करैया तुही जहर यमेशकी जसूलनको भारी तूं। ग्वालकवि वरण वरण किये वर्णन वर्णन तेरेमें लग्योहै चित्तधारी तूं ; महिमा तिहारी महामहिमा निहारी मातु रबिजा कहेते करै रसिकबिहारी तूं। ३६

सुस्ती बेशुमार एक कुस्तीगीर ताको भई बोल्यो यमदूतन लयो मैं घेर ओकमैं ; पारषद आये लै बिमाननके पुंज तहाँ बोले चढ़ि लीजिये चढ़ै जो चित्तकोकमैं। ग्वालकवि वहतौ सवार ह्वै चल्योई बेर भाषै मग माहिं जो करौ मुकाम थोकमें ; जौलौं कहै नाल भूलि आयो मैं अखाड़े बीच तौलौं जाय पहुँच्यो तुरंत हरिलोकमैं। ३७

युद्ध करि मोसों अति क्रुद्धकरि कायर तू है बड़ो अशुद्ध तो विरुद्धबुद्ध टारोंगो। जौलौं मैं न बोलतहौं डोलतहो सौंहीं आयघोलतहौं गरल सुकैसोमैं विसारोंगो। ग्वालकवि भाषै भगिजायगो कहां तू नीच मीच खपची मैं कमचीलै तोहिं तारोंगो। येरे पाप पापी सब देवनको शापी तोहिं यमुनाके जलमें अकाल मारिडारोंगो। ३८

पातकहरैया सुनी तरणितरैया तोहिं गैया कामनाकी -सी मनोरथ भरैया तू; है बनबसैया करै शेषनाग शैया करै नैया करै धर्मकी अधर्मसे धरैया तू। ग्वालकवि कहै जगमैया तू लसैयावेश मोहनबनैया छविछोरन छवैयातू; भैया यमराजकी जलूसन जरैया जोर जीवन जिवैया ज्योति जबरजगैया तू।३६

कामनाकी गैया-सी मनोरथभरैया भले अखिल अँगारनमें सम्पतिडरैया तू; दुरितदरैया बिदरैया बदराहनकी जुलुमजरैया टेक यमको टरैया तू। ग्वालकवि भाषै छवि छोरन छवैया वेश सुख में सनैया दुख हियके हरैया तू; शैया करै शेषकी सुज्योतिन जगैया जोर कान्हकी करैया मैया तरणितनैया तू।४०

तरणितनूजातेज तज्जुव तिहारो तक्यो तुलै ना तुलानपै अतुल-ता घनेरी है; सांपिनि-सी सरस सतावै यमदूतनको पापिनको तापिनको चिंतामणि हेरी है। ग्वालकवि करमकुरेखनको टारै फारै अघन बिदार प्रण पारिवेकी ढेरी है। छविनछटाकी उछटाकी करै लोकनमें करन कटाकी ये पटाकी धार तेरी है।४१

तरणितनैया तनु तोयमें तिहारे आय तापी तीन तापको तनकत-न धोय जात; तेज होत बपुष सुमुख सुखमातैं सनै दुख दलहातैं होत सुख न सजोय जात। ग्वालकवि सम्पति समोय जात सदमन मद-मन मीतसो तुजक जग जोय जात; हालाहाल हाजिर हजूरमें सुरेश होत वेश होत वाणी बनवारी भेष होय जात।४२

द्रमुना मिलत यमदूतनके देह बिषे दौरि देहरीपै आय होत वे अकामैं हैं; गमुना सुचित्रगुप्तहूकी ना चलांकी चलै चित्र भयो लखिकै विचित्र बसुधामैं हैं। तमुना रहत जाके सदन सुओर-पास अमित प्रकाश भनै ग्वालकवि तामें हैं; कमुना गोविंद तेजु समुना त्रिलोक जाकी न्हात यमुना में तेन लेत यमु नामैं हैं।४३

कैधौं नीलकंठनके कंठकी प्रभाहै चारु फैली वेशुमार खंड खंडन खगी हैं ये; कैधौं कालिकाके करवालकी कठिन धारैं चमक पसारैं चहूँओरमें पगी हैं ये। ग्वालकवि कैधौं दर्स दलजल सर्समाहिं आइकै

बसी हैं तासु शोभ उमगी हैं ये ; जोर जग जाहिर जलूसकी जमातैं जुरि कैधौं यमुनाकी वेश लहर जगी हैं ये ।४४

कैधौं वीर अर्जुन धरे हैं बहु भेष ताकी छवि छायाकी मयूख मंजुली सुलीखी हैं ; कैधौं खंजननकी खुली हैं पांति पूरण ये तेई भांति भांत भले भायन सों दीखी हैं। ग्वालकबि कैधौं रवि चंद लरिबेको भये ताते राहु अति बिसतारताई सीखी हैं ; बेशुमार पारावार पारनलौं जाइवेको कैधौं रबिजाको ये तरंगैं तेह तीखी हैं।४५

कैधौं जलअमल लबालब भरेमें भुल उझल परी हैं नभ नकल अपारैं ये ; कैधौं श्यामतरुकी महीपै पूरपातैं गईं ताको भांति भाँतैं भूर परमा पसारैं ये। ग्वालकबि कधौं लंक असुर सँहारिवेको धारे बहुभेष रामताकी द्युति ढारैं ये। अतुल तिखाई तेजताई तरलाई भरी कैधौं मारतंडतनयाकी चारु धारैं ये ।४६

कैधौं शांन सहस स्वरूप सुठि धारे सोधि ताकी सरसाई वेश शोभा ये डहडहात ; कैधौं घनी घोर घोर घुमिर सुघोषनतैं घिरत घनावली घुमंडैं ये गहगहात। ग्वालकबि कैधौं द्रुपताकी चारुताई चारु ताकी चढ़ी चरब चमकैं ये चहचहात ; कैधौं यमुनाकी जमि जबर जलूसैं जगि जुरिकैं जमातैं जोर धारैं ये लहलहात।४७

कैधौं बेशबानिक बन्यो है बन वृन्दनको बरण बहारैं बलबातन के गहरैं;कैधौं मतवारे मदवारे मोदवारे मूरि मंजुल मतङ्गनके भूंडभूमि झहरैं। ग्वालकबि कैधौं शुभ्रसिंधुसरसायो तासु सरसी सुधारैं बेशु-मारैं हूल हहरैं ; कैधौं रविजाकी लोललहर लुनाई लसी छविकी छटासों छितिछोरनलों छहरैं ।४८

आईधौं कहांतैं धरणीमें धार तेरी मातु धकधक होत है यमेश हीय कमुना ; धरम ध्वजाकी खड़ीकरन तुही है एक धन्यधन्य जग माहिं तेरी और समुना। ग्वालकवि परम प्रकोप करि पैठे पेलि पापनके पुंजनमें राखें नेकु दमुना ; कठिनकरारनकी कोरनककोर कलि कतल करैया तू कलेशनकी यमुना ।४९

कीरति इनामैं होत धवल सुधामैं होत द्वार नदतामैं होत देह

मंजुतामें लहि ; चाह चरचामें होत सुरबनितामें ताकी सुमति सभामें होत तेज पुंज तामें गहि । ग्वालकबि कामें परिपूरण सदामें होत कुमति तमामें होत धीर पुंजतामें रहि ; बन्धुबलरामें होत जगमें प्रनामें होत क्लेश कतलामें होत जमुना कलामें कहि ।५०

लखिकै चरित्र यमुनाके भयो ताके अति कहै चित्रगुप्त यम बात सुनि भीतिकी; अविधिसुरापी शापी पापी घोरतापी तिन्हैं भेजैं पुरमापी यों दिखावै बाजी जीति की । ग्वालकबि यातैं होस उड़िगे मुसद्दिनके कहत सरोस भई समय बिपरीतिकी; रद्दीभई फतर जुबद्दी भालवद्दी भई गद्दी भई अफ़्तर तिहारी राजनीति की ।५१

भाषै चित्रगुप्त सुनिलीजै अर्ज यमराज कीजिये हुकुम अब मूँदै नर्कद्वारेको ; अधम अभागे औ कृतघ्नी कूर कलहिन करत कन्हैया कर्न कुंडलसँवारेको । ग्वालकबि अधिक अनीतैं बिपरीतैं भई दीजिये तुड़ाय वेग कुलुफ़ किवारेको ; हमुना लिखैंगे बही गमुनाजु खैहैं हम यमुना बिगारे देत कागद हमारेको ।५२

रविजा तिहारे तीर पापीघरतापी ताकी मुकति बिचित्रदेखी जाहिर जहूरसों ; चारमुखवारो मुखचारिकै चढ़ाय हँस करिकै चलाँकी चल्यो चौंकि चित चूरसों । ग्वालकबि अचको उतारि धरि वृषपर लैचले त्रिलोचनकै शम्भुसुख भूरसों ; चारभुजवारो भुजचार कै सुचारनमें गरुड़ चढ़ाय गयो गजब गरूरसों ।५३

येरी मातु यमुना न दोष है तिहारो कछू लिख्योसो भयोई भाल बिधिना उमंग में ; तेरे तीर आयो श्याम कामादिक रेखध्वैवे ततो करि दीनी श्यामताई सब अंगमें । ग्वालकबि कहै भुज द्वैको भार मानतहौं तैंने भुजचारि करिदीन्हेई उमंगमें ; मैंतो चह्योसंग एक रानीको तजन जौलौं तौलौंकरी आठ पटरानी मेरे संगमें ।५४

ख्याल यमुनाके लखि नाके भयो चित्रगुप्त बैन करुणाके बोलि मेरी मति ख्वैगई ; कौन करै करमें कलम कौन काम करै रोशको दवायत सो रोसनाई ध्वैगई । ग्वालकवि काहेते न कानदै यमेश सुनों नौकरी चुकाय कहाँ तेरी आँख स्वैगई ; लेखा भये ड्योढ़े रोजनामाको परेखो

कौन खाता भयो खतम फरद रद ह्वै गई ।५५

अविधि सुरापी घोरतापी नीच पापी मुख रविजा तिहारी बूँद लघु अति द्वैगई । ताही छिन पलमें अमलभल रूप भयो कुटिल कुढंगता की रेख लेख ध्वैगई । ग्वालकबि कीरति सुचीरति दिशानजात दूतन-की चित्रकी चलाँकी चित खवैगई; चारमुख चन्द्रधर चाहत चितौततताहि चारनके देखतही चारभुज ह्वै गई ।५६

केतक जपैया रामनामके उपासिक हैं केतक कन्हैया कृष्ण-नामपन पाको मैं ; केते मन्त्रजापी ब्रह्मव्यापी जग जानत हैं केते शैव शिवही को सुमिरत ताको मैं । ग्वालकबि जानैं जगदम्बराधिकाके पद केतक अगाधिका सुमात साधिकाको मैं ; कामदा सभी है पै न चाहत इनाम कछू आठोयाम करत प्रणाम यमुनाको मैं ।५७

योधाजोर जबर जुरै न कोऊ जंगनमें जोर जोर पातके जमातन को साज्योई ; जाको ज्वर जाहर जरायो जब भाष्यो वह यमुना सक-रिहौं मैं जाइ इमि गाज्योई । ग्वालकबि कहै ताके पुरुषा परेहैं नर्क अर्क सम ह्वै गयो बिमानन समाज्योई ; फेर वह पातकी कियो है गरुड़ा-सनको देव आमखासन सिंहासन बिराज्योई ।५८

अखिल मनोरथ मैं अपने पुजायबेको तेरे तीर यमुना कहायो तरसा करैं; गौर भयो चाह्यो ये अगौर अंग मेरे किये घेरे किये पारषद कौन चरचा करैं । ग्वालकबि मैंतो सुरराज होन आयो हाय पान कीयो दीयो तीन लोक अरचा करैं ; अच्छी तू न करत प्रतच्छी अंतरच्छी देत कच्छी तुरी देत है न पच्छी पतिका करैं ।५९

मांगे देत बिदित बिरंचिबर बानिक सो मांगे देत शचीपति यामें कछू भ्रमुना ; मांगे देत शेष औ गणेश त्यों दिनेश देत ताते रीति नारद मुनीशहूँ की कमुना । ग्वालकबि त्योंहीं बजरंग बीर मांगे देत मांगे बिन देइबे को काहूकी जु गमुना ; मांगिबेते पूजत मनोरथ सदातैं सब मांगे बिन अधिक दिवैया तुही यमुना ।६०

मर्दन भयो है नर्म्मदाको सर्व्वदातैं मद गोमती गरीबनी की गाथा है असारकी ; चम्बल चपी है वरवदनी तपी है ताकि हायको

जपी है बलिलान वेशुमारकी । ग्वालकवि सागर समायो सोच-सागर मैं बहत न याते भूमि बलय बिचारकी ; पावै कौन परम पुनीत भानु-नंदनीकी तारक शकति औ गँभीरताई धारकी ।६१

कुल छमताके सत्वगुणकी सताके बीच होत बपुताके गुण कल-पलताके हैं ; पूर प्रभुताके कामधेनुकी मताके फेर नाँहिं समताके तीनलोक बीरताके हैं । ग्वालकवि ताके शिरमौर मणिताके रूप दिव्य बनिताके नाह होत कर ताके हैं ; पुंजदेवताके सजे सुयश पताके ताके नेकहीं के ताके बाँह सूरजसुताके हैं ।६२

मेरु मूढ़ मंजुल मँजे हैं मजवूत फेर मारतंडनंदनी नमूद तेग तारा है ; वृन्दावन सिकिल सँवारी मथुरामें सान काढ़ी प्राग म्यानतैं प्रसिद्धही प्रचारा है । ग्वालकवि सुखदा गहैं जे शरणागतको काटैं पाप दंगल उदंगल अपारा है ; केती इकधारा होत कितनी दुधारा होत धरधुर धावनी लखी अनंत धारा है ।६३

मोहन बंदूकची सुमेरुकी बंदूक बाँधि कीन्ही देवतानकी सुगज गजस्वानेमें ; मारतडंनंदनी सुगोली अनतोली भरि वृन्दावन विदित बरूद सरसानेमें । ग्वालकवि मथुरा चमंकदार पथरीदै गोकुल अनूप कल तुरत दबानेमें ; साज प्रागराज सो दराजही अवाज होत छूटतही लागै जाय पातक निशानेमें ।६४

औरनके तेज तुलजात हैं तुलान बिन तेरो तेज यमुना तुलान न तुलाइये ; औरनके गुणकी सुगनती गनेते होत तेरे गुणगनकी न गनती गनाइये । ग्वालकवि अमित प्रबाहनकी थाह होत रावरो प्रबाहकी न थाह दरशाइये ; पारावार पारहूँ को पारावार पाइयत तेरे वारपार-को न पारावार पाइये ।६५

गावैं गुण नारद न पावैं पार सनकादि बंदीजन हारे हरी मेधा-मंजु शेशकी ; दरश कियेते अति हरष सरस होत परस पुनीत होत पदवी सुरेशकी । ग्वालकबि महिमा कही न परै काहू विधि बैठे रहि महिमा दशा है यों गणेशकी ; तारक यमेशको बिदारक कलेशकी है तारक हमेशकी है तनया दिनेशकी ।६६

काटिकै किनारे किये कोरन करारे पुंज कंजनके कूल उठैं लहर प्रभाकी हैं ; चद्दर चहूँघा चारु चेटक चितौत चित भारी भौंर भेलै फेन पंगत पताकी हैं। ग्वालकवि माते मोद मच्छ कच्छ बहैं बृच्छ धूम जब होत घन घूम वरषाकी हैं ; जोर जल जारजर कीये जर जंगलन जोय जोय जाहिर जलूस यमुना की हैं। ६७

जोवै ख्याल यमुना निहारै यमराज आज तारै तिनहूँ को महापापन विलोवैं ते ; पावैं निज चित्ततैं तलास महापापिन की नित्त चित्रगुप्त मूड़ मार मार रोवैं ते। गोवैं पन परम प्रबीण कविग्वाल भनै अदया सुभायनतैं छमता समोवैं ते। धोवैं निज अंगन तरंगनमें तेरे आय जाय बैकुण्ठमें पसारि पाँय सोवैं ते। ६८

सूरजसुताके ताके परमप्रताप शाके नाकेहूँ यमेश अंग अंग माहिं काँपै हैं ; हाय-हाय भाषत सुचित्रगुप्त चौंके चित्त चतुर चलाँकी दूत दूतनको चापै हैं। ग्वालकवि विविध बिचार करि हारी मति बैठे बेकरार जले षामत को नापै हैं; झुकि झुकि भूमि भूमि झिझकि झिझकि झेलैं झहरि झहरि नर्क झाँपनतैं झाँपै हैं। ६९

तनया दिवाकरकी राजस विलोकियत दरशकरैयनकी कीरति अटाकरी ; परशकरैयनकी महिमा महीमें मंजु पुंज देवतानके पै घुमड़ि घटाकरी। ग्वालकवि दरश परशकरवैयनकी दीप दीप लोकन में तेजकी छटाकरी। अघ ओघ संगत औ जन्मयोनि पंगतकी ह्वै के बेकरार इकबारही कटाकरी। ७०

प्रबल प्रभाकरकी तनया तरंगनमें तनु तनु धोये यश दीपन जुरयोपरै ; ताके तेज पुंजनतें दुखके पहाड़ भार पाप बेशुमार बेकरार ह्वै चुरयो परै। ग्वालकवि कासों यह कहिये अकह बातें हातैं भये दूतपन परम दुरयो परै ; जाहिर रही जबर जलूसदार जुलमी पै आज यमजिह्वापर जहर घुरयो परै। ७१

आनभरी अधिक कृपानभरी पापनको दानभरी दीरघ प्रमाण मान कमुना ; तेजभरी मंजुल मजेजभरी रीझभरी खीजभरी

दूतनको दाहै दौरि समुना। ग्वालकवि सुखद प्रतीतिभरी प्रीतिभरी रीतिभरी परम पुनीत मीत भ्रमुना। जंगभरी यमते उमंगभरी तारिबेको रंगभरी तरल तरंग तेरी यमुना। ७२

येरी रविनन्दनी अनन्दनकी मूलमंजु मेरेहिये संशय अछेह अति भारी हैं; कैधौं तुव आगे पानि जोरैं यमराज आजु श्वासैं लेत ऊरध ये सुधि न सम्हारी हैं। ग्वालकवि कैधौं चित्रगुपत चतुर चारु लोटैं बेकरार धुनैं शीश मतिहारी हैं; कैधौं दूत दौरि दौरि दहलात दुरिबे कों कैधौं लोल लहरैं ये लहरैं तिहारी हैं। ७३

राजनीति रावरी न चलिहै हमारे संग रद्द करि दैहों पेलि पलके प्रसंगतैं; दफ्तर बिहद्दी मुत्सद्दिनके रद्दीकरि नद्दीनमैं रद्दी करौं गद्दी बाँधि संगतैं। ग्वालकवि अबलों न जानीरे अयानी मति मालुम भई न तेरे कुटिल कुढंगतैं; जोरिकै अभंग जंग अंग यमराज तेरे भंग करि दैहों जोरि यमुना तरंगतैं। ७४

भानुकी तनैया तोय तेरो पियो बच्छ एक ताको जननीकों दुरयो भूषण सिवेकों जब; ताही ग्वार पास आयरो न कहयो भूखे हम दीयो पय ताही पर्म धर्म्म लसिबे कों जब। ग्वालकवि ताकी परछाईं परी पातकी पै आये पारषद लै बिमान कसिबे कों जब; सुरभी समेत बच्छ ग्वारिया पिवैया युत पातकी पधारयो हरिलोक वसिबे कों जब। ७५

अवनी को माल-सी सुबाल-सी दिनेश जानी लाल-सी ह्वै कान्ह करी बाल सुख थाल-सी; नरकन को हाल-सी बिहाल-सी करैया भई धर्म्मन को उद्धत सुढाल-सी बिशाल-सी। ग्वालकवि भक्तन को सुरतरु जाल-सी सुन्दर रसाल-सी कुकर्म्मनको भाल-सी; दूतनको शाल-सी जुचित्रको दुशाल-सी है यमको जंजाल-सी कराल काल ब्याल-सी। ७६

पातकी पुरानों घोरघातकी घनेनकोंमें तातकी न मात की करी न सेवा साको है। गंगामें न न्हायो मैन रंगमें भुलायो तिय छायो अंग अंग मदयोवन नसाको है। ग्वालकवि कारण भयो न तारिबेकों कछु धारण वियोमैं इकपूर पनपाको है। मोसों सुनिया रहै न रोसो करिबेमें कछू अबतो भरोसो जियरामें यमुनाको है। ७७

भानु भानुनन्दनी प्रभानकी परम पाँति रावरो सुयश-दीप दीप माहिं छ्वै रह्यो ; पुण्डरीक आदि भयो फूलनमें बानिक-सों बिबुधन बीच बामदेव रूप ज्वै रह्यो । ग्वालकवि राजनके रसना गिराह्वै रह्यो गायन के गोरस सरस रस च्वै रह्यो; अम्बरमें चंद भयो अवनीपै गंग भयो फोरिकै पताल फेर फनपति ह्वै रह्यो । ७८

कानसुनि जाफत कुलंग चल्यो ताही ठौर बीचबन पापी परयो काय पजरैं परीं । तामैंते उचटि अस्ति टूक परयो दूर जाय लीयो झुकि धायो जहाँ यमुना भरैं परीं । ग्वालकवि वातैं वह टूक छुस्यो धार बीच चढ़िके विमान चल्यो चौकनि वरैं परीं ; पापी उत श्याम भयो पद्मी इत बोलैं हाय जाफतहूँ छूटी और आफत गरैं परीं । ७६

जोय यमुनाको यमुनाको मुदवायें देत यमुना सकैगो इमि बोल्यो अंधकूप वह ; कटी भवफाँसी भवगाँसी बिन हाँसी करै भवको मिली है भँवरा-सी सो अनूप वह । ग्वालकवि हीमै हरिमद हरिहार सोहैं सेज हरिपाई शित हरिपति भूप वह ; हरि-सो प्रकाश मुख हरि-सी मृदुल- ताई लेप हरि भालपै भयोई हरि रूप वह । ८०

देखिकै दिवाकरतनैयाको सुपातकीने धक्कहि दिवाकर यमेशै उछलो गयो ; मारमद सोहै माररूप मनमोहैं मंजु पीवतहैं मार मार पच्छ शिरलौं गयो । ग्वालकवि कुण्डल खगाकृत खगासन ह्वै खग के वरण खग संकट दलो गयो ; जोवै जाहि धाम जाके धामते अनेक धाम ह्वैकै दिव्यधाम हरिधामको चलोगयो । ८१

* अथ नवरस वर्णन, प्रथम शृङ्गाररस *

देवमारतण्डकी तनूजाकी तरंगैं ताकि ह्वैगयो गोबिन्द अरविन्द वदनीनमें ; पाई प्राणप्यारी अनियारी उजियारी द्युति प्रीति अधिकारी मिलि गावैं तानवीनमें । ग्वालकवि प्रेमी पुरहूत पानि पान दान पीवत पियूषजड़े प्याले जे चुनीनमें ; झूमि झूमि झुकैं झंझरीनमें बिझूकैं झपि झिलमिल झांई की झमक झंझरीनमें । ८२

दीखत दिवाकरको अमित अछेह तेज ताकी तनयाको तेज ताते अधिकारी को । ताकी लखि लहर लहर करैं पातकी सुबैठ्यो

सुरसंग ह्वै स्वरूप गिरधारी को। ग्वालकवि पाई पटरानी बसुआसपास तामें सरसानी एकरूप सुखकारीको ; चूमैं मुख प्यारेको रँगीली प्राण प्यारी पगि प्यारे प्राणनाथ मुख चूमैं प्राणप्यारी को। ८३

* अथ हास्यरस *

तातकी न मातकी करी न सेवा भ्रात की है ऐसो महापातकी सुयमुना अन्हायो है ; ह्वैके भुजचार चारु कंचन बिमान चढ़यो शंख चक्र गदा पद्म सुन्दर सुहायो है। ग्वालकवि भाषै यों सिधारयो हरि-लोक बीच बीच मिल्यो बैरिनको यूथ मग छायो है ; एकै संग सबही हँसन लागे ताको देखि कौनहै कहांते आये कौन रूप पायो है। ८४

* अथ करुणारस *

काहू एक देशतैं पुरुष तिय बेटायुत आयो न्हाइबोको तहाँ यमुनानलौं गयो; पूत पहिलेई पिलि पैठिगो प्रवाह बीच ह्वै करि गोविन्द परमधाम को भलो गयो। ग्वालकवि नेकुमें न देखि परयो ताको तब बोल कढ़ै ऐसे मन माणिक छलो गयो ; तात मात दोऊ खड़े तीर में पुकारैं हाय हाय सुत मेरो आहि कितमें चलो गयो। ८५

* अथ रौद्ररस-वर्णन *

घातकी कुचाली अति पातकी कलंकी कूर पाइ कातकी यमुनामें बह पैठयो जाय ; फेर कछु द्योसनमें देह उन त्यागो तब आये दौरि दूत उन सौंहीं जब पैठयो जाय। ग्वालकवि क्रुद्धकै बिरुद्ध युद्ध कियो जोर मीसमीस मारै बिसमाईमें अमैठयो जाय ; जीति यमसाज को चुनौती यमराजको दै ऐसो वीरराज यदुराज संग बैठयो जाय। ८६

* अथ वीररस *

दीहदुराचारी व्यभिचारी अनाचारी एक हाय यनुनामें कह्यो कैसे मैं उधरिहौं; फेर प्राण त्यागे भुजचार भई ताहि ठौर आये यमदूत कहैं तोहिं मैं पकरिहौं। ग्वालकवि येतीसुनि भाग्यवली भाष्यो वह निज भुजदण्डको घमण्ड अनुसरिहौं ; तोड़ि यमदण्डको मरोरि बाहु-दण्डको सुफोरिफारि मण्डल अखण्ड खण्ड करिहौं। ८७

अधम अभंगी अग ओघनको संगी दीह धोई देह दौरि जमुना

मैं जोर ताब होत ; बीते बहु बासर प्रसंस हंस दूरभयो ह्वै गयो मुकुन्द तहँ काहूकी न दाब होत। ग्वालकवि भनत सुलेन आये दूत ताहि देखि तिन्हैं सौंही जाय जूठयो चित चाव होत ; जंगबढ़ी तिनसों उमंग चढ़ी अंगनमैं रंगबढ़्यो हियमें सुरंग मुख आब होत। ८८

* अथ भयानकरस *

पूरि रह्यो पातक मैं कलही कुचाली क्रूर काया भई कष्टित मलीन तनु भारे को ; देखि यम सौंही यमुनाको लियो नाम उन होत अंतकाल नन्दलाल रूप चारे को। ग्वालकवि त्योंही यम भाष्यो हाय हाय करि कोऊ जिन जाउ जो गयो तो मारितारे को; दूर करिदेगो दीह रौरवन मूँदिकरि चूर करिदेगो अंग अखिल हमारेको। ८६

* अथ वीभत्सरस *

पापो एक जाइकै नहायो यमुनामें जोर ह्वैकै भुजचार त्यों बिमाननकी सेजे होत ; आये यमदूत मिले पारषद बीचैंबीच खींचै खींच होत युद्ध जमिगे भलेजे होत। ग्वालकवि भाषै उन दूतनके फोरे शीश श्रोन-सिन्धु धारैं बहि-बहिकै मजेजे होत ; यमको जहर मानों जैयद कहर मयो हहर हहर चित्रगुप्त के करेजे होत। ९०

* अथ अद्भुतरस *

व्यापी अघ ओघको महापी सदिरा को मंजु कीन्हों परदेशको पयान रोज रारीमें ; भोज करिबेको लई लकड़ी करीलनकी जो करील रावरे किनारे हुतो क्यारी में। ग्वालकवि ताको उड़ि धूम गयो नर्कनमें पुर्षन समेत पापी श्याम छबिधारी में; सुमिरन सेवा ध्यान दरश परश कीये बिन मुकति दिवैया मैया यमुना निहारी मैं। ९१

* अथ शान्तरस वर्णन *

अपनो न कोऊ बन्धु बहिन भतीजे सुत भानजे न भामिनि भुरथापनको सपनो ; तपनो तपन तेज तनको अनित्य जानि सेजकरि ज्ञानकी अदेह में न चपनो। कपनो कुसंगतैं कुढंगनतैं ग्वालकबि झूठो व्यवहार माया जालते न झपनो ; थपनो न मोको जगजालके जँजालन में याते अब नाम यमुनाको योग जपनो। ९२

जौलौं रहे श्वास तौलों आश रहै जीवनको श्वास गये फेर कछु दीखत न पारहै ; काम क्रोधलोभ मोह मध्य मध्यगामी बन्यो पन्नगारिगामी को न जान्यो काहूबार है। ग्वालकबि आज आप आपनी परीहै सबै देख्यो जगवीच एक मतलबही सारहै; डार सब भारमैं कियोहै निरधार एक नाम यमुनाको मोहिं अमृत अधारहै। ६३

कामकी न काहूके न निज काम आवै काया पञ्चभूत व्यापनी बनाई विधि आमकी ; धामकी न धनकी न धनकी अतनकी तपनकी न पाद बात कीन्ही सब खामकी। सामकी न दामकी न दण्ड भेद छाया रही वेद विधि जानी कवि ग्वालजी आरामकी ; छामकी न माया बसुयामकी हमैं तो अब रामकी दुहाई आश यमुनाके नामकी। ६४

परनो कुसंगकै न अंगन मैं मेरे मन मन अन[illegible]नत न एकछण जरनो ; भरनो भलोई हिय भौनमैं मगति भल उज्वल अचल फेरछल तातैं डरनो। हरनो कुटुम्बनतैं मोह कविग्वाल भनै ज्ञान अंकुशै लैकरि क्रोधादिक दरनो ; करनो हमैं हो सो कियोई बहु घोस पर अबतौ जरूर यमुनाको ध्यान धरनो। ६५

* अथ षकऋतु वर्णन। प्रथम बसन्तऋतु यथा *

भानुतनयाकी अति तरल तरंगैं ताकि होत तेज अतुल प्रताप पल चार मैं ; बैठे सुरसंग मैं सुअंगमैं बसंती बास वैसेई बिछोना जर्द ज़रद बाज़ार मैं। ग्वालकवि कोकिल कलित कलरवराजैं त्रिबिध समीर सुख सरस अपारमैं ; किंशुक कुसुम औ अनार कचनार चारु फैलफैल फूलत बसंत की बहारमें। ६६

* अथ ग्रीषमऋतु यथा *

पाय ऋतुग्रीषम बिछाइत बनाइ वेश कोमल कमल निरमल दल टकिटकि ; इंदीवर कलित ललित मसरन्दैं रचीं छुटत फुहारे नीर सौरिभित सकि सकि। ग्वालकवि मुदित विराजत उशीरखाने छाजत सुरो मैं सुधा शिशन को छकि छकि ; होत छबि नीकी वृषभानुनन्दनी को सौंह भानुनन्दनी की ते तरंगनको तकि तकि। ६७

[अन्यच्च]

सूरयसुताके तेज तरल तरंग ताकि पुंज-देवताके घिरैं ताके चहुँकोयके। ग्रीषम वहारैं वेश छूटत फुहारैं धारैं फैलत हजारैं हैं गुलाब स्वच्छ तोयके॥ ग्वालकवि चन्दन कपूर चूर चुनियत चारस चमेली चन्द्बदनी समोयके। खासखसखाने खासे खब खिल-बतखाने खुलिगे खजाने खाने खाने खशवयके॥६८

[अथ पावषऋतु वर्णन]

पावस बहारन बिलोकै हरिलोक बीच वेशुमार बीजुली चमकै चारु चकिचकि घोर घोर घुमिरि घनावली घमण्डैं करैं घर घर घोष पौन झर झर झकि झकि॥ ग्वालकवि माथे मोरचन्द्रिका विराजै वेश आठ पटरानी देवजोरैं प्रीति थकिथकि। होत छवि नीकी वृषभानु-नन्दनीकी सौंह भानुनन्दनीकी ते तरंगनको तकि तकि॥६६

[अथशरदऋतु वर्णन]

आई शरदऋतु सुहाई वैकुंठ बीच ह्वैकरि सुवेश तहां राजै सुधा छकिछकि। तास बादलानके बिछौना शित शोभादेत झिलमिली झालरैं सुमोतिनकी झकिझकि॥ ग्वालकवि चन्द्रके कलित तन चन्द्रिका मैं तैसी मोरचन्द्रिका चमकै शीश तकितकि। होत छवि नीकी वृषभानु-नन्दिनीकी सौंह भानुनन्दनीकी ते तरंगनको तकि तकि॥१००

बेशक बिहारीके सुधामनको धनी होत बनी होत शरद जुन्हाई जहाँ जकिजकि। चौसर चमेलीके चँगेरिन मैं चुनियत हीरनतैं कुण्डल जड़ाऊ करै धकिधकि॥ ग्वालकवि आसन असन बसनन बेश सरसी सफेद शोभा चन्दन ढरकि ढकि। होत छबिनीकी वृषभानुनन्दनीकी सौंह भानुनन्दनीकी ते तरंगनको तकितकि॥१०१

[अथहेमन्तऋतु वर्णन]

अति अभिमानी पापहीमैं मति ठानी निज नरक निशानी जाहि मारैं दूत ठेल ठेल। येपै भाग जागो यमुनाको भयो दर्श पर्श ह्वैकै भज चार चारु लीन्हीं है सकेल केल॥ ग्वालकवि पीवत पियूष प्यार पूरे

पगि हाजिर हिमामको किमाम सुख झेल झेल। प्यारी रूपवन्त इककन्त छविवन्त दोऊ राजत हिमन्तमैं इकन्त भुज मेल मेल॥१०२

[अथशिशिरऋतु वर्णन]

सरसी शिशिरऋतु दरशी सुदीपनमैं परशी गोबिन्द पुर भीतर अमल भल। बीच देवतानके बिराजै वरबानिक सों मानिकके पहल गलीचा ज्योति झलझल॥ ग्वालकवि दीहदर परदे परे हैं दिव्य चंपक पियूष चन्द्रबदनी अचल चल। होत छवि नीकी वृषभानुनन्दिनी की सौंह भानुनन्दनीकीते तरंगैं तकैं पलपल॥१०३

भानुनन्दनीकी तकि तकिकै तरंगैं तेज सोवै सेज सोरभ मजेज मंजुमीसा-सी। शिशिर वहारमैं जगी है ज्योति जगमग शुद्धीभई सुमति विरुद्धी मति पीसी-सी॥ ग्वालकवि आगे मैनका-सी कलगानै गान परदा अनूप तेजतापनीं जुदीसी-सी। संगमैं लसी-सी तियबदन शशी-सी द्युतिल्लाकै सुधासी-सी मिटिजात मुखसी-सी॥ १०४

इतिषट्ऋतु वर्णन समाप्तम्॥

[फुटकर]

चमकी चहूँधा दीह दीपनमैं दिव्य-द्युति यमुना जगी है जोर जुलमिन भारीतैं। अधमअजापी महापापी नीचमीच समय परी उड़ि रेणु मीचनैन उरधारीतैं॥ ग्वालकवि आये पारषद लै बिमाननको मारि यमदूतन बिदा किये अगारीतैं। यमकी जमैयत जरनलागी समकी न दमकी रही न सुधिधमकी तिहारीतैं॥१०५

भूलहू न जातो एकौ भुनगा हरीके भौन कैसे तृषावन्तन की तिरषा बुझाती ये। सागर अपार मैं न दीखे वेशुमार सबका सों मिलि मिलिकै वहांलौं मिलिजाती ये॥ ग्वालकवि धरम धुजान फहराती ऐसे कैसेहूँ न बरण बिवेकतानि भाती ये। जीवती न गोपिका गोबिन्द के बियोग बीच जो न यमुनाकी जोर जेब दरशाती ये॥ १०६

इतिश्रीयमुनालहरी॥

श्रीईश्वरी प्रतापनारायणरायजी

छप्पय

कविवर प्रतिभापूर्ण भक्तिरस रंजित अतिशय ;
है शरणागत सत्य श्रीगुरु-हरि कीन्ह न मतिद्वय।
लीला विविधप्रकार गाय श्रीस्यामरु स्यामा ;
मध्य काव्य संगीत सरस रस ललित ललामा।
ईश्वरी प्रतापनरायणजी तजि जगत-जगत में अस रहत ;
श्रीनिंबार्क-हरि प्राप्त कीन्ह पद परमधाम धामी गहत।

श्रीईश्वरीप्रतापनारायणरायजी श्रीनिंबार्क-संप्रदायमें दीक्षित थे। यह राजवंश बराबर इसी संप्रदायांतर्गत दीक्षित होते आरहा है। अब वर्तमान महाराज वल्लभकुल-संप्रदायमें दीक्षित हैं, यह वर्तमानकालके निंबार्कीय-वैष्णवों में प्राचीन आचार्योंके सिद्धान्तोंको परित्यागकर, प्रचारके कमीका कारण है, अथवा वर्तमानकालके गुरू बनानेके तरीकोंमें परिवर्तनका कारण हो! वर्तमानकालमें तो पारमार्थिक और पारलौकिक साधनमें भी आर्थिक-चाहका अपूर्व संघर्ष है। यह कहावत प्रसिद्ध ही है 'माया सो माया मिले करि-करि ऊँचे हाथ' वर्तमान विरक्त-वैष्णवोंमें आत्मशक्तिका पूर्णतः अभाव है और विशेषतः संपत्ति-हीन भी हैं।

इनके रचनाओंका एक सुंदर संग्रह हिन्दी शृंगार-रहस्य-काव्य पड़रौना-नरेश-द्वारा प्रकाशित हुई है। उसीमें महाराजा साहिबका परिचय भी संक्षिप्त-रूपसे उल्लिखित है—वह इस प्रकार है—

"अंगरेजीकी एक उक्तिका अभिप्राय है—उन्नति करो अथवा नष्ट हो जाओ।" अर्थात् संसार उन्हींको अपने अन्तर्गत रखता है, जो सदा दृढ़ता पूर्वक आगे की ओर बढ़ते रहते हैं, और जिसमें आगे बढ़नेकी शक्ति नहीं होती उन्हें वह कालके अर्पण कर देता है। इस महान अमर सिद्धान्तको सामने रख, कड़ा मानिकपुरके सुप्रसिद्ध गहरवार क्षत्रियबीर राय-भूआलरायने मुगल सम्राटके सेना-विभागमें प्रवेश किया। इन्हें आगे चलकर "राय" का खिताब मिला और और यह अपनी वीरतासे मुगल सम्राटके तोप-खानेके अफसर

नियुक्त हुए । दृढ़ता, एकाग्रता, अध्यवसाय इनका आदर्श था। इससे इन्होंने सफलता प्राप्त की, और गोरखपुर ज़िलान्तर्गत पड़रौनाकी पवित्र-भूमिको अपने बाहुबलसे राजधानी निश्चित किया—जैसा कि, एक विद्वानका कथन है—"संसारके सभी कार्योंमें सफलता प्राप्त करनेके लिए साधारणतः विचारशील, परिश्रमी और मितव्ययी होनेकी आवश्यकता होती है।" पडरौना-स्थानके चुननेमें इन्होंने बड़ी विचार-शीलतासे काम लिया। यह स्थान बिहार, नैपाल, और युक्त-प्रदेशकी सीमा है। अतएव तीनों ओर उन्नति करनेकी प्रबल आकांक्षासे जो बात उस समय की गई थी आगे चलकर वह पूर्ण सिद्ध हुई। अब इस राज्यका विस्तार एक ओर चंपारन तो, दूसरी ओर आजमगढ़, बलिया आदिमें भी हो गया है। इसी राजवंश में बादशाह औरंगजेबके समय में रायनाथजी उत्पन्न हुये, जिनके विरत्वपर मुग्ध हो बादशाहने ३३ ग्राम नानकारमें दिए, इसके सिवाय भी समय-समय पर अनेक ग्राम प्राप्त हुए, जिसने इस राजके विस्तारको और भी बढ़ाया।

इसी वीर-वंशमें सन् १८०२ में राय-ईश्वरीप्रतापनारायणराय, उपनाम प्रतापसिंहजीका जन्म हुआ। कुशाग्र बुद्धि होनेके कारण आपकी लड़कपन ही से विद्या और सत्संगकी ओर विशेष रुचि रही। देवभाषा, संस्कृतकी उपासना आपके ग्रंथोंके मंगलाचरणके संस्कृत श्लोकोंसे सिद्ध है। इसीप्रकार आपने फारसी भाषाका भी अच्छा अध्ययन किया, परन्तु आपका जीवन कंटकाकीर्ण था। अभी आप पूरे युवा भी न थे कि, भूमिसंबंधी रियासती झगड़ेमें फँसना पड़ा। अंगरेजोंका नयानया राज्य था। राजधानी कलकत्ता थी, और सदर-दीवानी अदालत आगरा। अतएव कविवर प्रतापजीको कलकत्तासे आगरातक की दौड़ करनी पड़ती थी। उनदिनों रेलवेका भी प्रबंध न था, अतएव कठिनाइयोंका दौरदौरा था। परन्तु जैसा श्रीमिल्टनने एक स्थलपर कहा है—"जो मनुष्य सबसे अधिक कठिनाइयाँ सह सकता है—वह सबसे अधिक और अच्छा काम कर सकता है।" सुख और भोग-विलाससे मनुष्यके गुणोंका कभी विकास नहीं होता, विकास सदा दुःखों और कष्टोंसे ही होता है। जिस प्रकार सुगंधि देनेके लिए कुछ पत्तियाँ रगड़ी और मसली जाती हैं—उसीप्रकार

कुछ लोगोंको प्रतिज्ञाके विकासके लिए पीड़ित होना पड़ता है। अस्तु ऐसे कष्ट आपत्ति और महान चिन्ताके अवसरपर इन्हें अधिक समय तक आगरा, कानपूर और कलकत्ता रहना पड़ा। आगराके पास ही व्रजभूमि होनेके कारण कविवर प्रतापसिंहजी निम्बार्क-सम्प्रदायके शिष्य हुए वैष्णव-दीक्षा लेनेके कारण आपकी प्रतिभा भक्तिके स्रोतसे विकसित हुई।

काव्यका प्रेम बाल्य-वस्थासे ही था। २२ वर्षकी अवस्थामें आपने रासलीलाके भक्तिपूर्ण कितने ही पद तथा अनेक स्फुट पद, समस्यापूर्ति विभाग में छपे हुये अनेक पदोंकी रचना की थी, परन्तु भक्ति और काव्यकी सर्वोत्तम रचना आपने उस समय की, जब रियासतके ज़मींदारीका भारी झगड़ा चल रहा था। जिसप्रकार जेलमें रहकर अनेकों ग्रन्थोंके रचयिताओंका उदाहरण दिया जा सकता है उसीप्रकार ऐसे लोगोंके उदाहरण भी दिये जा सकते हैं– जिन्होंने बहुत अधिक मानसिक, शारीरिक या आर्थिक कष्टके समय अच्छे-अच्छे काम किये हैं। डारविन, शिलर, डोन आदिने रुग्णावस्था अथवा दरिद्रावस्थामें ही बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे थे। बांहमें बहुत अधिक पीड़ा होनेके समय ही गो० तुलसीदासने हनुमानबाहुक बनाया था। श्रीमद्भगवद्गीताका अमृतमय–रहस्य लोकमान्य बालगंगाधर तिलकका जेलका प्रसाद है। इसीप्रकार प्रतापजीकी उत्तम रचना, आपके मानसिक, शारीरिक और आर्थिक कष्टका सुन्दर चित्र है। मालुम होता है आपने अपनेको राधाकृष्णके अर्पण ही कर दिया था।

आपको जीवनका बहुत बड़ा अंश आगरामें बिताना पड़ा। वृन्दावन पास रहनेके कारण आपने वहां संवत् १९०७ में एक मन्दिर बनवाया जिसे अब लोग दहरौना-कुंज कहते हैं। प्रतापजीने यह भी संकल्प किया था कि ; यदि सब झगड़ा सानुकूल तय हुआ तो अपने कोषका स्वामी श्रीठाकुरजीको बनाऊँगा। घर लौटनेपर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की। एक सुन्दर सुरम्य मंदिर श्यामधामके नामसे बनवाया गया, तबसे अपनी कुल सम्पत्ति श्रीठाकुरजीकी ही समझने लगे।

श्यामधामका पग स्पर्श करती हुई बाणी-नदी बहती है। इस नदीके बीचों-बीच एक बृहद् तालाब बनवाया जिसमें सवालाख रुपये खर्च हुए। इस

तालावका नाम रामधाम प्रसिद्ध हुआ। मंदिरमें श्रीराधाकृष्णकी स्थापना हुई। जन्माष्टमी, राधाष्टमी, विजयादशमी और होली—ये उत्सव विशेष महत्वके हैं, जिनमें भारतके कोने-कोनेसे विद्वान् साधु, महात्मा, पडरौना आते हैं, जहाँ सबका आदर सत्कार होता है। श्रावणमें हिंडोलाकी जो शोभा होती है, वह वैष्णव सम्प्रदायके बड़े-बड़े मंदिरसे होड़ करती है

पडरौनामें कविवर ईश्वरीप्रतापनारायणरायजीने श्रीठाकुरजीके हिंडोले और आनन्द-बिहारके लिए एक उपवन वृन्दावनके नामसे बनवाया जिसमें वृन्दावनके सम्पूर्ण वृक्ष लगाये गए हैं। इतना ही नहीं उपवनमें वृक्षोंके नीचे जो मिट्टी है, मथुरा-वृन्दावनसे मंगाकर बिछाई गई है। यह मिट्टी और वृक्ष उस समय मँगाये गए हैं जब रेल-महारानीके दर्शन तक न थे। यह आपके ईश्वर-प्रेम और अनन्य भक्तिका पूरा प्रमाण है। इस वृन्दावन-उपवनमें ब्रज-वासियों और भगवद्भक्तोंके अतिरिक्त कोई चरण नहीं रखता।

सुकवि प्रतापजीके जीवनका महत्व इस बातमें है कि, वे जैसे प्रतिभापूर्ण कवि थे, भगवद्भक्त थे—वैसे ही राजनीतिके आचार्य थे। कार्य-साधनमें बड़ी आवश्यकता आत्मसंयम या आत्मनिग्रहकी होती है। अपने मिजाजको काबूमें रखना, बहुत जल्दी प्रसन्न या अप्रसन्न न हो जाना, प्रत्येक विषयपर शाँत होकर न्यायसंगत विचार करना, और वासनाओंको अधिकारमें रखना आदि बातें इसीके अंतर्गत हैं। ये बातें आपको प्रवास और कष्टपूर्ण जीवनने ही सिखा रखीं थी, अतएव रियासतका प्रबन्ध उत्तम था, आप आनरेरी मजिस्ट्रेट थे। आपने सन् १८६८ ई० में ६६ वर्षकी अवस्थामें इहलीला संवरण की। हिंदी-शृंगार-रहस्य-काव्य में से कुछ छंद उद्धृत करते हैं—

[रोला – छंद]

जय श्रीनंदकिशोर जयति वृषभानकिशोरी ;
जीवन रसिक अनन्यसदा सुंदर यह जोरी।
सुंदर श्यामल गौर बेनु वीना कर भ्राजे ;
नवयौवन मदमत्त सदा घूर्णित दृग राजै।

क्रीड़त कुंजकुटीर क्रीड़ा—रस—रासी ;
वारत ब्रह्मानंद वृंद वृंदावनवासी।

कंचन मनिमय रचित पंच—जोजन वृंदावन ;
जेहि सेवत सुरबृंद धारि खग मृगतरु-तृन तन ।
फूलि रहे फलि रहे फैलि रह लता ललित द्रुम ;
राजत विविधनिकुंज-पुंज अलिकुलमद विभ्रम ।
कलमुकलित तरु-अवलि काह कहिये छवि ताकर;
जेहि साजत नित रहत आप माली कुसुमाकर ।
फल-फूलनिके भीर अवनि तरुसाख रहे झुमि ;
जनु मन स्यामा-स्याम अहै अभज चाहत चुमि ।
तापर प्रफुलित जाल माल वेलिनकी सोहै ;
झुमि रहे छविझौर झुंड भँवरनकी मोहै ।
राजत खंड रसाल पुंज मंजुर सिर धारै ;
गुंजत अलिकुल-मत्त-मत्त कलरव किलकारै ।
अभिनव विटप असोक सोकहारी छविछाजै ;
सुर,मुनि-मन रमनीय पुंज कोमल दल राजै ।
वल्लि मल्लिका जाल-मालती चहुँदिसि फूले ;
मानहु विसद वितान कुंज प्रति कुंजन झूले ।
विविध भाँतिके वृक्ष स्वच्छ वृन्दारक राजै ;
सुखमा सुखद अनूप रूप अद्भुत अति छाजै ।
किसलय कोस प्रसून पुंज अद्भुत छवि वन की ;
निरखि रुचिरताकुंजरहत नहिं सुधि तन मन की ।
तिनपर अधिक सोहात भाँति वहु सुंदर राजै ;
रँग-रँग विहँग विलास ललित तरु डारन साजै ।
सारिक कीर चकोर मोर कोकिल किलकारत ;
मानहु मुनि–जनवृन्द वेदकी रिचा उचारत ।
छाया सुखद निकुंज पुंज आनँद उर सरसत ;
डोलतत्रिविध समीर धीर सौरभ रस वरषत ।

मेचक सरीर चारु कसनी दुकूल सोहै, कुंडल कीरीट राचे मनिगन रचि वहुरे ; मंजुल वनोजकर मुरली मनोज्ञ सोहैं, जन्तर

समान ताको अंतर उर गहुरे। एरे प्रताप छल छोड़ि सब अंतहुतैं एक स्यामसुंदरको दास ह्वै रहुरे; निपट असार संसार को पसारो जानि, बार-बार कृष्ण कृष्ण राधाकृष्ण कहुरे।

लोनी लोनी अलकैं कलोलती कपोलन पै, राते-राते नैन उर मैनके विसारे हैं; कुण्डल कीरीट नग अगमग जगात चारौं, आभा-विकास आभाकरसे पसारे हैं। पीतपट लंकबच्च स्वच्छ वन-माल राजै, सुखमा समूह तन साँवरे सँवारे हैं; मोर पच्च छूटैगो कौन पै प्रताप प्यार, मोर पच्चवारे सो हमारे रखवारे हैं।

काहूको करोर विधि अंतर जतन आवै, काहूको बुद्धि विधि भयके निवारे हैं; काहूको अधार कर आयुध दो-धार धारे, काहू विसाल दृढ़ द्वारनके वारे हैं। काहू को तन-बल कुटुम्ब-बल काहू को काहू को असंख्य गृह संपति सँवारे हैं; मोहि तो प्रताप घर कानन न आन दूजो, मोरपच्चवारे सो हमारे रखवारे हैं।

आरत पुकारत विसारि खगराजहू को,धायके पायन गजराजको उबारे हैं; सुंदर सरोज-मुख दावानल पान कीन्हों, संकट अपार नख सैलको सम्हारे हैं। ऐसे ब्रजराज एक दीननके काज जाए, जसुदाके बारे अरु नन्दके दुलारे हैं; कैसेकै प्रताप मेरे त्रासकी निवास आवै, मोरपच्चवारे सो हमारे रखवारे हैं।

जन सो अकस हरिनाकस अपार कीनी; कसि कै सो जानु ताको उदर-विदारे हैं; कूदि कै सकोप कुल कंस विध्वंस कीनो, चोटी लपेटि कर छार यों पछारे हैं। जहां-जहां आनि परयो गाढ़ निज दासन पर तहां-तहां स्यामसुंदर आप हो निवारे हैं; तासों असंक ह्वै विचरो प्रताप प्यारे,मोरपच्चवारे सो हमारे रखवारे हैं।

जाको करि आस वास तजिके सुदास केते, डोलत उदास वन पन्नग पहारे हैं; केहरि गयंद बीच बँकत न बार नेकु, दिन-दिन अपार जाको जसके उचारे हैं। ऐसो भरोसो दृढ़ साँवरे सलोने को, चित्त मों विचारि ताको भय को विसारे हैं; अंतरिच्च जल थल निरंतर प्रताप प्यारे, मोरपच्चवारे सो हमारे रखवारे हैं।

दोऊ अनूप अतिकोमल पदारविंद, मेरे निरंतर उर-सरको कमल भौ; भृंग भौ सोभा-पराग मतवारो मन, अंग अंग आभा मो मीन–दृग-जल भौ। केहू प्रताप बात-घात सो न हाले अव, आली सनेह–थल पल-पल प्रबल भौ; साँवरी त्रिभंगी मृदु मूरति गोपालजू की, अब तो प्रताप उर मेरुसो अचल भौ।

झिंगली झलकैं सँग स्याम कलेवर मोतिनकी छवि कानन मैं;
कल नूपुर पंकज–पाम लसै कनकांगद सोहै भुजानन मैं।
सो मृदु–मूरति बाल–गोपाल प्रताप सदा धरु प्रानन मैं;
जिहि या छवि को अनुराग नहीं तिहिं त्यागि मसी दै आनन मैं।१

मंजु दुकूल कसे कटि सौं झलकैं कल–कुंडल कानन मैं;
सुजिती छवि दिव्य किरीट प्रताप तिती छवि मोर-पखानन मैं।
यों विलसैं मुरलीधर मंजु धरे मुरली अधरानन मैं;
जिहि या छवि को अनुराग नहीं तिहिं त्यागि मसी दै आनन मैं।२

जोइ हैं प्रगटे जग-जोति महा जल में थलमें सचराचर मैं;
सोइ ये व्रजराज विराजत हैं व्रजगोप सखा बछरानन मैं।
निसिवासर तू तिहिं जापि प्रताप कहा भरमै भव–खानन मैं;
जिहि या छवि को अनुराग नहीं तिहिं त्यागि मसी दै आनन मैं।३

छवि-पावन-पुंज प्रताप लसै कलिता ललिता वनितानन मैं;
गर गुंज को माल विसाल सोहावन मंजुल गुंज लतानन मैं।
छवि तीछन कोर कटाच्छ जिती सुकहा छवि मैनके वानन मैं;
जिहिं या छवि को अनुराग नहीं तिहिं त्यागि मसी दै आनन मैं।४

जासु भुजावल पाय प्रताप सदा विचरे सुर त्रानन;
मान मेचकता मन दूरि दुरै दुरि दामनि मंजुल व्रानन मैं।
मन–मंद सुनंदकुमार सँभार जो अहै तब वंधु विद्यानन मैं;
जिहि या छवि को अनुराग नहीं तिहिं त्यागि मसी दै आनन मैं।५

———

श्रीसेनापति

छप्पय

सौष्ठव सरस अनूप भावमय सुभगुन ;
जड़ जंगम जगजीव जौन मोहैं कविता सुन ।
थाड़ि अनूप स्वरूपसिंधु रस श्रीबृन्दावन ;
जन्म अशेष व्यतीत धाम धन तन मन ।
इन सम इनहीं की सरस रचना प्रेम प्रकास्य छवि ;
अमर काव्य अभि अवनिपर सेनापति जबतलक रवि ।

महाकवि सेनापतिका जन्म कान्यकुब्ज-ब्राह्मण-कुलमें सं० १६४६ के लगभग हुआ था। ये अनूपशहरके रहनेवाले थे, इनके पिताका नाम गंगाधर था। इन्होंने अपने विद्या-गुरुका नाम हीरामणि-दीक्षित लिखा है, वह इन्हींके द्वारा निर्मित कवित्त इसप्रकार है—

दीक्षित परशुराम दादो है विदित नाम जिन कीने जज्ञ जाकी जगमें बड़ाई है ; गंगाधर पिता गंगाधरके समान जाके गंगातीर बसती अनूप जिन पाई है। महाजन मनि विद्या दानहू ते चिंतामनि हीरामनि दीक्षित ते पाई पंडिताई है ; सेनापति सोई सीतापतिके प्रसाद जाकी सब कवि कान दै सुनत कविताई ॥

बृन्दावन-वाससे प्रथम ही इन्होंने अपनी कवित्तों रचना की है। जब इनकी उम्र ढलनपर हुई तो अपनी अवस्था देखकर श्रीबृन्दावनमें निवास करते हुए, आजन्म भजन करनेका निश्चय किया, (इन्होंने एक कवितमें वृद्ध और केश स्वेत होनेका उल्लेख भी किया है) और बृन्दावनमें जाकर श्रीराधाकृष्णोपासक टट्टीस्थानके वैष्णव होगये, आजन्म सीमा से बाहिर न होने

की प्रतिज्ञा कर ली, जैसा कि इस सम्प्रदायमें टट्टीस्थानका नियम है। कुछ लोग श्रीराम-भक्ति-सम्बन्धी-कवित्त-कथनके कारण इन्हें श्रीवृन्दावन-वासी एवं श्रीकृष्णोपासक होनेमें शंका करते हैं; किन्तु ये श्रीराम-भक्तिसम्बन्धी रामायण कथा तो प्रथम ही निर्माण कर चुके थे, अथवा साम्प्रदायिक श्रीकृष्णो-पासक कवि एवं वाणीकर्त्ता रसिकोंने भी अपनी मंत्रोपासनानुसार इष्टदेवमें अनन्यनिष्ठा रखते हुये रामलीला बहुत ही विशेष रूप में गाई है। राम कृष्ण में भेदभाव नहीं रक्खा, श्रीपरशुरामदेवजी, श्रीरूपरसिकजी, श्रीसुन्दरिकुंवरिजी और श्रीनागरीदासजी इत्यादि और भी बहुतसे महानुभाव इसके पुष्ट प्रमाण हैं। इनके इन कवित्तोंसे श्रीवृन्दाबन-वासमें दृढ़-निष्ठा पूर्णतः फलकर्ता है और सिद्धाँत भी व्यक्त होता है- ये सदैवके झंझटमयजीवनसे घबड़ाकर कहते हैं—

महामोहकंदनिमें जगत जकंदनि मैं दिन दुख दंदनिमें जात हैं बिहाय कै; सुख को न लेश है कलेश सब भाँतिन को सेनापति याही ते कहत अकुलाय कै; आवै मन ऐसी घरबार परिवार तजौं डारों लोक लाजके समाज बिसराय कै; हरिजन पुँजनमें वृन्दावन कुँजनि मैं रहौं बैठि कहूँ तरवरतर जाय कै।

पान चरनामृत को गान गुन गानन को हरि कथा सुने सदा हिये को हुलसिबो; प्रभु के उतीरन की गूदरी औ चीरन की माल भुज कंठ उर छापनको लसिबो। सेनापति चाहत है सकल जनम भरि बृन्दाबन सीमा ते न बाहिर निकसिबो रधामन रंजन की सोभा नैनकञ्जनकी माल गरे गुँजन की कुञ्जन को बसिबो।

इसप्रकार घरमें रहते हुए भी सदैव वैराग्य-हृदय थे, किन्तु अपनी अवस्था को देखतेही हृदयमें तीव्रगतिसे वैराग्य-लहर उत्पन्न हुई, कौटुम्बिक-जीवन कंट-सा प्रतीत होने लगा। व्याकुल होकर घरबार एवं परिवारको परित्याग करनेमें ही श्रेय समझकर श्रीवृन्दाबन आ गये और यहाँ विरक्त होकर श्रीस्वामीजीके सिद्धान्त को ग्रहणकर पुनः यहां से बाहिर नहीं गये।

इनके द्वारा निर्मित ग्रंथ कवित्त-रत्नाकर विशेष प्रसिद्ध है । शिवसिंह सरोजमें इनके एक 'काव्यकल्पद्रुम' का भी उल्लेख है, और कालीदास–हजारामें बहुतसे संग्रह कवित्तोंका भी । कवित्त-रत्नाकरको देखनेसे विदित होता है कि इसकी रचना लगातार नहीं हुई है, समय-समय पर निर्मित कवित्तोंको इन्होंने एकबार संग्रह कर दिया है। यह ग्रंथ पाँच तरङ्गोंमें विभाजित हैं, प्रथम तरङ्गमें छन्द हैं, श्लेष और रूपकको लेकर कवित्तोंकी रचना हुई हैं। द्वितीयमें शृङ्गाररसके ७४ कवित्त हैं, एवं तृतीयमें षटऋतुओंका वर्णन है और ५६ कवित्त हैं। चतुर्थ तरङ्गमें ७६ छन्दों द्वारा रामायणकी कथा वर्णित है। पञ्चम में ८७ छन्दों द्वारा भक्ति विषय वर्णन एवं २७ कवित्तोंमें चित्र कविता वर्णित हैं। इन्होंने अपनी कविताकी रचना ब्रजभाषामें की है । इनके छंद मिलित वर्णसे मुक्त है, उनमें अनुप्रास और यमक विशेष रूपसे व्यवहरित हैं। ये बड़े ही उत्तम कवित्त निर्माण करते थे और महाकवि थे । इनके छंद साधारण व्यक्तियोंके समझसे परे हैं, इन्होंने स्वयं लिखा है—'सेनापति बरनी है बरषा सरद रितु मूढ़ न को अगम सुगम परवीन को ।' ये अपने कवित्तोंमें श्लेषताकी विशेषता रखते थे, जो हरएक छन्दमें विद्यमान हैं, इन्होंने रूपक और उपमाएंकी भी बहुत प्रतिष्ठा की है, अच्छी-अच्छी उपमाएं अन्वेषण पूर्वक व्यवहरित किए हैं। इन्होंने कवित्तोंके सिवाय सवैया छन्द नहीं लिखा, सवैया छंदमें इनके नाम छाप में नहीं आसकते शायद इसीलिये नहीं लिखा। ये पूर्ण वैराग्य हृदयसे भगवद्‌भजन करना चाहते थे अंतमें वैसा ही किये भी ।

ताही भांति धाऊँ सेनापति जैसे पाऊँ तन कंथा पहिराऊँ करौं साधन जतीनके। भसम चढ़ाऊँ जटा शीसमें बढ़ाऊँ नाम वाहीके पढ़ाऊँ दुखहरन दुखीनके ॥ सबै विसराऊँ उर तासों उरझाऊँ कुंज वन वन धाऊँ तर भूधर नदीनके। मन वहिराऊँ मन मनहिं रिझाऊँ वीन लैके कर गाऊँ गुन वाही परवीनके ॥

इसप्रकार ये जिस विषयको लिये उसीमें रचनाकर उत्तमता पूर्वक सफलता प्राप्त कर सके हैं। इन्होंने अपनी कविता की उत्कृष्टता स्वयं कहा है, अत: कोई शिथिल छंद ढूढ़ना चाहे उसका परिश्रम व्यर्थ होगा।

इन्होंने किसी अन्य कविकी रचनाके भाषाका परिहरण नहीं किया, इनकी कवित्तें इन्हींकी सच्ची लगन एवं सच्चे हृदयसे प्रादुर्भाव हैं। विचार कड़े होने पर भी रचनामें कोमल भाव व्यक्त करनेमें पूर्ण समर्थ हुये हैं। गागरमें सागर भरनेमें इनकी पटुता की पूर्ण विशेषता है, ऐसा बहुत कम कवि कर सके हैं।

विदित होता है, कि प्रथम ये किसी बादशाहके यहाँ बड़े आफ़िसर उच्च-पदपर नियुक्त थे, कंगाल नहीं थे। सहृदय एवं भक्त होनेके कारण इन्हीं झंझटोंसे हृदयमें वैराग्य होगया और वृन्दावन आगये। इन्होंने लिखा है—'चारि वरदान तजि पायक मलेछनके पायक मलेछनको काहेको कहाइये।' 'महामोह कंदनिमैं जगत जकंदनिमें दिन दुख ददनिमें जात है विहायकै।' इत्यादि। इनके द्वारा निर्मित 'कवित्त-रत्नाकर' पं० उमाशंकर शुक्ल एम० ए० द्वारा सम्पादित, हिंदी परिषद् विद्यालय प्रयागसे मुद्रित होचुका है। यहाँ कुछ षटऋतुके कवित्त उद्धृत करते हैं—

कवित्त—

बरन-बरन तरु फूले उपवन वन सोई चतुरंग संग दल सजियतु हैं; वंदी जिमि बोलत विरद वीर कोकिल हैं गुंजत मधुप गान गुन गहियतु हैं। आवै आसपास पुहुपनकी सुवास सोई सौंधे के सुगंध माँझ सने रहियतु हैं; सोभाको समाज सेनापति सुखसाज आज आवत वसंत रितुराज कहियतु हैं। १।

सरस सुधारी राजमंदिर में फुलवारी भौंर करें सोर गान कोकिल रवाव के; सेनापति सुखद समीर है सुगंध हेतु हरत तुरत श्रम सीतल सुभाव के। प्यारो अनुकूल केहूं करन करनफूल केंहू सीसफूल पावड़ेऊ मृदु पाव के; चैतमें विभात सँग प्यारी अलसात लाल जात मुसक्यात फूल बीनत गुलाव के। २।

लसत वुटजवन चंपक पलास वन फूली सब शाखा जे हरति जन चित्त हैं; सेत पीत लाल फूल जाल है विसाल तहाँ आछे अलि अच्छर जे काजरके मित्त हैं। सेनापति माधव-महिना भरि नेम करि बैठे द्विज कोलिक करत घोष नित्त हैं; कागज रंगीनमें प्रवीन ह्वै वसंत लिखे मानो काम चक्कवेके विक्रम कवित्त हैं। ३।

लाल–लाल टेसू फूलि रहे हैं विसाल सँग स्याम रँग भेदू मानो मसि मै मिलाए हैं; तहाँ मधुकाज आय बैठे मधुकर–पुंज मलय पवन उपवन वन धाए हैं। सेनापति माधव–महिनामें पलास–तरु देखि-देखि भाव कविता के मन आए हैं; आधे अनसुलगि सुलगि रहे आधे मानो विरहीदहन कामकैला परचाए हैं। ४।

तपे इत जेठ जग जात है जरत जासो तापते तरनि मानो भरनि भरत है; इतही आसाढ़ उठे नूतन सघन घन सीतल समीर हिए हितल भरत है, आधे अँग ज्वालन के जाल विकराल आधे सुखद समोद हिए धीर न धरत है; सेनापति ग्रीषम तपत रितु भीषम है मानो वड़वानलसे वारिध वरत है। ५।

सेनापति तपनि तपत उतपति तैसो छायो रतिपति ताते विरह वरतु है; लुकनके लपटे ते चहुंओर झपटे यों ओढ़े सलिल पटै न चैन उपजतु है। गगन गरद धूँधि दशोदिशा रही रूँधि मानो नभभार की भसम वरसतु है; तरनि बताई छिति व्योमकी तताई जेठ आयो आतताई पुर पाक सो करतु है। ६।

सेनापति उवे दिनकर के चलत लूवैं नद नदी कूवै कोपि डारत सुखाय कै; चलत पवन मुरझात उपवन वन लाग्यो है तपन डार्यो भूतलौ तचाय कै। भीषम तपत रितु ग्रीष्म सकुचि ताते सीत है कछुक तहखानन में जायकै; मानो सीतकाल सीतलता के जमायवेको राख्यो है विरंचि वीच धरामे धरायकै। ७।

वृष को तरनितेज सहसो किरनि करि ज्वालन के जाल विकराल वरसतु हैं; तचति धरनि जग जरत झरनि सीरी छाँह को पकरि पंथी पच्छी विरमतु है। सेनापति नेक दुपहरी के ढरत होत ध्राम को विषम यों वन पात खरकतु है; मेरे जान पौनो सीरी ठौर को पकरि कोनो घरी एक बैठि कहुं घामै वितवतु है। ८।

दूर यदुराई सेनापति सुखदाई रितु पावष की आई नहिं पाई प्रेमपतियाँ; धीर जलधर की भो सुनि धुनि धरकी सो दरकी सोदा-गिनि की छोह भरी छतियाँ; आई सुधि वरकी हिए में आनि करकी

कही जो प्राणप्यारे वह प्रेम भरी वतियाँ ; वीती औधि आवन की लाल मनभावन की डग भई वावन की सावन की रतियाँ । ६ ।

दामिनी दमक सुरचाप की चमक स्यामघटा की घमक अति-घोर घनघोर ते ; कोकिला कलापी कल कूजत है जित-तित सीकर ते सीतल समीर की झकोर ते । सेनापति आवन कह्यो हो मनभावन सुलाग्यो तरसावन विरह जुर जोर ते ; आयोसखि ! सावन मदन सरसावन सुलाग्यो वरषावन सलिल चहुं ओर ते । १० ।

वर्वरात वैहर प्रचंड खंड मंडलपै दर्वरात दामिनी की द्युति तैसी अर्फरात ; घर्घरात घनन के मेघ आए झर्झरात पर्परात पानिप के वुंदन ते जर्फरात । भर्भरात मानिनी भवन माँझ सेनापति हर्वरात हाय दीय पीयपीय वर्वरात ; चुर्भुरात खिन्न-खिन्न धीर न धरत वीर नीरहीन मीन ऐसी सेजपर फर्फरात । ११ ।

उन एतै दिन लाए सखी ! अजहू न आए उनयेते मेह भारी काजर पहार से ; काम के वसीकरन डारै अवसीकरन ताते ते समीर जैहैं सीतल तुषार से । सेनापति स्यामजूको विरह छहरि रह्यो फल प्रति फूल तन डारत प्रजार से ; मोर हरषन लगे घन वरषन लगे विनु वरषन लगे वरष हजार से । १२ ।

पावस निकास ताते पायो अवकास भयो जोन्ह को प्रकाश सोभा ससि रमनीय को ; विमल अकास भए वारिज विकास सेनापति फूले कास हितू हँसन के हिय को । छितिन गरद मानो रँगे हैं हरदसालि सोहत जरद को मिलावे हरि पीय को ; मत्त है द्विरद मिटयो खंजन दरत रितु आई सरद सुखदाई सब जीव को । १३ ।

वरन्यो कविन कलाधर को कलंक तैसो को सकै वरनि तिनहू की मति छीन्ही है ; सेनापति वरनि अपूरव जुगति ताहि कोविद विचारो कौन भाँति वुधि दीन्ही है । मेरे जानि तेतिक सो सोभा होत जान परी तेतिकै कलानि रजनी को छवि कीन्ही है ; बढ़ती के राखे रैनिहू ते दिन ह्वै है याते आगरी मयंक ते कला निकारि लीन्ही है । १४ ।

विविध वरन सुरचाप ते न देखियत मानो मनि भूषन उतार धरे भेष है ; उन्नत पयोधर वरषि रस गिरि रहे नीके न लगत फीके सोभा के न लेश है। सेनापति आएते सरद रितु फूलि रहे आसपास कास खेत-स्वेत चहु देश है ; योवन दरन कुंभयोनिके उदैते भई वरस विरध ताके स्वेत मानो केस है। १५।

कातिक की राति थोरी-थोरी सियराति सेनापति को सुहात सुखी जीवन के गन हैं ; फूले हैं कुमुद फूली मालती सघन वन फूली रहे तारे मानो मोती अनगन हैं। उदित विमल चंद चांदनी छिटकि रही राम कैसो जस अध उरध गगन है ; तिमिरहरन भयो स्वेत है वरन सव मानहु जगत छीरसागर मगन है।

पूषके महिना कामबेदन सही ना जाय भोगही को चोस नहीं विरह अधीन के ; भोरही सीत सो न पावक छूटत त्योही राति आई जानि है दुखित गन दिन के। दिनकी छोटाई सेनापति वरनि न जाय रंचक जताई मन आवै परवीन के ; दामिनी ज्यों भानु ऐसे जातु है चमक देखो फूले नहीं पावत सरोज सरसीन के।१७

आयो सखी ! पूषौ भूलि कंत सौ न रूसौ केलि ही सो मन भूसौ जीउ ज्यों सुख लहतु है ; दिनकी घटाई रजनी अघटाई सितताई हूको सेनापति बरनि कहतु है। याही ते निदान प्रात वेगि उदै होत नहि द्रोपदीके चीर कैसो राति को महतु है ; मेरे जान सूरज पताल तपै ताल माझ सीत को सतायो कहलायके रहतु है।१८

वरसै तुषार वहें सीतल समीर नीर कंपमान उर क्योहूँ धीर न धरत है , राति न सिराति सरसाति व्यथा विरह की मदन अराति जोर जोवन करत है। सेनापति स्याम हौं अधीन हौं तिहारी सौंहौं मिलो बिन मिले सीत पार न सरत है ; और की कहा है सवितहू सीतरितु जानि सीतको सतायो धन राशि में परत है। १६

सीतको प्रवल सेनापति कोपि चढ़यो दल निवल अवल गयो सूर सियराय कै ; हिमके समीर तेए वरषै विषम नीर रही है गरम

भौन कोन ही में जाय कै। धूम नैन वहै लोग होत हैं अचैन तऊ हिय को लगाय रहै नेकु सुलगाय कै; मानो भीत महासीत ते पसारि पानि छतियाकी छाइ राख्यो पावक छिपाय कै।२०

हिमके तुषार से बुखार से उखारत है पूष मास होत सुन हाथ पायँ उरके; दिनकी छुटाई औ बड़ाई वरनि न जाय सेनापति रहो जिय सोच को सुमिर के। सीतहू सहस कर सहस चरन होके ऐसे जात भाज तम छावत है घिरके; जौलो कोक कोकी से मिलन कहे तौलो रात कोक अध कीचही ते आवत है फिरके।२१

सुरैं तजि भाजी बात कातिक में जब सुनी हिमकी हिमाचल ते चमू उतरति है; आयो अगहन कीन्हों वाहन दहनहूको तितहूते चलि कहू धीर न धरति है। हिममें परी है हूल दौरि गही तजी तुल अब निज मूल सेनापति सुमिरति है; पूष में तियाके उच कुच कन काचलमें गढवै गरम भई सीतसा' लरति है।२२

शिविर तुषारके बुखारमें उतार है पूष विते होत सुने हाथ पाँव ठरि कै; द्योस की छोटाई की बड़ाई वरनि न जाय सेनापति गई कछु सोचि के सुमिरि कै। सीतते सहस कर सहस चरण ह्वै के ऐसे जात भाजि तम आवत है घिरि के; जौलों कोक कोकीको मिलत तौलो होत रात कोक अधवीचही ते आवतु है फिरि के। २३।

शिशिरमें शीश को स्वरूप पावै सविता हू घाम हू में चांदनी की द्युति दमकति है; सेनापति होत सीतलता लै सहसगुनी रजनी की झाँई वासरमें झमकति है। चाहत चकोर सुर और दृग छोर करि चकवाकी छाती तजि धीर धरकति है; चाँदके भरम होत मोदके कुमोदनी को शशि शंक पंकजनी फूलि ना सकति है ॥ २४ ॥

श्रीस्वामिनीदासजी

छप्पय

रहत सदा पदकंज मधुप आचार्यपाद पद;
गावत कविता मध्य चरित संपूर्ण विमल सद।
श्रीहरिव्यास-जस सरस छबीसी पावन गायक;
जाहि गाय नर अमर परमपद लहने लायक।
श्रीवृन्दावनशरणदेव—पद परसि न पुनि लौकिक तक्यो;
श्रीहरिप्रिया प्रताप पाय पुनि पुनि इन पद जसरस छक्यो।

इनके द्वारा निर्मित श्रीहरिव्यास-छबीसी नामक ग्रंथ स्थल—स्थान उदयपुरके श्रीनिम्बार्क-पुस्तकालयमें रखा हुआ है। श्लोक, छन्द एवं चौपाइयोंमें आचार्य-यश एवं स्तोत्रें वर्णित हैं। यह श्रीरूपरसिकदेवजी-कृत 'श्रीहरिव्यास-यशामृत' के जोड़का है। ये एक सुकवि विदित होते हैं। इसमें मथुरामें स्थित ध्रुव-टीलेपर स्वामी श्रीप्रहलाददासजी और श्रीगिरिधरदासजीके संवाद रूपमें श्रीहरिव्यासदेवजीके चरित वर्णित हैं। ये श्रीवृन्दावनशरणदेवजीके शिष्य विदित होते हैं। क्योंकि ग्रंथारम्भमें वन्दना करते समय सर्वप्रथम इन्हीं आचार्यदेवके चरणोंकी वन्दना की है। श्रीहरिव्यास-छबीसीमें से कुछ छंद उद्धृत करते हैं—

नमो जयति हरिव्यास उदारा; तुम्हरी महिमा अनत अपारा।
नमो जयति हरिव्यास अनंता; गावत तुमको सन्त महंता।
श्रीहरिप्रिया रूप सुखदायक; भक्तभूप चूड़ामणि नायक।
महावानी कर्ता अघहर्ता, सुखभर्ता भवसागर तर्ता।
नमो नमो करुनानिधि स्वामिन्; सर्व वेदके अन्तरजामिन्।
नमो नमो हरिव्यास सुशीला; युगल महलकी जानत लीला।
जय हरिव्यास मिटावै दुखतै; युगलकेलि बरषौ नित मुखतै।
पाहि पाहि जगदीश गुरो हरि; आए शरण सर्प-जगते डरि।
भक्तपाल पाषंड-विनाशक; जय हरिव्यास प्रेमपरकासक।

सनकादिक-मारग विस्तारक; जय हरिव्यास जन्म दुखदारक।
श्रीहरिव्यास सुपर्म सुजाना; हमपर कृपा करौ भगवाना।
तीनि लोकमें भक्ति सुखदायक; राधारवन भवन जस गायक।
जय हरिव्यास जगत उजियारे; देवी देव अनन्त उधारे।
नाग महाखल वेश्या तारे; जय हरिव्यास महा सुखकारी।
जय हरिव्यास अनन्त प्रतापी; बहुत उधारे पापी शापी।
सम हरिव्यास प्रेम परपुष्टी; अमित उधारे दुष्टी कुष्टी।
जय हरिव्यास सदा संतुष्टी; जय हरिव्यास महाबुधि सुष्टी।
जयहरिव्यास नाम अतिमिष्टा; जय हरिव्यास पूज्य मुनिशिष्टा।
जय जयजय हरिव्यास वरिष्टा; जय जय जय हरिव्यास गरिष्टा।
जयजयजय हरिव्यास भरिष्टा; सर्व जयति हरिव्यास धरिष्टा।
जयश्रीमतहरिव्याससहिष्णुः; जय श्रीयुत हरिव्यास महिष्णुः।
नमोनमो हरिव्यास वरिष्णुः; नमो नमो हरिव्यास गरिष्णुः।
श्रीहरिव्यास युगल आराधी; अमित पतित तारे अपराधी।
जय हरिव्यास प्रेम पर ऐना; धन्य जीभ जे उचरत वैना।
श्रीहरिव्यास नाम सुख चैना; उचरत तासु मिटे जग फैना।
जय हरिव्यास भक्त पितुमाता; जय हरिव्यास भक्तजन भ्राता।
जय हरिव्यास भक्त राजेश्वर; जय हरिव्यास सर्व सुखके घर।
जय हरिव्यासयुगललीलाकर; धर्मधुरन्धर मेटत यम डर।
जय हरिप्रिया हितू पद-सेवी; जय हरिप्रिया संग रँगदेवी।
जयहरिप्रियामहाअभिरामिनि; परम सहेल्यादिककीस्वामिनि।
जय हरिप्रिया विपिनकी रानी; युगल किसोर सदा मनमानी।
जय हरिप्रिया हितू अगवानी; परम सहेलीकी ठकुरानी।
जय हरिप्रिया अनंता नारी; प्रीतम प्यारी की अति प्यारी।
जय हरिप्रिया नावोढ़ा नारी; परमधरम बृन्दावनचारी।
जय हरिव्यास सदा श्रीभटके, अन्तर्यामी सब घट घट के।

श्रीबाँकावतीजी

छप्पय

सरस भावमय छन्द विरचि हरिजस विस्तार्‍यो ;
सुगुण अलंकृत काव्य कविन भक्तन मन धार्‍यो ।
रूपनगर नृप रूपसिंह कुलकृत यह रीती ;
सफल सम्हारिशक्ति भक्ति भीजी निज नीती ।
श्रीबाँकावतीजी सरस भागवत उल्थाकतृवर ;
श्रीनिम्बार्क-पद पायपुनि सनक-सम्प्रदा स्नेह घर ।

महारानी बाँकावतीजी कृष्णगढ़-नरेश महाराजा राजसिंहजीकी रानी थीं। इनका विवाह महाराजके संग सं० १७७६ में हुआ था। और ये लिवाण के कछवाहा राजा आनंदारामजी उदेरा मौतकी लड़की थीं, जो जयपुर राज्यान्तर्गत है। सुप्रसिद्ध महाराज श्रीनागरीदासजी इनके पुत्र थे, और श्रीसुन्दरि कुंवरिजी पुत्री। इनके घरानेमें कविता पुरुषसे लेकर स्त्री तकके लिये परम्परा-प्राप्त स्वयं-सिद्ध-सम्पति है ही। सो गुण महारानीजीमें भी होना स्वाभाविक ही था। इन्होंने ग्यारहों स्कन्ध श्रीमद्भागवतका विस्तार-पूर्वक छन्दोवद्ध उल्था किया है। इस ग्रंथका प्रसिद्ध नाम ब्रजदासी-भागवत है। इसमें अधिकाँश दोहा चौपाई हैं, और ब्रजभाषाके संग वैसवाड़ी मिश्रण है। राजपूताना जन्मभूमि होनेके कारण मातृभाषाके भी शब्द सम्मिलित होगये हैं। कविता बहुत ही सरस और उत्कृष्ट है। यह ग्रंथ हमने सलेमाबादके पुस्तकालयमें देखा था, हस्तलिखित वृहदाकारमें कईएक जिल्दोंमें है। प्रकाशित ग्रंथ नहीं देखा।

ये महारानीजी भी सलेमाबाद (परशुरामपुरी) गद्दीकी शिष्या थीं, आपके मंत्रगुरु बृन्दावनदेवजी थे, जो एक बहुतही प्रसिद्ध एवं प्रभावशाली आचार्य थे। जोधपूर, उदयपुरादि कईएक बड़े-बड़े राजाओंके यहाँ निमंत्रणसे पधारते थे, एवं महान् सनमान-पूर्वक सेवा ग्रहण करते थे।

ये महाराजा जगतसिंहजी (उदयपुरनरेश) के आग्रहसे उदयपुर पधारे और सं० १७९०में वहीं विराजते रहे, पश्चात् पुनः सलेमाबाद वापिस आगये। श्रीबाँकावतीजीने श्रीनिम्बार्क सम्प्रदायके प्रवर्त्तकाचार्यों एवं पश्चात् भागवदाचार्यों का एक छप्पै द्वारा क्याही सुन्दर बन्दना की हैं—

नमो नमो श्रीहंस नमो सनकादि रूप हरि ;
नमो नमो श्रीनारद देव ऋषि जग को समसरि।
नमो नमो श्री व्यास नमो सुकदेव जु स्वामी ;
नमो परीक्षित राज ऋषिनमें मुख्य जु नामी ।
पुनि नमो नमो श्रीसूतजू नमो नमो सौनक सकल ;
अरु नमो नमो श्रीभागवत कृष्णरूप छितिमें अकल।

ब्रजदासी भागवतमें से कुछ छन्द उद्धृत किये जाते हैं—

नमो नमो गोपाललाल गोवर्द्धनधारी ;
नमो नमो वृषभानकुँवरि पिय प्रानपियारी।
नमो नमो ममगुरु प्रसिद्ध वृन्दावन नामं ;
नमो नमो हरिभक्त रसिक जे अति अभिरामं।
नमो नमो श्रीभागवत कृपासिंधु मंगलकरन ;
दिनकर समान झलमलत सो प्रगट जगत अधतम हरन ।

[छंद–गीतिका]

अहो परम सुंदर गुन तुम्हारे श्रवन मग अनुसार ;
उर पैठि त्रिविध तापहि करै समन मुदित सुढार।
सुनि तिन्हैं अरु रूप तुम्हारौं दृगनिकौ सुखदाय ;
तुम माहिं मेरौ चित लग्यो हे प्रान नाथ लुभाय।
इह आवत न मुहिलाज में हू उनहि लायक ना हिनै ;
पर सुन्यौ है तुम दीन तारन सरन राखे जन घनै।
गुन सील वेय द्रव्य रूप विद्या तेज सहित सुहावने ;
सब भाँति पूरन प्रान प्यारे तुमहि सुनि मन आवनै।

कुलवंत कन्या कौन ऐसी धीरधर ! तुम ही नै चहै ;
वर चुकी हौं मैं तुमही मन तै भ्रात रुकमी हिय दहै ।
तुमको समर्पित अपनपौ मैं कियो हे दृगपङ्कजं !
भई दासि हौं ताते तुम्हारी पत्र पठय निशंकजं ।
मुहि वरै यह शिशुपाल पापी काज ऐसो न कीजियौ ।
भष सिंघको हे दीनतारन ! स्यारको मत दीजियौ ।।
करि धर्म ब्रत यज्ञ दान पुनि सुर विष गुरु किय प्रश्नजू ।
फल यहै ताको चहत हैा गहि हाथ व्याहै कृष्णजू ।।
पहले दिना तुम व्याहके यहां आय सैना संग लियै ।
करि व्याह अपनी रीत मुहि हरि दाह द्यो रुकमी हियै ।।
कहिहौ कदाचित तुम यहै तू रहत अन्तहपुर विषै ।
तो वंधु मारे विनहि कैसे ल्याउँ हरि तुहि हित यसै ।।
जिह इक उपाय वताउँ तुमको भेद सो निज मन धरौ ।
मै तिया जन्मनि, २ तुम्हरी पति जो तुमसी हो करौं ।।
दिन व्याहके पहले यहां निरधारि करि यहि रीतिसौ ।।
जिहि अंविका के देहरे बिच आय मुहि हरि लीजिये ।
मलि मान दुष्टनके भले अव दान जिय पिय दीजिये ।।
शिव आदि साधु सुजान सब तुम चरणरजको चहत हैं ।
धरि ध्यान निज हिय रावरो आनंद अघरितु उर लहै ।।
नहि करहुगे जो कृपा मोपर दया करि अपनाय कै ।
निज प्रान त्यागन तौ करौंगी हृदय उष्ण बढ़ाय कै ।।
फिरि जन्म सौ लौ रीति ऐसी करि महा उछरङ्ग सौ ।
मिलिहैं जो तुमसे होय पतनी भोगकर उसुढंग सौ ।।

श्रीसुन्दरिकुँवरिजी

छप्पय

श्रीवृन्दावनदेव गुरू-पद-पद्महि प्रीती ;
श्रीआचार्य-रस-रूप दृढ़ाई भक्ती-रीती ।
विरची ग्रंथ बहुविविध भक्ति रस तैसी ;
हुई न ह्वै हैं श्रीस्वरूप प्रति रचना ऐसी ।
नित्य सखी प्रगटी मनो बाई श्रीसुन्दरिकुँवरि ;
बहिन नागरीदास अरू पुत्रि राजसिंह रूपनगरि ।

श्रीसुन्दरिकुँवरिजीका जन्म सं० १७९१में राजपूतानान्तर्गत रूपनगर कृष्णगढ़के राठौरवंशी राजघरानेमें हुआ था, इनके पिताका नाम महाराज राजसिंह और माताका नाम महारानी बाँकावतीजी था, जिन्होंने श्रीमद्भागवतका छंदोबद्ध उलथा किया है। इनका विवाह सं० १८२२ में राघवगढ़ खीची महाराज बलभद्रसिंहजीके पुत्र बलवन्तसिंहजीके साथ हुआ था। इनके पिता राजसिंहजी, पितामह मानसिंहजी एवं प्रपितामह रूपसिंहजी स्वयं सुकवि तथा कवियोंके आश्रयदाता थे। ब्रजमाधुरी मधुप महाकवि भक्तवर सुप्रसिद्ध नागरीदासजी इनके सगे भ्राता थे। इनके द्वितीय भ्राता बहादुरसिंहजी तथा भतीजी बिरदसिंहजीकी कवितामें अच्छी योग्यता थी। बनीठनीजी इनके घरकी एक दासीने भी रसिकविहारी छापसे पद रचना की है। ये श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायान्तर्गत श्रीपरशुरामदेवाचार्य स्थापित गद्दीस्थान सलेमाबाद (परशुरामपुरी) के आचार्य श्रीवृन्दावनदेवजीकी शिष्या थीं। जो सं० १६५६ तक उदयपुरमें रहे पश्चात् सलेमाबाद आगये थे, जिनका परमधाम-प्राप्त सं० १७९६ में हुआ था। ये श्रीवृन्दावनदेवजीसे मंत्रके सिवाय और किसी प्रकारकी शिक्षा प्राप्त न कर सकीं, क्योंकि इनकी अवस्था जब ५ वर्षकी थी, उसी समय आचार्य श्रीवृन्दावनविहारीके चरण-शरण प्राप्त होगये। इनके परशिष्य सर्वेश्वरशरणदेव जीसे इन्हें समस्त शिक्षायें प्राप्त हुईं, यह इनके द्वारा निर्मित ग्रंथ मित्र शिक्षामें उल्लिखित भी है—

श्रीवृन्दावनदेव प्रभु जिनकी दासित छाप ;
लही बाल-वयमें तवहिं उदये भाग्य अमाप।
सो अब यह दरशी प्रगट महा भाग्य की ओप ;
श्रीसर्वेश्वरशरन प्रभु दिये सुभेव निज गोप।
सथल सलेमाबाद की हौं दास्यानजु दासि ;
जिहिं प्रभाव यह रहसि किय मेरे हृदय निवास।
श्रीप्रभुजी निज दासिता छाप जबै मोहि दीन ;
तव वय वर्ष चतुर्थ में हौंजु हुती मतिहीन।
श्रीप्रभुजी की चरन लगि जब मैं करी सलाम ;
कोऊ कहि करि दण्डवत् तदपि न करों प्रणाम।
कछु समझौं न विविध विधि सो अबोध मोहिजान;
हौं बैठी जित प्रभु झुके करत कृपा वतरान
हौं पिताहि लड़वावरी विधि जैसे बोलंत ;
तैसे प्रतिउत्तर करत प्रभूजू सो न सकंत।
कोऊ कहि कर जोरि कहु श्रीप्रभुजू महाराज,
हठरौरे मानों न सो खेलन चलौं जु आज।
प्रभूजू आज्ञाकरि किहूँ जब मोहि बहुरि बोलाहिं;
तव कोऊ बहराय मोहि श्रीजी ढिग लै आहिं।
पुनि हौं खेलन भजि गई तव आऊँ नहिं फेर ;
शर्ण छाप पावन समै सबही रहे मुहि टेर।
नागरिदासजु भ्रात मों अति वहराय बुलाहिं ;
हौं नहिं आऊँ लगि गई दौरन खेलन माहिं।
तव द्वैतिय उठि दौरि मुहिं गहि लाई वहराय ;
गहै खड़ी कोऊ तहाँ भजि जाय न भय पाय।
तव ठाढ़ी बैठें नहीं तव श्रीप्रभूजू कृपाल ;
आपहि मो ढिग ह्वै उससि दियो तिलक ममभाल।

निज कर कंठी छाप पुनि मो गर बाँधी आप ;
कर धरि शिर कहि मंत्र श्रुति नाथ हरी भवताप ।
पुनि मेरे गुरुभ्रातनी इक जु हुती तिहि तन्त्र ;
आज्ञादिय जु सिखान जिहि तृतीय वर्ष मुहि मंत्र ।
इती वेर निठ रहि भजी हौं खेलन तत्काल ;
ऐसी महा अवुद्धि मैं ऐसे प्रभूजू कृपाल ।
पुनि पीछे द्वै वर्ष के प्रभूजू लीला कीन ;
सो मुहि वा वय वाल में कछु उपदेश न दीन ।
तव वहि गुरुभ्रातनी सु मोहि लखि वय सप्तमवर्ष;
श्रीगुरुदत को मन्त्र सो दिव पढ़ाय चित हर्ष ।
पुनि निज ईष्ट सुभेव कछु कुल सतसँग यहपाय;
जो श्रीराधाशर्न की है नित्त सम्प्रदाय ।
श्रीआचार्य-स्वरूप-मुख कछू लहन उपदेश ;
पुनि वन्यो न संयोग सो वंधन कर्म विशेष ।
पुनि संक्षेपहि यह सुनी मात संग अनुसार ;
श्रीनिम्वादित प्रगट श्रीरँगदेवी अवतार ।
सो निज कृत गतिहीन लहि भय भ्रम हुतो सपूर;
तिहिं श्रीसर्वेश्वरशरन प्रभूजू कीनो दूर ।

इसप्रकार इन्होंने अपनी परिचय मित्रशिक्षा-नामक ग्रंथमें दी है। ग्रन्थ संवत् १८६२ में पूर्ण हुआ था, इसमें २७५६ दोहे कवित्त एवं सवैये हैं। यह इस घरानेकी आचार्य-निष्ठाका उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें आचार्यपादोंके दो-दो चार-चार स्वरूप वर्णन बड़े ही सरस दोहों एवं छंदोंमें की गई है। इसमें इन्होंने श्रीपरशुरामदेवजीके चरित्रमें श्रीसर्वेश्वरजीका प्रागट-प्रसंग इसप्रकार वर्णन की है—

परसुरामदेवजु सही भरे प्रेम सरसाय ;
यही रूप नित जुगल तै निरअंतरसु रहाय ।

नागवाड़ गिरि पै कियो कितक दिवश जिन वास ;
तिहिं इकंत मगमहि मिले जुगलनिशंक प्रकास।
एक दिवश श्रीकृष्ण इन ढिग बैठे वतरात ;
परसुरामजु दरस हित तवहि मनुज वहु आत।
तवै कह्यौ श्रीकृष्ण इन जू तुम्हारे दर्शनीक ;
आवत हैं अवहीं यहां हैं गिरिमूल नजीक।
मोहि कहौ तौ जाउँ मैं वहुरि आयहौं प्रात ;
परसुरामदेवजु यहै कानहु धरी न बात।
परम प्रेम गति विवश अति अरुझे इन मन नैन ;
कहे जाहि जिनसो कहा बिछुरन विधि के बैन।
कछु रहि के श्रीकृष्ण पुनि इनसों कह्यो जताय ;
जू तुम्हारे दर्शनीक जे गिरिके अधफर आय।
अजू मोहि आज्ञा करो हौंजू जाहु यहि वेर ;
यहू कहन श्रीकृष्णकी करी अनुसुनी फेर।
कछुक वेरि पीछे वहुरि कहत भये श्रीकृष्ण ;
गिरि पै आये मनुज मोहि सीख देहु ह्वै प्रश्न।
यहहु इन मानी न अरु जग जन जब नियराय ;
तब श्रीकृष्ण सु भजत इन कर गहि लिय दृढ़भाय।
परसुराम करहि कर जब नहिं सके छुटाय ;
तवै अहुटि उर लपटि झट हृदय सु गए समाय।
अरु करते छूटयो न कर जाकर वस न चलाहि ;
ताकर शालिग्राम ह्वै रहि गए मूठी माहि।
लपटे उर श्रीकृष्ण जब परसुरामजू देव ;
प्रेमावेशित मिलत लहि-लहि आनंद अभेव।
परसुरामजू मूठि में जो हुव सालगराम ;
सो सेवा भ्राजत अजहु श्रीसर्वेश्वर नाम।

इससे विदित होता है कि, श्रीसर्वेश्वरजी जो एक आकार में बहुत छोटे शालिग्राम-स्वरूप हैं, विशेषतः श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी – स्थापित गद्दी के पूज्य ईष्ट हैं।

मिश्रवन्धुविनोदकारने निम्बार्कसम्प्रदायानुयायी और भी अनेक कवियोंके समान ही इन्हें भी भूलसे राधावल्लभीया लिखा है। इन्होंने बूंदी महाराजकी माता द्वारा प्रकाशित ग्रंथोंमें भी स्थान-स्थान पर अपने गुरुदेव श्रीवृन्दावनदेवकी वन्दना की हैं। वाईजीको कवितासे इतना प्रेम था कि पिता और पतिके यहां सदैव लड़ाई-झगड़े रहनेपर भी इन्होंने १२ ग्रन्थोंकी रचना कर डाली। इनके द्वारा निर्मित ग्रंथ इसप्रकार हैं जो मित्रशिक्षाके सिवाय समस्त बूंदी महाराजकी माताकी कृपासे प्रकाशित होगये हैं— १— नेहनिधि सं० १८१७ में २— वृन्दावनगोपीमहात्म्य सं० १८२३ में ३— संकेतयुगल सं० १८३० में ४— रसपुँज सं० १८३४ में राघोगढ़ सर्वेश्वरजीकी प्रस्थति मध्ये ५ — प्रेमसम्पुट सं० १८४५ में ६ — सारसंग्रह सं० १८४५ में (७) रंगझर सं० १८४५ में ८— गोपी महात्म्य सं० १८४६ में ९— भावनाप्रकाश सं० १८४० में १०— रामरहस्य सं० १८५३ में ११— पद तथा फुटकर कवित्त १२— मित्रशिक्षा सं० १८६२ में। मित्रशिक्षा ही बाईजीकी अंतिम रचना है। इनकी कविता बड़े-बड़े महानुभाव एवं सुकवियोंकी-सी है भक्ति एवं श्रीराधाकृष्ण-विहारके दिव्य रसोल्लाससे परिपूर्ण हैं। इनका अपार परिश्रम इत्कृष्ट छन्द-रचनामें पूर्ण सफलताको प्राप्त हुआ है। इन्होंने श्रीकृष्णलीला--सम्बन्धी महान काव्यका रचना कर गुरू एवं पिताके परम्पराको प्रशंशित कर दिया है। कुछ दोहे और छन्द उद्धृत किये जाते हैं—

[पद]

मन ! तू वृथा दुखी है भइया।
कूकर ज्यों भटकतही डोलत घर–घर खात पन्हैया।
मानत है न कुढंगी मूरख हाथन काज गमावै;
तौ कृत के फल है ऐसे ही सुख नियरे क्यों आवै ?
जग–जंजाल-रैन के सुपने तिनको अपने मानत;

जनम-जनम को मित्र सँगाती ताको सुधिहि न आनत।
छत आँखिन के अंध होत है परै न तेरी कंध;
तोसों मानी हार चलत नहिं कोऊ कछू प्रबंध।
मारग छाड़ि कुमारग धावत जिन भयभेरे लागे;
परमानंद चहत निर्भयता सो कित मिलै अभागे।
जो अपनौ शुभ श्रेय चहत तौ कहत आव इत ओर;
गहि रह चरन शरन सुंदरवर राधा—नंदकिशोर।१

[पद]

मन! तू काहि पचत कहा चाहत?
जड़ जंगम उद्यात बसत हैं तिनको कौन निवाहत?
तोको कहा भार है भैया! काहे को दुख मानै?
निर्भय ह्वै निश्चिन्त सहज में प्रभू कृपा किन जानै?
जगत-राहके राहगीर ए वहत वटाऊ लोग;
तिनमें तहू आन फँस्यो है किहूँ करम-संयोग।
कण कीड़ी मण कुंजर पावत रे साहिब है सबको;
आन-आन अपने मानत सो कौन किहू कै कबको?
तौ कहि द्रव्य इतौ कित थोरौ पूरत पोषन देह;
सोऊ पालन-करनहार वह नीकै करत अछेह।
काम,क्रोध अरु लोभ,मोह, मद इनको तजि तू भारौ;
तासों दुरतम संस मिटै सब ह्वै बंधन निर्वारो।
निश्चल ह्वै दृढ़ सोधि सयानप मान बात अब मेरी;
सुमरि नंदनंदन गिरिवरधर ज्यों सब श्रेय होय गति तेरी।
चहत अलौकिक सुख संग्रह तौ जाहु सरन श्रीराधा;
'सुंदरिकुँवरि'सुता कीरतिकी गहि राखे तो बाँहअगाधा।

भजि मन! श्रीवृषभानुदुलारी।
गुननिधि रूपरासि कीरतिजा नंदजसोदा गृह-उजियारी।
भोरी कुँवरि लड़ैती राधा नवलकिसोरी नागरि;
जाके नित आधीन रसिकवर गोकुलचंद उजागरि।

थिर चर जीव लोक त्रयकोटिन जाकी रचना राचै ;
सोई राधा हाथ विकानौ ततपर नाच सु नाचै।
कमला जाके चरन-कंज को चाँपि भाग निज मानै ;
सो राधा-पद परसन जावक लावन नित तरसानै।
जाको नाम रटत सब सुर,नर,मुनि,जोगी सिध साधा ;
ताको तो नित लगी रहत है एक नाम रट राधा।
जाको ध्यान धरत हैं साधक किते कष्ट तप करहीं ;
सो राधा के ध्यान नंद-गृह काज न करत सँभरहीं।
जाकी कृपा मनावत शिव विधि निसिदिन गावत गाथ ;
सोतो राधा कृपा-दृष्टि के चाहि लग्यो रह साथ।
जाको दरस सेस सनकादिक करि-करि भाग मनावैं ;
सो राधामुखकमल निहारत लोभी-भमर कहावै।
तीन लोक जाकी पदरज को नाम लेत सिर नावत ;
सोतो राधा पायन परि-परि जब तब सदा मनावत।
अरे गुप्त-धन गूढ़ वेद को है श्रीराधा-नाम ;
विष्णु-हृदय आराध जाप नित यह ही आठो जाम।
श्रीवृन्दावनदेव छाप सो भवे अलौकिक पायो ;
'सुंदरिकुँवरि'चरन-पंकज पै ह्वै अलि अब मन रह मड़रायो।३।

[पद]

रज माहिं मगन कैसो खेलत है।
सुभग चिकुर तन धूरि धूसरित डेलिक किलक सकेलत है।
चौंकि चकित चहुंओरनि चितवत छिपै माटी मुख मेलत है ;
सुंदरिकुँवरि घुटुरुवन दौरत कोटिन छवि पग पेलत है।४।

[पद]

मद व्रजविपिन रसासव भावै।
युगल रूप भरि नैन पिया लै छिन-छिन छाक चढ़ावै।
निभृत नवल निकुंज विनोदन स्वाद विविध रुचि पावै ;
लगत विभव वैकुंठ अभावन तासो सीस पिरावै।

इन्द्रलोक ठकुराय तपावन मतवारिन ठकुरावै ;
तीन लोक की रचना जेती कछु न नजर में आवै।
जमुना—पुलिन नलिन रज-रंजित मत्त पछरि मुसिक्यावै ;
तव नवल—नेह मतवारी कर गहि राधा आन उठावै ।५।

[पद]

मेरी प्रान सजीवन राधा ;
कव तुव वदन-सुधाधर दरसै मों अँखियन हरै वाधा।
ठमकि-ठमकि लरिकौंहीं चालानि आव सामुहे मेरे ;
रस के वचन पीयूष पोषि कै कर गहि बैठों तेरे।
रंगमहल संकेत सुगल करि टहलिनि करो सहेली ;
अज्ञा लहौं रहौं तहँ ततपर वोलत प्रेम पहेली।
मन मंजरी जु कीन्हों किंकर अपनावहु किन वेग ?
'सुंदरिकुँवरि' स्वामिनी राधा हिय को हरो उदेग ।।६।।

[हिंडोरा]

हिंडोरे हेली ! आज अजब रंग ;
स्याम संग सहेली झूलन चढ़ी है नवेली मनहुँ नीलमणि वेली-सी घुरौही अंग । झमकि झकोरैं चढ़ति त्यों-त्यों कुँवरि सतरात आली यह उमंग वढ़ात आपुनै वंग ; मनमथ अमल अगाधे अधर अखर कहै आधे दृगगति नवनेह साधे रही है पंग । ७ ।

[कवित-सवैये]

ललिल लपेटैं लाल लपटी सुमनमाल गुच्छनमें सुच्छ मोरपच्छ फहरान है ; कंद्रप कदन कोटि वदन पै भाव भीरै दरस प्रिया कै दृग छक सरसान है । ऐसी छविवारे गुन भारे नंदके दुलारे जीवन हमारे मन मोहवे की वान है ; अति चित लैकै दैके ह्वैकै कान ठुर रहे प्रानन के प्रानप्यारे प्रान खुरवान है । ८ ।

एहो सुजान सिरोमनि मोहन क्यों मन जान अजान वने अति;
प्रीति प्रतीति रसासव दै छकि कै हितवारी मैं हारी सवै मति ।

तापै कछू दरसात यहै नहिं चाहिए जैसे सु सोच लई हति ;
तेरी सौं तोही कौं पूछत हौं कहि मेरी सौं मेरी सौं मेरी कहागति ।६

कासौं कहौं हिय की हियहि सहौं जो पै बिथा कौ लौं गहौं धीर चित ह्वै ही भहरानता ; वह सुधि आय-आय छाय उर मित्रताई गति बिकलाई होत ऐसी बनी वानता । कसक न आत बिलखात लखि अब आहा अति अपना सकाहि अनाकानी बात ठानता ; प्रानके प्रान मन जान हे सुजान जान कहर बितान यह रावरी अजानता ।१०।

सोच कै लाजिम क्यों न करी दिलदारि यो दीसि कदायिरों वैसी ;
है दिल को दिलकादर आन अजान बने दिलजानता कैसी ।
गाहक नेह निवारक है ते क्या गफलीसी यह बात अनैसी ;
मैं तुझ पै खुरबान हे साहिबा ! बेपरवाही न चाहिए ऐसी ।११।

ऐसी तौ न जानी कैसी ठानी कहा आनी जिय नाहिन कहानी जो कहानी करियतु है ; रावरी कहानी सो न आन की कहानी किन आपुनी कहानी की कसक धरियतु है । दिलवर जानी ह्वै बनै न आना-कानी कीन्हें बहुत बितानी तानी तो न सरियतु है ; सरक वहानी वह मन की मिलानी गति अब खुरबानी जू पै परैखै मरियतु है ।१२।

क्या चित ठानी गुमानी हुआ तुझ कारन मैं सु दिवानी फरौं;
दिलजान कहाय अजान रहै इस बात सौं यो किसभाँति सरौं ।
मछरी लघुपानी की ज्यों तरफौं निरमोही जिवायरे ! हाहा करौं;
सुनि वानि प्यारे कठोर है वड़ा तेरे लेखे नहीं मैं परेखै मरौं ।१३।

कृष्ण तो पियाले पियै चस्म मतवाले हैवकैफ उसी चाले मुझ रोम-रोम छाइयाँ ; वस्मौं करि बाँधा लट तस्मौ चित खूब ख्याली गस्मौं में न जाना दिलदारि यों भुराइयां । वैसी कर ऐसी करी आफत असह परी हायरुह चोरी इस ख्यामित विताइयां ; कहना रह्या न अब सहना सलाह सब यारीदा कुपेच मैड़े नैनों दी कमाइयां ।१४।

कान क्या फाड़ैरे क्या भगवा करै क्या खुस होयगा खाख के पागै ;
मुद्रा क्या सींगी क्या मेखला देखना क्या धरै दंड दिगंबर वागै ।

क्या करै स्वांग लै जावै कहावै सोई जोरना साहिबौ लागै ;
जोगी हुयेही जो जानै तो क्या है सबही मिलि गोरख जागै ॥१४॥

जान मन जानपना कद्रदान प्रानपना दिलदारी बानपना वकसीसै की सदा; प्रीति का निधानपना अतिही लुभानपना अब खुरवानपना निठुराई है हदा। वह सुधि आनपना सरक चहानपना गति विलखान-पना मित्र सहै दुसदा ; लगन जहानपना वाजते निसानपना यारपना यारीदा जुदा हौ ना किन वदा ॥१५॥

चौंकतही चित कानन में डररै जव जो कोऊ नाव ले याते ;
आससौं सास विसास गहै रहै प्रेम प्रतीत बहै सुधि आतें।
दै दै संतोषन तोषन सों अवसोषन मोष ज्यों की हित घातें ;
आहि सहै अस है पै चहै सुकहै कौऊ वाही विसासी की बातें॥१६॥

उमड़ घुमड़ प्रीति घनन प्रतीत बूंदैं लाल लाल दै दै कर आसै दहियतु है ; प्रेम बढ़वार वेलि प्रफुलित फलित जानी सोतो सुरझानी यो उघर रहियतु है। स्वप्न हो कि सम्भ्रम कै साप्रत कहा धौं कहौं कैसी ठानी मोही निरमोही लहियतु है ; तोषन सौं पोषन हौं सोष मोषहू न अहै एरे ह्वै विसासी ऐसे ऐसी चहियतु है। १७।

एहो सुजान सिरोमनि हौ यह जान अजानता कैसी कहाए ;
प्रेम रसासव की मतवार सो तातै कहा सुध आन भुलाए।
सोई महासुखसागर है जू तही सरनायति औ तरसाए ;
जाको जो जाही कै आस है सु क्यों मीन रहै जल माहिं तिसाए१८

स्वास मूझ मूझ हिय रूझत विकल विथा अकथ कथा की गति मूँझ सुकहन दे ; आन घाव दीसै ये न दीसै डारै पोगै प्रान धूर चूर ह्वै है कछु काजही लहन दे। हाहा खूनी खाल गल जे तैहूँ सुनी है तातैं वाही के तनक भाग समता गहन दे ; रैन दिन छाती चढ़ि घाती काती फेरत है एरे अपसाधी नेक वाधी तो रहन दे ।१६।

जो भयमूर महा भवसागर तामें जहां जसु जन्म लहा है ;
दाव कुदाव अथाह वहै विचधार कै ना उपचार रहा है।

वा नर पार मझारथ की झकझाक सों जात न धीर गहा है ;
है निराधार अधार तूही अब एरे मलाह सलाह कहा है ।२०।

जीवन आधार तूही प्रानते अपार तूही द्दग उजियारी तूही और का कही परैं; ध्यान नैन तोही गुन गान बैन तोही तोही मूरत लगोही दिन रैन हियरा धरैं । स्वाति कै बिसास आस प्यासन पपीहा रहै जोलौं लहै तोलौं रट वहही रट्यो करैं ; चन्द्र के दरस विन विकल चकोर पुनि त्यों मो चित अति गति लै तोहि तरफरै । २१ ।

चेटक लाय लुभाय कियो निज चेरो यहै मन मेरो अमानी ;
ऐसी करी पुनि कैसी धरी चित होत चली अब जान अजानी ।
आन विधानतै आन परी मुहि है गति रावरे हाथ बिकानी ;
देखियो लाज निवाह सलाह सो ह्वै न कितै उपहास कहानी ।२२।

सुभगुन भीर तेरै गुनन गनी न जात उपमा न आत कहि माधुरी बखान की; रसिक सुजान मन जान रसखानपना आनँद निधान तूही मेरे निधि प्रान की । मिहर विचार रिझवार हितवार अब करन अवार तजि वान निठुरान की ; आशय के आसव छकाय दै विकाही ऐसी तोही ते लुभान चित आन परी आनकी । २३ ।

प्यायमहा मदिरा निज माधुरी लोचन लोभिन लायो हवेषो ;
चेटक ज्यों सुखस्वाद लुभाय बढ़ाय विसास हुलास विसेषो ।
लै ललचाय भुराय दुराय मुहाय विहाय जुगौ अब मेषो ;
जान परी निठुरानकी बान पै रीझकै आगै न सूझै परेषो।२४।

जे गुन भेव विचित्र सबै ते इक अविरंच लै तू ही बनाई ;
ना उपमा सुसमान को आन जो जात कही यह अद्भुताई ।
स्याम सुजान सिरोमनि कंत कहै निज भाग्यऔ उक्त न पाई ;
तातैं लगैं जिन दिष्ट सकोच यों है यह रीझ करी निठुराई ।

राधावर गिरिधारी भक्त भीरूपनधारी तुमको मो लाज ब्रजराज के कुँवार है ; हौं तो हूँ अनाथ तुम नाथ हौ अनाथन के जोग यह मेरे बन्यो भाग कै प्रकार है । असरन सरन स्याम अन्तर के

जामी सुनो गरीबनिवाज मो गरीब की पुकार है; दिनकी सहाय काज कहूँ अवार करी दीनदयाल मेरी बेर क्यों अवार है। २६।

दीनदयाल अनाथ के नाथ कृपानिधि स्वामी हो भक्त सहाई।
दुर्लभ हू करता हरि सुल्लभ सर्न असर्ननि को सुवेदन गाई;
गाथ अनंत महाकरुणामय नेतहि नेत सुवेदन गाई।
याही बिसास अवै हो गरीब सु मोहि कहा सब तोहि बड़ाई।२७।

इन्द्र के कुपित गिरि धारयो जन भय टारयो ग्वार गौ जिवाये गर्ल वाढ़यो काढ़यो कारी है; दुष्ट उतपात टारे ब्रज रखवारे प्यारे नित राधा मिश्रित जो विपिनविहारी है। पीतपट राजै छवि देखे मनमथ लाजै मोहनी मुरलिका सों गोपी मतवारी है; संकट विदारी सर्वभाव हितचारी सोई मोरपछधारी मनमोर पचि धारी है। २८।

सोचहि मोच विचार विवेक भै सागर बूड़त कैसे तरैगो;
काहे को भार भरै निज पै दुहुँ लोक गमै पचियोंही मरैगो।
होय निचिन्त भजो श्रियकन्त अनंत सवै सुख सिद्धि करैगो;
जाके विसास हुलास गहौ प्रभु चोंच दई चुग क्यों विसरैगो।२६।

टेरत ही द्रोपदी बढ़ाय चीर भीर कीनी गजहि हकार पै छुटाये ग्राह दव सो; काढ़े मागधेश के नरेश काराग्राहरु के करुनाढरन स्वामी ऐसे निभे सबसों। आश्रय अनाथ नाथ रावरे अधीन दीन हौंहूँ हितलीन यहि राधावर छव सों; निज सरनाई के सहाई नित तन्त पैहौं सांवरे सुजानजू अजान भए कव सों। ३०।

दीनदयाल कृपानिधिजू सरनागति को हित तन्त लुभाए;
तन्त हकार छुटाये गजेन्द्र सु तंतहि द्रोपदी टेर पै आए।
तन्त पै दास हितै पनवंत क्यों स्वामी मो वेर अवेर लगाए;
ऐसी न चाहिये बात असम्भव मीन रहै जलमाहिं तिसाए।३१।
दास के हेत सहाय के तन्त अकर्तहू कर्त चहूँ युग गाए;
दीनदयाल अहो करुनानिधि सोये किधौं कलितेज दवाए।
रावरे सर्न सो होत अभैसु कहा कछु वेदन योंही बताए;
जानी वलिष्ट ततौ कर भोगति मीन रहे जल माहिं तिसाए।३२।

श्रीबणीठणीजी

छप्पय

रचना सरस अनूप पद्यमय केलि श्रीदंपति ;
कीन्ह , यश विस्तार युगल, इन सर्वस संपति ।
रसिकविहारी छाप पद्यमें, देव रसिकवर—
कीन्हीं कृपा बताय, उपास्य रूप रस निज घर ।
सेवति चरण 'सुरसिक नागरीदास कृष्णगढ़ भूमि पति ;
लौकिक त्यागिविभव समस्त सुखमान्यो वन,पद जुगलरति ।

श्रीबणीठणीजी, महाराज श्रीनागरीदासजी (कृष्णगढ़ाधिपति) की पासवान थीं। ये उनके संग ही सेवामें रहा करती थीं। इनकी जन्मभूमि कृष्णगढ़ राज्यमें ही होना सम्भव है। कवितासे इनकी मातृभाषा मारवाड़ी (राजपूतानी) ही विदित होती है। जन्म सम्वत् तो अनिश्चित् है ; किन्तु परलोक-गमन सम्वत् १८२२ आषाढ़—शुक्ल १५ बुधवार है। यह इनकी समाधि पर शिलालेख-रूपमें अंकित हैं। ये स्वामी श्रीहरिदासजीके परम्परा-नुगत प्रसिद्ध महात्मा श्रीरसिकदासजीकी शिष्या थीं, इनके द्वारा निर्मित छन्द इनकी समाधिपर लिखा है—

'श्रीबिहारिनि विहारी ललितादिक हरिदास ;
नरहरि रसिकनिकी कृपा दियो बृन्दावन-वास ।
श्रीरसिकदास गुरुकी कृपा लहमाभर सत्संग ;
विष्णुहि बृन्दावन मिल्यो भक्त विहार अनंग ।
रसिकविहारी सामरी ब्रजनागरि सुर काज ;
इन पद पंकज--मधुकरी सेवत विष्णु-समाज ।"

जब महाराज नागरीदासजी विरक्त होकर वृन्दावन—वास करने लगे, तो ये भी इनके संग ही विपिन-वास करने लगीं । इनके गुरु श्रीरसिकदेवजी कवितामें अपना छाप'रसिकविहारी' रखते थे, और ये भ। । इनके पद ब्रजभाषा और

राजपूतानी भाषामें हैं और मिश्रित भी। भाव बड़े ही सुन्दर हैं, जैसा कि सच्चे रसिकोंकी वाणियोंमें होती हैं, स्वभाविक ही है, क्योंकि पासवान और शिष्या भी वैसेही भक्तप्रवर और रसिकराजोंकी ही थी। इनके द्वारा निर्मित कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं। ये पद नागरसमुच्चय, जो ज्ञानसागर-छापाखाना-बम्बईसे प्रकाशित है, उसमें संग्रहीत हैं, जिनकी संख्या ६१ हैं—

[राग-काफी]

बजै आज नन्दभवन बधाइयाँ।
गहमह आनँद रंगरली अति गोपी सब मिलि आइयाँ।
महरि यशोमति कैं भयो सुत फूली अंग न माइयाँ,
'रसिकविहारी' प्रानजीवन लखि देत अशीश सुहाइयाँ।

आज वृषभान कै बधाई।
गहमह भीर भई रावलमें गावत अली सुहाई।
हँसि-हँसि गोपी मिलत परस्पर आनंद उर न समाई;
प्रगट भए उत 'रसिकविहारी' इत प्यारी निधि आई।

बधावणों हे हेली ! आज रली।
भई भीर वृषभान-भवनमें कीरति-बेलि फली।
युवती-वृन्द सकल घर घरते मंगल गावत आत चली;
'रसिकविहारी' चंद हेत जनु प्रगटी कुमुद-कली।

[सोरठ]

आज बरसाने मंगल माई।
कुँवरि ललीको जनम भयो है घर-घर बजत बधाई।
मोतिन चौक पुरावो गावो देहु अशीश सुहाई;
'रसिकविहारी' की यह जीवनि प्रगट भई सुखदाई।

[राग-नायकी]

आज बधावो वृषभानके धाम।
मंगल-कलस लिये आवत गावत ब्रजकी बाम।

कीरतिके कीरति प्रगटी हैं रूप धरैं अभिराम ;
'रसिकविहारी' की यह जोरी होनी राधा नाम ।

[राग-खम्मायची]

कुंजमहलमें आज रंज होरी ।
फाग खेलमें वनावनीकी ह्वै रही पट गठजोरी ।
मुदित ह्वै नारि गुलाल उड़ावें गावैं गारि दुहुँ ओरी ;
दूलह 'रसिकविहारी' सुन्दर दुलहनि नवलकिशोरी ।

मनमोहन सोहन श्याम नंदढटोनारी !
बिन देखे पल कल न परत है मेरो जीव लगोनारी ।
होरी में मोपै ठगोरी-सी डारी हौं रिझई रीझि रिझोनारी ;
खेलौंगी मिलि 'रसिकविहारी' सों वा बिन खेल अलोनारी ।

[राग-नाइकी]

हो हो होरी करि बोलैं सब ब्रजकी नारि ।
नंदगाँव बरसाने खेलमें गावत इत उत रसकी गारि ।
उड़त गुलाल अरुन भयो अम्बर चलत रंग पिचकारिकी धारि;
'रसिकविहारी' भानदुलारी मधि नायक दोऊ खिलारि ।

एजु ! नीके तुम जाहु चले जिन भरो मेरी सारी ।
सुनि श्याम सुनि श्याम सोहैं तिहारी;याही छिनाय लेहुँ करते पिचकारी ।
अब कुछ मोपै सुन्यो चाहत हो गारी; घरमें सीखे ढंग 'रसिकविहारी' ।

[राग-काफी]

कैसे जल लाऊं मैं पनिघट जाऊं ?
होरी खेलत नंदलाड़िलो क्योंकर निवहन पाऊं ?
वे तो निलज फाग-मद-माते हौं कुलवधू कहाऊं ;
जो छुवै 'रसिकविहारी' अंचर तो धरती फार समाऊं ।

मनमोहन मेरी अँगिया रँग डारी रे ।
या होरीमें लाज रहे क्यों ? सास ननद डर भारी रे !

तुमतो छैल गैल नित रोको आऊँ संग नारी रे!
काहे निडर ढीठ बटपारे हुवा 'रसिकविहारी' रे ॥

[राग–खमायची]

कुंज पधारो रँग भरी रैन।
रँगभरी दुलहिनि रँग भरे पिय स्यामसुन्दर सुखदैन।
रँग भरी सेज रची जहाँ रँगभरयो उलहत मैन;
'रसिकविहारी' प्यारी मिलि दोऊ करो रँग सुखसैन ॥

[राग-सोरठ]

हिंडोरे रँग रह्यो सरसाय।
भूलनिमें भुकि भूमि रह्या पिय प्यारी रूप लुभाय।
भीजें तन तरवर चूवैं लागा गलबाँहीं लपटाय;
'रसिकविहारजी' रो भूलवो मारा मनमें झोटा खाय ॥

[राग-आसावरी]

प्यारे! येई गलियां आव।
नैनन-जल सो धोय सँवारी अछन-अछन धरि पाँव।
व्याकुल तृषित चकोर दृगनिको वदन-चंद दरसाव;
'रसिकविहारी' लाल सलोने जिन करि निठुर सुभाव ॥

[राग–सारंग]

रँगि रह्या युगल रूप रँग माहीं।
कुंजमहलमें दर्पन साम्हें दिया रहे गलबाँहीं।
कदेक संभ्रम ह्वै स्यामारै नेडै स्याम छताहीं;
कदेक रीझि रहैं 'रसिकविहारी' देखि देखि परछाहीं ॥

ये बाँसुरियावारे! ऐसे जिन बतराय रे!
यों न बोलिए अरे घरबसे! लाजनि दबि गई हायरे।
हौं धाई या गैलहि सों रे नेक चल्यो धौं जायरे;
'रसिकविहारी' नाँव पायके क्यों इतनों इतरायरे ?

श्रीछत्रकुँवरिजी

छप्पय

भाव भव्य सुठि सरस छन्द रचना निज कीन्हीं ;
छटा युगल-छबि छाकि अपनपौ सर्वस दीन्हीं।
पुत्रि कृष्णगढ़ भूप पिता-कुल प्रगटी पावन ;
प्रियतम-प्रिया रिझाय गाय जस रस मनभावन।
प्रेमबिनोद सुग्रंथ रचि प्रेम-तत्त्व रसिकन दई ;
रखि आदर्श अमेय जग कुंवरि सुपद दुर्ल्लभ लई।

छत्रकुँवरिबाई रूपनगर या कृष्णगढ़के राजा सरदारसिंहजीकी बेटी और श्रीनागरीदासजीकी पोती थीं। कोठड़ेके खीची गोपालसिंहजीके साथमें इनका बिवाह सं० १८३१ में हुआ था। ये श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायान्तर्गत श्रीपरशुरामदेवाचार्य-स्थापित-द्वारा-गद्दीस्थान सलेमाबाद (श्रीपरशुरामपुरी) के आचार्य श्रीगोविन्ददेवजीकी शिष्या थीं। इन्होंने स्वनिर्मित प्रेमविनोद—नामक ग्रंथमें स्पष्ट उल्लेख किया है—

"सो प्रभु श्रीगोविन्द कृपाल ; जिन पद-रज मम रहौ जु भाल।
जिन दास्युतकी पाई छाप ; युगल शर्न हौं तिहीं प्रताप ॥

इन्होंने प्रेम-विनोदके अन्तमें भी जन्म एवं दीक्षा-स्थानका परिचय इसप्रकार दी है—

"रूपनगर नृप राजसिंह जिन सुत नागरिदास ;
तिन पुत्र जु सरदारसिंह होत न यामैं जास।
छत्रकुँवरि मम नाम है कहिवे को जग माहिं ;
प्रियासरन दास्युत्त ते हौं हित चूर सदाहिं।
शर्न सलेमाबादकी पाई तिहुँ जु प्रताप ;
आश्रय ह्वै जिन रहसिके वरन्यो ध्यान सजाप।
सम्बत् है नव दूनसै पैंतालिस वढ़ंत ;

साके सत्रहसै रु दस सिद्धारथ सु कहंत।
मास अषाढ़ सु सुकल-पख तीज बृहस्पतिवार ;
सम्पूरन यह वारता कीनी मति-अनुसार।"

इसप्रकार इन्होंने सं० १८४५ में प्रेमविनोद निर्माण कर समाप्त की। यह ग्रन्थ नामानुसार प्रेमसे परिपूर्ण है। इससे श्रीराधाकृष्ण एवं सखियोंके प्रेम विभोर-भरी लीलायें विविध छन्दोमें वर्णन हैं। जिसप्रकार दिव्य-रसोल्लासी वाणीकार रसिकोंने अपने काव्यमें काव्य-गुण प्रधान न रखते हुये रस एवं भावके तन्मयतामें दिव्यरस-बिहार वर्णन किया है, वही इनका भी मत है ये ग्रंथान्तमें क्षमा-प्रार्थना करतेहुये लिखी हैं—

"काव्य दोष कवि हेरिहै सो मम नाहिन काज ;
हेरहु रहसिहि रसिकजन मित्र कुँवर ब्रजराज।
रमिहहि या रस रसिक जे ते मुहि कहियो तोहि ;
सुफल फली आसा यही यही सुदृढ़ रति होहि।"

स्त्री होनेके कारण बाईजीका परिश्रम बहुतही सराहनीय है। इनके द्वारा निर्मित प्रेमविनोद बूंदी-महाराजकी मातासाहिबा-द्वारा प्रकाशित श्रीसुन्दरिकुँवरिजी कृत-ग्यारह ग्रन्थोंके अन्तमें सम्मिलित है। कुछ नमूने उद्धृत करते हैं —

[चौपाई]

भक्तन पद-पंकज-रज ध्याऊं ; जिन प्रभाव प्रेमासव पाऊं।
ताते बरनों विपिन-विलासी ; नंद-सुवन राधा सुखरासी।
गवरी सुत गणपति गुणधाम ; सिद्ध करो यह कृत अभिराम।
विनवत सरस्वति सुमत निवास; मो रसनामें कीजे वास।
वरनों विहरत रसिक सुजान ; हृदय भावना करिके ध्यान।
विपिन अलौकिक जुगल विहार ; कछु मेरी मतिके अनुसार।
कहत सुसुनहु रसिक यहि रसके ; नवविनोद नवनेहिन चसके।
नंदसुवन श्रीकृष्णबिहारी ; श्रीराधा वृषभान—दुलारी।
पिय प्यारी छकि परम सनेह ; नितहि विहार करत अनछेह।

दुहूँ परसपर चितके चोर ; दुहूं मनोहर नवलकिसोर ।
हर आगम साँझी वरसाने ; खेलति कुंवरि चाव सरसाने ।
पना वाग है अद्भुत महा ; ताकी सोभा वरनों कहा ।
विविध जात तरु गुल्म रु वेली; फूल फलित माधुर्य नवेली ।
मणिमय भूमि अद्भुत सोहै; जिनहि लखत दम्पति मन मोहै ।
तहां विहारन काज तयारी ; विविध रुचिन नित रहत सँवारी ।
ठाँठाँ नहर हौज छवि लसैं ; तहँ जल-जन्त कलोलित वसैं ।
सोहत जल थल अंबुज फूले ; तिन पर लंपट अलिकुल भूले ।
छुटत फुहार फुही जब परें ; मनुमुक्ताहलि वर्षा करें ।
लहकि समीर नीर को परसैं ; बढ़त तरंग महाछवि सरसैं ।
निर्तत मत्त मोर छवि पावैं ; कोकिल कुहुक सुचित चुरावैं ।
तहां रमण हित चाव सुचितही ; कुंवरि लड़ैती के मन अतहीं ।
सजै सिंगार सुप्रिया उमाहि ; जव साँझी फूलन हित ताहिं ।
तब अति चायन भानदुलारी ; उमँग बुलावें गोपकुमारी ।
वेऊ सजि अद्भुत सिंगार ; आवैं सबै चोप अति धार ।
लखत कुंवरि को अतिहि लुभावैं ; रंग भरी वातन वतरावें ।
कुंवरि लड़ैतीके मिलि संग ; फूल लेन को चले उमंग ।
सबमें भानकुंवरि यों दरसैं ; उडुगण शशि ज्यों छवि सरसैं ।
ललित कंठ मिलि गावति गोरी ; रूपरासिसब नवल किसोरी ।
चपल चलन छवि छलकत अंग; मनहु प्रेमसलिताजु उमंग ।
हरी भौम-चरनन छवि सोहैं ; मनुसिवार पै कमल बिमोहैं ।
हँसत किलोलें करत नवेली ; आवहि वाग चतुर अलवेली ।

[दोहा]

ऐसे कहि इन सो वहुरि, प्रेम पुंज इत धाय ;
आय कही ललितादि सो अद्भुत भेव जताय ।
श्रीललिताजू रीझि यहि दई प्रसादी माल ;
प्रेम पुंज सो पहरि उर अति चित भई निहाल ।

पुनि श्रीललिताजू कह्यो प्यारी दिशि मुसिक्याय ;
वा दिशि अद्भुत सुमन है वेगि लीजिये धाय।
यों कहिकर गहि कुँवरिको चली भरी उछरंग ;
मनमेलू जे सहचरी ते सब लैके संग।
इक कर श्रीललिता गहैं इक कर कमल फिरात ;
कमलवदन-दृग कमल पै मनु यह वारत जात।
चहुँदिशि की सोभा लखत चंचल चितवन चाहि;
केउ गावत वतरात केउ विविध सुकुसुम वताहि।
यहि विधि आवत कुँवरिको लखत नवेली नारि ;
जकी थकी घूमैं छकी मनमथ अमल खुमारि।

[दोहा अरिल]

स्याम सखी हँसि कुँवरि दिसि वोली मधुरे वैन ;
सुमन लेन चलिये अवै अहि विरियाँ सुख दैन।
यहि बिरियां सुखदैन जान मुसक्यात चली जव ;
नवलसखी करि कुँवरि संग सहचरि विथुरी सब।
प्रेमभरी सब सुमन चुनत जित तित साँझी हित;
ये दुहुँ वेबस संग फिरत निजगति मति मिश्रित। १।
गरवाहीं दीने कहूँ इकटक लखन लुभाहिं ;
पग-पग द्वै द्वै पैंड़ पै थकित खरी रहि जाँहिं।
थकित खरी रहि जाहिं दृगन दृग छूटे न छूटें ;
तन मन फूल अपार दुहूँ फल लाह सु लूटें।
नैनन नैनन सुगल वैन सो नहिं वनि आवै ;
उमड़न प्रेम समुद्र थाह तिहिं नाहिन पावै। २।
फूलन संग भया समय अति फूले सुमन सुरंग ;
फूलन नैनन दुहुनके फूल समात न अंग।
फूले समात न रंग अंग तिहि सुगल सम्हारें ;
साँझी सुरत सु आय लैन तव सुमन विचारें।

प्यारी झमक झुकात डार झूमत अलबेली;
कर पहुँचत तहां नाहिं चढ़ावन कंध नवेली। ३।

[कवित्त]

चौपर चिहुल में चिहुँटि चाह चावनसों दावन विलंद पै निगाह छाजै ह्वै रही; पासन की ढारन निहारैं प्रिया पल्लवन हारैं ज्यों ज्यों गति मति त्यों जीत चित छै रही। मिहदी के फिंदुकन फंदसु परे न छूटे हासिके विलास सखी रहसि रचै रही; प्यारी झुंझुराय झिझकारें थुथकारें पिय चतुर खिलारन की वाजी रंग लै रही। १

एक टक लाय रही जाय जु रसिक छाकि चौपर रमन चाह कुँवरि किसोरी को; छवि सरसानी छिल अँग लड़कानी छटा तासो का बसाय चले टोना वरजोरी को। जबही रिसाय पिय ओर सतराय कहे खेलत न नीके का विचार मिसरोरी कौ; कहि ललिताजू ता विसास आस पासन पै वाजी रचि जीती प्यारी दाव चितचोरी को। २

रसिकविहारी प्यारी खेलत खिलारी मिलि वाढ्यो रंग भारी राचे रंग रिझवारी है; झमकि उठाय पासे रमकि चलाय प्रिया रूपनिधि मानो कर लहर पसारी है। तामें मनमीन पिय लीन ह्वै किलोलतहैं निकस न चाहै कैसे मौज सुखकारी है; लंपट ह्वै नैन आन पान कंज संपुट मै कढ़त न लोभी अलि गति मतवारी है। ३

वाढ़ी चित चाह दोऊ खेलत उमाह भरे दसा प्रेम पूर छिल अङ्गदरसत हैं; प्रिया दाव देत पिय झूठे ही रुगढ़ कहैं गहै पानि पानि रिस मिसे परसत हैं। चौपरकी वाजी माहिं वाजी लागी गति-मति की चालेंकी चहुल मन मौज सरसत हैं; नैननमें नैन मिले चरचा चरतामें रीझ रीझवार तहाँ रंग वरषत हैं।४

चौपर रमन माँहि प्यारी छवि हेरि प्रिय विवस छकाने दृग सकत न टारकै; चहुँल मचावे ललिताजू सम्हरावें चाले रंग सरसाऐं लखि पाने मतवार कै। पासे लै चलावैं दाव नजर विलम्ब हेरैं आठ न अठारै कहि चौहें जुगसार कै; जटैं कर लूटैं लाह वाढ़े सुखस्वाद सनि प्रिया भौंह ताने ये विकाने गति हारके।
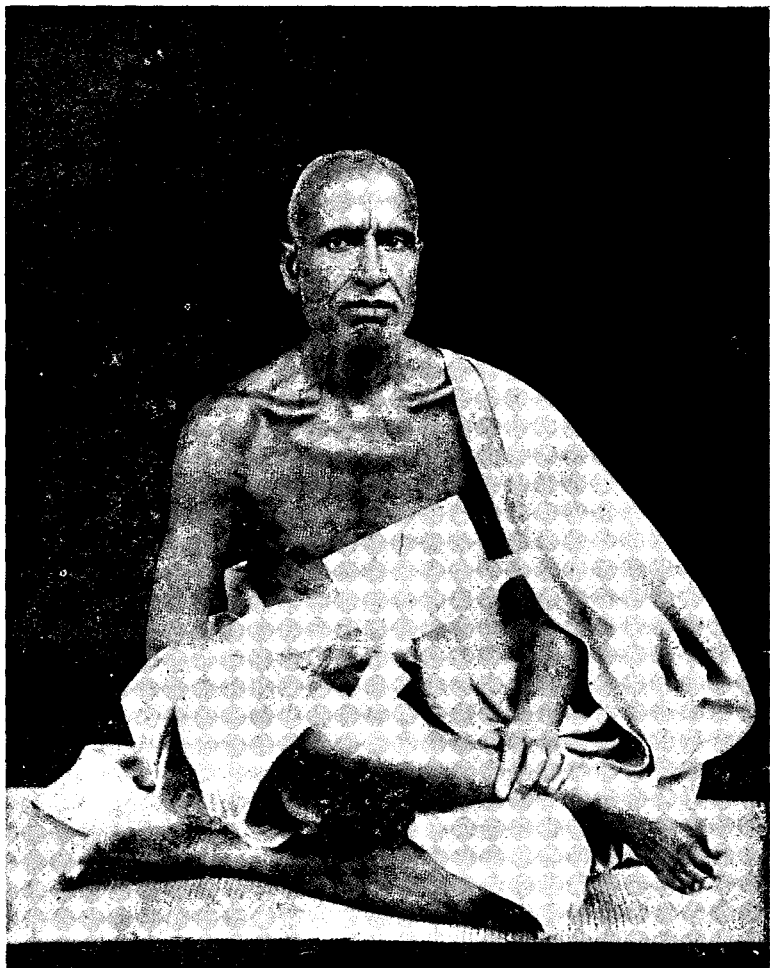
परम विरक्त ब्रज-लीला रस-मधुप,
पूज्यपाद स्वर्गीय श्रीनारायण स्वामीजी महाराज

श्रीनिम्बार्कमाधुरी

ब्रज-रज-रसिक, श्रीवृंदावन मकरंद-मधुप,

रसिकवर परमविरक्त महाराजा श्रीनागरीदासजी

(श्रीसावंतसिंहजी) महाराज, कृष्णगढ़-नरेश

श्रीधर शिवलाल, ज्ञान सागर प्रेस, बम्बईके नागरसमुच्चयमें
प्रकाशित अति प्राचीन चित्र से

श्रीनागरीदासजी

छप्पय

परम रसिक व्रजराज केलि लीला बहु गायक ;
वृज वृन्दावन जान आन नहिं चित हित दायक।
तजि वैभव निज राज जगत मायिकमय लौकिक ;
लई विरक्त-पथ-सनक जानि निज ग्राह्य अलौकिक।
श्रीनागरिदास अपार जस जगत माहिं जगमगत अस ;
अघट अखंड प्रतापपर रवि शशि नभ मग विश्व तस।

श्रीनागरीदास नामके चार पाँच कवि व्रजमंडलमें हुये हैं, एक श्रीनिम्बार्क सम्प्रदायान्तर्गत स्वामी श्रीहरिदासजीके परंपरामें, जिनका परिचय माधुरीमें प्रथम आ चुका है। द्वितीय श्रीराधावल्लभीय, तृतीय वल्लभकुलमें, और चतुर्थ हमारे चरित्रनायक श्रीकृष्णगढ़ाधिपति वृन्दावनवासी महाराज नागरीदासजी हैं। इनका सांप्रदायिक सम्बन्ध विवादास्पद है; सम्भव है इन्हें प्रथम बाल्यावस्थामें वल्लभकुलसंप्रदायकी भी किसी वैष्णवसे शिक्षा मिली हो; किन्तु जब इनके हृदयमें अति वैराग्य उत्पन्न हुआ और व्यवहारिक-झंझट परित्याग कर श्रीवृन्दावन-वास करनेकी इच्छा हुई, तब इन्होंने रूपनगरके निकट ही स्थित श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायकी गद्दी परशुरामपुरी (सलेमाबाद) के आचार्य श्रीगोविंददेवजीसे विरक्त-दीक्षा लेली थी। इनके घरकी समस्त स्त्रियें और बाल-बच्चे तक सलेमाबाद (निंबार्क-सम्प्रदायान्तर्गत श्रीपरशुरामदेवाचार्य-स्थापित द्वारा-गद्दी) के शिष्य थे। इनकी माता बाँकावतीजी, जिन्होंने श्रीमद्भागवतका छन्दोबद्ध उल्था किया है, ब्रजदासी-भागवतके नामसे प्रसिद्ध है, उनका परिचय भी अन्यत्र इस पुस्तकमें है। इनकी बहन सुप्रसिद्ध श्रीसुन्दरिकुँवरिजी, जिन्होंने १२ ग्रंथोंकी रचनाकी है इन्होंने स्वयं उन्हें बाल-हठसे भग जानेपर भी बलात्कार श्रीवृन्दावनवदेजीकी शिष्या कराई थी। बलात्कार अपने घरमें किसी व्यक्तिको अन्य सम्प्रदायमें शिष्य करानेका प्रमाण कहीं भी नहीं मिलता। छत्रकुँवरिजी भी इनके कुलमें प्रसिद्ध काव्यकर्त्ता हैं, श्रीगोविन्ददेवजीकी शिष्या थी। यहाँतक कि

इनके एक घरकी लौंड़ी भी निम्बार्कीय थीं, जिनका नाम वनीठनी है, और रसिक-विहारी—छापसे कविता की हैं। इससे विदित होता है कि, छोटे-बड़े सभी राजघरानेका सलेमाबादका शिष्य होना सम्भव है तथा इतने प्रमाण काफी हैं। सलेमाबादसे घनिष्ठसंबंध होनेका कारण स्वाभाविक है, क्योंकि वह राजनगरके निकट ही एक प्रभावशाली आचार्य—गद्दी है। इस गद्दीका प्रभाव बड़े-बड़े राजाओं, जैसे जैपुर, जोधपुर, पर भी था, छोटे-मोटे राव और जागीदार तो हजारों यहाँके शिष्य थे, और अब भी हैं। सलेमाबाद निकट होनेके कारण वहाँके राजघरानेका शिष्यता ग्रहण करना बहुत ही सम्भव है। विरक्त होने पर इन्होंने आजन्म नागर-कुंजमें निवाश किया है—जो सलेमाबाद गद्दीकी कुंज है; जिससे उसका नाम ही नागरकुंज विख्यात होगया। नागरीदासके क्षेत्रमें भी प्रधान कुंज निम्बार्क—सम्प्रदायकी ही है। वहीं इनकी और बनी-ठनीजीकी भी समाधि-चरणपादुका स्थापित हैं। इनकी बृन्दावन-बासमें अत्यन्त दृढ़ अटूट—निष्ठा थी, जैसाकि किसी वल्लभकुली आचार्य तथा भक्तों की नहीं हुई और न किसीने इनके समान बृन्दाबन--तत्त्व का वर्णन ही किया है। उनका तो व्यालयोपासना—निष्ठा और आचार्य--निवास--गद्दी--निष्ठासे गोकुल सर्वोपरि है, जिसके बृन्दाबनके निकट रहते हुये भी वहाँ इन्होंने निवास करने का नाम नहीं लिया। बृन्दावन--निष्ठाके प्रति निम्बार्क--सम्प्रदायके आचार्य जैसी दृढ़ता दिखाये हैं वैसी अन्य नहीं। ये श्रीबृन्दाबन-धाम और राधाकृष्णमें ही अभेद मानते हैं। यहाँतक कि, श्रीभट्टजी श्रीहरिव्यासदेवजी इत्यादि प्रसिद्ध आचार्योंने धाम-निष्ठाके चरमावस्थाको प्राप्तकर परमधाम-तत्त्व ही उससे अभेद रखते हुये निरूपण की है। नागरीदासजीका बृन्दाबनधाम—निष्ठा वर्णन कितना हृदयद्रावक प्रेमसे परिपूर्ण है, अवलोकन कीजिये—जिसमें कुंजविहारी और कुंजविहारिन-कृपावलम्बन लेकर बृन्दाबनके रसिक-संगकी रसिकताकी छाप लगा दी है—

हमारी सबही बात सुधारी।
कृपा करी श्रीकुंजविहारिनि अरु श्रीकुँजविहारी।
राख्यो अपने बृन्दावनमें जिहिको रूप उज्यारी;

नित्त-केलि आनन्द अखंडित रसिक-संग सुखकारी।
कलह कलेश न व्यापै यहि ठाँ और विश्वते न्यारी;
'नागरिदासहि' जनमि जिवायो वलिहारी वलिहारी।

इनके ग्रंथ श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायके रसिकों-द्वारा विरचित ग्रंथोंसे बहुतही मेल खाते हैं। उपासना-भाव एवं श्रृङ्गारिक-केलिवर्णनसे तो वे अभिन्न ही हैं। किसी भी संप्रदायकी वाणियें अपनी उपासना-निष्ठाकी विशेषता को लेकर निर्मित होती हैं, जैसे श्रृंगार और वात्सल्य—उपासक कवियों द्वारा वर्णित उपासना-तत्त्व हैं। इनके द्वारा निर्मित ग्रंथ कुछ हिस्साके सिवाय समस्त ग्रन्थ श्रीराधाकृष्णके दिव्य श्रृङ्गारिक-रस-विहार-वर्णनसे भरे पड़े हैं। वैसे सभी सुकवियोंका वर्णनीय विषय मूर्तिमान खड़ा कर देना सफल कार्य हैं; किन्तु अपनी उपासनाकी विशेषता रखते हुये। इन्होंने किस रसकी विशेषता रखी है—यह स्पष्ट ही हैं, श्रृंगारकी किवात्सल्य की। इन्होंने ग्रंथारम्भमें किसी भी संप्रदायके आचार्योंका-स्वाचार्य-दृष्टिसे वंदना नहीं की है, दोचार मंगल वधाईके पद अवश्य उपलब्ध होते हैं, जो प्रायः अन्य कवियोंके भो सम्मिलत होगये हैं, नागरीदास नामके चार कवि हैं हीं। अथवा निष्पक्ष कवि महानुभाव दूसरेके आग्रहसे उसके उत्सव मनानेके लिये पद निर्माण भी कर दिया करते हैं। इन्होंने स्वनिर्मित ग्रंथोंमें अपने दिक्षा-प्राप्त-गुरुकी वंदना नाम लेकर नहीं की है, न कहीं नामही उल्लेख किया है, दो चार आचार्य-वंदनाके शिवाय। ग्रंथमें साँप्रदायिकोंद्वारा साँप्रदायिक-ढंगसे सम्पादित कर बहुत कुछ निर्मित कर मिला भी दिये जाते हैं, यह आजकलके सांप्रदायिकोंकी पद्धति है। नागरसमुच्चयमें जयकवि कृत पद वहुतसे सम्मिलित हैं, और आन कवि कृतभी, वैसेही दो चार आचार्य-वधाई मिल जाना सम्भव है, अथवा विरक्त होनेसे प्रथम ही निर्माण किये हों!

विरक्त होने पर इन्होंने वहुत ही कम कविता की है, विरक्त-संत प्रायः कवितासे भी विरक्ति धारण कर लेते हैं जैसा कि, बहुतसे रसिकोंने प्रायः उत्कृष्ट कवित्व-शक्ति होते हुये भी अल्प ही कविता की है। महाकवि विहारीलालजी को अन्तमें कवितासे विरक्ति होगई थो। "कविता सों मन हटि गयो लग्यो कान्ह

सो ध्यान दासविहारी ह्वै गए लाल विहारी मान।

इसप्रकार भजनके संलग्नतामें कवियोंके कवितासे भी चित्त उब जाते हैं। बात यह है कि, विरक्त होनेपर इन्होंने विशेष कविता नहीं की क्योंकि प्रथम ही ढेर लगा चुके थे। बिरक्तावस्थाका चित्र भी नागरसमुच्चयमें छपा है, जो ज्ञानसागर-प्रेस — बम्बईसे प्रकाशित है—उसमें स्पष्ट निम्बार्कीय—तिलक है विरक्त होनेपर निम्बार्क-सम्प्रदायके रसिकोंके प्रभावसे प्रभावित होना, तो इन्हें आधुनिक--बल्लभकुली वैष्णव भी स्वीकार करते हैं। हमने एक छोटी सी पुस्तिका मुकुटकी लटक,—नामक लिखी, उसके प्रतिवादमें गोकुलके मुखिया भण्डारी—द्वारा लिखित मुकटलटक' जो बल्लभकुली-वैष्णवोंके सर्व सम्मति एवं सर्वप्रधान गद्दी-स्थान गोकुलसे प्रकाशित हुई थी, उसके द्वारा भी स्वीकृत है कि, नागरीदासजी बृन्दाबनमें निम्बार्कीय — वैष्णव रसिकोंके प्रभावसे प्रभावित होगये थे। अर्थात् बिरक्त होनेपर उनसे दीक्षित होगये थे। सुनते हैं कि मुकुट के झगड़ेके समय स्वर्गीय कृष्णगढ़ नरेश श्रीवृन्दाबन पधारे थे, तो नागरीदासजीके क्षेत्रमें, एक बाई द्वारा (जो वहीं बहुत दिनोंसे रहती है) कोशिश करवाई गई कि, 'बायें मुकुटकी रास न हो' तो महाराजने उत्तर दिया था कि, 'श्रीनागरीदासजी निम्बार्कसंप्रदायके थे उनके भावानुसार रास होगा।' श्रीवृन्दाबनमें कोई बल्लभकुलकी गद्दी नहीं है न वहाँ कोई श्रीरणछोड़दासजी गद्याधीश ही हुये हैं—जिन्हें इनका गुरुबतलाते हैं,न इन्होंने अपने ग्रंथोंमें स्पष्ट नामोच्चारण कर वन्दना ही की है। निष्कर्श यह है कि बल्लभकुलसे भी इनका सम्बन्ध हो सकता है, किन्तु श्रीनिम्बार्क—संप्रदायसे बहुतही घनिष्ठ था, व्यवहारिक या बिरक्त—जीवनमेंभी। आचार्य रामचन्द्र—शुक्ल—द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य का इतिहासमें इनका संक्षिप्त--परिचय इसप्रकार है—

यद्यपि इस नामके कई भक्त कबि ब्रजमें होगये, पर उनमें सबसे प्रसिद्ध कृष्णगढ़--नरेश महाराज सावंतसिंहजी हैं, जिनका जन्म पौष—कृष्णा १२ सं० १७५६ में हुआ था। ये बाल्यावस्थासे ही बड़े शूरबीर थे। १३ वर्ष की अवस्थामें इन्होंने बूंदीके हाड़ा जैतसिंहको मारा था। सं०१८०४में ये दिल्लीके शाहीदरबारमें थे। इसी बीचमें इनके पिता महाराज राजसिंहका

देहान्त हुआ। बादशाह अहमदशाहने इन्हें दिल्लीमें ही कृष्णगढ़-राज्यका उत्तराधिकार दिया। पर जब ये कृष्णगढ़ पहुँचे तब राज्यपर अपने भाई बहादुरसिंहका अधिकार पाया, जो जोधपुरकी सहायतासे सिंहासनपर अधिकार कर बैठे थे। ये ब्रजकी ओर लौट आये और मरहठोंसे सहायता लेकर इन्होंने अपने राज्यपर अधिकार किया। इस गृहकलहसे इन्हें कुछ ऐसी विरक्ति होगई कि, सब छोड़-छाड़कर वृन्दावन चले गये और वहाँ विरक्त-भक्तके रूपमें रहने लगे। अपनी उस समयकी चित्तवृत्ति उल्लेख इन्होंने इसप्रकार किया है—

जहाँ कलह तहँ सुख नहीं कलह सुखनको सूल ;
सबै कलह इक राजमें राज कलहको मूल।
कहा भयो नृपहू भए ढोवत जग वेगार ;
लेत न सुख हरि-भक्तिको सकल सुखनको सार।
मैं अपने मन मूढ़ते डरत रहत हौं हाय ;
वृन्दावनकी ओर ते मति कवहूँ फिरि जाय।

वृन्दावन पहुँनेपर वहाँके भक्तोंने इनका बड़ा आदर किया। ये लिखते हैं कि पहले तो 'कृष्णगढ़के राजा' यह व्यवहारिक-नाम सुनकर वे कुछ उदासीनसे रहे पर उन्होंने मेरा जब × 'नागरीदास' (नागरी शब्द श्रीराधाके लिये आता है) नामको सुना तब तो उन्होंने उठकर दोनों भुजाओंसे मेरा आलिंगन किया—

सुनि व्यवहारिक-नामको ठाढ़े दूर उदास ;
दौरि मिले भरि नैन सुनि नाम नागरीदास।

इक मिलत भुजन भरि दौरि दौरि ; इक टेरि बुलावत और और।

वृन्दावनमें उस समय वल्लभाचार्यजीकी गद्दीकी पांचवीं पीढ़ी थी।*

वृन्दावनसे इन्हें इतना प्रेम था कि एकबार ये वृन्दाबनके उसपार जा पहुँचे। रातको जब जमुनाके किनारे लौटकर आये तब वहाँ कोई नाव-वेड़ा न था।

×-ऐसे नाम विशेषकर श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय एवं बृन्दाबनके रसिकों में ही रखे जाते हैं, जो श्रृंगार-रसोपासक श्रीराधिकाजीके भक्त हैं। वात्सल्य-रसके उपासकों में नहीं।

* वृन्दाबनमें उस समय वल्लभाचार्यजीकी गद्दी थी न है। ये श्रीनिम्बार्क संप्रदायकी गद्दीके-स्थान नागरकुंजमें रहते थे। सम्पादक—

बृन्दाबनका वियोग इन्हें इतना असह्य होगया कि, ये जमुनामें कूद पड़े और तैरकर बृन्दावन आये। इस घटनाका उल्लेख इन्होंने इसप्रकार किया है—

देख्यो श्रीवृन्दाविपिन पार ; विच वहति महा गंभीर धार।
नहिं नाव नाहि कछु और दाव ; हे दई ! कहा कीजे उपाव।
रहे वार लगनकी लगै लाज ; गए पारहि पूरे सकल काज।
यह चित्त माहिं करिकै विचार; परे कूदि कूदि जलमध्य-धार।

बृन्दाबनमें इनके साथ इनकी उपपत्नी 'बणीठणीजी' भी रहती थीं, जो कविता भी करती थीं।

ये भक्त-कवियोंमें बहुतही प्रचुर कृति छोड़ गये हैं। इनका कविता-काल संम्बत् १७८० से १८१९ तक माना जा सकता है। इनका पहला ग्रंथ 'मनोरथ-मंजरी' सं० १७८० में पूरा हुआ। इन्होंने सं० १८१४ में आश्विन शुक्ला १० को राज्यपर अपने पुत्र सरदारसिंहजीको प्रतिष्ठित करके घर-बार छोड़ा। इससे स्पष्ट है कि, विरक्त होनेके बहुत पहलेही ये कृष्ण-भक्ति और ब्रजलीला- संबंधिनी बहुतसी पुस्तकें लिख चुके थे। कृष्णगढ़में इनकी लिखी छोटी-बड़ी सब मिलाकर ७३ पुस्तकें संगृहीत हैं जिनके नाम ये हैं—

१— सिंगारसार, २— गोपीप्रेम प्रकाश सं० १८००, ३—पदप्रसंग-माला, ४— ब्रज-वैकुंठतुला, ५— ब्रजसार सं० १७९९, ६—भोरलीला, ७—प्रातरस-मंजरी, ८—विहार-चन्द्रिका सं० १७८८, ९— भोजनानंदाष्टक, १०—जुगलरस-माधुरी, ११—फूलविलास, १२—गोधन आगमन, १३—दोहन आनंद, १४— लगनाष्टक, १५— फागविलास, १६—ग्रीष्मविहार, १७—पावस पचीसी, १८—गोपीवैन-विलास, १९—रासरसलता, २०—नैनरूपरस, २१—शीतसार, २२—इश्कचमन, २३—मजलिस-मण्डन, २४—अरिलाष्टक, २५—सदाकी माँझ, २६—वर्षाऋतुकी माँझ, २७—होरीकी माँझ, १८—कृष्ण-जन्मोत्सव-कवित्त, २९—प्रिया-जन्मोत्सव-कवित्त, ३०—साँझोके कवित, ३१—रासके कवित, ३२—चाँदनीके कवित, ३३—दिवारीके कवित, ३४—गोवर्द्धन-धारनके कवित, ३५—होरीके कवित, ३६—फागगोकुलाष्टक, ३७—हिंडोराके कवित, ३८—वर्षाके कवित, ३९— भक्ति-मगदीपिका सं० १८०२

४०—तीर्थानन्द १८१०, ४१—फागबिहार १८०८, ४२—बालविनोद, ४३—बन-विनोद १८०६, ४४—सुजानानन्द १८१०, ४५—भक्तिसार १७६६, ४६—देहदशा, ४७—वैराग्यवल्ली, ४८—रसिक-रत्नावली १७८२, ४९—कलि वैराग्य-बल्लरी १७९५ ५०—अरिल्लपचीसी, ५१—छूटक-विधि, ५२—पारायणविधि-प्रकाश १७९९, ५३—शिखनख, ५४—नखशिख, ५५—छूटक-कवित ५६—चचरियाँ, ५७—रेखता, ५८—मनोरथमंजरी १७८०, ५९—रामचरित्रमाला ६०—पदप्रबोधमाला, ६१—जुगलभक्ति-विनोद १८०८ ६२—रसानुक्रमके दोहे, ६३—शरदकी माँझ, ६४—साँझीफूलबीननसंवाद, ६५—वसंत वर्णन, ६६—रसानुक्रमके कवित, ६७ फागखेलन समेतानुक्रमके कवित, ६८—निकुंजविलास १७९४, ६९—गोविन्द-परिचई, ७०—बन-जन प्रशंसा ७१—छूटक-दोहा, ७२—पदमुक्तावली ।

इनके अतिरिक्त 'वैनविलास' और 'गुप्तरस-प्रकाश' नामकी दो अप्राप्य पुस्तकें भी हैं। इस लंबी सूचीको देखकर आश्चर्य करनेके पहले पाठकोंको यह जान लेना चाहिये कि, ये नाम भिन्न२ प्रसंगों या विषयोंके कुछ पद्योंमें वर्णन मात्र हैं; जिन्हें यदि एकत्र करेंतो ५ या ७ अच्छे प्रकारकी पुस्तकोंमें आजायेंगे। अतः ऊपर लिखे नामोंको पुस्तकोंके नाम न समझकर वर्णनके शीर्षक-मात्र समझना चाहिये। इनसे बहुतोंको पाँच-पाँच दस-दस, पचीस-पचीस, पद्य मात्र समझिये। कृष्णभक्त कवियोंकी अधिकाँश रचनायें इसी ढंगकी हैं। भक्ति-कालके इतने अधिक कबियों की कृष्णलीला-संबंधिनी फुटकल उक्तियोंसे उबे हुये और केवल साहित्यक-दृष्टि रखनेवाले पाठकोंको नागरीदासजीकी ये रचनायें अधिकाँशमें पिष्टपेषण-सी प्रतीत होंगी पर ये भक्त थे और साहित्य रचनाकी नवीनता आदिसे कोई प्रयोजन नहीं रखते थे फिर भी इनकी शैली और भावोंमें बहुतकुछ नवीनता और विशिष्टता है कहीं कहीं बड़े सुंदर भावों की व्यंजना इन्होंने की है। कालगतिके अनुसार फारसी काव्यका आशिकी रंग-ढंगभी कहीं कहीं इन्होंने दिखाया है इन्होंने गानेके पदोंके अतिरिक्त कवित, सवैया, अरिल्ल, रोला आदि कई छंदोंका व्यवहार किया है। भाषा भी सरस और चलती है, विशेषतःपदोंकी भाषाके समान कवितोंकी भाषामें वह चलतापन नहीं है।

इनके द्वारा समस्त पुस्तकोंका संग्रह नागरसमुच्चय नामसे ज्ञानसागर-प्रेस-बम्बईमें प्रकाशित हुआ था, जो पुराने ढंगसे छपा हुआ बहुत अशुद्ध था। बहुत से अन्य कवियोंके पद मिल गये थे। अब प्रायः वह संस्करण समाप्त भी होगया होगा। नया शुद्ध संस्करण होना आवश्यक है। कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं—

अति निर्जन एकांत मदन तसकर सेवत वन ;
द्रुम पातन की छाँह छिपा छवि छाइ रही घन।
जहाँ-जहाँ सुंदर ठौर लहत आनँद-रस वाढ़े ;
ठठकि-तहां गहि लता लूंवि फिरि रहत हैं ठाढ़े।
तान लेत पिय संग मिली ऊँचे सुर स्यामा ;
गावत करत कलोल लोल लोचन वहो भामा।
इहिं विधि राग समाज साज लैं जमुना आए ;
मत्त द्विरद मनौं अगड़ तोड़ि गहगड़ सौं धाए।
नाव चाव सो चतुर सखी जमुना-तट लाई ;
वरन विमान-विमान करत सोभा उफनाई।
हाटक हीरन जटित स्वेत अगनित छवि वाढ़ी ;
ससि किरननि मिलि झलमलात अतिदुतिभई गाढ़ी।
वँगला चारु सुढार मंजु मोतिन को झालरि ;
जगमगात नव-जोति करत चकचोंधी हालरि।
जारी जरी जराइ कटहरा जगमग जोती ;
ठौर-ठौर फवि लगे अमल मनिगन वहु मोती।
कनक-कमल मनिजटित अग्र अतिसै छवि सोहत;
ता विच आए भँवर स्याम मनमथ-मन मोहत।
छवि सों निहुरि चढ़ावत प्रियहि भुजन भरि प्यारे;
दुहु दिशि इकटक रहे रूप चितवत दृग-तारे।
सोभा संपति जीति मीत मिलि वैठे दंपति ;
चढ़ै ललित ललितादि नवल नवका कछु कंपति।

परसि अमल पद-कमल मनौ सात्विक भयो भारी;
कंप नीर डगमगनि लगनि याते सुखकारी।१।
उज्जल पछ की रैन चैन उज्जल रस दैनी;
उदित भयो उडुराज अरुन दुति मन हरि लैनी।
महा कुपित ह्वै काम ब्रह्मअस्त्रहि छोड़यो मनु;
प्राचीदिसि ते प्रजुलित आवत अगिनि उठी जनु।
दहन मानपुर भए मिलन को मन हुलसावत;
छावत छपा अमंद चंद ज्यों-ज्यों नभ आवत।
जगमगाति बन-जोति सोत अमृतधारा से;
नवद्रुम किसलय दलनि चारु चमकत तारा-से।
सेत रजत की रैन चैन चित मैन उमहनी;
तैसी मंद सुगंध पौन दिनमनि दुखदहनी।
मधिनायक गिरिराजपदिक वृन्दावन भूषन;
फटिकशिला मनि शृंग जगमगत दुति निर्दूषन।
सिला-सिला प्रति चंद चमकि किरननि छबिछाई;
बिच-बिच अंब कदंब झंब झुकि पायनि आई।
ठौर-ठौर चहुंफेर ढेर फूलनके सोहत;
करत सुगंधित पवन सहज मन मोहनत जोहत।
विमल नीर निरझरत कहूं झरना सुख करना;
महा सुगंधित सहज वासु कुमकुम मद हरना।
कहुं-कहुं हीरन खचित रचित मंडल सुरासके;
जटित नगन कहुं जुगल खभ झूलनि विलासके।
ठौर-ठौर लखि ठौर रहत मनमथ सो भारी;
विहरत विविध विहार तहां गिरिपर गिरधारी।१।

[सवैये—कवित्त]

भादौं की कारी अँयारी निसा झुकि बादर मंद फुही बरसावैं;
स्यामाजु आपनी ऊँची अटा पै छकी रस रीति मलारहि गावैं।

ता समै मोहन के दृग दूरिते आतुर रूपकी भीख यों पावैं ;
पौन मया करि घूंघुट टारै दयाकरि दामिनि दीप दिखावैं ।३।

ठौर-ठौर वृन्दावन पुलकित मालती यों उलहे कदंब केलि नउतन नूतिका; चंद्रमाकिरन द्रुम रंध्रनि ह्वै आई सोव मानों छवि देत छरी काम कलधूतिका । ऐसे समैं मोहन लगे हैं मुरली के कान दई लै पठाय मंत्र पढ़िकै अभूतिका ; नागरिया जहां-तहां श्रवननि रली आय वोलि तिय लै चली सुवंसी व्रजदूतिका ।४।

उदित सरद चंद चन्द्रिका किरनि कढ़ी दिनमनि ताप तन मेटत कहल हैं ; ऐसे समैं आई व्रजवाला नंदलाला ढिग तिन्हैं देखि कोटि रति लागत सहल हैं । गावैं गीत मीत मिलि नागरि संगीत नचैं चंचलता चितै रही मो मति हहल हैं; मिलीं घनस्यामैं मनो धाई नभ-मंडल सो वीच रासमंडल कै दामिनी लहल हैं ।५।

वृन्दावन कानन पै भीर है विमान की देव वधू देखि-देखि भई है मनंचला ; वंशी कल गान के वितान धुनिवाय वँध्यो रमालोक लोभित ह्वै भूली उरअंचला । द्वै द्वै विच गोपिन कै ललित त्रिभंगी लाल नागरिया पदन्यास वाजै छनछंछला; रासरंग मंडल अखंड नृत्य होन लाग्यो संग ह्वै भ्रमत मानो मेघ चक्र चंचला ।६।

सरद सुहाई निसि प्रफुल्लित वल्लीवन वहु छविछाई चारु चंद्रिका खुलनि में ; गान के विधान तहां नृत्य भेद हाव भाव रच्यो है विलास रास मंजुल पुलनि में । लेत गति नागरिया नागर सु मंडल में कोटिक मदन नहिं आवत तुलनि में ; बेर वेर झूलै मोतीमाला की झूलनि मन देखि-देखि डुल्यो जात कुंडल डुलनि में ।७।

जात हैं हमतो व्रजवासी सुनाहिं रही और जात की वाधा ;
देस घोष न चाहत मोक्ष को तीरथ श्रीजमुना सुख-साधा ।
संतन को सतसंग आजीविका कुंजविहार अहार अगाधा ;
नागर के कुलदेव गोवर्द्धन मोहन मंत्ररु इष्ट हैं राधा ।८।

आवत ही लखे जेहरि को मन जेहरि लै गए हेलगि गोहन ;
घूँघट मोहन लैसकी जासमै मोहन के मन की यह मोहन।
नागर नागरि भेंट कै कौतुक नागरि औरहू ठाढ़ी हैं जोहन ;
देखि रही नहिं देखिरही मुरि सौंही हँसौंही कसौंही-सी भौंहन ।९।
अँखियांनि के धर्म निवारक भोर मिले जमुना जग जोरनि सौं;
तहाँ न्हाय गोपाल औ वालहू घाट में बैठे बँधे हित डोरनि सौं।
मुख मौन ह्वै नागर माला लिये तिरछे चितवें दृगकोरिन सौं ;
परमेसुर के जपको फल सो जप क्यों निवरै दोउ ओरनि सौं ।१०।
त्यागि जबै पनिहारिनिका सँग आवत जात अकेलो भई क्यों ;
काहे उदास उसास भरे चित चकृत सी तन माहिं तई क्यों।
नागर कारे विस्येरे सों पाय बचाय न दीनो तैं हाय दई क्यों ;
दीसत है अब औरहि घाट सुघाटको छोड़ि कुघाट गई क्यों ? १२
पाछै गोपाल आगै गुरुलोग रही अति लाजनि सों दवि नीठ मैं ;
ग्रीव फिरायन चाहि सकी मुरि सोंहे न आये वे मेरीए दीठ मैं।
नागर प्यारे के देखनिकौ सखि वास मैं आनी यहै उर नीठ मैं ;
आँखें भई मुखपै किहिं काज या वेर क्यों आँखैं भई नहिं पीठ मैं ।१३
गोकुल गाँव गलीमें मिली गोरी उजरी सारी उठी तनमें लसि ;
आवत देखिके मोहनको रहि गोहन सोहन जोन्ह जनूं वसि।
नागर नीरैं कढ़्यो न टरी ह्वै निसंक तवंक जुटी भृकुटी कसि ;
पातरे लंककी लंगरि ग्वारि सु आँगुरी गाल गड़ाय दई हँसि। १४
वे वन वास कुठौर करैं इन वास मुखाँबुजको पन पारयो ;
वे सखि आगि वढ़ावति हैं इन काननमे रस अमृत डारयो।
नागर वे नहिं आनंद दाइन आनँद लैं ब्रजमें विस्तारयो ;
देखो अरी हरिकी बँसुरी इन कैसे कुवंश को नाम सुधारयो। १५

[पद]

किते दिनविन वृन्दावन खोए।
योंही वृथा गए ते अबलो राजस रंग समोए।

छाड़ि पुलिन फूलनकी सज्जा सूलसरन पर सोए ;
भीने रसिक अनन्य न दरसे विमुखनके मुख जोए।
हरि विहारकी ठौर रहे नहिं अति अभाग्य वल वोए ;
कलह सराय वसाय भिठारी माया राँड़ विगोए।
ईकसर झाँकेसुख तजिके ह्वाँ कबहुं हँसे कहुँ रोए ;
कियो न अपनो काज पराए भार सीस पर ढोए।
पायो नहीं आनन्द लेसमें सर्वे देस टकटोए ;
'नागरिदास' वसे कुंजनिमें जव सब विधि सुख भोए। १६

[पद]

हम ब्रज सुखी ब्रजके जीव।
प्रान, तन, मन, नैन सरवस राधिका को पीव।
कहाँ आनँद मुक्तिमें यह कहाँ मृदु मुसकान ;
कहाँ ललित निकुंज लीला मुरलिका कल गान।
कहाँ पूरन सरद रजनी जोन्ह जगमग जोत ;
कहाँ नूपुर बीन धुनि मिलि रासमण्डल होत।
कहाँ पाँति कदंबकी झुकि रही जमुना बीच ;
कहां रंग 'विहार फागुन मचत केसरि कीच।
कहाँ श्रवनन कीरतन जगमगनि दसधा रंग ;
कंठ गद गद रोम हरषन प्रेम पुलकित अंग।
'दासनागरि' सवहि सुख अरु मुक्ति आदि अपार ;
सुनहु ब्रज वसि श्रवनमें ब्रजवासिननकी गार। १७

हमारैं मुरली वारो श्याम।
विन मुरली वनमाल चन्द्रिका नहिं पहिचानत नाम।
गोप' रूप बृन्दावनचारी 'ब्रजजन पूरन काम ;
योंही हित चित्त वढ़ो नित दिन दिन पल छिन जाम।
नंदगांव गोवरधन गोकुल वरसानो विसराम ;

नागरिदास द्वारिका मथुरा इनसों कैसो काम। १८

[चर्चरी]

जयति वृन्दाविपिन विस्ववंदन मही महिमा अद्भुत निगम गाज गाजै।
वनति वनराज ब्रजराज सुत प्रिय तहां सहज सुख नित रितुराज राजैं ;
कथत श्रीमुख कथा कृष्ण बलप्रति यथा फूल फल भूमि छवि छाज छाजैं-
कोस दस दोय अनुराग रैनी रची परसि मन विरँगता भाजि भाजैं।
दासनागरि रंग बाग राधा सदा निरखि दृग कोम रति लाज लाजै।१६

[पद]

धनि धनि वृन्दावन यह नाउँ।
सब तत्त्वनिको सार सार सुख परम पियारो ठाउँ।
सोवत सुपने नित निसिवासर याहीकौ नित गाउँ ;
नागरिया जाकैं मुख प्रगटे ता मुखकी बलि जाउँ। २०
धनि धनि वृन्दावनके संत।
कहा विरक्त कहा कुंजनिवासी बड़रे महा महंत।
जिन सुदेस उपदेसनि तैं वन वसि रहै लोग अनंत ;
जहाँ तहाँ उसर तै सरकीने नागरिया रसवंत। २१
धनि-धनि वृन्दाविपिन विरक्त।
संग्रह भजन कियो तजि संग्रह छाड़ि बात ज्यों जक्त।
कृष्ण कथा मकरंदके मधुकर वृत्ति आसक्त ;
नागर फिरत छिन-छिन तन कुंजनि भए पुष्ट हरिभक्त। २२
हमारी बाँह गही वृन्दावन।
राख्यो अपनी सीतल छहियां जग दुख घाम तच्यो तन।
मोमें कछु कृपाबल नाही हौं जानूँ अपने मन ;
नागरिदास नाम हित सौं करि कृपा करायो धन-धन। २३
देह धरैंको अब फल पायो।
बीते बहुत बरस असमंजस माया नाच नचायो।
थोहर वन ते मोहि काढ़ि थिर वृन्दाविपिन बसायो ;

कौन कृपा अनायास भई हौं निज मन हेरि हिरायो।
निसिदिन पहर घरी छिन छिन नित आनन्द रहै सरसायो ;
नागरीदास दास ह्वै के जो इहाँ न आयो पछितायो। २४
अबतो यही बात मनमानी।
छाड़ौं नहीं स्याम स्यामाकी वृन्दावन रजधानी।
भ्रम्यो बहुत लघु धाम विलोकत छिनभँगुर दुखदानी ;
सर्वोपरि आनन्द अखंडित सो जिय ठौर सुहानी।
हरिभक्तिनमें रक्तति ह्वैहीं निंदामुख अभिमानी ;
नागरिया नागर कर गहिहैं रहिहैं जक्त कहानी। २५
वृन्दाविपिन रसिक रजधानी।

राजा रसिकविहारी सुन्दर सुन्दर रसिकविहारिनि रानी।
ललितादिक ढिग रसिक सहचरी युगलरूप मदपानी ;
रसिक टहलनी वृन्दादेवी रचना रुचिर निकुंज खानी।
जमुना रसिक रसिक द्रुमवेली रसिक भूमि सुखदानी;
इहाँ रसिकचर थिर नागरिया रसिकहि रसिक सबै गुनगानी। २६।
रायगिरिधरन नवकुँज रजधानि विच संग श्रीराधिका रानि राजैं ;
मोर चहुँओर हय हींस हलचल चमू गहर जलघोष निशान बाजैं।
कोकिला कीर कलहंस बंदी बहुत बड़े नित केलिके विरद गाजैं ;
प्रेम परधान मति मदन मंत्री महा देत रसमंत्र सब सुखनि साजैं।
मत्त मम माधौ कुतवालके दूत अलि फिरत कुसुम सौरभके काजैं ;
सुफल फल देत तरुदेव बहुभाँति अरु नगर कुलदेवी वृंदा विराजैं।
रूप उत्सव सदा सहज मंगल दृगनि उभै आसक्त लखि लाज लाजैं ;
दासनागर निकट ललित ललितादि तहाँ राज आनंद छकि चढ़िय छाजैं !

[रागललित]

नींद भरी अँखियाँ जु बड़ी बड़ी।
लाल-लाल डोरे कजरौहीं कोरे पिय हिय माँझ अरी ए गड़ी गड़ी।
सूचत रैनि चैन की बातें रंग पीक छवि छाय मंडी मंडी ;

नागरिदास मदनमोहनकैं वहु मोंतिनिकी निसि ताड़ लड़ी लड़ी। २८।

राधे तेरे नैन महा मतवारे।
मोहन-रूप-वारुनी पीकै मत्त भये छवि भारे।
घूमत झुकत धुकत उघटत से रुकि–रुकि चलत अवारें;
देखि छकनि छकि गए छबीले पिय नागर नटवारे। २६।

[राग विलावल]

हूँ हरि हेरिन माँझ ठगी।
सौंही मद मलसौंही अँखियाँ हिय मैं आन खगी।
नाहिं कछु गृह कान बनत जिय ठौरी रहत लगी;
नागरिया मोहन मिलिवेकी चिंता ज्वाल जगी। ३०

अरी वांहे सुन्दर छैल छली।
कबहू ठाड़ो पनघट कबहूँ घट घट बीच अली।
काहू की डोरी गहि तोरत चौरन इंदुरिया जु भली;
मागरिया बहु छंदबंद करि करत है रंगरली। ३१।

[राग--आसावरी]

लगन की पीर न जात भरी।
राति द्यौस तलफत ही वीतै चैन नहीं जिय एक घरी।
बिना मिलै घनस्याम वरन तन तपति बुझै ना जात सरी;
नागरिया व्याकुल वन-वीथिन टेरत डोलत हरी-हरी। ३२।

[राग--तोड़ी]

मोकौं गयो री ! ठगि ग्वार।
कटि तटी पीत पिछौरी बाँधै साँवरे अँग सुढ़ार।
मदन मंत्र से वैन वोलि कछु नैना वंक निहार;
नागरीदास मिलैं फिरि मोह करि राखों उर हार। ३३।

साँवला जरद दुपेटावाला।
कैफ भरी-सी भौंहें चढ़ियाँ सिर कलँगी उर माला।
विन देखैं दुख देत अमानी मोहन सोहन ग्वाला;

नागरिदास दिवानी अँखियाँ फिरि पीया इश्क-पियाला । ३४ ।

अरी ! ए जेंवन हूँ नहिं पाए ।
इकटक रहे वदन चितवत ही अँखियन हाथ विकाए ।
जब कछु कौर परस्पर दीने तब तब मैं सम्हराए ;
अति आसक्त स्याम-स्यामा लखि नागरियाके नैन सिराए । ३५ ।

[राग-सारंग]

बने माधुरीके महल ।
कूल जमुना फूल फल भरि भँवर चहला पहल ।
सघन नव संकुलित डारैं मिटत दिनमनि कहल ;
बिछए जल छींटनि छिरकि बिच करलीदलके पहल ।
तहाँ विहरति प्रिया हरि सँग तजिसुरत रन दहल;
दासनागर सखी फूली फिरत आनँद टहल ।३६।

ठाढ़ो नंदको गोपाल ।
वामभुज तर लकुटि दीयैं चरन परसत माल ।
रूप अद्भुत जोति को चहुँओर मंडल-जाल ;
दासनागर दृग रहे झुकि प्रियाध्यान-रसाल ।३७।

नैननि सैनतेहू थकी ।
देखि पंकज दृगनि की दिशि दृगनि लागी जकी ।
टरत नहिं छिन चुभी चितवनि प्रेम गहवर छकी;
दासनागरि रूप हरि की मिटत नहिं धकधकी ।३८।

भई री ! स्याम सों पहिचान ।
ताहि दिन ते सुख सिगरो विदा भयो लै पान ।
कौन घरी उत गई हुती हौं जमुना करन सनान;
नागरिया बिन चाहै मेरै बनि गई बात अजान ।३९।

श्रीहठीजी

छप्पय

श्रीराधा-पद-कंज-मधुप अतिशय रति ;
भावुक भक्त अनन्य काव्य गुण प्रति गति ।
व्रजरज प्रति रति प्रीति विभव सर्वस इन ;
अखिल सुलोक अतृष्ण विष्णु पद इन बिन ।
श्रीनिम्बार्क मत मानि निज विरच्यो राधा जस सतक ;
हठी हठी निज ईष्ट अरु धाम ध्येय धरि जग न तक ।

हठी श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायान्तर्गत श्रीराधा-भक्त एक महान कुशल कवि थे। लेखक-परम्पराने इन्हें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सम्पदादित राधासुधा-सतक के आधारपर गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजीका शिष्य लिखा है ; किन्तु समय मिलान करनेसे यह भ्रम विदित होता है। श्रीहितहरिवंशजी १५वीं सताब्दीमें हुए, प्रसिद्ध हैं, इन्होंने सं०१८३७ में राधासुधा-सतककी रचना की। राधासुधा-सतकमें भी स्पष्ट उल्लेख है— रिषि सुदेव वसु ससि सहित निरमल मधुको पाय ; माधव-तृतीया-भृगु निरखि रच्यौ प्रबन्ध सुखदाय।' इन्होंने सर्वप्रथम वृषभानुकुमारि श्रीराधिकाजीकी वंदना की है, किसी आचार्यकी नहीं, और सखियोंमें श्रीललिताजीकी प्रधानता रखी है,वंदनामेंभी इन्हींका नाम हैं।इससेभी विदित होता है कि, ये स्वामी श्रीहरिदासजीके ही परंपरानुयायी किसी वैष्णवके शिष्य थे। मिश्रबन्धु-विनोदमें श्रीराधावल्लभीय कवियोंकी अधिकता होनेके कारण कवि-परिचय लेखकोंमें प्रथा ही है, जो कवि अपने ग्रंथमें श्रीराधाजी की वंदना किये उन्हें श्रीराधावल्लभीय लिख देते हैं, श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें श्रीराधिका-उपासना बहुत ऊंची है। श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजीने महावाणीमें श्रीराधा-तत्त्व-वर्णन सर्वोपरि रूपमें की है, आचार्यपाद लिखते हैं—'श्रीराधा-पद-कमलते नूपुर कलरव होय ; निर्विकार व्यापक भयो शब्द- ब्रह्म कहि सोय।' इसमें कितना विसद श्रीराधा-उपासनाकी श्रेष्ठताकी पराकाष्टा है। चराचर-व्यापक-ब्रह्म श्रीराधा-नूपुरका केवल कलरव-मात्र है। यहाँके तद्वत्

श्रीराधाकी महत्ता और स्थानमें नहीं ! इसीप्रकार अनेक श्रीनिम्बार्कीय कवियों ने श्रीराधा-बन्दना की है । श्रीनिम्बार्क-संप्रदायकी कविता-क्षेत्र बहुतही व्यापक है,कवियोंने हरएक प्रकार और अन्य उपासनाकी कवितायेंभी रचना की है। कविता-सागर युक्त श्रीटट्टीस्थानीय श्रहरिदास-संप्रदाय और श्रीप्राणनाथ-द्वारा प्रचलित संप्रदाय श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय अन्तर्गत ही हैं, और भी एक-दो अन्य सम्प्रदाय इसीमेंसे प्रादुर्भुत हुए हैं ; किन्तु वे आधीनता स्वीकार नहीं करते तो क्या हुआ इसमें कमी नहीं। पौराणिकतासे विशेष साम्प्रदायिकता-द्वारा ही श्रीराधा-भक्ति और श्रीराधाकृष्ण-विहार-दिव्यरसाभास विशेष रूपमें प्रदर्शित हुये हैं। श्रीराधाकृष्ण-बिहार दिव्य-रसके-सर्वप्रथम-प्रचारक श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय ही है। आचार्यपादने दशश्लोकी-स्तोत्रमें कहा है—'अङ्गे तुवामे बृषभानुजाँमुदा विराजमाना मनुरूप सौभगाम् ; सखी सहस्रै परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम् ।' इससे स्पष्ट विदित होता है कि श्रीराधा-भक्ति सर्वप्रथम श्रीनिम्बार्काचार्यने ही प्राचरित की, क्योंकि इनका समय सर्व प्राचीन सिद्ध हो चुका है, प्रसिद्ध कवि जयदेव इसी सम्प्रदाय के थे।

श्रीहठीजीके ही ऐसा प्रसिद्ध रसिकविहारी मन्दिर निर्माणकर्त्ता रसिकदेव, श्रीनरहरिदेवजीके शिष्य महाकवि विहारीलाल, श्रीवृन्दावनदेवजीकी शिष्या श्रीसुन्दरिकुँवरिबाई, और माधुरीदासजी गौड़िया आदि निम्बार्कीय और गौड़ीय महाकवियोंको मिश्रबन्धु एवं अन्य कवि-परिचय लेखकोंने भूलसे श्रीराधा-वल्लभीय लिख दिया है। यदि साम्प्रदायिकताका अड़ङ्गा न हो तो हमारा तो विचार है कि जो श्रीराकृष्णके उपासक हैं—वही हैं श्रीराधावल्लभीय । श्रीहठी बड़े ही साहित्य विशारद श्रीराधा-भक्त कवि थे। राधासुधाशतककी रचना सम्बत् १८३७ में हुई है, इस ग्रंथमें ११ दोहे और १०३ कवित्त-सवैये हैं। जिनमें अनुप्रास की विशेषता है, और यमक उपमा उत्प्रेक्षासे भी अच्छे रूपमें गठित हैं, पर भाषा परिष्कृत है, भद्दा नहीं होने पाया है। यह ग्रंथ छोटा होने पर भी अपने ढंगका एक ही है। इसके काव्य सद्गुणता और उपासना दृढ़तापर श्रीराधा-भक्त मुग्ध हैं। श्रीराधासुधासतक सम्पूर्णतः उद्धृत की जाती है—

श्रीराधासुधाशतक

[दोहा]

श्रीवृषभानुकुमारिके पग बन्दौं कर जोर ;
जे निसि-बासर उर धरैं ब्रज बसि नन्दकिशोर । १
कीरति कीरतिकुंवरिकी कहि-कहि थके गनेस ;
दससतमुख बरनन करत पार न पावत सेस । २
अज,सिव,सिद्ध, सुरेस मुख जपत रहत निसि जाम ;
बांधा जनकी हरत है राधा राधा नाम । ३
राधा राधा जे कहैं ते न परैं भव-फंद ;
जासु कन्धपर कमल-कर धरे रहत ब्रजचन्द । ४
राधा राधा कहत हैं जे नर आठौ जाम ;
ते भवसिन्धु उलंघि कै बसत सदा ब्रज-धाम । ५
बन्दौं पग-पङ्कज सदा नँदनन्दन ब्रजचन्द ;
राधासत बरनन करत फिर न परौं भव-फन्द । ६
नित्यकिशोर निकुंज बन ग्रह गोकुल गोओक ;
छिन बिछुरत नाहिंन दुवो बिचरत श्रीगोलोक । ७
सेवत ललितादिक सखी जे प्रिय परम प्रवीन ;
कोटि कोटि छवि आगरी सुर, मुनि बरनन कीन । ८
गुरुपद हियमें धारिकै सुमृत वेद परमान ;
हठी कछू बरनन करत राधा रूप निधान । ९
रिषि सुदेव बसु ससि सहित निरमल मधुकों पाय ;
माधव-तृतिया भृगु निरखि रच्यो ग्रन्थ सुखदाय । १०
सत कवित्त मोदक सहित सुधा-सार इन माहिं ;
रसिक अमर ते लहत हैं ब्रज कदम्बकी छाँहिं ॥ ११

[कवित्त-सवैये]

काहूकों सरन संभु गिरजा गनेस सेस काहूको सरन है कुबेर

ऐसे धोरी को ; काहूको सरन मच्छ कच्छ बलिराम राम काहूको सरन गोरी सांवरीसी जोरी को । काहूकों सरन बौध बावन बराह ब्यास येही निरधार सदा रहै मति मोरी को ; आनन्द-करन बिधि-बन्दित चरन एक हठीकों सरन वृषभानुकी किसोरी को । १

कलपताके किधौं पल्लव नवीन दोउ हर्न मंजुताके कंजताके वनिताके हैं ; पावन पतित गुन गावैं मुनि ताके छवि छलै सविताके जनताके गुरुताके हैं । नऊनिधि ताके सिद्धताके आदि आलै हठी तीनों लोकताके प्रभुताके प्रभुताके हैं ; कटैं पाप ताके बढ़ैं पुण्यके पताके जिन ऐसे पद ताके वृषभानुकी सुताके हैं । २

कोमल विमल मंजु कंजसे अरुन सोहैं लच्छन समेत सुभ सुद्ध कन्दनीके हैं ; हरीके मनालय निरालय निकारनके भक्ति बरदायक बखानैं छन्द नीके हैं । ध्यावत सुरेस सं ु सेस औ गनेस खुले भाग अवनीके जहाँ मन्द परैं नीके हैं ; कटे जम फंदनीय द्वंद्वनीय हर हरि बन्दनी चरन वृषभानुनन्दनीके हैं । ३

मखमल माखनसे इन्दुकी मयूखनसे नूतन तमाल पत्र आभा आभरन हैं ; गुलसे गुलालसे गुलाब जपा जावकसे पावक प्रवाल लाल गावै भूधरन हैं । उमापति रमापति जमापति आठौ जाम ध्यावत रहत चार फलके फरन हैं ; पङ्कज बरन छवि छविके हरन हठी सुख के करन राधे रावरे चरन हैं । ४

कोऊ उमाराज रमाराज जमाराज कोऊ कोऊ रामचन्द्र सुखकंद नाम नाधे मैं ; कोऊ ध्यावै गनपति फनपति सुरपति कोऊ देव ध्याय फल लेत पल आधे मैं । हठी को अधार निरधारकी अधार तूही जप तप जोग जग्य कछुवै न साधे मैं ; कटैं कोटि बाधे मुनि धरत समाधे ऐसे राधे पद रावरे सदाहीं अवराधे मैं । ५

कर कंजन जावक दै रुचिसौं विछिया सजिकै ब्रजमाडिली के ;
मखतुल गुहं घुँघुरू पहिराइ छला छिगुनी चितचाडिली के ।
पगजेवै जराव जलूसनकी रविकी किरनैं छविछाडिली के ।

जग बन्दत है जिनको सिगरो पग बन्दत कीरतिलाडिली के। ६

कोऊ धन धाम कोऊ चाहै अभिराम कोऊ साहिबी सुरेस भाँति लाख लहियतु है; कोऊ गजराज महाराज सुखसाज कोऊ तीर्थ बर्त नेम जग अंग दाहियतु है। ऐसी चित चाहै चरचा है दुनियाको हठी चाहै ह्वै एक तौन ठीक ठाहियतु है; जन रखवारीकी सु प्रभु प्रानप्यारी की सु कीरतिदुलारीकी नजर चाहियतु है। ७

अतर पुतायो मढ्यो महल सुगन्धन सौं द्वारै गजमोतिन की तोरन तनी रहै; चन्दन चहल चारु चाँदनी चँदौवा लाल गोपमाढ़ी मनी कनी कोरनै घनी रहै। ऊमा चौंर ढारैं रमा आरती उतारैं ठाढ़ी रंभा रति मैनका-सी कोटिन जनी रहैं; हठी देवतानकी दिमाकदार रानीतेऊ राधेमहरानीजूके हाजिर बनी रहैं। ८

मोतिनकी तोरनै तमासेदार द्वारै वारै अमित तरै वनकी शोभा बड़ी सानकी। मखमली गिलम गलीचा मखतूलनके अतर अतूलनकी झौंव हठीमानको। जरकसी जरब जलूसनकी गद्दी कर रवि छवि रद्दी झुकी झालर वितानकी; कंचनकी बेली रमा रति ते नवेली अलवेली रंग रावटी अकेली बृषभानुकी। ६

अतर पुतायो चौक चंदन लिपायो बिछी गिलम गलोचन की पंगति प्रमानकी; कोरी हरी पीरी लाल झालर झलक रही जैसी छवि छाई चारु चाँदनी वितानकी। झीनी सेत सारी जड़ी मोतिन किनारीदार फैली मुख आभा हठी राधे सुखदानकी; नाहनेह नद्दी कर रमा रूप रद्दी कर बैठी आन गद्दीपर वेटी वृषभानकी।१०

कंचन फरस फैली मनिन मयूखे तन्यो जरी को वितान तेज तरनि तरा परै; पाँवड़े बिछौना परे मोतिनके कोरवारे चारयौंओर जोर जो प्रभा भरी भरा परै। हीरन तखत बैठी राधे महारानी हठी रंभा रति रूप गिरि धसक धरा परै; छूटी मुखचन्द चारु किरन कतार बांध छ्वै छ्वै चन्द्रमण्डल लौं छवि के छरा परै।११

कंचन महल चांदै चाँदनी बिछौना हठी गावतीं प्रवीनै बीनै

लीनै मृदु पान मैं ; रमा तृन तोरै उमा ठाढ़ी कर जोरै सची सीस चौंर ढोरै राधे सोवै सुखसान मैं। मनिनकी मालनकी पन्नन प्रवालन की मंजुल मयूखै भूखै कोटिन प्रभान मैं ; जरकसी सारी अङ्ग भूषन जराऊ बैठी जरकसी सेज जरकसके बितान मैं। १२

चाँदनीमें चाँदे लग्यो चाँदनी चँदोवा चारु चांदनी बिछौनन अधिक छवि छाई है ; बड़े बड़े मोतिनकी लरैं रुरैं चारयोओर वीच बीच जरी कोर सोहत सुहाई है। गोरे गात सेत सारी हीरन किनारी घनी इन्दुसे बदन राधे इन्दिरा लजाई है ; भाल दिये चंदन सुनेह नन्दनन्दन सों महक सुगन्धन सों सेज पर आई। ?२

मखमली गिलम गलीचनकी पाँति चारु जरकसी सेज तैसी रही रही छवि छाय कै ; हीरनके मनिनके मोती मालतीके हार लालन प्रवालनके ल्यावती बनाइ कै। एकै लिये सारी जरतारी कनी कोरवारी एकै हठी बीन लै रिझावै गीत गाइ कै ; चन्दन चढ़ाय भाल बन्दन लगाइ राधे बैठी चन्द मन्द कै मसिंदपर आइ कै। १४

कंचन महल चौक चांदनी विछौना तामैं जरीको बितान तान भान-जोति मन्द की ; लालनकी मालैं लाल सारी कोरदार अङ्गओठन-की लाली जिमि लाली जीववन्दकी। रम्भा-सी रमा-सी खासी दासी मैनका-सी हठी ठाढ़ी कर जोरै तेऊ छीनैं जोति चन्दकी ;गावै वेदबानी चौंर ढोरत भवानी राधे बैठी सुखदानी महारानी नँदनन्द की। १५

सारी जरतारी लगो मनिन किनारी दुति दामिनी कहारी गात जात रूप कन्द है ; हार हियैं भूषन जराउ भाल बेंदी लाल अधर प्रवाल विम्ब वसै जीववन्द है। उमाकी रमाकी सुखमाकी देवमाकी हठी रम्भा इन्दुमा-सी उपमा-सी गति मन्द है ; तारापति कैसी मुख लहतगुविन्द बारी तखतपै बैठी राधे बखत त्रिलन्द है। १६

चन्दन लिपायो चौक चांदनी चँदीवै तामैं चांदनी बिछौना फैली लहर सुगंदकी ; चांदनी की साज नीकी चंद सम चमकन चारयौओर चँदमुखी चंद-जोति मंद की । चांदनी-सी चार चारु चांदनी-सी फैली हठी चांदनी सी हांसी कै मिठाई सुधा कंदकी ; चंदनकी चौकी बैठी चंदन लगाए भाल चंद-से बदन राधे रानी ब्रजचंद की ।१७

बैठी रंग भरी है रँगीली रंग रावटीमें कहालों बखानौं सुंदराई सिरताजकी ; चांदनीकी चंपककी चंचला चमीकरकी इंदमा तिलोत्तिमाकी सोभा कौन काजकी । मोतिनके हार गले मोतिनसौं मांग भरैं मोतिनसौं बैन गुही हठी सुखसाजकी ; चाल गजराज मृगराज की-सी लंक दुजराजसो बदन राजै रानी ब्रजराजकी ।१८

जातरूप तखतपैं बखत बिलंद बैठी जाके काज ब्रजराज भावरे भरत हैं ; जरीदार द्वारमैं बितान तान राख्यौ हठी छरीदार ठाढ़े इतमाम बगरत हैं । लरीदार झालरैं झलकदार झूमैं मोती झुमकन झूमैं छ्वै छ्वै उपमा धरत हैं ; राधेको बदन दुजराज महाराज जान नखत समान कोरनिस-सी करत हैं ।१९

बिज्जुकी छटा-सी खासी कंचन सटा-सी रूरी रूपको घटा सी सखी सेवनमें आवतीं ; सुरन की रानी लै सुगंधन लगावैं रुचि चरौंन चलाइ भौंर भीरन भगावतीं । फूल ऐसी राजै मखतूल सेज राधे हठी फूल-फूल किन्नरी सुहाये गीत गावतीं ; मंड नवखंड सुखमंडल मरीचैं दाब मंडकै प्रचंड चन्द्रमंडल दबावतीं ।२०

चामीकर चौकीपर चंपक बरन हठी अंगकी चमंकै चारु चंचलै चलावतीं; तारा-सी तरंगना-सी अतर लगावै रति मुकर दिखावै विजै बीजन डुलावतीं । कमला करन जोरैं विमला सुतृन तोरैं नवला लै मरजी कों अरजी सुनावतीं ; सुरनकी रानी सुरपालनकी रानी दिगपालन की रानी हार मुजरा न पावतीं ।२१

जरीदार सानवारे छरीदार ठाढ़े द्वार बंदीजन जसभरी बोलैं वेद बानी है; चारयौओरचंद्रमा-सी जगमग होत बाल देखौ नंदलाल

रति छबि की निसानी है। रंभा गुन गावै सची चंदन लगावै रमा भौंरन उड़ावै चौंर ढारत भवानी है ; हठी ब्रजमंडलमें रूप बगराय आज बैठी जातरूपके महल महारानी है।२२।

कोऊ छत्र लीनै कोऊ छाहगीर कीनै कोऊ बीनै लैं प्रबीनै ये नवीनै सुर गावतीं ; कोऊ जरी जोरैं कर अतर गुलाब बोरैं लै-लै अलबेली हठी धावन तैं आवतीं। कोऊ चौंर ढारैं कोऊ आरती उतारैं कोऊ करती सलामैं कोऊ मुजरा न पावतीं ; बैठी आन तखत पै बखत बिलंद राधे बाला दिगपालनकी माला पहिरावतीं।२३।

फटिकसिलानके महल महारानी बैठी सुरनकी रानी जुरि आई मनभावतीं ; कोऊ जलदानी पानदानी पीकदानी लिये कोऊ कर बीनै लै सुहाये गीत गावतीं। कोऊ चीर चीनै चारु चांदनी-से चौज वारे हठी लै सुगंधसौं अलकैं बनावतीं। मोतिनके मनिनके पन्नन प्रबालनके लालनके हीरनके हार पहिरावतीं।२४।

जातरूप तखतपै बैठी रूपरास राधे अंगनकी प्रभा प्रभाकर को लजावतीं ; चीर चारु हीर हार हीय पहिरायकर भूषन बनाय बाल साजन सजावतीं। अंतर गुलाब लै सुगन्धन लगावै सबै चन्दन चढ़ाय भाल भौंरन भगावतीं ; जोरि-जोरि पान देवतान हूँ की रानी हठी कोटि-कोटि कोरनिस झुकिकै बजावतीं।२५।

सीसाके महल बैठी फैलत प्रभाके पुञ्ज मानो चन्द्रमण्डल उठाय आनि राख्यौ है ; जरीपोस अम्बर जलूसदार झलझलात झालरैं झलक झल रूप मानि राख्यौ है। अतर उसीर अंगअंगन लगाय हठी सकल सुगन्धन सों ब्रज सानि राख्यौ है ; देखौ भरि नैन जासौं पूजै मन साधा हरि राधा आजु छबिको बितान तान राख्यौ है।२६।

केसरके अंग पट केसरके रंग जगे मोती गुही मंग है अनंग हूँ की बालिका ; रम्भा-सी रमा-सी मैनका-सी मञ्जु घोषा सम सची-सी उमा-सी सुखमा-सी जोति-जालिका ! सांझ समैं आन वृषभानु

की कुमारी राधा ठाढ़ी दरवाजे हठी प्राननकी पालिका ; भागभरे नैनन निहारौ नन्दलाल चलि रैन गुजरी-सी उजरी-सी दीपमालिका । २७

सांझ हौं गई ती वीर भौन वृषभानुजूके अति सुकुमार एक रूपकैसी रासी हैं ; दाड़िम दसन विम्ब अधर प्रवाल वारी सुधा-सी झरत चारु मन्द मन्द हासी हैं। देखि हौं गुपाल ग्वाल आज गरवीली हठी राधे कहि टेरैं जानी रंभा रमा दासी हैं; हिमकर कला-सी चमक चपला-सी हैं सो शंभु अबला-सी खासी दीपमालिका-सी है।२८

मंजन चीर सुहार हिये सिर बन्दन अंजन मोतिन वान की ; जावक नूपुर माल औ किंकनि कंचुकी चंदन है गति यान की। कंकन सोहै केयूर भुजान लसै मुख पान औ बेनी गुधान की ; आवै गलीमें बिलोको चली यह कंजकली-सो लली वृषभानकी । २६

सारी जरतारी लगी मनिन किनारी त्योंही दामिनी देबाइ लेत दमक रदन की। हीरनके हार हठी गजरा गुहावदार अंग अंग फैल रही दीपति मदनकी ; हेमकी छरी-सी मानौ मुखन जराव जरी सब गुन भरी परी छबिके कदनकी । चांदनी बिछौना भाल चन्दन लगावै बाल चांदनीमें बठो लाल चंद-से बदन की । ३०

मनिमय राजै साजै मंजु सुरवान बीच मानौ दिनकर कर लपटी प्रभा करै ; सौंन जुही मालै-सी बिसालै बिजुरी-सी जुरी इनहीको ध्यान निसबासर रमा करै। मुनिनके मन मनोरथकी सुदैनवारी हेर हेर हठी पाप पाइँ तें बिदा करै ; साकरै परै ते राधे साकरे सहाइ होत साकरै सहाय ऐसी जनकी निसा करै । ३१

पाइजेब जेहर जराऊ जरी जोरी हठी मनि मुकतान हीरा हार उर धारे हैं। सल्लन समुद्र कढ़ी रमा रमनीय ऐसी अंगन सुगन्ध पाइ झूमैं भौंर भारे हैं। बैठी है तखत खोल बखत पियारेजूको मानौ काम बामपै सुहाग चौंर ढारे हैं ; दैकै मृगबिंद कीन्ही जोन्ह-जोति मंद राधे तेरे मुखचंद पै अनेक चंद वारे हैं। ३२

तोरि तोरि सुमन सुहाये सुख हेत हिये हार मालतीके पहिराये हैं सरस मैं ; चंद्रकला प्रेमकला विमल बिशाखाके बिमल गुन गाय गाय भयो हूँ परस मैं। केसर अतर अंग अगर लगाय हठी ऐसी भाँति सेवा करी कैयक बरस मैं ; ललिता ललीके लोने पाय सहराये तब पाए वर पाइ पाइ राधिका दरसमैं। ३३

हेलीरी! तैं लखे आजुके ख्याल बखान वहांलों करै मति मोरी;
राधेके सीसपै मोरपखा मुरली लकुटी कटीमें पट डोरी।
बेंदी विराजत लालके भालमें चूनरी रंग कुसुम्भमें बोरी ;
मानके मोहन बैठि रहे सो मनावत श्रीवृषभानकिसोरी।३४

मोरपखा गरे गुञ्जकी माल करै नव वेष बड़ी छविछाई ;
पीतपटी दुपटी कटिमें लपटी लकुटी हठी मो मन भाई।
छूटी लटें डुलें कुण्डल कान बजै मुरली धुनि मंद सुहाई ;
कोटिन काम गुलाम भये जब कान्ह ह्वै भानुलली बनिआई।३५

मोतिनकी झूलैं झूमैं झालरैं झमकदार चांदनी बिछौना बिछे चंदन कदोवामें ; अतर गुलाब खसखसन बिसाल वोरे सकल सुगन्ध हठी अंगन सदोवामें। सुंदर सुजान है सुघर सुकमार राधा मन मनमोहन जू रहतु बदोवामें ; चांदनी सिंगार करें चंदगुन चौकी पर चन्द्रमा-सी बैठी चारु चांदनी चँदोवामें। ३६

बजत बधाए गाए मंगल सुहाए मग पाँवड़े पराये हैं अवाई सुखवानकी ; बैठी सुखपाल सुखपालनकी रानी साथ व्रज महारानीके प्रगट जगजानकी। बोलकै पठाई आई नगर लुगाई सब देखि छवि छाई जिन्हें सूझत न आनकी ; महरम भाई हठी कुलह सुहाई ऐसी गोकुलहि आई राधे बेटी बृषभानकी। ३७

केसर-सी केतकी-सी चम्पक चमीकर-सी चपला चमक चारु गातकी गुराई है ; जाको मुखचंद देखि चंद मंद जोति होत जाके लखि नैन अरबिंद दुति पाई है। नीलमनि मोतिनकी माल उर डोलत मयूर औ मरालनकी पंगति सुहाई है ; देखवेकौं दौरि आईं गोरी व्रजवाला सबै भानुकी किसोरी आजु नंदगृह आई है। ३८

गाय उठीं किन्नरी नरीन ये सुरन सबै द्वार द्वार नगर नगारा धुनि छाई है ; सुर हरखाने दरसाने बरसाने प्रेम सरसाने फूल बरखा लै बरसाई है। बन्दीजन बिरद बखानैं भांति भांति हठी लीन्हों अवतार राधे वेदनहू गाई है ; धन्य ब्रजमंडल सुधन्य कूख कीरतिकी धन्य वृषभानुजूके भागकी भलाई है। ३६

देखी भटू भाँवती प्रकास भोर भान कैसो कोकिला-से बैन नैन ऐनन जुरै गई ; मैनका सी नारी हठी मैनका कहारी प्यारी रम्भा रमा उमावारी मनकों भुरै गई। कमलकली-सी लली राजत अलीन वीच गोकुल गलीनमें गुलाब-सो कुरै गई, बिज्जुलके जालन की कोटिन मसालनकी लालनकी मालनकी दीपति दुरै गई। ४०

जाके अंग अंगकी बनकपै कनक वारे मोहै लेत मैन मन मोतिनके हारिए ; ऐसी मनभावनीसो मोहनजू कीनो मान जाकी ये बड़ाई विधि गावै वेद चारिए। राधेजूकी बदन विलोकी ब्रजचन्द हठी चंद जोति मंद नंदनँद पाइ धारिए। सची मंजुघोष-सी सुमैनका तिलोत्तमा-सी रंभा सिवा रति-सी रमा-सी वारि डारिए। ४१

अतर पुतायो बने खासे खसखाने तामें छींटें चहूँओरन उसीरनके आवके ; कंजन बिछौना जामें गुंजै अलि छौना हठी श्रोनन के तौना सोहैं सुरन रबाबके। छूटत फुहारे कासमीर रंगवारे भारे बंधे हैं कतारे मघा मेघ झरदाबके ; देखो ब्रजचन्द जगबंद चंद मंद होत चंदन चहल राधे महल गुलाबके। ४२

मनिन महल महँ महके सुगंधे तैसो फटिकसिलानहूँ कौ फरस समारो है;जेबदार जर्बदार जरी औजलूसदार चोजदार विसद बिछौनन पसारो है। चन्द्रमन चौकी पर चम्पक बरन हठी रंभा रमा उमा रूप गरब उतारो है ; देखो नँदनंद सुखकंद ब्रजचंद आजु राधे मुखचंद चंद मंद कर डारो है। ४३

बैठी कुञ्जभौन गोरी कीरतिकिशोरी राधे छूटत फुहारे हिमवारे एक पाती है ; अतर गुलाब घिस चंदन चहल मची चारोंओर

सुमन सुगंध सरसाती है; कैयो रंगवारी हठी उठती तरंगें त्यों अनन्त अंगना-सी अंग आभा उफनाती है। बाँधि बाँधि परा सरा-सरी सुख किरनें यों छोरलों धरापै छूट छरा खाय जाती है। ४४

काम सरसी-सी रमा उमा दरसी-सी पट फूल अरसी-सी घन दामिन उसी-सी है; प्रेम झरसी-सी मोह कसन कसी-सी लोकलज्जा उकसी-सी कान्हरूपमें रसी-सी है। लरी लरसी-सी कटि राजै हरिसी-सी हठी उरमें बसी-सी दुति जगमें जसी-सी है; सिद्धिकरसी-सी हिये अंगन ससी-सी करै रतिकी हँसी-सी दीसी उरमें बसी-सी है। ४५

प्रेमकी झरी-सी देखो लालन लरी-सी अब चालमें करी-सी राजें कटिमें हरी-सी है; भागमें भरी-सी वा सुहाग अगरी-सी रास रूपकी धरी-सी रमा उमा किन्नरी-सी है। नीति अगरी-सी व्रज जोन्हि बगरी-सी हठी चलिये गुपाललाल सोहै सुघरी-सी है; दिपति परी-सी है लसत सुरसरी सी है हेमकी छरी-सी है सदनकी बरी-सी है। ४६

भौनतैं गौनकैं भानुलली कढ़ि देखन आईं सबै ब्रजनारैं;
पीरो दुकूल सिंगार सजै मनो फूलि रहीं बन चम्पक डारैं।
पाइनतैं अंगुरी नख ह्वै हठी लालीकी लीकै कढ़ी असरारैं;
गैली भई उपमा सिगरी मनो फैली महीमें महावर धारैं। ४७

चन्द-की कला-सी नवला-सी सखी संग वारों रंभा रमा उमा हठी उपमाकों को रहीं; कीरतिकिसोरी वृषभानकी दुलारी राधा आली बनमालीको सहज चित चोरहीं। भौनते निकसि प्यारी पायँ धारे बाहिरलों लाली तरवानकी उमड़ि इक ओरहीं; बगर बगर अरु डगर डगर वर जगर मगर चारयोओर दुति होरहीं। ४८

नवनीत गुलाबतैं कोमल है हठी कंजकी मंजुलता इनमें;
गुललाला गुलाल प्रवाल जपा छवि ऐसी न देखी ललाइनमें।
मुनि-मानस-मन्दिर मध्य बसें बस होत है सूधे सुभाइनमें;
रहु रे मन! तूं चितचाइनसों वृषभानकुमारिके पाइनमें। ४९

हीन हौं अधीन हौं तिहारो ब्रज माहिं बनी हियमैं मलीन करुना की ओर ढरिये ;भारी भवसागरमें बोरत बरैहू मोहिं काम, क्रोध,लोभ मोह लागे सब अरिये। बुरो भलो जैसो तैसो तेरे द्वार परयो मैंतो मेरे गुन औगुन तैं मनमें न धरिये ; कीरतिकिसोरी वृषभानकी दुहाई तोहि लच्छ-लच्छ भांतिसों हठीकी पच्छ करिये। ५०

जनदुखहरनी धरैनी यति ध्यावैं तोहि तेरी जग कर्नी विधि बर्नी बड़े स्यान की ; चिन्ता कैसो घेरा मन ढेरा--सो भ्रमत फिरै ह्वदै नहीं डेरा सुधि खानकी न पान की। ध्यावत बनै न मोहि तेरोइ कहावत हौं हठीपै कृपाकी कोर राखि दया दान की ; औगुन भरोरी हौं कहत कर जोर अब मोरी पच्छ कर तू किसोरी वृषभान की। ५१

ध्यावत महेसहूँ गनेसहूँ धनेसहूँ दिनेसहूँ फनेस त्यौं मुनेस मन मानी है ; तीनो लोक जपत त्रितापकी हरनहार नवो-निद्धि सिद्धि मुक्ति भई दरवानी है। कीरतिदुलारी सेवैं चरन बिहारी धन्य जाकी कित्त नित्त विधि वेदन बखानी हैं ; साधा काज पलमैं अराधा छिन आधा हठी बाधा हरिवेकों एक राधा महरानी हैं। ५२

खासे-खासे खसखाने छिरके गुलाब आब चंदन चहल चारु छाये जलजात हैं ; चाँदनीकी सज नीकी पखुरी गुलाबही-की बिछै चारयोओरन पुरैननके पात हैं। छूटत फुहारे हठी अमल सुजलवारे तैसी बहै मन्द बात सियरात गात हैं ; अतर लपेटै दोउ सीतल महल बीच प्यारी प्राणनाथ पौढें सुख सरसात हैं। ५३

जबतैं बिलोक्यौ तोहि सुन्दर कुंवर कान्ह तबही तैं वाको चित चंग-सो चढ़त हैं ; डोलत फिरत नहीं खोलत हियेकी पीर मेरी कर तेरी सौंह तो जस पढ़त हैं। तुम तौ सुघर स्यानी कहिये सबैई बात चलिये जरूर बैठें कहो का कढ़त हैं ; मेटो मन बाधा हठी पूजै मन साधा वेतौ रातौ-दिन राधा राधा राधाही रटत हैं। ५४

शंभु सुर ध्यावैं सदा सेस गुन गावैं विधि पारहू न पावैं जे कहैया वेद वानी के ; पर्म पद पायकै चढ़ायवेकों लायक हैं जन सुख दायक सहाय दधि दानी के। मुकतिके मालिक अतालिक हैं सिद्धनके

दीन प्रतिपालिक रखैया हठी पानीके ; जोग जग्य जप तप कछुवै न साधे ऐसे पद अवराधे हम राधे महरानीके । ५५

जाकों नेति नेति कहि वेदन बखाने भेद नारद न जानैं नहीं काहू ठीक पारो है ; संभु सुर सुरपति सुक मुनि आदि दै कै करि जोग जग्य जप तप तन गारो है । हठीकी अधार बृषभानुकी कुमारि ऐसी तीन लोक जाकी कृपा कोरको पसारो है ; चार मुख वारो बिधि कहै का बिचारो दससतमुख वारो राधा गुन कहि हारो है । ५६

कंचन अटापै बैठी जोवत घटा हैं प्यारी बिज्जुकी छटा-सी सखी सेवत सिहाती हैं ; लोन्है कर वीनै एकै गावती प्रवीनै हठी राग रागनीनके प्रमान दिखराती हैं । राधा मुखचन्दकी मरीचैं ब्रजचन्द ए उमंडकै प्रचण्ड ह्वै कै ऐसी सरसाती हैं ; मंड खंड मंडलकौं दाविकै अखंडलकों फोर चंद्रमंडलकों छोर कढ़ि जाती हैं । ५७

अगर लिपायो चौक बगर सुगन्ध धुन्ध नगर-नगर फैल चारयौओर हो रही ; पांवरीन पांवड़े पराये पौर वाहिर लौं दीपक धराये मन भाये मग जो रही । सकल सिंगार साज रावरेई पास हठी ऐसी भाँति भाँवतीकौ भयो भौन भोरही ; आलस उनींदी दृग मूँदी चटकाइ कर सुन्दर सुघर सुकुमार सेज सो रही । ५८

बैठी कुंज-भौनमहरानी सुखदानी सवै किंनरी नरी नए सुरीन सुर गावती ; कोरै कोरै कौंल-सी सुवागैं इन्दु आनन-सी प्रमुदित भूमि-भूमि पग सहरावती । लै लै री सुगंधे गुंजै धीरे-धीरे प्यारी पर भौंरनकी भीर हठी ऐसी छवि छावती ; गोरे-गोरे गातन पै नवल-किशोरीजूके स्याम रंग बोरे मनो चौंरन चलावती । ५९

हीरनके हठी हार गरै गजरा गजमोतिनके सुखदानी ;
जौरै जरी भरी माँग सिंदूर सुरम्भा रमा रति रूप नसानी ।
पन्ना प्रबालन लालनकी पसरी किरनै सुखमा सरसानी ;
कोहै त्रिलोकमैं मोहै नहीं लखि सोहै सुहागिनि राधिका रानी ।६०

लीनै लली ललितादिक संग उमंगसौं श्रीवृषभानुदुलारी ;
मालती कुंद निवारो गुलाब सुफूल रही चहुँघाँ फुलवारी ।

हेमके छूटे फुहारे हठी मघवा मघ मेघ महा सहकारी;
हौजपै चोजसों मौज भरी वलि बैठी विलोकत राधिका प्यारी।६१

मान करि बैठी वृषभानकी कुंवरि कुञ्ज जानिये कहाधौं लखि पायो चिन्ह चोरी को; कोटि-कोटि भाँति मनुहार करि हारी हम रुषहूँ न पायो नेक नवलकिशोरी को। चलिये चतुर चटकीले चित चाव भरे बदन दिखावो हठी रतिपति जोरी को; पायन घिसत सीस निसि-दिन वीती हरि फीको परि गयो टीको भाल लाल रोरी को। ६२

रमा-सी उमा-सी इन्दुमा-सी कीसमा-सी हठी छविकी जमा-सी भाल दीन्हें बिंदु रोरी के; तारा-सी तरङ्गना-सी मैनका तिलोतमा-सी सची मंजुघोषा गिरा गावै गुन गोरी के। विमला-सी नवला-सी नवअवला सी खासी मदनविलासी चन्द्रिका-सी तन जोरी के; छोड़ि मगरूर जुरि आवतीं जरूर सबै रहतीं हजूर ठाढ़ी कीरतिकिसोरी के। ६३

सोइ जगी सुखन समोई सुखदान राधे सोहै छवि दैनी वेनी लचकीली लङ्कपर; आलस उनींदी अँगरात जमुहात प्रात छवि उफनात छुटी बेंदा भौंह बङ्कपर। कारी सटकारी चटकारी लटकारी लटैं सुलफ सुहाई सोहै वदन-मयंकपर; हठी तृन तोरही न उपमा करोरही सुजगमग हो रही जराऊ परजं*पर। ६४

राधिके! काहे करो हठरी सुनरी वर बोल पियूषसे पीके;
भौंहै चढ़ाय कहा सतराइकै नैन नचाय बकै गुन सी के।
संभु सुरेस गनेस न पावत प्रेमके डोर बँधे तुव हो के;
मानो मनायो पराऊँ परे मनभावन मोहन भाँवते जी के। ६५

केसर अगर खस चन्दन लगायो भौन अतर पुतायो भो सुगंध चहुँओरी है; कंचन फरस मखमलके बिछौना बिछे जरीके बितान आसमान जनु जोरी है। आसपास चन्द्रमुखी विंजन चँवर ढोरैं लीनै पानदान कीनै रति-दुति थोरी है; हठी सुखदान भरी रूपके गुमान आज स्यान करि बैठी बृषभानकी किसोरी है। ६६

खासो खस चंदन गुलाब छिरकायो जैसी खाई चहूंओरन सुगंध कमलान कीं; मन्द--मन्द बिजन डुलावैं ललितादि सखी

कहतीं कहानी मृदुबानीसों प्रमान की। कोमल करन चापैं चरन बिसाखा हठी जगमग भूषन प्रभा ज्यौं सुखदान की ; चांदनी-सी सेज चाँदे चाँदनी बिछौना चारु सुखन समोई सोई बेटी वृषभान की।

करन तरोना जगमगत जराऊ तापै दामिनी दमक चारु चपला बिसेखो तौ ; सुन्दर सुघर मनमोहन सुजान हठी इन्दीवर लोचन सुफल कर लेखो तौ। मोती गुहे मङ्ग मध्य तारा गङ्ग धार किधौं भाग वा सुहाग की बनाई विधि रेखो तौ ; मृगमद विन्द दीनै कोटि चन्द मन्द कीनै राधे मुखचन्द ब्रजचन्द चलि देखो तौ। ६८

मनिनकी कोरवारे जरक-सी डोरवारे मौरवारे भानुकी प्रभान करै फीके हैं ; ताने है बितान तामैं भानुकी किसोरी बैठी रम्भा रति तीके रूप लगत रतीके हैं। देखो ब्रजचन्द ब्रजरानीको बदन हठी फैले हैं अकास मानौं कोटिन ससीके हैं ; चारयौओर पुंज जोर पसरे मयूखनके भूषन विराजैं नीके नीके चाँदनीके हैं। ६९

आजु हौं गईती भौन भोर वृषभानजूके रम्भा रति रमा उमा रूप अब देखी मैं ; सुंदर सुघर सुकुमार सुखदान हठी चामीकर चम्पक तैं अधिक बिसेखी मैं। चटकीली चौप भरी चाव धरे चाहत-सी नैनन निहार घरी सुफलकै लेखी मैं ; गोकुल गलीन बीच ग्वाल गरबीली जात चन्द-से बदन ब्रजचन्द आज देखी मैं। ७०

प्रेम सरसानी जस गावैं वेद वानी चौंर ढारैं रमारानी रति-रानी-सी टहल मैं ; कंजन सम्हारी सेज मंजुल करन बेस चाँदनी बरन चारु चन्दन चहल मैं। छूटत फुहारे हिमवारे हठी चारयोओर छिरको गुलाब आब ग्रीषम कहल मैं ; भेंटी गुजरेटो अहिरेटी कान्ह भानु बेटी अतर लपेटी लेटी सीतल महल मैं। ७१

पियहितकारी चीरफैन-सी सम्हारी सेज मैन मदवारी सोभा सोहत बदन मैं ; मोतिन किनारीवारी हठी सेत सारी सीस कैयो दामिनीकी दुति राजत रदन मैं। कोटि सुखमा-सी मंजुघोषा औ तिलोत्तमा-सी रम्भा-रति मैनका-सी वारिये अदन मैं ; सुख सरसानो कल-कोकिलकी बानी सुर गावैं सुररानी ब्रजरानीके सदन मैं। ७२

कौलसे करन नव दलन सम्हारी सेज सुखद सहेलिन सुगंधसौं समोई है; करिकै टहल गई आपने महल मेट चहल-पहल हठी दूसरो न कोई है। सुखन सँजोई औ वियोग ताप खोई प्रीति सखियन गोई मैन मंत्रनसौं भोई है। प्यारो भरै अङ्क और प्यारी गलबाँही करै ऐसै भानुनंदिनी गोविन्द संग सोई है। ७३

सीतल सुगन्ध सान सीतल महल जान ग्रीषम कहल कौल सेज सुखदान की; चंदन चरचि अंग पहिरे सुगन्ध चीर बीर बलबीरजूको प्यारी प्रियप्रानकी। सुखद सहेली परबीन वीन लै-लै हठी करिकरि गान राग तानन बितान की; आतरन सीसे कर सुरत खुसीसे नाह बाँहदै उसीसे लेटी बेटी वृषभान की। ७४

फिरत कहा है बीर बावरी भई-सी तोहि कौतुक दिखाऊँ चलि पैड़े कुंज द्वारी के; निमिष निहारै डीठ कितहुँ न टारै मार नन्दके कुमार मैन सैन सुकुमारी के। करन पसार कर दृगन लगावै हठी बस परै गरबीली ग्वाल सुकुमारी के; आई देखि हौं हूँ औ दिखाऊँ तोहि चलि लाल चरन पलोटै वृषभानकी कुमारी के। ७५

झूमि झूमि आये घूमि घनै घनश्याम पाली कूकै काकपाली कामपाली बरसात है; ऐसे समै कुँजभौन कीरतिकिसोरी तौन सखिन समूह साथ सुख सरसात है। कहा कहौं तोहि ताहि देखि आई तैसे भटू कौतुक विलोकि हठी हिय हरषात है; जमुनाके तीर बहै सीतल समीर तहाँ वीर बलबीरजूको बलि-बलि जात है। ७६

राजै सुभ सीस उतै मुकुट लटकवारो इन सीस आछी भाँति चन्द्रिका निहारी मैं; उतै बनमाल इतै मोतिनकी मालवर बानिक बिसाल हठी काम रति वारी मैं। आज निज नीरै नेकु सुमन सुँघाऊँ तोहि सुखद सुहागभरी बात हितकारी मैं; निज अँधियारीमें निकुंज की गलीमें जात आज ब्रजचंद मुखचंदकी उजारी में। ७७

आज हौं गईती वीर सहज निकुंजनमें कौतुक बिलोकी तहां सब सुखदानी के। कहत बनै न मोपै अचरज बात हठी कहि-कहि हारे मुख चार वेद-बानी के। श्रवन सुनै न मानै आँखिन दिखाऊँ

तोहि चलि दुर मेरे साथ चरित गुमानी के ; लूटै सुख मोटै करै मनुहार कोटै बैठे पायन पलोटै लाल राधा महरानी के। ७८

माखनते मखतूलहुते सुकुमार सिरोमनि कंज-कली के ;
लाल गुलाल प्रवालके भूषन दूषन है घनश्याम छली के।
आली गुलाबकी आबहि वारिये चारिये ये ब्रजकुञ्ज थली के ;
भानु प्रतापको निंदत है पद बंदत हौं वृषभानुलली के । ७९

ब्रजकी बलि आजु कुंजनमें सुखपुँजनकौं बरसावत है ;
तियको भरो आलससों मुखचन्द निहार घनौ सुख पावत है।
इक बात मतेकी कहौं सुन तूं जु सुनै हियमें हँसी आवत है ;
करि केलि थकी लखि प्रानप्रिया पग चाँपत प्यारी सुवावत है ।८०

चांदनीके आंगन बिछौना नीके चांदनीके चाँदनी-सी देखि अंखियान सुख लह्यौ है ; चांदनी-सो चीर चारु चाँदनीके आभूषन चम्पकके गातन बखानौ जाते कह्यौ है। हठी आस-पास बैठी सुघर सुजान सखी जिन्हें देखि रतिको गुमान जात बह्यौ है ; राधे मुख-चंदकी निकाई ब्रजचंद आज अवनी अकासलौं प्रकास फैल रह्यौ है ।८१

चंद-सो आनन कंचन-से तन हौं लखिकै बिन मोल बिकानी ;
औ अरविंद-सी आँखिनकौं हठी देखत मेरि ये आँखि सिरानी ।
राजत है मनमोहनके संग वारौं मैं कोटि रमा रति बानी ;
जीवनमूर सबै ब्रजकी ठकुरानी हमारी है राधिकारानी । ८२

रम्भा रमा-सी उमा-सी हठी बिमला नवला रति रूप छली-सी ;
चाँदनी चंपा चमीकर-सी चपला चमकाहत जात घली-सी ।
भागन आजु लखी भरि नैनन आवरी आवत देखि भली-सी ;
जात चली गली भानुलली अलीमंजुल कोमल कंज-कली-सी ।८३

जाकी कृपा शुक ग्यानी भये अति दानी औ ध्यानी भये त्रिपुरारी ;
जाकी कृपा बिधि वेद रचै भये व्यास पुराननके अधिकारी।
जाकी कृपा तै त्रिलोकधनी सु कहावत श्रीब्रजचंद बिहारी ;
लोक घटीं तै हठी को बचाउ कृपा करि श्रीवृषभानदुलारी । ८४

कौल तैं मुलामै कौन छवि कमलामैं तुलै फूलन तुलामें चढ़ी

प्रेम के पलामें है ; सेवै बसु जामैं छोड़-छोड़ निज धामैं सुरपालनकी बामें करैं पौन अचलामें है। रूपके भलामें देखी नन्दके ललामें हठी रति अवलामें कहा सोभा नवलामें है ; चन्दकी कलामें न चमंक चपलामें ऐसी ललित ललामें राधे करती सलामें है। ८५

सोहै सुररानी व्रजरानीके समीप हठी सुन्दर सुघर सुकुमार तन छोटै री ; एकै चौंर कीने एकै पानदान लीने एकै आवतकी ओरै करै अंचलकी ओटै री। एकै कर जोरै एकै करती निहोरै एकै गायके प्रवीनै मन प्यारीकी अगोटै री ; लूटैं सुख मोटै एकै सेवती निखोटै एकै बांधि-बांधि जोटैं कोटैं पाइन पलोटैं री। ८६

रम्भाको रमाको इन्दुमाको औ तिलोत्तमाको उमाको रमाको कोसमाको हठी भावरो ; कमलाको विमलाको नवलाको चपलाको सुखमाको उपमाको भलो चित चावरो। मैनकाको मोहनीको सची सत्यभामाहूँको रति रुकमनिजूको करिये निछावरो ; ताराको तरंगना को तरन कलाको ऐसे रूपनको रूप राधे रानी रूप रावरो। ८७

बड़ोई प्रताप बड़ोई सुहाग बड़ोई प्रभाव सुभाविक राखैं'
बड़ी गुनमान बड़ीयै सुजान सरूपनिधान पुरानन भाखैं।
बड़े बड़े देव दिवेसनकी घरनी सुख देखनको अभिलाखैं ;
बड़ी दिलदार बड़े बड़े हार बड़े बड़े बार बड़ी बड़ी आँखै। ८८

सुर रखवारी सुरराज रखवारी सुक संभु रखवारी रबि चन्द रखवारी हैं ; रिषि रखवारी बिधि वेद रखवारी गिरजाने करी कीरति की कीरति सुभारी है। दिग रखवारी दिगपाल रखवारी लोक थोक रखवारी गावैं धराधर धारी हैं ; व्रज रखवारी ब्रजराज रखवारी हठी जन रखवारी वृषभानकी दुलारी हैं। ८९

आउ आउ आली एक कौतुक दिखाउं तोहि बैठे एक सेज रति पतिको लजामैं री। कंजनकरन मनरंजनके मंजनको खंजन प्रभंजन को अंजन लगामें री। हेरत हराके हठी बोलत छबीली तव कुँनसे बजामैं पै परोसौ कछू पामें री ; बैठी दुरि कुँजन दिसा-सी देखि लीन्हीं मैं तौ फूलनके भोरन भमाकै पाय भामें री। ९०

बैठी है निकुँज राधे फैलत प्रभाके पुंज आस-पास केसर सुगन्धन सनी रहैं ; चाँदनी-सी चम्पक-सी चपला चमीकर-सी कमला सी विमला-सी नवला घनी रहैं। देखै ब्रजमाडिलीके लाड़िली के आगे हठी ठाढ़े कर जोरे ब्रजचंदसे धनी रहैं ; रम्भा-सी तिलोत्तमा सी मैनका-सी मोहनी-सी सची-सी सिवा-सी सबै सेवक वनी रहैं। ६१

हीरनके हार हिये मोतिन शिंगार किये बैनि औ छवान छिये व्याल दुति थोरो है ; सुन्दर रदन चारु चंद-से वदन बैठी सोभाके सदन वारौं मदनकी जोरी है। कोकिल-से बैन अरविन्द ऐसे नैन चलि देखिये गोविन्द बाल दीने भाल रोरी है ; सोहै वैस थोरी हठी रंभा रति कोरी अति गोरतन गोरी वृषभानकी किसोरी है। ६२

आलसी हौं कूर हौं कपूत भाँति भाँतिनको और न उपाय मेरे ध्याई मोहि कान्ह की ; करुना करोई हिये आपनोई जान हठी तैं तौ प्रानप्यारी सदा करुनानिधान की। दीननकी पाल लोकपाल दयासिन्धु तोकौं ध्यावत गुपाल जिन दावानल पान की ; सोसे नहीं मन मेरो दोसै नहीं काम राखे तेरेई भरोसे यहै वेटी वृषभान की। ६३

रुक्मनी-सी रति सी सची-सी सत्यभामा-सी तू भीषमकी मासी जमना-सी गौतमा-सी है ; रम्भा-सी रमा सी औ सुकेसी मंजुघोषा की-सी नवला-सी उमा-सी प्रमा-सी कीसमा-सी है। तारा-सी तरंगना-सी मैनका तिलोत्तमा-सी राधा महरानी हठी छविकी जमा-सी है ; कमला-सी कमल-सी नवला नवीन राजै छाजत छमापै इन्दुमा-सी चन्द्रमा-सी है। ६४

रमाको कहा है रति रम्भाको कहा है ए वखानै विधि चारो मुख चारो देव नौगुनो ; सचीको कहा है सत्यभामाको कहा है अरु चन्दको कहा है जामें राजत है औगुनो। चम्पाको कहा है चामीकर को कहा है चारु करके विचार निरधार हठी जौ गुनो ; राधे महरानी जूको रूप सब रूपन तैं दुगुनो है तिगुनो है चौगुनो है सौ गुनो। ६५

गिरिपति लागी मेरु मेरुपति लागी भूमि भूमि-पति सेस कोल कच्छ नीरचारी सौ ; दिगपति लागी दिगपालनके हाथ हठी सुरपति

लागी सुरपाल छत्रधारी सौं। दानपति करन करनपति लागी बलि बलिपति लागि कइलासके विहारी सौं; तीनों लोकपति ब्रजपतिसौ लगी है ब्रजपति पति लागी वृषभानकी दुलारी सौं। ६६

चांदनीके चौक बैठी चाँदनीके आभरन चम्पक बरन हठी ऐसी दुति कीकी है; मोतिनके हार गरै मोतिनसौं माँग भरे मोतिन सिंगार करै प्यारी प्रान पीकी है। ऐसी सुकुमारि वृषभानकी कुमारि और सबै रूप मोहिनीकी लागत रतीकी हैं; रमाते उमाते कौलमाते कीसमा ते इन्दुमाते परमाते चंद्रमाते चारु नीकी है। ६७

गतिपै गयन्द वारौं पग अरविन्द वारौं हठी अलि-वृन्द वारौं अलकन-फन्द पै; गुलफ गुलिन्द वारौं सीलतापै सिन्धु वारौं सकल सुगन्ध वारौं मुखकी सुगन्ध पै। कटिपै मृगेन्द्र वारौं तन छवि वृन्द वारौं वेनीपै फनिंदवारौं जात नदनन्द पै; ओठ जीववंधु वारौं हाँसी सुधाकंद वारौं कोटि-कोटि चन्द वारौं राधे मुखचंद पै। ६८

कीरतिकिसोरी वृषभानकी दुलारी राधा सहज सखीन लै निकुंजनको डगरी; चरनकी चौकीकी चमक चारु अंगनकी कैयो रंग रंगनकी जोति ब्रज बगरी। देखे पर द्वारे वारै तन-मन प्रान हठी रूप चकचौंधा रही चौंक सब नगरी; कैधौं सुखमा है कै दमा है कै तमा है, कै उमा है इन्दुमा है कै रमा है रूपअगरी। ६६

मनिन अटापै ठाढ़ी पुरट पटापै प्यारी रूपकी घटा-सी देखि रीभत गुपाल है; चरन-करनकी औ चमक आभरनकी तन अभरन कीसु फैली प्रभा लाल है। जकि रहे थकि रहे देखि चकचक रहे हठी नरनारिनकी ऐसो भयो हाल है; कैधों कछू ख्याल है कै मोहिनीकी जाल है कै लालनकी माल है कै मदन मसाल है। १००

गिरि की गोधन मयूर नव कुंजनको पसु कीजे महाराज नन्दके बगर को; नर कीजे तीन जौन राधे राधे नाम रटै तट कीजे बर कूल कालिंदी कगर को। इतने पै जोई कछु कीजिये कुंवर कान्ह राखिये न आन फेर हठीके भगर कौ; गोपीपद पंकज पराग कीजे महाराज तृन कीजे रावरेई गोकुल नगर को। १०२

श्रीसीतलदासजी

छप्पय

श्रीमहंत स्थान भूमि व्रज कोकिलवन पावन जन ;
श्रीव्रजेश्वर शरण हरण भव अर्प्यो तन मन ।
व्रह्म जीव संवंध तत्त्व वेदांत शास्त्वर ;
वरन्यो शुद्ध स्वरूप बिविध विधि वर विद्याधर ।
सीतलदास सु संतवर वरनौका त्रिगुणात्म नर ;
उधरे अर्नव-भव अवनि इन शिक्षा-मग पग सु धर ।

व्रजमंडलमें श्रीनिंबार्क-संप्रदायकी व्यापकता प्राचीनकालसे पाई जाती है । यही संप्रदाय ब्रजवासियोंकी परंपरा-प्राप्त स्वधर्म है । एक इसी संप्रदाय के तिलकको व्रजवासियोंने अनभिज्ञ और स्व-सिद्धान्त-परिचय-रहित-अवस्थामें भी अपनाया है । क्योंकि आद्याचार्य श्रीनिंवार्कभगवान्ने, उपास्यदेव श्रीराधा-कृष्णके संबंधसे ब्रजमंडलमें ही निवास किया था, जिनका प्रभाव श्रीनारायण कर-कमल-स्थित पूर्ववपु-श्रीसुदर्शन-छटावत् ही भूमंडलपर अधर्म-दमन, धर्म-संस्थापन-रूपमें विस्तृत था । जन्मेजयादि विश्वविजयी-नृपति, और लाखों प्रजागण, जिनकी उपदेशमृतको पानकर कल्याण-पथपर अग्रसर हुये थे ; क्योंकि वह समय भी धार्मिक और राजनैतिक उथल-पुथलसे उद्विग्न था । भाष्यकार आचार्य श्रीनिवासाचार्य राधाकुंडपर निवास करते हुये अगणित जीवोंको कल्याण-कृत्यमें लगाये थे । इसीप्रकार मध्यकालमें भी श्रीश्रीभट्टजी, श्रीहरिव्यासदेवजी आदि आचार्यपाद एवं इनके प्रभावशाली शिष्यों-द्वारा जीवोंका उद्धार और मध्यकालीन-प्रथानुसार धर्मरक्षाके निमित्त अनेक स्थान निर्माण हुये । उनमेंसे ही एक प्रसिद्ध-स्थान 'कोकिलावन' है जो इस संप्रदायके प्राचीन महानुभावोंकी कीर्ति-स्तम्भ है । यह स्थान नंदग्रामसे तीन मीलकी दूरीपर स्थित है । आसपासके सघन वृक्षावलियोंकी रमणीकता, एकांतता, नीरवतासे भावुक—मानव-मन सहजमें ही प्रफुल्लित हो उठता है । वह पवित्र स्थल, जन्मभरके लिये हृदयमें स्थान वना लेता है ।

इसी सुरम्य-स्थलके प्रसिद्ध स्थानमें महंत श्रीसीतलदास हुये थे, जो लगभग चार-पाँच पीढ़ी प्रथम इस स्थानके महंत-पदपर आरूढ़ थे, जिसे १२० वर्षके लगभग हुये। अनेक प्राचीन वाणी एवं काव्यकर्ता-कवियोंके समान ही इनकी भी जन्मभूमि और मातापितादिका नाम अज्ञात है। इनके द्वारा निर्मित अभीतक एक ही ग्रंथ उपलब्ध -जिसका नाम 'वेदान्तसार' है। इस ग्रंथसे इनके दार्शनिक-विचार और विद्वत्तापूर्ण काव्याकलाका परिचय मिलता है। इस संप्रदायमें ये अपने सिद्धान्तका पहला ही कवि हैं। इन्होंने इस ग्रंथके द्वारा द्वैताद्वैत-सिद्धांतका संक्षिप्त परिचय देते हुये दोहे-कुंडलियोंमें अच्छा दिग्दर्शन कराया है। गीता उपनिषद् और ब्रह्मसूत्रके सार-स्वरूप इस ग्रंथकी रचना हुई है। ये संसार-समुद्रसे पारेच्छुक जिज्ञासुओंके लिये दार्शनिक विचार-मार्गही सर्वोपरि समझते हैं—

> प्रत्येक तत्त्व विचार पुनि माया-तत्त्व विचार;
> ब्रह्मतत्त्व सबंध लखि जो चाहै भवपार।
> चेतन-तत्त्व विचार कर आन तत्त्वको त्याग;
> ब्रह्मतत्त्वमें सुख लहौ जो चाहौ बड़ भाग।

मनुष्यको प्रत्येक तत्त्वको विचारकी शक्ति प्राप्त करनी चाहिये। बिना तत्त्व-ज्ञानके जीवनको अध्यात्मिक—साँचेमें ढालना और कल्याण-मार्गकी प्रक्रिया प्राप्त होना असंभव है। इसलिये संसार-समुद्रसे पार होना चाहे, उसे माया क्या है? ब्रह्म क्या है? जीवके साथ इनका परस्पर क्या संबंध है? अवश्य जानना चाहिये, और इसपर विचार करनेकी आवश्यकता है। जीव और परमात्मा, ये दोनों चेतन-तत्त्व हैं, इनके संबंधका अध्ययन करते हुये, अन्य तत्त्वको परित्याग कर देना चाहिये, केवल एक ब्रह्म-तत्त्वही सुखदाता है।

इनके द्वारा निर्मित 'वेदांतसार-नामक ग्रंथ कोयलादेवाके महंतजीने वृन्दावनस्थ पं० किशोरदासजी—महाराजकी सहायतासे छपवाकर वितरण करवाया था। हिन्दी जानने वाले वेदान्त-प्रेमियोंके लिये यह ग्रंथ अति उपयोगी है। इसके १०४ दोहे और कुंडलियां यहां उद्धृत करते हैं—

[वेदान्तसार]

सनकादिक पद-कमलकी रजकूँ बन्दों नित्य ;
तीन ताप नासक सदा, ज्योति-तिमिर-आदित्य ।१
सुर, रिषि-पद बंदन करूं, निंवारक-पद ध्याय ,
मंगल-मूरति हृदय धरि, श्रीगुरु-पद सिरनाय ।२
भक्ति, ज्ञान वैराग्यके, ए आचारज—राय ;
भव-सागर उतरे वहू, इन पदको सिरनाय ।३
बिना ज्ञान कल्यानकूं वाँछित है मतिमंद ;
ज्यों वायू आकासकूँ घटमैं राखै बंद ।४
गीताको उपदेश है उपनिषदको भाव ;
ब्रह्मसूत्रको सार है, सो बरनत करि चाव ।५
प्रत्यक् तत्त्व विचार पुनि, माया-तत्त्व विचार ;
ब्रह्म-तत्त्व संबंध लखि जो चाहै भव-पार ।६
चेतन-तत्त्व विचार कर आन तत्त्वको त्याग ;
ब्रह्म-तत्त्वमें सुख लहो, जो चाहो बड़भाग ।७
दुर्ल्लभ मानुषजन्म है, सहज मिल्यो है मीत ;
विषमवासना त्यागकर हरिमें राखौ चित्त ।८
अरे मूढ़ ! भूले मती विषय—बासना हेत ;
ज्यों कुत्ता घर-घर फिरै टूक-टूकको लेत ।९
मनुष जन्मको पायकर कियो न तत्त्व विचार ;
आतमघाती होय वह वेद कियो निरधार ।१०
मनुष जन्म सतसंग कर फेर विषयकी चाय ;
स्वान वसन करिके यथा उलटि वाहि कूं खाय ।११
यातेसब सुखछांड़िके ब्रह्मादिकको लोक ;
त्वम्पदको निरधारकर तत्पदमें मन रोक ।१२
द्वैत विना अद्वैत नहिं ताविन द्वैत न होय ;
स्वाभाविक संबंध लखि श्रुति वरनत है दोय ।१३

एक अपेक्षित एक है निरपेक्षित नहिं होय
भयो ज्ञान संबंध को झगड़ो ठाढ़ो दोय । १४

जीव-तत्त्व वर्णन]

प्रत्यक् माया ब्रह्म पुनि नित्य तत्त्व है तीन ;
प्रत्यक् तामें कहत हैं जानो मति-परवीन । १५
पाँचभूतकी देह ते न्यारो तेरो रूप ;
न्यारौ इन्द्रिय-वर्गते ज्यों छायाते धूप ।
ज्यों छायाते धूप रूप इनको है न्यारौ ;
या विधि मन अरु बुद्धि प्रान छाया निरधारौ ।
ये सब हैं जड़वर्ग कार्य मायाके जानौ
धूप रूप है आप सदा चैतन्य बखानौ । १६
अहं अर्थ को रूप है ज्ञाता ज्ञान-स्वरूप ;
देह-देह प्रति भिन्न है अगणित अणु-स्वरूप ।
अगणित अणु स्वरूप एक कचके सत भागा ;
तिन भागनके माहिं एकके पुनि सत भागा ।
तैसी तेरो रूप अंस तू पारब्रह्म को ;
ब्रह्मात्मक है व्याप्य सदा आधेय ब्रह्मको । १७
चारि अवस्था माहि तू हरिके है आधीन ;
स्वाभाविक या विधि कह्यौ सब वेदनमें चीन ।
सब वेदनमें चीन तीन इनके परकारा ;
नित्य मुक्त पुनिनित्य बद्ध अरु बद्ध मुक्त है न्यारा ।
बद्ध-मुक्तके जोग्य अनादि-कर्म-वस होहीं ;
मायाके वस होय परयो भवसागर सोहीं । १८
निर्हेतुक जब कृष्णकी कृपा जो तोपर होय ,
कपट त्यागि आचार्यके सरनागति जब होय ।
सरनागति जब होय कृपा यापै भई हरिकी ;
छूटो माया-फन्द खबर भई अपने घरकी ।
देहादिकको जान आपको न्यारौ मानै

तब आपामें आप रूप अपनो पहिचानै । १९
मैं नाहीं जड़वर्गमें अविनासी अज नित्य ;
पारब्रह्मको अंस है ज्यों किरणन आदित्य।
ज्यों किरननि आदित्य किरन रविको संबंधा ;
भेदाभेद विचार कला जस मानौ चन्दा।
अर्चिरादि-पद जाय पाद हरिको जो पाऊं ;
विरजा उतरूं पार कृष्ण-पदमें सिर नाऊं। २०
या विधि आप विचारि कर कृपा कृष्णकी जान ;
जाग्रत स्वप्न सुसुप्तिमें अहं अर्थ करि मान।
याको स्वप्न जाग्रतमें बिषयनको संबंध
आप भुलानो आपकूं सुखमें सूतो अंध ।
सुखमें सुतो अंध कछू फिर मैं नहिं जान्यौ ;
या विधि आपो आप सुषुप्ती माहिं बखान्यौ। २१
सुखको जिन अनुभव कियो सो तेरो है रूप ;
करण-वर्ग कूं पाय कर फिर भूले मति भूप।
फिर भूलै मति भूप सबै बर्गनको तू है ;
नहिं इनके आधीन तिहारे सदा पियू है।
प्रतिबिम्ब नहिं होय भ्रान्ति तोकूँ नहिं भाहीं
सदा एक रस-रूप दीप ज्यों घटके माहीं। २२
ज्यों घटते न्यारो भयो वह दीपक-परकास ;
दूर भये अज्ञानके आत्माको नहिं नास।
आत्माको नहिं नास जन्म वृद्धि नहिं होई ;
षड़विकार जड़ माहिं विकारी याते सोई।
निर्विकार है आप भोग सबही को भोक्ता ;
करणनके आधीन करण बिन रहे अभोक्ता। २३
त्वम्पदको जो वाच्य है प्रत्यक सो निर्लेप ;
ताहीको वरणन कियो जानोगे संक्षेप । २४
त्वम्पदको वाच्य है कृष्ण ब्रह्म आनंद ;

जिज्ञासा ताकी करो क्यों भूले मतिमंद। २५

[ब्रह्म-वस्तुरूप]

श्रवननकर मनमें धरौ ध्यान करौ हिय माहिं;
फिर फिर पूछौ गुरुन ते ब्रह्म होहिं किहि ठाहिं। २६
गुरुके वचन विचारि कर देखो आपा माहिं;
प्रेरक है सब जगतको लिपे न ताही माहिं। २७
जन्म भंग पालन करै भुक्ति मुक्तिकी खान;
बेद सबै वर्णन करै सो वामें परमान। २८
निर्गुन सगुन स्वरूप यह निराकार साकार;
अनुमान मन वचनते है मायाते न्यार। २९
जाके इक्षण-मात्रते सब जगको विस्तार;
निरालेप आकास ज्यों सब वस्तुनको सार। ३०
प्राकृतगुन वामें नहीं याते निर्गुण सोय;
दिव्य-गुननकी खान है श्रुती सगुनमें होय। ३१
माया-कृत आकार नहिं वामें सब आकार;
शास्त्र-दृष्टि करि देखिये है सबको आधार। ३२
विश्व सबनको जानिये एक नियन्ता आप;
सब नियम्य वाके लखो मनो पुरुषके चाप। ३३
जड़-चेतन सब वस्तुमें अन्तःवर्ती जान;
लिपैं नहीं प्रेरक सदा विश्व-तदात्मक मान। ३४
तादात्म्यत्मक संबंध कर भिन्नाभिन्न-स्वरूप;
कृष्ण ब्रह्म वर्णन कियो याते पर नहिं रूप। ३५
नेति-नेतिकै विषयते न्यारो कृष्ण-स्वरूप;
भूयस्कर वर्णन कियो सो गोपाल अनूप। ३६
या विधि ब्रह्म-स्वरूपको वर्णन कियो संक्षेप;
वेद-वचन वामैं वसैं न्यारो नहिं निर्लेप। ३७

[माया-स्वरूप]

मायाको बर्णन करूँ जाके वस ये जीव;

भूलो ब्रह्म-स्वरूप को ज्यों शिशु वाला पीव । ३८
मायातें महतत्त्व भयो हरिके इच्छा द्वार ;
अहंकार ताते त्रिविध सत, रज, तम निरधार । ३९
तामसके हैं जानिये भूमि तेज आकास ;
वायू, जल, ये पाँच हैं माया अपने पास । ४०
गंध, रूप, अरु शब्द है स्परस रस ये पाँच ;
सूक्ष्म कारण रूप है प्रगटित विषये साँच । ४१
भूतनते ये तन भयो भूतनते ब्रह्माण्ड ;
जो कछु दीखै आंखते पाँच भूतको भाण्ड । ४२
सप्तलोक ऊपर रचे अधो लोक है सात,
जोजन नभ पाँचौ लखौ गोलाकार सुहात । ४३
वाहिर आवर्ण साततै पुनि लपट्यो है गोल ;
ब्रह्मा याको जीव है आगम बर्ण्यो खोल । ४४
राजसते इन्द्रिय भई ज्ञान कर्म दस जान ;
मन औ इनके देवता ये सात्विक परमान । ४५
चार रूप मनके भये मन, बुद्धि, चित, अहंकार ;
ये सब मिलि रचना कियो नानाविधि संसार । ४६
माया-रचित सुहावनौ वरन्यो मैं संक्षेप ;
बिन त्यागे वाधे सुही ज्यों माखीको चेप । ४७
माया-कृत जो है कछू सो सब त्यागन-जोग ;
अविनासीको वस कियो जबते है संयोग । ४८
जो कछु मैं वर्णन कियो सब है काल अधीन ;
ताहीको बर्णन करूं जानो मति-परबीन । ४९
लवक्षण घटिका याम पुनि पक्ष मास अरु ऐन ;
सम्पत कर आयू हरै काहू कूं नहिं चैन । ५०
मानुष आयु वर्ष-सत ब्रह्मा ता परमान ;
अपने-अपने वर्षते सब सत वर्ष प्रमान । ५१
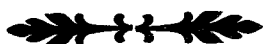
महादाजी-सिंधिया

छप्पय

परमभक्त अभिराम स्याम लीला बहु गायक ;
रचि सुठि छन्द अनेक महान सुकवि पद पायक ।
धर्म मूर्ति राजर्षि प्रेम मधि श्रीहरि संतहिं ;
भूप्रद मन्दिर देव स्वचित तजि धर्म न अन्तहिं ।
युगल उपासक रसिकवर नृपति महादाजी भये ;
अवनि सुस्वर्ग सम्हारि सुख उभय लाह निज तन लये ।

महाराजा महादाजी-सिंधिया भारी भक्त एवं कवि थे। ब्रज, जब ग्वालियरके आधीन था, तब इन्होंने सहस्रों वैष्णव स्थानोंको लाखोंकी जीविकायें प्रदान की। ये निम्बार्क–संम्प्रदायान्तर्गत टट्टीस्थानके महन्त तथा प्रसिद्ध महात्मा श्रीललितमोहनीदेवके परम कृपापात्र दीक्षित थे, अथवा गुरुवत् मानते थे— जो टट्टीस्थानके गद्दी पर सं० १८२३ से १८५८ तक विराजमान थे। श्रीसहचरिशरण-द्वारा निर्मित ललितप्रकाशके एक प्रसंगसे श्रीललितमोहिनीदेवमें ऊंचा भाव एवं परस्पर स्नेह का परिचय मिलता है। वह प्रसंग यह है—

"नाम महाजी सिंधिया बृन्दाबन बिच आय ; श्रीगुपाललीला करी परम प्रीति दरसाय। बृन्दावनमें सिंधियाजीने रासलीला करवाई, जिसमें बड़े-बड़े संत-महंत एकत्रित हुए सिंधिया श्रीललितमोहनीजीको लानेकेलिये स्वयं गये। इन्हें पालकीमें बैठाकर स्वयं भी कंधा लगाया। तब स्वामीजीने कहा- "छोड़िके पालकी पालकीमें चढ़ो प्रेमकी लीक हो नीक आगे बढ़ो।" तब उनकी आज्ञानुसार आप भी बैठ गये। रास-समारोहमें आनेपर स्वामीजी सर्वोपरि आसनपर बैठाये गये। वहाँ रसिकबिहारीजीके महंत गोवर्द्धनदेवको भी सदार भेजकर बुलवाये, और रासमें सबने अनीर्वचनीय आनन्द उठाया। सहचरिशरणदेवजीने रासलीला वर्णन करते हुये लिखा है--

महान प्रेम सो सुजान कृष्णलीला रुचिर राधिका समेत सब गोपिका बनी ठनी ; मृदंग ताल बीन लै प्रवीनते बजावहीं रसाल वेनु किन्नरी उपंग तान त्यों तनी। सभाप्रभा अनेकधा विनोद भांति भाँति की सुसिंधियाहि की प्रतीति प्रीति रीतिहू घनी ; कृपानिधान मोहिनी निहारिके प्रसन्न भा गिरा गंभीर उच्चरी खरी मनो सुधा सनी।

रासपंचाध्यायी-लीलाका दर्शनकर समस्त दर्शक अति प्रसन्न हुये। सिंधियाजीने रासविहारीजीकी प्रेम-पूर्वक भेट-पूजा की, तत्पश्चात् स्वामीजीको सादर स्थानमें पहुंचाया।

इससे भी विदित होता है कि तत्कालिन महात्माओंमें श्रीललितमोहनी-को सर्वापेक्षा बहुत अधिक मानते थे, और उन्हींके अनुरोधसे कृष्णभक्त वैष्णव हुये। इन्हीं टट्टीस्थानीय महानुभावोंके प्रभावमें आकर श्रीराधाकृष्ण भक्ति एवं लीला विषयक कविता भी करने लगे। सं० १८२८ के लगभग कविता-काल है। मिश्रबंधु-विनोदमें इनका परिचय इस प्रकार लिखा है—

'ये प्रसिद्ध सिंधिया बड़े अच्छे कवि थे। नित्य कविता बनाते थे। हिन्दीमें भी इन्होंने कविता की है। इनकी कविताका संग्रह 'माधवविलास' के नामसे निकला है। इन्हींके समयमें सोहिरोबानाथने भी हिन्दीमें कविता की है। साहित्य-समालोचकमें इनकी कविता छपी है। उदाहरण इसप्रकार है—

अरी बँसुरिया कान्हकी छल तुम कीन्हों कौन ?
उन अधरन लागी रहै हम चाहत हैं जौन।

महाराजा छत्रसाल

छप्पय

छत्रसाल पतिछत्र वीरवर वारक बाँके ;
सके न पार अपार यूथपति मुगलन हाँके।
भक्त, कवि, गुण गुणी ग्राह्य सादर अपनायो ;
प्राणनाथ शिष्यता पाय माधव जस गायो।
राज सु वैभव भूप बहु मानि शरन जन आन नहिं ;
दानी वीर प्रचण्ड अस इन सम यही न और कहिं।

विश्व-विख्यात पन्ना-नरेश महाराज छत्रसालजी का जन्म संबत् १७०६ में हुआ था। ये सहृदय महाराज, वीरता, और दानशीलतामें कर्णकी समानता करते थे, इनके पिताका नाम चंपतिराय था, और एक बुंदेला क्षत्री सरदार थे। इनका जन्म एक साधारण-घरानेमें हुआ था ; किन्तु मुगल-सम्राट औरंगजेब से लड़ते हुए अपार पराक्रम प्राप्त कर दो करोड़ वार्षिक रुपये आय का विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिया था। इनसे बड़े-बड़े युद्धोंमें मुगलोंकी विशाल सेनायें परास्त हुईं।

जिसप्रकार महाराज छत्रपति शिवाजीपर , समर्थ गुरु श्रीरामदासजी की पूर्णकृपा थी, और कहते हैं इन्हींकी कृपासे महाराज जय लाभकर सके, वैसेही महाराज छत्रसालपर प्रसिद्ध श्रीप्रणामी-धर्म-प्रवर्तक श्रीप्राणनाथजीकी पूर्ण कृपा थी महाराजा श्रीप्राणनाथजीके ही शिष्य थे, यह प्रणामी-धर्म-जगतमें प्रसिद्ध है। प्राणनाथजीका भी अभ्युदय-काल इन्हींके समयमें हुआ था, इन्होंने बुंदेलखण्डमें सुसंगठित जातीयता जागृत की थी। महाराजको हीरे की खान भी यही बताये थे। पन्नामें अभीतक गद्दी स्थापित है और पूजा होती है।

महाराज जिसप्रकार शूर थे, वैसेही दानी और साहित्य-प्रेमी भी थे। कहते हैं, एकबार उत्साहित होकर भूषण-कविकी पालकी के डंडासे अपना कंधा लगाया था, जिसपर भूषणने प्रसन्न होकर कहा कि—'शिवाको वखानौं कि बखानौं छत्रसालको।' और छत्रसाल-दशककी रचना की ऐसेही बड़े-बड़े कवियोंने इनकी कीर्ति-कीर्तन किया है, जिनमें लाल कवि सर्वोपरि हैं। इन्होंने छत्रप्रकाश में महाराजका विस्तृत चरित वर्णन की है।

ये महाराज स्वधर्मानुसार पूर्ण-भक्त एवं ब्रजवासी श्रीकृष्णके पूर्णप्रेमी थे, और बहुत सुंदर कविता करते थे। इनका कविता-काल संवत् १७३० के लगभग है। श्रीवियोगीहरिजीने एक छत्रसाल-ग्रन्थावलीके नामसे रचनाओंकी

संग्रह प्रकाशित करवाया है। इनका स्वर्गवास संवत् १७८८ में हुआ था। इनके द्वारा निर्मित कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं—

[छप्पय]

इच्छा दै अच्छरनि सिषिय ब्रज माह वसाइय ;
वालविलास दिखाइ रास-रस-रंग रमाइय।
अच्छरको परतत्त धाम लीला दरसाइय ;
सखियन विरह जनाय जोगमाया उड़साइय।
सुर मैं भ्रमाइ भ्रमनाल मैं लाल हेरि प्रेमनि पग्यउ ;
सखियन समेत छत्रसाल उर जुगलरूप जग-जग जग्यउ।१

[कवित्त-सवैये]

ध्यानिनमें ध्यानी और ज्ञानिनमें ज्ञानी अहौं पंडित पुरानी प्रेमवानी अरथाने का ; साहवसों सच्चा क्रूर कर्मनिका कच्चा छत्ता चंपतको बच्चा सेर सूरवीरवाने का। मित्रनको छत्ता दीह सत्रुनको कत्ता सदा ब्रह्म-रस-रत्ता एक कायम ठिकाने का ; नाहीं परवाही न्यारा नौकिया सिपाही मैं तो नेही चाह चाही एक स्यामा-स्याम पाने का।२

लाख घटै कुल साख न छाड़िये वस्त्र फटै प्रभु औरहु देहैं ;
द्रव्य घटै घटना नहिं कीजिये देहैं न काऊ पै लोक हँसैहैं।
भूप छता जलराशिको पैरिवो कौनिहुवेर किनारे लगैहैं ;
हिम्मत छोड़ैते किम्मत जायगी जायगो काल कलंक न जैहैं।३

कायरके पानिमें कृपान कहा काम करै गगन सुफूल काहु देखे नहिं सुने हैं ; कृपन हुलास वार नारिको विलास जैसे जीगनि-प्रकास प्रेत पायक गुने हैं। बनिया को क्रोध जैसो ऊसरको खेत तैसो घुसरको घास बोय कहौ कौन लुने हैं ; छत्रशाल श्यामविन आन काम कैसे जैसे सेमरको सेय सुवा भुवा भरि धुने हैं।४

चाहौ धन धाम भूमि भूषन भलाई भूरि सुजस सहूर जुत रैयतको लालियो ; तोड़ादार घोड़ादार वीरनसों प्रीति करि साहससों जीति अँग खेतसे न चालियो। सालियो उदंडनिको दंडनिकौ दीजै दंडि करिकै घमंड घाव दीनपै न घालियो ; विन्ती छत्रसाल करैं होय जो नरेश देश रैहैं न कलेस जाये मेरो कस्यो पालियो।५

—— ❀ —— ——

श्रीलाल-कवि।

छप्पय

वीर भक्त कविराज सुजस निज नृप पद रक्षक;
छत्रसाल महाराज राज स्वतंत्र पक्ष पक्षक।
राज-धर्म धर कृष्ण-कृपा पद प्रेम-सुगायक;
रसना भक्ति विशेष सीरसर आनँद-दायक।
लाल लाल मनो कविन मथि चुनि चौपाई छंद रचि;
हुई न इन सम छंद छवि कियो अपर बहु विविध पचि।

श्रीलाल-कवि सुप्रसिद्ध महाशूर पन्नानरेश महाराजा छत्रसालके यहाँ रहते थे। ये महाराज इनका बड़ा आदर करते थे। मऊ (बुंदेलखण्ड) के निवासी थे, अथवा वहाँ इनकी जन्मभूमि ही थी। इन्होंने अपने कुल जाति एवं निवासस्थानके विषयमें स्वयं कुछ भी नहीं लिखा है। इनका विशेष परिचय शिवसिंहसरोजमें भी नहीं है, केवल इतना लिखा हुआ है कि 'बूंदीके महाराजा छत्रसालके यहाँ एक साम कवि थे।' मिश्रबंधु-बिनोदमें लिखा हुआ है कि 'छत्रप्रकाशके रचयिता लाल महेवा एवं पन्नाके महाराजा छत्रसालके यहाँ थे। महेवा छत्रपुरके अन्तर्गत मऊसे मिला हुआ एक छोटासा ग्राम है।

बीकानेर-निवासी गोस्वामी उत्तमलालजी भट्ट अपनेको इनका वंशज बताते हैं। और इनका पूरा नाम गोरेलाल भट्ट कहते हैं,किन्तु गोरेलाल भट्ट अन्य कवि थे। इन्होंने अपना परिचय स्वयं ही नहीं दिया। प्रणामीधर्मवाले लालजीको तत्कालीन प्रसिद्ध धर्म प्रचारक तत्स्थानीय राजगुरु श्रीप्राणनाथजीका अनुयायी बताते हैं। जो हो, लालजी राजधर्मके अनुयायी स्वदेशभक्त थे, उस समय पन्नामें प्राणनाथजीके ही धर्मका बोलबाला था, और छत्रसाल महाराज उनके शिष्य थे। वहाँ धार्मिक रूपमें जातीयता जागृत करनेवाले वही थे। प्राणनाथजीकी श्रीकृष्ण-भक्ति-सिद्धान्त एवं उपासना लालजीमें पूर्णत: पाई भी जाती है।

इनके द्वारा निर्मित तीन ग्रंथ लिखे हैं—(१) छत्र-प्रकाश, (२) राज-विनोद एवं (३) विष्णु-विलास। इनका सबसे प्रसिद्ध छत्रप्रकाश ही है। यह इन्होंने स्वयं महाराजकी आज्ञासे लिखी है। इस ग्रंथमें छत्रसालका सं० १७६४ तकका युद्ध साम्राज्य स्थापित, मुगल सेना पराजित, एवं अन्य घटनाओंका कथा-प्रसंगके ढंगपर वर्णन है, किन्तु महाराज छत्रसाल संवत् १७९० तक विद्यमान थे। इससे विदित होता है कि, यह ग्रंथ अपूर्ण है, अथवा महाराजके वैकुंठ-वाससे प्रथमही इनका स्वर्गवास होगया। महाराज छत्रसालके २७-२८ वर्ष विद्यमान-कालका वृतांत इसमें नहीं मिलता।

इन्होंने महाराजका जन्म इसमें १७०६ लिखा है। छत्रप्रकाश ऐतिहासिक ग्रंथोंमें एक महत्वपूर्ण-स्थान रखनेवाला ग्रंथ है। इसमें समस्त घटनायें ब्योरेवार निश्चय रूपसे ठीक-ठीक वर्णन हैं। संबत् प्रभृतिभी इतिहाससे मिलते हुये हैं, अशुद्ध नहीं है। स्वामीभक्त ग्रंथकर्ता अपने नायकका अवगुण लिखनेमें साहस नहीं करते, किन्तु इन्होंने छत्रसालके युद्धसे भागनेका स्पष्ट वर्णन किया है। हिन्दीसाहित्यका-इतिहासकर्त्ता छत्रप्रकाशके आलोचनामें लिखते हैं—

'ग्रंथकी रचना प्रौढ़ और काव्य गुण युक्त है। वर्णनकी विसदताके अतिरिक्त स्थान-स्थानपर ओजस्वी भाषण हैं। लालकविमें प्रवंध पटुता पूरी थी। सबंधका निर्वाह भी अच्छा है और वर्णन-विस्तारके लिये मार्मिक स्थलों का चुनाव भी। बस्तुपरिगणन द्वारा वर्णनोंका अरुचिकर विस्तार बहुतही कम मिलताहै। साराँश यह कि लालकविका-सा प्रबध कौशल हिन्दीके कुछ इने-गिने कवियोंमें ही पाया जाता है। शब्दवैचित्र्य और चमत्कारके फेरमें इन्होंने कृत्रिमता कहींसे नहीं आने दी है। भावोंका उत्कर्ष जहाँ दिखाना हुआ है वहाँ भी कविने सीधी और स्वाभाविक उक्तियोंका ही समावेश किया है। न तो कल्पनाकी उड़ान दिखाई है और न ऊहाकी जटिलता। देशकी दशाकी ओरभी कविका पूरा ध्यान जान पड़ता है। शिवाजीका जो वीरव्रत था—वही छत्रसाल का भी था। छत्रसालका जो भक्तिभाव शिवाजी पर कविने दिखाया है तथा दोनोंके सम्मिलनका जो दृश्य खींचा है, दोनों इस संबंधमें ध्यान देने योग्य है।

श्रीलालकविने छत्रप्रकाशमें बुंदेलवंश वर्णन, वंशावली, चंपतिरायकी विजय और अन्तमें मरनेपर दुर्भाग्यवश,राज्य मुगलोंके हाथमें जाना, और छत्रसालका २५ सवारोंको लेकर मुगलसेनाका सामना करना, एक-एक करके मुगल सेनापति दागी, रणदूलह, रूमी, तहौवरखाँ शेखअनवर, सदरुद्दीन, अब्दुलसमद, शेरअफगानखाँ और शाहकुलीको परास्त करके विशाल सम्राज्य स्थापित और अंतमें मुगलोंसे संधि, विस्तृतरूपसे वर्णन हैं। यह ग्रंथ ऐतिहासिक विशेषता काव्य गुणको लेकर अति उत्तम बना है। इनके समान चौपाई रचना करनेमें गोस्वामी तुलसीदासजीके सिवाय और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। ये महाराज छत्रसालके संग लड़ाइयोंमें भी जाते थे, कहते हैं कि ये किसी युद्धमें ही वैकुंठवासी हुये। इनके अन्य ग्रंथ विष्णु-विलासमें नायिकाभेद और राजविनोदमें श्रीकृष्णलीला वर्णन है। राजविनोदका एक कवित यह है—

पलँगकी पाटी गहे हाल हाल हुलसत वाजत नूपुर जब सुनत हैं पाँय को; लाल कहे ललित खिलौना लहें हरषत निरखत सुमन सुभाय सिरनाय को। नँदजूके मन्दिर अनँदमय ब्रह्म देखो खेलत स्वरूप धरे बालक सुभाय को; हूँ करत हाँ करत गँू करत गाँ करत ता करत ताकत किलकि मुख माय को।

छत्रप्रकाशके कुछ चौपाई उद्धृत करते हैं—

दान दया घमसान मैं, जाके हिये उछाह;
सोई बीर बखानिये, ज्यौं छत्ता छितिनाह।

तिनमैं छिति छत्री छवि छाये; चारिहुँ जुगन होत जे आये।
भूमिभार भुज दंडनि थंभे; पूरन करैं जु काज अरंभे।
गाय वेद दुजके रखवारे; जुद्ध जीतिके देत नगारे।
छत्रिनकी यह वृत्ति बनाई; सदा तेगकी खाय कमाई।
गाय वेद विप्रन प्रतिपालै; घाउ ऐंड़धारनि पर घालै।
उद्यम ते संपति घर आवै; उद्यम करै सपूत कहावै।
उद्यम करै संग सब लागे; उद्यम ते जगमैं जसु जागै।

श्रीवृन्दजी

छप्पय

रचि दोहा सुठि विविध नीतिहद वर्णन कीन्हें ;
करि संग्रह सतसई रत्न बहु जगतहि दीन्हें ।
चमत्कार भरि उक्ति सुरचना सुंदर सुख-प्रद ;
निज उद्देश्य कहि पूर्ण पहुँचि निज पथ मंजिल हद ।
वृन्द सुकवि निज देश मधि सामाजिक-पथ-स्वच्छ करि ;
पुनि पायो पद भक्त सद हंस संप्रदा सुयश धरि ।

वृन्दजीका जन्म मेरता (जोधपुरस्टेट) में हुआ था, ये सलेमाबाद (परशुरामपुरी) गद्दीके शिष्य थे, सलेमाबादमें वृन्दसतसई इनके द्वारा हस्तलिखित प्रति हमने देखा भी था। रूपनगर नरेश, महाराज राजसिंहसे इनकी बड़ी भारी मित्रता थी, कहते हैं कि महाराज सं० १७६१ में जब औरंगजेबकी फौजके साथ ढाका गये थे, तो ये उनके संग विद्यमान थे। वृन्दसतसई प्रकाशित भी हो चुकी है। इनकी रचना बहुत अच्छी हुई है, इन्होंने सतसईमें सातसौ नीति-विषयक दोहे मानो निलिज्ञोंके लिये रत्न एकत्रित कर दिये हैं। ये दोहे नीति-विषयक जनश्रुति अथवा कहावतके अधारपर रचे हैं। विशेषतः ऐसी ऐसी सूक्तियें सुकवियोंके हृदयकी उपज होती हैं। बहुतसे संस्कृत नीति-ग्रंथोंके श्लोकोंका उलथा भी कर देते हैं। इनकी रचना ब्रजभाषामें है। दोहे बहुतही शिक्षाप्रद धारण करने योग्य हैं। विहारीसईको छोड़ और सतसईसे इसमें विशेषता है, और प्रतिष्ठा भी। जनतामें भी इनके दोहे कहावत-रूपमें प्रचलित हैं और यत्र-तत्र पुस्तक पुस्तिकाओंमें उद्धृत हो चुके हैं। मिश्रबन्धु विनोदमें इनका सं० १७४२ के लगभग है। 'भावपंचासिका' और 'सिंगार शिक्षा' इनके दो ग्रंथ और भी खोजके द्वारा उपलब्ध हैं। खोजमें श्रृंगार-शिक्षा का सं० १७४८ लिखा है। (दि० त्रै० रि०) भावपंचासिकाका निर्माण काल सं० १७४३ है। सतसईसे कुछ दोहे उद्धृत करते हैं—

[दोहा]

फीकी पै नीकी लगे करिये समय विचारि ;
सबको मन हरषित करैं ज्यों विवाहमें गारि ।
सो ताके औगुन कहै जो जेहि चाहै नाहिं ;
तपित कलंकी विषभरयो विरहिनि ससिहि कहाहिं ।
सुखदाई जो देत दुख सो सब दिनको फेर ;
ससि सीतल संजोगमें तपत विरहकी वेर ।
भले बुरे सब एक सम जौलौं बोलत नाहिं ;
जानि परत है काग पिक रितु वसंतके माहिं ।
हितहूकी कहिये न तेहि जो नर होय अबोध ;
ज्यों नकटेको आरसी होत दिखाये क्रोध ।
सबै सहायक सबलके कोउ न निबल सहाय ;
पवन जगावत अगिनिको दीपहि देत बुझाय ।
उद्यम कबहु न छोड़िये पर आसाके मोद ;
गागरि कैसे फोरिये उनये देखि पयोद ।
छल बल समय विचारिके अरि हनिए अनयास ;
कियो अकेले द्रोनसुत निसि पाँडव कुल नास ।
विपति बड़ेही सहि सकै इतर विपति ते दूर ;
तारे न्यारे रहत हैं गहत राहु ससि सूर ।
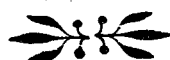
श्रीकिशोरीदासजी

छप्पय

श्रीहरिव्यास-पद-पद्म प्रीति अति सेवी दृढ़तर ;
श्रीकिशोरि-रस-सिन्धु-रत्न लीन्हें हिय-घर भर ।
अष्टयाम रचि दिव्य सु रसमय दंपति पद कह्यो ;
मनसुबोधनी विरचि मनमतंग-ममता दह्यो ।
श्रीगोपालदास-पदपद्माश्रित ह्वै लौकिक से मन आखस्यो ;
छाड़िदेश-पंजाब, विभव ब्रजविपिन विहारी हित बस्यो ।

श्रीकिशोरीदासजीका जन्म पंजाबप्रातान्तर्गत ब्राह्मणकुलमें हुआ था। कौन जिला, किस ग्राम, एवं माता पिताका नाम मुझे विशेष अनुसंधान करनेपर भी उपलब्ध नहीं हो सके, क्योंकि ये बाल्यावस्थासे ब्रजमें निवास करते थे, एवं सच्चे हृदयके ब्रजवासी थे। शरीरके साथ इनका मन भी ब्रजवासमें तदाकार हो चुका था। सदैव भजन-भावनामें निमग्न रहते थे। इन्होंने पूर्वजीवन-संबंधी घटना किसीसे कहा भी नहीं। बाल्यावस्थामें ही वृन्दावन-वासी निम्बार्क-भगवान्के प्रादुर्भावोत्सव-कर्त्ता प्रसिद्ध महात्मा, स्वर्गीय श्रीगोपालदासजीके शिष्य हो गये। उसीकालसे अखण्ड ब्रजवासका नियम धारण कर बृजमें ही निवास करने लगे। कुछ काल तक बरसानेमें स्थित गहबरबनमें निवास किये, पश्चात् बृन्दाबनमें जुगलघाटपर रहे, अन्तकालका विश्राम-स्थान, केवारबनमें दावानल-विहारीका मन्दिर था। आपने वहीं इस शारीरिक-अनित्यलीलाको भी परित्याग कर श्रीगोलोक विहारीके चरण-शरण प्राप्त हुये। और अपनी स्मृतिरूप दिव्य-वाणी वहीं छोड़ गये थे। ४५ वर्ष तक अखण्ड वृन्दावन-ब्रज-बासके फल-स्वरूप इन्हें इष्टदेव और वैष्णवोंमें अपार निष्ठा, एवं काव्य रचनेकी शक्ति उत्पन्न हुई। श्रवण-भक्तिमें तो अटूट श्रद्धा थी। बाबा श्रीमाधवदासजी एवं बाबा श्रीहंसदासजीको, भक्तमाल भागवतादि-कथा बाँचते समय, बारंबार कह देते थे, कि इसका ये भाव नहीं ये है! कथा श्रवण करते समय प्रेमावेशमें तन्मय होजाया करते थे।

श्रीगोपालदासजी महाराजके भक्ति-भावसे परिपूर्ण अनेक शिष्योंमें श्रीकृष्णदास जी भी थे ; जिनको महावाणी युगलसत कंठस्थ थीं। अष्टप्रहर मानसी-सेवामें निमग्न रहते हुये सूर्य्यघाटपर रहते थे। उन्होंने ५० वर्ष अखण्ड वृन्दाबन-बास की। उनमें श्रीकिशोरीदासजी की अटूट श्रद्धा थी, और उनकी सेवामें कुछ दिन तक रहे भी। सम्बत् १९ ''में शरीर त्याग कर, श्रीगोलोकविहारीके चरण शरण प्राप्त हुये।

इन्होंने १—मनसुबोधनी, २—अष्टयाम, ३—वार्षिकोत्सव, ४—युगल-विनोद, ५—श्रीकृष्णनामामृत, ६—श्रीकृष्णनामावली, ७—श्रीकृष्णबाराखरी, ८—आचार्य-प्रार्थना, ९—आचार्यपरंपरा-नामक ग्रंथोंकी रचना की है।

इनकी रचनायें महाकवियोंकी रचनाओंकी समानता करती हैं। जिस प्रकार इन्होंने अपने मनको ब्रजवास एवं वृन्दाबनबिहारीमें तदाकार कर दिया था वैसेही ब्रजभाषामें भी। भारी विद्वान् न होते हुये भी इनका भाषापर अधिकार श्रीकृष्ण-कृपा जनित था। इनकी वाणीकी विविध छंदोंमें, पिंगल अलंकार, प्रसाद, माधुर्य, यमक आदि समस्त साहित्य-सद्गुण समावेश हैं। इनकी रचना स्वतन्त्र है। ये एक ईश्वरीय-शक्ति-सिद्ध महाकवि हैं। इनकी एवं इनके काव्यों की प्रशंसा करना हम जैसे अल्पज्ञोंके लिये अगम्य विषय है। मनसुबोधनीसे कुछ पद उद्धृत करते हैं —

[राग विभास]

मोसम अधम नहीं कोउ आन ;
भाग्यहीन कुलहीन दरिद्री नखशिख अवगुन सान।
काम, क्रोध, मद, लोभ, ईरषा ग्रसित द्रोह अभिमान ;
पामर पतित मूढ़-मति लम्पट निपट कपट की खान।
कटु कुजात अपमारगगामी विषयन हाथ विकान ;
जनम अनेक भये दुख पावत कबहुँ न हृदय सिरान।
वह्यो जात हूँ भवसागर में खैंचि लि

कर्णधार गुरु वेद बखानत दियो नाम जलयान ।
मेरी ओर निहारियो जोपै नहिं सत कल्प कल्यान ;
मोसे पतित अनेकन तारे सदा विरद यह बान ।
दीन जान कीनो निज चेरो दीनो मंत्र लाग मो कान ;
रोम रोम हरषात गात, पुलकात पाय प्रिय दान ।
जन अवगुन बिलगाय, गहहिं गुन सहजहिं परम सुजान ;
किशोरीदासके प्रानजीवनधन श्रीगुरु कृपा-निधान ।१

[राग विभास]

मोपै कृपा करो हरि जन सब ;
औसर जात अमोल हाथते पायो तन मानुष सुर-दुर्लभ ।
त्रसत भयो लख लख चौरासी जो भूलों तो परों बहुरि भव ;
ताते विनय करत पर पायन पुनि-पुनि बनै समाज आन कब ।
स्वारथरहित दीन हितकारी मोहि नहिं दीसत द्वार आन अब ;
पावों रति राधा माधव पद युग कर-कमल करो निर्भय जब ।
श्रुति पुरान गावत, नहिं पावत पार शारदादिक अरु उद्धव ;
किशोरीदास हरिव्यास कृपाकर राखो निकट मेटि त्रय सम्भव ।२

मेरे परम गुरू हरिदास ;
मन, क्रम, वचन विचार कियो यह मनमें दृढ़ विश्वास ।
श्रीहरिदास रसिक चूड़ामनि नित्यविहार उपास ;
परिकर सहित द्रवहु मो मनकी पूरन करिये आस ।
श्रीहरिवंश व्यास कुलमंडन खंडन यम की फाँस ;
याचत गोपद सार देहु प्रभु सेवाकुंज निवास ।
श्रीहरिवंश-प्रसाद लड़ाये श्रीकिशोरि सुखरास ;
वन्दौं व्यासदास दिनमनि सदा मो हिये करहु प्रकाश ।
भये जे अहैं होयंगे जिनकी पद-रज सो भव नास ;
चरण शरण तिनकी जो आवत मिटत ताप त्रय तास ।

ज्ञान,विराग, भक्ति बल कर निज चेरो करी देवी अनयास ;
किशोरीदास प्रभु हंस-कुल-दीपक जयजय श्रीहरिव्यास ।३

[मनसुबोध]

रे मन ! सठ तज मूढ़ हठ भज वृन्दावनचन्द ;
सहजहि दम्पति पाइये नेति वदत जिहि छन्द ।
भज मन वृन्दाविपिन-घन जो चाहत सुख मूढ़ ;
अनायास जहां पाइये दम्पति रसनिधि गूढ़ ।
रे मन ! प्रथम सुभाव तजि भजि वृन्दावन एक ;
सूकर कूकर होयगो खर कपि जन्म अनेक ।
रे मन ! श्रीहरिव्यास भजि सकल ,सुखनको मूल ;
श्रीराधा–पद पाइये भक्ति सदा निज कूल ।

[राग भैरव]

करो मन ! हरिभक्तनको संग ।
भक्तन बिन भगवत् दुर्ल्लभ अति जग यह प्रगट प्रसंग ।
ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण, कपिपति कामी मरकट अंग ;
पूज्य भये यश पाय जगतमें जीत्यो रावन जंग ।
गीध, व्याध, गनिका, व्रजगोपी, द्विज-वधु सुवन उपंग ;
अजामील अपमारग–गामी लम्पट विवश–अनंग ।
जातुधान, चारन, विद्याधर वनपति हिंसक अभंग ;
शवरी, केवट पूज्य भये जग राम उतारे गंग ।
श्रीहरिव्यास बिना गति नाहीं तजो मान मद रंग ।
किशोरीदास जाचत दीजै प्रभु, सन्तन संग सुरंग ॥४॥
करो मन हरिभक्तन सो नातो ।
भक्तन बिन भगवत मिलवेको नाहिन पंथ सुहातो ।
भक्त मिले हरिमिले आपही बिन साधन अनयासा ;
भक्ताधीन आप हरि गावतः जानत द्विज दुर्वासा ।
भक्तन के पाछे डोलत हरि पद–रज अंग लगावैं ;
गावत भक्त जहां हरिको यश तहँ हरि दौरे आवैं ।

श्रुति पुरान गावत सब जानत भक्तहि हरि अगवानी ;
कैसे फरत खेत भक्तिको भक्त संग बिन पानी ।
भक्तन बिन नहिं होय अचल हरि नाम रूप परतीती ;
भक्तहिं द्वार अपार भक्ति के वेद-विदित यह नीती ।
भक्तन ते हरिमिले आज नहिं चारहु युग मरयादा ;
भक्तन महत भागवत गावत रहुगण भरत संवादा ।
भक्तन बिन हरि हाथ न आवै करहु जतन कोउ लाख ;
तीरथ, ध्यान, नेम, व्रत, संयम जप, तप, पूजा, माख ।
श्रीहरिव्यास उदार सुनो प्रभु ! विनय करत कर जोरी ;
भक्तन संग देहु निशि वासर जाचत दासकिशोरी ।५

[राग-भैरव]

जो मन ! ऐसी ढरनि ढरौगे ।
आस्तिक ह्वै हरि, गुरु पद सेवा मनक्रम वचन करोगे
नाना स्वाद वाद जगके सब विषय-चुगान चरोगे ;
सन्तन सीत-प्रीति युत निशिदिन अमि सम उदर भरोगे ।
काम, क्रोध, मद, लोभ, ईरषा, प्रज्ञाग्नि न जरोगे ;
परनिन्दा, चिन्ता देह ग्रेह की या सीतहि न गरोगे
सुत, पितु मातु, बन्धु, दारा, धन मोह-फाँस न परोगे ;
साधन परम सन्त जो गावत, सावधान दृढ़ हिये धरोगे ।
कठिन झकोर प्रबल मायाकी, गिरि ज्यों हरि-पद छिन न टरोगे ;
सबको हित हरिनाम हृदय नित जप निर्भय विचरोगे ।
श्रीगुरु दियो कृपा करि जो धन हान जान छिनहु न विसरोगे ;
श्रीवृन्दावन-वास आस निज इष्ट अनूप सरूप अरोगे ।
मेटि सकल भव-जनित दुसहदुख सुखरस फरन फरोगे ;
सन्त सजातिन वैठि सुधारस हरियश पावन मुख उचरोगे ।
तो सहजहिं दुस्तर अथाह अति गोपद ज्यों भवसिंधु तरोगे ;
'किशोरीदास' हरिव्यास कृपावल युगलचन्द निजपतिहिं बरोगे । ६

[राग-नट]

हरिपद होय या विधि लगन।
रक्षा करत सहज दुख नाना जाय मतिको उगन।
धरत तन, मन, पाय पुनि-पुनि लखत पग रहि पगन;
ताके बल मदमत्त डोलत जगत दीसत जगन।
होत दूर दरिद्र दुख सब बुझत तीनो अगन;
किशोरीदास हरिव्यास मिले तब महल सुरत लह छगन। ७

[राग-देवगंधार]

कब मैं या मारग पग धरिहौं।
वेद, पुरान, संत जो गावत करि विश्वास अचल अनुसरिहौं।
साधन परम-धाम मिलबेके सन्मुख ह्वै का दिन आचरिहौं;
द्वन्द रहित विज्ञान ज्ञान रति मान-अनल कबहूं नहिं जरिहौं।
कोटि भाँति अपमान करै जो देश न मान पायँ पुनि परिहौं;
परिहरि विष सम स्वाद जगतके सन्तन सीत उदर अमि भरिहौं।
अतिहि दुसह दुख होय कर्मवस हरिपद-कमल निमिष नहिं टरिहौं
हरिविमुखनको संग त्यागिके सन्त सजातिनमें सुख चरिहौं।
जग उदास निज इष्ट आस-बल निर्भय हरियश विमल उचरिहौं;
श्रीवृन्दावन वास निरन्तर राधाकृष्ण रूप लखि अरिहौं।
सुनिये लालकृपाल दयानिधि यह निश्चय दृढ़ कबहुं कि करिहौं;
'किशोरीदास' हरिव्यास कृपाबल महल टहल सेवा सुख टरिहौं।

[राग-देवगंधार]

मन श्रीराधाकृष्ण-धन ढूढ़ो।
नहीं तो परिहो भवसागरमें मिलत न पंथ भेद अति ऊढ़ो!
काम, क्रोध, मद, लोभ इरषा जहाँ वासना सूड़ो;
यह अवसर दुर्लभ श्रुति साखी पायो नरतन सब तन चूड़ो।
बिन सत्संग न होत शुद्ध मन बनत न कारज पूड़ो;
भटक्यो जन्म अनेक महाखल लह्यो न तत्त्व रसनिधि जो गूड़ो।
'किशोरीदास' हरिव्यास चरन लग युगल रतन पायो भव-छूड़ो। ९

[राग-रामकली]

क्यों मन ! समझि बूझि बौरायो।
देखत प्रगट मरत जनमत नर कालचक्र नित वहत अथायो।
करत कहा किन मूढ़ विचारो करन कहा सठ आयो;
बनज व्यौपार करत बीत्यो दिन अचल द्रव्य कहो कहा कमायो।
भोगत नरक जन्म बहु बीते सौरभ ज्यौं दुर्गन्ध सुहायो;
हरिपद कमल-सुधा-परिहरि खल विषय गरल पीवत जो सरायो।
ना जानै धौं कौन कृपाबल सुर-दुर्लभ मानुष-तन पायो;
अबकर चेत चेत निज घर किन मारग श्रीगुरु सहज बतायो।
प्रगट पंथ श्रुति संत पुरानन सब सुख धाम नाम हरि गायो;
हरिजन संग मिलत दृढ़ करसी युगलकेलि निरखो मन-भायो।
सहजहिं वनत वनाव होय जो शुद्ध हृदय निशि कपट सतायो;
'किशोरीदास' हरिव्यास सुनो प्रभु सन्तन संग देहु सुखदायो। १०

राग-रामकली]

मन श्रीराधाकृष्ण सम्हारो।
खोये जन्म अनेक महाखल अब कत भूल विसारो।
जननी उदर कीयो कहा पन सठ सो किन मूढ़ विचारो;
हरिवमुखनकी संगत करि करि जीती बाजी हारो।
विषयन हाथ विकाय दियो सठ सुर-दुर्ल्लभ तन प्यारो;
जूठे वर्तन शुद्ध करन लग चन्दन तन परिजारो।
दीसत नहीं कराल मंदमति अगम पंथ यम-द्वारो;
काम, क्रोध, मद,लोभ, ईरषा इनको मूल उखारो।
यथा लाभ सन्तोष शोक तजि दुख सुख सबहिं सम्हारो;
सदा वसो श्रीबृन्दाबनमें राधावलभ निहारो।
परे रहो तरुवनि की छाहीं मुख नित नाम उचारो;
'किशोरीदास' हरिव्यास द्रवेंगे जान विरद निज भारो। ११

श्रीवैजूबावरा

ये स्वामी श्रीहरिदासजीके शिष्य थे, इसलियेइनका रचना-काल भी स्वामीजीके-ही समसामयिक समझना चाहिये। ये अपने समयमें विश्वविख्यात महान् कुशल गवैया हुए। प्राचीनकालमें मानव-जातिका अपने प्रत्येक कार्यमें सफलतापूर्वक अग्रसर होकर अथक अध्यवसाय और शुद्ध साधन-द्वारा उसके अंतिम अवस्थाके लक्ष्यको उपलब्ध कर, सिद्धि प्राप्त करलेना स्वाभाविक था। इन्होंने भी गान-विद्याके अद्भुत चमत्कारोंसे मानवके अतिरिक्त देव तक को भी वसमें कर लिया था। इनके द्वारा गानेपर मेघ-रागसे वर्षा एवं दीपक-रागसे दीप जलजाना, इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। कहते हैं कि एकवार गांधर्व-विद्यामें तानसेन और इनसे, चमत्कार-प्रदर्शनके लिये होड़ हुई, जिसमें तानसेन पराजित हुए थे। इनके द्वारा निर्मित फुटकर गाने यत्र-तत्र ग्रंथोंमें संग्रहीत हैं। इनके पदोंको गवैये बहुत ही पसंद करते हैं और गाकर जनताको मुग्ध करदेते हैं। ये अपना अधिकांश समय वृंदावन-व्रजमें ही व्यतीत करते थे और व्रजमें ही शारीरिक-लीला भी संवरण की। यहाँ इनके द्वारा निर्मित दो पद उद्धृत करते हैं—

षर्ज नाभिते रिषभ हृदयते गरेते उपज्यो गंधार सार;
मुखसो पंचम नासिकासो धैवत निषाद ब्रह्माण्ड धार।
कोमल कंठ सो तीव्र तारुवे सो बेसुर लेत सम्हार;
कहै वैजूबावरे सुनहु गोपाललाल महादेव प्रथम कह्यो अलंकार।

खर्ज सुर भैरो रिषभ सुर मालकोश उपज्यो गंधार हिंडोल बोल; मध्यम दीपक भयो पंचम सो श्रीराग धैवत निषाद मिलि मेघ बोल। सप्तसुर छैहो राग याही विधि बने हैं जानत हौं सांगीत प्रमान गति तोल; कहै वैजूबावरे सुनहो गोपाललाल नाद नर गुण ब्रह्मा शंकर जाको जानत मोल।

श्रीगंगाराम

इन्होंने स्वनिर्मित वृहद् महाकाव्यके प्रारंभमें अपना परिचय दिया है, उसमें मथुरासे पश्चिम-दिशामें पचास कोस दूर किसी नदीके तटपर अपना जन्म तथा अपने को सनाढ्य-ब्राह्मण, जैमिन-गोत्रावलंबी तथा श्रीपीतांबरदेवजीका शिष्य लिखा है। श्रीपीतांबरदेवजी, श्रीनिम्बार्क-संप्रदायांतर्गत श्रीरसिकविहारी-मंदिरकी परंपरामें संवत् १७५१ में गद्दीपर बैठे थे। इनके द्वारा निर्मित वृहद् काव्योंका संग्रह वृंदावनसे चार कोसपर स्थित नसीटी ग्रामके एक निम्बार्क-संप्रदायके मंदिरमें सुरक्षित था, वह दौलतराम जयाल, साहित्यान्वेषक काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा, मार्फत 'कृष्ण-कोल कंपनी' भरतपुर-दरवाजा-मथुराके द्वारा नागरी-प्रचारिणी सभा-काशीमें चला गया। उस मंदिरके पुजारीके पास डाक्टर पीतांबरदत्त M.A., L.L. B., धीट प्रोफेसर हिंदी यूनीवर्सिटी बनारस, सेक्रेटरी 'नागरी-प्रचारिणी-सभा' काशीका धन्यवाद-पत्र भी आगया है। इस वृहद् ग्रंथमें श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत आदि के भी छंदोवद्ध अनुवाद हैं। इस ग्रंथके अवलोकनका अवसर मुझे नहीं प्राप्त हो सका, यह परिचय पुजारीके कथनानुसार लिखा है।

श्रीसुंदरसखी

ये महानुभाव भी व्रज-वृंदावनवासी थे। ब्राह्मण-कुलमें इनका जन्म हुआ था। इन्होंने श्रीराधाकृष्ण-विवाह-नामक ग्रंथ निर्माण किया, उसीमें इन्होंने अपना परिचय भी दिया है। इस ग्रंथको मैंने बोहरे श्रीव्रजलालजीकी कुंजमें देखा था, जो पंडित श्रीकेशवदेवजी बावरेके द्वारा लाया हुआ था, पुनः यह मुझे देखनेके लिये नहीं मिल सका। इसमें व्याहुलो विविध राग-रागिनियें तथा पद्यमय छंदों-में वर्णित है। रचना-शैली सुंदर, सरस तथा भावानुभावोंसे युक्त है।

इनका कविता-काल १८ वीं शताब्दी है और ये स्वामी श्रीहरिदास-परंपरांतर्गत किसी महानुभावके शिष्य हैं।

श्रीनिवास

ऐसी बहुत-सी साम्प्रदायिक, रसिक एवं भक्त महानुभावों द्वारा रचित प्राचीन वाणियें हैं, जो वृंदावनमें अनुपलब्ध हैं, तथा श्रीवृंदावन-वासियोंको पता एवं नाम तक भी विदित नहीं। ये अमूल्य पद-रत्न-राशि वृंदावनसे बाहिरके पुस्तकालयोंमें संग्रहीत हैं, जैसे रसिकगोविंद, घनानंद एवं रसरंग आदिकी रचनायें। यद्यपि ये महानुभाव विशेषतः वृंदावनवासी ही थे और अपनी अंतस्तल मानसिक-शक्तिके शांत-सागरमें प्रवेश कर भक्ति-भावके विभोरतावस्थाको जो पदों द्वारा अंकित की हैं, वे सर्वप्रथम श्रीवृंदावनमें ही व्यक्त हुई हैं; किंतु आज वृंदावनवासियोंके लिये उनके दर्शन दुर्ल्लभ हैं। ऐसे ही महानुभावोंमें से श्रीनिवासजी एक थे। इनके द्वारा निर्मित तीन ग्रंथ छत्रपुर महाराजके राजपुस्तकालयमें विद्यमान हैं। वे हैं—१—रससागर, २—सद्गुरुमहिमा [१६५ पद], ३—माधुरीप्रकाश [६२ पद]। मिश्रबंधुविनोदमें इनका रचना-काल संवत् १७५० लिखा है।

श्रीनिम्बार्कशरणदेवजी

जगत्प्रसिद्ध आचार्य-गद्दी जो सलेमाबाद (कृष्णगढ़-स्टेट राजपूताना) में स्थित है—उससे समस्त हिन्दुस्तानका वैष्णव-जगत् परिचित है। इस गद्दीको श्रीपरशुरामदेवाचार्यजीने १५वीं शताब्दी में स्थापित की थी। इस गद्दीमें एवं शिष्य-समूहोंमें अनेक बड़े बड़े सिद्ध महात्मा विद्वान महानुभाव होगये हैं, जिनकी वाणियें एवं काव्य-रत्न समस्त भारतके हिन्दी भाषा-भाषी जगतमें प्रसिद्ध हैं। इसी गद्दीके आचार्य परम्परामें श्रीनिम्बार्कशरणदेवजी हुए हैं। ये विद्यमान

कालसे छठी पीढ़ीमें हुए हैं। इनके द्वारा रचित फुटकरपद पाये जाते हैं, हमें कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ। एक पद उद्धृत करते हैं।

[राग-मलार]

अरुन सदन नव मंगल माइ।
कूख जयंती सुभग सुक्तिते अद्भुत इन्द्रमणी प्रगटाई।
विधि, शिव, शेष, सुरेश वेद सब वृन्दारककी भई मनभाई;
रमारमन कर चक्र सुदर्शन निज भक्तन हित तन दरसाई।
अपनो तेज निंव पर धारे कमल जयंती मति बौराई;
श्रीनिंबारक नाम पाय मुनि नारद चरन-शरन मति धाई।
जगमगात जगमें जस जिनकी संप्रदाय सनकादिक पाई;
श्रीनिंबारकशरणदेव पद-पंकज परसि अभय भये आई।

श्रीराधावल्लभशरण

ये कोई आचार्यपद-निष्ठ वृन्दावनबासी महात्मा थे। इनका विद्यमान-काल अठारवीं-उन्नीसवीं शताब्दी ही विदित होता है। इनके बहुतसे फुटकर पद पाये जाते हैं, जो आचार्य मंगल-बधाई संग्रहीत ग्रन्थोंमें संग्रहीत हैं। ये पद श्रीवृन्दावनके आचार्य-उत्सवोंमें गाये जाते हैं। आचार्योत्सव-प्रेमी श्रीगोकुलदासजी द्वारा संग्रहीत आचार्य मंगल-बधाईमें से एक पद उद्धृत करते हैं।

[राग-पीलू]

आज बधाई जयंतीके घर।
निंवारक भगवान जनम लियो संपति सो जो गयो त्रिभुवन भर।
अरुन ऋषि आनन्द उमग उर निवछावर सु करत नारी नर;
राधावल्लभशरण जाय बलि चक्र-सुदर्शनके चरणन पर।

श्रीप्रियासखी

श्रीप्रियासखी भी वर्तमान शताब्दीके ही एक आचार्य-पद प्रेमी

एक विरक्त संत हैं। ये भी वृन्दावासी महात्मा थे। इनके भी बहुतसे पद आचार्य-मङ्गल-बधाइयोंमें संग्रहीत हैं और आचार्य उत्सवोंमें गाये जाते हैं। फुटकरके अतिरिक्त इनके पद ग्रन्थाकार रूपमें संग्रहीत नहीं हैं। पदोंमें आचार्य-निष्ठा पर ही निर्मित हैं। विशेषतः मंगल बधाई हैं। एक पद उद्धृत करते हैं —

आज महा मंगल भयो माई।
कृष्णजू हंस रूप धरि प्रगटे आनँद कह्यो न जाई।
सनकादिक नारद, निंबारक सबके हिये सिराई;
प्रियासखी कछु कहि न जाय छवि देखत चंद लजाई।

श्रीगोवर्द्धनदेवजी

ये श्रीरसिकविहारी-मंदिरके महंत थे तथा तत्कालीन एक पूर्ण रसिक भक्त महानुभावोंमें से थे। जिस समय श्रीललितमोहिनीदेवजी टट्टीस्थानकी परंपरा-गद्दीपर विराजमान हुये, उसी समय ये रसिक विहारीके मन्दिरमें विद्यमान थे। श्रीललितमोहिनीदेवजी सं० १८२३ से १८५८ तक गद्याचार्य थे,इसी समयके मध्य इनका कविता-काल भी समझना चाहिये। ये श्रीपीताम्बरदेवजीके शिष्य थे। जब महादाजी सिंधिया वृन्दावनमें पधारे, और रासलीलानुकरण हुई, तो ये भी सादर उस अवसर पर बुलाये गये—यह निजमतसिद्धान्तमें किशोर दासजीने लिखा है। इनके द्वारा निर्मित फुटकर पद पाये जाते हैं जो अष्टाचार्योंकी वाणीमें सम्मिलित हैं। उदाहरणार्थ एक पद उद्धृत करते हैं।

[पद]

सुमिरन श्रीवृन्दाबन धाम। आनँदकंद प्रकाशित कलरव सब विधि पूरन काम। सीतल नील गंभीर सुगन्धित श्रीयमुना फिर दाम; कलियुग दोष दुखित जननको यह निजजन विश्राम। जो सुमिरे हृदयमें

आवत तुरतहि श्यामाश्याम ; सुन्दर भाम मनोहर गुननिधि यह आसा सेवत नित वाम। ब्रह्मादिक सुर, नर, मुनि गावत पावत नाहिन माम ; हंस,सनक,नारद, निंबारक श्रीनिवास शुभ नाम। श्रीविश्वाचार्य पुरुषोत्तम श्रीविलास रूप अभिराम ; रसिकानन्य विहार सुगायक श्रीहरिदास सुकाम। श्रीविट्ठलविपुल विहारि सरस मिलि श्रीनरहरिदेव ललाम। श्रीरसिकपीताम्बर श्रीहरिशरने 'गोवर्धन' को यह बन ठाम।

श्रीरसिकरूप

ये महात्मा भी श्रीहरिदास-परंपरावलंबीय थे। तथा वृन्दावन वासी थे। इनका कविता-काल अठारहवीं शताब्दी ही विदित होता है। इनका और कुछ विशेष परिचय हमें नहीं मिला—न इनके द्वारा निर्मित कोई ग्रन्थ ही उपलब्ध है। फुटकर पद अनेक ग्रंथोंमें संग्रहीत हैं तथा प्रकाशित भी होचुके हैं। रचना पदोंमें हुई हैं और उत्तम है, आकर्षक हैं। यह वृन्दावन-महिमाका एक बहुत ही व्याप्त पद है। उदाहरणमें अवलोकन करिये।

[पद]

रंगीलो श्रीवृन्दावन धाम।
जहाँकी भूमि पर्म परम सुखदायक है अति ही अभिराम।
लता, बेलि, तरु परम मनोहर पावत मन विश्राम;
रसिकरूप सब परिकर नित ही पुरवत मनके काम।

श्रीगोपालदासजी

आचार्य मंगल वधाइयोंमें श्रीगोपालदासजी द्वारा निर्मित पद संग्रहीत हैं। ये मुखिया श्रीगोकुलदासजीके परम्परामें हुए हैं। इनका स्थान लालामहाराज मन्दिर भरतपुरमें है, अपनी परम्परामें श्रीगोकुलदासजीने इनका नाम इसप्रकार लिखा है—

'रमनरेवतीदास जुत मम स्वामी सुखदानि; गोकुलदास अनाथके दिया शीशपर पानि। रामदास जगविदित प्रभु जिन बाँध्यो भवसेत;श्रीलालदास कविता सुनत होय हियेमें चेत तिनके गंगादासजू पावन परम अनूप; मतवादिन मद चूर करि कह्यो इष्टको रूप; जुगल रहस्य वरनन करत दासगुपाल कविंद;राम सनातनदासजुत भक्त-चकोरन-चन्द।" उदाहरण इस प्रकार है—

[पद]

नवलवर जोरी आज बनी।
धारे सुरँग चीर पिय-प्यारी भूषन रतन सनी।
कुंवरि दृगनकी कोर निहारत बाँकी भौंह तनी;
गोपाललाल हिय बसत निरंतर यह छवि सौंधे सनी।

रानी पूजति आज दिनेश।
गोद लसे सुत कौन गुनी छवि सेवत जाहि सुरेश।
नाम सुदर्शन रूप सु दरशन निरखत शारद शेष;
निंबचंद अवतार धर्यो हरि तारन जीव असेस।
कियो सकल रसिकन मनभायो रह्यो न दुखको लेस;
गोपाललाल सुख लह्यो निरखि पद ब्रह्मरूप शिशु वेस।

श्रीबलदेव

ये एक अच्छे कवि विदित होते हैं। इनकी रचनायें कवित्त छंदोंमें हुई हैं। छंद आचार्य-निष्ठापर ही विरचित हैं, और उनसे यह भी विदित होता है, कि ये सांप्रदायिक सिद्धान्त, उपासना आदि से भली-भाँति परिचित थे, और दार्शनिक-विषयसे भी विज्ञ थे। केवलमात्र श्रीनिम्बार्क-भगवान्के शरणागतमें ही गोविन्दमें प्रीति प्राप्तकी सुगमता, कलिमें धर्म-रक्षाकी सरलता, आदि है--यह छंदोंमें

अनन्यताकी विशेषता है। भाषा सरल व्रजभाषा है और प्रसाद, माधुर्यादि गुण-मंडित हैं। इनकी रचना-काल वर्तमान शताब्दी ही विदित होता है। इनके द्वारा विरचित बहुतसे कवित्त श्रीगोकुल-दासजी-द्वारा संग्रहीत आचार्य-वधाईमें सम्मिलित हैं। इनके द्वारा निर्मित कोई आनंदाष्टक काव्य भी है, अन्य कोई संग्रह मेरे देखनेमें नहीं आया। उदाहरणके लिये दो कवित्त उद्धृत करते हैं —

आय सनकादिक बिरंचिसो करयो है प्रश्न चित्त अरु विषयको कहौ जो निरधारे हैं; कातिक आद्ये नौमीको जनम प्रगट जान्यो जगमें प्रकाशमान भये सुखभारे हैं। भागवत् पुरन पुरानमें प्रमान मान कहैं 'बलदेव' भक्त वहुतक तारे हैं; नीर क्षीर न्यारे करिवेके काज हंसरूप आपही गोविन्द गऊलोकते सिधारे हैं ॥१॥ कौन गोलोकके गोविन्दमें बताती प्रीति वचन कृतारथके वीज जग बोते ना; माता जयन्तीके जन्म लीनो जा दिनते कातिक पुनीत पुन्यो सब दुख धोते ना। कहै 'बलदेव' भान नीममें दिखायो जाते जीवनपै दया लगे वृथा तौ दिन खोतेना; बुड़ि जात कलिमें सकल धर्म सब भाँति अरुन ऋषिपै जोपै निम्बारक होतेना ॥२॥

श्रीअभयराम

श्रीअभयरामका जन्म श्रीवृन्दावनमें हुआ था। ये जातिके गौरए ठाकुर थे, तथा वृन्दावनके एक मुकद्दम लंबरदारोंमें से थे। दुसायत मुहल्ला वृन्दावनमें ही रहते थे। इनका कविता-काल लगभग डेढ़सौ बर्ष प्राचीन है। बर्तमान कालमें इनके पोता नत्थीसिंह विद्यमान हैं, इनके पिताका नाम बलवंतसिंह था, उनके पिताका नाम रूपसिंह और उनके पिता अभयराम थे। यह एक अच्छे कवि थे। इनका कोई संग्रह-ग्रंथ हमें देखनेमें नहीं आया, फुटकर पद बहुतसे संग्रह वाणी ग्रंथोंमें प्रकाशित हैं। इन्होंने श्रीवृन्दावन-

महिमापर विशेष पद रचना की है। फुटकर पद बहुत ही प्रसिद्ध हैं। ये श्रीनिम्बार्क-संप्रदायानुयायी किसी महात्माके गृहस्थ शिष्य थे । इनके द्वारा रचित एक प्रसिद्ध कवित्त उद्धृत करते हैं।

एक ब्रज-रेणुकापै चिंतामनि वारि डारौं लोकनको वारौं सेवा कुञ्जके विहारपै ; लतनकी पतनपै कल्पवृक्ष वारि डारौं रम्भाहूको वारि डारौं गोपिनके द्वारपै। ब्रज पनिहारिनपै शची रची वारि डारौं वैकुण्ठहि वारि डारौं कालिंदी-धारपै ; कहैं अभयराम एक राधेजीको जानतहौं देवनको वारि डारौं नन्दके कुमारपै।

दाऊ श्रीकृष्णकिशोरजी

दाऊ श्रीकृष्णकिशोरजी राजनाद गाँवकी वर्तमान रानी साहिबा श्रीसूर्यमुखीबाईजीके काका थे तथा छुईखदान (छतीसगढ़) राजवंश के थे। इन्होंने राधाकृष्णचन्द्रिका, (गर्गसंहिताकी टीका) विविध छन्दोंमें निर्माण की है। यह एक बृहद् महाकाव्य है, जो एक सु-कवि कृत रचनाओंके काव्य सद्गुणोंमे कम नहीं है । श्रीसूर्यमुखीबाईजी द्वारा बलराम प्रेससे यह ग्रन्थ प्रकाशित होचुका है।

जामसुता जाड़ेचीजी श्रीप्रतापबाला

ये सलेमाबाद (परशुरामपुरी) गद्दीके आचार्य श्रीघनश्याम-शरणदेवजीकी शिष्या थीं, मिश्रबन्धु-विनोदमें इनका परिचय इस प्रकार है— 'महारानी जामनगरके महाराज रिड़मलजीकी राजकुमारी तथा जोधपुरके भूतपूर्व महाराज श्रीतखतसिंहकी महारानी थीं। इनका जन्म संवत् १८६१ और विवाह संवत् १६०८ वैक्रमीयमें हुआ था। ये बड़ी उदार-हृदया और प्रजाको पुत्रवत माननेवाली थीं । इन्हें स्वधर्मपर बड़ी ही श्रद्धा थी । इन्होंने अकालमें बड़ी उदारतासे भोजन वितरण किया था और कई मंदिर भी बनवाए। यद्यपि कालकी कराल गतिसे इनको कई स्वजनोंकी अकाल मौतके असह्य दुख भोगने पड़े, तथापि इन्होंने धैर्य नहीं छोड़ा और धर्मपर अपना पूर्ववत विश्वास दृढ़ रखा। ये बड़ी विदुषी थीं और इन्होंने बहुत स्फुट भजन बनाए हैं। इनके बहुतसे पद 'प्रतापकुंवरि-रत्नावली' नामक पुस्तकमें छपे हैं। इनकी रचना बहुत सरस और भक्तिपूर्ण है, और

वह सु-कवियों कृत कविताकी समानता करती है। उदाहरणार्थ इनके दो पद उद्धृत किये जाते हैं।

[पद]

वारी थारा मुखड़ारी श्याम सुजान।
मंद-मंद मुख हास विराजै कोटिन काम लजान ;
अनियारी अँखियाँ रसभीनी बाँकी भौंह कमान।
दाड़िम दसन अधर अरुनारे वचनसुधा सुखखान ;
जामसुता प्रभुसों कर जोरे हौ मम जोवन प्रान ॥१॥

दरस मोहिं देहु चतुरभुज श्याम।
करि किरपा करुनानिधि मोरे सफल करौ सब काम।
पाव पलक बिसरूं नहिं तुमको याद करूं नित नाम;
जामसुताकी यही वीनती आनि करौ उर धाम ॥२॥

—मिश्रबंधु विनोद

महंत श्रीलक्ष्मणदासजी

यह परिचय 'छुईखदान राजवंशका संक्षिप्त इतिहास' नामसे श्रीसुदर्शन वर्ष १ अङ्क ४ में छपा था, उसीमें-से कुछ अंश उद्धृत करते हैं। उदयपुर चित्तौड़के महाराणाके रिश्तेदार थे। किसी पारिवारिक वैमनस्यके कारण ये पानीपतमें वैष्णव-दीक्षा लेकर वैरागी होगये। ये अपने दोनों भतीजों, ब्रह्मसिंह तथा तुलसीसिंहको भी साथ लेगये थे, जो पीछेसे इन्हींके चेले होकर ब्रह्मदास तथा तुलसीदास कहलाये। अठारहवीं सदीके मध्यमें ये अपने अनेक चेलोंके साथ नागपुरमें निवास करने लगे, तथा भोंसला राजाके दरबारमें एक सैनिक सरदार होगये। कुछ कालके पश्चात नागपुरके राजाने इन्हें कोंड़काके जमीदारको, जो नागपुर-दरबारके विरुद्ध विद्रोह खड़ा किया था, तथा जिसके कारण कोंड़काकी प्रजा संकटापन्न अवस्थामें थी, सर करनेको भेजा। कोंड़का-जमीदार लड़ाईमें मारा गया। नागपुर-दरबारने प्रसन्न होकर इन्हें सन् १७५० में कोंड़का जागीरमें दे दिया। इनके स्वर्गवास होजानेके पश्चात् इनके भतीजे, जो अब

महंत ब्रह्मदासके नामसे प्रसिद्ध थे, जागीरका काम देखने लगे। परपाड़ीके जमींदार दुर्जनसहाय तथा उसके भाई डोमनसहायने मिलकर महंत ब्रह्मदासको शत्रुतावश मार डाला।

महन्त तुलसीदासजीने भी इन दोनों भाइयोंको मारकर अपने भाईका बदला लिया। छुईखदानके बिड़ोरा-नामक परगनेके खजरी-नामक गांवमें दुर्जनसहायकी समाधि बनी है, तथा बोरतरा नामके गांवमें एक चबूतरा बना है-जिसे 'डोमनचौंरा' कहते हैं। स्थानीय लोग बतलाते हैं कि इन्हीं दोनों समाधियोंमें उक्त दोनों भाइयोंके सिर गाड़े गये थे। सन् १७८० में महन्त तुलसीदासको नागपुरके राजा राघूजीराव दूसरेने कोंड़का जमीदारीकी सनद प्रदान की, जिसके अनुसार वे वहाँके जमीदार हुये। महन्त तुलसीदास अपने गुरु तथा गुरुभाईके समान निहंगव्रतका पालन नहीं कर सके, इसी कारण अपना विवाहकर गृहस्थ होगये। इनके पुत्र महन्त बालमुकुन्ददास हुए, जो अपने पिताके देहान्त होनेके पश्चात् गद्दीके अधिकारी हुए। महन्त बालमुकुन्ददासके चार पुत्र थे, जिनमेंसे ज्येष्ठ कुमार महन्त लक्ष्मणदासजी उत्तराधिकारी हुए, इनका जन्म सन् १८१० को हुआ था, तथा सन् १८४५ में गद्दी पर बैठे थे। सन् १८६५ में इन्हें अंग्रेज सरकारने अंग्रेजी राज्यके शुभचिन्तक तथा सहायक समझ, गोद लेने का अधिकार तथा सन् १८६७ में फ्यूडेटरी चीफ़का अधिकार प्रदान किया। ये ४२ वर्ष राज करके सन् १८८७ में परलोकवासी हुए। वे परधार्मिक, उदार, न्यायी तथा प्रजापालक थे, और एक अच्छे कवि भी थे। इनके बनाये हुए बहुतेरे ग्रन्थ हैं। जिनमें अनेक राग रागनियों-द्वारा श्रीकृष्णचंद्रकी लीलाओंका वर्णन है।"

पं० श्री दुर्गादत्तजी

विद्वद्वर पं० श्रीदुर्गादत्तजीका जन्म, जिला मैनपुरीके अन्तर्गत, जगतनगर नामक ग्राममें संवत् १६१३ पौष-सुदी-तृतीयाको हुआ था। इनके पिताजीका नाम पं० श्रीनन्दकिशोरजी शास्त्री पौराणिकाचार्य, सिद्धांतवागीश था। सं० १०२३ में इनके पूर्वज श्रीमुरारीजी बसईसे आकर वृंदावनसे अर्द्धकोसपर राजापुर-नामक ग्राममें

वस गये थे। श्रीमुरारीजी संस्कृतके भारी विद्वान् थे। प्रसिद्ध 'महाकवि नाटककाल' इन्हींका निर्माण किया हुआ है। इन्हींके वंशज श्रीस्यामदेवजी मंत्रशास्त्री वैद्यराज, संवत् १६२३ में जाटराजा गोधनेके बुलानेपर मथुरा-जिलेके राया-नामक ग्राममें गये, और वहीं वस गये। पुनः पं० श्रीदुर्गादत्तजी ही संवत् १६६५ में रायेसे वृन्दावन आगये और यहीं रहने लगे।

ये सनाढ्य ब्राह्मण वंशावतंस थे। इनके पिताजी किसी समय रायासे जातनगरमें कथा बाँचनेके लिये गये थे—वहीं इनका जन्म हुआ था। इन्होंने बाल्यावस्थामें माताजीके बीमार होनेके कारण स्वजातीय इक्कीश माताओंकी दुग्धपान की थी। इनके शिक्षादीक्षा-गुरू रायेके श्रीराधागोपालजीके मठके श्रीनिवार्क संप्रदायानुयायी महंत ब्रह्मचारी श्रीहरनामदासजी महाराज थे - उनके ये पट्ट शिष्योंमें से थे। उन्हींसे इन्होंने सारस्वत-चंद्रिकासे आरम्भकर संस्कृत, हिन्दी आदि शिक्षायें प्राप्त की, पश्चात् अपनी विद्वता प्रतिभासे विद्यारत्न, घटिकाशतक, महामहोपदेशक, एवं आशुकवि आदि उपाधियें प्राप्त की। संस्कृत एवं हिन्दी - साहित्यमें इनकी अपार गति थी; शास्त्रार्थ एवं भाषणमें जहाँ कहीं खड़े हो जाते थे, इनके धाराप्रवाह स्वसिद्धांत-प्रतिपादनके समक्ष कट्टर नास्तिक तथा विरोधियोंके पैर उखड़ जाते थे।

किसी समय इनसे महाराज दरभंगा-नरेश श्रीरामेश्वरसिंहजी बहादुर K. C. I. E. E. से किसी सभामें सम्पर्क हुआ, महाराज ने प्रसंगवस इन्हें संस्कृत् समस्या 'वर्णदोषः' दी, तत्क्षण आपने पूर्ति करदी 'अस्मासुयानिष्ठुरताहि चास्य; न कृष्णदोषस्सखी वर्णदोषः'—उसी सभामें महाराजके द्वारा इन्हें विद्यारत्नकी उपाधि मिली। पंडित-सभा बनारसमें इन्होंने तत्कालिक-वर्णनके तीस श्लोक बनाए—इससे प्रसन्न होकर पंडित-सभाने इनको घटिका शतककी उपाधि दी थी। भारतधर्म—महामंडलसे इन्हें महामहोपदेशककी उपाधि मिली थी।

ये परम वैष्णव थे, तथा वर्णाश्रमधर्म और अपने ईष्ट, गुरू, उपासना सिद्धांतादिमें दृढ़ निष्ठा थी विश्वास था। गांगाजीमें भी इनकी

पूर्ण श्रद्धा थी, नियमित-रूपसे २० वर्ष तक, प्रयाग-त्रिवेणी-संगम पर मकरसंक्रांतिके समय कल्पवास करते थे, और श्रीमद्भागवतकी कथा भी श्रवन कराते थे, तथा साधुओंको चना बांटते थे। उनदिनों उक्त श्लोकानुसार 'कलौदशसहस्रान्ते विष्णुस्त्यजति मेदिनीम्; तदर्द्धं जान्हवी तोयं तदर्द्धं ग्रामदेवता। इस प्रवादने बहुत ही जोर पकड़ था, कि गंगाजी गुप्त हो जायंगी।' इस प्रवादको रोकनेके लिये 'गंगा-स्थिति-दीपिका' सभा स्थापित की, और उसके द्वारा प्रचार कराया कि—'गंगाजी गुप्त नहीं होंगी' और इसी सम्बन्धमें 'गंगातत्त्व-संदर्भ' संस्कृतमें पुस्तक रची, थोड़े ही दिनोंमें उसके तीन संस्करण हो गये। उन्हीं दिनों भार्तेंदु बाबू हरिश्चन्द्रने इनसे रासपंचाध्यायी श्रवण की, और एक संदूक भेंट की —जो उनके पास विद्यमान थी।

जब इन्होंने श्रीगोपालसहस्रनामकी टीका बनाई—उस समय प्रतापगढ़के एडवोकेट रायसाहिब पंडित कृष्णलालजी वकील को स्वप्न हुआ कि 'वृन्दावनसे पंडित दुर्गादत्तजीको बुलाओ, और उनसे श्रीमद्भागवत सुनो, और उनकी की हुई गोपालसहस्रनाम की टीका को छपाओ।' उसी समय उन्होंने इस आदेशको पालन की यह टीका की भूमिका में लिखा है। इसी टीकाको पंडित श्रीज्वाला-प्रसादजी मिश्र विद्यावारिधिने हिन्दीमें उल्था की है। हिन्दी, संस्कृत दोनों वेंक्टेश्वर-प्रेस-बम्बईमें छपी है।

ये प्रतिभाशाली तथा तीक्ष्ण-बुद्धि-प्राप्त विद्वान तो थे ही—कवितार्थको श्लेषाश्रयसे परिवर्तन करदेनेकी आपमें तत्तकालिक उक्ति थी। किसी समय किसी विद्यार्थीने इनसे बिहारीलालके निम्न दोहापर 'हा हा वदन उघारि दृग सफल करे सबकोय, रोज सरोजनमें परे हँसी शसीकी होय।' प्रश्न करदी कि 'इसमें कौन नायिका है ?' इन्होंने विना ध्यान दिये कह दी कि, 'खंडिता।' पुनः शर्मिंदा हुए कि मैंने मानिनीको खंडिता कह दी।, उसी समय उससे कहा कि—'मानिनी नायिका है, तो इसे हरएक जानता है, इसमें खंडिता भी है—यही तो विशेषता है, कह कर इसप्रकार अर्थ को—'सखी नायकसे कहती है कि 'हा हा, बोलो मत आँख ऊँची तो करो, जिससे आपको सबकोई

सफलता देवे और ब्रह्माके घरमें रोज पढ़े कि 'अच्छे तुम्हारे पुरुषा ब्रह्मा कमलसे उत्पन्न हुए', और चन्द्रमाकी भी हँसी होगी कि 'अच्छी तुम्हारी संतान है।'

इन्होंने श्रीमद्भागवत-पाठसे कार्य्य—सिद्धीके लिये भिन्न-भिन्न पाठ-विधि भी तैय्यार की है। इसप्रकार इनका जिस विषय पर ध्यान जाता था—उसे कविता, लेख, ग्रंथ रचनाकर पूर्णतः सिद्ध कर देते थे। इन्होंने हिन्दी, संस्कृतमें छोटे—मोटे निम्न ग्रंथ, जातीय समाजिक, धार्मिक, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, आदि विविध विषयोंपर निर्माण की है—संस्कृत १—श्रीगंगातरलसंदर्भ, २—श्रीयमुनालहरी ३—श्रीसरजूलहरी, ४—श्रीमात्रीपंचकम्, ५—कुंभपर्वव्यवस्था, ६—दीक्षाविधिनिबन्ध, ७—श्रीनन्दवंशप्रदीप, ८—श्रीराधाप्रेममंजरी ९—श्रीगोपालसहस्रनाम, भाष्यपर दुर्गार्थप्रदीपाख्यम्, १०-श्रीध्यान सर्वस्वम्, ११—ब्राह्मणदर्पणम्, १२-आभीर दर्पणम्, १३—श्रीराधाविज्ञप्तिकलाप, १४—श्रीराधाष्टकपंचकम्, १५—जवकंदव, १६—श्रीनामवनमाला, १७—सिद्धांतपद्याष्टकम, १८—निमंत्रण श्लोकावली,२०—सनाढ्यदर्पणका दुर्गार्थदीपिका टीका, २१—श्रीकृष्ण चरितविकास, २२—बलानिषेध, २३-सभानियमावली २४ श्रीराधा पीयूषस्तवम्,२५—विचित्रस्तवम्,२६—वुद्धविनय पुष्पांजलि२७—सनाढ्य समर्चा, २८—ईश्वर साकार निराकार व्यवस्था सूत्र २९—मनुष्य कर्तव्य सूत्र, ३०—मूर्तिपूजा सूत्र, ३१—अवतारविषय सूत्र, ३२—श्राद्ध—विषय सूत्र, ३३—रामभक्ति सूत्र, ३४—सत्संग सूत्र, ३५—संतोपदेश सूत्र, ३६—विद्यात्वेकारण सूत्र, ३७—और सनातन धम सूत्र।

भाषा—ग्रंथ—१ दर्पतिछटा, २—भक्तिरसोदय, ३—दीनवचनिका ४-दीन-पत्रिका, ५—खलस्तवराज, ६—टीडीनामशतकम्, ७—जनोपदेश, ८—धर्मसंग्रह, ९—बलभद्रविनोद, १०—श्रीराधारसलहरी ११—समस्यापूर्ति—विनोद, १२—बालपियाकी—बारहमासा, १३—कूटपियाकी—बारहमासा, १४—कूटावली, १५—सनाढ्य मीमांसा, १६—बालाष्टक—पंचक,।

जातीय—ग्रंथ—१—सनाढ्यदर्पण, २—सनाढ्यकौमुदी, ३—सनाढ्यगीति, ४—सनाढ्यआन्हिक, ५—सनाढ्यरीति,

६—सनाढ्यपद्धति, ७—सनाढ्यगौरव, ८—ब्राह्मणभेद-बिचार, ९-विवाह—समय, १०—विवाह—सिद्धांत, ११—विवाहरीति-विचार, १२-निमंत्रण—श्लोकावली, १३—विद्यागीति, १४—कुरीतिहर-गीति, १५—गालीगीति—निरोध, १६—वेश्यानृत्य—निरोध, १७—भारतीय विद्या—प्रदस्ति, १८-सुन्दरीशिक्षाटीका, १९-स्त्री—शिक्षानुक्रम, २०—स्त्री-शिक्षा-बिचार, २१—शिशुशिक्षाविचार, २२—अपत्यविक्रय-निषेध, २३—जातिसिद्धि, २४—जातिसुधार, २५—विज्ञविनय-पुष्पांजलि, २६-जातिरीति-नियमावली २७—त्वाष्टेरान्वय—पद्धति, २८ पार्द्धपिज्ञातिमीमांसा, २९—लक्ष्मीजाति—बिचार, ३०—एकता, ३१—अश्लीलोचार-निरोध, ३२—सत्योपदेशस्वात्मसमृद्धि, ३३—गृह्यादर्श, ३४ समाजसुधार, ३५ विद्यागीति ३६—विद्यामहिमा, ३७—पुस्तक महत्व, ३८—पुस्तकालयदीपिका, ३९—शास्त्रानुक्रम, ४०—सरस्वती-महिमा और ४१-अपव्ययनिषेध। इनके अतिरिक्त हिन्दीबंगवासी, सनाढ्योपकारक आदि कई समाचारपत्रोंमें, समाजिक, जातीय, धार्मिक विषयोंपर इनकी लेख तथा कवितायें प्रकाशित होते ही रहती थीं।

इनकी रचनायें अपूर्व हैं, समस्त काव्यगुणोंसे अलंकृत हैं। भाषा-काव्योंकी रचानायें विशेषत:भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, श्रीकृष्णलीला उपास्य, उपासनातत्त्व-निर्णय आदि विषयोंपर हुई हैं। इनमें कूट तथा व्यंग भी अद्‌भुत आनन्दप्रदत्त हैं। ये समयानुसार जिस धुन में रचना करने बैठ जाते थे—उसीमें चमत्कारपूर्ण रचनाकर डालते थे। आशुकवि होनेके कारण कवित्व—शक्ति अपार थी, धारा-प्रवाह गतिसे स्वाभिप्रायको स्पष्ट मूर्तिमानकर देते थे। भाषापर इनका पूर्ण अधिकार था, इनकी रचनायें भावानुभाव संयुक्त माधुर्य प्रसाद गुण-गर्भित, तथा अलंकारादिकोंसे अलंकृत होती थीं। इनका सामाजिक, धार्मिक आदि प्रत्येक विषयोंमें प्रतिभा-पूर्ण प्रवेश था, इसप्रकार अनेक विद्वान् तथा सभा-सोसाइटियों, में प्रतिष्ठा प्राप्तकर, उपदेश, शास्त्रार्थ, ग्रन्थ-निर्माण, भाषण, कथा आदिसे समाज, जाति, सनातन धर्मका रक्षाकर संवत् १९७५ में श्रीगोलोकधाम-प्रवासी होगये। इनके बहुतसे ग्रन्थ तो प्रकाशित होचुके हैं, और अप्रकाशित भी हैं, जिनका

प्रकाशित होना परमावश्यक है। इनके पुत्र आचार्य उमाशंकरजी द्विवेदी शास्त्री एक योग्य विद्वान् हैं, उनका परिचय माधुरीमें अन्यत्र देखिये। प्रकाशित दम्पति छटासे कुछ पद उद्धृत करते हैं—

[राग-भैरव]

श्रीराधावर रसिकेन्द्रके गावहु निशदिन नाम।
ध्यावहु सदा जुगल पद पंकज छाड़ि लोभ,मद, काम;
त्रिविध ताप संताप दूरि करि लेहु परम विश्राम।
बिन जग विषय तजे नहिं पावहु श्रुति रहस्य रसग्राम;
दंपतिछटा सुनहु अब मंजुल दुर्गा प्रिय अभिराम। १

कहै कोई का विधि दम्पति छटा।
उपमागण सब कविनु जुठारयो नरनारिनमें रटा।
ऐसी छवि कहुं लोक न देखी उमड़ी चिद्घन-घटा;
कहत सुनतमें नेक न आवत यह सुख सम्पति लटा।
बहु आश्चर्य लगत समुझतहूं कोविदगण कहि हटा;
देखत बनत चित्ररस उपजत अनुपम सुख रहै डटा।
देखनहार मौन ह्वै बैठत रोपि अलौकिक ठटा;
जे प्राणेश दीन 'दुर्गा' के युगल चरण चित चटा। २

[राग–आसावरी]

लखौ कोई एक ज्योति दो रूप।
उपमा ढूढ़ि सकै नहिं कविजन अद्भुत विशद अनूप।
बाईं ओर प्रिया छवि सोहति चम्पक कनक निरूप;
दाहिन छटा छैल अलबेलो सुन्दर श्याम स्वरूप।
दोऊ रसिक रसिकजन-वल्लभ रसनिधि रसमययूप;
अकथनीय रस मारग दर्शक रसिकगम्य रस-भूप।
यह रस लगे रसिकके नासत त्रिविधताप भव-कूप;
दुर्गा यह रस विषयि अगोचर सेवत करत अरूप। ३

[राग-सारङ्ग]

श्रीमद्दम्पति चरन प्रकाश।
सुरपति विधुको विधु दिनमणिको, सुरपतिको दिन भास।
वित्तपको वित्तप जलेशको, जलपति-निधि निधि रास;
देवनुको यह देव बखान्यो, श्वासनुकोहू श्वास।

विधिको विधि शंकरको शंकर हरिको हरि गत त्रास ;
विधि-निषेध शक्तिनुको शक्ती काल कालको खास ।
प्रकृतिको जो इष्ट कहावत अण्डनुको आवास ;
वह है ब्रह्म ब्रह्मताहूको शुद्ध-ब्रह्म यह व्यास ।
सर्वस धन अनन्य रसिकनको नित्य—निकुञ्ज—निवास ;
कहत न बने कविनकी वाणी 'दुर्गा' चित्र विलास । ४

[राग-सारङ्ग]

गुणातीत श्रीदम्पति चरित ।
केवल चिद्घन घटा विलासी वही प्रेमकी सरित ;
प्रकृति मिश्र वृन्दावन तरुवर गुल्म लता तृण हरित ;
वापी कूप ताल सरवर सब चरण प्रीति रस भरित ।
साम ऋचा पक्षी चिद्घन सब जीव जन्तु भव तरित;
श्रीनिकुञ्ज सब पूजा साधन दिव्य सुखागम करित ।
रागभोग आभरन वाद्य नव वस्त्रादिक सब सरित ;
'दुर्गा' तत्त लखत वेही यह जिन श्रुति पथ आचरित । ५

[राग-विहाग]

दम्पति ब्रह्म अभेद वखानत ।
जिनने वेद पुरान मथन किए, सो विरले या तत्त्वहि जानत ।
जो वेदान्त अनादि एक अज, ज्योति अकल हिय ब्रह्महि आनत ;
सो श्रीदम्पति चरण-नखुनको, तेज वेद लखि रसिक प्रमानत ।
यद्यपि यह सिद्धान्त अचल है, निगमागम पुराण कहि गावत ;
तद्यपि युक्ति साधन करि रुचिसो, उभय पक्ष भेदहि विलगावत ।
यथा प्रकाशकते त्रिकालमें, कवहुँ न भिन्न प्रकाशहि छानत ;
त्यों अभेद करि युगल रूपको, ब्रह्महि कहत साम ध्वनि तानत ।
जैसे रवि रवि-तेज भिन्न नहिं, वन्हि वन्हि कण पृथक न ध्यावत ;
अथवा दुग्ध शुक्लता पय सो, भिन्न न होय उपाय लगावत ।
अथवा श्रीगङ्गाको सोता, भिन्न बहत जान्हवी कहावत ;
तैसे महाब्रह्म पद-नख मह, ब्रह्महि कहि ज्ञानी सुख पावत ।
ब्रह्महि कहत कोऊ श्रीदम्पति, श्रीदम्पतिको ब्रह्म बतावत ;
दो उनको मत शास्त्र सिद्ध है, निर्विवाद यह कवि ठहरावत ।
सो प्रत्यक्ष अंश अंशी मैं, भेद कहते कहाँ समावत ;
'दुर्गा' यहां बहुत युक्तिन सो, दम्पति ब्रह्म दोष नहिं आवत । ६

[राग-कुमुद]

लख्यो मैं अनुपम रस एक रात।
दम्पति छटा कहति नहिं आवै देखत हृदय सिरात।
पौढ़े रत्न-जड़ित पलकापर दोऊ हिय हुलसात;
मानो चिद्घन तेज कान्तियुत सतगुण पर सरसात।
गौर-श्याम छवि एक भाव ह्वै एकहि ज्योति दिखात;
ध्यान भक्ति-रसगम्य अगोचर याहि सकल श्रुति गात।
प्रात होत पुनि द्वै छवि देखी भक्त-पाल मृदु गात;
गुढ़ तत्त्व यह देखि भक्ति बल 'दुर्गो' रसिक सिहात। ७

[राग-परज]

प्रात उठि लसत लड़ैती लाल।
रत्न-जड़ित सिंहासन राजत ज्यों घन तड़ित अचाल।
आरति करति प्रेम रससानी ललिता छवियुत वाल;
मानो चिद्घन ऊपर वारति यज्ञ क्रिया तप-माल।
तृण तोरति पुनि वारि विशाखा वन्दत पद धरि भाल;
वारि ब्रह्म पर साधन ज्यों रति सेवत पद आवाल।
जय जय करत सुखित आलीगण देखि युगल प्रतिपाल;
ज्यों श्रुतिगण तजि विधि निषेध लखि ब्रह्महिं होत निहाल।
उठत तरंग राग भैरवकी बाजे बजत रसाल;
'दुर्गो' यह दम्पति छवि निरखत मिटत सकल भव-जाल।८

[राग-भैरवी]

सखिन सह क्रीड़त दोउ बन बाग।
अति सुकुमार किशोर सदा वय नव शृंगार सुभाग।
परम रम्य तनु ऊपर छायो मंजुल कुसुम पराग;
ज्यों चैतन्य शक्तियुत ऊपर लसत निगम अनुराग।
दोऊ रचत कुसुम आभूषण विविध कदलि रचि ताग;
शुभ शृंगार सूत्रमें पोहत मानो छवि मणि भाग।
मुखसो प्रिया प्रियहि पहरावत हँसि हँसि भरी सुहाग;
करि शृंगार लाड़िलीको पुनि लाल सम्हारत माँग।
यह लीला लखि सखी सिहार्वें प्रेम सरस मन पाग;
ललिता छवि पर वारि नौन तृण राई डारत आग।

रसिक गम्य यह रस सुख अनुपम रसिकनको नवराग ;
यही ताव रस प्रिय 'दुर्गा' को योग, सिद्धि, जप, याग । ६

[राग-देवगंधार]

संग रसिकवर रसिक मुकुटमनि प्यारी आज लसै ;
मानो चिद्घन नव तमालयुत कनक-लता विलसै ।
मानो शुद्ध चन्द्रमण्डलते प्रेम पियूष रसै ;
चितय परस्पर गूढ़ भावयुत मृदु मुसकान हँसै ।
परम हुलास मिलत दोउ रस बस उपमा लसत असै ;
ज्यों अन्योन्य नील नीरद चित तड़ित लता परसै ।
प्रीति वचन सम्बाद रसीले रसयुत मुख निकसै ;
मानौ विमल भाव रस महँते कोकिल रव हुलसै ।
निज पद रसिक वृन्द अवलोकत वरप्रद दृग दरषै ;
मानौ विधु गत कंज कोशते सुख पराग वरषै ।
खेलत खेल सघन तरु कुंजनु छिपव मनहि करसै ;
मानो विरचि यज्ञ साधन बहु श्रुति गण ब्रह्म धरसै ।
देखत केलि अचल आलीगण चित्र यथा दरशै ;
मानो श्रुतिगण देखि ब्रह्म रस प्रेम निकेत वसै ।
यहां न मति कवि-कृत उपमाकी कहत गिरा धरसै ;
यह रस वसहु सदा 'दुर्गा' हिय रसिक हृदय सरसै । १०

[राग-सारंग]

कुञ्ज सदन लीला सुख सार ।
पराभक्ति रसगम्य महासुद शुषमा सिन्धु-अपार ।
सन्मुख ह्वै आसनपर राजै चौसरि रमा बिछाई ;
रत्न जटित कंचनके पासे फेकत झुकि छवि पाई ।
मानो साधक बुद्धि गोटकूं रंग गेह लै आवत ;
बन्धन दायक करम फन्दके पासे दूर चलावत ।
झगड़त दोउ हँसि-हँसि आपुसमें सखी निवेरत न्याय ;
'दुर्गा'श्रीदम्पति छवि निरखत निज चित चित्र बनाय । ११

श्रीसुदर्शनदासजी

श्रीसुदर्शनदासजीका जन्म गया-जिलान्तर्गत पुनपुना-नदीके तटपर सुपठा-नामक ग्राममें हुआ था। साँकलद्वीपी-ब्राह्मण-कुलोत्पन्न थे। इनकी जन्मपत्री भी सुरक्षित है, उसमें इनका जन्म संवत् १६०३ चैत्र-शुक्ल-षष्ठी वुधवार चतुर्थयाम लिखा है। वाल्यावस्थामें पिताने इन्हें सारस्वतचन्द्रिका पढ़ाया था। पिता भी निम्बार्क-सम्प्रदायके परमभक्त वैष्णव थे, इसलिये सत्संगके प्रभावानुरूप भक्ति-वीज, अल्प उम्रमें ही इनके हृदयमें उत्पन्न होना स्वभाविक ही था। उस देश में विशेषतः श्रीराम-भक्तिका प्रचार होनेके कारण इनकी राम एवं कृष्ण-स्वरूपमें निर्भेद बुद्धि थी। २२ वर्षकी उम्रमें इन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ पश्चात् कुटुम्बियोंका सम्बन्ध परित्यागकर वैराग्य एवं भक्ति-पूर्ण हृदयमें, श्रीराधाकृष्णका भजन-ध्यान करते हुये, श्रीजगन्नाथधाम को पधारे। मार्गमें वालेशरचट्टीके निकट गंगा-तटपर एक निम्बार्क सम्प्रदायानुयायी महात्माका दर्शन हुआ, इन्होंने सादर दण्डवत की एवं निवासस्थानादिक परिचय भी पूछा, उन्होंने अपना नाम मनोहर-दासजी एवं मालाधारी-निर्मोही-अखाड़ेका वृन्दावनवासी-वैष्णव बताया। आपने वहीं महात्माजीसे विधिवत श्रीगोपालमंत्रराजकी दीक्षा एवं विरक्त वेष ग्रहण की। चार दिवश उनके संगमें रहकर कुछ शिक्षा प्राप्त कर लेनेके पश्चात् उनके आज्ञासे श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करनेके लिये पुरी पधारे, एवं महात्माजो भी तीर्थ यात्राके लिये प्रस्थान किये।

मार्गमें तीर्थोंका दर्शन करते हुये श्रीधाममें पहुंचे। प्रथम सुन ही चुके थे कि भगवान् श्रीजगन्नाथजी भक्त-मन-वाच्छा-कल्पतरु हैं इसलिये इनमें विश्वासपूर्ण दृढ़ भावकी कमी नहीं थी, साक्षात् दर्शनकी प्रवल उत्कण्ठा उत्पन्न हुई। मंदिरमें दर्शनकर चन्दनतालाव पर जाकर रात्रिमें विश्राम किये। कुछ काल रात्रि व्यतीत होने पर, एक स्वरूपवान् बालकने आकर कहा—"यहाँ कौन सोता है?" इन्होंने कहा—"साधू है।" फिर उन्होंने कहा—"भूखा क्यों पड़ा है, प्रसाद लो।" प्रसादको सहर्ष स्वीकारकर प्रेम पूर्वक अत्यन्त तृप्त होकर प्रसाद पाया, पश्चात बालरूप भगवान् प्रस्थान कर गये। प्रसाद

पाकर' शयनके पश्चात् रात्रिको स्वप्नावस्थामें क्या देखते हैं, कि वही बालक स्वप्नमें दर्शन देरहा है, और कहता है कि--"तुम जिस उद्देश्यसे यहाँ आये थे, वह पूर्ति होगई न ? प्रसाद देनेवाला मैं ही था।" जागृत होने पर इन्होंने अपना जीवन सार्थक समझा और धन्य माना कि, हमें भगवानका दर्शन होगया। गद्गद् स्वरसे स्तुति की, और भगवानको अपने लिये कष्ट हुआ समझकर क्षमा माँगी।

श्रीजगन्नाथधाममें कुछ दिन निवासकर, वहाँसे श्रीकाशीजी आये, वहाँ रामलीलाका दर्शन किये। उसी समय हृदयमें यह अभिलाषा उत्पन्न हुई कि-'श्रीरामलक्ष्मणजी हमारे हाथसे दुग्ध पान करते, इन्होंने इसलिये कोशिश भी की ; किन्तु वहाँ कौन जाने देता है। सन्ध्या समय रात्रि विश्रामके लिये गंगा-तट पर आकर ठहरे । भोग के लिये दूध भी लेते आये थे। जब वह दूध भोग लगानेके लिये हाथोंमें उठाया तो अकस्मात् वही राम-लक्ष्मण स्वरूप आकर बोले कि—"बाबा हमको दूध नहीं मिला, आपके पास है तो देओ।" अपनी भावकी पूर्ति होते देखकर आनन्दकी सीमा न रही, प्रेम पूर्वक युगल-बन्धु को दुग्ध पान कराये। वे दूधको पानकर कुछ प्रसादी छोड़ दिये एवं जाते समय बोले कि—"अब हम जाते हैं फिर आप लीलामें दर्शन करना।" इन्होंने साष्टांग दण्डवत् की वे चले गये।

वहाँसे श्रीअयोध्याजी आये, यहाँ सर्व-प्रथम रसिक-भक्ति प्रचारक श्रीयुगलानन्दजीसे परिक्रमा-मार्गमें परिचय हुई। युगलानंदजी इन्हें भावुक एवं उच्च कोटिका महात्मा देखकर स्वाश्रम पर ही ठहराये और सद्गुरु मानकर इनसे उपदेश ग्रहण एवं सतसंग करते रहे । 'बड़े महाराज' यह सादर वाक्य इनके नामके स्थान पर प्रयोग करते हुये सेवा करने लगे। भक्ति उपदेशादिक समस्त विषय इन्हींके जिम्मे हुये। जो कोई भक्ति ज्ञान और शास्त्र-विषयक प्रश्न करता—वे कह देते कि 'बड़े महाराजसे शङ्का समाधान कराओ।'

वहाँ रहते हुये इन्होंने हिन्दी एवं संस्कृतमें दो भक्ति-भूषण रामयण लिखीं। एक दिन रसिक-महानुभावोंने लीलानुकरणमें श्रीरामविवाह करना निश्चय किया इसमें जनकजी बननेके लिये इन्हींको आग्रह किया गया । इनके बहुत अस्वीकार करनेपर भी

युगलानन्दजीकी प्रार्थनाने स्वीकृत करा ली। साधू-वेषसे ही जनकजी के स्वरूप बने। कन्यादान देते समय इन्होंने कहा कि-' हम झूठा कन्यादान नहीं देंगे,तुम भी सत्कल्प लो।" आप भी संकल्प लेकर सच्चे हृदगत-भावसे कन्यादान देकर,हिन्दू-प्रथानुसार वहां का जल भी पीना वर्जित जान, उसी समय चल दिये। वहांके रसिक-समाजको अपनी भूल पर अत्यन्त क्षोभ एवं पछतावा हुआ। अयोध्यामें लगभग १८ वर्ष निवास करनेके पश्चात् श्रीवृन्दावन आये—तबसे आजन्म पर्यन्त यहीं निवास किये।

वृन्दावनमें विरक्त, निस्पृह-अवस्थामें रहने लगे। एकदिन सर्वप्रथम अपरिचित अवस्थामें वृन्दावनकी परिक्रमा प्रारम्भ की। चौमासेका मौसम था। जब केशीघाटके निकट पहुँचे तो एक तेजोमय कान्तिमान् बालक इनके संग होलिया, और कहा-"बाबा, परिक्रमा चल रहे हो क्या ?" इन्होंने कहा—"हाँ" पुनः बालकने कहते हुए कि—"हम भी चलेंगे" आगे हो लिया। फिर वंशीवटके पास पूछा—"बाबा तुम वृन्दावन-निवास करोगे ?" इन्होंने कहा—"हाँ" उन्होंने कहा—"ठीक है तुम यहीं निवास करो, वृन्दावन परित्यागकर कहीं मत जाना।" पश्चात् बाल्यस्वरूप भगवान अन्तर्ध्यान होगये, ये उन्हें ढूढ़ते ही रह गये। वृन्दावनमें भ्रमण करते समय और एक जगह साधू-वेषधारी-बालकका दर्शन हुआ उन्होंने इन्हें जमीनपर नक्शा बनाकर, श्रीमहावाणीजीके योगपीठों का परिज्ञान कराया। पश्चात अन्तर्ध्यान होगये। श्रीहरिव्यासदेवजी की कृपा जानकर, अति प्रसन्न हुये। और श्रीवृन्दावनमें अखंडवास की दृढ़ निश्चय की।

केमारीवन, अभयरामकी बगीची, नन्दरामकी बगीची, धीरजलालकीबगीची, शाहजहांपुरवालो—बगीची, सोनरखमें शोभरीऋषि की गुफा, बनविहार, अनेक स्थलोंपर निवास करते हुये, अहर्निशि भजनमें निमग्न रहे, अंतमें रसिकविहारी स्थानके महंत श्रीगङ्गाशरणजी अत्यन्त आग्रह-पूर्वक स्थानमें लेगये,वहाँ एक कमरेमें निवास करने लगे। रसिकविहारीजीके मंदिरमें दस साल तक निवास करते हुये कथा, सत्संग एवं उपदेशसे वैष्णव समाज और जिज्ञासुओंको तृप्त किए। वैष्णवोंमें इनका सम्बन्ध-भाव' था, बड़े ही श्रद्धा-पूर्वक

परिक्रामा दण्डवत् किया करते थे। रविवारके दिन नियमित रूपसे स्थान-स्थानमें वैष्णव-दर्शन को जाते थे। विहारीजीके दर्शनका भी नित्य-नियम था। नियमितभजनमें ऐसा दृढ़ थे कि, दुखी अवस्थामेंभी २५००नाम एवं १००मंत्रराज जपकर भोजन करते थे। आजन्म विघ्न-ग्रसित नहीं हुये केवल२॥पाव दूधही उनका मुख्याहार था। नरेशादिकों केवन्धान करनेकी आग्रहको भी इन्होंने नहीं माना। कथामें इनके अद्‌भुत वक्तृत्वशक्तिसे सभीप्रसन्नथे,येअद्वितियवक्ता थे। अन्तअवस्थाके अस्वस्थतामें भी कोई वैष्णव जाता तो नित्य-स्वभावानुसार उसका चरणस्पर्शके लिये हाथ बढ़ाते। अंतमें चारों तरफ रसिक महानुभावोंकी भीड़ थी, उनमें इनके शिष्य गोविंदशरणजी भी थे। जब ये श्रीयुगल सरकार के चरण-शरण प्राप्त होगये तो उसी समय भ्रांत होकर गोविंदशरणजीने सबसे कहा-' ये देखो महाराजजीके सिरहाने प्रिया प्रियतम खड़े हैं" सब देखने लगे; किन्तु अपार कृपातो इन्हीं पर हुई थी। सम्बत् १९७९में नित्यधाम निवासी हुए। इनके द्वारा निर्मित सौग्रंथ सुने जाते हैं, जो यत्र-तत्र बिखरे हुये पड़े हैं। अभीतक जो उपलब्ध हुए हैं उनके नाम नीचे लिखे जाते हैं।

मुखिया श्रीगोपालदासजी जो, श्रीजीकी बगीचीमें निवास करते हैं, इन्हें अपना सिद्धगुरू मानते थे-और भी इनके कईएक जोग्य शिष्य हैं, जिनसे संप्रदायको बहुत कुछ आशा है—उनके नाम निम्न लिखित हैं-बाबू श्रीराधेश्यामजी एम० ए० एल० एल० बी० इनके पिताजी भी इन्हीं महात्माजी से दीक्षित हुए थे। (२) श्रीगोविंदशरणजी साहित्य व्याकरणाचार्य (३)श्रीयदुवंशरायजा(श्यामासखी) (४)श्रीगणेशदासजी तार बाबू आदि।

हिन्दी ग्रन्थोंकी सूची

१—निकुञ्जदर्पण अष्ठयाम २—निकुञ्ज—प्रकाश ३—राधाकृष्ण मानसी—सेवा—अष्ठयाम ४—तत्त्वबोध—रससिद्धान्त (छप्पै) ५—रसमञ्जरी (पदात्मक) ६—व्रजोल्लास (कवित्त—सवैये) ९—ज्ञानचपला (कवित्त) १०—मौन—मञ्जरी (दोहा) ११—ध्यानमञ्जरी १२—युगल-ध्यान १३—भक्तचालीसा (छप्पै) १४—विनयपत्रिका १५—ज्ञान-संदीपनी १५—तुलसी-कृत रामायण का उल्था (पदात्मक) १६—राधाकृष्णव्याह-विनोद १७—राधाकृष्ण

चौसर-खेल १८—राधाकृष्ण-जन्मोत्सवलीला १९—बारहखड़ी(संस्कृत) २०—विश्वप्रकाश २१—भक्तिभूषण-रामायण २२—सिद्धान्त-दर्पण २३—स्तोत्रमाला ३०—स्तोत्र २४—स्तोत्र-संग्रह २५—भक्ति—महिमा २६—आचार्य-परम्परा २७—गद्यावली २८—संग्रह-ज्ञानप्रदीप-सिद्धांत २९—मानसी—सेवा—अष्टयाम ३०—वेदान्तसेतु ३१—निम्बार्क जन्मोत्सव आदि

[पद]

लाड़िलीलालकी वल्लभा गुणभरी जयति जयजयति श्रीरंगदेवी;
प्राणके प्राण जेहि जीवके जीव श्रीकृष्ण श्रीराधिका सर्व सेवी।
तप्त हेमांग तेजोमयी कान्तिवपु रूपरस आगरी धीर दक्षा;
लाड़िली युगलको रैन दिन चैन सुख दैन हित करति सब भाँति रक्षा।
सुभ्रता अंगकी को कहै छवि महा फाँवे रही रंग सुही सु सारी;
कामिनीकन्त शृंगारिवेकी कला योग नहिं जानती और आरी।
नाइ पद शीश कहि पाहि कर जोरिके शरण मन राखि भईचरण चेरी;
परम उदार सुखसार सुनिके दई नेकु ललितप्रिया भई न देरी। १

जयति जयजयति जयजयति श्रीहरिप्रिये लाड़िलीलालजेहि प्रान प्यारे।
विश्व उपकार जग-जीवको तारिवे हेतु भुवि आय शुभरूप धारे;
नाम जेहि लेत सुनि सब सुख देत हँसि राधिका कृष्ण निज दासिजानी।
करति सेवाधिकारी अवसि आसुही आपनो योग कवि वदत बानी;
कृपा आगार रस-रीतिमें अग्रनी जांहि मत मानि प्रिय युगल रीझै।
जाहि मुख देखि रुख लेखि क्रीड़ा करैं बैन सुनि हर्षि रस रंग भींजै;
सेव्य आचार्य जेहि श्राहितु सहचरी ताहि पाथोज पद केरि चेरी।
सरणसह भीति परिणाम ललितप्रिया पाहि लखि किंकरी जानि मेरी। २

बसिये श्रीवृंदावन धाम।
अंग पुलकि निशि—दिवश बालिये श्रीराधे-राधे नाम।
जाहि विवश होइ रहत छबीलो मोहन श्रीघनश्याम;
तेहि पद-रेणु परे तन रंचक तो क्या करै विधिवाम।
खेलनभूमि लाड़िलीजू कि जहां सुख आठहुँ याम;
ब्रह्मलोक वैकुण्ड आदिपुर तिन्हहूँ सो क्या काम।

ललितप्रिया जेहि त्यागि परमपद पायेहुँ नहिं विश्राम ;
भाग बड़ो तब यह ब्रज-रजमें पावत मन अभिराम ॥ ३

श्यामा श्यामके गुण गैहों ।

जासुकृपा भयो सुलभ रेणु यह फिरि-फिरि सीस चढ़ैहों ।
रज पर वारि डारि तीरथ सब प्रेमकुटी कर छैहों ;
कोटि-कोटि असमंजस पायेहुँ ब्रज तजि अनत न जैहों ।
टूक माँगि ब्रजवासिन घरसो खात परम सुख पैहों ;
करम-धरमके काम कौन अब महिमा मनहिं वसैहों ।
चमत्कार चिन्तामणि ब्रजके क्या सपने बिसरैहों ;
दम्पति चरण-सरोज-मंजु महं मन-मधुकर अरुझैहों ।
ललितप्रिया नहिं भूलि भरम अब काहू ओर चितैहों ;
होनहार जोई होय सही सोइ वल्लभ केरी कहैहों । ४

ब्रज समान कितहूँ नहिं देखौं ।
सुनि पुराण सन्तन मुख महिमा निश्चय आनि यहै उर लेखौं ;
यद्यपि हरि-अवतार और छिति पावन जानि मानि मुद देवा ।
चढ़ि बिमान करि गान विमल गुण बरषि प्रसन्न जनायउ सेवा ;
रूपान्तर बनि विप्रवेष बहु विरचि धरा हरि सन्निधि आयो ।
सोइ सुपर्व सद्रूप अवनि यहि परति सुरति तनुकी बिसरायो ;
नहिं विमान नहिं वाहन पर चढ़ि श्यामशरण चतुरानन आपु ।
आये तजि अभिमान सकल विधि जो सुपर्व सबहींको बापु ;
मुकुट कहीं लुढ़के ब्रज-रजमें भाल कमल-पदपै धरि राखे ।
याचत निज ब्रज-वास पाहि कहि ह्वै सदीन विनती बहु भाषे ;
त्यों मघवा सुरनाथ सहित सुर शरण भयो सबही जग साखी ।
ललितप्रिया यह बात यथारथ आपन सी कछु ऐंठ न राखी ;

ब्रजरजमें लखी—निज भाग ।

लाड़िली-पद परसि पावन अचल मोर सोहाग ;

श्री-कृपा विन नेकु यहिमें होत नहिं अनुराग ।

मोह-रजनी नीन्दवस रज-परसि आतम जाग ;

माल मन-मोती विथुरिरज प्रीति दृढ़तर लाग ।

सुमिरु पद ललितप्रिया ध्रुव मेटिहैं सब दाग ;

प्यारे ! अब कछु और न चाहिय ।
भाँति सबै करि कृपा सुधारेउ अब ऐसेहि निरवाहिय ;
मैं तो तिहारे हाथ बिकानी जानतहौं रहि का हिय ।
'ललितप्रिया' आसा ब्रज-रजकी नेह करो की साहिय ;

ब्रज-रज त्यागि कहौं कित जैहों ?
कोउ वरु भूप होय त्रिभुवनपति ताहि न सपनेहु चैहों ;
श्यामा-श्याम चरण-पङ्कजके मैं जननीच कहैहों ।
वारि जाउं दम्पति छवि ऊपर घसि तनु अंग चढ़ैहों ;
दुख सुख भोगकर्म अनेको ना तुमको गोहरैहों ।
जो चित चाहै करौ सोई अब लालनशरन सीसधरिदैहों ;
आछेरहौ दिन रैन मुदित मन मैंहु विरञ्चि मनैहों ।
'ललितप्रिया' तव द्वारविरहिनी ह्वै परि समय वितैहों ; ८

तव पद रेणु परे तनु मेरो ।
तो मन श्याम मिलन सुख मानत आनँद होत घनेरो ;
ब्रज-रजकी महिमा पावन मुनि-गण पुरान मिलिटेरो ।
जोइ जाने सोइ सब सुखमाने परसिचरन-रज तेरो ;
'ललितप्रिया' जोई सुखद कुंवरतव विरद आपनोहेरो ।
स्वाद सुखद लवि छाइ रहीतनु कथा यह झूठ करेरो । ६

रजको रहो परम उर आशा ;
समन पाप सन्ताप शोकके यह अविचल विश्वासा ।
भावै भजन करै वनि आवै जेतिक सो भल जानो ;
पै सब काज बनै ब्रज-रज सो यह निश्चय अनुमानो ।
रेणु सुलभ यह भाग योग सो होत कहूं ध्रुव वानी ;
प्रियतम सो प्रिय अधिक भूमि यह रसिकन उर अनुगानी ।
पहिचानौं नहिं योग दूसरे को निजको यह सांची ;
'ललितप्रिया' करुना करिहै जेहि कीरति त्रिभुवन माची । १०

जेहि प्रिय श्रीवृन्दावन नाम ;
सोई कुलीन प्रवीन पण्डित सकल सद्गुण धाम ।
तात मात सखा सुहृद मम सोई सुभग शरीर ;
जो सदा ब्रज-वास मिच्छति करि अचल मन थीर ।

हरि-कृपा जेहिको भयौ उर ब्रज-प्रभाव प्रकाश;
जेहि विरञ्चि सुरेश निसि-दिन होन चाहत दास।
धन्य पुनि-पुनि कहि सराहत सुख भरे दिन रैन;
तेहि विलोकत लहत सुख 'ललितप्रिया' के नैन। ११

हौं हित सबहि भाँति ब्रज-वासी।
तात,मात,गुरु,सखा, सहोदर, स्वामी, दासरु दासी;
जनम जनम ब्रज-देश हमारो भूलि विदेश न चाहौं।
दुख सुख यथा जोग तनुके फल ब्रजमें सबहिं निबाहौं;
राधा-माधव पद-सरोज तजि दूजी और न आसा।
जो स्वामी समरत्थ हमारो है ताको सब दासा।
'ललितप्रिया' तेहि पद-सरोजकी जनम जनमकी चेरी;
जाको विरद विदित त्रिभुवनमें पुण्य पुरानन टेरी। १२

नातो ब्रज-वासिन सो साँचो।
जिनके हृदय विसद मन्दिरमें राधामाधव राचो।
और सकल जंजाल जक्तमें तेहिको भूलि न देखौं;
विधि, शंकर,सुरपति अभक्तको तृण समान नहिं लेखौं।
प्राणनाथ प्रिय होय सुपंज तेहि हँसिके हीय लगावों;
करि आदर सनमान सबहि विधि लहि तेहि जूठन पावों।
'ललितप्रिया' प्रण सत्य सत्य यह भाषौं अविचल बानी;
प्रिय प्यारी अनुकूल जानि जग लाभ लहौं की हानी। १३

जो प्रिय श्यामा-श्याम न लागे।
चाह न चित ब्रज-रज शरीर नर, पायेहु परम अभागे;
अति बिडम्बना ताहि मिलन नहिं भूल अपन पो मानौ।
'ललितप्रिया' यद्यपि समीप तौ दूर दूर पहिचानौ। १४

धन्य सोइ जीव तजि जगत-जञ्जाल श्रीराधिका कृष्णके शरण आये;
दीप दीपान्त जप योग-फल भजनके देवता पित्र अवतार गाये।
कृष्ण करुणा भई लाड़िलीकुँवरिके राज ब्रजदेशमें वास पाये;
धन्य वह मातु जेहिके जठर-सो भये धन्य वह तात जेहि शुक्र जाये।
कौन तेहि तरनमें रहेउ सनेह क्या पापके मेरु क्या हरि रिझाये;
धन्य वह देश जहँते चलो दिव्य छिति जीव जत जोनि मोमन लगाये।
सुरति निज डोरिवल कृपाआगारके सिमिटिगे पुछ नहिं कोउ कोय;
धन्य ब्रज-देशमें जन्म जो-जा लियो देस 'ललितप्रिया' अचल छाये।
ताहि [illegible]लताकी हियो आसरा याहि मुखवदत पद सीस नाये। १५

गोस्वामी श्रीकिशोरीलालजी

गोस्वामी श्रीकिशोरीलालजीके सुपुत्र गोस्वामी श्रीछबीलेलालजी श्रीवृन्दावनमें ही निवास करते हैं। आप एक बड़े ही सुयोग्य विद्वान् एवं नेता हैं। श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें वैष्णव-सर्वस्व नामक एकमासिक-पत्र निकलता था, उसके आपही संचालक थे, अब वह पत्र दुर्भाग्यवश बन्द होगया है। ये श्रीहरिव्यासदेवजीके बड़े शिष्य द्वारा-संस्थापक श्रीमत्स्वभूदेवाचार्यके शिष्य परम्परा और उनके भ्राताके वंश-परम्परामें हैं। कविताकौमुदीकार श्रीरामनरेश-त्रिपाठीने इनका संक्षिप्त परिचय इसप्रकार लिखा है—"गोस्वामी श्रीकेदारनाथजी महाराज वृन्दावनमें बड़े विद्वान् और यशस्वी होगये हैं। इन्होंने ब्रह्मसूत्र और भगवद्-गीता पर भाष्य और श्रीमद्भागवत पर तिलक रचा है। उनके पुत्र गोस्वामी श्रीवाशुदेवशरणदेवाचार्यजी संस्कृत, ब्रजभाषा, हिन्दी और बंगलाके अच्छे विद्वान् हुए। इनके ही पुत्र पं० किशोरीलाल गोस्वामी हैं। इनका जन्म सं० १९२२ वि० के माघ-मासकी अमावस्याको हुआ। आठ वर्षकी अवस्थामें इनका यज्ञोपवीत हुआ और साथही विद्यारम्भ की।

इनके मातामह गोस्वामी श्रीकृष्णचैतन्यदेवजी काशीके प्रसिद्ध गोलघर—नामक मन्दिरमें विराजते थे। वे काशीके प्रसिद्ध रईस श्रीहर्षचन्द्रजीके गुरु और राजा शिवप्रसाद—सितारेहिन्दके पड़ोसी थे। पं० किशोरीलालजीका पठन-पाठन काशीमें ही चलने लगा। संस्कृतमें इन्होंने न्याय, योग, व्याकरण, वेदान्त, ज्योतिष आदि विषयोंका अध्ययन किया और साहित्यमें आचार्य परीक्षातकके ग्रन्थ पढ़े।

इनके पिताजी बहुत दिनोंतक आरामें रहते थे, अतः ये भी वहीं रहे। और आरेके प्रसिद्ध विद्वान् श्रीपीताम्बर तथा रुद्रदत्तजी से संस्कृत साहित्यका अध्ययन करते रहे। आरेमें कोई पुस्तकालय नहीं था, अतः इन्होंने 'आर्यपुस्तकालय' नामसे एक पुस्तकालय स्थापित किया। उसके द्वारा वहां हिन्दी-भाषाका अच्छा प्रचार हुआ और पढ़नेमें हिन्दीके प्रचारकोंमें इनका स्थान भी बहुत ऊँचा

है। आरेके प्रसिद्ध वैद्यराज पं० बालगोविंद-त्रिपाठी के सहायता से 'वर्णधर्मोपयोगिनी' नामकी एक सभा भी स्थापितकी थी और उस सभा द्वारा 'वर्णधर्मोपयोगिनी' पाठशाला स्थापित कराई थी। सभाका अधिकांश कार्य यही करते थे। सं० १६४७ में ये उक्त सभासे प्रतिनिधि होकर दिल्लीमें भारत-धर्म-महामण्डलमें सम्मिलित हुये थे।

'कुर्मी जातिकी' वर्णव्यवस्था पर संस्कृतमें इन्होंने एक पुस्तक लिखी थी, 'जो विज्ञवृंदावन' नामक पत्रमें छपा करती थी।

हिन्दी-भाषाके सुप्रसिद्ध उद्धारक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी इनके मातामहके साहित्य-शिष्य थे। इससे इनका भारतेन्दुजीसे अत्यन्त घनिष्ट संबंध रहता था। इन्होंने अपने मातामहसे हिन्दी-साहित्य, पिङ्गल आदि पढ़े थे। राजा शिवप्रसाद और भारतेन्दुजी की प्रेरणासे इन्होंने हिन्दीमें ' प्रणयिनी-परिणाम" नामक पहला उपन्यास लिखा। इसके अनन्तर ये आरसे काशी में आरहे।

हिन्दी-भाषाकी सुप्रसिद्ध मासिक-पत्रिका सरस्वतीके प्रथम वर्षके सम्पादकोंमें ये भी थे। और नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, नागरी-प्रचारिणी-ग्रन्थमाला, बालसखा आदिके सम्पादक तथा उपसम्पादक रह चुके हैं। पिछले बीस-वर्षसे ये उपन्यास नामकी एक मासिक-पुस्तक निकाल रहे हैं। और सात वर्षोंसे 'वैष्णवसर्वस्व' नामक एक मासिकपत्र भी। सन् १६१३में इन्होंने वृंदावनमें श्रीसुदर्शन-प्रेस नाम का एक प्रेस भी खोल दिया है।

ये प्रारम्भसे ही काशीकी नागरी-प्रचारिणी-सभाके सभासद थे। सभाके कार्य संचालकोंमें कुछ मतभेद होने पर इन्होंने बाबू श्याम-सुन्दरदासका पक्ष समर्थन करते हुये, सभाका सम्बन्ध त्याग दिया। कई सभाओंके ये सभापतिहो चुके हैं। आगरेमें गौड़-महासभाके यही सभापति थे। रीवाँ राज्यकी चतुः सम्प्रदाय श्रीवैष्णव-महासभाके ये ट्रष्टी थे। रीवाँके स्वर्गीय महाराजा इनका बहुत सम्मान करते थे।

डायमण्ड जुबिलीके समय महारानी विक्टोरियाका जीवन-चरित्र इन्होंने संस्कृतमें लिखकर 'वैष्णव-समाज-काशी'के द्वारा विलायत भेजा था। इसपर महारानीकी आज्ञासे होमडिपार्टमेंटने इनको धन्यवादका परवाना दिया था।

इन्होंने बङ्ग-भाषाके पन्द्रह पुस्तकोंका हिन्दीमें अनुवाद कर, बाँकीपुर खड्ग-विलास प्रेसको दिया था, जिनमें कुछ पुस्तकें इनके नामसे छप चुकी हैं। इनके लिखे हुये ग्रन्थोंकी सूची इसप्रकार है—कविता—१—समस्या-पूर्ति-मञ्जरी २—भागवतसार-पच्चीसी ३—युगलरस-माधुरी ४—अध्यात्म-प्रकाश ५—कण्ठमाला ६—अश्रु-धारा ७—प्रेमपुष्पांजलि ८—चन्द्रोदय ९—आकाशकुसुम १०—वीरेन्द्र विजय-काव्य ११—प्रणयोपहार १२—कन्दर्प विजय-काव्य १३—कविता-संग्रह १४—काशी-कवि-समाजकी-समस्या-पूर्ति १५—सुजान-रसखान १६—रसखानसतक १७—प्रेमरत्नमाला १८—प्रेमपुष्पमाला १९—प्रेमवाटिका २०—कविता-मञ्जरी २१—कवि माधुरी २२—बाल-कुतूहल २३—बीनती-विनोद २४—वीर-बाला २५—एकनारी-व्रत २६—सावित्री २७—होली-रङ्ग-घोलो।

गानेकी पुस्तकें-१—सावन-सुहावन २—होली-मौसिम-वहार ३—वर्षा-विनोद ४—ठुमरीका-ठाट ५—मञ्जुपदावली, ६—नित्य-कीर्तन-मालिका, ७—वर्षोत्सव-कीर्तन-मालिका, ८—जातीय-संगीत, ९—संगीतशिक्षा, १०—चैती गुलाब, ११—वसन्तबहार।

विविध—विषय—१—वेदशिक्षा, २—हठयोग, ३—अष्टांग योग, ४—ज्ञान—संकलिनी ५—तन्त्र—रहस्य, ६—निरालम्बोपनिषद, ७—चाक्षुषोपनिषद, ८—वैराग्य-प्रदीप, ९—तीर्थ—महिमा १०—कुम्भ-पर्व-व्यवस्था ११—गङ्गा—स्थित सिद्धान्त।

सम्प्रदायिक—१—नित्यकृत्य-चन्द्रिका, २—युगलार्चन-कौमुदी ३—वर्षोत्सवमयूष, ४—सम्प्रदाय—सिद्धान्त, ५—सम्प्रदाय-दिवाकर ६—ब्रह्ममीमांशा, ७—धर्ममीमांशा, ८—संध्या—प्रयोग, ९—संध्या संक्षिप्त, १०—संध्या—भाषा, ११—गायत्री—व्याख्या, १२—आचार्य चरित्र, १३—हंसावतार—चरित, १४—राधिकोपनिषद, १५—कापिल सूत्र।

जीवनचरित्र—१—अर्लमेयो, २—हम्मीर, ३—मेवाड़-राज्य, ४—मरहठोंका उदय, ५—औरङ्गजेबकी राजनीति, ६—लार्डरिपन, ७—बुद्धदेव, ८—अशोक—चरितावली, ९—वर्द्धमान—राजवंश,

१०—मधुच्छका का सोपान, ११—जोजेफाइन, १२—नेपोलियन १३—श्रीकृष्णचैतन्यदेव, १४—बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० १५—बाबू राधाकृष्णदास १६—पं० मदनमोहन—मालवीय १७—सर एन्टोनी मैकडानल्ड १८—राजालक्ष्मणसिंह १९—बाबू रामकाली चौधूरी २०—मैक्समूलर भट्ट २१—राजाशिवप्रसाद—सितारे-हिन्द २२—पं० अंबिकादत्त—व्यास २३—वाल्मीकि—चरित्र २४—भीष्म पितामह २५—पञ्चपाण्डव।

नाटकरूपक—१—मयंक-मञ्जरी २—चौपटचपेट ३—भारतोदय, ४—नाटथ सम्भव ५—सावित्री सत्यवान, ६—प्रणय पारिजात, ७—प्रबंध-पारिजात, ८—प्रियदर्शिका, ९—स्वर्गकी सभा, १०—प्रभावती—परिणय ११—कन्दर्पकेलि १२—वर्षा—विहार—गोष्ठी १३—चण्डाल-चौकड़ी, १४—पोंगावसन्त १५—बी-जान १६—दिवा भीति १७—वैशाषनन्दन १८—शालाबाबू १९—कालासाहब २०—यमराज और हम २१—गोबर-गणेश २२—जोरूदास २३—वेश्यावल्लभ २४—एक एक के दो दो २५—स्वर्गकी सीढ़ी।

उपन्यास—१—चपला २—तारा ३—लीलावती ४—रजिया बेगम ५—मल्लिकादेवी ६—राजकुमारी ७—कुसुमकुमारी ८—तरुण तपस्विनी ९—हृदयहारिणी १०—लवङ्गलता ११—याकूती तख्ती १२—कटे मूड़ की दो बातें १३—कनक—कुसुम १४—सुखसर्वरी १५—प्रेममई १६—गुलबहार १७—इन्दुमती १८—लावण्यमयी १९—पणयिनी परिणाय २०—रजिन्देकी लाश २१—चन्दावली २२—चन्द्रिका २३—हीराबाई २४—लखनऊकी कब्र २५—पुनर्जन्म २६—त्रिवेणी २७—माधवीमाधव २८—राजराजेश्वरी २९—जडाऊ कंकणमें कालभुजङ्ग ३०—आरसीमें हीरेकी कनी ३१—विहार रहस्य ३२—ठगिनी ३३—भोजपुरकी ठगी ३४—जगदीशपुरकी गुप्त कथा ३५—राजगृह की सुरंग ३६—प्रसन्न—पथिक वा पथ-प्रदर्शिनी ३७—कुंवरसिंह ३८—बनारस—रहस्य ३९—हमारी—रामकहानी ४० अंगूठीका नगीना ४१—इसे जिन्दा कहें कि मुर्दा ४२—सदा सोहागिनि ४३—दिल्लीकी गुप्त—कथा ४५—जनान खाने में दिवान ४५—प्रेम—परिणाम, ४६—पातालपुरी, ४७—दोसौ

तीन, ४८-औरतसे औरतका व्याह, ४९-रोहितासगढ़की रानी, ५०-अन्धेरी कोठरी, ५१—काज़ीकी चीठी, ५२-राजकन्या, ५३-राक्ष-सेन्द्रराक्षस वा घड़ा भर विष, ५४—साँपकी बाँबी, ५५—सेजपर साँप ५६—इसे चौधराइन कहें कि डायन, ५७—राजबाला, ५८—आप आपही हैं, ५९—नरकनसेनी ६०—अन्धेरीरात, ६१—सोना और सुगन्ध, ६२—आदर्श-परिणय, ६३—शान्तिनिकेतन, ६४—वारवि-लासिनि, ६५—शान्तिकुटीर।

पत्र-पत्रिकाओं में स्फुट लेख--

लेख—	संख्या	लेख--	संख्या
१—सार सुधानिधि	५७	२२-विद्याविनोद	१
२—उचितवक्ता	११	२३-भारतभगिनी	१
३—भारतमित्र	२२	२४-श्रीवेंकटेश्वर समाचार	२
४—आर्य्यावर्त	४	२५-भाषा भूषण	७
५—पीयूष-प्रवाह	५	२६-विज्ञ वृन्दावन	३८
६—चम्पारन-चन्द्रिका	५१	२७-सर्वहित	३२
७—हरीश्चन्द्र-कौमुदी	१०	२८-सत्य वक्ता	८
८—क्षत्रीय-पत्रिका	२	२९-सुदर्शनचक्र	
९—विद्या-धर्म-दीपिका	५	३०—नागरी नीरद	६
१०-द्विज पत्रिका	१	३१-विहारभूषण	३
११-विहार बन्धु	६२	३२-रसिकमित्र	१
१२-सारन सरोज	४०	३३-सज्जन कीर्ति सुधाकर	१
१३-भारत जीवन	३	३४-सरस्वती	५८
१४-भारत वर्ष	१०१	३५—नागरी प्रचारिणी पत्रिका	२
१५-ब्रह्मावर्त	१	३६-नागरी प्रचारिणी ग्रन्थमाला	१
१६ हिन्दी प्रदीप	७	३७-बालप्रभाकर	५
१७-ब्राह्मण	१	३८-मित्र	३
१८—भारतधर्म महामण्डल	११	३९-मर्यादा	१५
१९-हिन्दोस्तान	२५	४०-यादवेन्द्र राघवेन्द्र	
२०—राजस्थान समाचार	१२	४२—कलकत्ता समाचार आदि	६
२१-दिनकर प्रकाश	१		

गोस्वामीजीने सात पुस्तकें संस्कृतमें लिखी हैं, जिनके नाम ये हैं-१-मयूष-मालिनी, २—प्रणयोच्छ्वास, ३—शृंगाररत्नमाला ४—शृंगारसुधाकर, ५—शृंगारसुधाविन्दु, ६—सांख्यसुधाकर, ७—संक्षिप्त साँख्य तत्त्व समास कारिका।

गोस्वामीजीका जीवन साहित्य-मय है। इन्होंने अपने जीवनमें एकही काम किया है, और वह है, हिन्दी-साहित्य-सेवा। हिन्दी-साहित्य-सेवियोंके अतिरिक्त इनकी मित्रता और किसीसे नहीं है। असाहित्य सेवियोंसे ये बातचीत करनेमें भी घबड़ाते हैं। मेला, तमशा, सभा, समाज-किसीमें भी इनकी रुचि नहीं है। भोजन, भजन एवं शयनसे जो समय बचता है उसे ये साहित्य-सेवामें लगाते हैं। मकानसे तभी निकलते हैं जब कहीं जानेके लिये, रेलवे स्टेशन की आवश्यकता पड़े और घरपर भी आये हुये उसी सज्जनसे मिलते हैं; जो हिन्दी-साहित्यसे सम्बन्ध रखता हो। पठन-पाठनके अतिरिक्त ये अपना समय एक मिनट भी देना नहीं चाहते। इनको जबतक विवश न किया जाय, ये किसी सभामें भी नहीं जाते। इनका कहना है कि किसी सभामें जाकर हिन्दीकी सेवा करनेकी अपेक्षा घरपर रहकर हिन्दीकी अधिक सेवा हो सकती है। ये 'उपाधि' से बहुत दूर भागते हैं। कईवार लोगोंने इनको उपाधियां देनी चाही, पर इन्होंने साफ इनकार कर दिया। भारतधर्म-महामण्डलने इनको एकबार एक उपाधि भेज दी, इस पर इन्होंने अपने मित्र चतुर्वेदी द्वारकाप्रसादजी-शर्म्मासे कहा कि 'असाहित्य-सेवीगण साहित्य-सेवियोंको उपाधि देकर अपनी अयोग्यता नहीं प्रगट करते, प्रत्युत साहित्य-सेवियोंका अपमान भी करते हैं।' सरस्वती और मर्यादापर इनका बहुतही स्नेह है। यह इसलिये कि ये दोनों इनके मित्रोंसे सम्पादित होती हैं। अथवा इनके ये लेखक रहे हैं। ये जब दो-चार साहित्य-सेवियोंके साथ बैठ जाते हैं, तब रोते हुये मनुष्य भी हँसते-हँसते लोट-पोट होने लगते हैं। ये हिन्दी-भाषामें बहुत अच्छा व्याख्यान देते हैं। व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनोंमें बड़ी शीघ्रतासे कविता करते हैं। यही हाल संस्कृतमें भी है। ये कई तरहकी भाषा लिखनेमें सिद्ध-हस्त हैं। ये अपनी पुस्तकें पुस्तकालयों और अतिथियोंको बड़ी ही उदारतासे

देते हैं। गोस्वामीजी लगभग पिछले ४५ वर्षसे हिन्दी-साहित्यकी सेवा कर रहे हैं, और इतनी बड़ी सेवाके परिवर्तनमें कभी कोई वेतन पुरस्कार, पदक आदि नहीं ग्रहण किया। निःस्वार्थ भावसे गोस्वामीजी रातदिन हिन्दी-साहित्य-सेवामें तत्पर रहते हैं।"

यह परिचय लेखकने उनके विद्यमान-कालमें लिखी थी, अब गोस्वामीजी इस असार-संसारमें नहीं हैं। वे साहित्य-जगतमें अपनी अमूल्य कीर्ति, एवं आदर्श रखकर सदाके लिये श्रीवृन्दावन-विहारीके चरण-शरणमें प्राप्त होगये।

[कवित्त]

पारावार दुस्तर अपार तत्त्व-संघ सार, अन्तर करन सोई सागर ललाम हैं; त्रिगुण-समीर भव-वासना तरंग जामें, कामादिक-वक्र नक्र आदि सब ठाम हैं। ज्ञान-व्योम मध्यजबै उदित विराग-सूर्य, नासत सकल तम-तोम जे निकाम हैं; ताही समय खिलै भक्त हृदय सराज जामें, सोहैं सदा कृष्ण छविधाम-घनश्याम हैं॥१॥

परम निकाम भव वारिधि मुदाम जहाँ, आठोयाम त्रिगुन-तरंग सब ठाम हैं; काम कामनाके नक्र वक्र बनि वाम चहूँ, ग्रसि तम-चाम हरैं सबै गुन-ग्राम हैं। तौहूँ जे अकाम योगी ध्यावैं पूर्ण काम तवै, प्रगट सकाम रूप गुण कर्मनाम हैं; अति अभिराम भक्त-हृदय-सरोज-धाम, सोहैं घनश्याम-कृष्ण ललित-ललाम हैं॥२।

भक्तजन-अन्तःकर्न-सागर-हृदय-मध्य, सुखद सरोज फुल्ल-कर्णिकार धन्यधाम; मोहन मनोज्ञ वेज्ञ विशद विराजमान, श्याम अभिराम कृष्ण-नाम सदा पूर्ण काम। नखते शिखानिलों सुशोभित अपूर्व वेश, एक कर नवनीत एक कर वेणुवाम। नुपूर मुदाम मणिदाम वरमाल-भाम, कंकण तिलक मौलि मुकुट लसै ललाम॥३॥

आजु नन्दलालको जवारो खोसिवेको भोर, आठो उपनन्द सुता आई गीत गाई हैं; विन्ध्यावली आइकै प्रणाम करी प्रभु ढिग, बैठी जहाँ भामिनी हियेमें अकुलाई है। श्याम सो किशोरी व्रजको, यों करैं रार अजू, याको मैं न दूँगी जवा ढांकिवे जू धाई है; भैया तू हमारो, हम बहिन तिहारी श्याम, नई वाम कौन जो तिहारे आजु आई है॥४॥

[बसंत]

जयराधा माधव गोपीजन श्रीवृंदावन गाम ;
जय कालिन्दी कूल लताद्रुम सुभग-कुंज अभिराम ।
जयति नंद-कुल-कुमद-कलाधर कोटिकाम छवि-धाम ;
जय कीरति-कुलनवल चन्द्रिका-रसिककिसोरि ललाम ।५

[बसंत]

श्रीवृषभानुनन्दनी के सँग श्रीव्रजराज-कुमार ;
विहरत सुभग सहेलिन लीन्हें सजि सुंदर सिंगार ।
पीत वसन भूषन तन धारे सोभा सहज अपार ;
जेहि लखि चन्द मंद मन लाजत कोटिन रति अरु मार ।
कुसुमित तरुन लता लपटानी मुदित मधुप झंकार ;
धीरसमीर तीर जमुनाके सुमन सुगंध पसार ।
फूले फले फूलफल डारन मदनायुध सुखसार ;
किंसुक कुंद कंज गुलगेंदा त्यों गुलाव कचनार ।
करि पंचम सुर सोर कवैलिया चढ़ी आमकी डार ;
वाजत वीन, मृदंग, झाँझ, डफ, वेनु, सरोद, सितार ।
गावत वाम काम मदमाती रह्यो न अंग सम्हार ;
विलसि बसंत कंत सँग सुन्दरि दीन सुमन मनहार ।
सगभगात भेंटे पिय प्यारे विहँसि गरे भुज डार ;
जुग-जुग जीवहु रसिककिसोरी जीवनप्रान—अधार ।६

[राग गौरी]

लाल-लली दोऊ झूलत कुंजन ;
चलो सखी ! सव मिलि-जुलि ह्वांई,लै सँगनिज अलि-पुंजन ।
कूकत कोइल कलित कंठ सों लता-लता अलि गुंजन ;
रसिककिशोरी वहु विधि बाजत, साज ताल सुर झंझन ।७
श्रीपुरुषोत्तम मनहि विराजे ;
मोरमुकुट मकराकृत कुण्डल, वनमाला छवि छाजे ।
नटवर वेष तिलक मृगमद शुभ अधर मुरलिया वाजे ;
रसिकक्रिशोरी निरखत दोऊ, कोटिन रति—पति लाजे ।८

गोस्वामी श्रीमुरलीधरजी

आचार्य गोस्वामी श्रीमुरलीधरजी महाराजका जन्म गौड़-ब्राह्मण-कुलीन निम्बार्क-सम्प्रदायके प्रधान पीठाधीश्वर आचार्य श्री१००८ परशुरामदेवजीके लघु-भ्राता श्रीगोस्वामी वासुदेवशरण-देवाचार्य्यजीके वंशमें सम्बत् १९४७ भाद्रकृष्ण ४ को प्रयागराजमें हुआ। आपके जन्मके छैमास पूर्व ही कुलप्रोहितने आपकी जन्म-कुण्डली बनाकर आपके पिता श्री१०८ गोस्वामी श्रीमाधवलालजी महाराजको दे गये थे और कह गये थे कि. यह पुत्र बड़ा ही होनहार होगा। आपका जन्म उसी जन्म-कुण्डलीकी लग्नके अनुसारही हुआ। आप बाल्यकालमें ही बड़ी तीव्र बुद्धिके थे। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात"। पाँच वर्षकी अवस्थामें आपको विद्यारम्भ कराया गया। किसी पाठशाला या स्कूलमें आप पढ़ने नहीं भेजे गये, कोई परीक्षा भी आपने नहीं दी। स्थानपर ही अध्यापक आकर हिन्दी और संस्कृत पढ़ाते थे। इस प्रकार आपने घरपर ही शिक्षा पाई। आप हिन्दी और संस्कृतमें अच्छे विद्वान् थे। आठ वर्षकी आयुमें आपका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ, तथा चौदह वर्षकी अवस्थामें आपका विवाह वृन्दावननिवासी राधावल्लभीय-सम्प्रदायाचार्य श्रीगोस्वामी गोवर्धनलालजी महाराज (राधावल्लभजीके सेवाधिकारी) की सुपुत्रीसे हुआ।

आपने सम्वत् १९६५ में अपने ही स्थान श्रीबिहारीजीका मन्दिर महाजनी टोला, प्रयागमें 'सनातन-धर्म-प्रवर्द्धिनी-सभा' एवं पुस्तकालय और सम्वत् १९६६ में सनातनधर्म-मित्र-मण्डलीकी स्थापना की, तथा कानपुरमें भी सम्वत् १९७२में आपने ही स्थान

नोट—जिनका जीवन-चरित्र लिखा जारहा है उनके विषयमें अपना परिचय भी देना आवश्यक है। आचार्य श्रीमुरलीधरजीसे मेरा स्वयंका पर्य्याप्त परिचय था। अतएव जो कुछ भी मैंने लिखा है वह स्वयं मेरा देखा है। इसके अतिरिक्त मुझे हमारे चरित्रनायकके ज्येष्ठ पुत्र श्रीआचार्य्य राधाकृष्ण गोस्वामीसे (जो कि अपने पिताके समान ही विचारशील, आत्मविश्वासी, दूरदर्शी तथा हरि-कीर्तन-प्रेमी हैं) जीवनचरित्र लिखनेमें काफ़ी सहायता मिली है।—लेखक

निम्बार्क सम्प्रदायाचार्य

श्री १०८ गोस्वामी मुरलीधर जी महाराज ।

आचार्य श्री उमाशंकरजी द्विवेदी आयुर्वेदाचार्य
सम्पादक 'श्री सुदर्शन'
वृन्दावन।

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें एक श्रीरासलीला-प्रचारक

श्रीरासलीला-प्रदर्शन, भगवच्चरित्र-प्रचार का सुन्दर निर्विघ्न और प्रशस्त मार्ग है। इसके द्वारा सर्वसाधारण जनतामें भगवद्भक्तिका अत्यधिक प्रचार हुआ है। साथही हिन्दी-भाषाका भी। यह श्रीरासलीला-प्रदर्शन चारसौ वर्ष प्रथम प्राचीन कालसे आचार्य श्रीघमंडदेवाचार्यजी महाराज द्वारा प्रवर्तित होकर इस उन्नति अवस्था तक पहुँची है। रासलीलाने अपने ऐश्वरीय-प्रभाव द्वारा लाखों जनताको भक्ति प्रदानकर उद्धार किया है। महाराज जयसिंह (जैपुर), महाराज जीवाजीराव (ग्वालियर), महाराज कांकेर आदि कई नृपतियों ने श्रीरासलीलामें प्रत्यक्ष भगवत्-सत्ताका

अनुभव एवं परीक्षाकर, पश्चात् अपने-अपने मंदिरों में अखंड रासलीलाका प्रबंधकर इसकी महत्वता स्वीकार किया है। ये वैष्णवोंके बावन द्वारा-संस्थापकोंमें से एक द्वारा-संस्थापक श्रीउद्धव घमण्ड-देवजीकी भजन-भावनाका प्रत्यक्ष जीता-जागता मूर्तिमान उदाहरण है। इन्हीं श्रीउद्धवदेवाचार्य्यजी महाराजकी लीला-परम्परामें स्वामी दामोदरजी हैं। इन्होंने आधुनिककाल में चतुः सम्प्रदाय वैष्णव-समाजमें रासलीला द्वारा भगवच्चरित्र-प्रदर्शन एवं प्रचारका प्रशंस-नीय कार्य किया है। हम लोगोंने व्रजमें भी जाकर देखा है, इनके द्वारा लीला-प्रदर्शन का विशुद्ध पारमार्थिक स्वरूप है। बहुतसे रोजगारी और अप्रमाणिक लीला-प्रदर्शनकारियोंके ये सर्वथा विरुद्ध हैं। इनके लीला-प्रदर्शनकी उत्तमताको महामान्य राजगुरु पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराज, करवी स्थानाधिपति महन्त श्रीजगदेवदासजी आदि कई विद्वान् और सर्वमान्य महानुभावोंने समझा है और अपने यहाँ सादर रासविहारीको पधराकर सन्मानित किया है। करवी स्थानाधिपतिने इस शुभकार्यसे प्रेरित होकर जीविका भी निकाली है और वैष्णव-जगत्में लीलाके प्रति सद्भावका आदर्श उपस्थित किया है। चतुः सम्प्रदायके साधु-सन्तोंमें इनकी अत्यधिक श्रद्धा है। इन्होंने साधु-सन्तोंके यहाँ रासलीलाकर निश्चित भेटके लिये कभी आग्रह नहीं किया है। ये वृन्दावन-वंशीवट-वासी हैं। वंशीवट पर प्रतिदिन श्रीरासलीला-प्रदर्शन करते हैं। इनकी लीला-प्रदर्शन शास्त्र-मर्यादा एवं वैष्णव-भावनाके अनुकूल होती है, इसलिये हम चतुः सम्प्रदायके वैष्णव, संत, महन्त आदि कुम्भ-मेला प्रयागमें एक लिखितरूपमें प्रमाणपत्र प्रदान करते हैं और समस्त सनातन-धर्मी जनतासे अनुरोध करते हैं कि इनके द्वारा रासलीला-प्रदर्शनको उत्तम-भावनासे ग्रहणकर भगवच्चरित्रके-आस्वादनका लाभ उठावें।

व्रजविदेही श्रीमहंत धनञ्जदास वृ०	श्रीमहन्त रामरतनदास
श्रीमहन्त रामनारायणदास डाकोर	श्रीमहन्त राधामोहनदास दि०अ०
श्रीमहन्त बालकदास उड़िया	श्रीमहन्त मनीरामदास
श्रीमहन्त अर्जुनदास त्यागी	श्रीब्रह्मचारी केशवदास
श्रीमहन्त लछमनदास निर्मोणी अ०	श्रीमहन्त Mohandas dev D.S.
श्रीमहन्त बलरामदास	महन्त सुदर्शनदास विष्णुस्वा०अ०
श्रीमहन्त अनूपदास	महन्त मदनमोहनदास कहरोइका
श्रीमहन्त मदनमोहनदास	महन्त हरिदास विष्णुस्वामी अ०
श्रीमहन्त वंशीदास बलभद्री अ०	अधिकारी ठाकुरदास वृन्दावन

श्रीविहारीजीका मन्दिर खास बाजारमें 'श्रीसनातन-धर्म वैष्णव-सभा' तथा पाठशालाकी स्थापना की। कानपुरके प्रसिद्ध सनातनिष्ठ राय देवीप्रसाद कवि 'पूर्ण' इस सभाके मंत्री थे।

हमारे चरित्रनायक व्याख्यान बड़ा ही ओजस्वी तथा सुमधुर देते थे। श्रोताओंके हृदयमें श्रोत-मंदाकिनी बह उठती थी। आप संगीत और साहित्यके बड़े अच्छे ज्ञाता थे।

वैष्णव—सम्प्रदायमें सर्वप्रथम आपहीने श्री निम्बार्कमतानुसार कपालबेधसे निर्णयकर व्रतोत्सव-निर्णयपत्र सं० १६५८ में प्रकाशित किया। जो कि अब भी आपके पुत्र श्रीआचार्य राधाकृष्ण गोस्वामी प्रतिवर्ष प्रकाशितकर वैष्णवोंमें वितरण करते हैं। आपकी गद्दीके शिष्य देशदेशान्तरोंमें बहुत बड़ी संख्यामें हैं। आप बड़े ही सुशील तथा न्याय—प्रिय थे। वैष्णवादिक आपको मध्यस्थ बनाकर आपसी कलहसे मुक्त होते थे। प्रायः दोनों ही पक्षके लोग आपके निर्णयसे सन्तुष्ठ होते थे।

आपने वैसाख-शुक्ला-पूर्णिमा सम्वत् १६८६ विक्रमीको इह-लीला सम्वरण की। उस समय एक अपूर्व लीला घटित हुई, जिसका कि यहाँ उल्लेख करना अति आवश्यक है, जिस समय आपने शरीर त्यागा था उस समय नेत्रोंसे एक ज्योति निकली और वहाँ पर उपस्थित परिवारवालोंके सन्मुख करीब दो मिनटतक स्थिर रही, तत्पश्चात् उर्ध्वलोकको चली गई। इन्होंने निम्न ग्रंथ निर्माण की ये हैं जो इनके विद्वता-प्रतिभाके उद्योतक हैं—

१—श्रीपरशुरामचरित्र, २—श्रीनिम्बार्काचार्य-चरित्र,
३—श्रीविहारीसतपदावली, ४—संगीत रत्नावली,
५—व्याख्यानोंका संग्रह।

आपने कई ग्रन्थों तथा श्रीकृष्णचरित्र व अपने इष्टदेव श्रीराधिकाविहारीजीकी उपासना, लीला व श्रीअंगके वर्णनमें सतपदों व दोहोंकी बड़ी ही भावपूर्ण सुललित रचना की है। लेख-विस्तार-भय सेकेवल दो चारही पद नीचे उद्धृत किये जारहे हैं—

[राग-मालकोश । चार ताल]

जयति जयति कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द यशोदानन्द ;
वृन्दाविपिन रासकरन गोपीजन मोदभरन ।
भक्तजनन दुःखहरन काटत सब जगके फन्द ;
नारद, शुक, व्यास रटत गावत शुक, सनक, ब्रह्म ।
'मुरलीधर' चरण शरण आयो मति गति को मंद ।

[राग सोहनी]

माया राधिके कर हरण ।
जीव जेते मोह डारे ज्ञान कर अपहरण ;
भोगिया जग भोग डारत जोगिया बसकरन ।
स्वप्नवत सुख साज साजे हरत प्रभुवर चरण ;
जात जब जब जाल महँ फँस लहत जीवन मरण ।
जीव ब्रह्मके मध्यमें है तेरो ही आवरण ;
दास निज पर दया कर अब आयो 'मुरली' शरण ।

[गज़ल]

है अगर दुनियाँमें कुछ तो प्रेम केवल सार है ;
संसारमें बस एक ही यह जीवका आधार है ।
है नहीं मात्रा भी जिसमें प्रेमकी कुछ भी अगर ;
देखलो दुनियाँमें उसकी जिन्दगी बेकार है ।
प्रेम-बन्धनसे अधिक दृढ़ और बन्धन है नहीं ;
पड़ इसी बन्धनमें प्रभु लेता सदा अवतार है ।
प्रेमहीके भावसे यशुदाने बाँधा कृष्णको ;
पाया प्रभुसे गोपियोंने प्रेमका उपहार है ।
हो जहाँ पर प्रेम पूरण नेम कुछ रहता नहीं ;
सेवरीके बेर जूंठे रामके उपहार है ।
विश्वमय है प्रेम देखो चन्द्र और चकोर गति ;
दीपकी उज्ज्वल शिखा पर हो पतंग निसार है ।
प्रेम मंत्रित कर प्रभूने आज 'मुरली' स्वर भरा ;
गूंजे सकल भारत मही तो होय बेड़ा पार है ।

[राग बागेश्वरी झपताल]

शरण हम प्रभूजीकी आये हुये हैं ;
सभी ओरसे मन हटाये हुये हैं ।
नहीं कोई साथी न मैया न भैया ;
ये चरणोंमें मनको लगाये हुये हैं ।
झूटी ये दुनियाँकी अद्भुत माया ;
सभी अपने दिलको लुभाये हुये हैं ।
ये पाकर मनुज तन भूले हैं तुमको ;
वही 'मुरली' निज धन गँवाए हुये हैं ।

[पद झूलनं]

हिन्डोला झूलो नन्दकिशोर ।
नेम धर्मके खंभ सुन्दर प्रीति बल्ली छोर ;
हृद सिंहासन बैठ प्रभू रस रीतिकी कर डोर ।
मन-मन्दिरमें झूलो प्यारे चन्द्र और चकोर ;
प्राणवायु अपार आनन्द घन घटा चहुँओर ।
आय यह अभिलाष पूरो विनय ममकर जोर ;
बजे अनहद नाद 'मुरली' नाचे लखि मन मोर ।

[होली राग पीलू]

आवो लला इत खेलो होरी देखूँ भला तुमरी बरजोरी ;
लेऊँ निकार कसर सब दिनकी छाँड़ देव फिर माखन चोरी ।
हम अबला सबला कर सानो देहुँ तुम्हें केशर रँग बोरी ;
फगुआ दिये बिन जानन पैहौ 'मुरली' छीन मलूँ मुख रोरी ।

[रसिया]

मेरी रखले लाज मुकुटधारी ।
रँग होत बदरँग सबै अब दया करो गिरिवरधारी ।
लाल गुलाल कहूँ नहिं दीखे वीर अबीर लगनवारी ;
आयो चरण शरण मैं तेरी 'मुरलीधर' हो सुखकारी ।

[सवैया]

सोवत जागत स्वप्न दशा तब ध्यान सदा बनमें घरमें ;
धर्म औ कर्मको मर्म यही निशि-द्यौस सदा मनमें तू रमें ।
कोई घरी विसरायो नहीं पर नाथ कहाँ तुम हो भरमें ;
चाहे बिगाड़ो बनाओ चहे 'मुरली' मुरलीधरके करमें ।

[कवित]

पक्ष न और धरै कोई मोर अपक्ष पड़्यो भवकूप निहारी ;
पक्ष बिना नहिं पक्षि उड़ै गहि एकहि एकको पक्ष मुरारी ।
पक्ष बिहीन मलीन रहै 'मुरलीधर' टेर सुनो बनवारी ;
पक्ष धरो सिर मोर सदा मम पक्ष धरो अब बाँकेविहारी ।

[दोहा]

मोरमुकुट अलकावली, कुण्डल छवि द्युति घोर ;
'मुरली' टेर सुनायकर, हरहु सदा मनमोर ।

हरी हरत हो व्याध तुम, गोपिन हियके हार ;
'मुरली'हिय अभिलाष यह,मम उर करहु विहार ।

बाँह विहारीकी गहूँ, धरूँ विहारी ध्यान ;
निरखूँ नित्य-विहार छवि,'मुरली'हिय अभिमान ।

नहीं नर्क सों भय हमें, नहीं स्वर्ग सों नेह ;
'मुरली' हिय अभिलाष यह, हरिपद रहे सनेह ।

श्रीनारायण स्वामी

श्रीनारायण स्वामी प्रथम श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें दीक्षित हुये थे पीछे परमहंस होगए थे। इनके जितने शिष्य थे उनमेंसे अधिकाँशको निम्बार्क-सम्प्रदायमें ही रहनेकी, इनकी आज्ञा थी। वे समस्त श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायानुसार ही तिलक, कंठी, माला धारण इत्यादि शिक्षा-दीक्षासे संबंध रखते थे। स्वामीजीके शिष्य ठाकुर महाचन्द रईस अमृतसर, लाला नाथूराम हेडमास्टर रिवाड़ी और बाबू भक्तराम रईस लाहौर इत्यादि और अनेकों शिष्य इस सम्प्रदाय के तिलक लगाते थे, तथा उपासनामें चलते थे। स्वामीजी इस सम्प्रदायके अन्तर्गत ही हैं, बाहिर नहीं।

स्वामीजीका यह परिचय वेंकटेश्वर-प्रेससे प्रकाशित व्रज-विहारमें छपा है, वही सम्पूर्णतः यहाँ उद्धृत करते हैं—"श्रीनारायण स्वामीजीका जन्म लगभग संवत् १८८५ में रावलपिंडी (पंजाब) जिलेमें हुआ था। ये सारस्वत ब्राह्मण थे। सं० १९१६ के लगभग श्रीवृन्दावनमें आकर श्रीलालाबाबूके मंदिरमें दफ्तरकी नौकरी कर ली, दिनमें नौकरी कार्य देखते और रात्रिके समय रासविलास दर्शन करते तथा सत्संगमें लगे रहते। उस समय गृहस्थ-आश्रममें थे, परन्तु साथमें स्त्री, पुत्र नहीं रखते थे। इन्होंने सर्वप्रथम भगवत्-संबंधी गजलोंकी एक पुस्तक छपवायी थी। कभी-कभी रेखता और पद भी रच लिया करते थे। टेकारीवाले मंदिरमें जो मंडली रास करती थी, उसके द्वारा ये अपने पदोंका अभिनय कराते थे। प्रेम-रङ्गमें ऐसे छके कि नौकरी त्यागकर, दीक्षा ग्रहण कर लिया। इधर आपके पदों की ओर रसिक-प्रेमियोंका प्रेम प्रति-दिन बढ़ने लगा।

आप केशीघाटपर खपाटिया-बाबाके घेरेमें, श्रीयमुनातटपर निवास करते थे। इनका स्वभाव बड़ा सरल और दयालू था परोपकार पर सदैव दृष्टि रखते थे। सदैव इच्छुक रहते थे कि किसी प्रकार जीव लालजीकी ओर लगे, जिससे उसका कल्याण हो। श्यामसुन्दर का नाम लालजी रख लिया था, इसीसे जो कोई भी आपके पास आता, सबको लालजी हो कहकर बोलते थे। इनकी वाणी बड़ी

मधुर थी, इससे सबका चित आकर्षित होजाता था। इनके रचे हुए पदोंमें ऐसा लालित्य था, कि हृदयमें भक्ति-भाव उमड़ उठती थी। इनका उपदेश केवल भगवद्भक्ति एवं भगवन्नाम था, इनके उपदेशमें यह विशेषता थी, कि घरवार छोड़कर ही भजन करे सो नहीं, किंतु जो जैसे कार्यमें लग रहा हो उसमें रहते हुये भजन करता रहे।

एक दिन पंजाबका एक मनुष्य इनके दर्शनके लिये आया इन्होंने उससे पूछा कि 'लालजी! आप घरमें कौन धंधा करते हैं?' उसने उत्तर दिया 'श्रीमहाराज! मैं बजाजी करता हूँ।' इसपर आप प्रसन्न होकर बोले—'आपका काम तो बड़ा ही उत्तम है, कपड़ा फाड़ते गये और श्रीराधाकृष्ण-श्रीराधाकृष्ण बोलते गए। आपके दोनों लोकोंका काम होगया।' इसी प्रकार इस जीवको जैसी अवस्था में देखते उसीमें उसका उद्धार-साधन बने ऐसे वचन बोलते थे। जिज्ञासुओंको श्रीगुरु-महिमा भी विशेष रूपसे सुनाते थे। सदैव आँसुओंका तार बंध जाता था और घंटों तक प्रेमानन्दमें निमग्न होजाते थे। ये अनन्य वृन्दावनवासी थे। एक बार एक पंजाबीने पूछा—'श्रीमहाराज! हरिद्वार नहीं जाते?' आपने उत्तर दिया—'लालजी! हम महलोंमें रहनेवाली प्रिया-प्रियतमकी सहचरी हैं, हरिके अन्तपुरमें रहती हैं, द्वारपर नहीं जातीं।' इस प्रकार आपने विलक्षण चतुराईसे वृन्दावनधाम तथा ब्रजधामका महत्व दर्शाया। ये कभी भी श्रीवृन्दावनकी पवित्र-भूमि पर शौच नहीं जाते थे। वर्षा में भतरोंड़की ओर और जाड़े, गर्मियोंमें यमुना-पार जाते थे। इनके सैकड़ों शिष्य थे, पर पट्ट शिष्य अमृतसरके ठाकुर महाचंदजी, बाबू भक्तरामजी लाहौर और लाला बसंतरामजी जालंधर थे। पं० दीन-दयालजी व्याख्यान-वाचस्पति इनके अन्तरङ्ग मित्रोंमें-से थे।

संवत् १९५५ में श्रीमहाराज वृंदावनसे गोवर्धन पधारे और श्रीगिरिराजकी स्वर्गीय शोभा देखकर बड़े प्रसन्न हुए, उस समय उन्होंने कहा—'कि' मैं तो यह जानता था, कि प्रिया-प्रियतमका सुख श्रीवृंदावनमें ही है अन्यत्र नहीं; किन्तु यहाँ तो वहाँसे कहीं विशेष सुखका अनुभव होता है।' एक दिन कुसुम-सरोवर पर इन्हें प्रिया-प्रियतम दृष्टि-गोचर हुये, उनके पीछे पकड़नेके लिये श्रीगोवर्धन तक दौड़ते हुए चले गये, किंतु हाथ नहीं आये। ये थककर एक इमलीके

वृक्षके नीचे बैठ गये, जब उधरसे लौटे पुनः युगल-सरकारको देखा और पीछा करते हुए कुसुम सरोवर तक आए, बहुत ही थक गए। कुछ देर विश्रामकर पुनः गोवर्धनको आये और रोते हुए समस्त हाल अपने पुरोहितजीसे कहा कि—'जबतक दर्शन नहीं होते हैं, तबतक अनेक बातें पूछनेकी इच्छा होती है, परन्तु जब लालजीका दर्शन होता है, तो न मालूम वे बातें कहाँ चली जाती हैं।' केवल मुख-माधुरी का पान करते ही रह जाते हैं।' इसप्रकार कहकर कुसुम-सरोवरको ही वापिस लौट गये, और वहीं पर श्रीउद्धवजीके मंदिरमें एक चौवारे में रहने लगे। उसी स्थानपर फाल्गुन-कृष्णा-एकादशी सं० १९६७ को इनका देहावसान हुआ। ठाकुर महाचंदजीने उस स्थानके निकट ही एक समाधि बनवा दी है।

स्वामीजीने सहस्रों भक्ति-रस-पूरित पद रचे, जिनमें श्रीव्रज-विहार नामक पुस्तक सं० १९४० में प्रथमवार लाला गणेशीलाल लोहागढ़वालेने छपवाकर मुफ्त बाँटी। अब तक उसके कई संस्करण होचुके हैं। भारतेन्दुके संपादक श्रीराधाचरण गोस्वामीजीने व्रज-विहारके प्रथम संस्करणकी समालोचना इसप्रकार की थी— "व्रज-विहार परमहंस-परिव्राजकाचार्य श्रील श्रीयुत महानुभाव श्रीनारायण स्वामीजीकी वाणी है। स्वामीजी महाराज इस समय वृंदावनमें महात्माओंकी श्रेणीमें अग्रगण्य हैं। आपने जो कुछ समय-समयपर लीला अनुभव किया है, वही पदों द्वारा रसिक लोगोंकी तृप्तिके लिये पुस्तक पयोदके द्वारा वरसाया है। यह पद कुछ हमारी प्रशंसाके आश्रित नहीं। इनमें कुछ ऐसा चमत्कार है कि, सैकड़ों पुस्तक लिखकर और हजारों पुस्तकें छपकर भारतवर्षके इस ओरसे उस छोर तक प्रसिद्ध हुईं, पर प्रेमीजनोंकी तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। इससे अधिक रासधारियोंके मण्डलियोंमें तो इनका राज्य है। जब तक इनके पद नहीं गाये जाते दर्शनी चित्र-लिखितसे नहीं होते। फिर इनका भाव विलक्षण, राग सद्योमनोहर और अक्षर तो जादूके वाण हैं। कैसा ही कुटिल-कल्मषी क्यों न हो, एक बार तो मोहित हो ही जाता है। इसीसे आज स्वामीजीकी वाणी प्राणी-मात्रको प्यारी लगती है। इसी बाणके वेधे अनेक अनुरागी घरबार छोड़कर व्रज-मण्डलमें फिरते हैं। अब आपकी सरस-रचना पर हमें कुछ कहनेकी आवश्य-

कता नहीं। आपने पंजाबी होकर भी व्रज-भाषाकी जो उपासना की है, वह सराहनीय और स्तुत्य है।" स्वामीजी-रचित व्रज-विहार से कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं--

[कवित्त]

चाहे तू योग करि भृकुटी मध्य ध्यान धरि चाहे नाम रूप मिथ्या जानिकै निहार ले ; निर्गुन निर्भय निराकार ज्योति व्याप रही ऐसो तत्त्व ज्ञान निज मनमें तू धार ले । 'नारायन' अपनेको आपही बखान करि मोतें यह भिन्न नहीं या विधि पुकारले ; जौ लौं तोहि नंद को कुमार नहीं दृष्टि पर्यौ तब लौं तू भलै बैठि ब्रह्मको विचार ले।

[सोरठ]

मोहन बसि गयो मेरे मनमें।
लोक-लाज कुलकानि छूटि गई याकी नेह लगनमें।
जित देखों तितही वह दीखे घर बाहर आँगनमें ;
अंग-अंग प्रति रोम-रोममें छाइ रह्यो तन-मनमें।
कुण्डल झलक कपोलन सोहै बाजूबंद भुजनमें ;
कंकन कलित ललित मनिमाला नूपुर धुनि चरननमें।
चपल नैन भ्रकुटीवर बाँकी ठाढ़ो सघन लतनमें ;
नारायन बिन मोल बिकी हौं याकी नेक हँसनमें।

[जैजैवन्ती]

आजु सखी प्रीतम जो पाऊँ तौ अपने बड़ भाग मनाऊँ ।
साँवरि मूरति नैन बिसाला चंद-बदन गर मुतियन माला ;
रूप मनोहर चाल मराला सुन्दरता पर वलि-वलि जाऊँ ।
जो प्यारे इन गलियन आवै मो विरहिनको दरस दिखावै ;
बैठि निकट मृदु बचन सुनावै मैं उनको हँसि कंठ लगाऊँ।
नारायन जीवन गिरिधारी कब लेंगे सुधि आय हमारी ;
जब मोसों वो कहेंगे प्यारी तब मैं फूली अंग न समाऊँ । ३

[कान्हरो]

नँदनंदनके ऐसे नैन।
अति छवि भरे नागके छौना डरति डसैं करि सैन।
इन सम सावर-मंत्र न होई जादू जंत्र तंत्र नहिं कोई ;

एक दृष्टिमें मन हर लेवैं करि देवैं बेचैन ।
चितवनसे घायल कर डारैं इनपै कोटि बान लै वारैं ;
अति पैने तिरछे हिय कसकैं स्वास न देवैं लैन ।
चंचल चपल मनोहर कारे खंजन मीन लजावनहारे ;
नारायन सुंदर मतवारे अनियारे दुखदैन ॥ ४ ॥

[झँझोटी]

स्याम दृगनकी चोट बुरी री ।
ज्यों-ज्यों नाम लेति तू वाको मो घायल पै नौन पुरी री ।
ना जानौं अब सुध-बुध मेरी कौन बिपिनमें जाय दुरी री ;
नारायन नहिं छूटत सजनी जाकी जासों प्रीति जुरी री ।

[ईमन]

लगन नहिं छूटै एरी वीर ।
ताने देहु नाम धरि चाहे कोटि करौ तदवीर ।
छिनमें करत चतुरको बौरा नृपको करत फ़कीर ;
नारायन अब कठिन है बचिवो बिंधे हिये दृगतीर ।

[झँझोटी]

साँवरे ! क्यों मोसों रिस मानी ।
तेरे काज घर बार त्यागिकै गलियन फिरति दिवानी ।
लोक लाज कुलरीति प्रीति जग इनहूको दियो पानी ;
नारायन अबतौ हँसि चितवौ एरे रूप गुमानी !

[कालिङ्गड़ा]

सखि ! ये दृगवा रूप लुभाने ।
मचलि रहे ससि-मुख निरखनकों जाविधि बाल अयाने ।
लोक-लाज कुल-धर्म खिलौना दिये तऊ नहिं माने ;
नारायन सोऊ हनि फोरे ऐसे निडर सयाने ।

[आसावरी]

सखि ! मेरे मनकी को जानै ।
कासों कहौं सुनै जो चितदै हितकी बात बखानै ।
ऐसो को है अन्तरजामी तुरत पीर पहिचानै ;
नारायन जो बीत रही है कब कोई सच मानै ।

[सोरठ]

मन-मोहन जाकी दृष्टि परत ताकी गति होत है और और ;
न सुहात भवन तन असन बसन बनहीको धावत दौर दौर।
नहिं धरत धीर हिय विरह पीर व्याकुल है भटकत ठौर ठौर ;
कब अँसुवन भर नारायन मन झाँकत डोलत पौर पौर।

[सोरठ]

जाहि लगन लगी घनश्यामकी।
धरत कहूँ पग परत हैं कितहूँ भूल जाय सुधि धामकी।
छवि निहार नहिं रहत सार कछु धरि पल निशिदिन जामकी ;
जित मुँह उठै तितैही धावै सुरति न छाया घामकी।
अस्तुति निंदा करौ भलै ही मेड़ तजी कुल गामकी ;
नारायन बौरी भई डोलै रही न काहू कामकी।

[खमाच]

प्रीतम ! तू मोहि प्रानते प्यारो।
जो तोहि देखि हियो सुख पावत सो बड़ भागिनवारो।
जो तोकों पलभर न निहारूँ दीखत जग अँधियारो।
मोद बढ़ावनके कारन हम मानिनि रूपहिं धारो ;
नारायन हम दोउ एक हैं फूल सुगंध न न्यारो।

[काफी]

या साँवरे सों मैं प्रीति लगाई।
कुल-कलंक तें नाहिं डरौंगी अब तौ करौं अपनी मन भाई।
बीच बजार पुकार कहौं मैं चाहे करौ तुम कोटि बुराई ;
लाज मजाद मिली औरनको मृदु मुसकनि मेरे बट आई।
बिन देखे मनमोहनको मुख मोहि लगत त्रिभुवन दुखदाई ;
नारायन तिनको सब फीको जिन चाखी यह रूप-मिठाई।

बेदरदी ! तोहि दरद न आवै।
चितवनमें चितबस करि मेरो अब काहेको आँख चुरावै।
कबसौं परी द्वारपै तेरे बिन देखे जियरा घबरावै ;
नारायन महबूब साँवरे ! घायल करि फिर गैल बतावै।

दाऊ श्रीगोवर्द्धनदासजी

यह परिचय, इनके द्वारा निर्मित ग्रंथारम्भमें श्रीदानविहारीलाल जी शर्म्मा-द्वारा लिखित प्रकाशित हुआ था-उसे उद्धृत करता हूँ।

"हरिभक्ति-प्रकाशिका बालविनय" गीतकाव्यके विरचयिता दाऊ श्रीगोवर्द्धनदासजी महोदय हैं। इनका जन्म कुलीन कान्यकुब्ज ब्राह्मण-वंशमें ग्राम 'ककरा' राज्य रीवाँमें हुआ था। इनका जन्मका नाम कुंजविहारीप्रसाद रक्खा था, क्योंकि इनके पिता श्रीकृष्णके अनन्य-भक्त एवं लीलाके उपासक थे। इनके जन्म-सम्बत्का ठीक पता नहीं लग सका, क्योंकि ये थोड़ी उम्रमें ही राजनाँदगाव आगये थे, जबसे शेष जीवन वहीं व्यतीत किया।

ये बालपनेसे ही हरिभक्त थे। इनको तीर्थ-पर्य्यटनका बड़ी रुचि थी। अपने ग्राममें आते-जाते साधु महात्माओंसे श्रीजगन्नाथ धामकी महिमा तथा श्रीजगन्नाथदेवजीकी अद्भुत चमत्कारी लीलाओं-का श्रवणकर गदगद् हो प्रार्थना करने लगते थे कि 'हे जगदीश! इस तुच्छ सेवकको कब दर्शन देकर अपनी कृपासे दी हुई, इस नरदेहको कृतार्थ कीजियेगा'! कभी कभी एकान्तमें ध्यान-मग्न हो जाते थे।

एक समय श्रीजगदीश-दर्शनकी प्रबल इच्छा हुई, और रात्रिके समय स्वप्नमें ऐसी प्रतीति हुई कि कोई आन्तरिक शक्ति, जन्म-भूमि छोड़ कर चले जानेकी प्रेरणा कर रही है। बस दूसरेही दिन चुपचाप घरसे श्रीजगन्नाथ-दर्शनकी लालसा लिये हुए, पैदलही चल दिये। उस समय जगदीश जानेको रेल नहीं थी, इसीसे वे पैदलही चल पड़े। रास्तेमें राजनाँदगाँव पहुँचे, इनका सुन्दर स्वरूप, कुलीन वंश तथा हरिभक्त देख बुद्धिमान् श्रीमान् राजनाँदगाँवके तत्कालीन राजा महन्त श्रीघासीरामजी महाराजकी इच्छा अपनी बड़ी राजकुमारी श्रीअन्नपूर्णाबाई देवीका इनके साथ विवाह कर देने की हुई। यहाँकी रीत्यानुसार इनको श्री ६ निम्बार्क-सम्प्रदायमें वैष्णवी-दीक्षा एक वयोवृद्ध सदाचारी महात्मासे दिलवाई गई। श्रीगुरुदेवने इनका नाम गोवर्द्धनदास रखा। पश्चात् उक्त राजकुमारीसे विधिवत् पाणि-ग्रहण-क्रिया बड़े धूमधामसे सम्बत् १६३८ में सम्पन्न हुई, किन्तु ये

राजकुमारी थोड़े कालमें ही एक माससे भी कम आयुकी कन्या, पति तथा राजपरिवारको रोते बिलखते छोड़ हरिनामोच्चारण करते संवत् १६४० क्वारमें श्रीभगवद्धाम सिधारी।

इससे श्रीगोवर्द्धनदासजी अत्यन्त दु:खित हुए, किन्तु भगवदिच्छा समझ धैर्य धारण कर शांतिसे इस बज्रघातको सहा।

तब श्रीमान् राजा साहबने अपनी छोटी पुत्री श्रीमती सौभाग्यवती राजकुमारीदेवीके साथ इनका पाणिग्रहण सं० १६४४ में करा दिया, किन्तु इस देवीने भी अल्प-काल ही इस भूमिमें रहकर अपना नश्वर देह काशीमें पुनीत भागीरथी तट पर सम्वत् १६४७ में त्याग किया। तब दाऊ श्रीगोवर्द्धनदासजीको बड़ा भारी शोक हुआ। इनका रुदन पाषाणको भी द्रवीभूत करने योग्य हुआ, क्योंकि ये राजकुमारी अत्यन्त सुशील, पतिकी आज्ञाकारिणी, अत्यन्त मधुर-भाषिणी, नम्र एवं हँसमुखी थी। इनसे श्रीभगवत्-सेवामें गोवर्द्धनदासजीको बड़ी सहायता मिलती थी। इन कुमारीको जैसा रूप, शील, गुण, राजघर में जन्म, गृह कार्य कुशलतादि गुण श्रीभगवान्ने दिये थे, उससे प्रतीत होता था कि ये साक्षात् देवकन्या संसारमें आई है। इतना सब होते हुए भी इन राजकुमारीको घमण्ड तथा अहंभाव छुआ तक नहीं था।

जैसे दाऊ श्रीगोवर्धनदासजी कांतिमान, तेजस्वी, परोपकारी, सज्जन, विद्वान् श्री ६ निम्बार्क–सम्प्रदायमें परम निष्ठावान् श्रीगोपालकृष्णके पूर्ण भक्त थे, वैसीही राजकुमारी भी थीं। इससे सोनेमें सुगन्ध समा गई थी, किन्तु कुटिल कालको यह असह्य हुआ और उसने राजकुमारीसे इनका सदाके लिये बिछोह करा दिया।

इसके पश्चात् दाऊ श्रीगोवर्द्धनदासजीका जीवन अत्यन्त परमार्थ मय बन गया। सम्वत् १६५२ से ये अपने ग्राम 'भवरमरा' में रहने लगे। वहां इनके जीवनका लक्ष्य एकमात्र अपने प्रतिष्ठित श्रीकमलाकान्त गोपालदेवको समयोचित सेवा करनाही बन गया।

प्रातःकाल चार बजे उठकर शौच स्नानादि क्रियासे निवृत्त हो पुष्प-वाटिकासे श्रीभगवान्के लिये अपने हाथसे पुष्प तुलसी लाना, मन्दिरमर्जन करना, तिलक मुद्रा धारणकर पञ्चपदीमन्त्र

राजका जप, स्तोत्र-पाठ-पश्चात् षोडशोपचार पूजा, परिक्रमा, प्रार्थनादि करना, इस प्रकार नित्य नियममें ही मध्याह्न काल तक व्यतीत होने लगा। प्रत्येक एकादशीमें विधिवत् उपवास करते थे। तदनन्तर आगत गुणीजन विद्वान्, वैष्णव तथा अन्य अतिथियोंसे कुशल प्रश्न पूर्वक स्वागत, नम्रता युक्त वर्तालाप कर, योग्य पात्रोंका या शक्त्यानुसार द्रव्यादिसे सत्कार कर संतुष्ट करते थे। ये कभी एकाकी भगवत्प्रसाद नहीं लेते थे। सदाही चार छः वैष्णवोंके साथ भगवत्प्रसाद पाते थे। वैष्णवोंसे करबद्ध हो प्रार्थनाकर कहते थे कि 'यह सब भगवान्की ही विभूति है। इसमें मेरा कुछ भी नहीं है। मैं तो भगवत् और भागवतोंका तुच्छ सेवक हूँ, आप प्रसन्नता-पूर्वक जबतक इच्छा हो रहिये।' इसप्रकार आगत वैष्णवोंको संतुष्ट करनेमें लगते थे। पश्चात् भजन पद बनाते थे और उनको सितार पर गाकर ठीक बैठाते थे। पुनः सायँ आरतीके बाद वही पद भगवान्के सामने गाते थे ठीक जँचनेपर उसे अर्पण कर देते थे।

इनका कण्ठ अति मधुर था और पद गाते समय भावुकताके साथ तल्लीन होजाया करते थे। कभी-कभी तो पद गानेमें प्रेमाश्रुपात होने लगता था।

इस प्रकार शेष जीवन व्यतीत कर सम्वत् १९९३ पौष बदी १२ को भगवान् और आद्याचार्य श्री ६ निम्बार्कमहामुनीन्द्रकी जय बोलते-बोलते परधाम सिधारे।

दाऊ साहबके पदोंने एक पूर्णरसिक-हृदयके भावोंको स्पष्ट रूपमें प्रदर्शित की हैं। इनके पदोंमें प्राचीन रसिकोंके समान गत भावोंके अभिव्यक्त शैलीका सुन्दर अनुसरण है। श्रीराधाकृष्ण सखियोंके परस्पर विनोद द्वारा लीलाओंका सुन्दर अभिव्यंजना है। पदोंमें नखशिष वर्णनकी स्पष्टता है। पद माधुर्य प्रसादिसे गठित है। ये राधाकृष्णके पूर्ण भक्त थे—इसका इनके पद पूर्ण उदाहरण हैं।

अटकी नेह नवल नागरके और काहूसे कहा सरेगो;
नहि रहि सकत नैन नयनन बिन सुन सजनी का पंथ परैगो।
कठिन पंथ निबहै बिरलो जन नातर ऊपर पात पड़ैगो;
गोबर्द्धन नव रसिक लाल रस नित रँग रंग रँगैगो।

अरी मैं तलफत नेह नवीन लई मेरी सुधि-बुधि सगरी छीन ;
यह दुख जस तस बिदित तुमहि सब दृगन पलक तजि दीन।
रहीं लुभाय मनोहर मूरति मनमोहन रस भीन ;
तजि लिहाज हठ करत मिलन हित होन चहति तलीन।
वैरिनि भई अरी इन अखियाँ जिन यह गति मम कीन ;
गोवर्धन प्रभु बिलग अली गति विलग नीर जिमि मीन। २

अरे मन ! राधा-राधा रटरे।
निज तन नयन तमाशा निरखहु सलिल फेन कस तट रे ;
स्वप्न-सरिस सुख सकल साहवी समुझि तजौं मैं नटखट रे।
कौन दिवस किन घड़ी पलक में होय नाश तन चटपट रे ;
गोवर्धन शठ बनै काह जब चलै ठाट यह मरघट रे। ३

अलीरी ! लखि गई दधिको चोर।
काह कहों सखि चतुर साँवरो छलिया नन्दकिशोर।
मिलत न कोटि यतन बहु कीन्हें औचक ही मिले भोर ;
गोवर्धन कहु कैसे बने सखि ! वह ऐसो बरजोर। ४

अस ढीठ भयो जसुदाको छयल तकि-तकि हमैं मारै काँकरिया।
ठाड़ो वीर कदम्बन तीर धीर हठि करि-करि रोकत डगरिया ;
नहिं भरन देत मोहि नीर वोर कर गहि मरोर फोरै गागरिया।
पुनि कंचुकी चीर गहै हँसिके कसके दृग मारे नजरिया ;
गोवर्धन प्रभु जैसे जहाँ तहँ कैसे बसे अलि नागरिया। ५

आज परम आनन्द नन्द घर यसुमति सुत जायो मनहारी।
पूरन ब्रह्म सनातन प्रगटे जासु जस गावत श्रुति चारी ;
शेष गणेश दिनेश सुरेश महेश निरंतर औ मुखचारी।
वीथिन वीथि मची दधि कीच मनोहर रागन गतिहि नारी ;
गोवर्धन लखि मगन होहि अति मुखछवि निरखि जात बलिहारी।६

पं० श्रीमाधवरामजी अवस्थी व्यास

यह परिचय आचार्य श्रीराधाकृष्णजी—द्वारा लिखित कल्याण वर्ष १३ अङ्क ६ में प्रकाशित हुआ था, वही उद्धृत करता हूँ। पूज्य पंडितजीका जन्म संवत् १६२६ या १६२७ में ब्रह्मान्तर्गत कानपुर जिलेके साढ़ ग्राममें कान्यकुब्जकुलोत्पन्न पं० श्रीकामताप्रसाद जी अवस्थीके घर हुआ था। आप बड़े ही सच्चरित्र, सुशील, कर्मनिष्ठ तथा विद्वान् थे। आपके पिता (पं० कामताप्रसादजी) श्रीमद्भागवत के बड़े विद्वान थे। कानपुरमें आपके एक श्रोता शिष्यने आपको एक मकान भेंट किया, तबसे आप गृहस्थी सहित कानपुरमें ही निवास करने लगे। आर्थिक स्थिति आपकी प्रायः सोचनीय-सी ही रहा करती थी। हमारे चरित्र-नायकका विवाह पुरानी चालके अनुसार १२ वर्षकी ही अवस्थामें होगया था। जब आपकी १८ वर्षकी अवस्था हुई तब आप वैराग्यकी भावनासे प्रेरित हो चुपचाप पैदल ही वृन्दावन चल दिये। आपकी एक विचित्र आदत थी, आप नेत्र बंद किये अर्धचेतन अवस्थामें मार्ग तै किया करते थे। एकबार नेत्र खोलकर मार्गका मोड़ देख लेते थे, फिर मोड़पर ही नेत्र खोलते थे। आप गलेमें मालाकी झोली लिये हुये, जिसमें हजार मनियेकी माला रहती थी, तथा उसीपर भगवन्नामका जप करते हुए तेजीसे मार्ग तै कर रहे थे। रात्रिका समय था। आप दो रातके जगे भी थे। मार्ग भूल गये, पर आपको भान न हुआ। वृन्दावन कुछ ही दूर रह गया था। रास्तेमें इन्हें एक एकादशवर्षीय-बालक मिला। उसने इनसे कहा—'भाई! क्या तुम श्रीवृन्दावन जाना चाहते हो? तुम मार्ग भूल गये हो; उधर नहीं इस रास्ते होकर जाना चाहिये।' आपने नेत्र खोलकर देखा। हृदयमें यह बात उठी कि जिसकी खोजमें हम वृन्दावन जारहे हैं, वे यहीं मिल गये। आगे कुछ विचार भी न कर पाये थे कि वे पथ-प्रदर्शक वहीं अन्तर्ध्यान होगये। ये वहीं वृक्षके नीचे बैठ गये और विचार करने लगे—'ओह! कैसा सुन्दर लावण्य-मय शरीर था! क्या प्रभु फिर दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे? आज तो हम वैसे ही ठगे गए जैसे बिल्वमङ्गल ठगे गये थे।

बाँह छुड़ाए जात हो, निबल जानिकै मोहिं;
हिरदय ते जब जाहुगे, मर्द बदौंगो तोहिं।

इतना कहकर उठ खड़े हुए और बतलाये हुए मार्ग पर चल दिये ।

कुछ दिन आप वृन्दावनमें भ्रमण कर अयोध्या होते हुए चित्र-कूट चले आये। वहाँ कामदनाथजीकी परिक्रमामें जो 'भरत-मिलाप' (पर्णकुटी) स्थान है, वह आपको बहुत ही प्रिय लगा। अतएव आप वहीं रहने लगे। एक बार कानपुरके कुछ रईस चित्रकूट गये, उन्होंने इन्हें देख लिया, पर आप उन्हें न देख पाये, नहीं तो स्थान बदल देते। उन लोगोंने इनके पिताको तार देकर बुला लिया। पिता तार पाते ही वहाँ पहुँच गये और इनसे मिलकर तथा बहुत समझाकर इन्हें कानपुर लौटा लाये। वहाँ आकर आपने श्रीमद्भागवत द्वारा शहरके रईसोंमें भक्तिकी मन्दाकिनी बहा दी।

कानपुरमें प्रयागनारायणजीके मन्दिरके पास मोहाल खास बाजारमें श्रीविहारीजीका मन्दिर है, उसके अध्यक्ष आचार्य गोस्वामी श्री१०८ श्रीमाधवलालजी महाराज (लेखकके पितामह) को आप अपना गुरू मानते थे, तथा श्रीविहारीजीको अपना इष्टदेव।

जब आपने कथा प्रारम्भ की तो सर्वप्रथम भागवतादि ग्रन्थोंका परायण कर श्रीविहारीजी और महाराजजीको सुनाया। बादमें और जगह बाँचकर काफी धनोपार्जन किया। यहाँतक कि आपकी एक-एक कथामें दो-दो हजार, तीन-तीन हजार रुपये चढ़े। कुछ दिनों के बाद श्रीमहाराजजी (गो० माधवलालजी) की आज्ञा मानकर आपने कथा पर चढ़ा धन लेना बन्द कर दिया और अपना कुल रुपया और मकान अपने कुल-पूजित श्रीराधिका-कृष्णजीके नाम कर, लड़कोंको देदिया और उन्हें केवल इतना ही अधिकार दिया कि भगवान्की सेवा करो, और भोग लगाकर प्रसाद पाओ। कुछ रुपये अपने लिए बैंकमें जमा कर रखे थे, जिनके दस रुपये ब्याज आते थे। उसीमेंसे आप उदर एवं वस्त्रादिकी पूर्ति करते थे। मासिक-व्ययसे जो कुछ बच रहता था, उसे आप धार्मिक-आपत्तियों जैसे (विधवोद्वाह, असवर्ण विवाह, मन्दिर प्रवेशादिके निवारण) में सभा करने, पुस्तक छापने एवं तीर्थाटन आदिमें व्यय करते थे। आप चौबीस घंटेमें एकबार सूर्यास्तके प्रथम भोजन करते थे। दुग्ध आप बिलकुल नहीं लेते थे। गर्मियोंमें भीगी चनेकी दाल, नोन और

अजवाइन मिलाकर और जाड़ोंमे केवल मूंगकी दाल और रोटी खाते थे। अनुष्ठानमें वह भी नहीं लेते थे, केवल फल ही पाते थे।

आप सिला हुआ वस्त्र नहीं धारण करते थे। क्षौर (हजामत) आप प्रतिवर्ष माघ मासमें प्रयाग जाकर ही बनवाते थे। आपने कई सभाओंकी स्थापना और अनेक संस्कृतग्रन्थोंका सरस काव्यमें भाषानुवाद किया— जैसे श्रीमद्भागवत, गीता, रामायण, महाभारत, सत्यनारायण-व्रतकथा आदि, आदि। इनके अतिरिक्त आपने उपदेशरत्नाकर, भजनरत्नमाला, उपदेशरत्नमाला, उपदेशहोली, भजनद्वादशाक्षरी युगलछटा, दिव्यप्रयागवर्णन तथा भक्ति-प्रेम-पुष्पाञ्जलि, तीर्थयात्रासागर, दयाविचार, जगदीश्वरस्तोत्र, जगदम्बा-स्तोत्र, विज्ञान-लेख उपदेश, पतिव्रता नारी व नर ब्रह्मचारी, विधवा-विवाह-खण्डन, भजन रत्नावली, हरिकीर्तनावली आदि कई भक्ति-ज्ञान--उपदेशपूर्ण स्वतन्त्र भाषाकाव्योंकी भी रचना की थी।

आपको सङ्गीतका अच्छा ज्ञान था, भजन और कीर्तन बड़े ही प्रेमसे किया करते थे। सङ्गीतका अध्ययन लेखकके पिता (पूज्य-चरण श्री १०८ गोस्वामी मुरलीधरजी) से किया था। इस नाते उन्हें भी गुरु मानते थे। ग्रन्थ-रचनाके बाद प्रथम उन्हें सुनाकर उनसे सही करा लेते थे, तब छपनेको देते थे। हमारे चरित्रनायकने कई बार इक्कीस-इक्कीस लक्ष गायत्रीका अनुष्ठान किया तथा कई बार चारों धामका तथा अन्य सभी तीर्थोंका भ्रमण किया था। बदरिकाश्रमकी तो आपने नौ बार यात्रा की थी, अन्तिम यात्रामें आपका शरीर बड़ा ही जर्जरित हो गया था। बदरिकाश्रमसे लौटनेके छः मास पश्चात् सं० १९९० में आपने इस नश्वर शरीरको त्यागकर इहलीला समाप्त की।❀

आपके पद बड़े ही भावपूर्ण होते थे। लेख विस्तारभयसे यहां केवल एक ही पद दिया जाता है :—

❀ पूज्य अवस्थीजी महाराजके दर्शनोंका सौभाग्य हमें भी प्राप्त हो चुका है। पण्डितजी वास्तवमें एक बहुत ऊँची कोटिके संत, विद्वान् एवं त्यागी पुरुष थे। आपकी कथा बड़ी मधुर, चित्ताकर्षक एवं प्रभावोत्पादक होती थी। उसमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य तीनोंका पुट रहता था। भक्तिके

[भजन]

डरते रहो यह ज़िन्दगी बेकार न हो जाय।
सपनेमें किसी जीवका अपकार न हो जाय।
पाया है न तन अमोल सदाचारके लिये;
विषयोंमें फँसके तुमसे अनाचार न हो जाय।

खास-खास प्रसङ्गोंको तो आप बड़े ही मार्मिक ढंगसे कहते थे, जिन्हें सुनकर श्रोताओंके हृदयमें अपूर्व रसका सञ्चार होने लगता था। पत्थर-सा हृदय भी उनको सुनकर एक बार पसीज जाता था। जहाँ कहीं आपकी कथा होती थी, सैकड़ों नर-नारी वहाँ खिंचे हुये चले आते थे और बड़े-से-बड़ा स्थान भी श्रोताओंसे ठसाठस भर जाया करता था। आपका स्वर बड़ा मधुर था और आपकी वाणीमें बड़ी सरसता एवं कड़क थी, जिसके कारण लोग हज़ारोंकी संख्यामें उसे अच्छी तरह सुन सकते थे। बीच-बीचमें रोचक आख्यान तथा स्वरचित ललित पदोंको कहकर आप अपनी कथाको बहुत ही सरस बना देते थे। वेदान्तके गूढ़ विषयोंको भी आप बड़े ही सरल ढंगसे समझाया करते थे, जिसके कारण आपकी कथा विद्वानों तथा सर्वसाधारण दोनोंको ही बहुत भाती थी। एक बार भी जो उनकी कथा अथवा उपदेशको सुन लेता था, वह उससे प्रभावित हुये बिना नहीं रहता था, उसके हृदय पर उसकी अमिट छाप पड़ जाती थी। सनातनधर्मके सिद्धान्तोंको भी आप बड़े ही उत्तम ढंगसे समझाया करते थे और बड़े-बड़े तार्किकोंको भी उनकी व्याख्याओंसे बड़ा सन्तोष होता था। आपके उपदेश बड़े ही सरल एवं स्वाभाविक होते थे, जिस समय आप बोलते थे मालुम होता था आपकी वाणीमें साक्षात् सरस्वती आ विराजी हैं। एक-एक शब्द जो आप बोलते थे वह मानो उनके हृदयसे ही निकलता था, उसमें कृत्रिमताका गन्ध भी नहीं होता था। आप लगातार घंटों बोल सकते थे। श्रीमद्भागवत् तथा तुलसीकृत रामायण तो प्रायः आपको कण्ठस्थ थी। अन्य पुराणों तथा रामायण-महाभारतका भी आपने अच्छा अनुशीलन किया था। श्रीमद्भागवत के सप्ताहमें आप पाठ-श्रवणपर अधिक जोर देते थे और कहते थे कि बिना अर्थ समझे भी उसके श्रवणमात्रका महान् फल है। इसीलिये वे प्रातःकालसे मध्याह्न तक पचास अध्यायका पाठ सुनाया करते थे और अपराह्नमें कथा कहते थे। इस क्रमसे वे मुख्य-मुख्य प्रसङ्गोंको ही विस्तारसे कह पाते थे और शेष कथानकको संक्षेपमें ही कह जाया करते थे। पाठके समय वे श्रोताओंको अपने पास पुस्तक नहीं रखने देते थे।

सेवा करो सब देशकी, शुभ कर्म, हरि-भजन ;
इतना भी करके तुमको अहंकार न हो जाय।
मंजिल असल मुकामकी तै करनी है तुम्हें ;
जग ठग-नगरमें गिरफ्तार न हो जाय।
'माधव' लगी है बाजी माया-मोह-जालकी ;
धोखेमें पड़के अबकी कहीं हार न हो जाय।

तितिक्षा, त्याग, तपस्या एवं वैराग्यकी तो आप मूर्ति ही थे। सर्दी-गर्मी, बारहों महीने आप ज़मीनपर ही सोया करते थे। जाड़ोंमें भी आप पक्के फर्शपर एक पतली-सी कम्बल बिछाकर सोते थे और एक वैसी ही कम्बल ओढ़ते थे। तकियेके स्थानमें ईंटका व्यवहार करते थे। दिनमें तो प्रायः एक सूती रामनामी चद्दर ही शरीरपर रखते थे। आप सवेरे तीन बजेके करीब रोज उठ जाते थे और शौचादिसे निवृत्त होकर बड़े सवेरे ठण्डे जलसे स्नान करते थे और फिर अपने नित्यकर्ममें बैठ जाते थे। आपका यह बारहो महीनेका नियम था। कँटीली तथा कँकड़ीली पहाड़ी ज़मीनपर, बदरीनाथकी बर्फीली चट्टानोंपर तथा बीकानेरकी गरम बालूपर भी नंगे पाँव ही चलते थे। बदरीनाथकी चढ़ाईमें भी आप हाथमें लकड़ी नहीं रखते थे। और जहां साधारण यात्रियोंके लिये वहाँ तीन दिन ठहरना भी भारी हो जाता है, वहां ये जितनी बार बदरीनाथकी यात्रा करते थे, श्रीमद्भागवतका सप्ताह पारायण श्रीबदरीनाथजीको अवश्य सुनाते थे। भागवतका सप्ताह-पारायण करते समय आप केवल फलहार करते थे। इस प्रकारके पारायण अपने लिये तथा दूसरोंके निमित्त आपने जीवनमें न मालूम कितनी बार किये थे। यही कारण था कि श्रीमद्भागवत आपको प्रायः कण्ठस्थ हो गई थी। दूध आप इसीलिये नहीं लेते थे कि आजकल प्रायः सभी गाय रखने वाले बछड़ेका अंश स्वयं ले लेते हैं और उसके लिये नाममात्रका ही दूध छोड़ते हैं। जलके सम्बन्ध में आपका यह नियम था कि गङ्गाजीके किनारे रहनेपर वे उसीका जल व्यवहारमें लेते थे, गङ्गाके अभावमें और किसी नदीका जल भी उपयोग में ले लेते थे। जहाँ नदी नहीं होती थी, वहाँ तालाव अथवा बावलीका जल काममें लेते थे और इस प्रकारका कोई साधन न होने पर ही आप कुएँ आदिका जल ग्रहण करते थे। स्नानके सम्बन्धमें भी आपका यही नियम था। यह नियम आपने इसीलिये लिया था कि जहांतक हो सकता था आप ऐसे ही वस्तुका उपयोग करना चाहते थे जिसपर किसीका व्यक्तिगत स्वत्व न हो।

सम्पादक—कल्याण

पं० श्रीराधिकादासजी

भक्तप्रवर पं० रामप्रसादजी, शरणागत-संबंधी नाम श्रीराधिकादासजीका दर्शन अन्तिम समयमें मैंने वृन्दावनांर्गत मिर्जापुरवाली धर्मशालामें किया था, उस समय आप रुग्ण अवस्थामें थे। वहाँ बड़ेही समारोहके साथ कीर्तन, रासलीलानुकरण और ब्राह्मण-साधु भोजन होरहे थे। एक दो-दिन मैं भी शामिल हुआ था, उस दशामें भी आपकी श्रद्धा अटूट थी, बहुतही रुग्ण शरीरसे भी श्रीरासविहारी एवं साधु-सन्तोंके चरण-स्पर्श करनेके लिये लालायित रहते थे, और सैय्यासे उठ पड़ते थे। चन्द दिवस बाद ही आप अपनी इहलौकिक लीला समाप्रकर परमधामको पधार ही गये। आपका परिचय एक भक्त-द्वारा लिखित कल्याणमें प्रकाशित हुआ था उसीसे संक्षिप्त कर, यह परिचय लिखा गया है—

खेतड़ी-नामक उपराजके अंतर्गत चिड़ावा—नामक प्रसिद्ध ग्राम है, इसी सौभाग्यशाली ग्राममें श्रीनिम्बार्कमहामुनीन्द्रचन्द्रदर्शितमत-मार्तण्डविद्वद्धौरेय भक्तशिरोमणि श्रीराधिकादासोपनामक पं० राम-प्रसादजी महाराजने गौड़वंशोद्भव पं० लक्ष्मीरामजी मिश्रके घर सं० १९३३ माघमासकी कृष्णाष्टमी रविवारको, दिनके लगभग चार बजे शुभ जन्म ग्रहण किया था। ईश्वरके अनुग्रहसे या कोपसे माता-का देहान्त इनके प्रसव-कालमें ही हो गया था। किसीको इनके जीवित रहनेकी आशा न थी; किन्तु 'जाको राखै साइयाँ मार सकै नहिं कोय' के अनुसार महात्माजीकी बूआने प्रथम स्तन पान कराया। उन्हीं दिनों इनके बूआके भी सन्तान हुई थी। इसलिये दयामई पिताकी बहिनने ही इनके पालन-पोषणका भार अपने ऊपर ले लिया परन्तु कुछ दिनोंके बादही बुआजीको विशेष कार्य होने से ससुराल जाना पड़ा। तब स्नेहोत्कर्षके कारण ईश्वरकी कृपासे वृद्धा-अवस्थामें इनकी स्नेहमयी दादीजीके स्तनोंमें दुग्धका संचार होगया, और इस तरह हमारे महात्माजीका विचित्र शिशु काल समाप्त हुआ।

बचपनसे ही इनका मन कुटुम्बके मोहसे हट गया और विरक्त-सा जीवन बिताने लगे। जब आठ वर्षकी अवस्था हुई तभीसे चिड़ावा

पण्डितवर भक्तप्रवर श्रीराधिकादासजी महाराज
(पण्डित श्रीरामप्रसादजी शास्त्री)
चिड़ावा-निवासी

THE GITA PRESS, GORAKHPUR.

के प्रसिद्ध मंदिर श्रीकल्याणरायजीके नित्यप्रति दर्शन करनेके लिये जाने लगे । बाल्यावस्थामें ही भक्तिक्रमके समस्त लक्षण प्रगट होगए। कुछ दिन पश्चात् संस्कृत शिक्षा पानेके लिये विद्यालयमें प्रवेश हुये। घरेलू-व्यवहारिक-विषयोंसे चित्त हटाकर, पढ़नेमें इन्होंने ऐसा मन लगाया कि चन्द वर्षोंमें ही व्याकरण, न्याय, साहित्य और ज्योतिष के बड़े भारी विद्वान् होगये। विद्या-गुरुओंके नाम निम्न प्रकार हैं--पं० स्नेहीरामजी न्यायकेसरी, पं० रामजीलालजी, पं० रामेश्वरजी मिश्र, पं० गणेशनारायणजी, ज्योतिष-गुरू, पं० घनश्यामजी और रूढ़मलजी पुजारी। विवाह अल्प-वयसमें ही होगया था; किन्तु संसारिक-कार्य इनके भक्ति-मार्गमें वाधक नहीं होसके। यद्यपि पिताकी आर्थिक स्थिति सन्तोष जनक थी, पर इन्हें बीस वर्षकी अवस्थामें ही जीविकोपर्जनके लिये उद्यत होना पड़ा। चार वर्ष तक तो अनियमित रूपसे यत्र-तत्र कार्य करते रहे, पश्चात् सं० १६५७ से मलसीसरके श्रीजानकीदासजी झूँनझनूवालेकी पाठशालामें लगभग दो-वर्ष तक अध्यापन-कार्य करते रहे। फिर रामगढ़के प्रसिद्ध सेठ राधाकृष्णजी पोद्दारके सुपुत्रोंको लगभग छः मास वहीं रहकर पढ़ाया। इनके मनमें एक दिन ब्रजवासके लिये प्रबल उत्कण्ठा उत्पन्न हुई, उसी समय श्रीकृष्णचन्द्रजीसे प्रार्थना भी की। दूसरे दिनही अचानक सेठोंके पुत्रों सहित श्रीमथुरा जानेका सौभाग्य प्राप्त होगया। भगवान्की असीम कृपासे श्रीमथुराजीमें श्रीगोविन्ददेवजीके मंदिरमें सेठोंके पुत्रोंको पढ़ाने लगे। फिर वहाँसे आप जैनियोंको पढ़ानेके लिये रतलाम, भड़ौच चले गए। लगभग एक वर्ष वहाँ रहे। तदनन्तर वहाँसे श्रीप्रेम सरोवरपर श्रीलक्ष्मीनारायणजीकी पाठशालामें विद्यार्थियोंके अध्यापनार्थ रहने लगे। लगभग सं० १६६० में प्रेमसरोवरकी पाठशालामें पढ़ानेके समयही श्रीगह्वरवनमें रहने वाले महात्मा श्रीरणछोड़दासजीसे मंत्र-दीक्षा ग्रहण की। गुरू-कृपासे आपको पुत्र प्राप्ति हुई। पश्चात दो पुत्री हुईं।

लगभग सं० १६६५ में अपनी बड़ी पुत्रीका विवाह करनेके लिये लौटकर चिड़ावा आए। विवाहके पहलेही श्रीश्यामसुन्दरजीकी कृपासे चिड़ावाके प्रसिद्ध सेठ श्रीरंगलालजी वसंतलाल सेकसरियाके मनमें इन्हें देखतेही इच्छा उत्पन्न हुई कि पण्डितजीको यहीं अध्यापक-

के रूपमें रखा जाय तो अच्छा है। सेठोंने अपनी निजी पाठशाला स्थापित की, और इन्हें अध्यापकका कार्य सौंपा। यह कार्य करते हुए पवित्र वैष्णवों एवं साधक-जीवनमें रहने लगे। रात्रिमें लगभग तीन बजे कभी-कभी दोबजेही उठ जाते और लघुशंकादिसे निवृत हो हाथ पैर धोकर भजन करने बैठ जाते थे। बादमें लगभग १० बजे भजनसे उठकर शौचादि-नित्यकर्मसे निवृत होकर पुनः भजनमें बैठ जाते थे। इधर एक विद्यार्थी इनके समस्त कर्मोंसे निवृत होनेके पहलेही लगभग दिनके तीन बजे श्रीगोपालजीका प्रसाद तैयार कर लिया करता था, तब आप अपना मौन तोड़ते थे और प्रसाद पाते थे। भजनके समय यदि कोई विशेष कार्य्य होता तो लिखकर या संस्कृत-भाषामें बोलकर सम्पादन करते थे। प्रतिदिन एक लाख हरिनाम जप करनेका भी संकल्प था। भगवान्को बिना अर्पण किए जल भी ग्रहण नहीं करते थे और प्रसादके नामसे विष तकसे भी नहीं हिचकते थे। प्रति वर्ष दो-बार श्रावण और फाल्गुणमें श्रीवृन्दावन अवश्य जाया करते थे; किन्तु श्रीवृन्दावन-वाससे पाँच वर्ष पूर्वसे चित्त वृन्दावनमें विशेष आकर्षित होगया था। दो-वर्षसे ही इन्हें विदित भी होगया था, कि मेरा शरीर थोड़ेही दिन रहेगा। अतः निरन्तर वृन्दावनमें रहनेका निश्चय कर लिये थे, सं० १९८९ में चैत्र मासमें रुग्ण होगए और साधारण-चिकित्सासे कुछ भी लाभ नहीं हुआ। इनकी आज्ञासे हरिनाम-संकीर्तन, रास और श्रीमद्भागवद्पाठ बड़े समारोहसे हुये। पच्चीस दिन प्रथमसे ही राधेश्यामके नामके सिवाय अन्य शब्द नहीं बोलते थे। इस प्रकार सं० १९८९ श्रावण शुक्ल १३ को प्रातः-कालको श्रीवृन्दावनिकुंजको प्राप्त होगये। उस समय एक लौकिक सुगन्धका विकास हुआ, लोगोंने स्पष्ट अनुभव किया।

ये श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायके परम वैष्णव थे, निर्भेद भावसे सबसे मिलते थे। किसी भी देवके प्रति अश्रद्धा नहीं रखते थे। प्रत्युत कहा करते थे कि 'सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति' श्रीराधि-कृष्णके अनन्य भक्त थे। दैन्यताके मूर्तिमान स्वरूपही थे, इसलिये शास्त्र-संबंधी प्रतिभा सदैव गुप्त रखा करते थे। श्रीराधाकृष्णका नाम लेते ही आखोंमें प्रेमाश्रु भर आते थे। आपकी दृष्टिसे समस्त

विश्व निर्दोष था, किसीका दोष नहीं देखते थे। भजनके प्रभावसे दैवि-सम्पति स्पष्ट झलकती थी।

इनके द्वारा विरचित निम्न ग्रन्थ हैं, जो बम्बई और गीताप्रेसमें शिष्यसेवकों द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं। १—गंगासत, २—संस्कृत भजन-रत्नावली, ३—वैराग्य-सुधाविन्दु, ४—भक्ति सुधाविन्दु, ५—भाषा-भजनरत्नावली, ६—विज्ञान-सुधाबिन्दु, ७—हरिनामोपदेश, ८—भक्तनामावली, ९—हरिजनमहिमोपदेश, १०—श्रीमत्सद्गुरुजीवन—चरित्र, ११—सिद्धान्तसुधाबिन्दु, भक्तमन्दाकिनी, १२—श्रीमदाचार्यस्तुति, १३—सिद्धान्तषट्पदी, १४—बिनय-पद्यावली, और कृष्णपरत्व, ये ग्रन्थ संस्कृत श्लोकों टीकाओं और भाषा काव्यों में है।

इनके दिद्वान् शिष्य पं० श्रीचतुर्भुजजी महात्मा वृन्दावनमें ऋषि जीवन निर्वाह करते हैं। इनके अलावा मुख्य शिष्योंमें से पं० सीताराम पलड़िया, पं०विश्वेश्वरलालजी सुपोलवाल, पं० घनस्यामदासजी वैद्य सिंघाना, पं० दुर्गादत्तजी शर्मा झाड़ोदा, सेठ फूलचन्दजी कानड़िया हैं। इनके बनाये हुये कुछ पद उद्धृत करते हैं :—

[सवैया]

जो नरसीकि करी सरसी बरसी वहु हूँ न कही नहिं जावै;
स्त्रीपुरुषादि वितृष्ण करे कहो कृष्ण बिना असकूँ न बनावै।
रे मन मत्त! अहो मृगचंचल कंचन हेत दसोंदिसि धावै;
वान कुवान परी सठ तोहि न लाज अकाजमें आयु बितावै। १
सो रसना रसना क्युं हरीगुण छाड़ि करै जग और बड़ाई;
लोचन सोचन योग्य न क्युं वह कृष्ण बिना यदि और दिखाई।
सो क्युंह कर्ण हरि गुण गावत धावत औरकी और पराई;
सो क्युं सतीह रती न रती श्रृंगारवती यदि औरकताँई। २
तुम भजो भक्तगण भयहारी;
परतम अरु सत्सेव्य कृष्णही इसप्रकार यह निरधारी।
रक्षा करी जिन गरभवासमें जी जहँ जठरानल भयकारी;
करि जो प्रतिज्ञा ह्वाँ सो हारी जी पति निज तज भयो व्यभिचारी
करो अनन्य भगति गिरधरकी बिगरी सब सुधरै थारी;
'राधादास' कृपापथ जो वो जी हरिजन मुनि मत यह भारी। ३

श्रीपरमहंसदासजी

बाबा श्रीहंसदासजीका जन्म, क़स्बा काकोरी ज़िला लखनऊमें संम्वत् १९१६ में हुआ था। इन्होंने २४ वर्षकी अवस्थामें सुप्रसिद्ध श्रीनिम्बार्काचार्यके उत्सवकर्ता परम विरक्त एवं सिद्ध महात्मा श्रीगोपालदासजीसे मंत्र-दिक्षा ग्रहणकी थी। इनकी धर्मपत्नी श्रीगोपालीवाईजी भी त्यागपूर्वक श्रीगोवर्द्धनमें भजन करती थीं, वे भी बड़ी प्रसिद्ध भक्ता-भजनानन्दी प्रसिद्ध हुईं। पिता श्रीराधिकादासजीने भी विरक्त होकर आजन्म संकेतमें भजन किया। ये बरसानामें बिलासगढ़पर एकान्त स्थानमें भजन-भावमें निमग्न रहते थे और भोजनके समय पर नीचे आकर प्रसाद लेते थे। पट्ट शिष्य श्रीबालगोविन्ददासजी सदैव सेवामें उपस्थित रहते थे। श्रीवृन्दावनमें आगमन, उत्सव-समयके अवसरपर हुआ करता था, पश्चात् समाप्त होनेपर बरसाने वापिस चले जाते थे।

इनके उपास्यदेव व्रजवासी श्रीकृष्ण थे। उन्हींके संबंधसे व्रजवासियोंमें अत्यन्त प्रीति थी। व्रजवासी एकप्रकार दूसरे इष्ट थे। ये समझते थे कि, व्रजसे प्रीति-रहित व्यक्ति वैष्णव ही नहीं है। कहा भी है :—

"प्रीतिर्नसापयतिनया: परंजनुर्न तज्जनुर्न महाकुलोद्भवम्;
महाकुलंतन्नयन्न वैष्णवं न वैष्णव: सोपिनयोव्रजप्रिय:।"

इसलिये इनको व्रज तथा व्रजवासियोंमें अटूट दृढ़ प्रेम था। भगवद्भक्त महा कष्ट सहन करके और जाति, कुलका अभिमान एवं वैभवको तृण समान परित्याग कर, श्रीहरिधाममें निवास करनेमें ही अपना सौभाग्य समझते हैं, वैसे ही इनका व्रजवास अखंड था, व्रजवासियोंके टुकड़े मधुकरीको छप्पन भोग समझते थे, और उसीसे परम सन्तुष्ट रहते थे। ये निजी-कार्यके लिये कभी भी व्रज छोड़ बाहिर नहीं गये, भक्तोंके बहुत ही आग्रहसे उनके चित्त न दुखे इसलिये कभी २ चले जाया करते थे, न जानेमें भक्तापराध समझते थे। बाहिर कथा श्रवण करा कर, एवं उपदेश देकर सैकड़ोंका उद्धार करते थे।

श्रीमद्भागवतके प्रकाण्ड विद्वान् थे, केवल वेद-वेदान्तोंके प्रमाणसे व्याख्याकर्ता रूखे नहीं, आचार्यपादों, रसिकों एवं व्रजोपासक माधुर्यसेवियोंके सरसभावको लेते हुये,कथा विलक्षण एवं नवीन नवीन भाव प्रकट करते हुये रसवर्षा कर, जनताको मुग्ध कर देते थे। वैसेही श्रीमद्भागवतमें अत्यन्त श्रद्धा रखते थे, नित्य-पाठ-परायण करते थे और साक्षात् भगवत्-स्वरूप मानते हुये, कम-से कम एक-दो श्लोक पाठ करके भोजन करते थें। इनके गुरु गोपालदासजीने इनसे बाल्मीकिरामायण, भक्तमाल और श्रीमद्भागवतकी कथा श्रवण की थी, कहते हैं, कि उन्हींके आशीर्वादसे इनमें अद्भुत शक्ति प्रवेश हुई। यद्यपि ये उर्दू, फारसी और हिन्दीके विद्वान् प्रथमसे ही थे, कथा-वाचन-शैली देखकर बड़े-बड़े विद्वान् और षट्शास्त्री भी श्रवण करनेके लिये आते थे, और प्रशंसा करते थे।

ये गुरुनिष्ठ भी एकही थे, क्योंकि श्रीगुरुको तन, मन, धन सर्वस्व अर्पण कर चुके थे, इसलिये अपना कुछ भी नहीं समझते थे। श्रीगुरुमहाराजने आपसे दो वचनवद्ध वाक्य-प्रदान माँगे थे, श्रीमद्भागवतको साक्षात् भगवत्रूप मानना, और परमहंसीके चरमावस्थामें पहुँचकर, तिलक, कण्ठी परित्याग न करना, ये इन्होंने आजन्म पर्यन्त पालन किया, ऊँचे अवस्थाके परमहंस होकर भी तिलक कण्ठी नहीं त्यागे।

जो जो गुण एक आचार्यचरणाश्रित वैष्णवके महान् आत्मामें होना चाहिये—वे आपमें सभी विद्यमान थे। बरसानेमें पर्वतश्रेणीपर रहते हुये, एक चटाई और मृतिकापात्रके अतिरिक्त कुछ भी नहीं रखते थे। मौसमी-सामान अपनी शरीर रक्षाके लिये इन्होंने कभी नहीं रखा। शीत-उष्ण समान समझते हुये इनसे कभी भी नहीं घबड़ाये करुणा तथा दयाके तो साक्षात् मूर्ति थे, किसी भूखेको मिलते समय प्रथम उससे प्रश्न कर उठते थे, भूखे तो नहीं हो ? और जो कुछ पासमें होता उसे खिलानेमें किंचित भी विलम्ब नहीं करते थे। यदि पासमें नहीं हुआ तो माँगकर खिलाते थे। सुहृदय भी एकही थे। शिष्य ही नहीं, सभी मिलने वाले समझते थे, कि श्रीमहाराजकी कृपा मुझ पर सबसे विशेष है। किसी भी जिज्ञासुको उसके अवस्थामें रहते हुये,

भगवद्भजनका मार्ग बताते थे, कोई अन्य संप्रदायश्रित यदि इनसे दीक्षा लेना चाहा तो कहते कि, 'जिस संप्रदायका तुम्हारा गुरु है वही सर्वोपरि कल्याणकर्त्ता है, चारों संप्रदाय एक ही हैं—भिन्न नहीं। इनकी शत्रुता शत्रुसे भी नहीं थी, बुरा चाहनेवालोंका भलाई चाहते थे। यदि कोई व्यक्ति इनकी निंदा श्रवण कर, इनसे कहता। तो उत्तर देते कि—भाई वे बड़े सज्जन हैं, जो कुछ कहते हैं मेरे भलेही के लिए कहते हैं, मेरा शरीर तो दुर्गुणों और दोषोंसे भराही है, ऐसा सुन कर निंदक स्वयं लज्जित होजाते थे। ये बड़ेही शान्तचित शान्ति-मूर्ति थे, कभी भी अशान्त नहीं हुए। श्रीराधाकृष्ण चरणाश्रित रह कर सदैव निश्चिंत रहते थे। इन्होंने जबसे ब्रह्मचर्य धारणकी, पूर्णतः निभाया। २४ वर्षके तरुणावस्थामें कामदेवको पराजय कर, अखण्ड भजन किया, जिससे एक उच्चकोटिके प्रसिद्ध महात्मा बन गए। सिद्धान्तः ठीक भी है; प्रिया—प्रियतमके दिव्य प्रेमको पाकर, लौकिक प्रेम—विषको कब कोई ग्रहण कर सकता है ? इन्होंने पराई निंदा कभी नहीं की, मृत्यु-पर्यन्त नम्रता धारण किए हुए अभिमानक लेशमात्र भी हृदयमें नहीं आने दिए। सभीसे स्नेह-पूर्वक एकरस व्यवहार करते चले आए, और निर्हेतुक प्रत्युपकार रहित। सारांश यहहै कि आप पूर्ण परमहंस थे, इस नामको पूर्णरूपसे कृतार्थ किए।

श्रीबाबा महाराजसे सैकड़ों बार हमसे मिलन और बातचीत हुए, मेरे बातचीत करनेका संबंध यह श्रीनिम्बार्कमाधुरी ग्रंथ, और सभा थे। मैंने जब-जब आपसे बात किया पूर्ण-सन्तोषजनक सारांश निकले। मैंने मुकुटके झगड़ेमें 'मुकुटकीलटक'-नामक एक पुस्तिका लिखी थी। उसे ये सम्पूर्णतः देखकर, उसके विनम्नलेखन-शैली एवं निष्पक्ष विवेचन पर बहुत ही प्रसन्न हुए थे, और तभीसे विहारीदास नामक व्यक्ति को पहचानते थे। मुझे अन्तिम अवस्थामें दर्शनका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। आप आषाढ़ बदी ३ सं० १९६४ में गोलोक पधार गए।

इनके द्वारा निर्मित ग्रंथ सात हैं (१) रहस्य प्रकाशिका एवं गोदनालीला (२) श्रीराधारहस्य-प्रकाशिका (३) श्रीनिम्बार्क—प्रभा (४) सिद्धान्तरत्नाञ्जलि पूर्वार्द्ध (५) सिद्धांतरत्नाञ्जलि उत्तरार्द्ध (६)

चतुः संप्रदाय सिद्धाँत (७) श्रीराधाकृष्ण सिद्धांतसार। इन्होंने एक ही पद्य पुस्तक गोदनालीला निर्माण की, उसमें से दोहे उद्घृत करते हैं

[दोहा]

महाभाव जो गूढ़है का तूं समझै गँवार ;
तोहि सिखाऊँ साँवरी करौं कछुक विस्तार।
गुण सुन जाके देख दृग जामें मन लग जाय ;
रति ताहीको नाम है प्रथम प्रीति दरसाय।
कैसेऊँ संकट विघ्नमें घटे नहीं सो प्रेम ;
द्रवीभाव जब चित्तमें होय सो स्नेहको नेम।
सो स्नेह दो भाँतिको घृत और मधु समान ;
ता स्नेहकी अधिकता कारण अकारण मान।
मन, देह, इंद्री दोउ प्रियन एकमेक हो जायं ;
सो विस्वासी प्रणय है सख्य मैत्री भाय।
ताके आगे राग है नील, कसूंभी, मजिष्ठ ;
पल--पल प्यारो नयो लगे सो अनुराग अभिष्ट।
महाभाव ताके परे रूढ़ अधिरूढ़ सुभाय ;
व्योरा दोनों भावको मैं तोहि देऊँ बताय।
प्यारेके सुखमें एक पल पीड़ा सही न जाय,
महाभाव सो रूढ़ है जगत कष्ट दरसाय।
प्रिय मिलन सुखलेसभर कोटि ब्रह्माँड सुखनाहिं ;
कोटि ब्रह्मांडकी पीड़ा बिरह लेस भर नाहिं।
सो अधिरुढ़ि महाभाव है ताके है द्वै भेद ;
मोदन मादन मोहना दिव्युन्माद वृत्ति भेद।
व्योरो तिनको ना कहूँ वही गूढ़ है बात ;
रमा आदिमें सो नहिं जाने हियो मम गात।
प्रीतम प्यारी भावमें प्रिया प्रियहि आवेश ;
कीट भृंगकी न्याय ज्यों दोऊ होय विशेष।
रास करतमें एक समय अंतर्ध्यान भए स्याम ;
तदाकार तन्मय सकल स्याम भई ब्रजवाम।
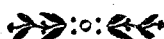
->>:o:<<-

श्रीदुखीश्यामदासजी

प्रसिद्धधाम श्रीजगन्नाथजीमें बाबा श्रीदुखीश्यामजीका निवास-स्थान है। वह मंदिरके पश्चिम-दरवाजे वाहिर लोकनाथ-महादेवके उत्तर भागमें स्थित है। बाबा महाराज एक प्रसिद्ध योगी थे। इनके जन्म जात विषयसे कोई भी परिचित नहीं है. न उनके विद्यमान-कालमें ही किसीको पता लग सका कि 'इनकी उम्र कितने वर्षकी है।' विद्यमान-कालसे अद्यावधि पर्यंत इनकी अनेक चमत्कारपूर्ण एवं योग-साधनकी कथायें उस देशके लोगोंमें संत-गुणगानके लिये अधारभूत हैं, लोग श्रद्धा-विश्वास-पूर्वक कहते सुनते पाये जाते हैं। इनकी उम्रके विषयमें लोगोंका विश्वास है कि ४०० वर्षकी थी—जो एक सच्चे अष्टांग-योग साधक-सिद्ध योगीके लिये पूर्ण सम्भव है। तद्देशीय जनतामें यह भी प्रसिद्ध है कि इन्होंने ग्यारह, सोलह, एवं बाइस-बाइस वर्षोंकी कइएक समाधियें लगाई। एक बार इनकी गुफा रेलवेके सन्मुख पड़ गई, जिसमें ये समाधिस्थ अवस्थामें बैठे थे। वह गुफा एक टीलाके रूपमें था । गुफाका द्वार वायु तकके लिये आवागमन-मार्ग बंद था। खुदाई होने पर आप दिख पड़े, तब किसी दुष्ट व्यक्तिने लात मारी, इस अपराधसे वह तत्कालही मर गया। अंतिम समाधिसे छुटकर श्रीजगन्नाथजीकी सेवामें आनेका प्रसंग इस प्रकार है—श्रीजगन्नाथजी प्रति-वर्ष विमार होते हैं, उनकी नाड़ी देखकर दवाइयें भी दीजाती हैं। किसी समय बड़ेछत्ता-स्थानके महंत श्रीरघुवरदासजीको स्वप्न हुआ, जगन्नाथजी कह रहे हैं कि 'मैं बिमार हूँ समुद्र-तटपर एक योगी संत समाधि लगाये बैठे हैं आप उन्हें सादर लिवा लावें, वे नाड़ी-परीक्षाकर दवा देंगे तब हम अच्छे होंगे।' आज्ञानुसार ये पुजारियोंको संग लेकर समुद्र तट पर गये; किन्तु वहाँ भारी अनुसंधान करने पर भी पता नहीं लगा, वे, निरास होकर वापिस आगये। पुनः रात्रिमें स्वप्न हुआ कि जिस स्थान पर लाल झंडा गड़ा हो—वहीं खुदाई कराओ, वे उसी स्थान पर गुफामें बैठे हुए मिलेंगे । पुनः द्वितियवार ये वहाँ गये और वह स्थान मिल गया, जहाँ पर झंडा गड़ा था। खुदाई होने लगी, कई हाथके नीचे समाधिस्थ बैठे हुए दृष्टिगोचर हुये। इनके प्रार्थना

करने पर समाधि खुली, पश्चात् इन्होंने श्रीजगन्नाथजी-द्वारा की हुई आज्ञा सुनाई। आज्ञा मान कर शीघ्र मंदिरमें आये और इन्होंने नाड़ी-परीक्षा कर दूध, जल, नारियल, और केला मिलाकर उपचार की, श्रीजगन्नाथजी तत्काल अच्छे होगये। यह सेवा श्रीदुखीश्याम बाबा के आधीनमें प्रारंभिक-कालसे लेकर, परमधाम-प्रस्थान समयतक था। आजकल भी भगवान् बीमार होते हैं और दवाई दी जाती हैं। रथयात्राके अवसर पर १५ दिवश—पर्यन्त इनकी समाधि-स्थान सुरक्षित अवस्थामें विद्यमान है। गुफाके द्वार पर हरड़का वृक्ष खड़ा है, और एक विशाल हनुमानजो पधरे हैं। आसपासमें काजू वृक्षोंका घोर जंगल है।

इन्होंने विद्यमान-कालमें लाखों जिज्ञासुओंको भक्तिपूर्ण उपदेशों द्वारा तृप्त की, और भवार्णवसे पार की। जनताको समय-समय पर दुखी देखकर वर्षा आदिके लिये सैकड़ों चमत्कारपूर्ण भविष्य-वाणियें कर दुख हरण की जो सर्वथा सत्य हुईं। उड़िसा-प्रांतके १८ राजा महाराजा शिष्य-सेवक हुए और ५५ विरक्त शिष्य हुए जो एक-से एक बढ़ कर योगी, भक्त और विद्वान् थे, जिन्होंने हिंदुस्तानमें सैकड़ों स्थानें (मंदिर) स्थापित की। बाबाने चैत्र अमवश्या संवत १९५८ के दिन जीवित समाधि ली। शहरके बड़े-छोटे हजारों दर्शनार्थी एकत्र हुए। द्वितिय दिवश समाधि स्वयं फट गई और आप परमधाम प्रस्थान कर गये। अकाशमार्गमें जाते हुए इनके दिव्यस्वरूपका अनेक भक्तोंने दर्शन किया।

इनके परशिष्य बाबा श्रीकृष्णदासजी सेवार-ग्राम में रहते हैं इन्होंने अपनी परम्परा इस प्रकार हमें बताई है—१-श्रीचतुर्चिंतामणि देवजी, श्रीद्वारकादेवजी, श्रीमथुरादासजी, श्रीगोपालदासजी, श्रीबल-भद्रदासजी, श्रीरुक्मिनीदासजी, श्रीबलरामदासजी, श्रीदामोदरदासजी श्रीध्यानदासजी, श्रीचैतन्यदासजी, श्रीदुखीश्यामदासजी और श्रीगिरिवरदासजी।

दिगंवर-अखाड़ेके श्रीमहंत श्रीराधामोहनदासजी इनके नाती-शिष्य हैं, ये नासिकमें निवास करते हैं, तथा अखाड़ोके कार्य संचालनमें एक प्रमुख कार्यकर्ता तथा उद्योगी हैं, इन्होंने दस पन्द्रह हजार रुपये लगाकर नासिकमें एक मंदिर भी बनवाया है।

ये ओड़िया-भाषाके महाकवि थे। इनके द्वारा रचित हज़ारों पद उस देशमें विद्यमान हैं। उड़िसा-प्रांतके श्रीकृष्णलीलानुकरणी एवं गायक लोग पदोंको गा-गाकर आनंद लेते और देते हैं।

जगन्नाथ त्रिलोककर्ता है की विचार एवे मती;
जगत जनक गुहारी न शुण कूहूर मुदकी श्रुती।
ये गज सुदामा पांडवक वामा अजामील वेद पती;
जलवच्छ खोजे बूड़ी मासू थिले षठिये सहस्र यती।
जनकनंदिनी परमला हरिखी मारकंड रिषि संतती;
जड़र घररू अनलता परू युधिष्ठिर धर्म नृपती।
येतें एही रूपे जगते तुंभ्ये आये खंडिलतांक आरती;
यंत्र मंत्र तंत्रे जग श्रुतिके वरनि कहूता ख्याती।
ये वा पूर्व पर युगे युगे तोर अछई त्रिवीध गती;
जगवंधू सर्व जीवे थांती भावेकी रूपे एणे अनीती।
जीवर जीवने जगत शरण रख प्रसन्न श्रीपती,
जणाण ए हृदे जग ज्योती पदे दासदुखीश्याम चिंती।

मुखिया श्रीगोकुलदासजी

इनका जन्म जैपुरराज्यांतर्गत महुआ-नामक ग्राममें हुआ था। ब्राह्मणवंशावतंस थे। ये १२ वर्षकी अवस्थामें ही, स्थान लालामहाराज मन्दिर भरतपुरमें विद्यमान महात्मा श्रीरेवतीरमणदासजीके शिष्य होगये। शिष्य होनेके पश्चात इनके पास दो-तीन वर्षतक रहे फिर किसी रामलीलाके मण्डलीमें चले गये। ये श्रीरामजीके स्वरूप बनते थे। स्वरूपाईसे उतर कर कुछ दिनतक मंडलीके संचालक स्वामी रहे, इनकी अपनी मंडली थी। एकबार ये जैपुर गये वहां श्रीनिम्बार्कीय वैष्णवों एवं भगवद्भक्तोंके संग सत्सङ्ग हुए, पश्चात् १६६६-६७ के लगभग श्रीवृन्दावनमें आगये। वृन्दावनमें कुछ दिन निवास कर सलेमाबाद गये. गानविद्यामें निपुण तो थे ही-वहां श्रीसर्वेश्वरजीकी सेवामें इन्होंने गान-वाद्य की; इससे विद्यमान श्रीश्रीजी महाराजका चित्त आकर्षित हुआ और इन पर अति प्रसन्न हुए; उसी समय छोटी कुंजकी सेवा इन्हें अर्पण की। वृन्दावनके इसी कुंजमें संवत १६७५

में परमधाम पधारे । ये आचार्य-चित्र, निज सेवा और संग्रहीत वाणियें आदि अपने शिष्य श्रीकिशोरीदास एवं केशवदासजीके अधिकारमें दे गये । इन्होंने आचार्यों एवं रसिकों-द्वारा निर्मित पदोंसे तीन ग्रन्थ संग्रहकी हैं-जो अभी अप्रकाशित हैं। नित्यकीर्तन, -आचार्य वधाई और ३-वर्षोत्सव । इनमें इनके द्वारा निर्मित भी सैकड़ों पद सम्मिलित हैं । इन्होंने अलग कोई ग्रंथ निर्माण नहीं की । आचार्योंमें इनकी अत्यन्त निष्ठा थी, मंगल वधाई द्वारा केवल आचार्य गुणगानके ही पद निर्माण किया करते थे । आचार्योत्सवोंमें वाणी एवं मंगल वधाई गाकर जो उत्सव मनाये जाते हैं, केवल इन्हींकी ही परिश्रमका फल है । पदोंमें ये 'हर्षप्रिया 'और' कृष्णअली' दोनों ही छाप लगाते थे ।

[राग--चर्चरी]

अवतो विनय करिये कान अरुणजूके वारे ;
दीनन दुखहरन नाथ ! करुणा रूप धारे ।
जानी निज धर्म हानि प्रगट भये सुखकी खानि ;
युग-युग उपकार करत अमित विघ्न टारे ।
पतितपावन नाम सुन्यो सकल शास्त्र वेद भन्यो ;
चक्ररूप भक्तभूप कलिमल भ्रम जारे ।
काम, क्रोध, मोह, लोभ, तृष्णा, मद, मर्श, क्षोभ ;
इंद्री लोलुप अपार खुले दशहुँ द्वारे ।
अब ना कछू चलत जोर घेरयो जग अटवी चोर;
माया-तम-घोर-निशा हाथ पति तिहारे ।
हा, हा, प्रभु ! एती देर दरशन लागी ओशेर ;
छिन छिन-हिये हूक उठत लागत दिन भारे ।
आशा श्रीवन-निवाश हरिव्यास जनन पास ;
'हर्ष प्रिया' प्रीतम-पद सेवा सुख सारे ।

सेठ श्रीजुम्मरलालजी

सेठ श्रीजुम्मरलालजी (सांवलदासजी) बड़े ही भगवद्भक्त तथा स्वसंप्रदाय एवं आचार्य-निष्ठ वैष्णव थे। इनका जन्म जैपुर नगरमें हुआ था, तथा वहीं शिक्षादि प्राप्तकर तरुणावस्थामें घरेलू कारोबारको सँभालकर, व्यवस्थित रीतिसे चलाते हुये, श्रीनिम्बार्क-संप्रदायानुयायी किसी संत महानुभावसे दीक्षा लेकर वैष्णव हो गये, और अपने दैनिक समयमेंसे अधिकांश भजन, तथा श्रीठाकुर-सेवामें भी व्यतीत करने लगे। अपने सेव्य ठाकुरजीकी सेवा बड़े ही प्रेम तथा लाड़-प्यारसे करते थे। आचार्यपादोंमें भी इनकी अत्यंत निष्ठा थी। सर्वप्रथम इन्होंने जैपुरमें आचार्य-जयंती-उत्सव करनो आरम्भ की। सेठजी बहुतही सरल हृदयके सज्जन थे। वैष्णवमात्रसे स्नेह-युक्त, रसभरी, हृदयको द्रवीभूत करनेवाली बातें करते थे। इनके पांच पुत्रोंमें-से श्रीलालदासजीके तीन पुत्र उत्पन्न हुए— श्रीनिवासदासजी, श्रीरामदासजी और श्रीलक्ष्मीनारायणदासजी। अंतिम श्रीलक्ष्मीनारायणदासजी सबसे छोटे थे, इन पर सेठजीका अत्यंत स्नेह था। सेवा-पूजाका कार्य भी ये दादाजीके संग रहते-रहते भलीभाँति जान गये थे। अतः लगभग बीस-बाइस वर्ष हुये इनके गोलोक पधारनेके पश्चात्, सेवा-पूजा आचार्योत्सव-कार्यको इन्होंने संभाला था। और विधिवत प्रेमपूर्वक करते थे—किन्तु दो वर्ष हुए ये भी गोलोक-प्रवासी हो गये।

सेठजी भगवद्भक्त तथा रसिक महानुभाव थे। ये ठाकुरजीको निमग्नतावस्थामें पद गाकर सुनाया करते थे तथा स्वयं भी नवीन—नवीन पद रचना कर भेंट किया करते थे। इनके द्वारा निर्मित पद एक प्रेम भक्त-हृदयकी पीर, उमंग आल्हाद, तन्मयता, विह्वलता—प्रभृतिको प्रगट करते हैं। कुछ पद उद्धृत करते हैं।

सखि! आई बसन्त बहार री।
गौरश्याम बैठे मन्दिरमें चलके नैन निहार री।
पीत बसन पहिरे तन सुन्दर, युगल चन्द इकसार री;
चोवा चन्दन और अरगजा, परत समीर फैवार री।
रसिक श्याम तहाँ सुघर सहेली, बोलत मुख बलिहार री;
पीरे तन आभूषण सोहें 'झूमर' रूप निहार री। १

जुगललाल बलि जाऊँ प्यारे जुगललाल बलि जाऊँ;
पाँव पै लोटूँ जागो प्यारे, रस भरि बतियाँ गाऊँ।
माखन मिश्री मोदक मेवा, हितसे भोग लगाऊँ;
बिथुरे बालन मन्द हसन, झाँकी झूमर पाऊँ। २

हमारे गुरु निम्बार्क-भगवान।
दया धर्मके सागर कहिये, पतितन पावन बान;
चरन शरन मैं उनकी लीनी, छाड्यो मारग आन।
अब चरनन को दर्शन दीज्यो, मोहि दीन दासको जान;
झूमरदासी करत बीनती रक्षा कीज्यो आन। ३

आवोरी सखी! रूप निहारां फूलन हार सिंगार।
केशरिया सब भूषण बाजे तुर्रा तार हजार;
जुगल रूप पर करोरी न्योछावर, झूमर तन मन वार।४

बोहरे श्रीवृजलालजी।

रसिकवर बोहरे श्रीवृजलालजी (श्रीवृजभूषणशरणदेवजी) का जन्म संवत् १६२६ में कार्तिक-कृष्ण चतुर्थी रविबारको अलीगढ़ जिलेके फौजुवा—नामक ग्राममें हुआ था। इनके पिताजीका नाम श्रीजयकृष्णदासजी था, ये पालीवाल-ब्राह्मण-कुलमें एक प्रतिष्ठित रईस थे। श्रीबोहरेजीका विवाह १६ वर्षकी अवस्थामें हुआ, किन्तु इनका चित्त गृह-झंझटोंमें विशेष न उलझकर उपराम-सा रहने लगा। तरुणावस्थामें कई संतानें भी हुईं। पश्चात् पूर्व-जन्म संस्कार-बस तथा कृपा-स्वरूप श्रीवृंदावन जाने की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न हुई, वृंदावनमें आकर टट्टी स्थानके सरोवर—नामक आश्रममें ठहरे, वहाँ तीन वर्ष पर्यन्त रहे। उन्हीं दिनों इनके पिताजी भी वहाँ आये और ग्राममें चलनेकी आग्रह की, विशेष आग्रह करने पर, वृंदावन और ग्राममें अर्ध-विभाग समयमें रहने की इन्होंने जिद्द की। पिताके वाक्य मान कर ग्राममें गये और कुछ दिन रह कर, पुनः वृंदावन आगये, वृंदावन-वास– कालके लिये पिताने ५०) रुपये मासिक बंधान कर दिये। कुछ दिन बाद पिताके स्वर्गबास होने पर समस्त जायदादके मालिक हुए, और प्रबंधका समस्त भार उठाना पड़ा,

किन्तु वृंदावन आना जाना जारी रहा। लड़कोंके सँभालने जोग्य होने पर उन्हें सौंप कर विशेषतः वृंदावनमें ही रहने लगे एवं कई वर्षोंसे ऐसी विरक्ति हुई कि घर जाना सर्वथा त्याग दिये।

श्रीमान् बोहरेजीसे कई वर्षोंसे मेरा भी संपर्क रहा, मैं सदैव स्वभावतः उनके पास आता जाता रहा, इसलिये उनमें जो अद्भुत व्यक्तित्व तथा विशेषता थी, वे मेरी अनुभव की हुई तथा देखी हुई हैं।

ये वृंदावन-वासी एक प्रसिद्ध महात्मा श्रीदामोदरदासजीके शिष्य थे, जिनके ददुआ साहब, चरखारी-नरेश आदि कई राजा रईस और सहस्रों शिष्य थे। इन्होंने इनसे अपने समक्ष नियंत्रणमें रखकर, कई कठिन अनुष्ठान भी कराये थे। रासलीला-दर्शनका प्रेम बृंदावनमें आगमन-कालसे ही हो गया था, यहाँ निवास-काल में रासलीलाके अनन्य—प्रेमी हो गये थे। बाम—मुकुटके रास मंडलियोंके वाहुल्यका श्रेय इन्हींको है, सर्व-प्रथम स्वामी दामोदरजी को अपना शिष्य कर, इस कार्यकी श्रीगणेश की, स्वामी केशवदेव, स्वामी लाड़िलीशरण, स्वामी दामोदर आदि इनके आश्रित रहे। स्वामी घनश्यामशरण और मोहनलालको प्रधान रखकर, स्वतंत्र अपनी मंडली बनाकर, हृदगत-भावोंको नई-नई लीलायें एवं पद-रचना कर, अभिनय कराते थे।

ये श्रीमहावाणीके अनन्य—प्रेमी थे पदोंके आंतरिक-भावों में प्रवेश करने की इनमें अद्भुत शक्ति थी। पदोंमें चित्त तदाकार हो जाता था, वैसेही वाणियोंकी व्याख्या करनेकी भी अद्भुत शक्ति थी। वृंदावनस्थ, वाणियोंके ज्ञाता एवं प्रमुख कथानकोंमें से एक थे। सत्संगमें इनके वक्तव्यसे श्रोतागण मंत्रमुग्ध-से रह जाते थे। ये बड़े—से—बड़े विद्वान् तार्किक एवं सत्संगियोंके समक्ष भी अपने उद्देश्यको उच्च-पद पर रखे। इनके समक्ष कट्टर नास्तिक एवं धर्मवहि मूर्ख भी नत-मस्तक हो जाते थे। आचार्य-उत्सव एवं श्रीठाकुरजीकी अष्टयाम-सेवामें इनकी अटूट निष्ठा थी, एतद्विषयक-योजना सदैव एक-न-एक करते ही रहते थे। बड़े-बड़े संत-महंतोंसे भी इनका

गहरा प्रेम-संबंध था, जैसे श्रीरामकृष्णदासजी, श्रीग्वारियांजी, श्रीहरिबाबा, श्रीओड़ियाबाबा, आदि। ये ४० वर्षसे अखंड वृंदावन—वास करते थे। सं० १९९७में श्रीप्रिया-प्रियतमके नित्यलीलामें-लीन हुए। इन्होंने सैकड़ों पद एवं छन्द निर्माण करके रासलीलाओंमें समावेश की है। ये दो पद इन्हींकी रचना हैं जो प्रत्येक रासमंडललियों में व्याप्त हैं, और श्रोतागण श्रवणकर, प्रेमार्णवमें गोता लगाने लगते हैं।

[पद श्रीराधा-वाक्य]

अहो मेरे लाल ! भामते प्रीतम।
आनँदकंद किशोर मूरति प्रेमरस घन-बरसने प्रीतम।
दिव्य चिद्घन चारु मनोहर हे उदार ! मेरे लाड़िले प्रीतम ;
चलो-चलो अब मंडल चलिये रस ढरिये मेरे लाड़िले प्रीतम।

[श्रीकृष्ण-वाक्य]

प्रानप्रियतमा प्रियवरी प्यारी ! कलवैनी सुकुमारी हो ;
तुमरी या मृदु बोलन पर हौं तन, मन, धन देऊँ वारी हो।
कृपा मनाऊँ यह बर पाऊँ तब सेवा अधिकारी हो ;
वेगि पधारो अब पग धारो परिकरकी प्रतिपारी हो।

श्रीसर्वेश्वरो जयति

श्रीनिम्बार्क-साहित्य-प्रचारक

व्रजविदेही महंत श्रीसन्तदासजी

व्रजविदेही महन्त श्रीसन्तदासजी महाराज स्वयं अनेक ग्रन्थ निर्माण कर श्रीनिम्बार्क संप्रदायमें साहित्यकी उन्नति की है' तथा इनके ही संबंधसे और भी सैकड़ों ग्रंथ संस्कृत हिन्दी और बंगलामें प्रकाशित हुए हैं। इन्होंने कई सहस्र सज्जनोंको शिष्य कर संप्रदायिक वैष्णवोंमें भारी वृद्धि की है तथा आचार्य युग उपस्थित कर दी है— इसलिये इनका परिचय माधुरीके गौरवको बढ़ानेवाला है। श्रीसुदर्शन वर्ष १ अङ्क ४ में इनका संक्षिप्त परिचय प्रकाशित हुआ था।

पुस्तककी तरह महापुरुषका भी स्वाध्याय होता है, और उसके लिये उनके चरित्रका पता लगाना आवश्यक है। चरित्रका मतलब उनके उद्देश्य, विधेय, गुण और कर्मसे है। ये सब मिलाकर उनके संस्कार का ढांचा तैयार करते हैं। संस्कार एक पूर्व-जन्मका, दूसरा वंशपरम्परासे मिला हुआ, तीसरा नैसर्गिक जलवायुके संसर्गसे उत्पन्न हुआ, चौथा सामाजिक बंधु बान्धवोंके संसर्गसे उत्पन्न हुआ होता है। श्रीश्रीसन्तदासजी-बाबा-महाराजकी जीवनी लिखनेमें भी उपर्युक्त विषयोंका आलोचना करना आवश्यक है। प्रथम स्थान महात्म्य अर्थात् जिन स्थानोंमें उनका जन्म, उनका पालन उनकी शिक्षा उनके व्यापार-व्यवस्था हुये हैं; इन समस्त स्थानोंके जलवायुका प्रभाव वहाँके जनसमूह पर कैसा है, इसका पता लगाना चाहिये। इस पर काल-महात्म्य अर्थात् जिन-जिन समयोंमें उनके जन्मसे देहान्त तक घटनायें हुई हैं, इन समस्त समयोंका प्रभाव अर्थात् युग-धर्म देखना है। अभिपात्र विचार अर्थात् इनके पूर्व पुरुषसे लेकर उत्तराधिकारी शिष्यतक, सबका हाव, भाव, चाल, चलन, मति, गति सब देखना आवश्यक है।

उपरोक्त आधारपर महाराजजीके जीवनको चार भागोंमें लाना है। प्रथम इनके जन्मसे शिक्षा समाप्तितक विद्यार्थी-जीवन। द्वितीय-

श्रीनिम्बार्क-वैष्णव-कुल-कमल-दिवाकर, वेदान्तसागर,
संतसेवी-कुल-कौस्तुभ चतुः संप्रदाय मनोनीत
श्रीमहन्त, श्री १०८ श्रीमान् व्रजविदेही महन्त—
श्रीसन्तदासजी महाराज (काठियाबाबा) वृन्दावन।
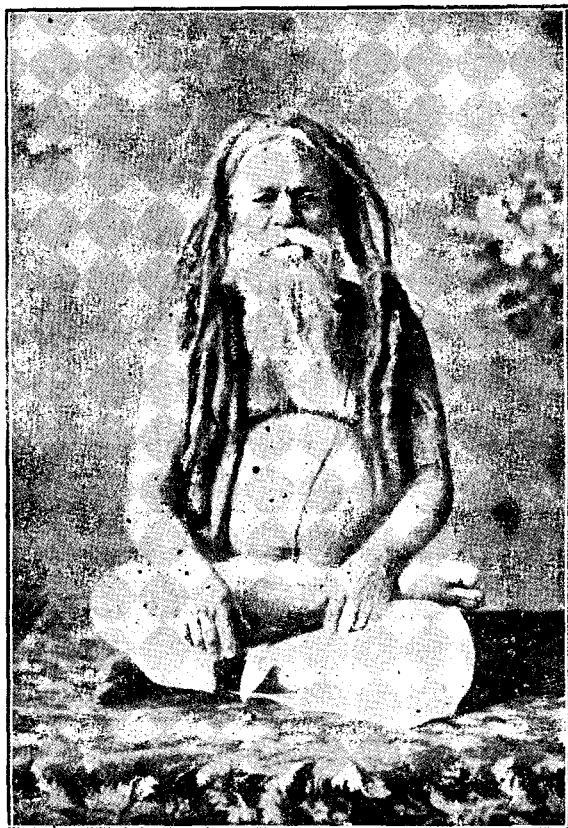
राजसनमान्य, तपोनिष्ठ,

पूज्य ब्रह्मचारी श्रीराधेश्यामजी महाराज

अध्यक्ष जैपुर मन्दिर, बरसाना धाम।

शिक्षा समाप्तिसे सद्गुरु-लाभतक अनुसंदिधित्सु। तृतीय-सद्गुरु-लाभसे स्वयं गुरुत्व प्राप्त करनेतक शिष्य-जीवन।

आसाम प्रान्तके श्रीहट्ट-जिलाके अन्तर्गत हविगंज-सब-डिविजनके वामाई ग्राममें महाराजका जन्म हुआ था। श्रीहट्ट-जिलामें स्थान-स्थानमें पर्वत और नदी हैं; इससे यह देखनेमें जैसा सुन्दर है—वैसाही उपजाऊ भी इनसब कारणोंसे वहाँके अधिवासी परिश्रमी, भावप्रवल और सरल होते हुये चतुर भी हैं। पहाड़ी देशके ऐसे (हठी) एकनिष्ठ भाव और समस्त भूमिका साम्यभाव इस स्थानमें मिला हुआ है। इन दोनों भावोंका विग्रह-स्वरूप श्रीकृष्णचैतन्यके पितृ-पुरुषोंकी जन्मभूमि भी इस देशमें ही थी। इन कारणोंसे श्रीहट्टमें वैष्णवताका प्रचार अधिक है। इसी देशमें जन्म होनेसे हमारे चरित्र-नायकका झुकाव होना स्वाभाविक ही है; परन्तु बंगला साल १२६६ में बंगला देशके अन्दर वैष्णव-धर्ममें मलीनता आनेसे जनताके ऊपर नवीन संस्कारी ब्राह्मधर्मका प्रभाव अधिक मलीन होगया था। महाराजका जन्म इस सालके ज्येष्ठ दशहरामें हुआ था। गर्मीके प्रभावसे उनमें तेजस्विता और वर्षातके प्रभावसे उनमें सरसताका अपूर्व मिलन था। इनके इन स्वभावोंने जन्मसे लेकर देहान्ततक जन-समाजमें इनका इस श्रेष्ठताके पद पर पहुँचाया।

इनका पितृ-दत्त-नाम ताराकिशोर एवं पैतृक-उपाधि चौधुरी थी। ये कहना विशेष है, कि शाक्त, वैष्णव दोनों भावोंको रखते हुये इनके पिताने इनका नाम ताराकिशोर रक्खा।

इनको ब्राह्मण होते हुये भी धनाढ्य होनेसे चौधुरी उपाधि मिली थी। महाराज बाल्यकालमें ही महाभारत, रामायण, गीता, भागवत, धार्मिक ग्रन्थ सुननेके लिये बहुत उत्कण्ठा रखते थे, और कितने ही सुने हुये उपदेशोंको कण्ठ भी कर लेते थे। इनमें यह भी विशेषता थी, कि पूर्णतया समझे बिना मन्त्र स्तोत्रादिकोंका पठन उच्चारण उनसे नहीं होता था। ६ वर्षकी उम्रमें ही मातृ-श्राद्धके समय प्रथम मंत्रके अर्थको समझकर पश्चात् उच्चारण किया करते थे। स्मरण-शक्ति इतनी तीव्र थी कि एकबार सुननेसे ही कण्ठस्थ होजाता था। इन्होंने इतनी परीक्षायें पास की सबमें ही उत्तम फल प्राप्त किया।

एन्ट्रेस और एफ० ए० परीक्षामें वृत्ति मिलने लगी थी। बी० ए० और एम० ए० में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किया था।

बाल्यावस्थामें उपनयनके पश्चात् संध्या, वंदना, आचार, अनुष्ठानमें ये वर्णाश्रमी पिताके योग्य पुत्र थे। परन्तु एन्ट्रेस पास करके कलकत्तामें जब पढ़ने लगे और बड़े घरोंके छात्रोंके साथ प्रेसीडेंसी कालेजमें जब रहने लगे तब, विजातीय भावका प्रभाव इन पर पड़ने लगा। देहातके बालक बड़े शहरके चक्करमें पड़ गये।

पहिले ही कह चुका हूँ कि समाज-संस्कारके आन्दोलनके समयमें इनका जन्म हुआ था। बंगाल काँग्रेसके नेता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जो बंगालके शेर कहे जाते थे वा इनके अध्यापक थे। और बंगालके द्वितीय काँग्रेस नेता सुप्रसिद्ध वक्ता विपिनचन्द्र पाल इनके साथी थे। इधर समाज संस्कारक श्रीविजकृष्ण गोस्वामी, शिवनाथ शास्त्री ब्रह्मसमाजकी वेदीसे वेद उपनिषद्‌की वाणी द्वारा नवयुवकों को मुग्ध कर रहे थे। महाराज भी इसी प्रभावमें पड़कर पितृ पुरुषोंके आर्य धर्मके सिद्धान्त और दृष्टान्त ब्राह्ममें थोड़ा बहुत दीख पड़नेसे इनका भी चित्त उसी तरफ झुक पड़ा। परन्तु ब्रह्मसमाजके खान-पान से अत्यन्त दूर थे। पितृ-धर्ममें रहते हुये इनका खान-पान देश कालानुसार तामसिक द्रव्यादि युक्त था। परन्तु ब्रह्मसमाजमें प्रवेश करते ही सात्विक निरामिस अहारमें इनकी प्रवृति होगयी थी। उपनिषद्‌के सिद्धान्त वैष्णव आचार ये दोनों रहते हुये भी जाति-भेदकी शिथिलता रहनेसे इनके पिता ब्रह्म समाज तथा इनके ऊपर क्रोधित रहतेथे, बल्कि इनको एक बार अत्यन्त कड़ा दण्ड देनेके लिये भी तैयार होगये थे।

इनका बाल्यावस्थामें ही विवाहहोगया था। पिताने इनकी स्त्रीको भी अलग कर दिया। ये धर्मके ऊपर दृष्टि करते हुये कर्तव्यमें दृढ़ रहते थे। पिताके क्रोधसे भी नहीं डरे एवं पत्नीके बोझको भी सँभाला परन्तु सत्य संकल्पको लिये हुये धार्मिक संस्थाको इन्होंने नहीं छोड़ा। परीक्षामें जो वृत्ति मिलती थी, उससे ही पत्नी सहित निर्वाह करते थे। मद्यपानादिकको निवारण करनेके लिये ग्राम २ में प्रचारके लिये जाना, और गृहस्थाश्रमके कार्यको भी सँभालना इत्यादि झंझट रहते हुये भी इन्होंने १८७६ में कृतित्वके साथ दर्शन शास्त्रमें एम० ए० पास

कर लिया। अब ये ब्राह्मोंके सिटी-कालेजमें अध्यापकता-कार्य्य करते हुये आइन पढ़ने लगे। इनके पिता इस मतके परिवर्तनके लिये हमेशा इनके पीछे पड़े रहते थे। और संस्कारी भावसे सनातन भावमें लानेके लिये हमेशा कोशिश करते थे। इसी समय इनके पिता काशी आये और पुत्रको भी वहाँ बुलाया। तैलंगस्वामी और भास्करानन्द स्वामी इन दोनों महापुरुषके संग तथा तीर्थके प्रभावसे पुत्रका धर्ममत परिवर्तित होगा-यह उनको आशा थी। ये तो बाल्यावस्थासे ही युक्तिवादी थे, बिना समझे कुछ नहीं करते थे। पिताका प्रयास सफल नहीं हुआ; परन्तु उपरोक्त दोनों महात्माओंके ब्रह्मज्ञानका प्रभाव इन पर बहुत ही पड़ा, इनके समान ब्रह्मवित् ब्रह्मसमाजमें दृष्टिगोचर न होनेसे तथा अन्यान्य कारणोंसे इनका चित्त ब्रह्मसमाजसे अलग होने लगा।

आत्मशक्ति लाभ करनेके लिये ये एक योगी-सम्प्रदायमें प्रवेश कर प्राणायाम आदिका अभ्यास करने लगे, यहाँतक कि इनको देख-देख कर श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी प्रमुख नेता भी इसमें आगये। इसी समय थियोसिफिकल सोसाइटीके नेता अमेरिका-वासी सुप्रसिद्ध कर्नेल-अल्कट कलकत्ता आये और अमेरिकामें बैठकर हिमालयके महापुरुषोंसे मन्त्र-शक्ति-लाभ करनेकी वार्ता प्रचार की। इससे ये पूर्णतया समझ गये कि ब्रह्मज्ञानी सद्गुरू शिष्योंमें शक्ति संचार करके पाप-तापसे उद्धार हो सकता है। श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी प्रभुने ब्राह्म प्रचारक होते हुये भी, आकाशगङ्गा पहाड़में सद्गुरु लाभ करनेसे, तथा उनकी कृपा द्वारा शीघ्र सिद्धि लाभ करनेसे, बगालके शिक्षित समाजमें एक नवीन युगकी सूचना की। ये गोस्वामीजीमें पहिलेही श्रद्धा रखते थे। अब इनका अनुसरण करनेके लिये तैयार हुये और गयादि तीर्थादिकोंमें वकालत करनेसे संत संग प्राप्ति की सम्भावनासे वकालत परीक्षा पास कर लिये।

द्वितीय-जीवन

इसी समय किसी कारण बस सस्त्रीक जन्मभूमि सिलहट्ट गये। पिताके अनुरोधसे वहाँही वकालत प्रारम्भ करनी पड़ी। सिलहट्ट वैष्णवताके लिये प्रसिद्ध है। वहाँकी हरिसभामें नित्य संकीर्तनादि हुआ करते थे। ये हरिसभाके संचालनमें विशेषरूपसे प्रवृत्त होगये।

वैष्णवताके गम्भीर भावमें ४ वर्षकी डुबकी लगाकर फिर वहाँसे कलकत्ता हाईकोर्टमें वकालतके लिये आये। दिनमें वकालतका काम करते थे और सन्ध्या होते ही भजनमें निमग्न होजाते थे।

इतने पर भी इन्हें ब्रह्मदर्शन नहीं हुआ। भागवत पाठसे ज्ञात हुआ कि तीर्थादिकोंमें भ्रमणसे ब्रह्मज्ञ-पुरुष मिल जायगा। इस विचारसे कलकत्ता गङ्गा—तटपर जा बैठे। ध्यानमें महादेवजीने दर्शन देकर एकाक्षरी-मन्त्रके जप करनेका उपदेश दिया। तीर्थ-भ्रमणके निश्चयको त्याग दिया, और शान्ति पूर्वक घरमें ही रहकर उस मन्त्रका जप करने लगे।

तृतीय--जीवन

१६६३ प्रयागके कुम्भ-मेलापर श्रीविजयकृष्ण गोस्वामीने इनको काठियाबाबाजीसे परिचित कराया। काठिया बाबाके आचरण इनको बहुतही सुन्दर मालुम पड़े। तब इन्होंने उनसे शिष्य होनेका आग्रह किया।

१६६४ की जन्माष्टमीमें वृन्दावन आकर इन्होंने काठिया बाबासे दीक्षा ली, तब ये धीरे-धीरे सम्प्रदायिक-सिद्धान्तको देखते हुये बहुत ही प्रसन्न होने लगे, ऋषि-परम्परा इनको अच्छी लगी। इस सम्प्रदायमें ब्रह्मचर्य्यके द्वारा भेदाभेद–सिद्धान्तका उदार नैतिन मत इनको अनुकूल हुआ। ये तन, मन, धन, से काठिया बाबाकी सेवा करने लगे। प्रतिवर्ष व्रज परिक्रमाके समय अथवा दिवालीके समय वृन्दावनमें आकर सेवासे गुरुको प्रसन्न कर नवीन २ उपदेश पाया करते थे। घर छोड़नेके लिये इनकी बारम्बार इच्छा होती थी; परन्तु काठियाबाबा इनको आग्रह पूर्वक घर पर ही रहनेकी आज्ञा करते थे। एक दिन काठिया बाबाके आग्रहसे ये ठाकुरजीके सामने कुछ प्रार्थना करनेके लिये गये और गीताजीसे "ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्। भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः। ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।" ये दो श्लोक पढ़े। ब्रह्मज्ञ गुरुने ब्रह्म जिज्ञासु शिष्यको निष्कामभाव देख कर प्रसन्नता प्रकट की। काठियाबाबाकी आज्ञानुसार इन्होंने ब्रह्मवादी ऋषि, और ब्रह्मविद्या नामक दार्शनिक ग्रन्थोंकी रचना की और इधर वृन्दाबनमें निम्बार्कआश्रम भी निर्माण कराया।

१३१६ सालके माघमासमें काठिया बाबाका देहान्त हुआ, ये उस समय कलकत्ता थे। तार मिलनेसे आकर भण्डारादि समापन किया और निम्बार्काश्रम स्मृति स्थापन की, पुनः कलकत्ता जाकर वकालत करने लगे। परन्तु उसमें मन नहीं लगा। ढाई तीन वर्षके भीतर निम्बार्काश्रम निर्माण-कार्य्य समाप्त होनेके पश्चात् वानप्रस्थ अवलम्बन कर वृन्दाबन-वासका संकल्प किया। उस दिन कलकत्ता हाईकोर्टमें एक महान् दृश्य देखने योग्य था। अर्थके पीछे पागल होनेवाले सब वकील परमार्थके पीछे पागल होते इन्हें देखकर सब चकित होगये। जिनको जज होनेका प्रस्ताव था। उनको संसार छोड़नेका व्यापार देखकर रामके राज्याभिषेकमें बनवासका प्रसंग सबको स्मरण आया। भोग और त्यागके अपूर्व संसर्गने सबके ऊपर इतना प्रभाव डाला कि प्रसिद्ध कानूनी वकील रासबिहारी घोषने भी शिर झुका कर इनकी पदधूलीको ग्रहण किया। वृन्दाबनमें आकर ये सात्विक निवास करने लगे और ठाकुरजी तथा साधुओंकी सेवामें तत्पर रहने लगे। वृन्दावनस्थ समस्त साधु इकट्ठे होकर इनको काठिया बाबाके स्थानमें व्रजविदेही महन्त करनेके लिये बहुत ही आग्रह किया। फिर उज्जैन कुम्भमें इन्हें विरक्त वेश देकर, व्रजविदेही महन्त एवं चार सम्प्रदाय महन्त–पद पर आरूढ़ कर दिया।

चतुर्थ--जीवन

विरक्त वेषमें इन्हें देख कर बंगालियोंकी ४०० वर्षकी प्राचीन स्मृति जगी। इनसे अधिक राज सन्मान पानेवाले श्रीसनातन गोस्वामी तथा श्रीरूप गोस्वामीजी ऐसेही विरक्त वेष लेकर वृन्दाबन में आये थे। और गम्भीर जंगलमें वर्तमान वृन्दाबनकी रचना की थी। उनके बाद दो चार महापुरुषोंको छोड़ ये ही विरक्त वैष्णव वेष ग्रहण करने वाले पदस्थ बङ्गाली थे। श्रीरूप–सनातनके प्रसाद पाने वाले बंगाली इनकी तरफ लोलुप दृष्टि फेंकने लगे और कृपा प्राप्तके लिये आग्रह करने लगे। महन्त होनेके दो चार वर्ष तक इन्होंने किसी को दीक्षा नहीं दी। परन्तु दीक्षा प्रार्थी बङ्गालियोंकी भीड़के मारे दीक्षाकर्ममें प्रवृत्त हुये शिक्षित और पदस्थ बङ्गाली लोग इनके चरणोंमें शिर झुकानेमें अपना सौभाग्य समझते थे, उधर निर्धन दीन भी इनकी कृपासे वञ्चित न रहे। लगभग १५ वर्षमें बङ्गालसे लेकर पंजाब तक कई हजार मनुष्योंने इनका शिष्यत्व ग्रहण किया। इन्होंने समस्त

शिष्योंके शिक्षा और संरक्षणताके लिये वृन्दावन, कलकत्ता, श्रीहट्ट इत्यादि स्थानोंमें आश्रम निर्माण कराये, इन समस्त, आश्रमोंमें साधू सेवा की विशेषता है।

इनकी एकमात्र आकाशवृत्ति अवलम्बन है। जिस महीनामें साधू विशेष होनेके कारण खर्च ज्यादा है उसके ही अनुसार आमदनी भी है। साधूसेवामें ऊँचा, नीचा, छोटा, बड़ा आपसमें भेद नहीं था। ये बड़े ही मितव्ययी थे, प्रयोजनके अतिरिक्त ये वस्तु न आप लेते थे न किसी को देते थे। विलास इनमें नहीं था। न ये बिलासियों को मदद देते थे। इनकी शिक्षा-प्रणाली बहुत ही सुन्दर और मधुर थी। अपने दृष्टान्तसे ये सबको सेवा और साधनामें लगाये रखते थे। देहान्तके दो तीन वर्ष प्रथम आपने विभिन्न शिष्योंको विभिन्न आश्रमोंमें बैठा कर आप स्वयं इससे अलग थे। वृन्दावन निम्बार्काश्रम में इनके प्रिय शिष्य न्याय व्याकरणादिमें उपाधि प्राप्त सुपंडित वर्तमान श्रीमान् धनञ्जयदासजी और कलकत्ता आश्रममें श्रीकृष्णदासजी, श्रीहट्ट आश्रममें श्रीमान् अर्जुनदासजी महन्त हुये। सं०१९९२ कार्तिक मासमें इनका देहान्त हुआ। अगहन मासमें समस्त व्रज-मण्डलके तथा अन्यान्य स्थानके प्रधान महन्तोंकी सेवा सत्कार द्वारा इनका तिरोभाव उत्सव सम्पन्न हुआ। कलकत्ता हाईकोर्टमें तथा और भी अन्यान्य स्थानोंमें कईएक स्मृति सभायें हुईं, इससे पता लगता है ये सर्वजन पूज्य एक महान् पुरुष थे। विभिन्न भाषाओंमें साम्प्रदायिक ग्रन्थोंको प्रचार करके सारे संसारमें सम्प्रदायकी मर्य्यादा बढ़ा दी। इनके अन्तर्ध्यानसे सम्प्रदायकी बहुत ही क्षति हुई। भगवान्से प्रार्थना है नित्य धाममें रहते अशरीरी वाणी द्वारा ये सबको परिचालित करें।

इनके द्वारा निर्मित निम्न ग्रंथ हैं—ब्रह्मवादी ऋषि व ब्रह्मविद्या, २—दर्शिनिक ब्रह्मविद्या (प्रथम खंड) ३—दार्शनि—ब्रह्मविद्या (द्वितिय खंड), ४—वेदांतदर्शन, ५-श्रीस्वामी रामदास काठिया बाबाजीका जीवनचरित, ६—भेदाभेद (द्वैताद्वैत) सिद्धांत एवं श्रीमच्छंकराचार्य प्रभृति भाष्यकारगण, ७—श्रीमद्भगवद्गीता भाष्य, ८—गुरु-शिष्य-संवाद (ब्रह्मविद्या), ९—पत्रावली (प्रथम खंड), १०—पत्रावली (द्वितिय खंड) । इनके अतिरिक्त श्रीबाबाजी महाराजके शिष्य-सेवकों द्वारा सैकड़ों ग्रंथ संपादित प्रकाशित हुए हैं और हो रहे हैं।

श्रीनिम्बार्कमाधुरी
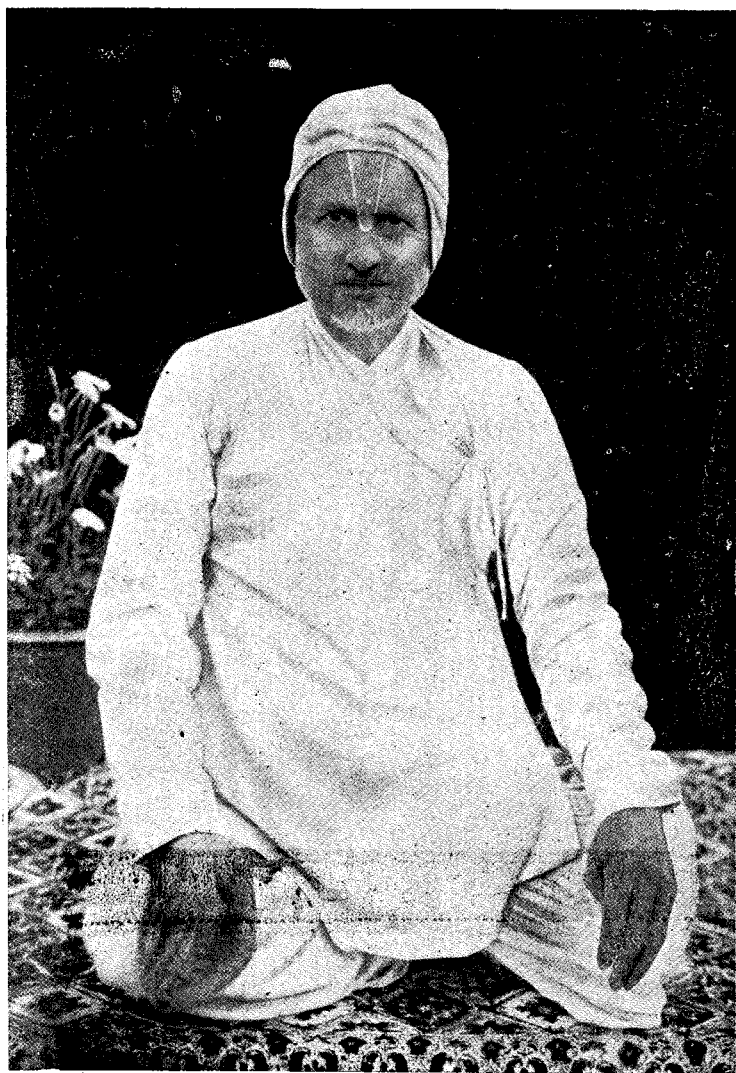
पूज्यपाद पंडित-प्रवर, परमपद-प्राप्त —

पण्डित श्रीदुलारेप्रसादजी (श्रीहरिप्रियाशरणजी) शास्त्री

सकल शास्त्र-निष्णात, वैष्णव-धर्मोद्धारक, वेदांतनिधि—

पूज्यपाद पंडित श्रीकिशोरदासजी महाराज

पण्डित श्रीकिशोरदासजी

श्रीहंसभगवान्-द्वारा प्रवर्तित एवं श्रीनिम्बार्काचार्य-द्वारा प्रचारित श्रीनिम्बार्क-संप्रदाय, अनादि वैदिक सत्संप्रदाय है। अति प्राचीन होनेके कारण इस संप्रदायमें बड़े-बड़े ऋषि, योगी, विद्वान् प्रभृति आत्मशक्ति-सिद्ध परमभक्त अनेक महानुभाव होगये हैं, जिन्होंने अपनी असाधारण ईश्वरीय चमत्कार-पूर्ण प्रतिभा-द्वारा विश्वमें सद्धर्म प्रचार कर अधर्मको नष्ट किया है. और ईश्वरीय-कार्य-साधन में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सके हैं। इन आचार्यपादोंका अवतार-कारण विशेषतः श्रीहरि-आज्ञा ही है, इसके अनेक प्रमाण हैं, तथा जिन-जिन आचार्योंने अपने स्वरूपानुसार कार्य-साधनकी चेष्टा की है, उनके संचालन-शैलीमें ईश्वरीय-कार्यक्रमका पूर्ण सद्भाव है। श्रीहरि उनके उक्त साधनोंको अपनाही समझते हैं और उनमें स्वशक्ति समावेश करनेमें संकुचित नहीं होते, भगवान्ने स्वयं आज्ञा की है,'आचार्यं मां विजानीयात्' आचार्योंकीवाणी, उपदेशामृत, ग्रन्थादिकों द्वारा प्रचार-शैलीका दिव्य शक्तिसे ही संवंध है। इसलिये आचार्यों-द्वारा निर्मित वहुसंख्यक ग्रंथोंका एक महत्वपूर्ण स्थान है। श्रीनिम्बार्क-संप्रदाय अति प्राचीन संप्रदाय है, इसमें अनेक प्रकांड विद्वान् आचार्योंने वेदान्त, उपासना-संवंधी ग्रन्थ भारी संख्यामें निर्माण की है, इनमें अधिकांश तो समयके गर्भमें नष्टप्राय होगये, क्योंकि इस संप्रदायके वृद्धावस्थामें होनेके कारण उत्साहियोंका पूर्णतः अभाव होगया था। तथा १६वीं शताब्दीके छापा—कालमें भी आचार्य ग्रन्थ गुप्त रखनेकी प्रथाको माननेवालोंकी बहुलताके कारण प्रकाशित रूपमें विद्वद्जगत्के समक्ष नहीं आ सका। इसलिये वहुसंख्यक आचार्यों-द्वारा निर्मित-ग्रन्थरत्नोंको नष्ट होनेका भय था, इस भयको आचार्य श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्रने पण्डितजी महाराज-द्वारा प्राचीन ग्रन्थ-राशि गुप्तसे गुप्त अगम्य-स्थानोंसे भी प्रगट कराकर निर्मूल कर दिया। इसकारण संप्रदायमें एक नवीन जागृति उत्पन्न हुई तथा पुनर्जीवन संचारित हुआ। वैष्णव-जगत्को श्रीनिम्बार्क-साहित्य की अपार रत्नराशि सहजमें उपलब्ध होगयी, तथा श्रीनिम्बार्कीय-वैष्णव-जगत् अपने स्वरूप-ज्ञानसे पूर्ण परिचित होगया।

श्रीनिम्वार्क-साहित्य प्रकाशित, आविष्कृत कर प्रचाररूपमें पण्डितजीने आचार्यत्व-लाभ की है। अनेक ग्रंथोंको परिवर्द्धित, संशोधित, सटिप्पण कर, प्रकाशित होनेसे विशेष उपयोगी हुये हैं, और अध्ययन, अध्यापन करनेवालोंको भारी सुविधा हो गयी है। आप एक स्पष्ट एवं सत्यवक्ता, विचारशील सांप्रदायिक वेदान्त सिद्धांत, उपासनादिमें सर्वोपरि विज्ञ, आचार्यनिष्ठ, स्वसंप्रदायसिद्धांत एवं उपासनानुसार इष्ट उपासक हैं। आपने स्वसिद्धांतके विपक्षियोंसे कभी नम्रता नहीं की। एतद्विषयक कई विवादास्पद महत्वपूर्ण विषय समक्ष आये; किन्तु सबमें विजयी रहे। सांप्रदायिक-दीक्षा मंत्र राजगोपाल और वंशगोपाल मंत्र संबंधी मतभेदको समूल नष्ट कर दिया और आपका निर्णय सर्वमान्य हुआ, चेतावनी आदि कई ट्रैक्ट इसपर लिखी गईं।

भगवान् एवं आचार्यपादोंको स्वकार्य साधनके लिये स्वयं चिन्ता रहती है, इसे आप करते हैं तथा अन्य अपनी शक्ति द्वारा संपन्न कराते हैं; इसलिये अपने कार्यकर्ताओंके कर्त्तव्य, कर्मादिके संचालक आप ही हैं। संप्रदायमें पुनर्जीवन-संचारण करानेकी इच्छा से पण्डितजी महाराजका विरक्त होकर इस संप्रदायांतर्गत आना भगवत् इच्छा ही है।

उक्त पण्डितजी महाराजका जन्म सं० १८३० में माघ कृष्ण द्वितीयाको काठियवाड़ देशमें हुआ था। विरक्त होकर भगवद्भजन करनेकी अभिलाषा हुई इसलिये गृह-झंझटोंको परित्यागकर श्रीवृन्दावन आगये और योगिवर्य निखिल महीचक्रवालाचार्यचक्रचूड़ामणि श्रीमच्छ्री श्री १००८ श्रीस्वभूदेवाचार्यके परंपरांतर्गत श्रीगोपीदासदेवाचार्यके शिष्य हो गये। यह महात्मा फावड़ियाजीके स्थान (वृन्दावन) के परंपरामें हुये इनके प्रथमकी आचार्य-परंपरा इसप्रकार है। श्रीकन्हरदेवाचार्य, १ श्रीपरमानन्ददेवाचार्य, २—श्रीचतुरचिंतामणिदेवाचार्य (श्रीनागाजी), ३—श्रीद्वारकादेवाचार्य, ४—श्रीगोवर्द्धनदेवाचार्य (फावड़िया), श्रीमनोहरदेवाचार्य, ६—श्रीभगवद्दासदेवाचार्य, ७—श्रीशुकदेवाचार्य, ८—श्रीनारायणदेवाचार्य, ९—श्रीश्यामदेवाचार्य, १०—श्रीगोपीदासदेवाचार्य, ११—वर्तमान श्रीपण्डितजी महाराज।

श्रीपण्डितजी महाराजने आचार्य-निमित चालीस-पचास प्राचीन ग्रन्थोंको संशोधित तथा संपादित कर, करके छपाये, विद्या-विलासप्रेस काशी, वृन्दावन, वर्द्धमान, ऊखड़ा आदिमें जितने निम्बार्कसप्रदायके ग्रंथ छपे हैं—वे आपके ही परिश्रमका फल उनके अतिरिक्त कई स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखे हैं, तथा टीकायें की हैं। जिनमें-से कुछ इसप्रकार हैं- श्रीभगवान्निम्बार्क महामुनीन्द्र, २—साधनप्रणाली, ३—द्वैताद्वैत-सिद्धांत, ४—मुकुन्दमहिमा स्तोत्रको भक्ततोषिणी टीका, ५-श्रीगुरुशरणागति, ६—आचार्य-परंपरा-परिचय, ७—दशश्लोकीकी सारार्थदर्शिका टीका, ८—वेदान्ततत्त्वसुधा पच्चीस-श्लोकीकी टीका, ९—चेतावनी आदि १८ ग्रंथ हैं।

आप संस्कृत एवं हिन्दीके प्रकाण्ड विद्वान् हैं। टीका-टिप्पणी, ग्रंथ—निर्माण, संस्कृत एवं हिन्दीमें ही हुये हैं। वेदान्तके तो आप निधि हैं। सांप्रदायिक-सिद्धांत, उपासनाके भी सर्वोपरि ज्ञाता हैं—

जैसे विद्वान हैं- वैसेही आचरण-शुद्ध, निरपेक्ष, निर्द्वन्द, आत्मस्वतंत्र, इष्टविश्वासी पवित्र आत्मा हैं। कभी भी निमंत्रण आदि तथा अप्रयोजन स्थानमें नहीं जाते। वृन्दावनस्थ सांप्रदायिक अन्य विद्वान् महानुभाव इनके कार्य-सहयोगियोंमें-से थे, पं० श्रीदुलारे-प्रसादजी शास्त्री, विद्वद्वर पं० श्रीअमोलकरामजी शास्त्री आदि।

संवत् १९७२में श्रीनिम्बार्क-महाविद्यालय अपने सर्वप्रथम स्थापित किया था, जिसमें पच्चीस-तीस विद्यार्थी पढ़ते थे, और डेढ़-दो सौ रुपये मासिक व्यय होते थे। पंडितजीमहाराजके सफल उद्योग तथा अपार परिश्रमसे संप्रदाय पुष्पित पल्लवित हुई है। अभी भी संप्रदाय को बहुत कुछ आशा है। आप संप्रदाय-सदनका एकमात्र आधार भूत स्तम्भ हैं। संप्रदाय-हित चिंतनमें सदैव चिंतित रहते हैं। जयपुर आदि कई शहरोंमें सत्सङ्ग-मण्डल, सभा सोसाइटियें भी आपने स्थापित की हैं जो भलीप्रकार चल रही हैं। जिसप्रकार अपनी विद्वत्ता-प्रतिभासे संप्रदाय की उन्नति की है—वैसेही सैकड़ों सज्जनोंको सांप्रदायिक दीक्षा देकर भी संप्रदाय की वृद्धिकी है। जयपुर, बंबई आदिमें ऐसे अनेक शिष्य हैं।

वर्द्धमानमें आपने ही गोलोक-वासी महामना माननीय महन्त श्रीमधुसूदनशरणदेवाचार्यसे अनुरोध कर एक बृहद् भगवन्मन्दिर बनवाया और उसमें एक तरफ श्रीआचार्य-पंचायतन (श्रीहंसभगवान से लेकर श्रीनिम्बार्काचार्य तक) की स्थापना बड़ी विधि-विधान पूर्वक कराई। और उखड़ा-स्थानमें भी श्रीनिम्बार्क भगवानकी प्रतिष्ठा कराई। और स्थानोंमें आचार्य परंपरा तथा शंख, चक्र, तिलकादि संप्रदायिक-चिन्ह स्थापित कराये। मंत्रार्थके अनुसार दीक्षा-विधिका भी प्रचार किया, और संप्रदायी आचार्योंके सिद्धांतके अनुसार श्रीमुकुन्दशरण मन्त्र तथा अष्टादशाक्षर-गोपाल मंत्रराज का भूले भटके संप्रदायीजनोंमें पुनः प्रचार किया।

सांप्रदायिक सैकड़ों संत-महंत वैष्णव जिज्ञासु अवस्थामें इनके निकट सिद्धांत, उपासना-पद्धति समझने तथा पढ़नेके लिये आते रहते हैं। आप आगत वैष्णव बंधुओंका सहर्ष, उत्साह—पूर्वक इच्छित विषय बतानेके लिये तैयार रहते हैं। कोई भी निराश होकर नहीं लौटता। इस समय ६७ वर्षकी उम्रमें वृंदावनमें संप्रदायकी प्रमुख तीर्थ वंशीवट पर विद्यमान हैं—जिससे संप्रदायका गौरव है, और संप्रदायिकोंको अभिमान।

श्रीअमोलकरामजी शास्त्री

सुरासुर मानव कोई भी अपनी महत्वपूर्ण, गौरवमय वस्तुसे वंचित होना नहीं चाहते। सबकी इच्छा रहती है कि मेरी परिस्थिति पुष्पित पल्लवित एवं आभूषित रहे। आज पृथ्वी पर कलियुगका एकछत्र साम्राज्य है, अवनिपर सच्चरित्र, सच्चे सन्त, सत्यवक्ता, ब्रह्मनिष्ठ, धर्मनिष्ठ, प्रभृति, महान् पुरुषोंका प्रायः अभाव-सा होगया है, जो अमर ऋषि, सत्ययुग, त्रेता, द्वापरमें समस्त पृथ्वी पर विचरते हुए प्रत्येक मानवको उपदेश देते थे—उनका आज दर्शन दुर्ल्लभ होगया है; किन्तु आज भी पृथ्वी निर्मूल नहीं, ऐसे कतिपय महान् आत्मा विद्यमान हैं, जिनका पवित्र जीवन उन प्राचीन ऋषियोंसे कम महत्व नहीं रखता। श्रीमान् विद्वद्वर अमोलकरामजी शास्त्री,न्यायरत्न,

तर्कतीर्थ, विद्यावागीश, द्वैताद्वैत मार्तण्ड, उभयवेदांताचार्य, सर्वशास्त्र-निष्णांत, सर्वतन्त्र—स्वतंत्र ऐसे ही महान् आत्माओंमें से एक हैं ।

इनका जन्म हरियाना-प्रान्त सं०१६२६में किसी उच्चकुल 'ब्राह्मण घरानेमें हुआ । इनके पिताका नाम पं० शालिग्रामजी उपाध्याय था, ये एक गौड़-ब्राह्मणकुलमें प्रतिष्ठित सज्जन थे, माताका नाम श्रीहरिप्यारीदेवी था, इन्होंने भारतके काशी, नवद्वीप आदिके महत्व-पूर्ण संस्कृत विद्यालयोंमें व्याकरण शास्त्रमें उच्चस्थान प्राप्त कर,न्याय तर्क, वेदांतादिकी भी परीक्षायें दी, सबमें इन्हें उच्च परीक्षा- फल प्राप्त हुए। पूर्वजन्म-संस्कार तथा भगवदिच्छासे इन्हें स्वदेशसे परमधाम श्रीवृंदावनमें आनेका अवसर मिला । यहाँके अनेक विरक्त, सिद्ध, भगवद्भक्ति-लीन भावुक संतोंसे सत्संग भी हुआ । ये उस कालके भक्ति-सिद्ध, महा- विरक्त सदैव भावमग्न, प्रसिद्ध संत श्रीस्वामिनीशरणदेवजीसे वैष्णव-दीक्षा-मन्त्रसे दीक्षित होकर श्रीनिम्बार्कीय वैष्णव होगये । श्रीस्वामिनी शरणदेवजी रसिक-कुल-कमल-दिवाकर परमविरक्त शिरोमणि स्वामी श्रीहरिदासजीके परम्पराके संत थे। उन्हीं दिनों स्वाचार्य स्थापित-गद्दी स्थानके सम्बन्धसे टट्टीस्थानमें आने-जाने लगे। वहाँ के तत्कालीन महन्त श्रीभगवानदासजी महाराजसे संपर्क हुआ। महन्तजी महाराज इनसे बहुत ही स्नेह रखते थे। घर-संबंध परित्याग करने पर उन्होंने इन्हें टट्टीस्थानका उत्तराधिकारी बनानेका भी निश्चय कर लिया था ।

ये यहाँ रहते हुए सांप्रदायिक-साहित्योंका अध्ययन करते रहे । यहाँ इनकी भारी विद्वानोंमें गणना तथा योग्यता देखकर श्रीरंग-नाथजीके मंदिरके अधिकारियोंने श्रीरङ्गनाथ-संस्कृत-विद्यालयका प्रधानाध्यापक नियुक्त कर लिया । इस कार्यको योग्यता पूर्वक संपादन करते हुए, समस्त वैष्णवी-वेदान्तादि सैद्धान्तिक-साहित्योंका अध्ययन करते रहे । इन्हीं दिनों काशी-विद्वत्सम्मेलनके कई महत्वपूर्ण अवसरों पर काशी जाना पड़ा, वहाँ अपने अनेक वक्तव्योंमें, अपने आचार्य-सिद्धान्त द्वैताद्वैतको ही एकमात्र जीव-ईश्वर-संबंध दिखाते हुये विद्वत्ता पूर्ण वक्तव्य दिये, इनके इस वेदान्त-सिद्धान्त प्रतिपादनके समक्ष काशी विद्वसमाज चकित हुआ ।

अभी ये अड़सठ वर्षकी अवस्थामें होते हुएभी सांप्रदायिक संस्कृत साहित्योंकी टीका-टिप्पणी कर-करके प्रकाशित करते ही रहते हैं, इस प्रकार कई बृहद् ग्रन्थोंकी टीका की है—१—परिपत्तगिरिवज्र यह एक द्वैताद्वैतके महान् विद्वान् श्रीमाधवमुकुंद विरचित है, तथा भारतके एक विद्वतापूर्ण ग्रन्थोंमें से एक है। यह संस्कृतमें सटीक होकर पण्डितजी महाराज द्वारा प्रकाशित हुआ है। जगद्विजयी श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टकृत ब्रह्मसूत्र भाष्यका भाष्य—३—वेदान्तरत्नमञ्जूषाका भाष्य, ४—वेदान्तरत्नमालाका भाष्य, ५—आत्मपरमात्मतत्त्वादर्श, ६—दश उपनिषद्–भाष्य जो प्रकाशित होचुके हैं आदि इनके द्वारा भाष्य हो-होकर प्रकाशित हुए हैं। और कई ग्रन्थों-की टीकायें कर रहे हैं। पण्डितजी महाराज संप्रदायके १९ वीं सदीके एकमात्र सर्वोपरि टीकाकार हैं। आचार्य-युगके वाद १७ वीं सदीके श्रीअनन्तरामजी और श्रीपुरुषोत्तमप्रसादजीके पश्चात् ये ही प्रगट हुए। इन्होंने सम्प्रदायको जो अपनी अमूल्य निधि दी उसके लिये संप्रदाय सदैव ऋणी रहेगी।

ये जैसे विद्वान् हैं वैसे ही; इष्ट-निष्ठ, भगवद्भक्त सरल-हृदय, भजनानंदी हैं। साधारण-वेष-वूषा-वारिदमें छिपे हुए दिवाकर हैं।

इन्हें देखनेसे कोई भी नहीं पहिचान सकता कि ये एक भारी विद्वान् हैं। इनका स्वभाव, रहन-सहन, स्थिति देखते हुए प्राचीन शास्त्रोंमें कथित ऋषि-मुनियोंकी स्मृति प्रत्यक्ष होजाती है। जब श्रीनिम्बार्क-महासभा स्थापित हुई तो हमलोगोंके आग्रहसे ग्रन्थ संपादन-कार्यसे अमूल्य समय निकालकर सभा-कार्यमें भी देनेकी कृपा की और सभापति, उपसभापति आदि पदोंसे सभाको पवित्र करनेकी कृपा की थी। अब भी सभा एवं सांप्रदायिक-हितमें चिन्तित रहते हुए कार्य-संचालनमें तत्पर रहते हैं। कई वर्षोंसे अपार परिश्रम करके सांप्रदायिक-वेदान्त-परीक्षा, गवर्नमेण्ट-संस्कृत कालेज काशीमें प्रवेश करा दी है। इस कार्यमें धन एवं विद्यार्थियोंकी आवश्यकता है, इसलिये सांप्रदायिक बंधुओंको चाहिये कि, जन-धनसे सहयोग देकर अपनी इस महत्वपूर्ण योजनाकी रक्षा करें और श्रीपंडितजी महाराज के उत्साहको बढ़ावें।

पंडित श्रीदुलारेप्रसादजी शास्त्री

भगवत् श्रीनिम्बार्कमहामुनींद्रचन्द्र - दर्शित—म :—मार्तण्ड विद्वद्धौरेय भक्तप्रवर पंडित श्रीदुलारेप्रसाद शास्त्रीजी(श्रीहरिप्रिया शरण) महाराजका जन्म कानपुर जिलेके अन्तर्गत बाघपुर नामक ग्राममें संवत् १६२० चैत्र कृष्णाष्टमीको हुआ था। ये कान्यकुब्ज कुलाब्धि-कौस्तुभ, निखिलशास्त्र निष्णात पंडित श्रीचंडिकाप्रसादजीके पुत्र थे। इनका जन्म एक पवित्र तिथि एवं महत्वपूर्ण उत्सव पर हुआ था, इसलिये उस अनुपम आनन्दमें समयानंद भी एक विलक्षण-आनंद प्रद था। होलिकोत्सवके पश्चात् वैष्णवी-अष्टमी-उत्सवका दिन था इसलिये पिता और स्वजनोंमें आनंदकी सीमा न रही। बाल्या-वस्थाको समाप्तकर कुमार-अवस्थामें प्रवेश हुए, पूर्व-जन्म-संस्कार-वश इनमें लौकिक बाल्यक्रीड़ाओंका पूर्ण अभाव था, बाल्य-लीलामें भी भगवत्सेवा-पूजा-संबंधी खेलमें मग्न रहते थे।

जब पौगण्ड अवस्था आई तो इन्होंने ग्राममें ही स्थित पाठशालामें हिंदी-शिक्षा प्राप्त की पश्चात् ग्रामके ही समीप रहने वाले श्रीमणिरामजी शास्त्रीसे सिद्धांत-कौमुदी-पर्यन्त व्याकरण अध्ययन किये। बन्धुवर्ग एवं पिताजीके आग्रहसे इसी अवस्थामें इनके विवाहादि--कार्य भी सम्पन्न हुए। व्याकरणके पूर्ण विद्वान् हो ही चुके थे, अब अन्य शास्त्रोंके अध्ययनकी अभिरुचि हृदयमें प्रति दिन बढ़ने लगी। शास्त्र-अध्ययनके ही विचारसे आप काशी पधारे, वहाँ पर वेदान्तभास्कर श्रीमनीषानन्दजी शास्त्री एवं षट्शास्त्राचार्य जगद्विख्यात पंडित श्रीशिवकुमारजी शास्त्रीसे भाष्य शेषर मनोरमा, ब्रह्मसूत्रादि षट्दर्शन भली भाँति पढ़े। पश्चात् घरमें वापिस आने पर कानपुर जिलेके सम्पूर्ण विद्वन्मंडलने इनकी पूर्ण प्रतिष्ठा की।

श्रीभगवत्शक्ति अवनि पर पंचत्तत्त्व मानव शरीर धारण करती हैं, कार्यक्रमके अनुसार पूर्ण अवस्थामें होने पर उनमें स्वतः दिव्य शक्ति उदय होती हैं, एवं स्वकार्यको सम्पन्न करती हैं। श्रीपंडितजी महाराजके हृदयमें पूर्व—संस्कार उदय हुआ, श्रीवृंदावन आने की प्रबल उत्कंठा हुई। सर्व प्रथम संवत् १६५२ में ये श्रीवृंदावनमें आये,

यहाँ ये श्रीजीके प्रेम-बंधनमें ऐसे उलझे कि पुनः वृंदावन त्याग कर बाहिर नहीं जा सके। वृंदावनस्थ कानपुरवाले मंदिरमें स्थित पाठशालामें ब्राह्मण-बालकोंको विद्या-दान करने लगे। इन्हीं दिनों सम्वत् १६५२ में ही श्रीभागवतरत्न विद्वद्वर श्रीतपस्वीदासजी महाराजसे श्रीनिम्बार्क-संप्रदायान्तर्गत वैष्णवी-दीक्षा ग्रहण की। श्रीतपस्वी-दासजी महाराज शाहविहारी-मंदिरके निकट भ्रमर-घाटपर युगल बगीचीमें रहते थे, और श्रीनिम्बार्क-संप्रदायमें, भारी भजनानंदी भगवद्‌ध्यान-मग्न, श्रीमद्‌भागवतके प्रकाण्ड विद्वान संत थे।

इन्होंने जिस वर्ष दीक्षा ली, उसी वर्ष कार्तिक कृष्ण-द्वादशीके, दिनसे श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराजके जन्मोत्सव—उपलक्षमें ५ दिनतक श्रीमहावाणी समाज,--कीर्तन, श्रीमद्भागवत पाठ, वैष्णव-साधु-सेवा-पूर्वक प्रतिवर्ष एक वृहदुत्सव बड़े समारोहके साथ किया करते थे। यह उत्सव अद्यावधि—प्रतिवर्ष सर्वाङ्ग सम्पन्न होता है। श्रीवृन्दावनसे इन्होंने श्रीजगन्नाथ-धाम, सेतुबंधरामेश्वर और द्वारिका आदि भारतके अन्यान्य तीर्थोंमें भ्रमण किया। यात्रा समाप्ति-पर अपने देशमें जाकर श्रीमद्भागवत-सप्ताह यज्ञ किया, जिसमें देशवासी सभी विद्वानों का यथोचित सत्कार सम्पन्न हुआ।

उत्सव समाप्त कर श्रीवृंदावन-धाम आये यहाँ श्रीमान राजर्षि वनमालीरायजीके द्रव्यसे प्रकाशित होनेवाला अष्ट-टीका सहित श्रीमद्भागवतका संशोधन किया, पुनः एक वर्षके लिये संवत् १६६६ में श्रीबद्रीनारायणकी यात्रा की।

तीर्थ-यात्रासे आकर आपने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि 'अब हम व्रज वृंदावनवास छोड़कर कहीं भी नहीं जायेंगे।' कुछ समय पहिले इन्होंने श्रीगोपालमंत्रराजका एक वृहद् अनुष्ठान किया था—जिसके प्रभावसे श्रीगोपालजी महाराजने स्वप्न-द्वारा स्वयं दर्शन देकर इन्हें कृतार्थ किया था।

इनमें अद्भुत भगवद्भक्ति एवं भजनका प्रभाव देखकर अनेक भगवद्भक्त सेठ साहुकारोंने वैष्णवी-दीक्षा ग्रहण की, जिनमें सेठ श्रीजानकीदासजी, श्रीलक्ष्मीचन्दजी, श्रीरामजीलालजी, श्रीमाईधनजी, श्रीलालचंदजी, श्रीजयलालजी, श्रीहरगूलालजी, श्रीरतनलालजी और श्रीकँवरलालजीका नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्हें उपदेश देकर

आचार्य-पद-नैष्ठिक, बाणी-समाज-प्रचारक

गोलोकवासी मुखिया श्रीगोकुलदासजी

पूज्यपाद, पंडित-प्रवर, परमपद-प्राप्त
महान्त पं० श्रीकल्याणदासजी महाराज
पानीघाट, वृन्दावन ।

आपने केमारवनके निकट विहारीजीकी बगीचीमें एक 'श्रीनिम्बार्क· विद्यालय' भी स्थापित किया था।

इन्होंने सर्वप्रथम 'दीक्षातत्त्व-प्रकाश'-नामक ग्रंथ निर्माण किया, इस महत्वपूर्ण ग्रंथसे सांप्रदायिक वैष्णवोंको बहुतही लाभ हुए, अपनी भूली हुई दीक्षा—विधिको लोगोंने पुनः सँभाला। इसके पश्चात् २—वेदांतकामधेनुकी टीका, ३-श्रीराधिकोपनिषतकी टीका, सारसंग्रह, ४—श्रीभगवन्नामचंद्रिका आपके द्वारा निर्मित होकर प्रकाशित हुए। इन ग्रंथोंसे-भगवद्भक्तों एवं सांप्रदायिक वैष्णवोंको भारी लाभ हुए हैं। पंडितजी महाराज जैसे विद्वान थे—वैसे ही श्रीविहारीजीमें पूर्ण भक्ति एवं निष्ठा थी, वैष्णव-सतोंके भी अनन्य प्रेमी थे। इनका किसी से भी द्वेष नहीं था, मिलनेवाले सभी पर इनकी अपार कृपा रहती थी यद्यपि ये आचार—सिद्ध सांप्रदायिक महानुभाव थे, किंतु प्रसाद- निष्ठ भी एक ही थे,। प्रसाद—मात्र श्रवण करतेही उत्कंठित हो उठते थे। संस्कृत के भारी विद्वान् होते हुए भी आचार्य निर्मित 'श्रीयुगलशत' 'श्रीमहावाणी' आदि वाणियोंमें अति निष्ठा थी। महावाणी तो इनकी सर्वाराध्य वस्तु थी। सदैव पाठमनन भी किया करते थे। संवत् १९८९ में ये श्रीवृंदावन बिहारीके चरण शरण प्राप्त हो गये।

इनके योग्य विरक्त शिष्य श्रीदम्पतिशरणजी इनके निवासाश्रम के कार्यको भली भाँति चला रहे हैं। इनके द्वितीय विरक्त शिष्य श्रीमाधुरीशरणजी (श्रीमथुराप्रसादजी) भागवतभूषण भी एक योग्य शिष्य हैं। इन्होंने गुरुस्थानसे थोड़ी ही दूर पर 'श्रीगोपाल बाग' नामका स्थान स्थापित किया है।

महंत पं० श्रीकल्याणदासजी

श्रीमद्धंसं कुमारांश्च देवर्षिं निम्बभास्करम्।
श्रीश्रीनिवासमाचार्यं तथा सर्वान्गुरून्नुमः॥

श्रीमहाराज 'आत्मचरितं न प्रकाशयेत्' इस उक्तिके अनुसार अपने जन्म स्थान आदिकी चर्चा प्रायः नहीं किया करते थे।।

'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' उदारचरित्र महात्मा सर्ववसुधाको अपना कुटुम्ब मानते हैं अतः वे जन्मभूमि कुटुम्ब,

घर द्वार आदिकी कथा प्रायः नहीं कहते वे तो सत्सङ्गमें श्रीकृष्ण कथा कह कर अज्ञजनोंका मोह दूर कर श्रीचरणोंमें दृढ़ प्रेम प्रदान करते हैं। श्रीमहाराजजी भी ऐसे ही महात्मा थे।

अतिशय पूज्य श्रीगुरुदेव कहा करते थे कि 'बाल्यावस्था (कुमारावस्था ५ वर्ष की) से मैं साधुओंमें रहा अर्थात् जबसे संसारव्यवहारका ज्ञान हुआ तबसे अपनेको साधुवेषमें देखा अर्थात् उनको अत्यन्त अल्प वयमें वैष्णवी-दीक्षा प्राप्त हुई थी। अतएव उनकी भाषा या बोलीसे प्रान्तीयताका पता नहीं चलता था। वे प्रायः शुद्ध साधु भाषा (विरक्त वैष्णव या विरागियोंकी बोली) बोला करते थे। तथाऽपि अनुमानतः उनकी जन्मभूमि मारवाड़ होगी।

आप ब्राह्मणवंशावतंश थे। यद्यपि वैष्णवोंका वंशपरिचय पूछना बताना दोषावह समझा जाता था अथवा है परन्तु हमलोग परिचय में (व्यवहारदृष्ट्या और) क्या लिखें। अस्तु।

श्रीमहाराजजीकी बातचीतसे ज्ञात होता था कि आप बाल्यकालमें साधुओंके साथ प्रायः पर्यटन-तीर्थयात्रा किया करते थे पर्यटन विना मनकी दौड़ादौड़ प्रायः नहीं मिटती। आपने भारतवर्ष के प्रायः प्रधान तीर्थोंका कई बार अवगाहन किया था। पूज्य श्री० महन्त श्रीसङ्कर्षणदासजी (रामवाटिका) ने लेखकको बताया कि एक बार मैं (श्रीसङ्कर्षणदासजी) तथा श्रीमहाराजजी प्रायः १५—१६ वर्ष की आयुमें नारायणसरोवर (कच्छभुज) के समुद्र पार जाते समय एक छोटी डोंगी पर सवार थे संकर्षणदासजी आयुमें महाराजजीसे कनिष्ठ थे, दैववशात् नाव उलट गई और दोनों महानुभाव समुद्रमें जा पड़े परन्तु श्रीराधा सर्वेश्वरको दोनों महन्तोंसे जीवोंका उद्धार साधन, वैष्णव धर्मप्रचारादि अनेक सत्कार्य-परोपकार करवाना अभीष्ट था अतः श्रीमहाराजजीने अपने मित्र, (श्री सं० दासजी) को पकड़ लिया और किसी प्रकार समुद्र पार हो गये। जिनका अवतार मादृश जीवोंको भवसागर पार करनेके लिये हुआ उनको जलसागरसे पार होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं। ब्रजरज प्राप्त कहिये अथवा वृन्दावन-गोलोक गत कहिये श्रीमहाराजजीका स्मरण करते हुये पू० श्रीसंकर्षणदासजीने इस घटनाका वर्णन प्रायः २--३ वर्ष पहले अति प्रेमसे किया था।

युवावस्थामें पूज्य श्रीमहाराजजीने विद्याध्ययन किया। आप प्रायः कहा करते थे, मैं अमृतसरमें गागरमलकी पाठशालमें सिद्धांत कौमुदी व्याकरणग्रंथ पढ़ता था। आपने सिद्धान्तकौमुदी, तर्कसङ्ग्रह–न्याय मुक्तावली आदि व्याकरण एवं न्यायशास्त्रग्रंथोंके अतिरिक्त श्रीमद्भागवत भी पढ़ा था। परन्तु आपकी विशेष रुचि वेदान्तशास्त्रमें थी। वेदान्तग्रंथोंमें आप ब्रह्मसूत्र बहुत देखा करते थे। साम्प्रदायिक (भेदाभेद अथवा द्वैताद्वैत सिद्धान्तके) ग्रंथोंके अध्ययन मननमें कालयापन करना आपका स्वभाव ही बन गया था। आपने बहुसंख्यक सांप्रदायिक ग्रंथोंका संग्रह कर रखा था। कितने ही ग्रंथ जो प्रथम मुद्रित नहीं हुये थे, आपने स्वयं लिखे और लेखकोंसे भी लिखवाये। आप पहले ज्ञानीजीकी बगीचीमें निवास किया करते थे, अतः आपके लिखाये हुये कितने ही ग्रंथ वहाँ अब भी विद्यमान होंगे। आपको द्वैताद्वैत दर्शनका अच्छा ज्ञान था। अधिकांशमें आपने अपनी आयु साम्प्रदायिक सिद्धान्तके अनुशीलमें तथा ग्रंथोंके प्रकाशित करनेमें व्यतीत की। श्रीमदष्टादशाक्षर गोपालमंत्रकी 'रहस्यषोड़शी' नामक पद्यबद्ध व्याख्याके 'मन्त्रार्थरहस्य' नामक व्याख्यानकी ह० लि० प्रति आपने लेखकसे प्रायः १५-१६ वर्ष पूर्व लिखवाई थी। लेखकने मंत्रार्थरहस्यकी द्वितीय हस्तलिखित प्रति भी स्वयं लिखकर आपको दी थी। साम्प्रदायिक वेदान्तके 'श्रुत्यन्तसुरद्रुम' प्रपन्नकल्पवल्ली आदि बड़े–बड़े ग्रन्थ शतशः रुपये व्यय करके आपने लिखाये। ज्ञानीजी की बगीचीके महन्त श्रीधर्मदासजी महाराजको आप प्रायः 'मन्त्रार्थरहस्य' आदि वेदान्त ग्रन्थ व्याख्या करके सुनाया करते थे। तरुणावस्थामें आप अध्ययनके साथ ही अत्यन्त त्यागमय विराग युक्त जीवन व्यतीत करते थे। श्रीवृंदावनमें स्थायी निवास करनेसे पूर्व कठिन शीत-कालमें भी प्रायः एक वस्त्र पहिरे और अपनी प्रिय पुस्तकका अध्ययन मनन करते हुये तमालादिके नीचे ही कालक्षेप किया करते थे। आप स्वयं तो वेदान्तादि शास्त्राध्ययनमें निरन्तर निरत रहते, साथ ही दूसरोंको भी पढ़नेके लिये उत्साहित किया करते थे। वेदान्तरत्नमञ्जूषा, दशश्लोकीकी संस्कृत टीका) 'श्रुत्यन्तसुरद्रुम' 'प्रपन्नसुर तरुमञ्जरी' 'प्रपन्नकल्पवल्ली' 'वेदान्तरत्नमाला' श्री ६ श्रीकेशव-

काश्मीरिभट्टाचार्यकृत श्रीमद्भगवद्गीतातत्त्वप्रकाशिका' वेदान्त-कौस्तुभ-ब्रह्मसूत्रभाष्य' वेदान्त कौस्तुभप्रभा' (ब्र० सूत्रवृत्ति श्रीकेशवाचार्यकृत) 'वेदान्तपारि जातिसौरभ' 'मन्त्रार्थरहस्य'(श्रीसुन्दरभट्टाचार्यकृत) वेदान्तजान्हवी' 'वेदान्ततत्त्वबोध' श्रुत्यन्तकल्पवल्ली-सविशेषनिर्विशेषश्रीकृष्णस्तवराज-२५ श्लोकीका बृहद्भाष्य' 'श्रीगुरुभक्तिमन्दाकिनी (श्री ६ श्रीनिवासाचार्यकृता) 'श्रुति-सिद्धान्तसङ्ग्रह' 'अध्यात्मसुधातरङ्गिणी' 'अर्चिरादिपद्धति' 'उपनिषद्ग्रन्थ' क्रम-दीपिका' 'पुष्पेषुमनुकल्पतरुसौरभ' 'लघुमंजूषा' 'स्वधर्मामृतसिन्धु' 'श्रीगुरुनतिवैजयन्ती' 'वेदस्तुति' (श्रीकेशवाचार्य कृता टीका) 'परपक्ष-गिरि वज्र आदि कहाँ तक गिनायें, शतशः साम्प्रदायिक ग्रन्थोंका अध्ययन किया था। अन्य अद्वैतादि वेदान्तग्रन्थ यथा शाङ्करभाष्य अद्वैतसिद्धि प्रभृति भी आपने देखे थे। किं बहुना देहान्त पर्यन्त आपने विद्याध्ययन नहीं छोड़ा।

आपने प्रायः४०-४५ वर्ष श्रीवृंदावन-वास किया और लेखकका विश्वास है कि आप दिव्यदेहसे अब भी श्रीवृंदावन-वास ही करते होंगे। अस्तु आप सर्वप्रथम श्रीवृन्दावनमें २०-२५ वर्षकी आयुमें आये होंगे। प्रथम आप अत्यंत त्यागवैराग्यसह अनिकेत होकर श्रीराधिकाराममें रमण भ्रमण किया करते थे। पश्चात् ज्ञानीजीकी बगीचीमें निवास करने लगे। तत्पश्चात् पानीघाटमें आ विराजे।

पानीघाटमें पहले कुछ नहीं था यमुना तट पर महात्मा झोंपड़ी बनाकर भजन किया करते थे। पुराना पानीघाट श्रीयमुनाजीने अपने गर्भमें ले लिया, श्रीमहाराजजीने ही लेखकके गुरुभ्राता श्रीसनत्कुमार-दासजीकी द्रव्यसहायतासे पक्का मंदिर निर्माण करवाया। श्रीमहा-राजजीका स्थान अर्थात गुरुद्वारा प्रसिद्ध प्रभासक्षेत्र हैं जहाँ यदु-कुलमणि श्रीश्यामसुंदरने निज धामगमनका अभिनय किया था। आपके पूज्य गुरुदेवका नाम था श्री १०८ श्रीस्वामी जगन्नाथदास जी महाराज। आप श्री ६ चतुर चिंतामणिदेवजी उपनाम श्रीनागाजी महाराजके परिवारमें थे। श्रीस्वभूदेवाचार्यजीके द्वारामें वर्त्तमान कालमें कतिपय प्रसिद्ध संतोंमें आप अन्यतम थे। श्रीवृंदावनवासी महात्मा तो आपको सम्यक् प्रकारेण जानते ही है। भारतवर्षके वैष्णव-समाजमें भी आप 'पण्डितजी' उपनामसे प्रसिद्ध थे। आपका पूर्ण नाम था— श्रीमहंत पं० श्रीकल्याणदासजी महाराज।

'साधुत्वेऽपि दया तथा' तथा 'प्राणा यथाऽऽत्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा । आत्मौपम्येन भूतेषु दयाङ्कुर्वन्ति साधवः इन उक्तियोंके अनुसार प्राणीमात्रके ऊपर आपकी अपार दया थी। अपने दयागुणके द्वारा आपने मादृश शतशः जीवोंका उद्धार किया शांति आपमें अपूर्व थी।

अधिक-से-अधिक कठिन प्रसङ्गोंमें आप शांतिसे काम लेते थे। आप प्रथम श्रेणीके स्पष्टवक्ता साथही मधुर भाषी प्रसन्न-वदन (हँसमुख) एवं मिलनसार भी थे।

सर्व प्रथम आपने अबसे प्रायः २८ वर्ष पूर्व श्री पं० अनंतराम-कृत 'श्रीगीता ब्रजभाषा टीका' सह प्रकाशित की' पं० श्रीकिशोरदासजी' (वंशीवट) की सम्मतिसे आपने 'श्रीगोपाल-पटल, पद्धति तथा 'स्तोत्ररत्नावली' प्रायः १५ वर्ष पूर्व प्रकाशित की जिसका संशोधन लेखकने किया। इस 'स्तोत्ररत्नावली' का संग्रह करनेमें आपने बड़ा परिश्रम किया था।

स्यात् श्री पं० किशोरदासजीके अनुरोधसे तीसरा बृहद्ग्रंथ आपने सं० १९८९ में 'ब्रह्मसूत्र वेदांतपारिजात सौरभ तथा 'कौस्तुभ' भाष्य सहित प्रकाशित किया।

उक्त भाष्यद्वयकी कापी आपने अपने एक शिष्यसे लिखवाई और स्वयं ग्रीष्म ऋतुमें 'विद्याविलास प्रेस काशी' जाकर बड़े परिश्रम एवं प्रायः ११००) द्रव्यव्ययद्वारा मुद्रित करायी। मूल्य बिना शतशः सहस्रशः सद्ग्रंथों (विशेषतः साम्प्रदायिक ग्रंथोंका) वितरण करना ही आपके मतमें 'धर्म' था। एकवार आप लेखकसे बोले, 'राधिकादास हमतो अपना पैसा धर्ममें लगावेंगे' ग्रंथ प्रकाशनका उद्योग होरहा था अतः 'धर्म'से तात्पर्य आपका ग्रंथ प्रकाशित करना ही था। संप्रदायमें इस 'धर्म'के प्रवर्त्तक वंशीवटवासी श्री पं० किशोरदासजीको कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

चतुर्थ और अन्तिम ग्रंथ जो आपने प्रकाशित किया उसका नाम है 'वेदान्तकौस्तुभ-प्रभा' अर्थात् त्रिवार धरामंडलविजयी श्रीकेशवाचार्य विरचित ब्रह्मसूत्रका भाष्य आपने उक्त ग्रंथके प्रकाशन

में सबसे अधिक परिश्रम किया। प्रूफ पढ़नेका काम स्वयं किया करते थे। आपने इतना परिश्रम किया कि आपका शरीर ज्वरपीड़ित रहने लगा। लेखक (पं० राधिकादास) उस समय तापी-तटपर विचरण कर रहा था। भवितव्य प्रबल था अतएव आपने पत्र द्वारा प्रार्थना करने पर भी प्रूफ आदि पढ़नेके लिये लेखकको श्रीवृन्दावन नहीं बुलाया। रुग्णावस्थामें परिश्रम करते-करते ही ग्रन्थ समाप्ति होजाने पर आपने इहलीला संवरण की। उक्त चारों ग्रन्थोंके प्रकाशनमें प्राय: २५००) रु० व्यय हुये होंगे। अमूल्य ग्रन्थ वितरण किये गये।

तरुणवयमें अति विरागयुक्त होनेसे आप शिष्य नहीं करते थे। परन्तु जबसे शिष्य करना प्रारम्भ किया तब से शतशः विरक्त एवं गृहस्थ शिष्य बनाये। शिष्यवर्गसे अपनी शारीरिक-सेवा प्रायः नहीं करवाते थे। वृद्धावस्थामें भी सर्वकार्य स्वतः करते थे। आलस्य तो आपके समीप आनेसे भी डरता था। मादृश क्षुद्रबुद्धि आपके कल्याण गुणोंका वर्णन कदाऽपि नहीं कर सकता। संक्षेपमें आप साक्षात् कल्याणमूर्त्ति थे। वेदान्त कौ० प्रभा छपाते-छपाते वैशाखी १५ सं० ९४ को श्रीवृन्दावन-रजमें अन्तर्हित होगये। प्रकट लीलामें आपका शरीर अनुमानत: ७० वर्ष रहा। आपके अन्तर्द्धान होनेसे सम्प्रदायका एक प्रधान स्तम्भ श्रीवृन्दावनसे लुप्त होगया। परन्तु क्या किया जाय हरि इच्छा !

नोट – महन्तजी महाराजके विद्वान् शिष्य पण्डित श्रीराधिकादासजी से मैंने उक्त पण्डितजीका जीवन-चरित लिखने की बारंबार प्रार्थना की, क्योंकि जो विषय इन्हें विदित हैं उनसे मैं अनिभिज्ञ हूँ पण्डित (लेखक) बहुत वर्षोंतक इनके सेवामें रह चुके हैं। मेरी प्रार्थना पर ध्यान देकर पंडितजी महाराजने उक्त परिचय लिखकर देनेकी कृपा की है।

श्रीगोपालदासजी

भगवद्भक्ति श्रीनिम्बार्क पद-प्रेमी बाबा श्रीगोपालदासजी महाराज श्रीनिम्बार्क-संप्रदायमें अपार तेज-युक्त मार्तण्डवत् देदीप्यमान, प्रतिभाशाली महात्मा हुए । इनका जन्म गौड़-ब्राह्मण-कुलमें सं० १८७२ के लगभग हुआ था । ये बाल्य-अवस्थामें ही इस संप्रदायान्तर्गत दीक्षित हुए। इनके गुरूजीका नाम श्रीसेवादासजी था, वे श्रीस्वभूदेवाचार्यजीके द्वारेके महन्त थे, और जूनागढ़के अन्तर्गत गोदावाव-नामकस्थानमें रहते थे । ये बाल्यावस्थामें ही चारोंधाम-तीर्थ-यात्रा संपन्न करते हुए व्रजमें आये, यहाँ कामवनमें स्थित 'गोपालजीके मन्दिरके महंत श्रीरघुवरदासजीसे श्रीमद्भागवतादि ग्रंथ पढ़े, इसके बाद हृदयमें तीव्र वैराग्य होनेके कारण एक कोपीन और श्रीमद्भागवत्के सिवा कुछ भी नहीं रखते थे । इन्होंने कुछ दिनतक गंगा तटपर जाकर श्रीमद्भागवत्-कथा बाँची, इससे गंगाजी प्रसन्न हुईं और वहाँ इन्हें कई चमत्कार हुए। पुनः वृन्दावन आने पर संतोंने सम्मति दी कि आप वृन्दावन-वास करो और कथा, कीर्तन साधु सेवा आदि यहीं रहते हुए करो। कुछ दिन तक जो कुछ द्रव्य-आता उसे दाऊजीमें जाकर पण्डोंको रसोई कर जिमा देते, एकबार दाऊजी ने इन्हें स्वप्न द्वारा आदेश किया कि 'वृन्दावनमें ही साधु-सेवा करो उस समयसे यहीं संतसेवा करने लगे। एकबार श्रीजीकी बगीचीमें इनके हृदयमें आचार्य इच्छासे प्रेरणा हुई कि 'आचार्योत्सव-द्वारा आचार्य यश प्रकाश होना चाहिये।' उसी वर्षसे इन्होंने श्रीनिम्बार्काचार्य-जयन्ती-उत्सव करना प्रारम्भकर दिया । पाठ, कथा, कीर्तन, रास, समाज वैष्णव-भोजन आदि विविध प्रकार द्वारा उत्सव समारोह सम्पन्न होने लगा। इनके भजन और आचार्य-निष्ठाके प्रतापसे अपार द्रव्य आने लगे। ये जो कुछ आता सर्वस्व सेवामें लगा देते थे, उत्सवके अन्तमें इनके पास सिवा तूंबी-लँगोटीके कुछ नहीं बचता।

एकबार उत्सवमें दोसौ ब्राह्मण पाठमें बैठे थे उस समय ये बुखारमें आसक्त होगये, इनके बहुत ही चिन्तित होने पर प्रियाजी स्वप्नमें आश्वासन दीं उसी समय अकस्मात् एक धनाढ्य सेठ आकर सबका यथोचित सत्कार किया । इनके विद्यमान-समयतक निवासस्थान किसी दिन कथा-कीर्तनसे खाली नहीं गया । आचार्योंमें इनकी भारी निष्ठा थी

जहाँ किसी बड़े-बड़े राजमन्दिरों तकमें भी आचार्य-स्वरूप पधरे हुए हैं इन्हींके उपदेशका-फल है। बहुतसे स्वसम्प्रदायाचार्योंके प्रादुर्भाव तिथि, वार आदि सांप्रदायिकोंको विदित नहीं थे, उन्हें अनुसंधान कर-करके बहुत ही परिश्रमसे इन्होंने एकत्रित को। इनके सैकड़ों पंडित, राजा, रईस आदि गृहस्थ-विरक्त शिष्य हुए, जिन्होंने सम्प्रदायमें एक नवजीव-सी स्थिति उत्पन्न कर दी। हालके स्वर्गीय श्रीहंसदासजी महाराज इन्हींके शिष्य थे, जिनका इस ग्रंथमें भिन्न परिचय इन्होंने स्वगुरु-परिचयमें लिखा है।

श्रीगुरुके कछु गुण प्रगटाऊँ ; दिशामात्र रसनासे गाऊँ।
उत्तम गौड़ ब्रह्म कुल पालक; हरिरास विमुख विमुखता घालक
रासविलास रसिक रस रससाने ; राधाकृष्ण चरण सरसाने।
कथा कीरतनके पन धारी ; आचारज उत्सव शुभकारी।
श्रीनिम्बार्क उत्सव प्रगटायो ; संप्रदाय-रस सबहि चटायो।
हंस, सनक, नारद, निंबारक ; तिनकी प्रतिमा मन्दिर धारक।
चरनामृत संतनको धारैं ; श्रीभागतके सप्ताह सारैं।
परम उदार बहु गुण नयसीले ; संशय-छेदक रसिक रसीले।

श्रीवृन्दावनके स्वर्गीय प्रसिद्ध महात्मा श्रीसुदर्शनदासजीने इनके विषयमें लिखा है।

वृन्दावन-वासी सुखरासी गुण ज्ञानरत पंडित प्रवीन मति उदधिअपारसों; हरि पद प्रीतिकी न रीति कोउ जानो जाहि करत बड़ाई आछे लोग बार-बार सों। कथा, कीरतन, परमारथ करत नित्य सुनि सुख पावैं लोग सौगनों हजार सों ; समय-समय करैं उत्सव श्रीआचरारज की बारसी क्रिया सों मानो भवनिधि पार सों।

इस प्रकार अनेक महात्माओंने इनके यश वर्णन कर अपनी वाणी पवित्र की है। ये ऐसे त्यागी, निस्पृह, आचार्यनिष्ठ, भगवद्भक्त संतसेवी थे कि इन वर्णनोंमें भी भारी कमी है। ये श्रीमद्भागवत, भक्तमाल आदि की कथायें निस्पृह श्रवण कराते थे। यहाँ तक कि कथाके समय कई-कई मुहरें भी भेट होने पर ग्रहण नहीं करते थे। इनकी वाणी सिद्ध थी कथा श्रवण कर सहस्रों विमुख भगवद्भक्त होगये और भी इनके अनेक चमत्कारपूर्ण चरित हैं। एक सच्चे भगवद्भक्त रसिकों में जो गुण चाहिये सों इनमें विद्यमान थे विस्तार-भयसे उद्धृत नहीं हो सकते।

महंत श्रीभगवानदासजी

श्रीमान् महंतजी महाराजका जन्म बुंदेलखंडमें स्थित शिया-नामक ग्राममें हुआ था। ये चतुर्वेदी ब्राह्मण-वंशावतंश थे। इनके दीक्षा-गुरु महंत श्रीराधाप्रसाददेवजी थे, जो श्रीनिम्बार्क-संप्रदायांतर्गत स्वामी श्रीहरिदासजीके परंपरामें स्थित टट्टीस्थानपर संवत् १८६४ से १६४४ तक महंत थे। श्रीराधाप्रसाददेवजी सेवक-शिष्योंके आग्रह से प्रतिवर्ष बुंदेलखंडमें स्थित समथर-नामक नगरमें जाया करते थे, उक्त महंतजी महाराज वहीं इनसे दीक्षित हुए थे।

श्रीमहंतजी महाराज एक प्रधान आचार्य-गद्दीपर प्रतिष्ठित महंत तथा स्थानके समस्त संपतिके अधिष्ठाता होते हुएभी महात्यागी थे। प्रथममें किसीकी भी आर्थिक सेवाको स्वीकार नहीं करते थे, किन्तु बहुतही आग्रह पूर्वक अनेक शिष्य सेवक अपनीसे भेट करही जाते थे उसे ये संत-सेवा में खर्च करदेते थे। प्रति तृतीय वर्षतो ये अपने पास कुछभी नहीं रखते थे, संत-सेवामें अवश्य व्ययकर देनेका, इनका अटल नियम था। राज-अन्न तथा राजाओं को शिष्य करनेसे तो ये बहुतही बचते थे। श्रीग्वालियर-नरेशके भ्राता श्रीबलवंतरावजी ने इनसे गुरुमंत्र देनेकी आग्रह किया; किंतु इन्होंने सर्वथा अस्वीकार करदी, उन्होंने आग्रह-पूर्वक जो भेटकी, उसे तत्काल भंडाराकर साधु-सेवामें व्ययकर दिये। और भी कई राजा-रईस स्थानकी सेवा-खर्चके लिये दस-दस पंद्रह-पंद्रह रुपये दैनिक तथा जागीर देना चाहे, किन्तु इनके एकमात्र अस्वीकार उन्हें सदा निराश होने पड़े। राव-रंक इनके दृष्टिमें समान थे। शिष्य एवं अन्य वैष्णवोंमें भी अभेद रखते थे। अनीति देखकर छोटे-बड़े सभीपर शासन-पूर्वक उचित व्यवहारभी कर उठते थे क्योंकि अयोग्य क्षमासे उसमें कुरीति स्वभाव की वृद्धिकी संभावना रहती है। इसप्रकार ये जगत एवं वैभवसे कमलवत् अलग रहते हुए, निस्पृह, निराभिमानी, निर्द्वन्द्व निरपेक्ष, निर्भय, भगवद्भक्ति-सिद्ध संत थे।

ये सदैव भावना-मग्न भावुक संतभी एकही थे, श्रीविहारीजी की किसी प्रकारकी भी सेवा करनेमें नहीं हिचकते थे। उठते-बैठते, चलते-फिरते समयभी एक अद्भुत भावकी छकनमें मग्न रहते थे।

प्रगट-रूपमें सबके समक्ष थे, किंतु अंतरंग अवस्थामें सदैव श्रीप्रिया-प्रियतमकी सेवासे अवकाश रहित। कभी-कभी इतने भाव मग्न होजाते थे कि सन्मुख कोई कुछभी बात करता रहे कुछभी भान नहीं रहता था ज्ञानेंद्रिय इनके नियंत्रणसे बाहिर होजाती थीं।

वैष्णव-साधु-सेवामें भी इनकी अपार निष्ठा थी। स्थानमें सदैव भंडारा होतेही रहते थे और इनमें सहस्रों वैष्णव आते रहते थे जिनका दर्शनकर ये बहुतही प्रफुल्लित होते थे। इन्होंने वृंदावनस्थ समस्त संतोंको कई बार पाँच-पाँच एवं एक-एक रुपये दक्षिणायें बाँटी, एवं लोइयेंभी वितरण की, जैसा कि यहाँके सर्वोपरि वृद्ध आदमियोंके स्मृति-कालमें भी किसी महंतने नहीं की। इस प्रकार ये अपने विद्यमान-कालके सर्वोपरि दानवीर कर्ण थे।

इन्होंने टट्टी—स्थानीय कई प्राचीन संत—वाणीकारोंके अमूल्य ग्रंथरत्नोंको प्रकाशित कराकर साहित्य-जगतको ऋणी बना लिया है। आपने शिष्यों द्वारा स्वद्रव्य व्यय कराकर निम्न ग्रंथ प्रकाशित किये—

१—भगवतरसिककी वाणी, २—गुलजारचमन, आनंदचमन, ३—सरसमंजावली, ४—ललितप्रकाश, ५—निजमतसिद्धांत, ६—वचनिका सिद्धांत आदि इन ग्रंथोंको प्रकाशित होनेसे साहित्य-जगत्को जो लाभ हुए हैं, वे अकथनीय हैं। भारतके कोने-कोनेमें इन वाणियोंके प्रति पहुँच गये हैं, और ब्रज-भाषा-साहित्यके विद्वान् इनसे भली भाँति परिचित हैं। इनके प्रचारका समस्त श्रेय आपको ही है। इनमें से अधिकांशके कई-कई संस्करण भी हो चुके हैं। श्रीभगवत-रसिककीवाणी, गुलजारचमन, सरसमंजावलीके नवीन संस्करण अभी थोड़े दिन हुए इनके शिष्य नागरीदासजी भी कराये थे।

अब महंतजी महाराज की दिव्य कीर्तिही इस धरातलपर हैं। इनके अनुकरणीय सद्‌चरित्रोंको भारतके अन्य महंतोंको भी व्यवहारमें लाने चाहिये, आप संवत् १९९० के लगभग श्रीनिकुंज को पधारे।

महन्त श्रीमधुसूदनशरणदेवजी

महंतजी महाराजका जन्म राजपूतानाके किसी ग्राममें हुआ था। ये गौड़-ब्राह्मण-वंतावतंश थे। बंगला सन् १३०५ के ज्येष्ठ मासमें गद्दीपर बैठे। इनके महंत होनेपर अव्यवस्थित अवस्थामें ही अपने गुरुभ्राता यमुनादासके संगमें अनेक मुकद्दमे लड़ने पड़े; किन्तु इन्होंने कार्य-दक्षताके गुणसे समस्त विघ्न-बाधाओंको पार करते हुए आश्रममें भारी आय-वृद्धि की। वर्तमान मंदिरके स्थानपर पुराना मंदिर था वहाँपर इन्होंने लगभग दो लाख रुपये खर्च करके नवीन मंदिर निर्माण कराया। इन्होंने भारतवर्षके समस्त तीर्थोंमें भ्रमण करते समय द्वारकाजीमें स्थित श्रीरणछोड़जीका मंदिर देखा था, उसके ही नक़शानुसार आश्रममें स्थित श्रीदामोदरजीके मंदिरको भी बनवाया और इसमें श्रीहंस भगवान्, श्रीसनकादिक भगवान्, श्रीनिम्बार्क भगवान् आदि आचार्य भी पधराये गये। प्रतिष्ठाके समय भारतके कई भारी विद्वान निमंत्रणकर बुलाये गये, मंदिरकी धूमधामसे प्रतिष्ठा हुई। इन्होंने लहागंज (मुर्शिदाबाद), चेतवा आदि स्थानोंकी भी बिगड़ी हुई व्यवस्थाको सँभालकर जोग्य सचालक नियत किये।

महंतजी महाराज बड़ेही दानशील, देशहितैषी और प्रजारंजक थे। प्रजागणके जलकष्ट-निवारणके निमित्त अपार द्रव्य व्ययकर स्थान-स्थानपर कुएँ बनवाये। इन्हींके उद्योगसे बांकुड़ा जिलाके इंदास नामक ग्राममें एक दातव्यचिकित्सालय स्थापित हुआ, उसमें भी आपकी भारी आर्थिक सहायता थी। सन् १३२० सालमें दामोदर-नदीके भीषण बाढ़के बिनाशमें आश्रयहीनोंको स्थान-स्थानपर अन्न-वस्त्र बाँटे और 'रिलीफफंडमें भी २००० रुपये प्रदान किये। सन् १३२२ सालमें बांकुड़ा जिलेके अकालमें भी भारी संख्यामें गरीबोंको अन्न-वस्त्रादि सहायतामें बाँटे। इसप्रकार इन्होंने अनेक स्थानोंमें गरीब प्रजाजनके संकटकालमें पूर्ण सहायताकर विश्वमें एक आदर्श उपस्थित की।

आप एक विद्योत्साही शास्त्रज्ञ व्यक्ति थे, संस्कृत भाषासे विशेष स्नेह था। इन्होंने श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनींद्र, श्रीनिवासाचार्य श्रीकेशवकाश्मीरिभट्ट-विरचित ब्रह्मसूत्र भाष्यत्रयोंको प्रकाशित कराकर विद्वत्समाजमें अमूल्य वितरण कराये थे। श्रीकेशवकाश्मीरि-

भट्ट-कृत श्रीमद्भगवद्गीता आदि और भी कई ग्रंथ आपके द्वारा प्रकाशित होकर अमूल्य वितरण हुए।

अपने अधिकांश समयको पंडितगणके संग शास्त्र आलोचनामें ही व्यतीत करते थे। विद्यार्थियोंको विद्यादान करनेमें भी इनका अति प्रेम था, इसलिये स्थलमें ही विद्यालय स्थापित हुआ। श्रीवृंदाबनस्थ श्रीनिम्बार्क-महाविद्यालयमें भी आपका पूर्ण सहयोग था, मासिक १८०) रुपये प्रदान करते थे। नामसंकीर्तन एवं भगवत्संबंधी गानके भी आप पूर्ण प्रेमी थे, स्थानमें सदैव गायकोंका समारोह हुआ ही करता था, तथा प्रतिवर्ष चैत्रमासमें अखंड भगवन्नाम-संकीर्तन हुआ करता था इसके लिये स्वतंत्र एक हरिमंदिर निर्माण कराये थे।

सन् १६२२ साल में आपने चेतवा, अड्ढाटा, उखड़ा, जयदेव आदि स्थानोंमें पूर्व प्रचलित नियम प्रतिपालनके निमित्त 'नियमावली-पत्र' नामक एक उक्त स्थानोंके महंतों द्वारा स्वीकृत 'प्रतिज्ञापत्र' लेकर रजिष्ट्री करालिये। जिसके अनुसार अद्यावधि तक व्यवहार होते आरहा है। आप अपने प्रिय शिष्य श्रीमनोहरशरणदेवाचार्यको स्थानका अधिष्ठाता नियतकर बंगला सन् १३२७ सालमें श्रीगोलोक धाम पधारे।

पंडित श्रीविहारीदासजी त्यागी

आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी क्रीड़ास्थली श्रीवृन्दावनमें ऐसे कलिकालमें भी योगी, त्यागी, ईश्वरभक्त और सत्यात्मा साधु-महात्माओंका अभाव नहीं है। यह निःसंदेह सच है। जाने कितनी ऐसी भव्य आत्माएँ इस लीलामयी भूमिकी कुञ्जों में आच्छादित लतावल्लरियोंके बीच अपनेको इस मायावी जगत से भिन्न समझ दुवकाये पड़ी हैं। कमी है हमारे नेत्रोंकी जो उन्हें देखनेमें सर्वथा असमर्थ हैं। अभाव है हमारे प्रयत्नोंका कि जो हम उन्हें प्राप्त करनेका किञ्चितमात्र भी प्रयास नहीं करते। त्रुटि है उस आत्मबलकी जिसे पाकर हम उन्हें प्राप्त करनेके साधनोंके जुटाने में अग्रसर हों। कुछ भी हो उनकी अनुपम कृपाके प्रसादका भागी वही

श्रीनिम्बार्कमाधुरी

परम विरक्त, भागवत-भूषण,
स्वस्थान-प्रदाता श्रीनिम्बार्क-महाविद्यालय,
पूज्यपाद पं० श्रीविहारीदासजी त्यागी

सत्सङ्ग-सर्वस्व, श्रीमहावाणी-मकरन्द-मधुप,
रास-रस-रसिक, वृन्दावन-वासी, रसिकवर,

बोहरे श्रीव्रजलालजी

जीव हो सकता है जो कि अपने संस्कारों पर पूर्ण विजय प्राप्त कर सका होगा।

ये विभूतियाँ उसी दिव्य ज्योतिकी प्रखर रश्मियाँ होती हैं और वे इस लोकमें आकर अज्ञान-निशाका अन्त कर वसुन्धरा पर अरुणऊषाको ज्ञान रूप नवीन मुस्कान देती हैं। मायाके तुषार से मुरझाये हुए जीवोंको पाटल-पुष्पकी भाँति पुनः जीवन प्रदान करती हैं। ऐसी महान आत्माओंका जीवन अपने लिये ही नहीं होता परन्तु वह देश, समाज और पतितोंके लिये जिनकी धरोहर-सा हो जाता है। जब चाहें वे उसे प्रयोगमें लाकर लाभ उठायें और अपना तथा दूसरोंका उद्धार करें। उनकी छोटी-सी-छोटी वस्तु परोपकारके लिये सदैव प्रस्तुत रहती हैं। वे उसमें अपना गौरव नहीं समझते अपितु ऐसा करना उनका स्वभाव ही होता है। आज हम एक ऐसी ही दिव्य आत्माके जीवन पर यहाँ आप महानुभावोंके सामने कुछ पंक्तियोंमें प्रकाश डालना आवश्यक समझते हैं जिसे यदि आप लोग अच्छी तरह मनन करेंगे तो निश्चय ही उक्त आलोच्य विषयके निकट पहुँचनेमें सफलीभूत हो सकेंगे।

आज हम यहाँ जिन महानुभावके जीवनके विषयमें कुछ लिख रहें हैं उनका नाम श्रद्धेय 'पं० श्रीविहारीदासजी त्यागी' है। आपका जन्म ब्रजके किसी ग्राम में एक उच्च घरानेमें श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीके दिन हुआ था। आपकी अवस्था अभी ७ वर्षकी भी नहीं होने पायी थी कि आप माता, पिता, भाई, बन्धुवर्गोंके वात्सल्य-भावको एक ओर ठुकरा विरक्त होकर देश भ्रमणके लिये चल पड़े। यह तो रहा पहिला त्याग।

बहुत दिन तक भ्रमण करनेके पश्चात् आपने श्रीयुत पं० श्रीगिरिधारीदासजी महाराजसे दीक्षा ली। आप महीमण्डलाचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराजके प्रमुख शिष्य श्रीमत् स्वभूराम देवाचार्य्य महाराजके अन्तर्गत श्रीचतुरचिंतामणिदेवाचार्य्यजी उपनाम श्रीनागाजी महाराजकी परम्परामें से है।

आपने श्रीवृन्दावन धाम पधारनेके बाद मोहल्ला केमारवन में वि० सम्वत् १६८६ में ठाकुर श्रीराधाव्रजचन्द्रविहारीजीके मन्दिर की नींव डाली। आपने इस स्थानको स्वउपार्जित-सम्पत्ति-द्वारा

बनवाया और तैयार कर श्रीठाकुरजीकी सेवाका यथोचित प्रबन्ध किया। वह स्थान (मन्दिर) उनके स्वावलम्ब तथा गौरवका प्रतीक है।

इस स्थानको बनवाये अभी पूरे तीन वर्ष भी नहीं होने पाये हैं कि आपने उक्त स्थानको श्रीनिम्बार्कमहासभा वृंदावनको गत आ० शु २ के दिन सदैवके लिये रजिस्ट्री कराकर दान कर दिया है। कितना अपूर्व तथा अद्वितीय त्याग! साम्प्रदायिक–जगतके लिये बड़े हर्षका विषय है! श्रीनिम्बार्कमहाविद्यालयके लिये एक स्थानकी बड़ी भारी कमी थी उसे श्रद्धेय त्यागीजी महाराजने पूरा कर अपनेको यथा नाम तथा गुण: के अनुसार पूर्ण 'त्यागी' ही सिद्ध कर दिखाया है। आजकल पूज्य पं० जी की अवस्था लगभग ५० वर्षके हैं परन्तु बहुधा आपका शरीर रुग्ण रहता है। यह कहना न होगा कि त्याग, दान, तप, योग, सत्यासत्य पर बिचार करना आदि वस्तुएँ हमें इस जोवन में ऐसे ही उदारचेताओंसे सीखनेको मिलती हैं।

श्रीपंडितजी महाराज श्रीमद्भागवतके अद्वितीय वक्ता हैं। आपकी विद्वतापूर्ण व्याख्यासे श्रोतागण प्रफुल्लित हो उठते हैं। संस्कृतके तो भारी विद्वान् हैं, भाषामें भी धारा-प्रवाह भाषण देते हैं, जो विषय लेते हैं, उसीके आलोचना करनेमें पूर्ण सामर्थ हैं। ये प्रारम्भिक 'वैराग्य जीवनमें एक सच्चे त्यागी योगनिष्ठ, संत थे। रात्रि दिन भजनमें निमग्न रहते थे, सोनेका तो नाम भी नहीं जानते थे। इनके त्यागमयजीवनकी अद्भुत कथा, बोहरे श्रीवृजलाल एवं श्रीपार्वतीबाईजी से श्रवण करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। क्योंकि गहवरवन वरसानेसे सर्वप्रथम इन्हींके संसर्गसे त्यागीजी को वृंदावनमें आनेका अवसर मिला था।

आशा है कि समस्त स्वसम्प्रदायी सज्जन इस त्यागके ज्वलन्त उदाहरण से अवश्य कुछ न कुछ लाभ उठायेंगे। अन्तमें भगवान् श्रीसर्वेश्वर से पुनः २ प्रार्थना है कि वे 'श्रीत्यागीजी' महाराजको सदैव कुशल रक्खें।

इन्होंने सम्प्रदायका एक महत्वपूर्ण ग्रंथ 'अर्चिरार्द्धपद्धति' प्रकाशित कराया था। अब आप श्रीभगवन्निम्बार्क-तपोभूमि स्थल निम्बग्राममें रहते हैं।

श्रीनिम्बार्क-साहित्य-प्रकाशक

तथा श्रीमहावाणी-उत्सव-कर्ता

श्रीस्वामी बाबा रामचन्द्रदासजी महाराज,

वृन्दावन ।

श्रीस्वामी बाबा श्रीरामचंद्रदासजी

ईश्वर स्वधर्म रक्षा तथा प्रचार-कार्य-साधनके लिये ऐसे ऐसे महापुरुषोंको अवनिपर उत्पन्न करते हैं, जिनके द्वारा कठिनसे-कठिन धार्मिक कार्य अवश्यम्भावी सम्पन्न-सिद्ध रहता है। ये विभूतियां उसी सच्चिदानन्दकी दिव्य प्रभा हैं, जो अपनी दिव्य-संदेश-रश्मि द्वारा जीवोंका अज्ञानतम दूर कर मानव-सृष्टिके लिये आदर्श उपस्थित करती हैं। यह श्रीनिम्बार्क-संप्रदाय भगवद्भक्ति-प्रचारक सनातनधर्म-रक्षक, अधर्म-ध्वंसक तथा श्रीसर्वेश्वरीय-कार्य-साधक एक समर्थ और अनादि वैदिक-सत्संप्रदाय है। इसके अंतर्गत अनेक महानुभावों द्वारा आज पाँच सहस्र वर्ष पूर्वसे धर्म रक्षा निमित्त होकर ईश्वरीय कार्य साधन सम्पन्न होता चला आया है। इस संप्रदायके आचार्यपाद एवं विद्वानोंने धर्म रक्षानार्थ अनेक उपाय व्यवहरित किये; अधर्मियोंसे शास्त्रार्थ कर उसे पराजित, आत्मशक्ति-प्रयोग व्यापक उपदेश, ग्रंथ-निर्माण आदि। इनमें ग्रंथ निर्माण भी प्रवल तथा अवश्यम्भावी-कार्य-साधन-युक्ति युक्त हैं। इसलिये आचार्योंने दार्शनिक, उपास्य उपासना विवेचक, ज्ञान भक्ति वैराग्य-परक प्रभृति अनेक ग्रन्थ विविध आवश्यक विषयोंसे सर्वांगपूर्ण निर्माण किये हैं। ये ग्रंथ-रत्न-राशि अप्रकास्य-अन्धकारमें यत्र-तत्र गुप्त हुए पड़े थे, आधुनिक धार्मिक क्रांतिके समयमें इन्हें खोजकर प्रकाशित करनेकी अत्यंत आवश्यकता थी, इसी ईश्वरीय-कार्य-साधनको, अनादिवैदिकसंत्संप्रदायप्रवर्तक श्रीभगवत्सनत्कुमारप्रदर्शित पथानुगामी श्रीभगवन्निंवार्क महामुनींद्र-पादपीठाधिष्ठित स्वाभाविकद्वैताद्वैत सिद्धांतधौरेय निखिलमहिचक्र-वालाचार्य चक्रचूड़ामणि सर्वतंत्रस्वतंत्र योगिवर्य श्रीमच्छ्री श्री १०८ श्रीस्वभूदेवाचार्यचरणचरणाश्रित श्रीस्वामी बाबा श्रीरामचंद्रदासजी महाराजने महोत्साह-पूर्वक करना स्वीकार की है। तथा और भी शिक्षा-शिक्षादिक द्वारा अनेक जीवोंके उद्धार एवं धर्म-रक्षाके लिये सतत चेष्टा की है।

इनका जन्म संवत् १६२६ के लगभग हुआ था। सवाईमाधो-पुरके निकट सुरवाल-नामक ग्राम है वहां इनके गुरुवर श्रीरामदासजी महाराज निवास करते हुए भगवद्भजन करते थे। ये सुरवालमे ही जाकर संवत् १६५३ में शिष्य हुए तथा ४ वर्ष तक वहीं रहते हुए भगवद्भजन करते रहे। सुरवालके मन्दिरमें श्रीगोपालजीकी प्रतिष्ठा आपने ही कराई थी। उन्हीं दिनों वहां आपने श्रीवृन्दावनस्थ ब्रह्मचारी

जीके मन्दिरकी प्रशंसा सुनी, इसलिये वृन्दावनमें आनेकी अति उत्कंठा हुई, भगवत्कृपासे आने-जानेका सौभाग्य भी प्राप्त हो गया। संवत् १९५७ में विरक्त होगये और वृन्दावनमें आकर यहीं निवास करने लगे। उसी वर्ष वृंदावनमें द्वादशवर्षीय कुम्भ-मेला थी, इस संतसमागमके अपूर्व अवसरसे बहुत ही आनन्द हुआ। यहां रहते हुए श्रीग्वारियाबाबासे बाजा भी सीखे, पश्चात् भजनकुटी पर मंत्र-राजकी विधिवत् अनुष्ठान की। जिसमें इन्हें कृपा-फल-स्वरूप कई चमत्कार अनुभव हुए। जो उत्सव द्वादश शिष्य एवं सहस्रों वैष्णवों को संगमें लेकर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजीने किया था, वह उत्सव भी पुनः इनके द्वारा सन् १९२४ में संपन्न होना प्रारम्भ हुआ था। पंडित श्रीकिशोरदासजीकी आज्ञासे सन् १९२५ ई० में इनके द्वारा सर्वप्रथम पुस्तक प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ। उस समयसे इनके द्वारा धर्मोन्नतिके उभय कार्य सुचारु-रूपसे सफलता-पूर्वक संचालित हो रहे हैं। इन कार्य्योंसे सांप्रदायिक उन्नतिमें बहुत ही विशेषता हुई है। बाबाके इस सेवा-द्वयसे श्रीनिम्बार्क संप्रदाय सदैव ऋणी रहेगी।

ये एक सरल चित्त उदार हृदयके संत महानुभाव हैं। स्वसंप्रदायमें अति श्रद्धा, इष्टदेवमें अटल निष्ठा है। सदैव भगवद्भजन, आचार्य-निर्मित-ग्रन्थ-पाठ ही इनके जीवनकी आधारभूत कर्त्तव्य हैं। वैसेही इनके शिष्यगण भी आचार्य-गुरुमें निष्ठायुक्त वैष्णव हैं, इन्हींके महोत्साहसे आपका उत्सव समुचित तथा सुव्यवस्थित रूप से संपन्न होता है। बाबा महाराज श्रीनिंबार्क-महासभा तथा और भी धार्मिक-कार्योंमें यथाशक्ति सहयोग देते रहते हैं। आपने प्राचीन आचार्य-निर्मित ग्रंथोंको प्रकाशित कराकर इस जीर्ण संप्रदायमें नवजीवन-सी स्थिति उत्पन्न कर दी है। अबतक १० ग्रन्थ इनके द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं। श्रीनिम्बार्क-साहित्य 'उन्नतिकर्ताओंमें ये अमर हैं। जबतक दिव्य संप्रदाय-ज्योति विश्वमें जगमगाती रहेगी तब तक इनकी भी कीर्ति-रश्मि इससे अभिन्न रहते हुए, वैष्णव-जगतको चमत्कृत करेगी।

बाबा महाराजके द्वारा प्रकाशित ग्रंथोंमें इनके नामके संग वैष्णव, साधु, पंडित, बाबा, उत्सववाले आदि विशेषण भिन्न-भिन्न लगे हुए हैं, ये विशेषण श्रीस्वामी बाबा रामचन्द्रदासजीके ही हैं पाठक भिन्न-भिन्न प्रकाशक न समझें। इनके नामसे श्रीसुदर्शनके श्रीनिंबार्कांङ्कमें एक पद भी प्रकाशित हुआ था वह यह है —

श्रीनिम्बार्क दयाल ! दयानिधि ! दीननके हितकारी ;
सब विधि दीन हीन कर मनसो आयो शरण तिहारी ।
काम, क्रोध, लोभादि, मोह दावानल नाम अतिभारी ;
भाई बंधु कुटुम्ब कबीला स्वारथके सब यारी ।
त्राहि-त्राहि शरणे अब आयो सुनिये अरज हमारी ;
भवसागरकी धार कठिन है डूबत लेहु उबारी ।
नित्यधाममें श्रीरँगदेवी सेवत जुगल विहारी ;
श्रीहरि आयुध चक्र रूपसों आचारज वपुधारी ।
अम्बरीष निज भक्त जानकर छिनमें विपति निवारी ;
'चन्द्रप्रभा' बहु पतित उधारे अबकी बेर हमारी ।

श्रीवृन्दावनमें श्रीनिम्बार्क-संप्रदायान्तर्गत कई आचार्य-पाद पद्मानुरागी महानुभाव. आचार्य जयन्ती उत्सव मनाया करते हैं । ये उत्सव आचार्य-वाणी समाज कीर्तन, श्रीविग्रह सेवा चित्रपट-सेवा वैष्णव-सेवा आदि-द्वारा सम्पन्न होते हैं । जिन आचार्यपादोंका उत्सव होता है, उनका चित्रपट पधराना आवश्यक होता है, इस प्रकार आचार्यपादोंके चित्रपटोंका श्रीवृन्दावनस्थ अनेक अस्थलोंमें बहुतायत है—यह बाबाजी महाराजके ही परिश्रमका फल है । प्राचीन चित्रोंके अतिरिक्त विशेषत: जैपुरके बने हुए चित्रपट श्रीवृन्दावनमें आचार्य ध्यानानुसार प्रमाणिक तथा बहुरंगे बनवाकर आपने ही लाने प्रारम्भ किये थे । आज सहस्रोंकी संख्यामें यहाँ विद्यमान हैं ।

इनके शिष्यगण एक गुरुस्थान स्थापित करनेकी चेष्टा कर रहे हैं--जिसका होना अत्यावश्यक है । इनके द्वारा प्रकाशित ग्रंथोंके नाम इस प्रकार हैं—

१--मन्त्र रहस्य षोडशी संस्कृत टीका सहित २---श्रीहरिव्यास-यशामृत भाषागीति काव्य(अप्राप्य) ३—श्रीनिम्बार्काष्टोत्तर शतनाम संस्कृत टीका सहित, ४—श्रीगोपाल पूजन-पद्धति (द्वितीय संस्करण) हिन्दी टीका सहित, ५—पुष्पेषुमनुकल्पतरु-सौरभ हिन्दी टीका सहित ६—वैष्णवधर्म सुरद्रुममञ्जरी हिन्दी टीका सहित, ७—श्रीनिम्बार्को-दयतरण नाटक हिन्दी मू० १) ८—श्रीगुरुशरणागति हिन्दी टीका सहित द्वितीय संस्करण ९---श्रीगुनति वैजयन्ति संस्कृत टीका सहित १०—आचार्य परम्परा-परिचय भाषा प्रथम खंड ।

ब्रह्मचारी श्रीरामचरणदासजी

ये श्रीमत्स्वभूदेवाचार्यजीके द्वारेके महात्मा हैं। इन्होंने अमृतसर (पंजाब) में अपना स्थान बनाया जिसका नाम गोपालजीका मन्दिर है। इनका गुरु-द्वारा पांडवामठ (उड़ीसामें) है, गुरुजीका नाम स्वामी श्रीसर्वेश्वरदासजी था, पाँडवामठके महंत थे।

तपस्वीजी एक दिव्य तेजोमय मूर्ति हैं। सदैव इनके हृदय में ईष्ट, उपासना स्वसिद्धांत प्रभृति सांप्रदायिक आचार्यों-द्वारा प्रतिपादित विषयों पर विचार-धारा प्रवाहित होती रहती हैं। जहाँ भी कहीं आचार्य-प्रतिपादित सिद्धांत पर आक्षेप आता है उनका मुँहतोड़ उत्तर देनेके लिये तैयार रहते हैं। इनके द्वारा निर्मित एवं प्रकाशित तीन ग्रंथ मैंने देखा है, जिनमें सांप्रदायिक सिद्धांत, उपासना, कर्म-धर्म, ईष्ट-स्वरूप प्रभृतिका विद्वता तथा सर्वाङ्गपूर्ण आलोचना और प्रतिपादन विषय हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—१—श्रीगोपालचक्रचूड़ामणि (प्रथम भाग) २—श्रीगोपालचक्रचूड़ामणि (द्वितीय-भाग) ३—श्रीवैष्णवधर्मकेतु। इनमें श्रुति स्मृति, पुराण, इतिहास, तंत्र, शास्त्रों द्वारा स्वसंप्रदायिक उपासना सिद्धांतादि भली प्रकार प्रतिपादित हैं। सांप्रदायिक रहस्योंसे परिचित होनेके लिये सांप्रदायिकजनोंको इसे अवश्य अवलोकन करना चाहिये।

ब्रह्मचारी श्रीराधेश्यामजी

इनका जन्म संवत् १६२० मार्गशीर्षमें वृन्दावनसे ६ कोस पर गोरई-नामक ग्राम (जिला अलीगढ़) में हुआ था। ये सनाढय ब्राह्मण वंशावतंश हैं। पिताजीका नाम बलरामजी था। इन्हें भगवद्भजन करनेकी इच्छा हुई, सर्वप्रथम संवत् १६२२ में घर संबंधी व्यवहारिक झंझटोंको परित्याग कर श्रीवृन्दावनमें आगये पश्चात् श्रीगिरिराज गये और वहाँ छः मास तक दंडवती परिक्रमा पूर्ति होने पर तीर्थ-यात्रा भ्रमण की इच्छा हुई, कई वर्ष भारतके समस्त तीर्थोंमें भ्रमण करते रहे। भ्रमण-कालमें श्रीजगन्नाथ आदि समस्त तीर्थोंमें तीन-तीन बार और पाँच बार श्रीबद्रीनारायणकी यात्रा की। भ्रमणके समयमें स्वयंपाकी थे और श्रीसर्वेश्वरजी की सेवा संगमें अवश्य

रखते थे। श्रीनिम्बार्क-भगवान्के उत्सवकर्ता प्रसिद्ध संत श्रीगोपाल-दासजी महाराजके शिष्य नैष्ठिक ब्रह्मचारी विरक्त पंडित श्रीमाया-रामजी शास्त्रीसे श्रीनिम्बार्क संप्रदायान्तर्गत वैष्णवी दीक्षा लेकर विरक्त होगये। श्रीवृन्दावन-वास कालमें श्रीगोपालदासजी महाराजके शिष्य पण्डित श्रीश्रवणजीसे कर्म, धर्मादि सीखे थे।

श्रीवृन्दावन-वास कालमें इनका परिचय व्यासवंशी गोस्वामी श्रीयुगलकिशोरजीसे होगया था, जिनके कई राजा भी शिष्य थे। गोस्वामीजी बुंदेलखंडके शिष्य राजाओंके निमन्त्रण पर भ्रमणार्थ भी पधारते थे, ब्रह्मचारीजीको एक चमत्कारी भजनानन्दी, दिव्यमूर्ति, अतिविरक्त, वैष्णव देखकर कई बार अपने संग लेगये। इन यात्राओं में चरखारी, मुरसान आदि कई नृपतियोंका इन पर ऐसा चित्त आकर्षित हुआ कि श्रीगुरुसे भी विशेष मानने लगे। श्रीघनश्यामसिंहजी तो मथुरामें स्थित बहुमूल्य कोठी इनके नामसे रजिस्ट्री करनेके लिये तैयार होगये; किन्तु आपने अस्वीकार कर दिया। अकबराबादके (अलीगढ़ जिला) रईस एक ब्राह्मण जमींदार भी इन्हें बहुत मानते थे, इनके लिये गिरिराजमें नवीन मन्दिर बनवा रहे थे, किन्तु पधार गये। चरखारी-नरेश श्रीमलखानसिंहजी अपने विद्यमान कालमें कई सौ रुपये वार्षिक इनके लिये बंधान कर दिये थे। 'श्रीगिरिराजमें श्रीगोपालमंत्रराजकी कई अनुष्ठान किये, जिनमें कई प्रत्यक्ष चमत्कार हुए।

संवत् १९७१ में जयपुर नरेश श्रीमान् माधवसिंहजी महाराजने हरिद्वारमें मिलने पर बरसाने में स्थित जो ब्रह्माचल पहाड़ी पर बना हुआ है, नवीन तैयार-मन्दिरमें विराजमान होनेके लिये आग्रह किया। आपने इस भारी जिम्मेवारीसे अनिच्छा प्रगट की, किन्तु विशेष आग्रहसे यह सेवा ग्रहण की, तबसे आज पर्यन्त भलीभाँति योग्यता युक्त पूर्वक मंदिरके कार्य-क्रमको चला रहे हैं। आप भारी राज सम्मानित, राजमन्दिरके अधिष्ठाता होने पर भी, निराभिमानी और निर्लिप्त हैं। आपने नित्यकर्मादिक भजनमें इस वृद्ध अवस्थामें भी उत्साह-पूर्वक तत्पर रहते हैं। आप स्तोत्ररत्नावली, ज्ञान दर्पण, आदि कई ग्रंथ संग्रह कर प्रकाशित कराये हैं।

बाबा श्रीनंदलालदासजी

इनका जन्म संवत् १९०४ में छपरा जिलेके अन्तर्गत उकरेरी-नामक ग्राममें हुआ था। पिताजीका नाम पंडित राजाराम मिश्र था, सरवरिया ब्राह्मण थे। इन्होंने १३ वर्षकी अवस्थामें श्रीनिम्बार्क-संप्रदायांतर्गत विरक्त-वैष्णवी-दीक्षा ग्रहण की थी। कुछ दिन गुरूजी के संगमें रहनेके पश्चात् नेपाल राजमें नरमहरी पहाड़के जङ्गलमें स्थित एक आश्रममें निवास करते हुए भजन करने लगे, इस जंगल में पन्द्रह वर्षतक भजन किये। १५ वर्ष तक तिरहुतके कई तीर्थस्थानों में रहे, इन्हीं दिनों चारोंधाम तथा भारतके अन्य तीर्थोंमें भ्रमणको समाप्त कर वृंदावन आगये, यहाँ इन्हें निवास करते हुए ४० वर्षके लगभग होगये हैं। इस समय ६३ वर्षकी उम्र है, किन्तु भली प्रकार अक्षर लिख-पढ़ लेते हैं। और वृंदावनमें भ्रमण भी कर लेते हैं।

बाबाजी महाराज एक सीधे सरल-स्वभावके महात्मा हैं श्रीधाममें अत्यन्त निष्ठा हैं, वैसे ही स्वाचार्य निर्णीत उपासना तथा इष्टदेवमें अटूट प्रेम है। वृन्दावनमें शहरके बाहिर एक ऐकांतिक बगीचीमें रहते हुए सदैव भजन,भावमें कर्त्तव्यशील रहते हैं। सेवक शिष्यों द्वारा कहींसे जो कुछ आता है, उसे वर्ष भर तक एकत्रित कर आचार्य-उत्सवमें खर्च कर देते हैं और आचार्य-निर्मित ग्रंथ छपा देते हैं। इनके द्वारा प्रकाशित कई पुस्तकें मैंने देखी हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं-१—लघुस्तवराजस्तोत्र सटीक, २—श्यामबिन्दी महिमा, ३—स्तोत्ररत्नावली साम्प्रदायिक ग्रंथोंकी सूची, ४—तुलसी-कंठी-तत्त्व,५--गोपाल-तापिनी-उपनिषद् आदि,बाबाजी महाराज से इतनी बड़ी उम्रमें भी जब तक दृश्य-जगत्में विराजमान रहेंगे, तब तक संप्रदायको कुछ न कुछ लाभ होती रहेंगी।
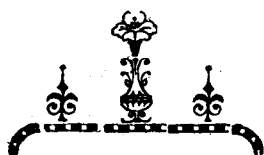
विद्वद्वर पं० श्रीदुर्गादत्तजी घटिकाशतक वृन्दावन।

बर्द्धमान-पीठाधीश्वर श्रीमधुसूदनशरणदेवाचार्यजी महाराज।
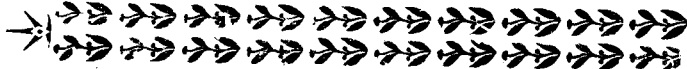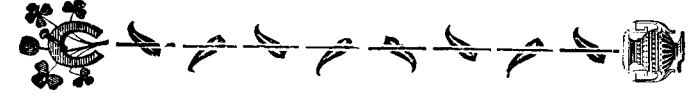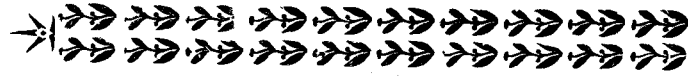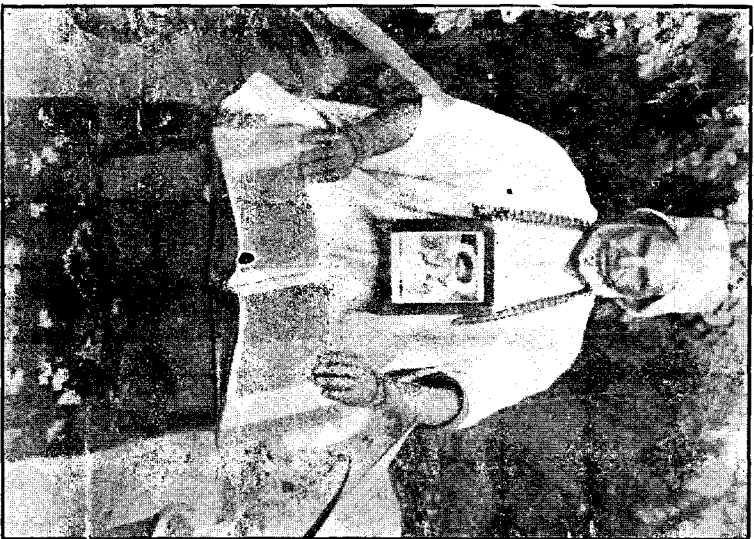
परमविरक्त, श्रीमुकुन्ददेवाचार्यपादपीठाधीश्वर
भक्तमाली, बनविहार-निवासी—
महान्त श्रीमाधवदासजी महाराज

श्री निम्बार्क माधुरी

परम विरक्त, विद्वद्वर महात्मा
गोलोकवासी श्रीसुदर्शनदासजी महाराज
वृन्दावन।

❀ श्रीसर्वेश्वरो जयति ❀

वर्तमान-रचयिता

बाबा श्रीमाधवदासजी

भगवान् श्रीसर्वेश्वर स्थापित, तथा प्रवर्तित वैदिक-धर्म-स्तंभसे सामयिक कारणों द्वारा उत्पन्न अधर्म-वेग जब जोरोंसे टक्कर लेने लगा, और अनेक सुदृढ़ धर्म-स्तम्भोंकी नींव समूल हिल गई—उस समय अपनी प्रिय एवं रक्षित वस्तुकी रक्षाके निमित्त अनन्तकोटि ब्रह्मांडनायक विश्वव्यापक स्वयं भगवान् श्रीसर्वेश्वरको चिंता हुई। इस कार्यके साधनके लिये इस कर्मभूमि अवनितलपर यातो उन्हें स्वयं प्रगट होना पड़ा, अथवा सशक्त प्रिय आयुधादि तथा चिर-सेवक नित्यपार्षदोंमेंसे धर्मकार्य पूर्त्यर्थ अवतरित होनेके लिये आज्ञा देनी पड़ी—यही कारण है आचार्यपादोंके प्रगट होने का ! आचार्योंने शास्त्रार्थ, आत्मशक्ति-प्रयोग तथा जीव ईश्वर सामञ्जस्य पूर्ण-ग्रन्थ रचना द्वारा अपनी मनोनीत उद्देश्योंको पूर्ण कर, काल-गतिपर दृष्टि रखते हुए, सर्व साधारणके लिये शीघ्रातिशीघ्र भगवत्प्राप्तिका सरल मार्ग भक्ति प्रचार की, और इस साधन द्वारा अपनी ध्येय पूर्ण करने में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सके। प्रचार-स्वरूप एतद्विषयक अनेक ग्रंथों की आवश्यकता हुई जिसे इन्होंने अपनी दिव्य स्वरूपानुकूल दिव्यधाममें व्यवहरित अथवा भक्ति साधनके चरमोत्कृष्ठ भगवत्स्वरूप विश्लेषणका सामञ्जस्य-पूर्ण अनुभूतिकर भाषा पद्योंमें अंकित थी। उस समय तक ब्रज-भाषा अपनी माध्यमिक अवस्थामें पूर्ण-प्रौढ़ता प्राप्त कर चुकी थी। सर्वप्रथम पद्यों द्वारा भक्ति-काव्यका विकास इसी भाषामें हुआ, और आदि बाणीकर्ता श्रीभट्टजीने युगलशत, महिमण्डलाचार्य श्रीहरिव्यासदेवजीने महावाणी, श्रीरूपरसिकजी श्रीपरशुरामदेवजी और श्रीहरिदासजी आदि महानुभावोंने पद्यकाव्यों के रूपमें अपनी आराध्य-वस्तुके, नाम, रूप, लीला, धामादि वर्णनीय, भजनीय तत्त्वोंको भक्ति प्रचार-धारामें पूर्ण वेगशक्ति देकर, अपनी सफल योजना द्वारा नवजीवन उपस्थित की और आगेके भक्ति-रस-

साहित्य-रचयिताओंके लिये एक सृति संस्थापित करदी। इन्हीं उद्देश्यों के अन्तर्गत श्रीनिंबार्काचार्य श्रीमुकुन्ददेवाचार्य पादपीठाधिष्ठित आचार्य श्रीबाबाजी महाराज द्वारा श्रीनिकुञ्जकेलिमाधुरी, श्रीप्रेम-निकुञ्जमाधुरी आदि भक्ति-काव्योंकी रचना हुई हैं।

आप वर्तमान कालमें श्रीवृन्दावनस्थ सर्वोपरि भावसिद्ध, त्यागी, संतसेवी, एकान्तसेवी, महानुभावोंमेंसे एक हैं। आपका जन्म संवत १६१६ पौष सुदी-द्वादशीको ब्राह्मण कुलमें हुआ था। २४ वर्ष की अवस्था सं० १६४३ में श्रीवृन्दावनमें आकर टोपीवाली—कुञ्जके महान्त श्रीकल्याणदासजी महाराजसे मन्त्र दीक्षा ग्रहणकर विरक्त-वैष्णव होगये। इस कुंजको बाबा श्रीरामदासजी टोपीवालेने बनवाई थी इनके शिष्य श्रीवृन्दावनदासजी हुए, इनके पश्चात् श्रीरघुनाथ दासजी, श्रीयमुनादासजी और उनके श्रीकल्याणदासजी हुए, इनके ही शिष्य श्रीबाबाजी महाराज हैं। डेढ़ वर्ष तीर्थ पर्य्यटनके पश्चात् वृन्दावनवास करते हुये, श्रीमद्भागवत, गर्गसंहिता, भक्तमाल और श्रीमद्भगवद्गीता प्रभृति ग्रंथ श्रीनिंबार्क-जयन्ती-उत्सवी श्रीगोपाल-दासजीसे पढ़े। श्रीगोपालदासजीने ही इन्हें कथा बाँचनेकी आज्ञा दी। आज्ञानुसार भक्तमाल, रामायण, श्रीमद्भगवद्गीता आदिकी कथा, एक वर्ष वाँचे। उन्हीं दिनों सं० १६५३ में श्रीगोपालदासजी परमधाम को पधारे, पढ़ना बंद होगया।

पश्चात इनकी कथा सं० १६५३ में अकबरपुरमें हुई, श्रोतागण कथा श्रवणकर बहुत ही प्रसन्न हुए और कथाकी अच्छी प्रशंसा हुई। कुछ दिन तक राधाकुंडस्थ श्रीनिवासाचार्यकी बैठकमें निवास करनेके पश्चात् पुनः प्रयाग चले गये, और वहाँ कथा भी श्रवण कराते रहे। पुनः वृन्दावनमें वापिस आकर सं० १६६६ में भाद्र-सुदी दशमीको टोपीवाली कुंजके महंत हुये, कुंजमें ६ वर्ष तक रहकर, पश्चात् मनोहरदास गुरु-भ्राताको स्थान सँभालकर वनविहारमें निवास करने लगे। ग्यारह वर्ष पश्चात् मनोहरदासके देहावसानपर पुनः कुञ्जमें आना पड़ा, और चार वर्ष सँभालनेके बाद अपने योग्य शिष्य श्रीकुञ्जविहारीदासजीको स्थानकी महन्ताई देकर, वनविहार एकान्त स्थानमें निवास करने लगे।

यही स्थान महिमण्डलाचार्य श्रीहरिव्यासदेवजीके शिष्य

श्रीमुकुन्ददेवाचार्यजी द्वारा संस्थापित आचार्य गद्दी है। आप आचार्य पादपीठाधिष्ठित होते हुये भी अत्यन्त सरल हृदयके संत महानुभाव हैं। हृदयमें भक्ति-भावोंकी श्रोत सदैव प्रवाहित होती रहती है। भक्तमाल के अत्युत्तम वक्ता हैं, वैसे ही कर्तव्यशील भी हैं। इनके द्वारा सैकड़ों संत भक्तमाल पढ़ पढ़कर अत्युत्तम वक्ता होगये। वर्तमान कालमें ऋषि-जीवन व्यतीत करते हुये भवसागरमें निमग्न रहते हैं, और समयानुसार पद्य-रचना भी करते रहते हैं।

इनके रचनाओंमें महावाणी आदि नित्यविहार-सम्बन्धी ग्रंथों के आधार पर भी कई विषय अवलंबित हैं, इसलिये रसिकोंके सिवाय अन्य वहिर्मुख व्यक्तियोंके लिये विशेष लाभकी नहीं, क्योंकि वृन्दावन के रसिकोंने सखी-भावावेशमें श्रीनिकुंजविहारीके अलौकिकमें लौकिकताके जिस मधुर-रसको लेकर इस प्रकारकी रचनाएँ की हैं, उसमें केलिकी तरंगोंसे परिपूर्ण अनंत सौंदर्यका समुद्र है। इसमें लौकिकताकी गंध भी नहीं है। उस अशेष सौंदर्य-प्रेम-मूर्तिके समक्ष शील संकोचको न्यौछावर कर दिया है। इसीसे इन रसिक कविश्वरोंने अपनी पराप्रेमकी पुष्टिके लिये जिस शृंगारमयी लोकोत्तर छटा और आत्मोत्सर्गकी अभिव्यंजनासे जनताको रसोन्मत्त किया, उसका लौकिक स्थूल दृष्टि रखनेवाले जीवों पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसकी ओर इन्होंने ध्यान नहीं दिया। इससे मलिन-हृदय विषयांधलोगोंके लिये ऐसे ग्रंथ लाभदायक नहीं। इनके द्वारा कुछ पद उद्धृत करते हैं —

[पद]

सुन्दर श्यामकी वलिहारी ॥
करै करावै सबै नचावै, आपै खेल खिलारी।
मैं मेरी अरु वह सब तेरी, यह माया है प्यारी ;
याहीके वस जीव वापुरो, नाचत साँझ सवारी।
दुस्तर खेल रच्यो मनमोहन, काकर वुद्धि विचारी;
जाको कृपादृष्टि अवलोकै, सेवा देत महारी।
सत संगत अरु नाम आसरे, विहरत प्रेमविहारी;
पायो पद अभिराम श्यामको, अलीमाधुरी वारी।

मुखिया श्रीगोपालदासजी

इनका जन्म संवत् १६४३ को माघ-कृष्ण-चतुर्थी गुरुवारको, जनकपुरसे तीसकोस पूर्व दिशामें स्थित भागलपुर-जिलेके कोहवरा-नामक ग्राममें हुआ था। पिताका नाम बुद्धनदास था—जो ग्राममें ही स्थित स्थानके महंत, जो निम्बार्कीय वैष्णाव थे—उनके शिष्य थे। बाल्यावस्थासे ही सतसंग संस्कार था, तथा वहाँ साधुसंतोंका समागम भी बना रहता था—इसलिये हृदयमें भगवद्भक्ति—अंकुर उत्पन्न होना स्वाभाविक था। उस ग्रामके ही स्थानमें स्थित महंतके ये भी शिष्य हो गये—जिनका नाम रामरतनदासजी था। गुरुजी भी एक पढ़े-लिखे, सतसंगी जोग्य महात्मा थे। वृंदावनमें भी आया-जाया करते थे। इनके संग ये सं० १६५६ में वृंदावनके लिये प्रस्थान हुए मार्गमें इनसे कुनौली-नामक ग्राममें बिरक्त दीक्षा-मंत्र ग्रहण की, तथा जनकपुर, अयोध्या होते हुए मथुरा आये और वहाँसे वृंदावन। यहाँ संवत् १६५६ में कुम्भ-मेलाका दर्शन कर गुरुजीके संगही हरिद्वार होते हुए बद्रीनारायण यात्राके लिये चले, गुप्तकाशीमें गुरुजी परमधाम पधार गये—वहाँ ये संग-रहित होनेके कारण असहाय होकर रोने लगे। उसी समय वहाँ एक महात्माका आगमन हुआ—जिन्होंने उनके पूछने पर अपना नाम बनमालीदास बताया, वे इन्हें अपने संग वृंदावन तक लाए। यहाँ आजानेके पश्चात् वे इनसे जंगलमें रहनेके लिये कह कर चल दिए। ये अति विह्वल हुए तब स्वप्न हुआ कि 'क्यों रोते हो मुझे लोग बनमालीदास भी कहते हैं, और वीणाधारी भी', यहाँ ये जन्मष्टमी करके पश्चिमीय तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए गोमती तथा वेटद्वारका गये, वहाँ मन्दिरमें सौभाग्यसे साक्षात् श्रीवीणाधारीके रूपमें भगवान् श्रीनारदजीका दर्शन हुआ और गानविद्या प्राप्त होनेके लिये आशीर्वाद भी मिला। वहाँसे नासिक प्रयाग कुंभ, चित्रकूट,पूरी आदि होते हुए जन्मभूमि पर गये,—वहाँसे पुनःसंवत् १६६६ में वृंदावन आगये और पानीघाट पर ठहरे उस समय नवीन अनुरागमें भावानुसार कई चमत्कारपूर्ण अनुभव दर्शनादि हुए इस समय वृंदावन-वास करते हुए इन्हें ३१ वर्ष हो गये हैं। वर्त्तमान कालमें भी श्रीजीकी पक्की बगीचीमें निवास कर रहे हैं। ये एक संप्रदायमें अच्छे संत हैं। राग—रागिनीयोंके

ताल, सुर, लय आदिके पूर्ण ज्ञाता तथा गवैया हैं। आचार्योत्सवोंमें जो मंगल बधाईके पद आदि गाये जाते हैं उनके मुखिया हैं। नामरूप, लीला, धाम एवं उपासना उपास्य-तत्त्वोंके पूर्ण ज्ञाता हैं। इन विषयों के पुष्टिमें बड़े-बड़े नास्तिकों, हठधर्मियों एवं सनातन-धर्मसे विरुद्ध व्यक्तियोंसे टक्कर लेनेके लिये तैयार रहते हैं। देवताओंके सिद्धिके लिये पूजापाठ मंत्र, जंत्र तंत्रादिमें इन्हें बहुत ही विश्वास है; कुछ न कुछ करते ही रहते हैं। इन्होंने भी आचार्य मंगलबधाईके अनेक पदोंकी रचना की है जो आचार्य-उत्सवमें गाये जाते हैं। इनके सिवाय ये निम्न लिखित ग्रंथोंके निर्माण तथा संग्रहकर्ता हैं। १—वेदांतकामधेनु-दशश्लोकीकी सवैये छन्दोंमें टीका, २—वेदांतकामधेनुका अनुवाद (रोलाछन्द, ३—यमुनास्तोत्र (श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टजीकृत) का प्रकाशक, ४—श्रीनिम्बार्क अष्टक सटीक पदात्मक, ५—श्रीसीताराम मानसी सेवा अष्टयाम, ६—जुगल-प्रेमवल्ली, ७—आचार्य मंगल बधाई, ८—श्रीराधाकृष्ण नाम महात्म्य (संग्रह) इनके द्वारा निर्मित कुछ छंद उद्धृत करते हैं—

कल्पतरुतर मणिमण्डप सिंहासनपै ठे पिया-प्यारी अंग सोभा अति भारी हैं; चन्द्रिका मुकुट छबि मोतिन सुधारी धारी तिलक ललाट दुति अति झलकारी हैं। श्रवण कुंडल झांइ परत कपोलन पैं लोचन बिशाल भौंहें धनुष सँवारी हैं; आनन अमित छवि लखि मनमथ-पुंज भयो है लज्जित दृष्टि भूमि सो निहारी हैं।

नाशा अग्र मोती झुकि उर नवसर हार वैजयन्ति बनमाल हिये विच धारी हैं; फहरात नील पीत बसन समीर लागैं बदत रसिली बैंन लागैं अति प्यारी हैं। कटि मध्य कटिसूत्र कींकिणि लसैं अनूप कंजपद पायल नुपुर ध्वनि न्यारी हैं; दीये भुज अंस प्रिया प्रीतम गोपाल मोद मुरली अधर धरैं रसिक बिहारी हैं।

कृष्ण चरण सुभ पोत गहै बिनु तरिहैं नाहीं; करत यत्न अरु कोटि परैं पुनिपुनि दुख माहीं। ब्रह्म शिवादिक जाहि चरण पंकज सिर नावैं; शक्ति है जाहि अचिन्त्य चितव कोउ पार न पावैं। आसै जाकि अचिन्त्य भक्त इच्छा अनुसारा। प्रगट होत बपु मंजु जनन हित दीन उदारा।

दरश करत जन मुदित मन हर्ष न उरहि समाइ;
पारस पायो रंक जिमि हिय सुख-सिंधु सुहाइ।

श्रीदानविहारीलाल शर्म्मा

इनका जन्म संवत् १६५५ में भादों कृष्ण-पंचमीको हुआ था। जन्म एवं निवासस्थान वृंदावनमें केशीघाट पर है। स्वर्गीय पिताजी का नाम पं० चिंतामणिजी था इन्होंने वृन्दावनमें एन्ट्रेंसतक अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की और सन् १६ से २५ तक ६ वर्ष एन्ट्रेंसके छात्रोंको विज्ञान तथा आलेख्य पढ़ाया पश्चात् सन् २५ से ३६ तक म्युनिस्पल शिक्षा-विभागके निरीक्षक नियुक्त रहे। इन्हीं दिनों श्रीनिम्बार्क महासभामें प्रथम वर्ष मन्त्री और द्वितीय वर्ष में प्रधान मन्त्री-पदसे कार्य किया। सन् ३६के प्रारम्भसे३६तक पब्लिक हिन्दी मिडिल स्कूल में मैनेजर रहे पश्चात् कोषमें लगभग ५००) रुपये छोड़ कर दूसरेको चार्य देकर अलग हो गये। इन्होंने संवत् १६१४ में पं० श्रीकिशोर-दासजी महाराजसे मन्त्र दीक्षाली थी, उस समय प्रथम विवाह हुआ था। ये इस संप्रदायमें एक होनहार एवं उत्साही कर्तव्यशील महानु-भाव हैं, जिस कार्य्यको हाथमें लेते हैं सतत चेष्टा-द्वारा उन्नति-पथ पर अग्रसर कर देते हैं। एक-न-एक पारमार्थिक-कार्य्य-साधन इनके द्वारा होते ही रहते हैं। वर्तमानमें इनसे सम्प्रदायको भी बहुत कुछ आशा है। ये एक अनुभवी कवि तथा लेखक भी हैं। इनकी कवितायें श्रेय, व्रज-संदेशमें बराबर प्रकाशित होती रहीं तथा श्रीसुदर्शन, नाम-महात्म्य और उदयमें होती हैं। सन् १७-१८ में प्रेम-महाविद्यालयके मुखपत्र प्रेमके सम्पादक थे। वर्त्तमान-कालमें भी नाम-महात्म्य तथा उदयके संपादक हैं। इन्होंने तीन ग्रंथोंकी रचना की है-श्रीनिंवार्का वतरण नाटक (प्रकाशित), २—शर्मिष्ठा-नाटक (प्रकाशित), ३—जयावती-नाटक (प्रकाशित),; इनके द्वारा निर्मित तथा व्रज-संदेश १६—८—३८ में प्रकाशित एक पद उद्धृत करते हैं।

बनादो मुझको व्रजरज-कण।
अलौकिकताके छवि-तलपर, अनोखे नीले नभ-तलपर;
लीलामय रम्य अवनीतल पर, निरखूं तुमको ही क्षण-क्षण।
जीवनके सुंदर प्रभातमें, दिनमणिके आलोक-गातमें;
प्रति पल-पल प्रत्येक बातमें, चूमूँ प्रियकेही-सुचरण।
पुष्पोंके पुष्पित विकासमें, मधुमय छायाके प्रकाशमें;
हृदय के उठते उल्लासमें, डोलें पियारे स्याम-रमण।
मनमें बसे मनोहर कांति, धुल जावे हियकी सब भ्रांति;
पाजाऊँ मंजुलमय शांति, मिले 'विहारी' की चिर-शरण।

नाममहात्म्य-सम्पादक—

माननीय श्रीयुत दानविहारीलालजी शर्म्मा,

बृन्दावन ।

स्वाभाविक-द्वैताद्वैत सिद्धान्त-प्रचारक भगवान
श्रीनिम्बार्काचार्य पादपद्माश्रित, भगवद्भजन-
समाज-मुखिया, विरक्त वैष्णव—

श्रीगोपालदासजी वृन्दावन।

महंत श्रीकुंजविहारीदासजी

इनका जन्म संवत १९५६ में हुआ था। इनके पिताका नाम भगवान चतुर्वेदी था, ये जिला आजमगढ़में भोगइया—नामक ग्रामके रहनेवाले थे। इन्होंने काशी, शाहगंज एवं अन्य स्थानोंमें हिंदी और व्याकरणको शिक्षा प्राप्त करलेनेके पश्चात् शिष्य-सेवकोंमें भ्रमणकर अपनी परंपराप्राप्त-पेशा करना प्रारंभ किया। इस अवसरपर इन्हें बम्बई आदि बड़े-बड़े शहरोंमें भी कई-कईवार जानेका अवसर मिला था। संवत् १९७६ के लगभग पक्खनपुर गये, वहां पं० हनूमानप्रसादजी के यहां नियमितरूपसे श्रीमद्भागवत और महाभारतादिकी कथा होती थी—उसे श्रवण की, तथा विनयपत्रिका आदिके भी पद श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ – उसी समयसे हृदयमें वैराग्यांकुर उत्पन्न हुआ, वहीं इन्होंने पिताजीसे कहा कि 'हम साधु होंगे' पिताने बहुत समझा-बुझाकर विवाह करनेके लिये आग्रह किया; किंतु इन्होंने एक नहीं माना। तब पिताने झुंझलाकर कहा 'कि मेरा ऐसा सौभाग्य कहां कि पुत्र साधु हो—पर साधु होना तो सच्चा !' ये पितासे एक प्रकार आज्ञा पाकर, किसी समय उठकर चल दिये। वृंदावनमें आकर संवत् १९८५ में श्रीमुकुंददेवाचार्य-गद्दयाधीश श्रीमाधवदासजी महाराजके शिष्य होगये। इन्होंने गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी एकवार तीर्थोंमें भ्रमण किया था। पुनः साधु होने पर भी कई-कईवार भारतके चार धाम तथा समस्त तीर्थोंमें परिभ्रमणका अवसर मिला। पश्चात् संवत् १९८९ में श्रीगुरुवर श्रीमाधवदासजी महाराजने टोपीवाली कुंज (विहारघाट) की महंताई पद इन्हें समर्पित की, तबसे योग्यता पूर्वक चला रहे हैं।

ये इस पदको भलीभाँति निभा रहे हैं, स्थानके नियमानुसार सदैव नियमितरूपसे श्रोताओंको कथा श्रवण कराना, उचित-रीतिसे स्थानका प्रबंध तथा सेवा पुजादिका सुचारुरूपसे सम्पन्नता प्रभृति भली भाँति होते हैं। सांप्रदायिक आचार्य-निर्मित ग्रंथोंमें अति निष्ठा-तथा पूर्ण वैराग्य हृदय संत हैं। इनके द्वारा निर्मित श्रीयुगलकिशोर-कृपाकटाक्ष नामक पद्यमय-ग्रंथ प्रकाशित हुआ था-उसमेंसे उदाहरणार्थ कुछ पद उद्धृत करते हैं—

[पद]

तुम विन और कोउ नहिं मेरे ।
युगलकिशोर किशोरी सुनिये, सत्य कहूँ तव नेरे ।
जितने मिले जगतमें मोकों, सबै कपट हिय घेरे ;
स्वारथ ही में लिप्त भये अति, नाम दामके चेरे ।
औरन को उपदेश देत नित जगत मृषा कहि टेरे ;
आपन हिय कबहूँ नहिं देखैं,जो अति मलिन भयेरे ।
जब लगि स्वारथ सिद्ध होय,तबहीं लगि प्रेमी मेरे ;
स्वारथ-हीन बात कोइ नाहीं पूछ शत्रु सम हेरे ।
बिन स्वारथ के आपहि जनके,पुरवत साथ घनेरे ;
कुंजविहारि विहारिणि ताते, तव पद शरण गहेरे ।

[पद]

तुम बिन और कौन हित करिहैं ।
युगलकिशोर किशोरी तुम बिन, कठिन पीर को हरिहैं ।
जितने जीव दुखी निज दुख में, परदुख किमि निरवरिहैं ;
बिन तव कृपा नाहिं समरथ कोउ, जनम मरण दुख हरिहैं ।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मत्सर, ईर्षा किंहि डरिहैं ;
अहङ्कार—मदमत्त—महागज, हरि बिन कौन पछरिहैं ।
मृतक जियावनि दृष्टि बिना तव, विषयन विष किमि टरिहैं ,
बिन तव चरण नाव चढ़ि कहिये, भवनिधि कैसे तरिहैं ।
श्रीगुरुकृत उपदेश पाय जब, ध्यान हिये तब धरिहैं ;
कृपादृष्टि तव पाय युगलवर ! कर्म शुभाऽशुभ जरिहैं ।
सकल जगत को पास कटै तब, सुख-दुख शोक विसरिहैं ;
कुंजविहारि विहारिणिको हिय लखि-लखि अभय विचरिहैं ।
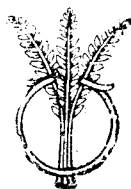
श्रीउमाशंकरजी द्विवेदी

इनका जन्म संवत् १९४९ फाल्गुन-शुक्ल—सप्तमीके दिन वृन्दावनमें हुआ था, ये पं० श्रीदुर्गादत्तजीके पुत्र, तथा सनाढ्य-ब्राह्मण वंशावतंस हैं। परंपरादि परिचय इनके पिताजीके परिचयमें हैं। इन्होंने अक्षराभ्याससे कोषचंद्रिकादि घरमें ही अभ्यास किये, पश्चात् पं० नत्थीलालजी शास्त्रीसे लाखनवाली पाठशालामें मध्यमातक पढ़े, पुनः पीलीभीत चले गये और वहीं इन्होंने आयुर्वेद-शास्त्री, उपाध्याय-शास्त्री और आचार्यकी परीक्षा दी। लाहौरकी साहित्यशास्त्रीकी परीक्षा देकर उतीर्ण हुए।

सन् १९१७ में गुरुकुलमें आयुर्वेदके प्रोफेसर नियुक्त हुए। जब वृन्दावनमें ऋषीकुल संस्थापित हुआ था - उसके ६ वर्ष तक मंत्री रहे, तथा प्रेममहाविद्यालयमें १५ वर्ष तक स्वास्थ्य निरीक्षक रहे थे। सन् १९१४में सेवासमितिके मंत्री नियुक्त हुए और ६ वर्षतक इसपद पर कार्य्य की। अखिल भारतवर्षीय पंचम वैद्यमहासम्मेलनके स्वागताध्यक्ष यही थे—तथा और भी अनेक सभा सोसाइटियोंके मंत्री-सभापति रह चुके हैं। वृन्दावनमें ऐसी कोई भी सभा-संस्थायें नहीं —जिनमें कोई न कोई इनका हाथ न रहा हो। भाषण देनेकी इनमें अद्भुत शक्ति है, प्रत्येक विषयोंपर धाराप्रवाह भाषण देते हैं तथा प्रत्येक सभाओंमें इस कार्य्यके लिये निमंत्रित होते हैं। वृन्दावनका प्रत्येक समाज इनसे स्नेह करता है।

भारतके प्रसिद्ध पत्र पत्रिकाओंमें इनके लेख प्रकाशित होते ही रहते हैं—कवितायें भी प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके द्वारा निर्मित दृष्टांतसती नामक एक १०० दोहों की पुस्तिका हस्तलिखित है, जिसके दोहे दृष्टांतके लिये अत्युत्तम हैं।

एकबार हरियाली तीजपर यह कविता बनाई थी, जबकि २-३ वर्षसे लगातार वृष्टि नहीं हुई थी और हरियाली मनाई जारही थी-

सूखे सर सरिता सुखाने सब ताल कूप ऊसर भकभूसर भई भूमि नाहि आली है; मघवा निगोड़ो अवै दरस तक देत नाहिं सूखी घासपात पै तपत अंशुमाली है। भनत उपेंद्र ऐसो तरु ना लखात कोऊ जाकी फल फूलसो हरी भरी डाली है; मेघ बरसावन सु तापन नसावन की सावन की आज तीज कैसी हरियाली है।

षोड़श हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन वृन्दावनके अवसरपर कवि सम्मेलन हुआ, उसमें कविलोग,' जो समस्या पूर्तिकर लाये थे समय ही नहीं दिया जाता था, आपको यह बुरी लगी, आपने तत्काल वहीं बैठकर 'कब आयेंगे' की पूर्ति कर डाली और उसे सुनाई। वह समय पर कितनी अनुकूल हुई देखें —

कविता कुल कामिनीके कांति कहुं पावत नांहि जो पै रसीली सुखसाली सरसायेंगे ; आश्रयविहीन दीन कविजन देखे जात कौन पै उछाह भरि रस वर्षायेंगे। भागनते एक कविसम्मेलन प्रगट भयो ताहूमें कविता कों समय नहिं पायेंगे ; भनत उपेंद्र हाय मनमें रहेगी बात जाने कविताके दिन फेर कब आयेंगे।

लीलास्थली तेरी चिरकाल लों रही जो भूमि तापर तुव करकी मेघमाला-सी तनी रहै ; भोरे ब्रसबासिनकी मोदभरी गोद कान्ह अंग-अंग रागनसों नितप्रति सनी रहै। फीको ब्रह्मरूप तोमें नीको मो लगत नाहिं हमारी सलोनी स्याम छविही घनी रहै ; निपट गरीब, गाय गाछ ग्वाल गोपिन पै अवहूं गोपाल दया वैसी ही बनी रहै।

पंडित श्रीगिरिराजजी

ये आदिगौड़-ब्राह्मण वंशावतंस हैं। इनका जन्म ब्रजके गिड़ोय-नामक ग्राममें हुआ। पिताका नाम मदनमोहन था, ये अच्छे विद्वान् थे तथा काशीसे इन्हें पंडितकी उपाधि मिली थी। गिरिराजजीके दीक्षा-गुरू श्रीहरिप्रियाशरणदेवजी (पं० श्रीदुलारेप्रसादजी शास्त्री) हैं तथा उन्हीं से इन्होंने संस्कृत—शिक्षा भी प्राप्त की। ये एक विद्वान् तथा योग्य सरल स्वभाव— सत्पुरुष हैं। श्रीमद्भागवत तथा अन्य पौराणिक ग्रंथोंकी कथाभी सुन्दर—रीतिसे कहते हैं। इन्हें गृहस्थ—जीवन निर्वाहके लिये मासिक वेतन पर प्रति द्वितिय वर्ष कलकत्ता जाना पड़ता है, वहां ये सेठ श्रीजयलाल—हरगूलालजीके कोठीपर स्थित मन्दिर में सेवा—पूजा करते हैं। जब मैं कलकत्ते इस ग्रंथके प्रकाशनार्थ चन्दा करनेके लिये गया था तो आपने अपनत्व रखते हुए समय-समयपर उत्साहित किया। इन्होंने फुटकर अनेक कवितायें निर्मित की हैं— यहाँ केवल एक श्लोकका भवानुवाद उद्धृत करते हैं।

श्लोक—का चिन्ता मम जीवने यदि हरिर्विश्वम्भरो गीयते,
नोचेदर्भक जीवनाय जननीस्तन्यं कथं निस्तरेत्।
इत्यालोच्य मुहुर्मुहुर्यदुपते लक्ष्मीपते केवलम्,
तत्पादाम्बुज सेवनेन सततं कालोभया नीयते।
भावार्थ-जीवन चिन्ता कौन जो हरि विश्वम्भर कहै;
नहिं बालक जीवन होय मात कुच पय बहै।
वार-वार यों देखि श्रीशहि चित ध्यावत रहै;
हरिपद-पंकज सेय कालहुँ तहँ गति ना लहै।

गोस्वामी श्रीमन्नूलालजी

ये गौड़-ब्राह्मणवंशावतंस हैं। फरुक्खाबाद नगरमें इनके पूर्वज जाकर बस गये थे, अद्यावधि आप भी वहीं रहते हैं। वर्तमानकालमें वहाँ आप एक प्रसिद्ध आचार्य-गद्दीके अधिष्ठाता हैं, तथा स्वपूर्वजोंके स्वरूपानुसार पूज्य गोस्वामी स्वरूप हैं। वृंदावनमें आपका कई बार आगमन हुआ, किन्तु मुझे दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका। मुझे दुख है कि पत्र-द्वारा भी इनका पूर्ण परिचय नहीं मँगा सका और श्रीनिम्बार्क-माधुरीकी छपाई समाप्त हो चली; आपके परिचयसे माधुरीके वर्तमान रचयिताओंके भागको बंचित नहीं रख सका, क्योंकि आप एक अच्छे सुकवि महानुभाव हैं। मैं हिन्दीके कई पत्र पत्रिकाओंमें आपके सरस कविताओंको बराबर अवलोकन कर रहा हूं, अपरिचित अवस्थामें परिचयके विषयमें कुछ भी नहीं लिख सका, दो-चार शब्द लिखा इसके लिये गोस्वामीजी महाराज क्षमा करेंगे।

[कवित्त]

ज्ञान की प्रदाता है विधाता है विधाता हू कि, शिव सनकादि निरमाता माता सम है; यंत्र मंत्र तंत्रको नियंत्रन करनहारी, परतंत्रताके फंद काटे एक दम है। ऋद्धि सिद्धि नवों निद्धिकी समृद्धि वृद्धि करै, जगत प्रसिद्ध सिद्ध साधना प्रथम है; निरगुन सगुन ह्वै जाके गुन गावे 'मनु', सब गुन पूरि वृज धूरि अनुपम है। १

भक्त-मन-मधुपकी कमल पराग सम, भक्तिके सुहाग हेत सुंदर सिंदूर है; सज्जन चकोरनको चंद्र चंद्रिकाकी चूर, भव रोग नाशनको

संजीवन मूर है। सुकृत सरीरनमें रजत-सी राजै रज, मुनि मन मोद हेत चंदन कपूर है ; नैननको नूर सुख भरपूर जामें ऐसी कलिमल क्रूर काटवेको बृज धूर है। २

पंडित श्रीव्रजवल्लभशरणजी

ये जगद्गुरू श्रीपरशुरामदेवाचार्य-स्थापित श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ सलेमाबाद(श्रीपरशुरामपुरी)के अधिकारी हैं। यह कार्य आपके योग्यतानुसार ही मिला है,आचार्यपीठ एक प्रसिद्ध आचार्य-गद्दी है इसपर आप जैसे ही विद्वान् बुद्धिमान, सद्चरित्र, कार्य-कौशल योग्य अधिकारीकी आवश्यकता थी, इसलिये श्रीसर्वेश्वर एवं आचार्यपादने स्वयं अपनी सेवामें स्वीकार कर आपको अपना लिया है।

आपने जगद्गुरू श्री११०८श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी महाराजकी परम्परान्तर्गत गोपालपुरस्थ श्रीगोपालमठसे दीक्षा ग्रहण कर ४ वर्षकी अवस्थामें ही भगवत् शरणागति प्राप्त की।

८ वर्ष की अवस्थामें विद्याध्ययन आरम्भ हुआ, और १७-१८ वर्षकी अवस्थामें ही तीर्थाटनके लिये उद्यत हो अधिक समय यात्रामें ही व्यतीत किया।

यात्रा करते हुये ही हिन्दी, उर्दू, फारसी, गुजराती आदि भाषाओंके साथ साथ गणित, सांगीत, व्याकरण वेदान्त, न्याय, मीमांसा, सांख्य, आयुर्वेद, आदि शास्त्रोंका अध्ययन किया।

अनेकों विद्याओंमें कुशलता देखकर कईएक समितियोंनें विद्या-भूषण आदि पदवियोंसे अलंकृत किया।

(यथा शक्य) धार्मिक प्रचार तथा हिन्दी एवं संस्कृत लेखों से कईएक पत्रोंकी सहायता द्वारा देश सेवा की।

संस्कृतके कईएक खण्ड-काव्य और बहुतसे फुटकर स्तोत्र भी रचे हैं।

आधुनिक समयमें जैसे विद्वानोंकी आवश्यकता है, उसके रिक्त स्थानकी पूर्ति आपसे हो रहा है। वर्तमान-कालमें संप्रदायान्तर्गत लेख लिखने एवं व्याख्यान देनेवाले सर्वोपरि कौशल विद्वानों में से एक हैं। व्याख्यान देते समय धारा-प्रवाह कई घण्टे तक बोल

सकते हैं। जबसे आप अधिकारी हुए हैं आचार्यपीठकी स्थिति सुव्यवस्थित रूपमें आगई है। आपसे आचार्यपीठ की उन्नतिके लिये बहुत कुछ आशा है—

[छन्द]

गज हित नाथ ! न देर करी पैदल धाय सुबाँह गही ;
हित चीर बढ़ावन चौसर छाँड़ि अनन्त अनन्त अवाज दई।
जन नेक विपति निहार जभी कमनीय शरीर धरा तबई ;
बसुधा भयभीत पुकार रही करुणा-निधि अब क्यों देर भई ? १
जग व्यापकता बिसराय विभो!सुखशान्ति समाधि लगाई कहीं;
प्रहलाद समान बचावन भूल देश विदेश गये कि कहीं।
किस कारण हे यदुनाथ ! अहो निज देश विपत्ति सुनी न गई;
बसुधा भयभीत पुकार रही करुणानिधि अब क्यों देर भई ? २
क्षिति विह्वल हो पदपद्म विना तव दर्शनको नित चाह रही ;
शिशु पालन धर्मको त्याग उन्हें निज हाथकी नाथ न पाय रही।
जनपाल जरा धरि जन्म इसे रमणीय स्वरूप दिखाहु सही ;
जन्माष्टमी वर्त रही सुखदा करुणानिधि अब क्यों देर भई ? ३
नवनीत पुनीत नहीं मिलि है, सुरभी सुधि जो अब नाहिं लई;
व्रज गोप विहार तथा तव मन्दिर सेवक दृष्टि नहीं परही।
'व्रजवल्लभ'जो निखलत्त प्रभो ! हरते निज भक्त-व्यथा झटही;
बसुधा मुख अश्रु बहाय रही करुणानिधि अब क्यों देर भई? ४

पं० जगदीशचन्द्रजी वैद्य शास्त्री

श्रीपरशुरामपुरी (सलेमाबाद) में आपका गौड़-द्विज-वंशके अन्दर वि० सं० १६५१ के माघ-शुक्ला १५ को जन्म हुआ। आप आयुर्वेदके अच्छे ज्ञाता हैं, वरदहस्त होनेके कारण कईएक असाध्य रोगी भी आपसे सुलझे हैं।

आप-भाषाकी कविता सुन्दर करते हैं, हालहीमें एक श्रीनिम्बार्क-भजनमाला बनाई है, जो मुद्रित हो चुकी है, इसके अतिरिक्त मारवाड़ी भाषामें (ख्याल) वीर अभिमन्यु और कईएक फुटकर पद भी रचे हैं। श्रीनिम्बार्क-भजनमालासे एक आरती उद्धृत करते हैं।

[श्रीनिम्बार्क-आरती]

ओं जय निम्बार्क हरे ।
तुम बिन और न दूजा भवसे पार करे । ओं०
तुम हो अगम अगोचर करुणानिधि स्वामी ,
पूरण-ब्रह्म दयालू जग अन्तरयामी । ओं०
भक्तनके हित कारण लीला अवतारी,
चक्र सुदर्शन प्रगटे तापन त्रय हारी । ओं०
किन्नर गायन करते सप्त स्वर सहिता,
बाजत ताल मृदंगा धिगतं तां धिगता । ओं०
द्वैताद्वैत प्रचार कियो प्रभु संतनको तारन,
आवागमन मिटावन कलिमल अघ पावन । ओं०
दीनदयाल दयानिधि दीनन हितकारी,
वेद पुराण बखानत महिमा अति भारी । ओं०
निशिदिन ध्यान धरे हित चितसे दुख बिनसे मनका,
काम, क्रोध, मद नासे कष्ट मिटे तनका । ओं०
जो जन ध्यानसे आरति प्रेम सहित गावे,
वो जगदीश परमपद सो निश्चय पावे । ओं०

मुखिया श्रीकुंजबिहारीदासजी

इनका जन्म संवत् १६२६ में पंजाब प्रांतके अन्तर्गत ब्राह्मण-कुलमें हुआ था । भगवान् अपनी इच्छानुसार संस्कारिक शुभकार्य अथवा भक्ति साधनके लिये किसी-न-किसीको निमित्त बना देते हैं । स्वदेशमें बाल्यावस्थासे ही श्रीआनन्दीबाईजीसे इनका संपर्क हुआ । १५-१६ वर्षकी अवस्थामें श्रीआनन्दीबाईजीके सेव्य ठाकुरजी की सेवा-पूजा करने लगे, यही अवसर था इनके हृदयमें भगवद्भक्ति उत्पन्न होनेका, श्रीठाकुरजीमें मैयाकी अत्यन्त प्रीति एवं उनके प्रति लाड़-प्यारको देखकर सहसा श्रीठाकुरजीमें इनका भारी स्नेह होगया । संवत् १६४८ में ये वृन्दावन आगये और श्रीनिम्बार्क संप्रदायान्तर्गत स्वामी श्रीहरिदासजीके परम्परामें एक विरक्त महात्मा श्रीनवेली-शरणजीके शिष्य हो गये । श्रीगुरूजीसे ही समाज-गायन-शिक्षा भी प्राप्त हुई पश्चात् बरसानेमें मोरकुटी पर १५-१६ वर्ष तक रहे थे । बाबा श्रीकिशोरीदासजीसे प्रथम, श्रीजीके मन्दिरमें कोठारके कार्य पर कई वर्ष तक कोठारी नियुक्त रहे । बरसानेसे पुनः वृन्दावन आगये

यहाँ मुखिया श्रीगोकुलदासजीसे परिचय हुआ और दोनोंमें गहरी मित्रता-सम्बन्ध रही। इन उभय मुखिया द्वारा ही आचार्योत्सवोंमें विशेषतः समाज प्रचलित हुई। श्रीगोकुलदासजीके गोलोक-गमन पर यह सेवा इन्हेंही सँभालनी पड़ी। संवत् १९९१-९२में श्रीआनन्दीबाई भी स्वदेश परित्यागकर श्रीवृन्दावनमें आगईं और यहाँ जमीन मोल लेकर श्रीराधावल्लभजीके मन्दिरके निकट मन्दिर बनवाई, तबसे आप भी इसी मन्दिरमें रहने लगे। आनन्दीबाईजी अपनी विद्यमान-कालमें ही इन्हें अपने मंदिरका उत्तराधिकारी नियुक्त कर मार्गशीर्ष-शुक्ल १५ संवत् १९९३ को वृंदावन-रज प्राप्त हुईं, तबसे आप मन्दिरके कार्यको सुव्यस्थित रूपसे भली-भाँति चला रहे हैं। इनके द्वारा निर्मित एक पद उद्धृत करते हैं —

[राग-सारंग]

यशुमति गोचारनको बल-मोहनको करति शिंगार ;
कार्तिक गोपअष्टमी उज्वल पण्डित,कहत विचार ।
बाबा नंद दक्षिणा दीनी फूले मनमें भये उदार ;
रामकृष्ण ।चिरजीवो जोरी बोलत बारम्बार ।
सखा सङ्गके बनि ठनि आये ते कीने सब लार ;
मैया कहति भली विधि तिनसौं कीज्यो इनकी सार ।
भूख प्यासकी खबर लीजियो ये हैं अति सुकुमार ;
जो कबहू हों उदास छिनकमें लीजौ हँसाय सबग्वार ।
मेवा भाँति २ पकवानन छीका भर दिये और अचार ;
खेलत कुदकत चले गोचारन शोभा बढ़ी अपार ।
व्रजबनिता मिलि मंगल गावें देखत नैन पसार ;
लगी टकटकी'कुंजविहारीसों' घरकी सुधि न सँभार ।

श्रीगिरिधारीलालजी

मध्यप्रान्तके दामोह-सागर जिलेमें सीतानगर-नामक एक सुरम्य ग्राम है। यह एक पवित्र नगर है। यहां बड़े-बड़े भगवद्-भक्त महात्मा होगये हैं, अद्यावधि उनके स्थान मन्दिर-रूपमें स्मृति करा रहे हैं। इस नगरके उत्तर तटपर सोनार-नदी बह रही है ; इससे तथा आस-पासके रमणीक उपत्यकाओंसे नगरकी सोभा बहुत ही विशेष प्रतीत होती है। यह नगर एक पालीवाल-ब्राह्मणके

अधिकारमें कई सौ वर्षोंसे चला आरहा है। इसी पवित्रकुलमें श्रीगिरिधारीलालजीका जन्म सं० १६५५ में हुआ था। इनके पिताका नाम श्रीतुलसीरामजी था। गिरिधारीलालजी अपने तीन सगे भ्राताओं में से सबसे बड़े हैं। जब भाइयोंमें संपतिकी बटवारे हुये तो अन्य संपतिके संगही सीतागनर जन्मभूमि-स्थान ग्राम भी प्राप्त हुआ। ये इस देशमें एक प्रसिद्ध जागीरदार रईस हैं। यद्यपि भगवद्भक्ति बिना पूर्व-संस्कार, कृपा बिना हृदयमें शीघ्र उत्पन्न होना असम्भव है, संस्कार होते हुये भी किसी न किसीका सत्संग-संपर्क निमित्त हो जाता है,इसीप्रकार जब इनके पिताजी गोलोक-बासी हुए तो नाबालगी अवस्थामें वृंदावन-निवासी बोहरे श्रीवृजलालजी वहां प्रबंध करनेके लिये पधारे और कई वर्षतक वहीं निवास करते हुए देखभाल करतेरहे। उसी समयसे भगवद्‌भक्तिका अंकुरहृदयमें उत्पन्न हुआ पश्चात वृंदावनमें भी आने-जानेका अवसर मिला। बोहरेजी भगवद्‌भक्त थे ही, इनके सत्संग-लाभके सिवाय वृन्दावनवासी संतोंके सत्संगसे भगवत्-प्रेमा-कुंर हृदय-पटल परसे अमिट हो गया—हृदयमें भक्ति श्रोत प्रवाहित होने लगी। वृंदावनमें संतोंके सत्संगसे प्राप्त भगवद्‌भक्ति मँजी मँजाई पक्की होती है, कच्ची नहीं! क्योंकि चतु: सम्प्रदायोंकी उपासना रहस्य सिद्धांतादि एवं वाणियें लभ्य हो जाती हैं। ये बाल्यावस्थासे ही शंशयात्मक भगवद्‌चरित्र एवं भक्ति-संबंधी शंकायें गोप्य नहीं रखते थे। बड़े-बड़े अनुभवी महात्माओंसे जिज्ञासात्मक प्रश्न तथा तर्क कर समाधान कर लेते थे, इसीकारण बहुतसे महात्माओंको ये बड़ेही प्रिय थे। बाल्यकालमें ही जिन दिनों वृंदावनमें विशेष आया जाया करते थे, इन्हें ऐसे अवसर बहुत ही मिले, कईएक महात्मा जिनके संग विशेषकर सत्संगके लिये आया जाया करते थे, इन्हें ही प्रश्न एवं शंका करनेके लिये अगुआ बनाते थे।

वर्तमानकालमें ये स्वदेशमें एक योग्य तथा बुद्धिमान रईस हैं। इनके यहां सदैव दस-बीस व्यक्तियोंकी झमेला लगी ही रहती है। राजनैतिक व्यवस्था, ग्राम पंचायतादि तथा कितने ही झगड़े भी आपके यहां निबटारा होते रहते हैं, जिसे उस मण्डल की जनता सहर्ष स्वीकार करती है। झंझटोंसे जो समय मिलता है उसे भगवद्‌भक्ति-भजनमें व्यतीत करते हैं। वृहद् मकानके ही चौकमें श्रीठाकुरजीका मंदिर है। जिसप्रकार वृन्दावनमें भगवद्‌भक्तोंके

समाजमें उत्सव होते रहते हैं वैसेही इनके यहां भी होते हैं, और विविध प्रकारके भोग-राग, समाज, कीर्तनादि द्वारा संपन्न होते हैं। कीर्तन-समाजमें ये स्वयं बैठते हैं तन्मय होकर पदोंको गाते हैं तथा स्वयं बाजा भी बजा लेते हैं। कार्तिक मासमें श्रीनिम्बार्क-जयंती-उत्सव बड़े ही समारोहके साथ करते हैं। २० दिन तक समाज, स्तुति, विविध भोगरागादि द्वारा उत्सव संपन्न होता है। वह स्थान उस समय उत्सव-संबंधसे एक अन्य वृन्दावन ही प्रतीत होता है। अन्तमें हज़ारों व्यक्तियोंकी वृहद् भंडारा होकर उत्सव समाप्त होता है। इनके यहां रसिक महानुभावोंकी समस्त वाणियें एकत्रित हैं जो वृन्दावनमें लभ्य हैं। कितनी हीं वाणियें तो हमने ऐसी भी देखी है जो हमें वृन्दावनमें नहीं मिलीं।

इनकी माताजी श्रीपार्वतीबाईजी संपति,पुत्र एवं लौकिक-संबंधों से मोह परित्याग कर श्रीवृन्दावन-बास करती हैं, और सदैव भगवद्भक्ति-सेवामें निमग्न रहती हैं। इनका हृदय एक परमभक्त एवं सच्चे रसिकोंके हृदयका-सा है और अपूर्व भक्ति-भाव-श्रोतसे संचरित है। श्रीजी एवं ठाकुरजीकी सेवामें अत्यन्त स्नेह है, भजन एवं मन्दिर सेवाके कार्यसे निवृत होकर सदैव अन्य किसी-न-किसी सेवा कार्यमें लगी रहती हैं। वैसेही वृन्दावनवासी भगवद्भक्त वैष्णवोंमें बहुत ही श्रद्धा है। वृंदावनके बड़े-बड़े संत महानुभाव भी इनसे परिचित हैं और स्वयं वहां अवसर पाकर पधारनेकी कृपा करते हैं, जैसे प्रसिद्ध श्रीरामकृष्णदासजी, ग्वारियाबाबा आदि। वाणियोंके पदार्थ, भावार्थ, भक्ति, ज्ञान वैराग्यादि संबंधी सत्संग चर्चामें आपकी बहुत ही अभिरुचि है, एवं इन तत्त्वोंके स्वयं ज्ञाता हैं। मैं भी प्राय: इनके निकट आया जाया करता हूं, मुझपर बहुतही कृपाहै।

श्रीगिरिधारीलालजी द्वारा विरचित एक पद यहां उद्धृत करते हैं जो एक संसारिक झंझटोंसे उपराम हुए, भगवद्भक्त, शरणागत, भगवद् प्रसन्न करनेमें असमर्थ, किंतु करनेके लिये व्यग्र, ईश्वर माया प्रपंचसे विरक्त, तथा आचार्य पद-नैष्ठिकके हृदयको प्रगट करता है।

'अवगुणकी खानि' नाथ! कहां लो चितावें;

एक कृपा-दृष्टि ही की मोको सुधि आवे।

बुद्धिकी, अब नाथ! तुम्हें कहा मैं सुनाऊं ;
ज्यों-ज्यों दौड़ाऊं ताहि त्यों-त्यों दुख पाऊं ।
हार्यो सब ठौरहूते रावरो भरोसो ;
सुनौ, कै न सुनौ, अब और नहिं तोषो ।
बिनती मो संग नाथ! सोऊ ना बनत है ;
कैसे तोहि कहौं, प्रभु! यही मन गुनत है ।
माया प्रपंच परि और कछुक चाहूँ ;
दीजै नहिं नाथ! सकल दारुन दुखदाहू ।
केवल यह माँगत 'गिरिधारी' आस धरिके ;
'श्रीहरिप्रियाकी शरण' मोहिं दीजै दया करिके।

श्रीमदनमोहनशरणजी

मदनमोहनशरणजी एक उत्साही नवयुवक हैं। ये होनहार लेखक तथा कवि भी हैं। इनकी कविता तथा लेख श्रीसुदर्शनके हरएक अंकमें प्रकाशित होते रहते हैं। संप्रदाय संबंधी पारमार्थिक कार्योंकी सेवामें जैपुर नगरके संप्रदायिक वैष्णवोंमें सर्वाग्रगण्योंमें से हैं,सेवाकार्य में सदैव तत्पर रहते हैं। संवत् १९८९ से श्रीनिंबार्क-सत्संग-मंडलका कार्य कर रहे हैं तथा लगभग ४ वर्षसे सत्संगमंडलके मंत्री नियुक्त हैं, अपने कार्यको ये भलीभाँति संचालन करते हैं। धन्वंतरी-औषधालयमें, दो विभागोंके नियमित कार्यसे जो अवसर मिलता है, उसे ये दैनिक भजन, लेख, कविता निर्माण, तथा सत्संगमंडलके संबंधमें ही व्यतीत करते हैं। इनका जन्म संवत् १९६९ माघ-शुक्ला-द्वितीया को खंडेवाल-ब्राह्मण-कुलमें हुआ था तथा इसी नगरमें विद्या, शिक्षादि कार्य भी संपन्न हुए। प्रथमा परीक्षा बनारस की दी। श्रीवृन्दावन-वासी पंडित श्रीकिशोरदासजीसे इन्होंने संवत् १९८२ में वैष्णवी-दीक्षा ली। श्रीगुरुके शिक्षा-दीक्षानुसार इस संप्रदाय एवं उपास्य-उपासनामें अत्यन्त प्रेम है—निष्ठा है। संप्रदायोन्नति कार्य-संबंधसे जैपुरमें किसी भी सांप्रदायिक सज्जनके पधारने पर ये सतत चेष्टा द्वारा उसके कार्य-साधनमें सफलताके लिये सपरिश्रम उद्योग करते हैं। जब मैं श्रीनिंबार्कमाधुरीमें सहायतार्थ चंदाके लिये जैपुरमें गया था तो जो कुछ हमें प्राप्त हो सका वह इन्हींके परिश्रमका फल था। इनके द्वारा निर्मित कुछ पद उद्धृत करते हैं—

[पद]

जगतमें गुरुवर सब सुखदाई।
उठ प्रभात जिनके सुमिरन ते तम-अज्ञान नशाई।
डूबत नाव उबारत तिहिं क्षण भवसों पार लगाई;
ज्ञान हृदयमें उदय करत अरु राधाकृष्ण मिलाई।
गुरु ही विष्णु व गुरु चतुरानन गुरु ही शिव कहलाई;
'मदनमोहन' गुरु परब्रह्म हैं गुरु को प्रथम मनाई।१
सुमिर मन! नियमानंद सुखधाम।
भगवत आयुध चक्रराज हैं श्रीनिंबारक नाम।
दयाशील आदिक गुण सागर सेवत श्यामा श्याम;
ज्ञान भक्तिकी रीति सिखावत अधम उधारक काम।
मात जयन्ती पिता अरुणजू निम्बग्राम तप ठाम;
'मदनमोहन' रक्षक ये स्वामी भजि ले आठोंयाम।२

महन्त श्रीव्रजभूषणशरणदेवजी

उक्त श्रीमहन्तजी महाराजका परिचय श्रीनिम्बार्क-साहित्य-प्रचारकोंमें आना चाहिये था, किन्तु भूलसे उस भागमें नहीं दे सका। श्रीमहंतजीका साहित्य-प्रचारकोंमें एक प्रमुख स्थान है। आपके द्वारा स्वधर्मामृतसिन्धु, श्रीविष्णुसहस्रनामका भाष्य, मुण्डकोपनिषद्का भाष्य आदि कई आचार्य-निर्मित महत्वपूर्ण ग्रंथ-रत्न प्रकाशित हुए हैं। महन्तजी महाराज जैसे विद्वान् हैं—वैसे ही गम्भीर-सांप्रदायिक-साहित्योंमें प्रेम है प्रकाशनके अतिरिक्त सदैव अध्ययन भी करते रहते हैं। पाठक इन्हें वर्तमान कविके स्थानपर श्रीनिम्बार्क-साहित्य प्रचारक ही समझें।

उक्त स्थानके गद्दीपर आदिगौड़ या कान्यकुब्ज-ब्राह्मण-कुलोत्पन्न ही गद्याधीश द्वारा विरक्त दीक्षा संस्कार कर महंत मनोनीत होते हैं। स्थानके नियमानुसार ब्राह्मणवंशावतंस होनेके कारण उत्तराधि-कारीके लियेये १४वर्षकी अवस्थामें उखड़ा-स्थानके महंत श्रीरामनराय-णशरणदेवजीके द्वारा शिष्य कियेगये। शिष्य होनेके एक दो मास पश्चात् ही विद्याध्ययनके लिये स्थानसे चल दिये। काशी तथा श्रीवृन्दावनमें व्याकरण, वेदान्त, न्याय अध्ययन किये। पश्चात् वर्द्धमान राजगंज-स्थानमें आकर रहने लगे। वर्द्धमानके स्वर्गीय महंत श्रीमधुसूदन-शरणदेवजी महाराज इनके पाण्डित्य और वैषयिक वुद्धि देखकर बहुत ही प्रसन्न हुये तथा प्रतिष्ठा-पूर्वक सादर रखे। यहाँ और भी

अनेक शास्त्रोंको पढ़े। महंतजी इन्हें वैषयिक कार्यमें उत्तम पात्र समझ कर एतद्विषयक समस्त भार इन्हें ही अर्पण कर दिये। ये वर्द्धमान में १३२४ साल पर्यन्त रहते हुए उक्त स्थलके समस्त जमींदारीके कार्य को सम्पन्न करते रहे। उखड़ाके महंतजी महाराज अतिशय वृद्ध होने पर १३२५ सालमें वर्द्धमानसे उखड़ा लाकर स्थानके समस्त कार्य-भार उन्हें अर्पण कर दिये। १३२८ सालमें श्रीगुरुजी महाराजके गोलोक-गमनपर उक्त सालके आसाढ़ मासमें स्थानकी गद्दीपर विराजमान हुए। इस उत्सवके समय वर्द्धमान, चेतवा, आड़ङ्गाट, कलकत्ता प्रभृति आदि स्थानोंसे महन्त तथा अनेक साधु-संत पधारे, उनका इन्होंने यथोचित सत्कार की।

जबसे आप स्थानमें गद्दीपर विराजे हैं स्थानीय सद्नियमोंके कार्य्यक्रम-संचालनमें-योग्यता पूर्वक अग्रसर होनेके कारण एक उत्तम कार्य-कौशल सिद्ध हुये हैं। अनेक साधु, संत, अतिथि प्रभृति स्थानमें आते रहते हैं. उनका यथोचित्त सेवा सत्कार होती है, तथा अपनी इच्छानुसार स्थानमें निवास कर सकते हैं। वैष्णवोंको दैनिक प्रसादके अतिरिक्त शारिरिक व्यवहारके लिये वस्त्र भी मिलते हैं। किसी वैष्णवके रोग-ग्रसित होनेपर जोग्य चिकित्सक भी चिकित्सा करनेके लिये तैयार रहते हैं। झूलन, जन्माष्टमी, रथयात्रा गोवर्द्धन पूजा, डोलोत्सव प्रभृति उत्सव भी अस्थानके नियमानुसार सम्पन्न होते हैं। स्थानमें स्थानीय पूर्व-प्रथानुसार आदिगौड़ तथा कान्यकुब्ज ब्राह्मण ही गद्दीनसीन-महंतसे दीक्षित होकर रसोई पूजाका कार्य कर सकता है। किसी सेवककी भोगलगानेकी इच्छा होनेपर स्थानके नियमानुसार ठाकुरजीके रसोईमें अमनिया तैयार होनेपर भोग लग सकता है, अन्य स्थानका बना हुआ नहीं! स्थानीय प्राचीन-नियम महंतजीके द्वारा भली भाँति पालन हो रहे हैं।

श्रीमहंतजी महाराजके समयमें ठाकुर-सेवा तथा मंदिर संस्करादि यथारीति सम्पादित होकर गद्दीकी आयमें अनेक वृद्धि हुई है। इनके यथोचित सत्कार एवं सरल सम्भाषणसे साधु-संत तथा प्रजावर्ग समस्त बड़े ही संतुष्ट होते हैं। वर्तमानकालमें बंगाल प्रान्तके विद्वान, प्रतिष्ठित, धर्मकार्य-कुशल, बुद्धिमान सर्वोपरि महामान्य महन्त महानुभावोंमें-से हैं। धार्मिक-कार्यमें अर्थव्यय करनेमें कभी संकुचित नहीं होते। जब मैं वर्द्धमान गया था तो स्वयं मुझे इनके

दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ और तद्देशीय वैष्णवोंमें इनका प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ। इनके संग सम्भाषण करनेका भी अवसर मिला, इस क्षणिक समागमसे ही सद्व्यवहारिता तथा महानताका बहुत-कुछ परिचय मिला।

ये सनातन तथा वैष्णव धर्मके उन्नतिविधानके लिये विशेष द्रव्य व्यय करके आचार्यपादों द्वारा प्रणीत ग्रंथ-रत्न जनसाधरणमें अमूल्य वितरण कर रहे हैं। इनके द्वारा और भी अनेक महत्वपूर्ण धार्मिक कार्य सम्पन्न होते रहते हैं। महन्तजी महाराज आज पर्यन्त जिस प्रकार सद्कार्योंमें प्रवृत हुए हैं—देखते हुए दृढ़ विश्वास होता है कि भविष्यमें आपके द्वारा स्वसंप्रदाय एवं सनातन-धर्मके अनेक उन्नति-कार्य-साधन होंगे।

ब्रह्मचारी श्रीयमुनाशरणजी

ये वर्तमानकालमें श्रीनिम्बार्क-महासभाके प्रचारमंत्री द्वयमें-से एक हैं, तथा पदानुसार महासभाके सेवा-कार्यमें सदैव तत्पर रहते हैं। संप्रदाय एवं आचार्योंमें इनकी अत्यंत निष्ठा है। जब प्रथमवर्ष वृन्दावनमें श्रीनिम्बार्क-महासभाका प्रचार-कार्य चिट्ठी पत्री एवं समाचार पत्र-पत्रिकाओं द्वारा चलना प्रारंभ हुआ, उस समय ये गुजरातमें भ्रमणकर रहे थे। महासभाके पत्रों पर छपे हुए नामोंको देखकर उत्साहित हुए और सभामें सेवा करनेकी उत्कंठा हुई, तथा वृन्दावनमें आकर सभाकी सेवा-कार्य ग्रहण की। संप्रदायोन्नति के लिये नित्यनवीन उत्साहपूर्ण आकांक्षाओंसे परिपूर्ण रहते हैं। इनका जन्म संवत् १६६० के लगभग ब्रजके किसी ग्राममें हुआ था। ये उनतीस वर्षकी उम्रमें संस्कार-वस अवसर पाकर वृन्दावन आगये और श्रीनिंबार्क-संप्रदायानुयायी श्रीहरिशरणजीके संवत् १६८६ में मार्गशीर्ष शुक्लाको शिष्य होगये। ये हरिव्यासदेवाचार्यजीके, 'द्वारा' संस्थापक द्वादश मुख्य शिष्यांतर्गत श्रीस्वभूदेवाचार्यजीके द्वारेके हैं। इनकी परंपरा इस प्रकार है—श्रीकर्णहरदेवाचार्य, परमानंददेवाचार्य, श्रीचतुरचिंतामणिदेवाचार्य, श्रीमोहनदेवाचार्य, श्रीसुदर्शनदेवाचार्य, श्रीव्रजमोहनदेवाचार्य, श्रीकृष्णशरणदेवाचार्य श्रीगोबिंदशरणदेवाचार्य श्रीगोपालशरणदेवाचार्य इन्होंने हरिव्यासी निर्वाणी अखाड़ा छोड़कर सदैव भजन करनेके लिये पानीघाटपर स्थान स्थापित किया। श्रीगिरिधारीदेव, श्रीदयालदासजी, इन्होंने पानीघाट पर खूब साधुसेवा की,

संत–समाजमें प्रसिद्ध हैं। इनके चार शिष्य थे, उनमेंसे एक महंत श्रीहरिशरणजी हैं, इन्होंने श्रीहरिव्याससदन स्थान स्थापित किया है। इनके ही शिष्य श्रीयमुनाशरणदेवजी हैं। इनके परिश्रमसे सभामें अनेक सदस्य और श्रीसुदर्शनके ग्राहक होगये हैं। इस श्रीनिंबार्क-माधुरी ग्रंथको पूर्ण—प्रकाशित रूपमें देखनेके लिये आप बहुत ही लालायित थे। इनके नामसे कवित्त एवं दोहे श्रीसुदर्शन वर्ष ५ अंक ८ में प्रकाशित हुए थे—वे उदाहरणके लिये यहाँ उद्धृत करते हैं--

[आचार्य-महिमा]

ह्वै जातो धरम विलाय जाती भक्ति भूमि,वेद,वो वेदान्तको सिद्धांतहू उड़ते ना;
भक्तवृन्द,ऋषिवृन्द,वैष्णव व ब्राह्मणवृन्द आदि धर्मधारी हरि-ध्यान-नींद सोते ना।
रह जाते अधंडरे निगम-पथ नित्यधाम,पातो नहिं कोऊ भक्ति परा बीज बोते ना;
आदि आचार्य निंबार्कदेव 'जमुनाशरण' चक्रराज अवनीपर प्रगट यदि होते ना।

श्रीनिम्बार्क मम ज्ञान हैं श्रीनिंबार्क मम ध्यान ;
जमुनाशरण निंबार्क तजि नहि अवनीमें आन।
रे मन ! मूरख बावरे श्रीसर्वेश्वर गाय ;
क्यों खोवत अस समयको तन सुरदुर्लभ पाय।

श्रीमधुरा सखी

श्रीयुत महादेव पाण्डेयजी शाकद्वीप-ब्राह्मण–वंशावतंश मिती भाद्रपद कृष्णा पंचमी सं० १६२५ के दिन इस जगतमें प्रगट हुए। इनके पिताका नाम श्रीयुत हजारी पंडित था। इनका जन्मस्थान चौसा ग्राम (सिद्ध पृष्ठच्यवनाश्रम) श्रीगङ्गाजीके दक्षिण भागपर जिला आरा सूबे बिहारमें प्रसिद्ध है। इनके पिता वेद-वेदांग आदि विद्यासे विभूषित थे। कुछ हिन्दी तथा संस्कृतका ज्ञान पिताने घरही में करा दिया था। (श्रीविष्णुसहस्रनामादि धर्म-ग्रंथके पठन-पाठनमें इनकी रुचि वालपनेहीसे थी। गवर्नमेंट हाईस्कूल पटनामें विशेष अध्ययनके लिये समाविष्ट हुए। वहाँ अँगरेजी और संस्कृतके कोर्सको पूरा करते हुए ऐंट्रेंस (Entrance) पास किये। इसके बाद पोष्ट-आफिस विभाग (Diqartment) में कार्य आरम्भ किया अपने ग्रामहीमें पोष्टमास्टर रहते हुए, श्रीमान् प्रयागदत्त पंडितजीसे, भगवत्-गीता उपनिषत् तथा ब्रह्मसूत्रका अध्ययन किये और वहीं महांत श्रीद्वारिकादत्त व्याससे संगीत-कला तथा काव्यकला सीखे। जब इनकी बदली श्रीगयाधाममें हुई तब वहां सन्यासी श्रीशिवसागरपुरी-

जैसे योगाभ्यासमें निरत रहते हुए अपने नौकरीके कार्यसे लगे रहे और बड़ी योग्यतासे सरकारी कार्य संचालन करते रहे, परन्तु आपका आत्मा संतुष्ट नहीं रहता था। आत्मोन्नतिकी बड़ी चटपटी लगी रहती थी। भवमोचनके लालसासे संतसमागम बराबर करते रहते थे। पहलेसे ही श्रीवृन्दावनमें यातायात होता ही था,परन्तु जबसे आप डिपुटिपोष्टमास्टरके पदसे पेन्शनर हुए तबसे तो बराबर श्रीवृन्दावन-धामकी शरण ले ली है। पेन्शन लेनेपर ये पहले श्रीवृन्दावनधाममें श्रीघमंडीलालकी धर्मशालामें उतरे। यह धर्मशाला श्रीभगवानदासवा-गलाके पाठशालाके सामने व्यासघेरेमें है। वहांके अध्यापक उस समय श्रीगणपति शास्त्री थे। श्रीगणपतिजीसे धर्म-संबंधी बातचीत होते हुये श्रीशास्त्रीजी बोल उठे कि "यमेवैषवृणुते तेन लभ्यः" तिसपर पांडेजी पूरा ऋचा पद दिये। क्योंकि इनको उपनिषत् कंठाग्र थे। वह ऋचा-कठोपनिषत्में ऐसे है, "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न वहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्माविवृणुते तनुं स्वाम्" यह श्रुति सुन कर शास्त्रीजी बहुत ही प्रसन्न हुए और इनको अपने पाठशालामें रखे। वहां रहते हुए इनको श्रीमहावाणीजीमें बड़ी श्रद्धा हुई और पं० श्रीदुलारेप्रसादजीसे श्रीमहावाणी जो शृंगार-रस-पूरित है प्राप्त कर एकदम तद्गत मानस होगये। और वहां इनका मधुरा-सखी नाम हुआ। पंडितजीसे श्रीमद्भागवत तथा वृंदावनके पुरातन महात्माओंके वाणी पढ़े। पाँच बरष पाठशालामें रहकर भक्तमाली बाबा श्रीमाधवदासजीके टोपीवालीकुंजमें पाँच बरष रहे और वहां उनसे भक्तमाल पढ़े। इनकी स्त्रीकी सद्गति श्रीवृंदावनधाममें मिती वैशाख सुदी द्वितीया सं० १६६० में टोपीवालीकुंजमें हुई। इनसे इनको कोई संतान नहीं हुआ, यह भी अनुकूल ही हुआ। घरपर छोटे भाईका लड़का पं० मधुसूदनप्रसाद पांडेय घर संभाल लिया है। अबसे इनका मन भगवद्भजन तथापुस्तक लिखनेमें लगा है बाबा माधव-दासजी के आज्ञा तथा कृपावलोकनसे सं० १६६० में श्रीराधिका सहस्र नाम प्रकाशित किए। सं० १६६१ में श्रीकृष्णसहस्रनाम निकाले उसी साल बनविहारमें बाबा श्रीमाधवदासजीके संग रहने लगे अब तक वहीं हैं। सं० १६६२ में श्रीवृन्दावन-रसमंजरी नामक अनुपम रस भरी पदावली प्रकाशित किये और सं० १६६३ में प्रियाप्रीतम श्रीराधा तथा कृष्णष्टोत्तरशत-नामक पुस्तिका निकाले। सं० १६६४ में श्रीराधिकारसामृतमाला पदावलीरूपमें प्रकाशित हुई।

बाबा माधवदासजीकी केवल अपूर्व कृपा से ही ये पुस्तक निकालनेका साहस किये हैं। कहावत है "गुरू मिहरबान तो चेला पहलवान।" बाबाकी जितनी प्रसंसा करें थोड़ी ही है। इनसे ये उऋण कभी नहीं हो सकते, इनके पूर्ण कृपाका दिग्दर्शन ये अपने श्रीवृंदावनरसमंजरीके ७७ पृष्ठमें तथा श्रीराधिकारसामृतमालाके अन्तिम पृष्ठ ८८ में प्रकाशकर चुके हैं और श्रीजीसे यही विनय करते हैं कि जन्म-जन्म श्रीबावाके पाद-पद्मोंका मधुकर वना रहैं।

[राग-सारङ्ग]

रसिकवर नवनवरंगी त्रिभंगी ।
छैलछवीलो गुनगर्वीलो रसिया श्याम सुअंगी ।
मैनमनोहर महामोदकर सुन्दरवर भ्रूभंगी ;
परमउदार प्रभा अतिअद्भुत रूपसुधारसरंगी ।
नैनविशाल कमलदलआयन परम कृपालुअभंगी ,
गान कलाअतिनिपुन किंकनी नूपुररमक सुधंगी ।
धाम निवास अंगअंगटोना सहजअनूप उमंगी ;
शुषमामृदुलसरस तन लोना सुभग सुठौन सुढंगी ।
यद्यपि गुणआगर नटनागर चौसठकला उचंगी ;
मधुरा नवलराधिकापदरज याचत सदा सुरंगी ।

श्रीचौथमलजी गिरदावर

ये वर्तमानकालमें समस्त झंझटोंको परित्यागकर वृन्दावन-वास करते हैं। इनका जन्म संवत् १९३७ में एक प्रतिष्ठित घरानेमें हुआ था। विद्या-शिक्षाके पश्चात् राज्यके कोर्ट-आफ-वार्डसमें मैनेजर नियुक्त हुए। इन्हीं दिनों समय-समयपर वृन्दावन आते-जाते रहे। वैष्णवोंके सत्संगसे हृदयमें भगवद्भक्ति-श्रोत प्रवाहित हुई, तथा ग्वारिया बाबा एवं बाबा श्रीरामचंद्रदासजीकी इन पर पूर्ण कृपा हुई, इन्हींसे इन्होंने शिक्षा-दीक्षा भी प्राप्त की। संवत १९९० में राज्यकार्य को परित्यागकर श्रीवृन्दावन-वास कर रहे हैं। इन पर श्रीजी-ठाकुरजी की पूर्ण कृपा है, अहर्निश भक्ति भावोंकी वेग हृदयमें उमड़ती ही रहती हैं और अपूर्व भावोंसे युक्त भक्ति एवं उपास्यतत्त्व विवेचन त्रिविध छंदों द्वारा करते रहते हैं। इन्होंने निम्न पुस्तकें निर्माण की हैं—
१—निकुंज वृन्दावन २—फूलनिकुंज वृन्दावन, ३—युगलशिंगार वर्णन, ४—राधामाधवस्तव संग्रह, ५—हरिपद-भजन-चेतावनी,

६--कृष्ण सहस्रनाम, ७—श्रीवृन्दावन वैचित्र प्रभा। अपनी भावानुसार निर्माण करवाकर इन्होंने अनेक हस्तलिखित बहुमूल्य चित्र संग्रह किया है--

[सवैया]

कोटिन चंद प्रकासत श्रीअँग लोचन कोटिन चंद समाये;
कोटिन चंदके पुंजन सो मुख कोटिन अंबुज मानो खिलाये।
कोटिन ही रसको रस श्रीअँग माधुर्यता सब ठाँ उमड़ाये;
कोटिन चंद प्रकासत है नख मानहुं चंदके सिन्धु लखाये।१
कोटिन चंदके पुंजहु कोटिन पुंजनकी एक रास अपारा;
दिव्य अलौकिक रूप प्रकासत तेज रसामृत सारकी सारा।
प्रेम प्रभा गुण रूपकी सागर ज्यों सिमटी सबही रसधारा;
माधुर्यता उमड़े सब रोमहुं सुंदर हैं अतिही सुकुमारा।२

पंडित श्रीगोविंददासजी शर्मा

काव्य-साहित्य-मनीषी, द्वैताद्वैत-विशारद पंडित श्रीगोविन्ददासजीका जन्म ब्राह्मणकुलमें ग्राम बधाल (जयपुर-राज्य) में हुआ था। अब ये विशेषतः अजमेरमें श्रीचतुर्भुजजीके मंदिरमें रहते हैं और उक्त मंदिरके अधिकारी भी हैं। श्रीमान् महंत श्रीरामकृष्णदासजी महाराज (स्थान चतुर्भुजजीका मंदिर मेयो कालेजके महंत) इनके दीक्षा-गुरु हैं। इनके ही उद्योग द्वारा अजमेर शहरमें 'श्रीरामकृष्ण संस्कृत विद्यालय' स्थापित हुआ है। पंडितजी महाराज संप्रदायांतर्गत कर्तव्यशील, उद्योगी तथा होनहार विद्वान् प्रतीत होते हैं। यदि आपके हृदयमें संप्रदायोन्नतिकी अभिलाषा ऐसी ही बढ़ती गई तो संप्रदायके लिये लाभकर सिद्ध होंगे। आपने आचार्य एवं भगवान्के प्रति कई स्तोत्र भी निर्माण किये हैं। इनके अतिरिक्त आजकल एक 'श्रीनिंबार्क चरितम्' नामका ग्रंथ लिख रहे हैं। उक्त ग्रंथ अब पूर्ण होने वाला है। इस ग्रंथके विषय महाभारत, भविष्य पुराण, भागवत् तथा और-और सांप्रदायिक ग्रन्थोंके आधारपर अवलंबित होंगे। श्रीनिंबार्काचार्य अत्यंत प्राचीन एवं समस्त आचार्यों के पहिले हुये हैं—यही इस ग्रंथका उद्देश्य है। इसके अतिरिक्त इनके द्वारा लिखी हुई निम्न पुस्तकें और हैं। १ - त्रिकाल-संध्या, बत्तीस

मुद्राओं सहित, २—पति पत्नी-व्रत धर्म (अमुद्रित), ३—श्रीहंसावतार नाटक (अमुद्रित), ४—श्रीहंसनिंबार्क जयंती, ५—श्रीगुरु-परंपरा स्तोत्रम्, ६—श्रीसर्वेश्वर-स्तुति, आदि। इनके द्वारा विरचित श्रीनिंबार्क जयंती स्तोत्र उदाहरणार्थ उद्धृत करते हैं—

[लावनी]

पल पल छिन छिन जात उमर यह भाई ;
भज निम्बारक दिन रैन सदा सुखदाई। टेर

जब आयो द्वापर अन्त असुर बहु छाये ; लख उनका अत्याचार भक्त घबराये।
ऋषि मुनि वैष्णव साधु सभी बतराये; कर विचार भक्त सब विष्णुलेत्रमें आये।
तप करनेको वहां बैठे ध्यान लगाई ; भज निम्बारक० ।१

तपके प्रभाव हो चिन्तित मन भगवाना; निज आयुधसे यों कहा सुणो धर ध्याना।
है कोटि सूर्य सम तेज महा बलवाना ; तुम अज्ञानीजनोंको ज्ञान मार्ग बतलाना।
भूमण्डलमें अवतार लेहु अब जाई ; भज निम्बारक० ।२

प्रभु आज्ञानुसार हो प्रगट देश दक्षिणमें ; गोदावरी तटपर ऋषि अरुण आश्रममें
होगया और से ओर दृश्य वहां क्षणमें ; उस कार्तिक शुक्ला पूनमके शुभ दिनमें।
भई मात जयन्ती पिता अरुण मुनिराई ; भज निम्बारक० ।३

एक दिवस ऋषि नारदने वहाँ आकर; शिष्य किया नियमानन्दको मन्त्र सुनाकर।
कल्याण करो सब जीवनमात्रका फिर कर; तुम सदा सर्वदा ब्रह्मचर्यमें रहकर।
फिर सिद्धान्तवादकी क्रिया सभी बतलाई ; भज निम्बारक० । ४

हरि इच्छानुसार हो प्रगट असुर संहारे ; आत्मीय साधु सब वैष्णव भक्त उबारे।
जय हो नियमानन्द अरुण मुनि प्यारे; नास्तिक मुख मर्दन करन हेतु पगधारे।
वैदिक सत्संप्रदाय प्रवर्तक मुनि कहाई ; भज निम्बारक० । ५

ब्रह्माकी सुनि कीर्ति ब्रह्मलोकसे आये ; धर यतिका रूप विपत्ती बन बतराये।
जबहो नियमानन्दने नीममें रवि दिखलाये ;तब लखकर उनका तेज विधी हर्षाये
तब नियमानन्दसे निम्बारक नाम धराई ; भज निम्बारक० ।६

जय हो कृपालु हरि आयुध चक्र-सुदर्शन; तुम हो दयानिधान भक्तदुःखभञ्जन।
सुन करके निज भक्तनकी करुणाक्रन्दन; भारतमें फिर आओ जयन्तीनन्दन।
'संत' सदा भज राधा माधव चितलाई ; भज निम्बारक० ।७

इति श्रीनिम्बार्कमाधुरी।

असली तुलसी-कंठीमाला-कार्यालय

समस्त वैष्णव महानुभावोंकी सेवामें निवेदन है कि आप अपनी सांस्कारिक वस्तु तुलसी-कंठीमाला असली प्राप्त कर सकें और धोखेमें न पड़ें इसलिये एक ऐसे सत्य-प्रतिज्ञ विक्रेता तथा उसके कार्यालय का परिचय देता हूं जिससे आप सहज में ही प्राप्त कर अपने धर्मकी रक्षा कर सकें। मिलने का पता—*'श्रीराधेश्याम दीक्षित' असली तुलसी-कण्ठीमाला कार्यालय, लोई बाजार, वृन्दावन।*

श्रीराधेश्यामजीका जन्म संवत् १६५६ फाल्गुन-शुक्ल-द्वितीया को गौड़-ब्राह्मणकुलमें हुआ था। जन्मभूमि अलीगढ़-जिलेमें खेरिया-जलालपुर-नामक ग्राम है। ये १० वर्षकी उम्रमें अपनी बूआके पास कमई-ग्राममें आगये, वहां करहलाके प्रसिद्ध स्वामी केशवदेवजीकी रासमंडलीसे इनका संबंध हुआ, क्योंकि इनके बड़े भ्राता स्वामी दामोदरजी प्रथमसे ही उस मंडलीमें ठाकुरजीके स्वरूप बनते थे।

इन्होंने पं०श्रीविहारीदासजी त्यागीसे श्रीनिम्बार्कसंप्रदायान्तर्गत वैष्णवी दीक्षा ली, इसलिये भगवद्भजन तथा इष्टदेव श्रीराधाकृष्णकी सर्वोपरि शृंगारिक-उपासना रासलीलामें प्रेम होना स्वाभाविक था सो इनमें इन बातोंकी अतिशय विशेषता थी. स्वदीक्षानुसार बाल्यावस्थामें ही खूब भगवद्भजन किया करते थे।

२२ वर्षकी अवस्थामें किसी कारणसे ये स्वामी दामोदरजीकी मंडलीसे अलग हुये, उस समय ये राधाचरणके मन्दिर (गोविन्दबाग) में पूजा करने लगे, तथा ६ मास तक करते रहे, इस स्थितिमें गार्हस्थ जीवन निर्वाहके लिये किसी अन्य कार्यके अनुसंधानमें भी लगे रहे। इस विचारमें एक भगवानदास-नामक परमहंस महात्मा बहुत ही सहायक हुये और उन्होंने वृंदावनमें असली-तुलसी-कंठीमालाका अभाव देखकर,इनसे अनुरोध किया कि'तुम तुलसीमाला-कंठीकी दूकान खोलो, जिससे वैष्णवोंको असली माला मिल सके।'माहात्माका उत्तम विचार इनके मनमें ठीक जच गया।

प्रथम तो ये अन्य कारीगरोंके बनाये हुये माला-कण्ठी वितरण करते रहे, पश्चात् इस कार्यको स्वयंही सीखनेकी इच्छा हुई, इसके लिये शिक्षक खोज करने लगे, तब इन्हें रमनलालको किसीने बताया, (जिसकी दूकान श्रीराधारमणजीके मन्दिरके समीप है) रमनलालजीने एक प्रतिज्ञा कराकर सिखाना स्वीकार कर लिया प्रतिज्ञा हाथमें जमुनाजल और तुलसी देकर कराई, कि 'हम कभी भी

तुलसीके अतिरिक्त अन्य काष्ठका माला किसी वैष्णवको धोखा देकर नहीं बेचेंगे।' ये इस कार्यसे चंददिवसमें ही शिक्षित हो गये। सर्वप्रथम सं० १९८७ आषाढ़में 'असली-तुलसी-कंठीमाला कार्यालय' के नामसे दूकान खोली।

तुलसी-कंठीमाला, भारतके प्रमुख धर्म वैष्णव-समाजमें एक महत्वपूर्ण संस्कारिक वस्तु है। शास्त्रोंके अतिरिक्त वैष्णव धर्मके समस्त संप्रदायाचार्योंने इसे महान महत्व दिया है। तुलसी संस्कारसे रहित कोई भी व्यक्ति वैष्णवधर्ममें प्रविष्ट हो ही नहीं सकता। शास्त्रोंमें तुलसी का महत्व, प्रभाव, धारण करने न करनेसे हानि लाभ, आदि भलीभाँति वर्णित हैं—

आज संसारमें कलियुगका साम्राज्य स्थापित है। व्यापारादि किसी कार्यमें भी सच्चापन देखनेमें नहीं आता, सर्वत्र धोखेबाजीका दौरदौरा है। इस अव्यवस्थित-समयमें जो ईश्वरसे डरते हुए ईमानदारी से काम करता है—वह अपनी उन्नतिकार्यमें अवश्य सफल होता है। यह राधेश्यामजीके कर्तव्य-सत्यतासे विश्वमें एक आदर्श उपस्थित होता है। वृंदावन वैष्णवोंका केन्द्र-स्थान होते हुए भी यहां तुलसीकी असली कंठीमाला मिलनी, एक दुर्लभ बात थी। माला बेचने-वालोंके प्रति वैष्णव-जगतमें अविश्वास हो गया था--बात भी ठीक थी माला-विक्रेता ग्राहकको शपथ खाकर भी अन्य काष्ठकी माला दे दिया करते थे। इस दुखद अभावको राधेश्यामजीने पूर्णतः निर्मूल कर दिया है और 'असली तुलसी कंठीमाला-कार्यालय' खोलकर वैष्णव-जगतमें एक संतोषप्रद कार्य किया है। हिन्दुस्तानके समस्त वैष्णवोंको इस कार्यसे संतोष है वैसेही यह कार्यालय विख्यात भी होगया है। यहांसे समस्त भारतमें कंठीमाला बाहिर भेजी जाती हैं। इनके अध्यवसायमें यह उन्नति इनके सत्यताका ही फल है। भारतमें आज एक यही असली तुलसी-कंठीमालाकी सबसे बड़ी दूकान है।

इनमें देशभक्ति भी कूट-कूट भरी है। जब सन १९२१ में महात्मा गांधीजी मथुरा पधारे थे, ये उस अवसरपर बड़ी श्रद्धासे उनके दर्शनार्थ गये। वहींसे इनके हृदयमें देशभक्तिका अंकुर उत्पन्न हुआ और काँग्रेसमें प्रवेश किये तबसे आजतक बड़ी तत्परतासे देश-सेवा कार्य करते रहते हैं। ये वैष्णव तथा श्रीराधाकृष्णके भक्त हैं इसलिये चतुः सम्प्रदायी वैष्णव इनके कार्य्यालय पर अवश्य विश्वास करें।

* आय-व्यय *

इस ग्रन्थमें जिन-जिन धर्मप्रिय सज्जनोंने आर्थिक सहायता प्रदानकर उदारता प्रगट की है, उनके नाम सधन्यवाद उद्धृत करता हूँ। भगवान्से प्रार्थना है कि दिन-प्रति-दिन इनकी स्वधर्ममें प्रवृति हो, धर्मोन्नति कार्यमें अग्रगामी होकर विश्वमें आदर्श उपस्थित करें। अबतक (ज्येष्ठ सम्वत् १९९९) लगभग दो-सौ ग्रन्थ वितरण हो चुके हैं उनमें छपी हुई हिसाबकी अपेक्षा यह हिसाब ही पाठक ठीक समझें, क्योंकि कई महानुभावोंसे पुनः सहायता प्राप्त हुई हैं उनके हिसाबमें वृद्धि है तथा नये दानदाता भी हैं—

२५०) महन्त गो० श्रीकपिलरामदेवाचार्यजी महाराज, राजीपुर थाना-मठ (पटना)
२००) सेठ श्रीरामरिखदासजी केडिया चिड़ावा-बम्बई वाले
५०) म० श्रीराधावल्लभदासजी उदयपुर
४०) श्रीमझले महाराजा साहिवजू पन्ना
३५) महन्त श्रीहरिशरणदेवजी अजमेर
३०) महन्त श्रीमनोहरशरणदेवाचार्यजी महाराज वर्द्धमान
३०) माजी साहिवा सेठ श्रीपद्मपतिजी सिंघानिया कानपुर
२६) म० श्रीराधिकादासजी कृष्णगढ़
२५) म०श्रीव्रजभूषणशरणदेवजी ऊखड़ा
२३) श्री श्रीजी महाराज सलेमाबाद
२३) म० श्रीरामकृष्णदासजी अजमेर
२१) महन्त श्रीबलरामदासजी उदयपुर
२०) महन्त श्रीरामचरणदासजी महोत्तरा
२०) सेठ श्रीगिरिधारीलालजी सीतानगर
१२) म० श्रीभगवानदासजी बीनाइटावा
११) श्रीठाकुरसाहिव रायपुर (J.P.S.)
१०) म० श्रीकेशवदासजी मिर्जापुर
१०) ब्रह्मचारी श्रीराधेश्यामजी बरसाना
१०) महन्त श्रीजानकीदासजी अरजन्दा
७) वैद्य श्रीलक्ष्मीनारायणजी अजमेर
५) पं० श्रीरामप्रतापजी शास्त्री ब्यावर
५) रानीसाहिवा श्रीसूर्यमुखीबाईजी राजनाँदगाँव
५) श्रीनोनीबाईजी साहिवा राजनांदगाँव
५) म०रासविहारीशरणदेवजी कोयलादेवा
५) सेठ श्रीद्वारकादासजी चिड़ावा
५) सेठ श्रीसूर्य्यमलजी चिड़ावा
४) महन्त श्रीसुदर्शनदासजी वीरपुर
१०) अन्यदाताओं द्वारा चिड़ावा

कलकत्ता से प्राप्त—

५१) बाबू श्रीरामनारायणजी कँया
५१) सेठ श्रीजयलाल हरगूलालजी
४१) सेठ श्रीतेजपाल यमुनादासजी
३१) श्रीरामहरजीमलजी डालमिया
३१) श्रीरामगोपाल लक्ष्मीनारायणजी

२६) श्रीवासुदेवजी लहिया
२५) श्रीकंजलालजी पाटोदिया
२५) श्रीजयदयालजी कसेरा
२५) श्रीनगीनदासजी खरवर
२१) श्रीमहादेवजी माहेश्वरी
२१) श्रीवृद्धिचन्दजी भाजोटिया
२१) श्रीनिवासजी लड़िया
१५) श्रीरामगोपाल रामस्वरूपजी
११) श्रीखुशीराम मुरारीलालजी
११) पं० श्रीतेजरामजी बेरीवाले
११) श्रीरामनिवासजी पोद्दार
११) श्रीराधाकृष्णजी धानुका
११) श्रीझावरमल रामविलासजी
११) श्रीझावरमलजी झाझड़िया
११) श्रीमुरलीधरजी सोमथलिया
११) श्रीकेसरदेवजी केडिया
११) श्रीरामदेवजी चोखानी
६) श्रीकुँवरलालजी बेरीवाले
७) श्रीप्रियादासी बाई
५) श्रीहीरालालजी भीवानी वाले
५) श्रीगोपीरामजी रामभंडार
५) श्रीदामोदरजी
५) श्रीजयदेव मनोहरलालजी
५) श्रीगोपीरामजी महणसरिया
५) श्रीजीतमलजी सुरेका
५) श्रीभोलारामजी केडिया
५) श्रीचुन्नीलालजी जसरापुरिया

श्रीवृन्दावन से प्राप्त —

३०) ब्र० श्रीयमुनाशरणजी वृन्दावन
१३) बाबा श्रीरामचंद्रदासजी दतियाकुंज
११ ब्रजविदेही म० श्रीधनञ्जयदासजी
११) मुखिया श्रीगोपालदासजी
११) महन्त श्रीकुंजविहारीदासजी
१०) श्रीमहादेवजी पाण्डेय
५) म० श्रीकृष्णदासजी सेवार
७) फुटकर

जयपुर से प्राप्त —

१६ सेठ श्रीनिवास राधेश्यामजी
११) सेठ श्रीसूर्यमलजी
५) सेठ श्रीरामगोपालजी
५) भण्डारी श्रीकेशवदासजी
५ सेठ श्रीलक्ष्मीनारायणजी
४) श्रीयुगलकिशोरजी नाजिम
४) वैद्य श्रीमुकुन्ददेवजी
१६) अन्य वैष्णवों से प्राप्त
६) श्रीनिम्बार्क सभा अलवर
२०) म० श्रीरामशरणदासजी चरखारी

१६२६) की आय हुई
१२१०) छपाई कागज ११० फारम

---

४१६) ब्लाक, चित्र छपाई, सहायता प्राप्त्यर्थ भ्रमण,
सहायतार्थ ग्रन्थ-संग्रह, अन्य फुटकर खर्च